DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DTATE	SIGNATURE

सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास

875-25
(राज०)

प्रो० राधेश्याम
अध्यक्ष
मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
इलाहाबाद

प्रकाशक :
वोहरा पब्लिशर्स एण्ड-डिस्ट्रीब्यूटर्स
३६, महात्मा गाँधी मार्ग,
(कल्पना टाकीज़ के पीछे) सिविल लाइन्स,
इलाहाबाद—२११००१, दूरभाष—५६८५८

कापीराइट : लेखक के अधीन

प्रथम संस्करण : १९[illegible]७

ISBN 81-85072-16-7

मुद्रक :
अशोक प्रिंटिंग केन्द्र
३५९, नईबस्ती कीडगंज
इलाहाबाद—२११००३

स्वर्गीय अम्मा और बाबू की

पुण्य स्मृति में

प्राक्कथन

मानव सामाजिक प्राणी है। वह समाज की निरन्तरता, गतिशीलता और परम्पराओं का व्यक्ति एवं समूह दोनों स्तरों पर संवहक होता है। सामाजिक विकास की सुदीर्घ यात्रा में जो अतीत से लेकर वर्तमान तक गतिमान रहती है, वह किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहता है। भारत जैसे विशाल देश में जिसकी सभ्यता और संस्कृति सहस्त्रों वर्ष पुरानी है तथा जिसमें निरन्तरता, गतिशीलता और परिवर्तन-शीलता के तत्व अनेक संघातों के बावजूद निरन्तर बने रहे, यहाँ के बहुजातीय, बहुधर्मी, बहुभाषी समाज ने सदैव आन्तरिक एवं बाह्य चुनौतियों का सामना ही नहीं किया वरन् अपने निजी सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे की विशेषताओं को बनाये रखने में भी सफलता प्राप्त की। भारतीय समाज की निरन्तरता, गतिशीलता और उसकी परम्पराओं की यह चेतना मध्यकालीन इतिहास में भी अपनी सम्पूर्णता के साथ प्रतिफलित हुई है।

पूर्व मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन पर प्रथम प्रवाह में हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों और तत्वों में परिवर्तन की प्रतिक्रिया तीव्र रही, किन्तु काल-प्रवाह के साथ परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर एक नवीन समाज जिसे मुसलमानों में यहाँ की जमीन से जुड़ने के बोध के कारण हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित नव भारतीय समाज कह सकते हैं, का विकास हुआ। यह सच है कि भारतीय समाज के इन दोनों तत्वों में विभिन्न स्तरों पर अनेक समानताएँ और असमानताएँ थीं, लेकिन इसके बावजूद दोनों के व्यापक जातीय तत्वों में पहले नगरीय और फिर ग्रामीण जीवन में जो समन्वय तथा सामंजस्य विकसित हुआ उससे ज्ञात होता है कि भारतीय समाज के विभिन्न जातीय तत्वों में सैद्धान्तिक एवं वैचारिक मतभेदों के बावजूद आन्तरिक एवं बाह्य चुनौतियों का सामना करने की अद्भुत क्षमता थी। निश्चय ही भारतीय समाज की यह क्षमता नवोद्भूत नहीं परम्परागत थी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मध्यकालीन भारतीय समाज की निरन्तरता, गतिशीलता और परिवर्तनशीलता को तत्कालीन परिवर्तनों की बहुआयामी भूमिका में विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया गया है। पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में परिवर्तन की जो प्रक्रियाएँ घटित हुईं उन्होंने अपूर्व अन्तर्द्वन्द्व को जन्म दिया। पूर्व मध्यकाल में परम्परीय भारतीय समाज की व्यवस्था आन्तरिक और बाह्य दबावों के कारण चरमरा-सी रही थी। फलतः नवीन सामाजिक व्यवस्था, परम्परा और निरन्तरता के तत्वों को आत्मसात करती हुई विकसित हो रही थी। राजनैतिक शक्ति के परिवर्तन और हस्तान्तरण में नगरीय और ग्रामीण चेतनाओं को पल्लवित करने वाली क्रांतियाँ

हुईं । इसका प्रभाव तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं पर पड़ना स्वाभाविक था। विशेष बात यह है कि सामाजिक ताना-बाना यथावत् रहा किन्तु उसमें नवीन वर्गों और उपवर्गों के उदय के कारण विभिन्न प्रकार की गतिशीलताएँ परिलक्षित होने लगों जिनमें कुछ तो प्रकट थीं और कुछ अपना स्वरूप धारण कर रही थीं।

इन सामाजिक परिवर्तनों के पीछे वदलती हुई आर्थिक व्यवस्था का प्रभावो योगदान था। उत्पादन, उत्पादक तथा उपभोक्ता तीनों एक ही वृत्त में सीमित हो गये। दूरस्थ ग्रामों के सम्बन्ध नगरों से स्थापित हो गये। परिणामतः नई व्यवस्था में उत्पादक, उपभोक्ता और वितरक की भूमिका पर्याप्त महत्वपूर्ण हो गई। मुद्रा के प्रसार ने आर्थिक क्रियाओं को नया मोड़ दिया। माँग और आपूर्ति के सिद्धान्त न केवल उत्पादन वरन् विनिमय और व्यापार की प्रणाली पर भी लागू हुए। आयात और निर्यात का स्वरूप परिवर्तित होते ही व्यापारी समुदाय के विभिन्न वर्गों की भूमिका भी बदल गई। इस काल में कृषि तथा कृषि-उत्पादन की क्षमता में माँग के अनुरूप संवृद्धि हुई। भू-राजस्व व्यवस्था के नये सिद्धान्तों को कार्यान्वित करते समय तत्कालीन प्रशासन को न केवल अपने ही हितों वल्कि उत्पादक और उपभोक्ता वर्गों का भी ध्यान वरावर रहा।

प्रस्तुत ग्रंथ स्नातकोत्तर कक्षाओं में मध्यकालीन इतिहास में सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास के अध्ययन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इस ग्रंथ के लेखन में डॉ० लईक अहमद, सत्येन्द्र, मंजुला, आविदा और रेखा ने जिस तन्मयता और निष्ठा से मेरी सहायता की उसके लिए मैं इन सभी को धन्यवाद देता हूँ। अपनी पत्नी कमला से मुझे जो सहज सहयोग मिलता रहा उसे मैं शब्दों में नहीं कहना चाहता। अपने 'पापा' की व्यस्तता से यद्यपि मंजरी, केशव और मीनू वरावर परेशान रहे, लेकिन उनके पापा की लेखनी से उपजी विद्यार्थियों के लिए इस कृति के लेखन का अनुभव अविस्मरणीय रहना चाहिये।

मैं वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स के संचालक श्री ओम वोहरा को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इतने कम समय में इस ग्रंथ के मुद्रण की व्यवस्था की। प्रस्तुत ग्रंथ में व्यक्त विचारों और उसकी त्रुटियों के लिए मैं पाठकों के सन्तुलित धैर्य की कामना करता हूँ क्योंकि मैं उनके विचारों को सहर्ष स्वीकार करने को तत्पर हूँ।

—राधेश्याम
३५ चैथम लाइन्स
इलाहावाद

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ
१.	दिल्ली सल्तनत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	१—२३
२.	पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज	२४—४८
३.	सुल्तान और उसके परिवार के सदस्य	४९—११२
४.	सल्तनतकालीन मुसलमान उमरावर्ग	११३—१५४
५.	मुसलमान समाज (उल्मा एवं सूफी सन्त)	१५५—१७५
६.	मुसलमान समाज (मध्य वर्ग एवं सर्वसाधारण)	१७६—२०८
७.	हिन्दू समाज	२०९—२३०
८.	हिन्दू मुस्लिम समाज के प्रमुख धार्मिक उत्सव, त्योहार, मनोरंजन के साधन	२३१—२४४
९.	खान-पान, वेशभूषा तथा रहन-सहन	२४५—२८२
१०.	स्त्रियों की दशा	२८३—२९४
११.	मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली	२९५—३११
१२.	सिचाई के कृत्रिम साधन : कृषि एवं गैर-कृषि उत्पादन	३१२—३३९
१३.	कृषक एवं भू-राजस्व व्यवस्था	३४०—३७०
१४.	कुटीर उद्योग	३७१—३८८
१५.	व्यापार एवं विनिमय	३८९—४४३
१६.	शहरीकरण एवं शहरों की व्यवस्था	४४४—४६६
१७.	मुद्रा प्रणाली	४६७—४८२
	संदर्भ एवं टिप्पणियाँ	४८३—५४३
	संदर्भ ग्रन्थों की सूची	५४४—५५९

१

दिल्ली सल्तनत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना

जिस तुर्की साम्राज्य की स्थापना हिन्दुस्तान में १२०६ ई० में हुई उस सामाज्य के निर्माण का कार्य मुहम्मद गौरी ने ११७५ ई० में ही प्रारम्भ किया था। इस वर्ष उसने मुल्तान के कारमेथियनों पर आक्रमण कर मुल्तान विजित किया।[१] उसने ११७६ ई० में उच्च विजित किया और उसे अली किरमाज़ को प्रदान किया।[२] ११७८-७९ में वह नेहरवाला की ओर गुजरात विजित करने के उद्देश्य से वढ़ा किन्तु वहाँ के राय ने उस पराजित कर गज़नी वापस लौटने पर विवश कर दिया।[३] ११७९-८० ई० में उसने पेशावर विजित किया।[४] अगले वर्ष ११८१-८२ ई० में वह लाहौर की ओर वढ़ा किन्तु खुसरो मलिक ने उसके साथ समझौता कर लिया।[५] ११८२ ई० में वह देवल के विरुद्ध वढ़ा और उसने समुद्रतट का प्रदेश विजित कर लिया।[६] ११८४-८५ ई० में वह पुनः लाहौर की ओर वढ़ा; उसने समस्त प्रदेश विध्वंस कर दिया,[७] किन्तु खुसरो मलिक ने दुर्ग में रह कर उसका सामना किया। गज़नी वापस लौटने से पूर्व मुहम्मद गौरी ने सियालकोट विजित किया व उसे हुसैन-इब्न-खरमील के हाथों में सौंप दिया।[८] ११८६ ई० में मुहम्मद गौरी ने पुनः लाहौर पर आक्रमण किया और उसे विजित कर लिया।[९] उसने देवल से लेकर सियालकोट तथा पेशावर से लेकर लाहौर तक सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं और अली करमख को मुल्तान का वली व सिपहसालार नियुक्त किया।[१] इस प्रदेश की न्याय-व्यवस्था का भार मिनहाज उससिराज के पिता मौलाना सिराज्जुद्दीन को सौंपा गया।[१] उसके वाद उसने तवरहिन्दा को विजित किया और उसे ज़ियाउद्दीन तुलाक़ी के अन्तर्गत रक्खा।[१२] उसके अन्तर्गत १२०० अश्वारोही जो कि गज़नी व भारतवर्ष की सेना में से चुने गए थे, तवरहिन्दा में नवविजित प्रदेशों की सुरक्षा के लिए रक्खे गए। किन्तु आठ मास वाद जव वह पुन: गज़नी से भारत पर आक्रमण करने के लिए आगे वढ़ा तो तरायन के प्रथम युद्ध में उसे राय पिथौरा की सेना का सामना करते हुए पराजित होकर वापस होना पड़ा।[३] ११९१ ई० में वह तरायन के मैदान में दूसरी वार उपस्थित हुआ और उसने रायपिथौरा को वुरी तरह से पराजित कर उसे वन्दी वनाकर मार डाला।[′] रायपिथौरा को पराजित करने के उपरान्त मुहम्मद गौरी ने न तो गोविन्द राय के उत्तराधिकारी से दिल्ली और न ही अजमेर अपने अधिकार में लिया। इसका

कारण यह था कि गोविन्द राय के उत्तराधिकारी ने मुहम्मद गौरी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। हसन निज़ामी के अनुसार इस क्षेत्र में जब राय व मुकद्दमों ने अधीनता स्वीकार कर ली तो उन्हें, इस शर्त पर कि वे मालगुजारी तथा अधीनता स्वीकार करने का कर देते रहेंगे, अपने पद पर बना रहने दिया गया। इस क्षेत्र पर नियन्त्रण रखने के लिए मुहम्मद गौरी ने इन्द्रपत में एक सैनिक चौकी अवश्य स्थापित कर दी। तरायन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् राजपूतों की शक्ति क्षीण होने लगी। मुहम्मद गौरी के अन्तर्गत अब तक सम्पूर्ण सिवालिक प्रदेश जिसमें हाँसी व सिरसौती भी सम्मिलित था, आ गए।[१५] गज़नी वापस लौटने से पूर्व उसने कुतुबुद्दीन ऐबक को कुहराम में नियुक्त किया ताकि वहाँ से वह नव विजित प्रदेशों पर तुर्कों का आधिपत्य बनाये रखे।[१६]

भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना

मुहम्मद ग़ौरी के गज़नी जाने के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक को राजपूतों के विरोध का सामना करना पड़ा। रायपिथौरा का पुत्र जो अजमेर में था तथा जिसने मुहम्मद ग़ौरी की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उसे राय पिथौरा के भाई हरिराय ने भगा दिया व अजमेर अपने अधिकार में ले लिया। हरिराय ने ऐबक के प्रतिनिधि किवाम-उल-मुल्क से रणथम्भौर का दुर्ग भी लेने का प्रयास किया, किन्तु ऐबक ने उसे वापस लौटने पर विवश किया और उसने रायपिथौरा के पुत्र को पुनः अजमेर दिलवा दिया सितम्बर ११९२ में ऐबक ने जातवान को हाँसी में पराजित किया व वहाँ सेना रक्खी. उसके बाद वह कुहराम लौट आया। इसी वर्ष उसने दोआब में प्रवेश किया व मेरठ क विजित किया।[१७] तदुपरान्त उसने बरन और दिल्ली विजित किया।[१८] ११९३ ई० में मुहम्मद गौरी ने उसे गज़नी बुला लिया। जब वह ११९३ ई० गज़नी से वापस लौटा तो उसे ज्ञात हुआ कि हरिराय ने पुनः रायपिथौरा के पुत्र को अजमेर से भगा दिया है और उसने झटराय को दिल्ली अधिकृत करने के लिए रवाना कर दिया है। ऐबक तत्काल दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके आगे बढ़ने की सूचना पाते ही झटराय ने अजमेर के दुर्ग में शरण ले ली और हरिराय ने आत्महत्या कर ली। तदुपरान्त ऐबक ने रायपिथौड़ा के पुत्र को रणथम्भौर का दुर्ग दे दिया व अजमेर का दुर्ग एक मुसलमान अधिकारी के अन्तर्गत रख दिया। उसके बाद ११९४ ई० में ऐबक ने कोल विजित किया।[१९] इसके बाद ही मुहम्मद गौरी पुनः गज़नी से भारत की ओर रवाना हुआ। उसकी इच्छा गढ़वला शासक को पराजित करने की थी। उसने दिल्ली पहुँचकर विशाल सेना भर्ती की तत्पश्चात ऐबक तथा हुसैन बिन खुरमैल के नेतृत्व में उसने एक विशाल सेना कन्नौज और बनारस की ओर भेजी। उसने गढ़वला शासक को चन्दवार में पराजित किया।[२०] यद्यपि सम्पूर्ण गढ़वला राज्य पर तुर्क अपनी प्रभुता स्थापित न कर सके किन्तु ऐबक को बनारस तथ असनी तक सैनिक चौकियाँ स्थापित करने का अवसर मिल गया। मुहम्मद ग़ौरी के गज़नी वापस जाने के बाद ऐबक ने कोल में अपनी स्थिति सुदृढ़ की। ११९५-९६ ई० में मुहम्मद ग़ौरी पुनः

हिन्दुस्तान आया। उसने जादौन के भट्टी राजपूत शासक कुमारपाल पर आक्रमण किया और ब्याना, थानकर तथा विजयगढ़ को अपने अधिकार में ले लिया।[२१] तदुपरान्त वह परिहार वंश के ग्वालियर के शासन सलखनपाल के विरुद्ध बढ़ा। सलखनपाल ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।[२२] ११९७-९८ ई० में ऐबक ने बदायूँ व बनारस को पुनः विजित किया। ११९८-९९ ई० में उसने चन्दवार व कन्नौज को विजित करके जयजन्द के गढ्वला राज्य को समाप्त कर दिया।[२३] इसके पश्चात् ऐबक ने राजस्थान की ओर पुनः ध्यान दिया। सिरोही विजित करने के बाद उसने ११९९-१२०० में मालवा पर चढ़ाई की। उसके बाद वह बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा और उसने १२०२ ई० में चन्देलों के कालिंजर के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसने कालिंजर का दुर्ग अधिकृत करने के बाद अजयगढ़, महोबा व खजुराहो को लेकर, इन दुर्गों को हसन अरनाल के अन्तर्गत रख दिया।[२४] लगभग इसी काल में मुहम्मद बख्तियार खिलजी पूर्व की ओर बढ़ा और उसने मनेर तथा बिहार पर छापे मारना प्रारम्भ किया। उसने विक्रमशिला व नालन्दा को विजित किया तथा उदन्तीपुर में एक दुर्ग बनाया और उसने नदिया के राय लखमनिया पर आक्रमण किया तथा उसे पराजित करके लखनौती को अपने अधिकार में ले लिया तथा देवकोट तक तुर्कों के प्रभाव को बढ़ा दिया।[२५] १२०५ ई० में मुहम्मद गौरी पुनः गज़नी से हिन्दुस्तान की ओर बढ़ा। इस बार उसका उद्देश्य खोखरों के विद्रोह को दबाना था। कुतुबुद्दीन ऐबक की सहायता से उसने यह विद्रोह दबा तो दिया किन्तु गज़नी वापस लौटते समय मार्ग में सिंध नदी के किनारे दमयाक में जब १५ मार्च १२०६ ई० को वह नमाज़ पढ़ रहा था तो किसी हत्यारे ने उसका वध कर दिया।[२६]

१२०६ ई० में हिन्दुस्तान में गौरी साम्राज्य के अन्तर्गत मुल्तान, उच्च, नेहरवाला, पेशावर, सियालकोट, लाहौर, तबरहिन्द, तरायन, अजमेर, हाँसी, सिरसौती, कुहराम, मेरठ, कोल, दिल्ली, थानकर, बदायूँ, भीरा, बनारस, कन्नौज, कालिंजर, अवध, मालवा, अदवन्द (?), बिहार तथा लखनौती थे।[२७] किन्तु तुर्कों का इन प्रदेशों पर पूर्ण रूप से प्रभुत्व नहीं था। कन्नौज व ग्वालियर में उनकी स्थिति सन्तोषप्रद न थी। जिस समय मुहम्मद ग़ौरी की मृत्यु हुई उसके बाद ग़ौर के शासक सुल्तान गयासुद्दीन महमूद ने मुईज्ज़ी अमीर ताजुद्दीन यल्दौज को गज़नी का प्रदेश दे दिया।[२८] इस प्रकार हिन्दुस्तान के साम्राज्य में से ग़जनी सदैव के लिए हाथ से निकल गया। पूर्व में अली मर्दान खिलजी ने मुहम्मद बख्तियार खिलजी का बध कर दिया। लखनौती में मुहम्मद शीरान व अली मर्दान के मध्य संघर्ष आरम्भ हुआ। मुहम्मद शीरान की मृत्यु के उपरान्त ऐबक की सहायता से अलीमर्दान खिलजी ने वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित किया। किन्तु पूर्वी प्रदेश पर ऐबक का प्रमुत्व केवल नाममात्र का था।[२९] जिस समय ऐबक की मृत्यु १२१० ई० में हुई उस समय उसके दामाद नासिरुद्दीन कुबाचा के हाथों में उच्च व मुल्तान के प्रदेश तो थे ही किन्तु उसने भक्कर व सहेवान भी अधिकृत कर लिये थे।[३०] संक्षेप में जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना मुहम्मद ग़ौरी

ने अपने अमीरों के सहयोग से हिन्दुस्तान में की तथा जिसकी सीमाएँ उत्तर-पश्चिम में गजनी से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा पश्चिम में नहेरवाला व अजमेर तक तथा मध्य भारत में बुन्देलखण्ड तक थी, वह ऐबक के शासनकाल के अन्त में सिकुड़ गई। गजनी व बंगाल दोनों ही सल्तनत के हाथों से निकल चुके थे। उसके बाद सिंध का प्रदेश भी निकल गया।

साम्राज्य की सुरक्षा

सुल्तान इल्तुतमिश के गद्दी पर बैठते ही दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में विस्तार होना प्रारम्भ हुआ। इस मध्य ख्वारिज़मियों ने यल्दौज़ को गज़नी से भगा कर पंजाब की ओर खदेड़ दिया। यल्दौज़ ने लाहौर को अधिकृत कर लिया व कुवाचा को सिंध की ओर भगा दिया तथा थानेश्वर तक के प्रदेश पर अपनी प्रभुता स्थापित कर दी।[११] किन्तु इल्तुतमिश ने यल्दौज़ को १२१५-१६ में तराइन के युद्ध में पराजित कर उसे बन्दी बन कर मौत के घाट उतरवा दिया[३१] और उसने कुवाचा को पंजाब पर शासन करने का अधिकार दे दिया। तदुपरान्त १२१७ ई० में जब कुवाचा ने सरहिन्द तक अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास किया तो इल्तुतमिश ने चिनाब नदी के तट पर स्थित मन्सूरा में उसे पराजित किया व उससे लाहौर लेकर अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को प्रदान कर दिया। १२२१ ई० में चंगेज खान के नेतृत्व में मंगोलों ने ख्वारिज़्म साम्राज्य पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक ख्वारिज़्म शाह को कैस्पियन सागर की ओर खदेड़ दिया। ख्वारिज़्म शाह का पुत्र जलालुद्दीन मंगोबरनी सिंध प्रदेश की ओर भागा। उसने कुवाचा को सिन्ध सागर दोआब से भगा दिया व पंजाब भी अपने अधिकार में ले लिया। तदुपरान्त उसने पसरूर को विजित किया। उसने खोखरों के सरदार राय सन्कीन खोखर से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर एक विशाल सेना एकत्र की एवं आईन उल मुल्क को दिल्ली भेज कर इल्तुतमिश से शरण देने के लिए प्रार्थना की। किन्तु इल्तुतमिश ने उसके राजदूत को मरवा दिया तथा उसके पास सन्देश भेज दिया कि भारत की जलवायु उसके योग्य सिद्ध न होगी। तत्पश्चात् इल्तुतमिश स्वयं उसके विरुद्ध बढ़ा किन्तु मंगोबरनी ने युद्ध करना उचित न समझा। वह बलाला व निकाला की ओर बढ़ा जहाँ उसने १०,००० सैनिक एकत्र किये और कुवाचा को पराजित कर वहाँ उसे प्रथम तो सक्कर व भक्कर की ओर तदुपरान्त मुल्तान की ओर भगा कर उसके अन्तर्गत सभी प्रदेशों को अपने अधिकार में ले लिया। १२२४ ई० में जलालुद्दीन मंगोबरनी को जब ज्ञात हुआ कि उसके देश से मंगोल वापस चले गये हैं तो वह पंजाब छोड़कर स्वदेश चला गया। इल्तुतमिश के लिए यह स्वर्ण अवसर था कि वह अब कुवाचा, जिसकी स्थिति जलाउद्दीन मंगोबरनी के आक्रमण के कारण पंजाब में बहुत ही खराब हो गई थी, की ओर ध्यान दे। उसने १२२८ में कुवाचा पर आक्रमण किया। उसे पराजित कर उसका अन्त करने के बाद, इल्तुतमिश ने उच्च व मुल्तान को अधिकार में

ले लिया।[33] इस प्रकार सल्तनत की सीमाएँ मेकरान तक बढ़ गई। मलिक सिनाउद्दीन हब्श जो कि देवल व सिंध का वली था, ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।[34] इस प्रकार १२२८ ई० में इल्तुतमिश के हाथ में पंजाब व सिंध के प्रदेश आ गए।

साम्राज्य विस्तार

पूर्व में ऐबक के समय से ही बंगाल में वहाँ के अमीरों में संघर्ष चल रहा था। अलीमर्दान के अत्याचारों को जब वहाँ के अमीर सहन न कर सके तो उन्होंने उसका वध कर दिया तथा १२२१ ई० के लगभग हुसमुद्दीन एवाज़ खिलजी को गद्दी पर बिठा दिया।[35] इस प्रकार १२११ ई० से १२२१ ई० तक बंगाल दिल्ली सल्तनत की परिधि से बाहर रहा। हुसमुद्दीन एवाज़ ने जाजनगर, त्रिहुत, बंग तथा कामरूप पर अपनी प्रभुता स्थापित करके बिहार तक अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा लिया।[36] उत्तरी-पश्चिम सीमान्त प्रदेश की समस्या से निबटने के उपरान्त इल्तुतमिश ने पूर्वी प्रदेश की ओर ध्यान दिया। उसने गंगा के दक्षिण में बिहार में जितने ज़िले थे अधिकृत कर लिये व वहाँ अक्तादार नियुक्त किये। तदुपरान्त वह गंगा के किनारे-किनारे बंगाल की ओर बढ़ा, किन्तु १२२५ ई० में हुसमुद्दीन एवाज़ ने आगे बढ़कर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।[37] पूर्वी प्रदेश से लौटने से पूर्व इल्तुतमिश ने मलिक जानी को बिहार का वली नियुक्त किया। किन्तु उसके पीठ फेरते ही हुसमुद्दीन एवाज़ ने मलिक जानी को बिहार से निकाल दिया और पुनः स्वतन्त्र हो गया। इस बार इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद, जो कि इस समय अवध में था, को बंगाल की ओर भेजा। उसने हुसमुद्दीन एवाज़ को पराजित कर उसे मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार से सल्तनत की सीमाएँ एक बार फिर लखनौती तक हो गई।[38]

पश्चिम में सुल्तान इल्तुतमिश ने राजपूताना में प्रवेश करते हुए रणथम्भौर का दुर्ग १२२६ ई० में तथा १२२७ ई० में सिवालिक में स्थित मण्डोर का दुर्ग जीत तो लिया किन्तु उसके आगे वह बढ़ न सका। दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ रणथम्भौर व मण्डौर तक ही रह गईं। इसके बाद पूर्वी प्रदेशों में पुनः उथल-पुथल हुई। इल्तुतमिश के ज्येष्ठ पुत्र नासिरउद्दीन महमूद की मृत्यु हो गई (मार्च-अप्रैल १२२९) और वहाँ के एक अमीर मलिक हुसामउद्दीन बलका इवाज़ में विद्रोह कर दिया।[39] इल्तुतमिश वहाँ गया, उसने विद्रोह का दमन कर दिया एवं लखनौती की गद्दी मलिक अलाउद्दीन जानी को दे दी।[40] उसका अर्थ यह हुआ कि बंगाल पुनः स्वतन्त्र हो गया। बंगाल से लौटने के बाद इल्तुतमिश ने ग्वालियर के परिहार शासक मंगलदेव से १२३१ ई० में ग्वालियर ले लिया और वहाँ अपने अधिकारी नियुक्त कर दिए।[41] उसके बाद मलिक नासिरुद्दीन तयासी, जिसे कि सुल्तान ने ग्वालियर के दुर्ग में नियुक्त किया था, ने कालिंजर पर १२३३-३४ ई० में आक्रमण किया और उसे विजित कर लिया। तत्पश्चात् सुल्तान ने मालवा में भीलसा विजित किया और उज्जैन पर अपना अधिकार जमा लिया।[42] अगले तीन वर्ष तक वह दिल्ली में रहा। १२३६ ई० में वह गज़नी व

सिंध नदी के मध्य स्थित क्षेत्र, जहाँ कि जलालुद्दीन मंगोबरनी का प्रतिनिधि सैफुद्दीन हसन करलग़ा था, पर आक्रमण करने के लिए बभियान की ओर बढ़ा किन्तु मार्ग में ही वह रोगग्रस्त होकर परलोक सिधार गया।[४३] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि १२३६ ई० में उत्तर पश्चिम में सल्तनत की सीमाएँ सिंध नदी तक ही थीं। इल्तुतमिश के अन्तर्गत उत्तर-पश्चिम में सिन्ध नदी से लेकर पूर्व में विहार तक, दक्षिण पश्चिम में कालिजर तक व पश्चिम में मण्डौर तथा रणथम्भौर तक सल्तनत की सीमाएँ थीं।[४४] उसने इक्तादारी प्रथा द्वारा केन्द्रीय प्रशासन व अक्ताओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया अथवा मुक्ती या वलियों के माध्यम से विलायतों से सम्बन्ध स्थापित किये।

सुल्तान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी

इल्तुतमिश की मृत्यु उसके अयोग्य, दुर्वल, अनुभवहीन उत्तराधिकारियों एवं तुर्की अमीरों के लिए क्रमशः अभिशाप व वरदान सावित हुई। अप्रैल-मई १२३६ ई० को रूकनुद्दीन फिरोज़ गद्दी पर बैठा। उसकी माँ शाह तुर्कान ने, राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली।[४५] उसने अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ निर्लज्ज दुर्व्यवहार किया, उनमें से अनेक को वाहर निकाल दिया तथा इल्तुतमिश के एक पुत्र कुतुबुद्दीन को अन्धा कर उसे मरवा डाला।[४६] उसने अपनी दुष्टता से सभी अमीरों व मंत्रियों को रुष्ट कर दिया। अन्ततोगत्वा उसके विरुद्ध राज्य के अमीरों, वदायूँ के इक्तादार मलिक मुहम्मद सालारी, मुल्तान के इक्तादार मलिक इजुद्दीन कवीरखान अय्याज़ हाँसी के इक्तादार मलिक सैफुद्दीन कूची तथा लाहौर के इक्तादार मलिक अलाउद्दीन जानी ने विद्रोह कर दिया। जैसे ही सुल्तान रूकुनुद्दीन फिरोज दिल्ली के बाहर इन विद्रोहों को दबा कर वापस लौटा,[४७] उसकी बहन रज़िया ने उसका तख्ता पलट दिया और वह स्वयं सिंहासन पर बैठ गयी। इस प्रकार से छः महीने अट्ठाइस दिनों के वाद साम्राज्य में अशान्ति का प्रथम चरण समाप्त हुआ। इस मध्य रणथम्भौर सल्तनत के हाथों से निकलकर पुनः राजपूतों के अधिकार में चला गया। इसी प्रकार ग्वालियर पर भी परिहारों ने अपना अधिकार जमा दिया। निःसन्देह चौहानों ने इस बीच उत्तरी पूर्वी राजपूताना पर अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित कर दिया। रज़िया ने आन्तरिक विद्रोहों का दमन किया और मिनहाज के अनुसार उसने लखनौती से देवल तक के सभी अमीरों को अधीनता स्वीकृत करने के लिए बाध्य कर दिया। १८ नवम्बर १२३६ ई० से १४ अक्टूबर १२४० तक में लगभग ३ वर्ष तक राज्य करते हुए रज़िया के अन्तर्गत सल्तनत की सीमाएँ लगभग वही रहीं जो सुल्तान रूकुनुद्दीन फिरोज़ के काल में थी।[४८] उसके वाद मुईजुद्दीन वहरामशाह २१ अप्रैल १२४० ई० को गद्दी पर वैठा। इस समय मलिक इख्तियारुद्दीन करकश लाहौर में था तथा कवीर खान अय्याज़ मुल्तान का मुक्ता था। जुलाई १२४० ई० में तैरवहादुर ने मंगोलों का नेतृत्व करते हुए लाहौर पर आक्रमण कर उसे दिसम्बर में अधिकृत कर लिया। मलिक इख्तियार उद्दीन करकश दिल्ली की ओर भाग गया। लगभग इसी समय मुल्तान के इक्तादार कवीर खान ने भी सल्तनत से सम्बन्ध तोड़

दिये।[४६] १० मई १२४२ ई० को सुल्तान मुइज़ुद्दीन बहराम को गद्दी पर से उतार दिया गया और अलाउद्दीन मसूद को गद्दी पर बिठाया गया। इस समय तक पूर्वी प्रदेश विशेषकर बंगाल सल्तनत के हाथों से निकल चुका था। इल्तुतमिश ने अपने शासन काल में ही मलिक अलाउद्दीन जानी को लखनौती से हटा दिया था। उसके स्थान पर उसने सैफुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया था। उसने उसे तुग़ान खाँ की पदवी दी। जब तुग़ान खाँ की मृत्यु ७ अक्टूबर १२३३-३४ को हो गयी तो उसने विहार के गर्वनर मलिक मुइज़ुद्दीन तुग़रिलतुग़ानखान को लखनौती का मुक्ता नियुक्त कर दिया। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद लखनौती शहर के मुक्ता ऐबक और खान ने तुग़ान खान के साथ संघर्ष किया किन्तु वह मारा गया। तुग़ान खान ने रज़िया से क्षत्र तथा लाल पताका प्राप्त किया। यद्यपि तुग़ान खान मुइज़ुद्दीन बहराम शाह के शासन काल तक दिल्ली उपहार भेजता रहा किन्तु वह लखनौती का अर्ध स्वतन्त्र शासक बना रहा। सुल्तान अलाउद्दीन मसूद के शासन काल में तुग़ान खान अवध का मुक्ता बना दिया गया व तमर खान को लखनौती दे दिया गया। इस प्रकार बंगाल का प्रदेश कभी भी पूर्ण रूप से सल्तनत के अधिकार में नहीं रहा।[५०] १० जून १२४६ को सुल्तान अलाउद्दीन मसूद को पदच्युत कर दिया गया और सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद को गद्दी पर बिठाया गया। सुल्तान नासिरुद्दीन शम्सी काल का अन्तिम शासक था। २७ मार्च १२४६ को वह गद्दी पर बैठा तथा १२६६ ई० में उसे परलोक भेज दिया गया।[५१] इन बीस वर्षो में राजनीति की बागडोर मुख्यतः उसके मन्त्री बलबन के हाथों में रही। मई १२४६-४७ में बलबन मंगोलों को आतंकित करने के विचार से सिन्ध नदी की ओर रवाना हुआ किन्तु सोदरा नदी के तट से वह १५ मार्च १२४७ को दिल्ली वापस आ गया।[५२] अगले वर्ष मई १२४७ जमुना व कालिंजर के मध्य दलाकी व मलाकी नामक हिन्दू सरदारों का उसने दमन किया।[५३] अप्रेल १२४८-४८ ई० में बलबन मेवातियों के उपद्रवों को शान्त करने के उद्देश्य से रणथम्भीर तक बढ़ा किन्तु उसे पराजित होकर वापस आना पड़ा।[५४] १२५१ ई० में सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद की सेनाएँ ग्वालियर, चन्देरी, नरवर व मालवा की ओर बढ़ी और उसने झारदेव को पराजित कर नरवर का दुर्ग विध्वंस कर दिया।[५५] १२५२-५३ ई० में बलबन का पतन हुआ व इमादीन रैहान वकीलदर बन गया। १२५४ ई० में तुर्की अमीरों ने इमाद्दीन रैहान को हटाने के लिये विद्रोह किया और १२५५ ई० में उन्होंने बलबन को पुनः अपना पद दिलाने में सफलता प्राप्त की।[५६] अगले वर्ष १२५६-५७ में बलबन ने सत्तूरगढ़ विजित किया।[५७] लेकिन इसी वर्ष क़िग़ली खान जिसके हाथों में उच्च व मुल्तान थे, ने दिल्ली से अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लिए व मंगोलों की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार इख्तियार उद्दीन युजबेक तुगरिल खान ने बंगाल में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और समीपवर्ती प्रदेशों को जीतना प्रारम्भ कर दिया।[५८] १२५८-६० ई० में हलाकू के राजदूत दिल्ली पहुँचे जहाँ बलबन ने उनका भव्य स्वागत किया।[५९] इसी वर्ष की घटनाओं का उल्लेख कर मिनहाज ने

अपना ग्रन्थ तबक़ातें नासिरी समाप्त कर दिया। अगले छः वर्षों में बलबन ने पहले तो सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद के पुत्रों को समाप्त कर दिया फिर अपने आश्रयदाता को विष देकर खत्म कर दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया।[६०]

दिल्ली सल्तनत के विस्तार की तुलना में बलबन उसके सुदृढ़ीकरण में विश्वास करता था। उसके शासन काल में (१२६६-१२८७) में दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ वही नहीं रही जो १२६६ ई० में थी। उसने इस काल में कटेहर में हिन्दुओं के विद्रोह को दबाकर व मेवातियों की शक्ति को कुचलकर दोनों ही प्रदेशों पर सल्तनत का प्रभुत्व स्थापित किया। उसके शासन काल में उत्तर पश्चिम में सिन्ध नदी, पूर्व में बंगाल तक, पश्चिम में ग्वालियर, व्याना, चन्देरी तक तथा दक्षिण पूर्व में कालिजर तक साम्राज्य की सीमाएँ थीं। उसकी मृत्यु के पश्चात् बंगाल में उसका पुत्र बुग़रा खान स्वतन्त्र हो गया। उसने वहाँ एक स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की।[६१]

खिलजी क्रान्ति ने बलबनी वंश का अन्त कर दिया। उसके स्थान पर खिलजी वंश की स्थापना हुई और एक नये युग का प्रादुंभाव हुआ, जो कि राजीतिक-सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण था। १३ जून १२८० ई० को सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज शाह खिलजी गद्दी पर बैठा।[६२] इसी वर्ष मलिक छज्जू ने विद्रोह किया। उस विद्रोह को दबा दिया गया।[६३] उसके बाद सीदी मौला को षड़यन्त्रकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित किए हुए पाया गया और उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया।[६४] इस काल में सबसे महत्वपूर्ण घटना सुल्तान द्वारा झाँई अथवा झैन नगर पर आक्रमण करना था। झैन को लूटने के उपरान्त सुल्तान की सेना १६ जून १२८० ई० में लौट आई।[६५] इसमें भी अधिक साहसिक अभियान उसके भतीजे व दामाद का था, जिसने कड़ा से बढ़कर भीलसा व झाँई को लूटा और देवगिर पर आक्रमण किया। वहाँ से अत्यधिक सम्पत्ति लेकर वह कड़ा वापस लौट आया।[६६] तत्पश्चात् उसने अपने चाचा सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी को भेंट करने के लिए आमंत्रित किया। सुल्तान का वध करवा कर वह सुल्तान बन गया।[६७] (२० जुलाई १२९६ ई०) जलालुद्दीन खिलजी के समय खिलजी साम्राज्य की सीमा का पश्चिम व दक्षिण की ओर विस्तार हुआ। इस काल में मालवा को विजित किया गया तथा देवगिर के शासक रामचन्द्र देव को सन्धि करने पर वाध्य किया गया। गद्दी पर बैठने के बाद सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने साम्राज्य विस्तार की क्रिया को राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से गतिशीलता प्रदान की। सर्वप्रथम उसने दिवंगत सुल्तान के पुत्र अरकली खान से मुल्तान लेकर उसे बन्दीगृह में डलवा दिया।[६८] तदुपरान्त १२९९ ई० में उसने गुजरात विजित किया।[६९] इसी वर्ष उसने राजपूताना में जैसलमेर पर आक्रमण किया और उसे लूटा। १३०० ई० में उसने रणथम्भौर पर आक्रमण किया और ११ जुलाई १३०१ ई० को उसने दुर्ग को अधिकृत कर लिया।[७०] जनवरी १३०३ ई० में वह चित्तौड़ के दुर्ग को विजित करने के लिए निकला और उसने आठ माह के

संघर्ष के बाद उसे अधिकृत कर लिया।[71] १३०५ ई० में उसने मालवा,[72] १३०८ ई० में सिवाना,[73] १३११ ई० में जालौर विजित कर लिया।[74] जालौर के पतन के पश्चात् सम्पूर्ण उत्तरी भारत उसकी मुट्ठी में आ गया। उत्तर पश्चिम में उसकी सेना सिंध व मुल्तान तक व उत्तर पूर्व में नेपाल की तराई तक पहुँची। इसी काल में उसने मंगोल आक्रमणों निष्फल बनाया। इस समय दक्षिण में चार प्रमुख हिन्दू राज्य थे—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में देवगिरि का राज्य, उसके दक्षिण पूर्व में तेलंगाना का राज्य जिसकी राजधानी वारंगल थी, तेलंगाना के दक्षिण-पश्चिम में होयसलो द्वारा शासित द्वारसमुद्र का राज्य तथा सुदूर दक्षिण में पाण्ड्यों द्वारा शासित माबर का शक्तिशाली राज्य था। इन विभिन्न राज्यों पर मलिक काफ़ूर ने आक्रमण करके उन्हें कर भेजने के लिए विवश किया।[75] दक्षिण के प्रत्येक अभियान से वह अपार धन, आभूषण, हीरे-जवाहरात आदि लेकर दिल्ली लौटता था।[76] डॉ० किशोरी सरन लाल के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के राज्य की सीमाएँ इस प्रकार थीं—उत्तर-पश्चिम में काबुल व गज़नी तक; दीपालपुर गाज़ी मलिक के अन्तर्गत था, मुल्तान व सिविस्तान पहले जाफर खान उसके बाद मलिक काफ़ूर के अन्तर्गत थे, पंजाब, उत्तर प्रदेश व सिंध केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत थे। राजपूताना की विभिन्न रियासतें करद का भुगतान कर रही थीं, पूर्व में उसके साम्राज्य की सेना बनारस व अवध से आगे नहीं थी। बिहार व बंगाल दोनों स्वतंत्र थे। मध्य-भारत में चंदेरी, एलिचपुर, धार, उज्जैन और माण्डू केन्द्रीय प्रशासन द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अन्तर्गत थे। गुजरात भी सल्तनत के अधीन था। दक्षिण के चार हिन्दू राज्यों में केवल पाण्ड्य राज्य को छोड़कर लगभग सभी राज्य केन्द्र को करद भेजते रहे।[77]

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के परलोक सिधारते ही न तो उसका साम्राज्यवाद मिट्टी में मिला और न ही उसके साम्राज्यवाद की दुर्दशा उसके उत्तराधिकारियों की चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण हुई। उसका पुत्र कुतुबद्दीन मुबारकशाह खिलजी, यद्यपि मालवा से लाए हुए बरादू हसन, जिसे उसने खुसरो खाँ की उपाधि से विभूषित किया, पर बुरी तरह से आसक्त था, किन्तु फिर भी अन्य अमीरों ने साम्राज्य के स्वरूप को बिगड़ने न दिया। मलिक जाफर खान ने गुजरात मे सुव्यवस्था बनाए रक्खी। उसके बध के पश्चात सुल्तान ने खुसरो खान के भाई हिसामउद्दीन को गुजरात का वली नियुक्त किया, किन्तु वह वहाँ का प्रशासन संभालने में असफल रहा। गुजरात के अमीरों ने उसे पकड़ कर दिल्ली भिजवा दिया।[78] तदुपरान्त वहाउद्दीन कुरैशी को सद्र-उल-मुल्क की उपाधि प्रदान करके गुजरात भेजा गया।[79] उसने वहाँ जाकर गुजरात को दिल्ली से पृथक होने से बचा लिया। इसी प्रकार दक्षिण में आईन-उल-मुल्क ने देवगिरि के शासक रामदेव के दामाद हरपालदेव को दिल्ली से पृथक न होने दिया। जब आईन-उल-मुल्क को दिल्ली बुला लिया गया तो सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने स्वयं देवगिरि राज्य पर आक्रमण कर अप्रैल १३१७ ई० में उसे विजित कर सल्तनत में मिला लिया। वहाँ के शासक हरपाल देव को पकड़ लिया

गया और उसे मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार से देवगिरि राज्य का अन्त हुआ।[८०] इसके पश्चात् सुल्तान ने अपने प्रिय अमीर खुसरो खाँ को वारंगल भेजा। वहाँ के शासक प्रताप रुद्रदेव ने कई वर्षों से दिल्ली को कर नहीं भेजा था। खुसरो खान ने हिन्दू शासक को सन्धि करने व करद देने के लिए बाध्य किया।[८१] इसी समय सुल्तान ने मलिक यकलाखी को मावार का गवर्नर नियुक्त किया। उसने मावार पहुँचने पर विद्रोह कर दिया। इस पर सुल्तान ने खुसरो खाँ को विद्रोह दबाने के लिए भेजा। उसने मलिक यकलाखी के विद्रोह का दमन किया व उसे पकड़ कर दिल्ली भिजवाया।[८२] उसके बाद उसने मावार की ओर आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। मई में उसने मूट्ठपिला नामक शहर को विजित किया और मौसम ठीक न होने के कारण वह धन व हाथी लेकर वहाँ से वापस देवगिरि लौट आया। वह नुल्तान से नर्वदा नदी के तट पर मिला और उसके साथ ही दिल्ली वापस लौट आया।[८३] इस काल में देवगिरि को विजित किया जाना, वहाँ आईन-उल-मुल्क को गवर्नर नियुक्त करना तथा ताजुउलमुल्क को देवगिरि का अशरफ (राजस्व का हिसाब रखने वाला अधिकारी) नियुक्त करना, प्रमाणित करता है कि देवगिरि का विशाल राज्य व उसकी आय के सभी स्रोतों पर दिल्ली सल्तनत का अधिकार हो गया।[८४] यह इस काल की महान सफलता थी। सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी का जब ८ जुलाई १३२० ई० को बध हुआ तो उस समय तक सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल की तुलना में सल्तनत की सीमाओं में विस्तार हो चुका था। अब तक खिराज भुगतान करने वाले कुछ नवीन प्रदेश भी सल्तनत के अन्तर्गत आ चुके थे। किन्तु कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के वध ने साम्राज्य विस्तार की गति धीमी कर दी। जब खुसरो खान गद्दी पर बैठा तो उसे मलिक ग़ाजी तुग़लक के विरोध का सामना करना पड़ा और उसका अन्त लहरावत के युद्ध में पराजय के साथ हुआ।

तुग़लक शासकों का साम्राज्यवाद

खुसरो खाँ के पतन के उपरान्त ग़ाजी मलिक ने गयासुद्दीन तुगलक शाह की उपाधि धारणा कीं और अपने हाथों में प्रशासन की बागडोर लेकर तुग़लक वंश की स्थापना की। उसके सम्मुख सुल्तान अलाउद्दीन जैसे कुशल शासक का आदर्श था। वह इस बात से भली-भाँति अवगत था कि सल्तनत की सीमाएँ पिछले वर्षों में सिकुड़ चुकी थीं। सिंध पर सल्तनत का नामपात्र का प्रभाव था, गुजरात में प्रशासनिक कुव्यवस्था थी, बंगाल में बहादुरशाह स्वतन्त्र था, त्रिहुत व जामनगर हिन्दू राय व जमींदारों के हाथ में थे, उड़ीसा के शासक ने पश्चिम घाट तक अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ा लिया था। दक्षिण में केवल भूतपूर्व यादव राज्य को छोड़कर सभी हिन्दू शासक पुनः स्वतन्त्र हो चुके थे और उन्होंने दिल्ली को उपहार भेजना बन्द कर दिया था। सल्तनत के हाथ से समृद्धिशाली प्रदेश निकल जाने के कारण उसकी आय कम हो गई और उसके सम्मुख वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया। सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक ने एक ओर तो आर्थिक सुधार, जिनकी

चर्चा अन्यत्र की जावेगी, लागू किये तो दूसरी ओर सल्तनत की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए खिल्जी सम्राटों की आक्रामणात्मक नीति जारी रखी। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र उलुग़ खान, जो कि बाद में मुहम्मद तुग़लक के नाम से गद्दी पर बैठा, को दक्षिण पर आक्रमण करने व वारंगल का दुर्ग विजित कर प्रताप रुद्रदेव से करद की बकाया रकम को वसूल करने के लिए भेजा।[८५] उलुग़ खान ने दुर्ग विजित कर काकतीय राज्य को सल्तनत में मिला लिया एवं प्रताप रुद्र देव को उसके परिवार के साथ दिल्ली भेज दिया। किन्तु दिल्ली पहुँचने से पूर्व प्रताप रुद्रदेव की मृत्यु मार्ग में हो गई। उलुग़ खान ने तेलंगाना पर सल्तनत का प्रभुत्व बनाये रखने हेतु उसे अनेक प्रशासनिक इकाइयों में बाँटा। अभियान के इसी दौर में उसने जयलपी गंगयदेव नामक तेलगु सरदार के हाथों से गुट्टी विजित किया तथा उसके सेनानायक सलार अलवी ने राजमुन्दरी और पाण्ड्य राज्य विजित किया। इसी समय उलुग़ खान ने भानुदेव द्वितीय (१३०६-२८), जिसने की प्रताप रुद्रदेव की सहायता की थी और गोण्डवाना के ज़मीदारों से समझौता किया था, को पाठ पढ़ाने के लिए उड़ीसा पर आक्रमण किया। उसने राय भानुदेव को पराजित कर उससे अनेक हाथी छीन लिये। तत्पश्चात् वह वापस दिल्ली लौट गया।[८६] इसी काल में एक ओर तो सामाना के वली मलिक गर्शाप ने मंगोल नेता शेर मुग़ल के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश पर आक्रमण को विफल बनाया तो दूसरी ओर मलिक शादी गुजरात में विद्रोहियों द्वारा मारा गया। मलिक शादी की मृत्यु से विचलित न होते हुए सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक बंगाल की ओर बढ़ा।[८७] बंगाल की ओर बढ़ने का मुख्य उद्देश्य वहाँ के शासक ग़यासुद्दीन बहादुरशाह को अपने अधीनस्थ लाना तथा उसके भाइयों—नासिरुद्दीन व शिहाबुद्दीन, को उनके अधिकार दिलवाना था। जब वह त्रिहुत पहुँचा तो वहाँ के कुछ राय व ज़मींदारों ने उसके प्रति निष्ठा प्रकट की। त्रिहुत से सुल्तान ने बहरामखान को बहादुर के विरुद्ध भेजा। बहादुर पराजित हुआ। उसे बन्दी बनाकर सुल्तान के सम्मुख लाया गया एवं बन्दीगृह में डाल दिया गया। तत्पश्चात् सुल्तान ने नासिरुद्दीन को सतगाँव व सुनार गाँव देकर, उसे अधीनस्थ शासक बनाकर, तातार खाँ के अन्तर्गत रख दिया। इस प्रकार सुल्तान का प्रभुत्व बंगाल तक स्थापित हो गया।[८८] बंगाल अभियान से वापस आते समय उसने त्रिहुत को भी विजित कर लिया। त्रिहुत अभियान को पूर्ण करके वह राजधानी वापस आ ही रहा था कि अफग़ानपुर में ही वह आकस्मिक घटना का शिकार हो गया।[८९] उसके शासन काल के पाँच वर्षों (१३२०-२५) में निःसंदेह पूर्व व दक्षिण की ओर साम्राज्य का विस्तार हुआ और अनेक नवीन प्रदेश प्रशासन के अन्तर्गत आए जिससे कि आय के स्त्रोतों में वृद्धि हुई व प्रशासन का उत्तरदायित्व बढ़ा।

तुग़लक साम्राज्य में विद्रोह एवं विघटन

ग़यासुद्दीन तुग़लक की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र उलुग़ खान, जो कि सर्वगुण-सम्पन्न था, सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के नाम से सिंहासन पर

बैठा। उसके सिंहासनारोहण के साथ एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ। जिस साम्राज्यवाद का श्रीगणेश सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी के समय में हुआ था वह अपने चरमोत्कर्ष पर इस काल में पहुँचा और फिर पतन की क्रिया भी इसी काल के उत्तरार्ध में प्रारम्भ हो गई। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने गद्दी पर बैठने के बाद कलानूर व पेशावर पर आक्रमण कर उन्हें विजित किया (१३२८)। वह कुछ महीने लाहौर में रहा। वहाँ रुककर उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया।[६०] उसी वर्ष उसने दक्षिण में कोण्डना विजित किया।[६१] १३३७-३८ में उसने नगरकोट विजित किया।[६२] १३४५ ई० में उसने उत्तरी कोंकण विजित किया। किन्तु १३२५ से लेकर १३५१ ई० के मध्य विजयों की अपेक्षा विद्रोह की संख्या अधिक रही—१३२६ ई० में बहाउद्दीन गर्शाप, १३२७-२८ में बहराम ऐबा किशलू खान, १३३०-३१ में गयासुद्दीन बहादुर ने विद्रोह किए। १३३० में बरन में विद्रोह हुआ, १३३२-३४ में सेहवान में, १३३४ ई० में माबार में विद्रोह हुए। १३३३ में मसूद खान ने विद्रोह किया, १३३५-३६ ई० में हल्जून तथा हरिहारा बुक्का ने विद्रोह किया तथा इसी वर्ष वारंगल में विद्रोह हुआ। उसके बाद सुनाम व समाना में विद्रोह हुए व सैयद इब्राहीम ने विद्रोह किया। १३३८ ई० में निज़ाम मैन ने तथा फखरुद्दीन ने बंगाल में १३३८-३९ में, शिहाब सुल्तानी नुसरत खान ने १३३९-४० में, अलीशाह ने १३४०-४१ में, आईन-उल-मुल्क ने १३४१ में, शाह अफगान ने जनवरी १३४५ में दौलताबाद में, तथा १३४८-४९ में तार्ग़ी ने विद्रोह किया।[६३] उसकी विजयों तथा उसके समय के विद्रोहों का राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक महत्व है। इन विद्रोहों ने तुग़लक साम्राज्य की जड़ें खोखली कर दीं। दक्षिण में तुग़लक प्रशासन के प्रति इतनी वीभत्स प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई कि वहाँ १३३७ ई० में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना व १३४७ ई० में बहमनी साम्राज्य की स्थापना हुई तथा समस्त दक्षिण व सुदूर दक्षिण दिल्ली सल्तनत से पृथक् हो गया। दक्षिण की विजय व उसका हाथ से निकल जाना दोनों ही सल्तनत के लिए घातक सिद्ध हुए। साम्राज्य के विघटन के साथ-साथ सुल्तान की आय के साधन भी कम हो गये। रही-सही क़सर इन विद्रोहों ने पूरी कर दी। इससे पूर्व अभिजात वर्ग का इतना बड़ा भाग कभी भी शासक की नीतियों से असन्तुष्ट नहीं हुआ था जितना कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के काल में। उसका मुख्य कारण यह था कि अभिजात वर्ग में अनेक नये तत्वों को रखकर वह उसे व्यापक स्वरूप देना चाहता था। इन विद्रोही तत्वों से संघर्ष करते-करते ही वह रोगग्रस्त होकर परलोक सिधार गया (१३५१ ई०)।

दक्षिण व सुदूर दक्षिणी भारत के सल्तनत से पृथक होते ही भारतीय इतिहास एक नया मोड़ ले लेता है। यद्यपि बहमनी राज्य व विजयनगर साम्राज्य का उत्तरी भारत की राजनीति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया। किन्तु फिर भी आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण भारतवर्ष के सभी प्रदेश उसी तरह जुड़े रहे जिस प्रकार कि शरीर से आत्मा। आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास की दृष्टि से १३३७ ई० के पश्चात्

उन दो पृथक् राज्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग दृष्टिपात करना श्रेयस्कर होगा क्योंकि वे हिन्दू-मुस्लिम स्वतन्त्र राज्य मुख्य राष्ट्रीय धारा से परे होते हुए भी अपने को आर्थिक एवं सामाजिक मामलों में पृथक नहीं रख सके।

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक का उदार युग

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की जिस समय मृत्यु हुई उस समय सम्पूर्ण साम्राज्य में अशान्ति थी। दक्षिण व सुदूर दक्षिण एवं बंगाल ने पहले ही अधीनस्थता का जुआ उतार कर फेंक दिया था। सिंध भी लगभग सल्तनत के हाथ से निकल चुका था, क्योंकि वहाँ के जाम ने मंगोलों के नेता के साथ समझौता करके पंजाब व गुजरात की सीमाओं पर छापा मारना प्रारम्भ कर दिया था। उच्च में स्थानीय खूत व मुकद्दम विद्रोही हो गए। बिहार पहले ही हाथ से निकल चुका था। नए सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के हाथ में केवल मुल्तान, पंजाब, दिल्ली, दोआब, अवध, बिहार के कुछ भाग तथा मालवा व गुजरात के प्रान्त ही रह गये। उसने अपना पूरा समय राज्य की व्यवस्था करने में ही लगाया। उसने अपने शासनकाल के ३७ वर्षों में केवल १३ वर्ष, दो बार बंगाल पर, एक बार जाजनगर, एक बार नगरकोट, २ बार थट्टा पर आक्रमण करने में व्यतीत किये।[६४] यह आक्रमण तुग़लक साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण थे। कभी-कभी शासक की व्यक्तिगत उदारता ही उसके लिए श्राप बन जाती है। जिस प्रकार उसने दासों को प्रश्रय देकर उनके जीवन को सुधारने की चेष्टा की, वहीं दास उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे व सुल्तान निर्माता की भूमिका निभाने लगे। सुल्तान फिरोज़शाह ने अपने जीवन में अपने पुत्र मुहम्मदशाह को अगस्त १३८७ में गद्दी पर बिठा दिया।[६५] किन्तु उसके दासों ने मुहम्मदशाह को गद्दी पर से उतारने व दिवंगत फतह खाँ के पुत्र तुग़लक शाह को गद्दी पर बिठाने के लिये उसे बाध्य कर दिया।[६६]

दिल्ली सल्तनत का विघटन

फिरोज़शाह की मृत्यु के बाद उसके दास राजनीति पर पूरी तरह से हावी हो गये। इन्होंने तुग़लक शाह को सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक द्वितीय की उपाधि दी और कुछ महीनों उसे गद्दी पर बने रहने दिया। तत्पश्चात् उन्होंने उसे पदच्युत कर दिवंगत फिरोज़शाह के पौत्र आबू बक्र को गद्दी पर बिठाया।[६७] इस बीच दिवंगत सुल्तान का पुत्र मुहम्मद शाह जो कि दासों से घृणा करता था, उनके पतन के लिये प्रयास करता रहा। दासों के विरुद्ध एक अन्य दल ने मुहम्मद शाह से सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने उसे सामाना का प्रशासन देना और आबू बक्र शाह को गद्दी से हटाकर उसे गद्दी पर बिठाकर दासों के प्रभुत्व से राजनीति को मुक्त कराना चाहा। उनके इस दृष्टिकोण को देखकर मुहम्मदशाह नगरकोट से चलकर सामाना पहुँचा। उसने सामाना अधिकृत कर लिया। यहाँ उसने दूसरी बार अपना राज्याभिषेक करवाया। तदुपरान्त अनेक दासों व अमीरों ने सुल्तान आबू बक्र का साथ छोड़ दिया और वे उससे आकर

मिल गये। मुहम्मदशाह ने दिल्ली का सिंहासन अधिकृत करने के उद्देश्य से दोआब के अमीरों का समर्थन प्राप्त किया और दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। दिल्ली के समीप कन्दली में अगस्त १३८९ में सुल्तान आबूबक्र से युद्ध करते समय वह पराजित हुआ और जलेसर की ओर भाग गया। इसके बाद उसके पुत्र हुमायूं खान से सामाना की सेना लेकर दुबारा दिल्ली को अधिकृत करना चाहा किन्तु शाही सेना ने उसे पानीपत में पराजित कर दिया। अन्ततोगत्वा आबूबक्र का साथ फिरोजशाही दास मुबाशिर रजब, जिसकी पदवी इस्लाम खान थी, ने छोड़ दिया और उसने मुहम्मदशाह को राजधानी में प्रवेश करने के लिए ऐसे समय बुलाया जब कि सुल्तान आबूबक्र बाहर गया हुआ था। मुहम्मदशाह ने ३१ अगस्त १३९० को दिल्ली में प्रवेश किया। आबूबक्र दिल्ली छोड़कर मेवात के बहादुर नाहिर के पास चला गया और दिल्ली को मुहम्मद शाह के हाथों में छोड़ गया। मुहम्मदशाह ने फिरोज़शाही दासों को दिल्ली से निकाल दिया। तदुपरान्त उसने अपने पुत्र हुमायूँशाह को सामाना की सेना के साथ आबू बक्र पर आक्रमण करने के लिए भेजा। हुमायूँ शाह ने आबू बक्र को पराजित किया, उसे बन्दी बनाया और सितम्बर में उसे मार डाला। इस प्रकार गृहयुद्ध का अन्त हुआ।[९८]

तैमूर का आक्रमण

आबू बक्र के पतन के बाद मुहम्मदशाह ने तीसरी बार अपना राज्याभिषेक करवाया और सुल्तान नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह की उपाधि ग्रहण की।[९९] उसके शासन काल में इटावा के जमींदार हरसिंह तथा कन्नौज व डालमऊ के जमींदारों ने विद्रोह किए किन्तु सुल्तान ने उन सभी विद्रोहों को दबा दिया।[१००] तदुपरान्त जलेसर के समीप उसने नई राजधानी मुहम्मदाबाद स्थापित की। इस राजधानी को बनाते समय ही वह बीमार पड़ गया। उसके बीमार होने की सूचना पाते ही मेवात के ज़मींदार बहादुर नाहिर ने दिल्ली में महरौली तक का प्रदेश लूट लिया।[१०१] रोगग्रस्त सुल्तान उसके विरुद्ध बढ़ा और उसने उसे झिरका फिरोज़पुर की ओर भगा दिया। तदुपरान्त सुल्तान अपनी नई राजधानी लौट आया। इसी समय खोखरों ने शैखा खोखर के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया।[१०२] सुल्तान ने अपने पुत्र हुमायूँ खान को खोखरों के विद्रोह को दबाने के लिये भेजा। किन्तु अभी वह मार्ग ही में था कि उसे सुल्तान मुहम्मदशाह की मृत्यु की सूचना मिली। वह तत्काल मुहम्मदाबाद आया और सुल्तान अलाउद्दीन सिकन्दरशाह की पदवी ग्रहण कर वह गद्दी पर बैठ गया।[१०३] एक महीने पन्द्रह दिन तक शासन करने के बाद वह परलोक सिधार गया। तत्पश्चात् दो सप्ताह तक सल्तनत का सिंहासन खाली पड़ा रहा। अन्त में ख्वाजाजहाँ के परामर्श पर दिवंगत सुल्तान के पुत्र महमूद को सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की पदवी के साथ गद्दी पर बिठा दिया गया।[१०४] चूंकि इस समय जौनपुर व बिहार के हिन्दू ज़मींदार उपद्रव मचा रहे थे सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद अपने वज़ीर मलिक सरवर ख्वाजा जहां

को इन विद्रोहों को दबाने के लिये भेज दिया। कन्नौज से विहार तक की इक्ताएँ उसे प्रदान कर दी गईं। उसने इटावा, कोल तथा कन्नौज में हिन्दू विद्रोहियों का दमन किया तथा अवध, कन्नौज, सन्डीला, डालमऊ, वहराइच, विहार, त्रिहुत के प्रदेश अधिकृत किए। वहाँ के दुर्गों की मरम्मत करवाई और १३९४ ई० में जौनपुर राज्य की स्थापना की। जाजनगर व लखनौती के शासकों ने उसे सुल्तान माना और उन्होंने उसको करद भेजना प्रारम्भ किया।[१०५] लगभग इसी समय दन्दरौली के तोमर जमींदार वीरसिंहदेव ने ग्वालियर को अधिकृत करके वहाँ एक स्वतन्त्र तोमर राज्य की स्थापना की।[१०६] सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद जब ग्वालियर को वापस लेने के लिए दिल्ली छोड़ कर गया, तो उसके विरोधी अमीरों ने फतहखाँ के पुत्र नुसरत खाँ को मेवात से बुलाकर जनवरी १३९५ ई० में उसे सुल्तान नासिरुद्दीन नुसरतशाह की पदवी देकर फिरोजाबाद में गद्दी पर बिठा दिया।[१०७] उसके अन्तर्गत फिरोजाबाद, दोआब के कुछ भाग, दक्षिण-पूर्व दिल्ली, सम्भल, पानीपत, झाझर और रोहतक थे।[१०८] इसके विपरीत दिल्ली के सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के पास केवल दिल्ली से पालम गाँव तक ही प्रदेश रह गया।[१०९] दोनों सुल्तानों में संघर्ष होने लगा। दूसरी ओर दीपालपुर के शासक सारंगखान व मुल्तान के शासक खिज्रखान में १३९५ ई० में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। सारंगखान ने अपने भाई मल्लू इक़बाल खान की सहायता से मुल्तान छीन लिया और शैखा खोखर के प्रदेश भी छीन लिए। शैखा खोखर ईरान पहुँचा। उसने तैमूर से भारत पर आक्रमण करने का अनुरोध किया। उसने उसका पथ-प्रदर्शन किया और वह छोटे मार्ग से उसे लेकर हिन्दुस्तान की ओर बढ़ा। समरकन्द में कूच करने से पूर्व तैमूर ने अपने पौत्र पीर मुहम्मद जहाँगीर को सेना के अग्रिम दल के साथ हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए पहले ही भेज दिया था। पीर मुहम्मद ने नवम्बर १३९७ में सिंध नदी पार की और उच्च की घेराबन्दी की। दीपालपुर व मुल्तान के शासक सारंगखान की ओर से अली मलिक ने आक्रमणकारियों का मुकाबला एक माह तक किया। तदुपरान्त सारंग खान द्वारा ताजुद्दीन के नेतृत्व में भेजी गई सहायतार्थ सेना के आने पर अली मलिक ने पीर मुहम्मद के साथ व्यास नदी के किनारे युद्ध किया, जिसमें वे पराजित होकर भागे व नदी में डूब गए। ५ मई १३९८ को पीर मुहम्मद ने मुल्तान अधिकृत कर लिया, उसने सारंग खाँ को पराजित कर मार डाला। तत्पश्चात् १०,००० अश्वारोहियों की सेना लेकर तैमूर ने २४ सितम्बर १३९८ को सिन्ध नदी पार की। उसने तुलम्बा अधिकृत किया। पीर मुहम्मद की सेना उससे मुल्तान में मिली। आगे बढ़ते हुए अजोधन होते हुए वह भटनेर की ओर बढ़ा। वहाँ के राय ने उसकी आधीनता स्वीकार न की। फलत: भटनेर का दुर्ग जीतने तथा वहाँ के लोगों को मौत के घाट उतारने के बाद तैमूर सिरसौती, सामाना, कैथल होते हुए दिल्ली की ओर बढ़ा। मार्ग में वह हिन्दुओं व मुसलमानों को तलवार के घाट उतारता रहा। उसकी विजयी पताकाएँ दिल्ली पहुँचीं जहाँ उसने इक़बाल खान एवं सुल्तान नासिरुद्दीन की सेनाओं को पराजित किया। इक़बाल खाँ

वरन तथा सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद गुजरात की ओर भाग गए (७ दिसम्बर १३९८)। दिल्ली में तैमूर का नाम खुत्बा में पढ़ा गया। एक सप्ताह पश्चात् उसके सैनिक शहर में कुछ सामान क्रय करने के लिए गए। वहाँ कुछ लोगों ने उन्हें मार डाला। इससे क्रुद्ध होकर उसने नरसंहार की घोषणा कर दी। तीन दिन तक दिल्ली में रक्त की नदियाँ बहती रहीं और उसके सैनिक लूट-मार करते रहे। उन्हें लूटमार में अत्यधिक हीरे, जवाहरात, मोती, लाल, सोने के तन्के व सोने की ज़री के वस्त्र, रेशम के बहुमूल्य वस्त्र, सोने व चाँदी के अमूल्य आभूषण प्राप्त हुए। मेवात के ज़मींदार बहादुर नाहिर ने तैमूर की अधीनता स्वीकृत कर ली। तदुपरान्त तैमूर मेवात गया और वहाँ से मेरठ जहाँ इलियास अफगान तथा अहमद थानेश्वरी ने राय सफी नामक हिन्दू ज़मींदार की सहायता से उसका विरोध किया। ७ जनवरी १३९९ ई० को तैमूर ने मेरठ का दुर्ग जीत लिया। उसके बाद तैमूर ने स्वदेश वापस लौटना प्रारम्भ किया। उसे लौटते समय हिन्दुओं मुसलमानों के विरोध का सामना करना पड़ा। तुग़लकपुर, हरिद्वार, सिवालिक की पहाड़ियों में उसे संघर्ष करना पड़ा किन्तु वह बराबर विजयी रहा। उसने फरवरी १३९९ तक लगभग ८ दुर्ग विजित कर लिए। सिवालिक की पहाड़ियों व बीहड़ जंगलों से होता हुआ वह जम्मू पहुँचा और वहाँ से उसने २८ मार्च १३९९ को सिन्ध नदी पार की और समरकन्द पहुँच गया।[११०]

तैमूर के वीभत्स आक्रमण ने तुगलक वंश को समाप्त कर दिया। दिल्ली अब साम्राज्य की राजधानी न रही। उसके प्रस्थान के बाद, दिल्ली को नुसरत खाँ ने अपने अधीन कर लिया। किन्तु कुछ समय के बाद सुल्तान नासिरूद्दीन मुहम्मदशाह द्वितीय के वज़ीर मल्लू इक़बाल खान ने उसे वहाँ से भगा दिया। मल्लू इक़बाल खाँ ने दिल्ली का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया और दोआब के कुछ भाग पर अपनी प्रभुता स्थापित कर दी। इस समय तक दिल्ली सल्तनत छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। गुजरात में मुजफ्फरखान तथा मालवा में दिलावर खान ने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। कन्नौज, अवध, कड़ा, जौनपुर ख्वाजा जहाँ के अधिकार में रहे और उसने शर्की राज्य की स्थापना कर दी। लाहौर, दीपालपुर और मुल्तान खिज्र खाँ के हाथों में थे। सामाना ग़ालिब खान के अधिकार में था। बयाना में शम्सखाँ का राज्य था। कालपी व महोबा में महमूद खाँ स्वतन्त्र था। मल्लू इक़बाल खान ने नासिरुद्दीन महमूदशाह को मालवा से बुलाया और उसे पुनः दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया। किन्तु नासिरूद्दीन महमूद शाह उससे तंग आकर कन्नौज चला गया। वह वहाँ से मल्लू इक़बाल खान की मृत्यु के बाद ही १४०५ ई० में वापस लौटा। इस प्रकार सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद दिल्ली के सिंहासन पर १४०५ ई० से १४१२ तक रहा। १४१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।[१११] फिरोजशाह तुग़लक की मृत्यु के उपरान्त फिरोजशाही दासों द्वारा राजनीति में हस्तक्षेप करने के कारण, हिन्दू ज़मींदारों के विद्रोहों के कारण तथा तैमूर के आक्रमण के परिणामस्वरूप तुग़लक साम्राज्य न केवल छिन्न-भिन्न हो गया वरन् आर्थिक

दृष्टि से क्षीण हो गया। उसके आय के स्रोत स्वतन्त्र एवं अर्ध-स्वतन्त्र शक्तियों के मध्य विभाजित हो गये। प्रादेशिक शक्तियों के उद्भव के कारण दिल्ली सल्तनत का इतिहास साम्राज्य बनाम साम्राज्य-विरोधी शक्तियों के मध्य संघर्ष तथा केन्द्रीयकरण बनाम विकेन्द्रीयकरण का इतिहास हो गया।

तुग़लक वंश के अन्तिम शासक सुल्तान महमूद की मृत्यु अक्टूबर १४१२ में हुई। सभी अमीरों ने दौलत खान लोदी के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की और उसे सुल्तान मान लिया। किन्तु नवम्बर में खिज्रखान ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी व दौलत खान लोदी को वन्दी बना कर हिसार फिरोजा भेज दिया। मई १४१४ में उसने दिल्ली को अपने अधिकार में लेकर सैयद वंश की स्थापना की और स्वयं सुल्तान के रूप में शासन करना प्रारम्भ किया।[११२] उसने अपने शासनकाल के ७ वर्ष विद्रोहों को दवाने में ही व्यतीत किए। इस समय कटेहर, बदायूँ, इटावा, पटियाली, व्याना, कम्पील, चन्दवार, नागौर तथा मेवात में ही विद्रोह हो रहे थे। इस काल में अर्ध-स्वतन्त्र स्थानीय शासकों का एक नवीन वर्ग इस प्रदेश में उत्पन्न हो गया। यह वर्ग सल्तनत के विरुद्ध था। न तो यह वर्ग सल्तनत को कर देना चाहता था। न ही उसके प्रति निष्ठा प्रकट करना चाहता था। खिज्र खाँ ने अपने वजीर मलिक उल-शर्क ताजुल-मुल्क को कटेहर में विद्रोह दवाने के लिये भेजा। ताजुल उल-मुल्क के आगे बढ़ते ही राय हरसिंह अनोला भाग गया। किन्तु ताजुल मुल्क ने उसे करद देने पर विवश किया। इसी समय बदायूँ के ज़मींदार महावत खान ने भी वजीर के प्रति निष्ठा प्रकट की। इसी अभियान के दौर में ताजुलमुल्क ने खोर, कम्पील, ग्वालियर, सिमोर व चन्दवार के जमींदारों ने न केवल करद वसूल किया वरन् जलेसर चन्दवार के राजपूत ज़मींदारों के हाथ से ले लिया। उसके वाद वह दिल्ली लौट आया।[११३]

अगले वर्ष १४१५-१६ ई० में खिज्रखाँ ने अपने पुत्र मुबारक को उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों को सुव्यवस्थित करने के लिए भेजा। मुबारक ने फिरोजपुर, सरहिन्द व सामाना की व्यवस्था की। उसने मलिक साधु नदीरा को सरहिन्द में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। १ जून १४१६ में वैरम खाँ के परिवार के सदस्यों ने विद्रोह किया व साधु नदीरा को मार डाला और सरहिन्द अधिकृत कर लिया। इस पर खिज्र-खाँ ने मलिक दाउद व जीरक खान को उनके विरुद्ध भेजा। उनके आगे वढ़ते ही विद्रोही भाग खड़े हुए। सामाना के जीरक खान ने १४१७-१८ में विद्रोहियों के प्रश्रयदाता तुग़लक राय को वाध्य किया कि वह दण्डराशि दे, विद्रोही तुर्कबच्चों को जिन्होंने की मलिक साधु का वध कर दिया था, उन्हें अपने प्रदेश से निकाल दे तथा अपने पुत्र दरवार में वन्धक के रूप में भेज दे। इस प्रकार से पश्चिमी प्रदेश की समस्या जीरक खान ने हल कर दी। लगभग इसी समय १४१६-१७ में खिज्र खान ने ताजुलमुल्क को व्याना व ग्वालियर में विद्रोही तत्वों को दवाने के लिए भेजा।

शम्स खान औहदी का भाई मलिक कमालउद्दीन ताजुल मुल्क के पास आया और उसने सुल्तान के प्रति निष्ठा प्रकट की। उसके बाद ताजुल मुल्क ग्वालियर पहुँचा। उसने शहर को लूटा तथा वहाँ के राय तथा अन्य ज़मींदारों से धन वसूल किया। इसी प्रकार वह कम्पील व पटियाली भी गया और कटेहर में उसने राय हरसिंह को निष्ठा प्रकट करने के लिए बाध्य किया। उसके बाद वह दिल्ली लौट गया।

अगस्त-सितम्बर १४१६ में गुजरात के शासक सुल्तान अहमद शाह ने नागौर पर आक्रमण किया। खिज्र खाँ नागौर की ओर बढ़ा। इस पर सुल्तान अहमद धार की ओर चला गया। तत्पश्चात् खिज्र खान ने झैन के अमीर इलियास खान को अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इसके बाद खिज्रखाँ ने ग्वालियर से कर वसूल किया तथा वह ब्याना की ओर बढ़ा। ब्याना के शाम्सखाँ औहदी ने कर व करद का भुगतान किया। उसके व्यवहार से सन्तुष्ट होकर खिज्र खाँ दिल्ली लौट गया।

कटेहर में राय हरसिंह ने १४१५-१८ ई० में विद्रोह कर दिया। खिज्र खान ने पुनः ताजुलमुल्क को उसके विरुद्ध भेजा। हरसिंह ने कटेहर को विध्वंस कर दिया व अनोला के जंगलों में शरण ले ली। उसके बाद वह कुमायूँ की पहाड़ियों में भाग गया। ताजुलमुल्क ने कटेहर से अत्यधिक धन एकत्र किया। उसके बाद वह बदायूँ व इटावा भी गया। इटावा के राय साबिर ने करद देने का आश्वासन दिया। जून १४१८ में ताजुलमुल्क दिल्ली वापस लौट गया। ताजुलमुल्क के पीठ फेरते ही कटेहर में राय हरसिंह वापस लौट आया और उपद्रव करने लगा। इस पर खिज्र खाँ स्वयं कटेहर की ओर बढ़ा। उसने कोल के ज़मीदारों को दण्ड दिया तथा राहिब के जंगलों के जमींदारों व सम्भल के ज़मींदारों को दबाया। उसके बाद वह बदायूँ गया। जहाँ महाबत खान ने उसका सामना किया। अन्त में खिज्र खाँ दिल्ली वापस लौट गया। इसके बाद इटावा के ज़मींदार ने विद्रोह किया। १४२० में ताजुलमुल्क पुनः उस ओर बढ़ा। उसने कोल एवं बरन के ज़मीदारों को दबाया। उसके बाद वह इटावा पहुँचा और उसने राय साबिर को करद देने के लिए बाध्य किया। उसके बाद उसने चन्दवार को लूटा व कटेहर में राय हरसिंह से धन वसूल किया। जुलाई १४२० में तुग़ान खान ने विद्रोह किया। उसने सरहिन्द के दुर्ग की घेराबन्दी की तथा पायल व मन्सूरपुर के मध्य प्रदेश को लूटा। खिज्र खाँ ने मलिक खैरुद्दीन को विद्रोह दबाने के लिए भेजा। तुग़ान खाँ ने भाग कर जसरथ खोखर के यहाँ शरण ली। उसकी इक्ता ज़ीरक खाँ ने अधिकृत कर ली। १४२१ ई० में खिज्र खाँ मेवात की ओर बढ़ा। उसने कोटला का दुर्ग ध्वस्त कर दिया। उसके बाद ग्वालियर की ओर बढ़ा। उसने वहाँ के राय को करद देने के लिए बाध्य किया और इस अभियान का समापन करके वह दिल्ली लौट ही रहा था कि २० मार्च १४२१ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।[११४]

वास्तव में खिज्र खाँ के सम्मुख प्रमुख समस्या करद वसूल करने की थी। इसलिए उसने तलवार की नोक पर कर वसूल किया। दिल्ली सल्तनत द्वारा खोए हुए

प्रदेश के विजित करने की उसकी कोई नीति नहीं थी। क्योंकि वह उसके परिणाम जानता था। उसके उत्तराधिकारी मुबारकशाह (१४२१-१४४३) को ग्यारह वर्ष तक हिन्दू व मुसलमान ज़मींदारों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। वह गद्दी पर बैठा ही था कि जसरथ खोखर ने विद्रोह कर दिया। उसका विद्रोह जुलाई-अगस्त १४२१ ई० में प्रारम्भ हुआ व जनवरी १४२२ ई० तक चला। उसने अप्रैल-मार्च १४२२ में पुनः विद्रोह किया। उसके बाद अगस्त-सितम्बर १४२८ ई० में और फिर नवम्बर-दिसम्बर १४३१ ई० में पुनः विद्रोह किया। दिसम्बर-जनवरी १४२२-२३ में कटेहर व कम्पील में विद्रोह हुए। मेवात में भी बराबर विद्रोह होते रहे। यही हाल ब्याना व ग्वालियर के शासकों का था। मुबारक शाह व उसके अमीरों को पंजाब, दोआब व मेवात में फँसा हुआ देखकर जौनपुर के शर्की राज्य के शासक इब्राहीम शाह शर्की के भी पर लग गए। उसने भूगाँव व बदायूं तक के प्रदेश को लूटा। इस प्रकार मुबारक शाह का सारा समय विद्रोहों को ही दबाने में व्यतीत हुआ। १९ फरवरी १४३४ को उसका वध हुआ और अमीरों ने उसके दत्तक पुत्र मुहम्मद शाह को गद्दी पर बिठा दिया। उसके शासन काल में एक ओर तो अमीरों के मध्य दलबन्दी थी तो दूसरी ओर अमीरों का एक गुट मुहम्मद शाह की जान के पीछे पड़ा हुआ था। केन्द्रीय कुशासन की दुर्दशा का पूरा लाभ उठाते हुए सुल्तान के लंगाओं ने भी सिर उठा लिया। जसरथ खोखर पहले से ही विद्रोही था। जौनपुर के शर्की राज्य के शासक सुल्तान इब्राहीम शर्की ने भी सल्तनत के कुछ परगने दबा लिए और ग्वालियर के राय ने करद भेजना बन्द कर दिया। ऐसी संकटकालीन स्थिति में दिल्ली के अमीरों व उल्माओं ने, मालवा के शासक महमूद खिलजी को निमन्त्रित किया। सुल्तान महमूद खिलजी तत्काल दिल्ली के समीप पहुँचा और उसने वहीं पड़ाव डाल दिया। इस पर सुल्तान महमूद शाह ने बहलोल लोदी को उसके सैनिकों के साथ अपनी सहायता के लिए समाना से दिल्ली बुला लिया। दूसरे दिन मुहम्मद शाह ने मालवा के शासक महमूद खिलजी के पास सन्धि प्रस्ताव भेजा, जो कि उसने स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् महमूद खिलजी मालवा जाने को तैयार हो गया। वह अभी मार्ग में ही था कि बहलोल ने उसका पीछा किया, उसकी सेना के पार्श्व को लूटा। मुहम्मद शाह बहलोल के कार्य से बहुत ही प्रसन्न हुआ। १४४१ ई० में वह समाना गया और उसने बहलोल लोदी को दीपालपुर व लाहौर प्रदान कर दिए और उसे आदेश दिया कि वह जसरथ खोखर को दबा दे। जसरथ खोखर ने उससे सन्धि कर ली और उसे दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहियाँ करने के लिए उकसाया। इस पर बहलोल ने पानीपत तक के प्रदेश को रौंद डाला व दिल्ली को अधिकृत करने का प्रयास भी किया। किन्तु जब उसे दिल्ली को अधिकृत करने में सफलता न मिली तो सरहिन्द में उसने विद्रोह कर दिया। मुहम्मद शाह उसके विद्रोह को बिना दबाए हुए ही १४४५ ई० में परलोक चल बसा।[११४] उसके बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन आलमशाह गद्दी पर बैठा, किन्तु दिल्ली की राजनीति से तंग आकर बदायूं चला गया। दिल्ली में उसका

वजीर हुसाम खान ही प्रशासन की देखभाल करता रहा। अन्त में दिल्ली की जनता ने बहलोल लोदी को गद्दी पर बिठाने के लिए बुलाया। सुल्तान अलाउद्दीन ने कोई भी आपत्ति प्रकट न की और वह मृत्युपर्यन्त बदायूँ में ही १४७६ ई० तक रहा।

बहलोल लोदी दिल्ली पहुँचा। वह १६ अप्रैल १४५१ ई० को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।[११६] इस समय सल्तनत की सीमाएँ केवल दिल्ली से पालम गाँव तक ही रह गई थी। उसकी मुख्य समस्याएँ दिल्ली सल्तनत द्वारा खोए हुए प्रदेशों को विजित करना, हिन्दू-मुस्लिम जमींदारों की शक्ति को कुचलना, उनसे कर व राजस्व वसूल करना तथा जौनपुर के शर्की राज्य से दिल्ली की रक्षा करनी थी। पहले उसने पंजाब की ओर ध्यान दिया। उसने वहाँ अपनी प्रभुता स्थापित की। उसके बाद उसने सुल्तान महमूद शाह शर्की के विरुद्ध आक्रामक नीति अपनाकर उसे पराजित करके पीछे हटने पर विवश किया। लेकिन शर्कियों के साथ उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। उसने बड़ी सफलतापूर्वक मेवात के ज़मींदार अहमद खाँ, सम्भल के हाकिम दरिया खाँ लोदी, कोल के गर्वनर ईसा खान तथा साकेत, कम्पील, पटियाली, भूगाँव, राप्री, इटावा के जमींदारों को उसकी अधीनता स्वीकार करने व कर देने पर विवश कर दिया। नव स्थापित प्रथम अफगान साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक था कि वह अर्ध-स्वतन्त्र व स्वतन्त्र राज्यों के विरुद्ध भी कठोर दृष्टिकोण अपनाए। १४६८-६९ ई० में जब मुल्तान में कुतुबुद्दीन लंगा की मृत्यु हो गई तो वह मुल्तान को अधिकृत करने के लिए बढ़ा किन्तु जब मार्ग में उसे मालूम हुआ कि जौनपुर का शासक सुल्तान हुसैन शर्की दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए बढ़ रहा है तो वह वापस लौट गया। उसने चन्दवार के समीप उसे पराजित किया, लेकिन हुसैन शर्की की दृष्टि बराबर दिल्ली पर लगी रही। बारम्बार पराजित होने पर भी वह लोदी सुल्तान के विरुद्ध युद्ध करता रहा। अन्ततोगत्वा बहलोल ने इटावा से उसके भाई इब्राहिम खाँ को निकाल दिया और हुसैन शाह शर्की को पराजित करके उसे बिहार की ओर भगा कर जौनपुर बरबक शाह को दे दिया। शर्की राज्य को नष्ट करके उसने कालपी को अधिकृत कर वहाँ शर्की प्रभाव समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् उसने धोलपुर व बारी के ज़मीदारों पर भी अपनी प्रभुता स्थापित कर दी। मालवा के शासक को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से उसने मालवा पर आक्रमण किया किन्तु उसे अपनी जान बचाकर वहाँ से भागना पड़ा। १४८५ ई० में उसने अपने पुत्र निज़ाम खाँ को दिल्ली के पश्चिम में स्थित कई सरकारों, सरहिन्द, हिसार फिरोज़, सम्भल, लाहौर व दीपालपुर के मुक्ता तातार खाँ युसुफखैल के विरुद्ध भेजा। निज़ाम खान ने उसे पराजित करके मार डाला। इस प्रकार इन सरकारों पर बहलोल का प्रभुत्व स्थापित हो गया। १४८८ ई० में बहलोल हिसार फिरोज़ा, ग्वालियर व इटावा की ओर गया। ग्वालियर के शासक राय मानसिंह तंवर ने उसे ८० लाख टंके दिए। उसने इटावा से सकत सिंह को हटा कर इटावा राय दादू को दे दिया। जब वह दिल्ली वापस लौट रहा था तो मार्ग में

वह रोगग्रस्त हो गया और जुलाई १४८९ ई० को मिलौली नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हो गयी। संक्षेप में वहलोल लोदी के शासन काल में एक बार फिर दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार पूर्व की ओर विहार तक व पश्चिम में दीपालपुर तक हुआ। उसने ज़मींदारों को शक्तिहीन बना दिया। फलतः साम्राज्य में पहले की तुलना में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित हुई।[११७]

सुल्तान सिकन्दर लोदी १६ जुलाई १४८९ को गद्दी पर बैठा। इस समय साम्राज्य के विभिन्न भाग इक्तादारों, ज़मींदारों व अर्ध-स्वतन्त्र शासकों के हाथों में थे। वहलोल लोदी के दो अन्य पुत्र बरवक्त शाह तथा आज़म हुमायूँ उसके प्रतिद्वन्दी थे और अफगान अमीरों में से अनेक उनके समर्थक थे। सर्वप्रथम सिकन्दर लोदी ने उसकी ओर ही ध्यान दिया। वह रापरी की ओर बढ़ा, जहाँ उसका भाई आलम खान लोदी आजम हुमायूँ के पक्ष में हो गया था। उसने रापरी का दुर्ग विजित कर लिया। आलम खाँ लोदी भागकर पटियाली पहुँचा और उसने ईसा खाँ के अन्तर्गत शरण ली। तत्पश्चात् सिकन्दर लोदी इटावा की ओर बढ़ा और उसने समस्त प्रदेश अधिकृत कर लिया। अन्त से आलम खान लोदी ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इसी समय उसने ईसा खाँ को युद्ध में पराजित किया और पटियाली को अधिकृत कर लिया। वह बरवक शाह के विरुद्ध भी बढ़ा और उसे पराजित कर जौनपुर के सिंहासन पर पुनः बिठा दिया। तदुपरान्त वह आज़म हुमायूँ के विरुद्ध बढा और उसने उसे पराजित करके कालपी अपने अधिकार में ले लिया। इसी प्रकार उसने जैथरा के गर्वनर तातार खाँ लोदी व व्याना के शासक सुल्तान अशरफ को भी व्याना का दुर्ग सर्मपित करने के लिए बाध्य किया। इस अभियान को समाप्त कर वह दिल्ली पहुँचा ही था कि उसे उसे ज्ञात हुआ कि जोगा के नेतृत्व में बचघोटी राजपूतों ने जौनपुर पर आक्रमण कर दिया है। बरवक शाह भयभीत होकर जौनपुर छोड़कर दरियाबाद चला गया, जहाँ उसने काला पहाड़ के अन्तर्गत शरण ले ली। तदुपरान्त सिकन्दर लोदी जौनपुर की ओर बढ़ा। जोगा मैदान छोड़कर भाग गया। सिकन्दर लोदी ने बरवक शाह को पुनः जौनपुर दे दिया और उसके बाद हुसैन शाह शर्की को पराजित कर उसे बिहार की ओर भगा दिया। कुछ समय बाद जौनपुर के जमींदारों ने बरवक शाह को वहाँ से भगा दिया। यह सुनकर सिकन्दर ने काला पहाड़ व आज़म हुमायूँ सरवानी को आदेश दिया कि वे जौनपुर जाकर बरवक शाह को पकड़ ले। स्वयं उसने चुनार पर आक्रमण किया, किन्तु वह दुर्ग न विजित कर सका। चुनार से वापस लौटते समय उसने रीवां के राय भीउ को आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उसके बाद उसने १४९४ ई० में राय भीउ के पुत्र वीर सिंह को पराजित किया, ताकि वह शर्की शासक की सहायता न कर सके।

जैसे ही सिकन्दर लोदी इस अभियान को समाप्त करके दिल्ली वापस लौटा वैसे ही जौनपुर के भूतपूर्व शासक हुसैन शर्की ने जौनपुर को अपने अधिकार में लेने

का प्रयास किया। किन्तु सिकन्दर लोदी ने उसे युद्ध में पराजित करके पुनः बिहार बंगाल की ओर भगा दिया। इसी समय बंगाल के शासक सुल्तान अलाउद्दीन के साथ सिकन्दर लोदी का एक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत उसे बिहार, तिहुत, सारन तथा अन्य प्रदेश जो कि उसने विजित किये थे मिल गए। बंगाल से लौटते समय उसने बान्धोगढ़ के दुर्ग को विजित करने का असफल प्रयास किया। १५०१ ई० में उसने अलेपुर विजित किया और उसके बाद वह ग्वालियर की ओर बढ़ा। अन्त में ग्वालियर के शासक ने सन्धि कर ली। १५०४ ई० में उसने मण्डरैल पर आक्रमण किया और उसे नष्ट कर दिया। दो वर्ष पश्चात् उसने ग्वालियर पर पुनः आक्रमण किया और उस दुर्ग को विजित कर लिया। तदुपरान्त अप्रैल १५०८ ई० में उसने हथकन्त पर आक्रमण किया और वहाँ से भदौरिया राजपूतों को नियन्त्रित करने के लिए सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं। लगभग इसी समय मालवा की आन्तरिक दशा बिगड़ गई। सिकन्दर लोदी ने मालवा को विजित करना चाहा। किन्तु वह केवल चन्देरी का दुर्ग विजित कर सका। १५०७ ई० में उसने रणथम्भौर के दुर्ग को भी विजित करने का प्रयास किया, किन्तु उसे सफलता न मिली। २१ नवम्बर १५१७ को वह परलोक सिधार गया। निःसन्देह सिकन्दर लोदी का शासन काल महत्वपूर्ण था, क्योंकि इस काल में लोदी साम्राज्य की सीमाएँ पूर्व में बंगाल तक, पश्चिम में ग्वालियर, चन्देरी, रणथम्भौर तथा उत्तर-पश्चिम में दीपालपुर तक पहुँच गयी थी। सल्तनत की खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः वापस आ गई।[१८]

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। अमीरों ने यह साम्राज्य उसके व उसके छोटे भाई जलाल खाँ के मध्य विभाजित कर दिया। किन्तु इब्राहीम ने जलाल की शक्ति को कुचल कर रख दिया। जलाल के कारण वह अमीरों से अच्छे सम्बन्ध न बनाए रख सका। उसने अमीरों को दण्ड देना प्रारम्भ किया, जिससे अनेक अमीर उससे पृथक हो गए व उसके पतन की कामना करने लगे। उसके भाई आलम खाँ लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। अन्ततोगत्वा बाबर ने काबुल से प्रस्थान किया व इब्राहिम लोदी को १२ अप्रैल १५२६ को पानीपत के मैदान में पराजित कर लोदी वंश का अन्त कर दिया तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना कर दी।[१९]

१२०६ ई० से १५२६ ई० तक के मध्य उत्तरी भारत के इतिहास के सर्वेक्षण से पता चलता है कि इस काल में यहाँ आनुवंशिक परिवर्तनों, मंगोल आक्रमणों, आन्तरिक विद्रोहों, शासकों की अयोग्यता, शासकों व अमीरों के मध्य संघर्ष के कारण बराबर राजनीतिक अस्थिरता रही। जिसके कारण सल्तनत की सीमाएँ निरन्तर बदलती रहीं। यदि सल्तनत की सीमाओं का विस्तार हुआ भी तो भी ऐसे अनेक प्रदेश रह गए जिस पर कि केन्द्रीय सत्ता का कोई अधिकार उन पर था ही नहीं। इस संक्रात्मक काल में राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए।

पुरातन व नूतन व्यवस्था में जब सभी स्तरों पर संघर्ष होता है तो एक नवीन व्यवस्था स्वतः जन्म लेती है। १२०६ ई० से पूर्व की राजनीतिक, समाज, अर्थव्यवस्था सभी कुछ प्रधानतः पुरातन व्यवस्था पर ही आधारित था। किन्तु १२०६ के पश्चात् जब धीरे-धीरे राजपूतों की शक्ति का ह्रास हुआ और शासक वर्ग केन्द्र व बड़ी-बड़ी इक्ताओं में प्रधानतः मुसलमानों द्वारा संरचित हो गया तो अन्य व्यवस्थाओं में भी समसामयिक परिवर्तन होना प्राकृतिक एवं स्वाभाविक बात हो गयी। १२०६ ई० क पश्चात् का इतिहास आन्तरिक एवं बाह्य चुनौतियों का इतिहास कहा जा सकता है। इससे पूर्व काल की व्यवस्था की यदि १२०६ से १५२६ ई० तक की व्यवस्था से तुलना की जाय तो हर क्षेत्र में परिवर्तन के चिन्ह स्वतः दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्रस्तुत अध्यायों में इसी परिवर्तन की विवेचना की गई है। ऐसा करते समय उत्तरी भारत में उपजने वाली मुख्य प्रवृत्तियों व उसके प्रभाव में होने वाले परिवर्तनों का भी मुख्य रूप से ध्यान रखा गया है।



२

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज

भारतवर्ष की यह पुरानी परम्परा थी कि जो भी विदेशी यहाँ आए उसे यहाँ बसने दिया और उन्हें अपना-अपना व्यवसाय करने दिया जाय। मौर्य काल में एक पृथक विभाग था जिसका मुख्य कार्य विदेशियों की देख-रेख करना, उन्हें प्रश्रय प्रदान करना एवं जीविका उपार्जन के साधनों से परिचित कराना था अथवा व्यवसाय प्राप्त करने में उनकी सहायता करना था। भारतीयों ने विदेशी तत्वों का सदैव आतिथ्य सत्कार किया, उनके प्रति उदारता दिखाई। परिणामस्वरूप शनैः-शनैः यह विदेशी तत्व भारतीय समाज में घुल-मिल ही नहीं गये वरन् उनमें पूर्ण रूप से सन्निहित हो गये।

इस्लाम के अभ्युदय के साथ ही जब अरब जातियाँ एवं कबीलों की एकता स्थापित हुई पहले की तुलना में अब इस्लाम धर्म ग्रहण करने के बाद इनमें नवीन चेतना उत्पन्न हुई। अब मुसलमान अरब सौदागरों में ईरानी समुद्री व्यापार में प्रवेश किया और उनके जहाज भारतीय समुद्रों में प्रविष्ट होकर पूर्वी व पश्चिमी तट के बन्दरगाहों पर आने लगे। वे या तो सिन्ध नदी के मुहाने या खम्भात की खाड़ी से पश्चिमी तट के किनारे-किनारे होते हुए मालाबार तक पहुँचने लगे। दूसरी ओर उमर की खिलाफत के समय बहारैन व ओमान के गवर्नर उस्मान शकीफी ने एक मुसलमान नौसैनिक टुकड़ी को ६३६ ई० में बम्बई के समीप स्थित थाना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। किन्तु खलीफा ने उस्मान शकीफी के इस कार्य की भर्त्सना की और उसे निर्देश दिया कि भविष्य में ऐसा जोखिम न उठाएँ।[1] लगभग उसी समय भड़ौच तथा दाब्रुल को भी अभियान भेजे गये।[2] उमर के विरोध के कारण इस प्रकार की सैनिक कार्यवाहियाँ थोड़े समय के लिए स्थगित कर दी गईं। इसी बीच भारतवर्ष में प्रवेश करने के लिए जल-थल मार्ग ढूंढ़े गये और उन मार्गों से भारत के साथ व्यापार होता रहा। शनैः-शनैः अरब व्यापारियों ने दक्षिण में मालाबार तट पर अपनी बस्तियाँ बसा लीं और वे स्थानीय जनता के साथ घुल-मिल गए।[3] तदुपरान्त ७१०-११ ई० में ईराक के हुज्जाम ने सिंध के शासक राजा दाहिर को दण्ड देने के लिए मुहम्मद क़ासिम को विशाल सेना के साथ भेजा। अब तक अनेक अरब भारत के पश्चिमी तट पर बस चुके थे। कोंकण में विवाह करने के कारण वे नवायत, कन्या-कुमारी में शादी करने के कारण वे लब्बे तथा मालाबार में स्थानीय स्त्रियों से विवाह

करने के कारण वे मोपला कहलाये। मुहम्मद क़ासिम द्वारा सिंध विजित किए जाने के साथ ही साथ सिंध में अरबों की बस्तियाँ मुल्तान, कन्दबेल, महफ़ूजा में बसी। उसी समय अरब नौसेनाओं ने भड़ौच व काठियावाड़ तट पर स्थित बन्दरगाहों पर आक्रमण किए। अगले २०० वर्षों में दक्षिण में अरब व्यापारियों के निरन्तर आगमन के कारण मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होती रही। अल मसूदी जो कि भारतवर्ष ९१६ ई० में आया लिखता है कि उसे चौल में १०,००० से अधिक सिराफ, ओमन, बसरा, बगदाद के मुसलमान मिले तथा इसके अतिरिक्त हजारों मुसलमान ऐसे थे जो कि अरबों की संततियाँ थी।[४]

इसी प्रकार से भारत के पूर्वी तट पर भी अनेक मुसलमान व्यापारी आकर बसे। अब चीन तक की समुद्री यात्रा के मार्ग में पूर्वी तट पड़ने के कारण अनेक अरब व्यापारियों ने ६वीं शताब्दी में बसना प्रारम्भ कर दिया था। सर्वप्रथम वे तिन्नेवली जिले में स्थित कपालपटनम में बसे जहाँ भारतीय स्त्रियों से उनकी सन्ततियाँ लब्बे के नाम से प्रसिद्ध हुई। नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सैय्यद नथाड वली ने त्रिचनापल्ली में इस्लाम धर्म का प्रचार किया। मदुरा में मलिक उल मुल्क ने सन्त हजरत अलियार शाह साहब के साथ १०५० ई० में प्रवेश किया। पूर्वी तट के शासकों ने मुसलमानों के साथ अच्छा व्यवहार किया। उन्होंने उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता, हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन करने, कब्र बनाने, मस्जिद का निर्माण करने व भारतीय स्त्रियों से विवाह करने व धर्म प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की।[५]

सुल्तान महमूद गजनी के आक्रमणों के प्रारम्भ होने से बहुत पूर्व मुसलमानों ने इस देश में आकर स्थायी रूप से बसना प्रारम्भ कर दिया था। इब्न आसीर के अनुसार अनेक मुसलमान बनारस व उसके समीपवर्ती स्थानों में सुबुक्तगीन के समय में ही आकर बस चुके थे। इस्लाम के प्रति निष्ठावान बने रहे और अपने व्यवसाय में तथा प्रार्थनाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक लगे रहे। एक लामा इतिहासकार तारानाथ ने भी इब्न असीर के कथन की पुष्टि करते हुए कहा कि गंगा यमुना दोआब अथवा अन्तर्वेदी में तुर्कों की बस्तियाँ ११वीं शताब्दी में थी।[७] बहराइच में सैय्यद सालार मसूद ग़ाज़ी, जो कि सुल्तान महमूद की सेना का एक योद्धा था, की दरगाह बनी हुई है। उसकी कब्र से पता लगता है कि इस प्रदेश में मुसलमान गज़नी आक्रमण के समय से पूर्व या उसके बाद यहाँ आकर बस चुके थे। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से मालूम होता है कि ग़ोरियों द्वारा भारत पर आक्रमण करने से पूर्व कन्नौज में मुसलमान बस्ती थी और मुसलमान बदायूँ में भी जाकर बस चुके थे। मशरिकुल अनवर के लेखक रज़ीउद्दीन शग़ानी का जन्म बदायूँ में ही तराईन की दूसरी लड़ाई से पूर्व हुआ था। तारानाथ के अनुसार लव सेन व उसके उत्तराधिकारियों के समय उद्दत्तपुरी व विक्रमशिला पर तुर्कों के आक्रमण के बहुत पूर्व तुर्कों की संख्या मगध में बहुत बढ़ चुकी थी।[८] पटना जिले में स्थित मनेर के एक पारम्परिक इतिहास के अनुसार तुर्क वहाँ बस चुके थे।[९]

मनेर ही में ११२४ ई० का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार गोविन्द चन्द्र गहदालवा नामक शासक ने एक ब्राह्मण को मनियारी पट्टाला में भूमि अनुदान देते हुए अपने अधिकारियों को आदेश दिए कि तुम लोग उसे भूराजस्व के अतिरिक्त अन्य कर जिसमें कि तुरकुषदण्ड भी सम्मिलित है, लेते रहोगे। चूंकि अब तक गहदावला राज्य में तुर्क अब तक बस चुके थे अतएव उनसे तुरकुषदण्ड नामक कर लिया जाता था, ताकि वे इस देश पर आक्रमण न करे या उनके आक्रमणों को रोकने की व्यवस्था करने के लिए यह कर लिया जाता था। वास्तव में इस समय तक तुर्कों के आक्रमण पूर्ण रूप से प्रारम्भ हो चुके थे। महमूद गजनी के आक्रमणों का दौर १०३० ई० में समाप्त हुआ और उसके बाद १०८८ से ११९४ ई० के मध्य उसके पुत्र इब्राहीम तथा उसके पश्चात् मसूद तृतीय के आक्रमण आरम्भ हुए। ११३३ ई० से ११६८ ई० तक पुनः तीन आक्रमण हुए, जिनके अर्णोराज तथा उसके पुत्र विग्रहराज चतुर्थ या वीसलदेव ने विफल बनाया। तीसरा आक्रमण खुसरो मलिक ने किया, जिसे गोविन्द चन्द गहदालवा के पुत्र विजय चन्द ने पराजित किया। इन हिन्दू शासकों ने पराजित सैनिकों को अपने राज्य में ठहरने न दिया किन्तु जो पहले से ही आकर बस गये थे उनको हताहत व उत्पीड़ित करने का भी उन्होंने कोई प्रयास न किया। फलतः पहले की भाँति वे यहाँ अपना जीवन व्यतीत करते रहे। दूसरी ओर गुजरात के चालुक्य राज्य में भी मुसलमानों के प्रति परम्परागत उदारता प्रदर्शित की गई। सोमनाथ के मन्दिर के विध्वंस होने के बावजूद भी गुजरात के लोगों में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष की भावना न थी। कारण यह उस मन्दिर का विध्वंस धन के लालची व लुटेरे, अधर्मी व धर्म के नाम पर कुकृत्य करने वाले, विशाल साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले, जिसकी दृष्टि में पाप व पुण्य एक समान थे, ने ही किया था। गुजरात के चालुक्य शासकों ने मुसलमानों को १०५३ ई० में अहमदाबाद में मस्जिद बनवाने की अनुमति दी। वहाँ के शासक सिद्धराज ने जब सुना कि हिन्दुओं ने खम्भात में मस्जिद को तोड़ कर ८० मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया है तो वह स्वयं वहाँ गया। उसने आतंकवादियों को दण्ड दिया। मुसलमानों को मस्जिद बनवाने के लिए एक लाख बलोतर दिये। गुजरात के हिन्दू व्यापारियों ने भी इस मस्जिद के निर्माण के लिये पर्याप्त धन देकर धार्मिक रूढ़ि प्रभुता एवं उदारता का परिचय दिया।[10]

उत्तर प्रदेश व बिहार में सूफी सन्त गौरियों द्वारा भारतवर्ष को विजित करने से पूर्व ही पहुँच गये थे। बदायूँ में मीरान मुलहिम की कब्र, बिलग्राम में ख्वाजा मजहुद्दीन की कब्र, बिलग्राम ही में मालावान में ऊँचाटीला मुहल्ला में एक कब्र, गोपामऊ में अजमत टोला में लाल पीर की दरगाह, बदायूँ में बिसली सड़क पर कब्रिस्तान, उन्नाव में असोवन में गंज-ए-शहीदन, बिहार के समीप हाजीपुर में जल्हा की कब्रें, मनेर में बड़ी दरगाह के पश्चिमी द्वार के समीप इमाम तकी फकीह की कब्र, यह सभी पूर्व-गौरी काल की कही जाती है। इन शहरों के कुछ परिवार इसका दावा

करते हैं कि उनके पूर्वज इस काल में यहाँ आकर वसे।[11] इसी काल में अनेक सूफी सन्त भारतवर्ष आये और उन्होंने हिन्दू व मुसलमानों को एकता के सूत्र में पिरोने की चेष्टा प्रारम्भ की। इन सूफी सन्तों में सैय्यद सालार मसूद ग़ाजी,, सैय्यद हुसेन, खिल्ज सवार, सैय्यद महमूद, सैय्यद मुहम्मद मोमिन आरिफ़, इस्माइल, अब्दुल अज़ीज़ तथा इस्माइल आदि बहराइच, अजमेर, जरूआ तथा बिहार के उत्तरी व दक्षिणी भाग में आकर बसे। ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती भारत में ११६० ई० में आये और वे अजमेर में हिन्दू जनता के मध्य वसे। इस्माईली सन्तों में अब्दुल्लाह (१०६५ ई०) मुसद्दीन और मुहम्मद अली (मृ० ११३७) गुजरात में आकर बसे। सैय्यद शाह सुरक़ीन खलदतिया मैमन सिंह ज़िले में स्थित नेत्रकोना में आकर बसे। इन सभी सूफी सन्तों में ग्रामीण एवं शहर के वातावरण में रहकर यहाँ की भाषा सीखी, आचार-विचार ग्रहण किए, परम्पराएँ अपनाई और सर्वसाधारण की मनोवृत्ति के अनुकूल अपने व्यक्तित्व को ढालने की चेष्टा की तथा उनके सामने ईश्वर के प्रति अपनी निष्ठा, सादगी, नम्रता व मृदुलता का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने यहाँ का खान-पान, हिन्दू योगियों का योग, चमत्कार सीखा और हिन्दू व मुसलमानों में अध्यात्मवाद के मार्ग पर चलते हुए किसी प्रकार का भेदभाव न किया। भिक्षा पात्र, तुलसी की माला, प्राणायाम एवं शरीर, मन, कर्म व वचन को शुद्ध बनाने से सम्बन्धित शैव व बौद्ध धर्म द्वारा सुझाई गई क्रिया को अपना कर उन्होंने भक्ति व साधना पर विशेष बल दिया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत की स्थापना से कई वर्ष पूर्व इन सूफी सन्तों ने भारतीय समाज में अपना सुनिश्चित स्थान बना लिया था।

सातवीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक भारतवर्ष में अनेक विदेशी जातियाँ प्रवेश ही नहीं कर चुकी थीं वरन् देश के सभी भागों में स्थायी रूप से बस चुकी थीं। यह विदेशी जातियाँ स्वदेश छोड़ कर क्यों आई? कुछ लोग जीविका उपार्जन करने के अच्छे साधनों की खोज में, कुछ अपने देश की धार्मिक वातावरण, शिया-सुन्नी संघर्ष, साम्प्रदायिकता से तंग आकर भारत की ओर उन्मुख हुए, कुछ व्यापार करने के उद्देश्य से, शेष अपना भाग्य अजमाने या सूफी सन्तों के रूप में आये। भारतवर्ष की सर्वोत्तम संस्कृति, यहाँ का गौरव, स्वच्छन्द धार्मिक वातावरण तथा यहाँ की पुरातन परम्पराओं की चर्चा बराबर विदेशों में चिरकाल से होती रही। इस देश की सभ्यता एवं संस्कृति के सम्बन्ध में नई व पुरानी कहानियाँ विदेशियों को आकर्षित करती रहीं और उन्हें यहाँ आने की प्रेरणा प्रदान करती रहीं। शनैः-शनैः यहाँ विदेशियों या मुसलमानों का आने का क्रम बन गया। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज बहुरंगी एवं बहुरूपी समाज हो गया। भारतीय समाज से दो पारस्परिक अंग, जिसमें बड़ी समानताएँ व असमानताएँ थीं जो कि एक ही शरीर के दो अंग थे, में आन्तरिक एवं वाह्य परिवर्तन समय, काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप होते रहे।

पूर्व सल्तनत काल में हिन्दू समाज का क्या प्रारूप था ? अन्य जातियों में समाज में स्तर सम्पत्ति, वंश या व्यवसाय द्वारा होता था किन्तु हिन्दुओं में जाति की सदस्यता जन्म के अनुसार निर्धारित होती थी। किस व्यक्ति का किस जाति में जन्म हुआ उसी से उसका सामाजिक स्तर एवं समाज में स्थान निर्धारित होता था। हिन्दू समाज की यह प्रमुख विशेषता थी। यह बात संसार के अन्य देशों के निवासियों में देखने को भी नहीं मिलती है। वास्तव में चिरकाल से हिन्दुओं का सामाजिक स्तर वर्ण, रंग या जाति पर ही आधारित रहा। प्रारम्भ में वर्ण जाति का पर्यायवाची था। बाद में जाति का विकास पृथक रूप से हुआ। मनु के अनुसार हिन्दू समाज जाति पर आधारित था। प्रत्येक जाति के पृथक-पृथक व्यवसाय भी निर्धारित थे। प्रत्येक व्यक्ति को पहली बार विवाह अपनी जाति में गोत्र के अन्दर ही करना होता था, अर्न्तखान-पान, अर्न्तजातीय विवाह तथा निम्न जातियों के साथ सम्पर्क रखने पर प्रतिबन्ध थे। विविध जातियों के अपने-अपने नियम थे, जिनका उल्लंघन करने पर व्यक्ति जाति से बाहर कर दिया जाता था। इस प्रकार का वर्णाश्रम धर्म भारत में प्राचीन काल से चलता आया। मैगस्थनीज की इण्डिका से ज्ञात होता है कि व्यवसाय के आधार पर भारत की जनसंख्या सात जातियों में विभाजित थी। पूर्व मध्यकाल में भी हिन्दू समाज मुख्यतः जाति पर ही आधारित था। नवीं शताब्दी के एक मुसलमान भूगोलशास्त्री इब्न-खुरदादवा ने अपने ग्रन्थ कितावुल मसालिक व मुमालिक में लिखा है कि भारत में ७ जातियाँ थीं—(१) शकश्रिरी (क्षत्रिय) जो कि यहाँ के उमरा है। इन्हीं में से सम्राट होते हैं। उसके सम्मुख सभी झुकते हैं। किन्तु वे किसी के सम्मुख नहीं झुकते हैं। (२) व्रह्मीय (ब्राह्मण) जो कि मदिरापान नहीं करते। (३) क्षत्री (खत्री) जो कि एक से लेकर ३ प्याले तक मदिरापान करते हैं। ब्राह्मण उनकी कन्याओं से विवाह तो करते हैं किन्तु उन्हें विवाह में अपनी कन्याएँ नहीं देते हैं। (४) शूदर (शूद्र) कृषक। (५) वेना (वैश्य) जो कि विभिन्न व्यवसाय करते थे। (६) शन्दाल (चाण्डाल) नट, (७) डोम (जो कि व्यवसायिक गायक हैं तथा जिनकी स्त्रियाँ सजधज कर रहती हैं। इसी भाँति मोरक्को के अल इद्रसी ने भूगोल पर अपने ग्रन्थ नुज़हतुल मुश्ताक की इख्ताराकुल अफाक में भारत की विभिन्न जातियों का विवरण दिया है। उसने भी सात जातियों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार प्रथम जाति अलसरगरिया है, जो कि सबसे उत्तम है। सभी शासक केवल इसी जाति के हैं। जब कभी अन्य लोग उनसे मिलते हैं तो वे उनके सम्मुख झुकते हैं, किन्तु वे किसी के सम्मुख नहीं झुकते हैं। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए अल-इदरसी ने कहा है कि उन्हें अलब्रहिमा कहते हैं। वे उपासक हैं। वे जानवरों की खाल पहनते हैं। वे मदिरापान व नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करते हैं। वे दिन भर लोगों के मध्य खड़े रह कर उन्हें उपदेश देते हैं, ईश्वर के सम्बन्ध में उन्हें बताते हैं, मूर्तियों की पूजा करते हैं और स्वयं अपना समय पूजा-पाठ में व्यतीत करते हैं। अल-इदरसी के अनुसार उनके बाद अल-क्षत्रिय या क्षत्रिय थे। वे केवल

तीन प्याले तक मदिरापान करते थे, और कभी भी अत्यधिक नहीं पीते थे क्योंकि उन्हें भय रहता था कि कहीं वे सुध-बुध न खो बैठे। यह लोग ब्राह्मणों से अपनी कन्या का विवाह तो करते थे किन्तु ब्राह्मण अपनी कन्याओं का विवाह उनसे नहीं करते थे। क्षत्रियों के बाद शूद्रिया या शूद्र थे, जिनका व्यवसाय कृषि था। उनके पश्चात् अल-वैश्या या वैश्य है, जो कि शिल्पकार तथा कारीगर है। इन जातियों में अल-सन्दलिया जाति भी है जो कि गायक है और जिनकी स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रख्यात है। सातवीं जाति के सम्बन्ध में अल-इदरसी ने लिखा है कि वे अल-धुनबिया थे। वे काले होते हैं, खेल व मनोरंजन करते हैं व अनेक वाद्य यन्त्रों को बजाते हैं। इस प्रकार से अल-इदरसी ने जातियों का जो विवरण दिया है वह इब्न-खुरददवा विवरण से मिलता-जुलता है। दोनों लेखकों के विवरण से ज्ञात होता है कि हिन्दुओं में जाति प्रथा कर्म या व्यवसाय तथा जन्म पर आधारित थी।

इब्न-खुरददवा तथा अल-इदरसी की तुलना में अलबरुनी ने हिन्दू समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गों का विस्तृत विवरण दिया है। जातिप्रथा के सम्बन्ध में विवरण देते हुए उसने लिखा है कि हिन्दू अपनी जातियों को वर्ण कहते हैं और वंशावली के विचार से वे उन्हें जातक या कुल कहते हैं। प्रारम्भ से ही उनमें केवल चार जातियाँ थीं।[12]

हिन्दू समाज जाति एवं व्यवसाय पर आधारित था। वर्ण व्यवस्था के अनुसार हिन्दू समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभाजित था। वर्णों का यह विभाजन व्यवसाय पर आधारित था। इस काल में कर्म या व्यवसाय के सिद्धान्त का अनुकरण चारों वर्णों में से किसी ने पूर्णतः नहीं किया। बदलती हुई परिस्थितियों में जब कि देश भर में शासकों व सामन्तों के मध्य संघर्ष, शासकों के मध्य युद्ध तथा बाह्य आक्रमण हो रहे थे और सभी प्रकार की अवधारणाओं का परिवर्तन होना नितान्त आवश्यक हो गया था इसके कारण वर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए। प्रो० तारा-चन्द ने कहा है कि क्षत्रिय हिन्दू समाज के मुख्य आधार स्तम्भ थे। जब क्षत्रियों की शक्ति का ह्रास हुआ तो वर्ण व्यवस्था स्वतः समाप्त होने लगी। निःसंदेह ऐसी स्थिति में सैद्धान्तिक रूप से हिन्दू समाज का बाह्य रूप तो ज्यों का त्यों बना रहा, किन्तु व्यावहारिक रूप से इस काल में उसमें अनेक आन्तरिक परिवर्तन हुए। इस समाज की व्याख्या जाति के आधार पर करने में स्थिति स्पष्ट होती है।

ब्राह्मण

अलबरुनी ने किताबुलहिन्द में ब्राह्मणों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे अपनी संस्कारिक शुद्धता, रूढ़िवादिता और धर्मान्धता में विश्वास रखते हैं। धर्मान्धता उनके विरुद्ध है। जो कि उनकी जाति के नहीं हैं तथा विदेशी हैं वे उन्हें म्लेच्छ या अशुद्ध कहते हैं। वे उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखने की अनुमति नहीं देते हैं, चाहे वह अन्तर्जातीय विवाह हो या अन्य प्रकार का सम्बन्ध क्यों ही न

हो तथा न ही वे उनके साथ बैठने-उठने या खान-पान को ही आज्ञा देते हैं, क्योंि वे सोचते हैं कि इससे वे अछूत हो जावेंगे। वे हर एक वस्तु को, जो कि विदेशिय की आग व पानी को छू लेती है अशुद्ध समझने लगते हैं। अलबरुनी ने यह बात केव भारतीय समाज के एक महत्वपूर्ण वर्ग के लिए ही कही है। ब्राह्मण सदियों से ही अप रक्त, कर्म, वचन, शरीर की शुद्धता, अपने संस्कारों की श्रेष्ठता और अपनी जाति ए गोत्र की पृथकता पर विशेष बल देते रहे। ११वीं शताब्दी में भी उसे बनाये रखने वे लिए उनका समाज के अन्य वर्गों व विदेशियों के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण बना रहा किन्तु भारतीय समाज के अन्य वर्गों का आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों का दबाव पड़ने के कारण, उनके दृष्टिकोण तथा विचारधाराओं में निरन्तर परिवर्तन होत रहा। यही कारण था कि कश्मीर के शासक कलस (१०६३-१०८९) ने तुर्की शिल्प-कारों को कालेश्वर के मन्दिर के ऊपर स्वर्ण छत्र बनाने के लिए भर्ती किया। उसी राज्य के शासक हर्ष ने तुर्कों को अपनी सेना में भर्ती किया।

हिन्दू समाज में चिरकाल से ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। उनका मुख्य व्यवसाय धार्मिक ग्रन्थों व धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना, व्रत, उपवास, उपासना, साधना, योग करना तथा हिन्दू धर्मशास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट कर्मकाण्ड को लागू करना, विद्या अर्जन करना, हिन्दू संस्कारों का पालन करना व करवाना तथा विद्या व ज्ञान का प्रचार करना था। इस काल में ब्राह्मणों ने धर्मशास्त्र की पुरानी पाण्डुलिपियों का पुनः विश्लेषण कर मानव जीवन से सम्बन्धित संस्कारों की व्याख्या करके अपनी शक्ति को बनाए रखा। उन्होंने जो टीकाएँ एवं विधिशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि वे अब भी हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित विद् थे। उनका प्रमुख कर्म वेद व वेदान्त तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं का अध्ययन करना था। दर्शन व धर्म में उनकी रुचि और उनके विचारों की श्रेष्ठता को समाज के वर्गों ने स्वीकार कर लिया था। दानखण्ड में लक्ष्मनधर ने लिखा है कि एक आदर्श ब्राह्मण दानदाता को वेद के अध्ययन में लगे रहना चाहिए। उसे पवित्र, सत्यवादी, साधारण पाप से डरने वाला व्यक्ति होना चाहिए। उसे अहिंसा में विश्वास होना चाहिए। उसे सदैव पवित्र अग्नि को जलाए रखना चाहिए, उसे धार्मिक नियमों का पूर्ण पालन करना चाहिए। उसे गऊ से प्रेम करना चाहिए तथा लालच से दूर रहना चाहिए।[3] शोमवंश के शासक महाशिवगुप्त ने ब्राह्मण अनुदान प्राप्तकर्ताओं के लिए विशेषताएँ निर्धारित की कि उन्हें वेदों के छः परिशिष्ठों से अवगत होना चाहिए, अग्नि को प्रज्वलित रखना चाहिए, किसी के अन्तर्गत नौकरी नहीं करनी चाहिए और वैश्यागमन व जुए से दूर रहना चाहिए।'[4]

समकालीन साहित्य तथा शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में अनेव जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। प्राचीन काल में ब्राह्मण गोत्र परिवार के आधार पर विभाजित थे। उनमें व्यवसाय, ज्ञान, नैतिक शुद्धता, कर्म, प्रदेश तथा परिवार के आधार पर विभाजन था, जिसके कारण अनेक श्रेणियाँ, उपश्रेणियाँ उत्पन्न हो गयी

थीं। देवल ने वेदों के ज्ञान, नैतिकता, निर्दिष्ट कर्तव्यों के पालन के आधार पर ब्राह्मणों के अनेक वर्गों की चर्चा की है। लक्ष्मीधर ने उसी का वर्गीकरण स्वीकार किया है। किन्तु अत्रिस्मृति तथा मिनतकसार के अनुसार उनकी १० श्रेणियाँ थीं, उदाहरणार्थ—देवा, मुनि, द्विज, राज्य, वैश्य, शुद्र, मरजरा, पशु, मलेच्छ तथा चण्डाल।[15] इस काल में उनका विभाजन प्रदेश के आधार पर हुआ। उदाहरणार्थ बंगाल में वन्ध्यधतिया ब्राह्मण, चम्पहटिया ब्राह्मण, इकिया ब्राह्मण, वरेन्द्र ब्राह्मण, वैदिक ब्राह्मण इत्यादि। जो ब्राह्मण उत्तर प्रदेश से आए थे उनकी जाति के पक्षन्य ब्राह्मण भी थे। जो ब्राह्मण द्राविण व उत्कल से आये थे उन्हें दक्षिणत ब्राह्मण कहते थे। इनके अतिरिक्त वहाँ व्यास, परासर, कन्नौजिया, सप्रती ब्राह्मण भी थे। बिहार में, मैथली ब्राह्मण, सक द्वीपी ब्राह्मण, व गवावाल, मगा ब्राह्मण, गौड़ ब्राह्मण आदि थे। उत्तर प्रदेश में कन्नौजिया ब्राह्मण, सरयूपारी ब्राह्मण, कश्मीर के कश्मीरी ब्राह्मण, राजस्थान में मगा या सकदीप ब्राह्मण, अवेली ब्राह्मण, गुजरात में मोधा, नागर, उद्दीच, सिहोर, रायकवल, प्रागवत, गुगली, ओसवाल, तपोधन ब्राह्मण, कपिलवर्त ब्राह्मण आदि थे।[16] प्रो० संकालिया के अनुसार गुजरात के ब्राह्मणों की जातियों के नाम किसी स्थान या प्रदेश से सम्बद्ध थे। श्रीमाल मेवाड़ व उद्दीच ब्राह्मण राजपूताना व मालवा से वहाँ पहुँचे। इसी प्रकार से प्रादेशिक आधार पर ही दक्षिण में ब्राह्मणों का विभाजन हुआ। यादव के अनुसार ब्राह्मणों की यह श्रेणियाँ प्रदेशानुसार विभाजित थी।[17] ११वीं शती में मूल-राज ने गुजरात में १००० ब्राह्मणों को उत्तरी भारत में बुलाया। वे वहाँ आकर बस गए और उन्हें उद्दीच ब्राह्मण कहा जाने लगा। सरवरा व सरयूपार ब्राह्मणों का सम्बन्ध सरयूपारियों से था। बंगाल के रधिया तथा वरेन्द्र ब्राह्मणों के नाम उनके गाँवों के नाम पर थे। बंगाली ब्राह्मणों की जातियाँ-उपजातियाँ, मुखोपाध्याय, वन्दोपाध्याय तथा चट्टोपाध्याय का सम्बन्ध उन गाँवों से था जो कि उन्हें अनुदान में दिए गए थे।

अलवरुनी के अनुसार सभी ब्राह्मण उच्च जाति के थे। प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उनका जन्म ब्रह्मा में ब्राह्मण्ड से हुआ था। चूंकि ब्राह्मण का अर्थ प्रकृति से है और सिर ही शरीर का सबसे प्रमुख भाग है अतएव हिन्दू उन्हें समस्त जीव जगत का सर्वोत्तम प्राणी मानते हैं। धर्म पर उनका आधिपत्य एवं अधिकार था। वे न केवल लोगों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे वरन् मानव व ईश्वर के मध्य की कड़ी थे। अलवरुनी के अनुसार केवल उन्हें और क्षत्रियों को ही वेद अध्ययन करने का अधिकार था अतएव केवल उन्हें ही मोक्ष प्राप्त हो सकता था। ब्राह्मणों का जीवन चार भागों में विभाजित था। ब्राह्मण ८ वर्ष की आयु में अन्य ब्राह्मण से विद्या अर्जित करता था। ब्राह्मण शिक्षक उसे उसके कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाता था और शिक्षा देता था कि जीवन-पर्यन्त वह उनका नियमानुसार पालन करे। उसके बाद उसका यज्ञोपवीत संस्कार होता था, जब कि उसे बटे हुए नौधागों या जनेऊ और उसके पश्चात् तीसरे यज्ञोपवीत पर एक ही धागे का जनेऊ पहना दिया जाता था। उसकी अँगुली

में दरभा या कुश की अँगूठी पहना दी जाती थी। ब्राह्मण के विद्या अध्ययन का यह काल २५ वर्ष की आयु तक चलता था। इस काल में वह व्रत रखता था, भूमि पर सोता था वेद, विज्ञान धर्म का अध्ययन करता था और रात-दिन गुरू की सेवा करता था। वह तीन बार स्नान करता था। प्रातः एवं संध्या को यज्ञ करता था तथा अपने गुरू की पूजा करता था। वह व्रत रखता था। वह अपने गुरू के घर में रहता था। वह प्रतिदिन केवल पाँच घरों से भिक्षा माँगता था और जो भी भिक्षा प्राप्त करता था उसमें से उसका गुरु स्वेच्छानुसार अपना भाग ले लिया करता था, शेष भिक्षा गुरु उसी के पास रहने देता था। वह यज्ञ के लिए पलाश तथा दरभ के वृक्षों से लकड़ी लाता था और पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता था।

अलबरुनी के अनुसार ब्राह्मण के जीवन का दूसरा वर्ष २५वें वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता था और ५०वें वर्ष की आयु में समाप्त होता था। इस काल में वह विवाह करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करता था। उसे १२ वर्ष की आयु से अधिक वाली कन्या से विवाह करने की अनुमति न थी। वह अपने जीवन का निर्वाह या तो ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को शिक्षा देकर या उनसे प्राप्त उपहार एवं भेंट या यज्ञ करके भेंट प्राप्त करके या शासकों तथा सामन्तों से भिक्षा माँग करके करता था। ११वीं शताब्दी में प्रत्येक हिन्दू के घर में एक ब्राह्मण पुरोहित होता था जो कि सभी संस्कार सम्पन्न करवाता था। वह खेती करके या फल खाकर जीवन निर्वाह कर सकता था। उसे कपड़ों तथा सुपाड़ी का व्यापार करने की अनुमति तो थी किन्तु वह स्वयं इन वस्तुओं का व्यापार न करके वैश्यों के माध्यम से ही व्यापार कर सकता था। उसके लिए स्वयं व्यापार करना निषेध था क्योंकि उसमें झूठ बोलना पड़ता था। उन्हें व्यापार करने की अनुमति दुर्गम परिस्थितियों में ही मिलती थी। विशेषकर जब जीविका उपार्जन करने के लिए उनके पास अन्य कोई साधन न था। अन्य जातियों की भाँति ब्राह्मण करों से मुक्त थे और उन्हें सम्राट की सेवा भी नहीं करनी पड़ती थी। उनके लिए पशुपालन करना, ऋण देना व लेना पूर्णतः निषेध था। विधि विधान से ही वे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर सकते थे।

अलबरुनी के अनुसार ब्राह्मण के जीवन का तृतीय चरण ५०वें वर्ष से प्रारम्भ होता था तथा ७५वें वर्ष की आयु में समाप्त होता था। इस काल में यह गृहस्थ जीवन से मुक्त होकर व्रत-उपवास, कीर्तन; भजन, पूजा-पाठ में ही अपना समय व्यतीत करता था। वह किसी छप्पर के नीचे या पेड़ के छाँव में भूमि पर सोता था, केवल अंग ढँकने के लिए कपड़ा पहनता था, फल, सब्ज़ियों तथा कन्दमूल खाकर रहता था। वह न तो तेल का प्रयोग करता था और न ही अन्य प्रसाधनों में रुचि रखता था। उसके जीवन का अन्तिम पर्व ७५ वर्ष की आयु में प्रारम्भ होकर जीवन के अन्त के साथ समाप्त हो जाता था। इस काल में वह सन्यासी का जीवन व्यतीत करता था, सन्यासियों के वस्त्र पहनता था, चिन्तन व मनन में समय व्यतीत करता था और अन्य

लोगों द्वारा दी गई भिक्षा पर निर्भर रहता था। उसके जीवन का प्रधान लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होता था ताकि वह आवागमन से मुक्त हो सके।

अलबरुनी के अनुसार ब्राह्मणों का मुख्य कर्त्तव्य सदाचार का पालन करना, भिक्षा देना व लेना, यज्ञ करना, पूजा-पाठ करना एवं शिक्षा देना इत्यादि था। वे केवल उत्तर में सिंध नदी से दक्षिण में कावेरी नदी तक भ्रमण कर सकते थे और रह सकते थे। लोगों का यह कहना था कि वे उस प्रदेश में नहीं रह सकते थे जहाँ कि कुश न उगता हो। यदि उपरोक्त सीमाओं को वे पार कर तुर्कों के या कर्नाटक देश में पैर रखते थे तो वे पाप के भागी समझे जाते थे और उन्हें उनकी जाति से निष्कासित कर दिया जाता था।

इस काल के धर्मशास्त्रों व निबन्धों में ब्राह्मणों को व्यवसाय के अनुसार विभाजित किया गया। अत्रि ने क्षत्रिय ब्राह्मण जो कि युद्ध पर जीवित रहते हैं, वैश्य ब्राह्मण जो कि कृषि करते, पशुपालन करते हैं तथा व्यापार करते हैं, शूद्र ब्राह्मण जो कि लाख, नमक, अश्व, घी, मधु, मांस तथा कुछ विशेष प्रकार के रंग बचते थे और निषाद ब्राह्मण, जो कि चोरी व डकैती करते थे, की चर्चा की है।[18] जो ब्राह्मण किसी शासक व सामन्त की सेवा या दीवानी या सैनिक विभाग में कर्मचारी हो जाते थे उनका सामाजिक स्तर व उनके विशेषाधिकार ज्यों-के-त्यों ही बने रहते थे। किन्तु जब कुछ साधारण ब्राह्मण जब पुरोहितों का कार्य करने लगते थे तो उन्हें नीच समझा जाता था। विजनेश्वर व अपारक के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी ब्राह्मण को जो कि तीन वर्ष से किसी देवता पर चढ़ाई गई भेंट पर ही जीवन व्यतीत कर रहा हो उसे छू लेता था या सम्पूर्ण गाँव के पुरोहित के स्थान पर कार्य करता था तो उसे अपने को शुद्ध बनाने के लिए वस्त्र धारण किये ही स्नान करना पड़ता था। इस प्रकार से धर्मशास्त्र के नियमों के पालन करने वाले ब्राह्मणों की संख्या ब्राह्मण वर्ग में दिन प्रतिदिन कम होती गई। हिन्दू समाज की इस अल्पसंख्यक जाति को ध्यान में रखते हुए ही इस काल में शास्त्रों में सामाजिक आचरण की व्याख्या की गई। क्योंकि वे ही वेद, स्मृति, श्रुति, धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे विविध संस्कारों का पालन बड़ी विधि-विधान से किया करते थे। वास्तव में प्राचीन काल में ही हिन्दू धर्म पवित्रता एवं अपवित्रता पर बल देता रहा और यही कारण है कि समाज में पवित्र वर्गों के बीच में एक रेखा खिंच गई। जो सत्कर्म करते थे व पवित्र माने गए जो अपवित्र कार्य जैसे कि भंगी, चर्मकार आदि का कार्य करते थे उन्हें निम्न माना गया। इस प्रकार के विभाजन का औचित्य हिन्दू समाज के प्रारूप को बनाये रखने के लिए आवश्यक था। किन्तु पवित्र एवं अपवित्र की परिभाषा में ही निरन्तर समय के साथ-साथ परिवर्तन होता रहा। क्योंकि जो अपवित्र, दलित व निम्न वर्ग के लोग समझे जाते थे वे ही समाज की सबसे अधिक सेवा करते थे। ब्रह्म पुराण का उद्धरण देते हुए अपारक ने कहा कि जो भोजन निम्न-

लिखित श्रेणी के लोगों के हाथों से निम्नलिखित व्यवसायों के परिवारों का हो उसे लेना वर्जित है। उसके अनुसार गायक, अभिनेता, वैद्य, शल्यचिकित्सक, स्वर्णकार, लोहार, अस्त्र-शस्त्र विक्रेता, दरजी, धोबी, मदिरा बनाने वाला, मदिरा विक्रेता, तेली, भाट, बढ़ई, ज्योतिष से जो धन कमाता हो, घण्टी बजाने वाले लोगों, ग्राम के अधिकारी, चर्मकार, कुम्हार, पहलवान, बाँस से वस्तुएँ निर्माण करने वाले व्यक्तियों, स्थानीय साहूकार, गाँव के पुरोहित द्वारा दिया गया भोजन लेना वर्जित है। इस प्रकार के उद्धरणों का तत्कालीन समाज में केवल सैद्धान्तिक महत्व था। क्योंकि बिना इन व्यवसायिक वर्गों के योगदान एवं सहायता से न तो विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध करके देश की रक्षा की जा सकती थी और न समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति ही हो सकती थी। यह बहुत सम्भव है कि रूढ़िवादी, कट्टर और परम्परावादी संकुचित दृष्टिकोण रखने वाले ब्राह्मणों का ही ऐसा दृष्टिकोण समाज के निम्न वर्गों के प्रति हो और उन्होंने ही अपने जाति की तादात्यता को सुरक्षित करने के लिए इस प्रकार के विचारों का प्रतिपादन किया हो। संघर्ष व संक्रमण के इस युग में ब्राह्मणों में अन्दर ही अन्दर प्रतिस्पर्धा चल रही थी। उनका एक वर्ग धर्मशास्त्रों द्वारा आरोपित आडम्बरों व सामाजिक असंगतियों को समाप्त कर रूढ़िवादी परम्पराओं से मुक्त होकर जीविका उपार्जन करने के नये साधनों को प्राप्त कराने के लिए उद्विग्न हो रहा था। इस काल से सम्बन्धित ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि अनेक ब्राह्मणों ने अपने पूर्वजों का व्यवसाय छोड़कर अन्य वर्गों के व्यवसाय अपना लिए। जब ऐसा होने लगा तो ब्राह्मण टीकाकारों व धर्मशास्त्रियों ने व्यवसाय के आधार पर पवित्र व अपवित्र ब्राह्मणों, के बीच में अन्तर निर्दिष्ट करते हुए क्षत्रिय, ब्राह्मणों, वैश्य ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ कर्म की तादात्म्यता को शूद्र ब्राह्मणों व निषाध ब्राह्मणों की परिभाषा देते हुए ब्राह्मणों को बनाये रखने का प्रयास किया। दूसरी ओर धर्मशास्त्रियों ने ब्राह्मणों के विद् वर्ग में भी वेद के बारे में उनके ज्ञान के आधार पर विभाजित कर दिया। देवल के अनुसार ब्राह्मणों की वेदों के ज्ञान के आधार पर ८ श्रेणियाँ थीं। अर्थात् मात्र ब्राह्मण, स्त्रोत, अनुचना, भ्रुन, कल्प, ऋषि एवं मुनि।[१८]

वास्तव में इस काल में ब्राह्मणों ने अनेक व्यवसाय ग्रहण कर लिए थे। इनमें से कुछ व्यवसायों को ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण करने की अनुमति धर्मशास्त्रों ने दे दी थी। वैसे तो ब्राह्मणों का मुख्य कर्म वेदों तथा वेदान्तों का अध्ययन, पूजा, पुरोहिती करना, यज्ञ करना व करवाना तथा देवताओं को प्रसन्न करने एवं राज्य में शान्ति के लिए जप करना आदि था किन्तु इनके अतिरिक्त विभिन्न हिन्दू त्योहारों व पर्वों पर विशेष प्रकार की पूजा व यज्ञ का आयोजन करना तथा हिन्दू परिवारों में विविध संस्कारों को पूर्ण करवाना था। उस समय अनेक ब्राह्मण पुरोहित थे जिनकी संख्या अनगिनत थी किन्तु उनमें किसी प्रकार की एकता न थी। उस समय शासकों व सामन्तों के परिवार एवं पुरोहित हुआ करते थे जिन्होंने उनसे भूमि अनुदान प्राप्त करके तथा अन्य

उपहार प्राप्त करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं प्रभावशाली वना लिया था। शासकों व सामन्तों की सेवा करने के उपलक्ष में उनसे वरावर अनुदान मिला करता था। इस संवन्ध में अनेक शिलालेख प्राप्त हैं जिनके अनुसार गहदावला शासक ने जगुसरमन तथा देवारा जैसे पुरोहितों को भूमि अनुदान में प्रदान की। विजयसेन की रानी विलास देवी ने ४ पटक भूमि तुला पुरुष दान में यज्ञ करने के लिए उदयकर देवसर मन को दान में दी। इसी प्रकार के अनुदानों का उल्लेख नैहटी, तपन विधि, मधप नगर के ताम्र पत्रों में मिलता है। गुजराती पुरोहितों को भी इसी प्रकार के अनुदान प्राप्त होते थे।[२०] गौतम व मनु जैसे विधिशास्त्रियों की भाँति इस काल में भी धर्मशास्त्रियों ने ब्राह्मणों को अनुमति दे दी कि वे संकट में अपनी रक्षा के हेतु या कठिन समय में या गौ रक्षा या ब्राह्मणों की रक्षा या वर्ण व्यवस्था को टूटने से वचाने हेतु शास्त्र ग्रहण कर सैनिकों का व्यवसाय भी ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार से इस काल में ब्राह्मणों ने सैनिकों का व्यवसाय भी अपना लिया। उदाहरणार्थ, वंगाल में भट्टभावदेव के पिता गोवर्धन न केवल एक प्रकाण्ड विद्वान् वरन् कुशल योद्धा भी थे। राजतरंगनी के अनुसार काश्मीर में अनुक ब्राह्मणों ने युद्ध के मैदान में अपनी सैनिक क्षमता का परिचय दिया। चन्देल, चालुक्य, कालाचुरी वंश के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उनमें से अनेक सैनिक अधिकारी थे। कालाचुरी शासक कर्ण के कारण ही चन्देलों की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिली, किन्तु ब्राह्मण सामन्त गोपाल ने पुनः उनका भाग्योदय कर दिया। विरुध-विध्वंस नामक ग्रन्थ के अनुसार स्कन्द नामक नागर ब्राह्मण परिवार के कारण ही चौहान राज्य का विस्तार हुआ। स्कन्द व उसके दो पौत्रों स्कन्द द्वितीय तथा शमन ने सम्राट तोमेश्वर तथा पृथ्वीराज तृतीय की योद्धा के रूप में सेवाएँ की।[२१] लक्ष्मीधर व देवल के अनुसार उसी प्रकार से ब्राह्मणों को कृषि करने के लिए अनुमति कई शर्तों पर दी गई की वे बैलों पर अत्यधिक भार अनावश्यक रूप से नहीं रक्खेंगे, निर्धारित समय पर उन्हें चारा व पानी देंगे और उनका प्रयोग केवल खेत जोतने व फसल काटने के समय ही करेंगे। वे खेत जोतते समय हिंसात्मक कार्य न करेंगे। वे उत्पादन का १/६ भाग कर के रूप में शासक को, १/२० भाग ईश्वर को तथा १/३० भाग कुलीन ब्राह्मणों को देंगे। शुक्रनीतिसार में भी ब्राह्मण द्वारा खेती किये जाने की अनुमति दिये जाने का उल्लेख है। समकालीन शिलालेखों में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। चालुक्य शासक कुमारपाल द्वारा १२०२ वि० संवत् में दिये गये एक अनुदान से ज्ञात होता है राजदेव, सहदेव और नामगदा ब्राह्मण कृषक थे। ब्राह्मणों को व्यापार करने की भी अनुमति दी गई। मनु गौतम तथा यजनवलिका जैसे प्राचीन धर्मशास्त्रियों ने उन वस्तुओं की एक लम्बी सूची दी है जिन्हें ब्राह्मण वेच नहीं सकते थे। लक्ष्मीधर के समय तक उस सूची में कोई परिवर्तन न हुआ। अलवरुनी ने लिखा है कि ब्राह्मणों वैश्यों को उनके नाम पर व्यापार करने के लिए नियुक्त करते किन्तु कुछ ब्राह्मण वस्त्र, सुपाड़ी व घोड़ों का व्यापार किया करते थे। वे व्याज पर धन देने का भी व्यवसाय किया करते थे।[२२] नवीं शताब्दी के पिहुआ शिलालेख के अनुसार भट्टवसक का पुत्र वभुका उन घोड़ों के

व्यापारियों में से था जो कि पृथुंडका नामक शहर में एकत्र होते थे। मनु के अनुसार ब्राह्मण द्वारा घोड़ों का व्यापार करना वर्जित था, किन्तु फिर भी इस काल में अनेक ब्राह्मण घोड़ों के व्यापार में लगे हुए थे। इसी प्रकार ब्राह्मण अन्य व्यवसायों में भी लगे हुए थे। १०वीं शताब्दी के सिपादोनी शिलालेख में धमाका नामक एक ब्राह्मण पान बेचने वाले का उल्लेख है।[२३] **कथाकोष प्रकरण** के अनुसार अनेक ब्राह्मण किसान थे।[२४] क्षेमेन्द्र ने ११वीं शताब्दी में अपने ग्रन्थ दस अवतार चरित में लिखा है कि वे शिल्पकारों, नर्तकों के निम्न व्यवसाय को भी करते थे तथा उनमें से कुछ मदिरा, घी, नमक आदि का व्यापार भी करते थे। अन्य ब्राह्मणों ने अपने धार्मिक कार्य बन्द कर दिये थे क्योंकि उन्हें निम्न समझा जाता था।[२५] वे किसी भी व्यवसाय को ग्रहण कर सकते थे। धर्मशास्त्रों द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धों के बावजूद भी उनमें व्यवसायिक गतिशीलता थी।

ब्राह्मणों को समाज के सभी वर्गों से सम्मान प्राप्त था। उन्हें कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। यह विशेषाधिकार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक थे। उस युग के धर्मशास्त्रियों तथा पुराणों ने इन विशेषाधिकारों का उल्लेख किया है। सामान्य विचारधारा के अनुसार वे मृत्युदण्ड, करों तथा अन्य छोटे-मोटे अपराधों से दण्ड मुक्त थे। कुछ ब्राह्मणों के लिए यह अपवाद था। अलबरुनी के अनुसार ब्राह्मण कर से मुक्त थे। किन्तु सभी ब्राह्मण करों से मुक्त थे ऐसा विचार करना ठीक नहीं होगा। अनेक ब्राह्मणों को उनके व्यवसाय के अनुसार कर देना पड़ता था। इसी प्रकार से सभी ब्राह्मण मृत्यु दण्ड से मुक्त रहे हों, ऐसी बात न थी। इस सम्बन्ध में समकालीन विधिशास्त्रियों व धर्मशास्त्रियों पर टीका करने वालों के विचार भिन्न-भिन्न थे। लक्ष्मीधर, अलबरुनी, बृहस्पति अर्थशास्त्र व लघरवार नीतिशास्त्र के रचयिताओं के अनुसार ब्राह्मण मृत्युदण्ड से मुक्त थे। विजनेश्वर के अनुसार अताताई ब्राह्मण को मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता था। राजतरंगिनी में अनेक सन्दर्भ हैं जिनके अनुसार ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड दिया गया। इस काल में ब्राह्मणों की हत्या करना जघन्य अपराध माना जाता था।

मन्त्री

हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों में ब्राह्मणों का उच्च स्थान था। वे वेदों के ज्ञाता, पवित्र एवं शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति तथा विद्वान होते थे। उनकी प्रतिष्ठा व उनका मान-सम्मान परम्परागत था। अपने पूर्वजों की भाँति वे विभिन्न वर्गों के परिवारों में यथावत अपने स्थान पर बने रहे। कर्मशास्त्र व धर्मशास्त्र की परम्पराओं के अनुसार उन्हें राजपुरोहित तथा न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता था। लक्ष्मीधर गोविन्द चन्द गाहधवला का मुख्यमन्त्री था। स्कन्द उसका पुत्र सोध तथा स्कन्द द्वितीय तथा वामन चौहान शासक के वंशानुगत मन्त्री थे। ११वीं व १२वीं शताब्दी में चालुक्य, चन्देल, कालाचुरी, पाल, सेन वंश के शासकों ने अनेक ब्राह्मणों को मन्त्री

नियुक्त किया। बंगाल के शासक लक्ष्मन सेन ने हलयुध को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया। शासक वर्ग के परिवारों से सम्बद्ध होने के कारण उन्हें ही शासक का राजतिलक करवाने तथा शासक को सिंहासनारोहण की स्वीकृति या अस्वीकृति देने का अधिकार था। काश्मीर, बिहार व बंगाल के शासकों के घरानों में उनकी प्रतिष्ठा थी। केवल उत्तरी भारत के अनेक प्रदेशों में ही नहीं वरन् दक्षिण के राजपरिवारों में भी उन्हें श्रद्धा एवं सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। समय-समय पर राजनीतिक व पारिवारिक मामलों में उनसे परामर्श लिया जाता था। समकालीन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस काल में शासक के अत्याचारों को रोकने व शासकों द्वारा अपनी इच्छाओं की पूर्ति कराने के लिए वे यदाकदा भूख हड़ताल भी कर लिया करते थे या वे अन्य युक्तियाँ भी अपनाते थे। काश्मीर के मन्दिरों के पुरोहितों ने एक संघ बनाकर अपनी शिकायतों को दूर करवाने के लिए हड़ताल करना प्रारम्भ किया। कल्हड़ में उन्हें व्यवसायी हड़ताल करने वाले लोग कहा है। जिसकी झलक पुरुषचरित में हेमचन्द्र ने कहा है कि कभी-कभी पुरोहित संगठित हो जाते थे।[२६] इस काल में प्रशासन पर उसके प्रभाव में कोई कमी नहीं आने पाई। इसके विपरीत सातवीं शताब्दी के उपरान्त तो उन्होंने सामन्त वर्ग में भी प्रवेश किया और उनमें से अनेक विभिन्न राज्यों में सामन्त भी बन गए। त्रिपेरा प्रदेश में खडक वंश में लोकनाथ नामक ब्राह्मण सामन्त था। काश्मीर में मुजमिमा का पिता, गाहधावला शासकों के अन्तर्गत ठाकुर देवपाल सरमन, बालदित्य सरमन, भूपति, श्रीधर, अनन्त सरमन, जयपाल सरमन तथा दलहू सामन्त थे तथा उत्तर प्रदेश में रावत जात सरमन तथा दादसरमन ब्राह्मण सामन्त थे।[२७]

पूर्वोत्तर राजपूत काल में महाभारत के अनुसार ब्राह्मण के पास धन होना उसके पतन का कारण समझा जाता था। लक्ष्मीधर तथा वल्लभसेन ने **दानसागर** में ही आदर्श उनके सम्मुख रखा कि एक ब्राह्मण अनुदान प्राप्तकर्ता वही हो जो कि न केवल महान् विद्वान हो वरन् सादा जीवन व्यतीत करता हो तथा अपना जीवन दरिद्रता व भूख में व्यतीत करता हो। उन्होंने कहा कि निम्नलिखित वस्तुएँ ब्राह्मणों को दान में नहीं देनी चाहिए अर्थात् सोना, चाँदी, ताँबे का बर्तन, गाय, मकान, स्त्री तथा पलंग। किन्तु इस काल में अनेक ऐसे ब्राह्मण थे जिनके पास असीमित धन था। बंगाल के अवमलिक पण्डित हलयुद्ध सरमन कुमारपुरुषोत्तम सेन की माँ तथा विशारूप सेन की राजमाता से इतना अनुदान प्राप्त किया कि उसने अपने लिए १८४३ उदना भूमि जिसकी आय २४० पर्ण थी खरीद ली। उत्तरी भारत में अनेक ऐसे ब्राह्मण थे जो कि राज्यों में उच्च पदों पर आसीन होते ही अनुदान प्राप्त करते रहे। गहधावला शासक मदनपाल से लेकर अपनी चार पीढ़ियों तक जमुसरमन तथा प्रहाराज सरमन, जो कि राजकीय पुरोहित थे, २० गाँव अनुदान में प्राप्त करते रहे। चन्देल शासक परमार ही से ब्राह्मण सेनापति मदनलाल ने ११७१ ई० से पूर्व नन्दिनी नामक गाँव अनुदान में प्राप्त किया।[२८]

इनमें से अनेक ब्राह्मण इतने समृद्धशाली व धनी थे कि उन्होंने अधिकारियों व मन्त्रियों के पदों पर रहते हुए बड़े-बड़े मन्दिर बनाने के लिए बहुमूल्य आभूषण व गाँव दान में दिए। बंगाल के शासक हरिवर्मन के युद्ध मन्त्री भट्ट भावदेव ने अनन्त वसुदेव का विशाल मन्दिर बनवाया। उसने उसके पास एक तालाब बनवाया और उसके समीप उद्यान लगवाया। बंगाल में किसी अज्ञात ब्राह्मण ने एक मन्दिर बनवाया और दान के लिए उसने ७ द्रोन भूमि देवी-देवताओं की पूजा पर व्यय करने के लिए दी। लक्ष्मीधर ने स्वयं **गृहस्थखण्ड** के प्रारम्भ में लिखा है कि उसने अनेक वितृदान की स्थापना की जिनमें की ज्योतिषियों के परिवार सुखी जीवन व्यतीत करते थे। केशव नामक ब्राह्मण नायक तथा वसुदेव नामक दण्डनायक ने जयसिंह छेदी तथा विक्रमादित्य चालुक्य के समय मन्दिरों का निर्माण कराया। बनारस का एक ब्राह्मण प्रतिदिन १००० ब्राह्मणों को खाना खिलाता था। पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु के पश्चात् जब उसका पुत्र हरिराज साखम्मरी की गद्दी पर बिठाया गया तो वामन नामक मन्त्री ने अनिहलपाटक जाकर अवकाश ग्रहण कर लिया। उस समय उसके पास बीस लाख दो हजार द्रम थे।

१२वीं शताब्दी के अन्त तक ब्राह्मण समाज प्रादेशिक आधार पर विभाजित हो चुका था और उनमें जातियाँ व उपजातियाँ स्थापित हो रही थीं तथा उच्च व निम्न गोत्रों का निर्माण हो रहा था। अपरक ने यजनवलक के विचारों की पुष्टि करते हुए कहा कि यदि कोई ब्राह्मण तीन वर्ष तक ईश्वर की पूजा धन प्राप्त करने के लिए करता है तो वह इतना अशुद्ध हो जाता है कि यदि उसे कोई छू ले तो उसे अपने को शुद्ध करने के लिए स्नान करना चाहिए। मत्स्य पुराण के अनुसार जो ब्राह्मण त्रिसंकु, बारवरा, ओदेरा, आन्ध्र, टका, द्राविण और कोंकण में निवास कर रहे हैं, उन्हें अन्त्येष्टि के समय नहीं बुलाना चाहिए। यदि सम्पूर्ण भारत में नहीं तो पूर्वी भारत में निम्न जाति के ब्राह्मणों की संख्या में अवश्य वृद्धि होती रही। इस प्रकार ब्राह्मणों की एकता समाप्त हो गई। सम्पूर्ण ब्राह्मण समाज विभिन्न वर्गों व उपवर्गों जातियों तथा उपजातियों व गोत्रों में विभाजित हो गया। उच्च वर्गों के पुरोहितों ने निम्न जाति के ब्राह्मणों से दूर रहना प्रारम्भ किया और इसी प्रकार से साधारण पुरोहितों व गाँव के पुरोहितों में भेदभाव उत्पन्न हुआ।

इसी काल के प्रारम्भ में जब पुराण की कथाओं की लोकप्रियता बढ़ी, तन्त्रवाद ने बल पकड़ा व अन्य मतों का विकास हुआ तो वेद जानने वाले पुरोहितों का प्रभाव कम होने लगा। इसके १२वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में जब हिन्दू शासकों के राज्य पतनोन्मुख हुए तो पुरोहितों की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे कम होने लगी। हिन्दुओं के मन्दिरों पर जब विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा प्रहार होने लगा और भक्ति का स्वरूप बदलने लगा तो ब्राह्मणों की स्थिति पूर्व जैसी न रही अनेक ब्राह्मणों को गरीबी में जीवन व्यतीत करना पड़ा।

ब्राह्मणों में अर्न्तप्रादेशिक गतिशीलता थी। ग्यारहवीं शताब्दी में मूलराज के निमन्त्रण पर १००० ब्राह्मण उत्तरी भारत से गुजरात गए और वहाँ बस गए। १२वीं शताब्दी में गुजरात के नागर ब्राह्मण वाराणसी में आकर बस गये। कन्नौज के ब्राह्मण अपने परिवारों को लेकर गुजरात, बंगाल, काश्मीर आदि गये। श्रावस्ती से अनेक ब्राह्मण उड़ीसा, बंगाल, चन्देल राज्य, मालवा, आसाम एवं कर्नाटक गए और उन्हें राज्य की ओर से अनुदान व उपहार मिले।[२९] मगा ब्राह्मण या सकदीपी ब्राह्मण ईरान से आये थे और वे बंगाल में प्रसिद्ध हुए।[३०] उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वे कोई भी व्यवसाय ग्रहण कर सकते थे। वे अपने कार्यों के साथ-साथ खेती कर सकते थे, अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर सैनिक व योद्धा बन सकते थे, व्यापार व विनिमय अथवा कोई भी कार्य कर सकते थे। इस प्रकार से उनमें अर्न्तप्रादेशिक एवं व्यवसायिक गतिशीलता की झलक मिलती है। दूसरे व्यवसायों को ग्रहण करने पर भी उनकी जाति एवं सामाजिक स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता था।

क्षत्री

सातवीं व आठवीं शताब्दी से क्षत्रियों का उत्कर्ष हुआ और १२वीं शताब्दी के अन्त तक उनकी ३६ जातियों ने उत्तरी भारत में ख्याति प्राप्त कर ली। अलबरुनी के अनुसार हिन्दू समाज में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का स्थान था। उनका जन्म ब्रह्मा की भुजा से हुआ था। इसलिए वे ब्राह्मणों से अधिक निम्न नहीं थे। उन्हें वेद अध्ययन करने की अनुमति तो थी किन्तु उसकी शिक्षा देने की अनुमति उन्हें नहीं थी। उनका मुख्य कर्त्तव्य समाज तथा देश की रक्षा करना तथा शासन करना था। इसीलिए उनका सृजन हुआ था। उन्हें यज्ञोपवीत संस्कार करवाने की आज्ञा थी जो कि १२ वर्ष की आयु में सम्पन्न करा दिया जाता था। वे यद्यपि पुरोहित नहीं बन सकते थे किन्तु सभी धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न कर सकते थे। अलबरुनी ने यद्यपि कहीं भी राजपूत शब्द का उपयोग नहीं किया है, परन्तु इस काल में क्षत्रिय शब्द स्थान पर उनके लिए राजपूत शब्द का प्रयोग हुआ। इस शब्द का प्रयोग सैनिक कबीलों व जातियों तथा उन साधारण सरदारों के लिए किया जाता था जिनके पास भूमि थी तथा जिसका ग्रामीण अभिजात वर्ग में महत्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में क्षत्रिय तथा राजपूत शब्द पर्यायवाची शब्द हो गये, क्योंकि इस काल में क्षत्रियों में से ही अनेक शासक हो गये जिनका अधिकार छोटे बड़े राज्यों पर था। इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। इस वाद-विवाद में न जाकर इतना कहना ही यहाँ यथेष्ट होगा कि धर्म के पतन व हिन्दू धर्म के उत्थान तथा अरब व तुर्की आक्रमण के दबाव के कारण उनका उत्थान हुआ। प्रारम्भ में राजपूताना व गुजरात में राजपूत जातियों का उत्थान हुआ। तत्पश्चात् स्थानीय जातियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, भारतीय एवं विदेशी जातियों में से उनकी उत्पत्ति हुई। हूण जाति में से ही ३६ राजपूत जातियाँ उत्पन्न हुईं। अन्य राजपूत जातियों की उत्पत्ति कुषाणों से

सम्बन्धित वनफर जाति, गोंड व भारों आदि से भी हुई और वे सभी भारतीय समाज के सन्निहित हो गये। क्षत्रियों की वनफर जाति की उत्पत्ति कुशाणों से, कभा व सोलंकियों की उत्पत्ति शिव जी के धनुष तथा कुलुंक से, मध्यभारत तथा दक्षिण के राजपूतों की उत्पत्ति गोण्ड तथा भार, मेदों की उत्पत्ति आदिवासी जातियों से मानी गई है। वृहद धर्म पुराण के अनुसार क्षत्रिय मिली-जुली जातियों से उत्पन्न हुए थे।[३१]

११वीं शताब्दी में इब्न खुदबर्दा ने लिखा कि क्षत्रियों को दो वर्गों में, सवकुफरिया तथा कहरिया जातियों मे विभाजित थे। अल्टेकर के अनुसार यह दो शब्द वास्तविक संस्कृत के शब्द सत्क्षत्रिय तथा क्षत्रिय है। १२वीं शताब्दी तक इन दोनों शब्दों का प्रयोग समकालीन साहित्य तथा शिलालेखों से मिलता है।[३२] सत क्षत्रिय शासक होते थे तथा क्षत्रिय शब्द का प्रयोग कृषकों के लिये भी किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति क्षत्रियों के भूमिपति शासक वर्ग के उत्कर्ष के कारण हुई होगी क्योंकि क्षत्रिय समाज में वह भी अपना स्थान रखना चाहता था। इसका एक और कारण यह भी हो सकता है कि शुद्ध क्षत्री अपने समाज में किसी अन्य क्षत्री जाति के ऊपर उठते हुए न देख सकते हों अतः उन्होंने उन्हें केवल क्षत्री ही कह कर उन्हें नीचा स्थान देना ही श्रेयकर समझा। उदाहरणार्थ ११वीं शताब्दी में गहदावला और सेन शासक शुद्ध राजपूत जाति में सम्मिलित नहीं किये जाते थे।[३३]

१२वीं शताब्दी तक क्षत्रिय शासक वर्ग इस देश के विभिन्न प्रदेशों में अनुक्रमानुसार संगठित हो चुका था—राजपुत्र, सामन्त, महासामन्त, मण्डलिक, महामण्डलिक जो कि महाराजाधिराज के अन्तर्गत होते थे। उनके पास जागीरें होती थीं। उत्तरी भारत के राजपूतों की अनेक जातियाँ व उपजातियाँ थीं।[३४]

क्षत्रियों या राजपूतों का मुख्य कार्य अन्य तीन वर्णों की रक्षा करना था। मनु, पराशर, हरित, वौद्धायन, देवल, लक्ष्मीधर आदि के अनुसार शासक के रूप में उनका प्रमुख कर्त्तव्य शस्त्र धारण करना, देश पर न्याय पूर्वक शासन करना, प्रतिवादियों के मध्य झगड़ों को निवटाना तथा वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना था।[३५] साधारण क्षत्रियों का धर्म था कि वे अन्तिम समय तक युद्धस्थल में रहे व युद्धस्थल से भाग खड़े न हो। देवल के अनुसार क्षत्रियों का धर्म ईश्वर की सेवा करना तथा व्राह्मणों की रक्षा करना था। इस काल में दान देने तथा शिक्षा देने के, क्षत्रियों को ब्राह्मणों के सभी विशेषाधिकार प्राप्त थे। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार था। किन्तु वे उसकी शिक्षा नहीं दे सकते थे। वे कठिन समय में खेती भी कर सकते थे। लक्ष्मीधर तथा देवल के अनुसार वे उपहार व दान भी ले सकते थे। उदाहरणार्थ, राजा जयचन्द ने ११७७-११८० ई० के मध्य अन्तर्वेदी में रावत राजधर वर्मन नामक क्षत्री को कई गाँव दान में दिये।[३६] समाज में उनका स्थान ब्राह्मणों के बाद माना जाता था।

कानूनी मामलों में क्षत्रियों की स्थिति ब्राह्मणों से भिन्न थी। अलवरुनी के अनुसार चोरी करने पर एक ब्राह्मण को अन्धा बना दिया गया था। किन्तु क्षत्री को केवल लँगड़ा ही बना कर छोड़ दिया जाता था। वे गम्भीर से गम्भीर अभियोग के लिये भी मृत्युदण्ड से मुक्त थे।

इस काल में उत्तरी भारत में राजपूतों की शासन करने वाली प्रमुख जातियाँ, गुहिल, गुजार-प्रतिहार, छप, चौहान, चालुक्य, राष्ट्रकूट, चन्देल, परमार, कच्छयघट और गहदावला थी। कवि पदमनाम द्वारा रचित सुप्रसिद्ध गुजराती ग्रन्थ में राजपूत जातियों में ३६ जातियाँ जैसे कि बाला, धजा, जेतुहा, राठौड़, परमार, चौहान, सोलंकी, परिहार, चाम्बाड़ा, तँवर, यादव, गोहिल इत्यादि का उल्लेख है। ब्राह्मणों की भाँति इस वर्ग में भी अन्तर्प्रादेशिक तथा गतिशीलता थी। किन्तु यह गतिशीलता द्रुतगामी नहीं थी। ब्राह्मणों की भाँति सभी राजपूत जतियाँ अपने ही संगठन में अपनी-अपनी तादात्म्यता को बनाए रखना चाहती थी। भेद-भाव, जाति पाँति एवं ऊँच-नीच की भावना ने उन्हें कई प्रकार से अनेक स्तरों पर विभाजित कर दिया था। किन्हीं भी अर्थों में राजपूतों में इस काल में एकरूपता एवं सजातीयता नहीं थी।

वैश्य

हिन्दू समाज के प्रथम दो वर्गों की भाँति वैश्य भी व्यवसाय एवं प्रदेश के आधार पर विभाजित थे। उनके भी अनेक जातियाँ व उपजातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। ग्यारहवीं शताब्दी तक उनमें व शूद्रों में कोई अन्तर नहीं रह गया था। अलवरुनी ने उनमें कोई अन्तर न देखा। किन्तु ऐसी बात न थी। वैश्य के यज्ञोपवीत में सूत के दो धागे होते थे। शूद्र का यज्ञोपवीत मलमल के धागे से बना होता था। जब कि वैश्यों के लिए नमक, माँस, दही, तलवारें तथा पनीर, पानी तथा मूर्तियाँ बेचना वर्जित था, परन्तु शूद्र सभी प्रकार की वस्तुएँ बेच सकते थे।[३७] अलवरुनी के अनुसार वैश्यों का कर्त्तव्य खेती करना, भूमि को जोतना, पशुओं का पालन करना, ब्राह्मणों की आवश्यकताओं को पूर्ण करना इत्यादि था। जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह के अनुसार गुजरात तथा राजस्थान में श्रीमाली, प्रागवत, उपकेश, घरकटा, पल्लावाल, मोधा, गूजर, नागर, दिसवान, औद, दुम्वाल वैश्य थे। उनकी अनेक शाखाएँ उत्पन्न हुईं और व्यवसाय व प्रदेश के अनुसार उनमें बराबर विभाजन होता रहा। प्रारम्भ में इन विभिन्न वैश्य जातियों व उपजातियों में अन्तर था तथा वे शूद्र से भी भिन्न थे। किन्तु ८वीं तथा १०वीं शताब्दी के राजनीतिक एवं आर्थिक पतन के कारण वैश्यों की स्थिति में गहन परिवर्तन आया। उनमें तथा शूद्रों में कोई विशेष अन्तर न रहा। हाँ इतना अवश्य हुआ कि अगली दो शताब्दियों में व्यापार व वाणिज्य का जब पुनः विकास हुआ तो वैश्य समुदाय की अनेक जातियाँ व उपजातियाँ भी समृद्धशाली हो गईं। इनमें से कुछ ने तो गुजरात में सामन्त वर्ग में भी प्रवेश कर लिया।[३८]

कायस्थ

क्षत्रिय तथा वैश्यों के मध्य में इस काल में एक नवीन जाति का अभ्युदय हुआ। यजनवलिका में कायस्थों का प्रथम वार उल्लेख हुआ। किन्तु गुप्त काल के शिलालेखों में कायस्थ का उल्लेख मिलता है। मूल रूप से वे किसी शासक या सामन्त के अधिकारी हुआ करते थे। उनका मुख्य कार्य राजकीय प्रपत्रों को लिखना, राजकीय हिसाब-किताब की देख-रेख करना, भूराजस्व विभाग को देखना तथा न्यायाधीशों की सहायता करना था। **वृहतकथा कोष** के रचयिता हरिसेन ने लेखक व कायस्थ शब्दों को पर्यायवाची माना। १०वीं से १३वीं शताब्दी के शिलालेखों से मालूम होता है कि वे सरकारी प्रपत्र लिखते थे तथा वे अधिकारी होते थे, जिन्हें कि भूमि अनुदान सम्बन्धी जानकारी प्रदान की जाती थी। यजनवलिका से लेकर विजनेश्वर के अनुसार शासक पर अत्यधिक प्रभाव रहने के कारण वे समय-समय जनता को उत्पीड़ित करते थे। **राजतरंगनी** में भी कायस्थों द्वारा यदा-कदा अत्याचार किये जाने का उल्लेख मिलता है। वास्तव में ८वीं शताब्दी के लगभग कायस्थों ने जाति का रूप ग्रहण किया। उसना तथा वेदव्यास नामक स्मृतियों में कायस्थ जाति का उल्लेख है। किन्तु वेदव्यास में कायस्थों को शूद्रों के मध्य, नाईयों, कुम्हारों तथा अन्य निम्न जातियों के समकक्ष रखा है। कायस्थों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। श्री हर्ष ने कायस्थों की उत्पत्ति यम के लिपिक चित्रगुप्त से अनुरेखित की है किन्तु शिलालेखों में कायस्थ शब्द ११वीं शताब्दी में मिलता है। कुछ शिलालेखों में उनकी वंशावली कुश व उसके पिता कश्यप से अनुरेखित की गई है। एक मत के अनुसार वे क्षत्री, जिन्हें कि ब्रह्मा ने बनाया था और जो कि परसशम्भ द्वारा निष्कासित करने के उपरान्त भी निर्भीक बने रहे, उन्हें कायस्थ कहा गया है। १०४८-४९ ई० को रीवाँ शिलालेख के अनुसार कचरा नामक सन्त, जो कि कुलच्छना का निवासी था, ने एक शूद्र की सेवा से प्रसन्न हो कर उसे एक पुत्र रत्न का वरदान दिया। यह पुत्र ही कायस्थों का पूर्वज हो गया। क्योंकि शूद्रों की काया में अनेक गुण थे अतएव उनके वंशज कायस्थ कहलाये। उदय सुन्दरी कथा के लेखक सोधाला ने कायस्थों की उत्पत्ति कालिदित्य जो कि सिलादित्य नामक शासक था तथा महेश्वर का अवतार से बताई है। इस प्रकार से उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विचार-धाराएँ है।[३९] ब्राह्मणों की भाँति कायस्थों की भी अनेक जातियाँ व उपजातियाँ थीं। गौड़ कायस्थ वंश, माथुर कायस्थ, श्रीवास्तव, निगम, कायस्थ, अपने निवास स्थान के हिसाब से प्रसिद्ध हुए। इस काल में बंगाल के कायस्थों को गौड़ कायस्थ कहते थे। वे कुशल लिपिक थे। आदित्यसेन के अफसड़ शिलालेख के समय से वे शासकों व सामन्तों की सेवा करते थे। गौड़ कायस्थ शाखम्भरी तथा नड्डूला के चौहान शासकों की सेवा में भी थे। उन्होंने फिन्सरिया (९९९ ई०) दिल्ली शिवालिक (११६३ ई०) तथा नाडौल शिलालेख दुर्लभराज, वीसलदेव तथा रायपाल के लिए लिखे। इसी प्रकार से गौड़ कायस्थ चन्देल व कालाचुरी शासकों के दरबार में थे। यह गौड़ लिपिक बहुत

ही कुशल होते थे। उनमें से कुछ विद्वान भी हुए। ११२९-३० ई० के गोविन्द चन्द्र गधावला के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि सुरदित्य नामक कायस्थ सभी शास्त्रों का ज्ञाता था। १०वीं शताब्दी में जदथा संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित था। १३वीं शताब्दी के पतिराजा ने अपने को ज्ञान का समुद्र तथा करना समुदाय का प्रकाश कहा है। राजाधर के परिवार के सदस्य चन्देल शासकों के मन्त्री थे। किनसरिया शिलालेख का लिखने वाला महादेव एक महान् कवि था। चौहान शासक नदूला के राज्यपाल के एक सामन्त ने पेथाडा की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे ठाकुर की उपाधि दी।[४०]

आजमगढ़ पत्थर शिलालेख से ज्ञात होता है कि श्रीवास्तव कायस्थ के पूर्वज नाना व उसके पूर्वज इलाहाबाद जिले में कोसल के निवासी थे। इस प्रदेश में तीन शिलालेख गहदावला शासक गोविन्द चन्द्र और जयचन्द्र के लिये इन्हीं श्रीवास्तवों ने लिखे (१२१९ से १२२९ ई०) अन्य शिलालेखों में भी उनके नाम मिलते हैं। जगलाल देव प्रथम (१११४ ई०) से रतनपुर के कालाचुरी शासकों की चार पीढ़ियों तक लिपिकों के एक श्रीवास्तव कायस्थ थे। कीर्तिधर, वत्सराज, धर्मराज, चित्रभानु, देवगत, रतनसिंह ने कालाचुरी शासकों की सेवा की। इसी प्रकार से श्री सुजान (११९७ ई०) ने अपने स्वामी, बिहार के शाहाबाद क्षेत्र के इन्द्रधावल के सामन्त उदयराज के लिए एक ताम्रपट्ट पर शिलालेख लिखा।[४१]

कायस्थों के वास्तव्य समुदाय के सदस्यों ने भी ऊँचे पद प्राप्त किए। गहधवला शासकों गोविन्द चन्द्र और जयचन्द्र के अन्तगंत तथा चन्देल शासक भोजवर्मन तथा इन्दरवर्मन के अन्तर्गत एक अधिकारी के रूप में इन्हें एक सामन्त या ठाकुर का स्तर प्राप्त था। अजयगढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि भोजवर्मन के समय उनके एक परिवार ने अच्छी भूमिका निभाई। यह परिवार तक्कारिका से यहाँ आई थी। उनकी वंशावली ठाकुर जाजुका जो कि गाण्डा के अन्तर्गत (१००२—१०११ ई०) था, से प्रारम्भ होती है। उसे न केवल शासक से अनुदात प्राप्त हुआ वरन् सर्वाधिकार का पद भी प्राप्त हुआ। उसका पुत्र महेश्वर था, जिसने कि अपने पिता की भाँति पीपलखा नामक गाँव दान में प्राप्त किया और उसे कालिजर के दुर्ग का विसीसा नियुक्त किया गया। इसी परिवार का गजाधर परमादीदेव का परामर्शदाता व मन्त्री बना। उसके भाई जौनाधर और मालाधर साहसी योद्धा थे। इसी परिवार के अन्य सदस्यों को भी प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुए। इसी प्रकार से माथुर, कतारिया, निगम घरानों के कायस्थों के सम्बन्ध में शिलालेखों में सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि वे उस काल में विभिन्न पदों पर थे।[४२]

कायस्थों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो भी मत हों निःसन्देह ७वीं शताब्दी से कायस्थों ने उच्च राजकीय सेवाओं में अपने गुणों के कारण स्थान प्राप्त कर जाति के अनुक्रम में एक उथल-पुथल मचा दी थी। क्योंकि धर्मशास्त्र व अर्थशास्त्र के अनुसार

समाज के दो वर्गों के सदस्य ही उच्च पदों पर नियुक्त किए जाने के अधिकारी थे। कायस्थों की उच्च पदों पर नियुक्तियों से उन दो उच्च वर्गों के विशेषाधिकारों व अधिकारों को ठेस लगी। इस काल के साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि कायस्थ न केवल निम्न राजकीय सेवाओं में वरन् उच्च राजकीय सेवाओं में भी थे। यद्यपि विधि सम्बन्ध ग्रन्थों में कायस्थों का निम्न राजकीय सेवा में होना लिखा है किन्तु आजमगढ़ शिलालेख, जो कि भोजवर्मन के समय का है, में एक कायस्थ परिवार की वंशावली दी गई जिससे ज्ञात होता है कि उन्हें महत्वपूर्ण पदों, परामर्शदाता, दुर्गों के गर्वनर आदि के पद पर रहने का ११वीं व १२वीं शताब्दी में श्रेय प्राप्त था। कुछ को चन्देल शासकों से गाँव अनुदान में प्राप्त हुए थे तथा उन्होंने सेना में ख्याति प्राप्त की। नरवर (राजस्थान) से प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि मथुरा के कायस्थ परिवार के एक पूर्वज जिसका नाम दामोदर था, कोषाधिकारी के पद पर था। एक अन्य साक्ष्य के अनुसार गौड़ परिवार का गजाधर, परमारदी का युद्ध-शांति मन्त्री था। उड़ीसा के ११वीं शताब्दी के शिलालेखों में भी कायस्थों के नाम मिलते हैं। बल्लालसेन के अन्तर्गत कर्ण कायस्थ हरिघोष **सन्धिविमृहिका** के पद पर था। **प्रबोधचिन्तामणि** के अनुसार लक्ष्मणसेन का मुख्यमन्त्री उमादितधर भी कायस्थ था।[४३] काश्मीर में भी कायस्थ विविध राजकीय पदों पर आसीन थे। वे वहाँ दरबारी लिपि, मार्ग निरीक्षक गाँव के हिसाब-किताब के निरीक्षक, न्यायादेश, वित्तीय अधिकारी, प्रान्तीय शासक, गृह विभाग के अध्यक्ष, युद्ध मन्त्री के पदों पर थे। कुछ कायस्थ मुख्यमन्त्री तथा सेनानायक भी हुए।[४४]

इस काल में कायस्थों का शिक्षा व साहित्य में भी विशेष योगदान रहा। प्रो० यादव के अनुसार, तथागतरक्षिता, जो कि उड़ीसा का निवासी था, एक कायस्थ था तथा एक वैध परिवार का था। वह विक्रमशिला विश्वविद्यालय में तन्त्र का अध्यापक था। कुछ प्रदेशों में उन्हें ठाकुर की उपाधि प्राप्त थी। कहीं-कहीं वे इतने धनी थे कि उन्होंने मन्दिर तथा बौद्धों के लिए मठ बनवाए। उड़ीसा में, कायस्थ समाज में नेता की भूमिका निभाने लगे।[४५] कायस्थों के गुणों, उनके प्रतिभा एवं योग्यता, प्रशासनिक क्षमता के कारण ही उनका उद्भव एवं उत्कर्ष राजनीति व समाज में हुआ। उनके उत्कर्ष से ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट आई। वे अपने विशेषाधिकार खोने लगे। जब राज्यों में उनकी प्रतिष्ठा कायस्थों के उत्कर्ष के कारण गिरने लगी तो पारस्परिक ईर्ष्या के कारण उन्होंने उन्हें शूद्रों की श्रेणी में रख दिया। शिक्षा व साहित्य में कायस्थ तो आगे बढ़ ही रहे थे। उन्होंने ब्राह्मणों के अनुदान भी जब अपने हाथों में ले लिए तो कायस्थों के प्रति उनका आक्रोश पहले से भी अधिक बढ़ गया। ज्यों-ज्यों तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था व्यापक होती गई तथा विभिन्न विभागों का हिसाब-किताब रखना प्रारम्भ हुआ, वैसे-वैसे कायस्थों का प्रशासन में प्रभाव बढ़ा और उन्होंने छोटे-छोटे ब्राह्मण मन्त्रियों, परामर्शदाताओं, प्रान्तीय शासकों का स्थान

ले लिया। तत्कालीन समाज में यह बड़ा परिवर्तन था. जिसने दो उच्च वर्गों के मध्य अपना स्थान बना लिया।

शूद्र

हिन्दू समाज का सबसे निम्न वर्ग शूद्रों का था। उस जाति में अनेक तत्व थे, उदाहरणार्थ, श्रमिक कृषक, साधारण कृषक, शिल्पकार, मजदूर, नौकर-चाकर, तथा वे सभी लोग जिनका व्यवसाय बहुत निम्न कोटि का था। उनकी अनेक जातीय-श्रेणियाँ थी। प्रो० यादव ने **अभिदान चिन्तामणि**, हेमचन्द की कृति देसीनमामला तथा यादव प्रकाश की **विजयन्ती** के आधार पर उन सभी व्यावसायिक समुदायों का उल्लेख किया है जो कि शूद्र कहे जाते थे। उदाहरणार्थ मज्दूर, लोहार, पत्थर काटने वाले, शंख बनाने वाले, कुम्हार, जुलाहा, बढ़ई, चर्मकार, तेली, ईंट बनाने वाले, स्वर्णकार, ताँबे का काम करने वाले, जौहरी, चित्रकार, बोझा ढोने वाले, भिश्ती, दरजी, धोबी, कलाल, मदिरा बेचने वाले, माली, भड़ुआ, नट, घूम-घूम कर वस्त्रों के विक्रेता, शिकारी, चाण्डाल, नर्तक, अभिनेता, आदि आदि। व्यवसाय के आधार पर शूद्रों की जातियों की सूची बहुत लम्बी है। उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेशों में उनकी अनेक जातियाँ व उपजातियाँ थीं। उनके व्यवसाय के अनुसार ही उनका जीवन स्तर एवं सामाजिक स्थिति थी। मेधातिथि के समय से उनकी दशा में सुधार हुआ। शूद्र परिवार में केवल जन्म लेने से ही उसके स्तर का निर्धारण होना बन्द हो गया। लक्ष्मीधर के अनुसार एक शुद्ध आचरण रखने वाला शूद्र एक दुष्ट ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य से कहीं अधिक अच्छा है। इसी काल में अनेक कारणों से शूद्रअनेक प्रतिबन्धों से मुक्त हो गए। मेधातिथि के अनुसार न तो उन्हें बन्दी बनाया जा सकता था और न ही उन्हें किसी ब्राह्मण पर आश्रित रखा जा सकता था। वह व्याकरण तथा अन्य विशयों का अध्यापक हो सकता था तथा स्मृतियों द्वारा निर्दिष्ट अनेक संस्कारों, जो कि अन्य वर्गों के लिए थे, को भी पालन कर सकता था। वह ईश्वर का नाम ले सकता था और बिना मन्त्र उच्चारण किए हुए नामकरण तथा अन्य संस्कार सम्पन्न कर सकता था। शूद्रों के अधिकारों के सम्बन्ध में समकालीन विचारकों में मतभेद थे। वे न तो अपना जीवन दरिद्रता में व्यतीत कर रहे थे और न ही अछूत थे। यद्यपि धर्मशास्त्रों के अनुसार शस्त्र ग्रहण करने व क्षत्रियों की भाँति युद्ध करने का उन्हें कोई अधिकार न था किन्तु इस काल में वे युद्ध स्थल में युद्ध करते हुए भी देखे गए।

इस काल में शूद्रों के कई वर्ग व उपवर्ग उत्पन्न हो गए। वैजयन्ती के अनुसार उनकी ६४ जातियाँ थीं। सम्भवतः नवीन जातियों की उत्पत्ति का मूल कारण उच्च वर्ग के पुरुष व निम्न वर्ग की महिला में विवाह, प्रादेशिक स्थितियाँ तथा व्यवसायों में विभिन्न कुशलताओं का विकसित होना रहा होगा। कभी-कभी किसी एक व्यवसाय में एक से अधिक निपुणताएँ उत्पन्न होने से उसी जाति में कई उपजातियाँ उत्पन्न हो जाया करती थी। अलबरूनी के अनुसार शूद्रों के उपरान्त अन्त्येज की

गिनती होती थी। विभिन्न प्रकार की सेवाएँ करते थे और उनकी गिनती किसी जाति में न होकर केवल किसी व्यवसाय या शिल्प में लगे हुए सदस्य के रूप में होती थी। उनके ८ वर्ग थे, जिसमें चमार व जुलाहों और धोवी को छोड़कर वे अर्न्तविवाह कर सकते थे। उनके ८ वर्गों या निकाय में धोवी, चमार, नट, डलिया तथा ढाल निर्माता, नाविक, मछलीमार, वहेलिए तथा जुलाहे थे। चार जातियाँ एक दूसरे से समीप या उसी स्थान पर नहीं रहती थी। वे गाँव या शहर के वाहर रहती थी। इस काल में जूते वनाने वाले चर्मकार से श्रेष्ठ हो गए। स्वर्णकार, पीतलहार तथा रूपकारों के स्तर में सुधार हुआ तथा अछूत अन्तेज्य, जिसमें कि धोवी, जूते वनाने वाले, डलिया व ढालों को वनाने वाले; नाविक, मछुहारे, वहेलिया, शिकारो, नट, जुलाहों की पहले गणना होती थी वे सव सत् शूद्र कहे जाने लगे। शूद्रों की निम्न श्रेणी में हाडी, डोम चाण्डाल व वधातू आ गए। शूद्रों का समाज सवसे निम्न स्थान था। वे गन्दा काम करते थे जैसे कि गाँव की सफाई करना, मैला उठाना इत्यादि। अलवरुनी ने डोम को गाते व वाँसुरी वजाते हुए, अभियोगियों को सूली पर चढ़ाते तथा जानवर मारते हुए देखा। वधातू फाँसी देते थे तथा मरे हुए जानवरों का माँस खाते थे। इसी प्रकार चाण्डाल भी निम्न प्रकार के कार्य किया करते थे। वे शहर ये वाहर रहते थे। शहर में प्रवेश करते समय वे डण्डे को खड़खड़ाते हुए आते थे ताकि समाज के उच्च वर्ग के लोग सतर्क हो जायें और उनकी छाया इन पर न पड़ सके। असत् शूद्रों की स्थिति, शूद्र जो कि अछूत थे, से अच्छी थो।

इन वर्गों के अतिरिक्त इस काल में समाज के निम्न वर्गों व अछूतों की श्रेणी में सैकड़ों आदिवासी जातियाँ थीं जैसे भील, सवरस, आन्ध्र, खासा, कुनिका, वेडिया आदि।

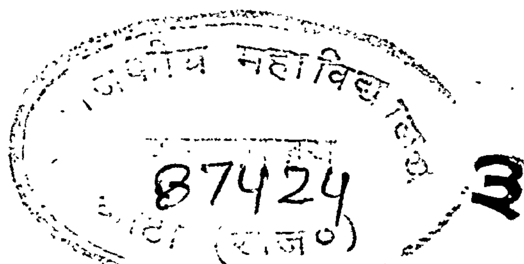
अलवरुनी के अनुसार हिन्दुओं ने प्रत्येक जाति को उसके व्यवसाय या जीवन चर्या के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम दे दिए थे। जैसे कि ब्राह्मणों को जव तक वे घर में ही रह कर अपने कर्तव्यों का पालन करते थे, ब्राह्मण कहलाते थे। किन्तु जव वे एक वार दिन में यज्ञ करते थे तो उन्हें इष्टि कहा जाता था, तीन वार यज्ञ करते थे तो उन्हें अग्निहोत्री कहा जाता था। जव वे यज्ञ करते समय अग्नि को कुछ समर्पित करते थे तो उन्हें दीक्षित कहा जाता था। इसी प्रकार से अन्य जातियों के भी नाम रक्खे गए। जातियों के नीचे वाले वर्गों में हांडी, जो कि अपने को गन्दगी से दूर रखते थे, कहे जाते थे। उनके वाद डोम थे जो कि वाँसुरी वजाते व गाना गाते थे। उनसे निम्न जातियाँ भी थीं, जिनमें वधातू थे जो कि न केवल मरे हुए जानवरों का माँस वरन् कुत्ते तथा अन्य जंगली जानवरों के मांस का भक्षण करते थे।

उपरोक्त विवरण से कई बातें स्पष्ट होती हैं कि इस काल में मुस्लिम संसार से मुसलमान सूफी सन्तों, व्यापारियों, सैनिकों व साधारण मुसलमानों के निरन्तर आने के कारण हिन्दू समाज में एक नवीन जाति ने प्रवेश किया। इससे पूर्व भी यहाँ अनेक

विदेशी जातियाँ आकर बस चुकी थीं किन्तु उनके पदार्पण से हिन्दू समाज के वाह्य ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। इसके विपरीत मुसलमानों के आगमन से इस देश की सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल होने लगी। सामाजिक जटिलताएँ धीरे-धीरे शिथिल होने लगीं। आन्तरिक तथा वाह्य दवाव में आकर यहाँ के विधिवेत्ता, टीकाकार व धर्मशास्त्री, पुराणों के विश्लेपण कर्त्ता एवं रचयिता परिवर्तित परिस्थितियों के साथ समझौता करते रहे। हिन्दू समाज की विभिन्न जातियों में उपजातियों की संख्या में वृद्धि होना जातीय चेतना का प्रमाण ही नहीं कहा जा सकता है वरन् जातीय संकीर्णता के विरुद्ध उपजातियों का आन्दोलन कहा जा सकता है। समाज की वर्ण व्यवस्था डगमगाने लगी। ऐसी स्थिति में उसके वाह्य रूप को सुरक्षित रखने के लिए और मुसलमानों के प्रभाव से वचने के लिए तथा मुसलमानों द्वारा दी गई आन्तरिक एवं वाह्य चुनौतियों से सामना करने के लिए विधि-वेत्ताओं व धर्मशास्त्रियों के सम्मुख एक ही विकल्प था कि वे सदियों से चली आ रही आर्य परम्पराओं, विपमताओं एवं जटिलताओं को समाप्त न कर उन्हें उदार वना दें। अन्तर्प्रादेशिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता को देखते हुए, गतिशीलता को सत्य मानकर पुरातन व उमड़ती हुई नवीन सामाजिक व्यवस्था में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास इस काल में हुआ। संक्रमण के इस युग में किसी प्रश्न पर वैचारिक मतभेद होना प्राकृतिक एवं स्वाभाविक था। भारतीय समाज की इस स्थिति को ध्यान में रखकर ही उसके आन्तरिक ढांचे में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या अगले अध्याय में की जावेगी।

जहाँ तक इन ५०० वर्षों (७००-१२००-ई०) में मुसलमान समाज की इस देश में स्थिति का प्रश्न है, उनके सामाजिक संगठन का कोई प्रारूप प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है, क्योंकि अल्पसंख्यक जाति की भाँति वे देश के विभिन्न भागों में यत्र-तत्र विखरे हुए थे। पूर्वी व पश्चिमी समुद्रीतट व गुजरात के समुद्रतटीय प्रदेशों में मुसलमानों का व्यापारी वर्ग ही क्रियाशील व सक्रिय था। कुछ अरव व्यापारियों अथवा अन्य मुसलमान देशों के व्यापारियों तथा उनकी वस्तियों का उल्लेख तो समकालीन ग्रन्थों व विदेशी पर्यटकों के स्मरणों में मिलता है, किन्तु उसके सामाजिक संगठन के रूपरेखा की कोई झलक उनमें नहीं मिलती है। व्यापक ढंग से यह कहा जा सकता है कि तटीय प्रदेशों में व्यापारी वर्ग की प्रधानता थी। इस वर्ग में विभिन्न मुसलमान देशों के व्यापारी थे। उनमें से एक ऐसा वर्ग भी था जिन्होंने कि हिन्दू स्त्रियों से विवाह करके स्थायी ढंग से अपने परिवार यहाँ वसाए। दूसरे, वे व्यापारी थे जो कि व्यापार के सम्वन्ध में यहाँ आते-जाते रहे। मुसलमानों का दूसरा वर्ग उन लोगों का था जो कि मुहम्मद विन कासिम, सुल्ताल महमूद गज़नवी तथा मुहम्मद गौरी के साथ सैनिक योद्धा के रूप में यहाँ आए और स्वदेश न जाकर यहीं वस गए। इस वर्ग के लोगों ने स्थानीय शासकों से संघर्ष जारी रक्खा और अधिकाधिक क्षेत्र अपने अधिकार में करने का प्रयास किया। प्रारम्भ में ऐसे लोगों की संख्या कम थी और

उनके कार्यक्षेत्र भी सीमित थे। मुहम्मद बिन कासिम के समय वे सिंध तक ही सीमित रहे, सुल्तान महमूद गजनी के समय पंजाब, गंगा-जमुना के मैदान व पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ भागों तथा तत्पश्चात् पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार व बगाल में सक्रिय हो गए। उन्होंने देशी राज्यों पर आक्रमण कर उनके शासकों को पराजित कर उनके राज्यों को अधिकृत कर अपने अधीन कर लिया। संघर्ष के तृतीय एवं अन्तिम चरण में मुख्यतः मुहम्मद गौरी के तुर्की दास जो कि दासत्व से मुक्त कर दिए गए थे या तुर्की योद्धा थे, सैनिकों व योद्धाओं के अतिरिक्त सूफी सन्तों का वर्ग था। यह सूफी सन्त मुसलमान संसार के विभिन्न भागों से ११वीं व १२वीं शताब्दियों में आए व इस देश के विभिन्न भागों, विशेषकर पंजाब, राजस्थान व सिंध में आकर बस गए। इसी काल में कुछ विद्वान, दार्शनिक, धार्मिक व्यक्ति भी यहाँ आए, जिन्होंने उलमा वर्ग में अपना विशेष स्थान बना लिया। संक्षेप में यहाँ मुसलमानों में किसी प्रदेश या जाति के आधार पर वर्गों की स्थापना न होकर व्यवसाय व मत के आधार पर हुई। इन ५०० वर्षों में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था अथवा जाति-पाँति का उतना प्रभाव उन पर नहीं पड़ा जितना कि आनेवाली शताब्दियों में। उसका मुख्य कारण यह था कि हिन्दुओं का पुरोहित वर्ग उनको हेय दृष्टि से देखता रहा। शासक वर्ग उनकी बढ़ती हुई सैनिक कार्यवाहियों से तंग रहा और निम्न वर्ग उनके प्रति उदासीन रहा। इसके अतिरिक्त उनका निजी कोई सामाजिक संगठन भारतीय परिवेश में पूर्णतः विकसित न होने के कारण वे हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों के समीप न आ सके और न ही उनका विश्वास अर्जित कर सके। पृथक-पृथक समुदायों के रूप में वे इस देश में विचरण और निवास करते रहे और राष्ट्रीय धारा में आने का प्रयास तो करते रहे किन्तु उन्हें विशेष सफलता तब तक न मिली जब तक कि क्षत्री हिन्दू समाज के आधार स्तंभ बने रहे। क्षत्रियों की शक्ति का ह्रास होते ही जब मुसलमानों के अधिकार में उत्तरी भारत का अधिकांश भाग आ गया व नवीन सत्ता स्थापित हुई तो समन्वय सामंजस्य की संभावनाएँ भी बढ़ गईं।


87424

3

सुल्तान और उसके परिवार के सदस्य

१२०६ ई० में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त मध्यकालीन इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ। अभी तक शासन की बागडोर राजपूतों के हाथों में थी। वे अनेक स्वतन्त्र एवं अर्ध-स्वतन्त्र राज्यों के शासक थे। किन्तु १२०६ ई० के उपरान्त दिल्ली एक उभडते हुए साम्राज्य की राजधानी बन गई, जहाँ से शासन होने लगा। दिल्ली राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गई। यहाँ एक नवीन शासक वर्ग उत्पन्न हुआ जो कि पूर्व शासक वर्ग के समान होते हुए भी कुछ मामलों में उससे भिन्न था। नवीन शासक वर्ण में विदेशी तत्व की बाहुल्यता थी। एक ओर वे इन विदेशी तत्वों में से अनेक, जैसे कि सुल्तान इल्तुतमिश, बलबन, जलालुद्दीन फ़िरोज़ शाह खिल्जी, गयासुद्दीन तुग़लक तथा बहलोल लोदी जिन्होंने कि सिंहासन अधिकृत कर न केवल अपनी सत्ता की स्थापना की वरन् अपने वंश की स्थापना की, विदेशी थे, तो दूसरी ओर उनकी सन्ततियाँ पूर्ण रूप से भारतीय थीं। सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में सुल्तानों में बहुधा ईरान, गज़नी व ग़ौर के शासकों के राजनीतिक आदर्शों एवं परम्पराओं का अनुकरण करने का प्रयास किया और वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था को सल्तनत में स्थापित किया। परिणामस्वरूप आचार-विचार एवं व्यवहारिक क्रिया प्रणाली एवं राजनीतिक आदर्शों में सुल्तान भारतीय नरेशों से भिन्न दिखाई देने लगे। इस प्रकार से शासक के पद में तो निरन्तरता बनी रही, किन्तु उसके विशिष्ट अधिकारों, उसके खान-पान, रहन-सहन एवं क्रियाकलापों में अत्यधिक परिवर्तन दृष्टि-गोचर होने लगा।

इसके अतिरिक्त सल्तनत की स्थापना के साथ-साथ धीरे-धीरे जिस प्रकार यह वर्ग संगठित हुआ, उससे भी पता चलता है कि यद्यपि सामन्त वर्ग की निरन्तरता में कदापि सन्देह उत्पन्न नहीं होता है किन्तु उसके परिवर्तन तथा गतिशीलता के चिन्ह अवश्य स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं।

मुस्लिम समाज में इस शासक वर्ग में जिसमें कि प्रमुख शासक अथवा सुल्तान, उसके परिवार के सदस्य, तलवार धारण करने वाले अमीर व उच्च श्रेणी के सैनिक, अधिकारी, इत्यादि की गणना होती थी—इस वर्ग को अहल-ए-सैफ कहते थे। पूर्व

सल्तनत काल में हिन्दू राजाओं की शक्ति अपने छोटे-बड़े राज्यों तक ही सीमित थी। उनके कार्य-क्षेत्र एवं अधिकार क्षेत्र दोनों ही सीमित थे। किन्तु सल्तनत की स्थापना के साथ-साथ हिन्दू राज्यों का विध्वंस हुआ और उनके प्रदेश सल्तनत में मिला गए। इस प्रकार से सुल्तान का कार्यक्षेत्र समय के साथ बढ़ता और विस्तृत होता गया। इसी भाँति शासक की निरंकुशता, उसके राजत्व आदर्श एवं सिद्धान्तों में ही निरन्तरता और परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। प्रस्तुत विवरण में सुल्तान के सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पहलुओं को दृष्टि में रख कर यह बताने की चेष्टा की गई है कि सुल्तान का पद उसकी प्रतिष्ठा एवं उसके राजस्व आदर्श यद्यपि हिन्दू शासकों के समान थे, किन्तु अन्य क्षेत्रों में वह उससे कुछ हद तक भिन्न था।

अहल-ए-सैफ के सदस्यों की गणना मुस्लिम समाज के अभिजात वर्ग में होती थी। इस वर्ग में सबसे प्रमुख एवं सर्वश्रेष्ठ स्थान सुल्तान का था। सुल्तान का पद महान था। इस पद को ग्रहण करने वाला व्यक्ति राज्य व समाज में सर्वोपरि समझा जाता था। वह समाज का नेता, समाज का मुखिया एवं मार्गदर्शक था। उसका सामाजिक स्तर सर्वश्रेष्ठ था। शासक एवं समाज के नेता होने के कारण वह सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों का निर्धारक था। मुहम्मद साहब ने कहा था कि 'मुसलमान, अल्लाह, रसूल तथा हलील, उभरा (सुल्तान) की आज्ञाओं का पालन करो', 'जिसने मेरी आज्ञा का पालन किया है, उसने अल्लाह की आज्ञा का पालन किया है; 'जिसने इमाम (सुल्तान) की आज्ञा का पालन किया, उन्होंने मेरी आज्ञा का पालन किया है', तथा 'जिसने मेरी अवज्ञा की है उसने ईश्वर की अवज्ञा की है।' और 'जिसने इमाम (सुल्तान) की अवज्ञा की है उसने मेरी अवज्ञा की है।' उन्होंने अन्यत्र कहा है कि—'ओ जनता तुम्हें अपने वली (सुल्तान) चाहे वह हब्शी, दास, या अजदा या बिना नाक-कान का व्यक्ति क्यों ही न हो, की आज्ञा का पालन करना चाहिए।' उन्होंने इस महान पद की गरिमा के सम्बन्ध कहा है कि 'यदि कोई सुल्तान न होता तो लोग एक दूसरे को खा जाते।' 'पृथ्वी पर सुल्तान ईश्वर की परछाई है।' 'धार्मिक विषय एवं सिद्धान्तों की रक्षा करने का दायित्व सुल्तान का है। वह लोगों के झगड़ों को सुनता है; वह देश की रक्षा करता है और लोगों की रक्षा शत्रु के आक्रमण से करता है। अतएव उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।' सुल्तान की न्याय व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि उसके द्वारा एक घण्टे मे दिया हुआ न्याय साठ वर्ष तक पूजा-पाठ करने से भी अधिक महत्वपूर्ण है। अन्यत्र उन्होंने पुनः कहा है कि सुल्तान द्वारा एक घण्टे न्याय किये जाने के कारण अल्लाह की उपस्थिति में वह उससे अत्यन्त पवित्र एवं गुणी हो गया जो कि उसकी इबादत या प्रार्थना करता है। चाहे उसने ६० वर्ष तक नमाज़ का व्रत ही क्यों न रखा हो या रात भर नमाज़ ही क्यों न पढ़ी हो। इस प्रकार से मुहम्मद साहब ने भी सुल्तान के पद एवं उसकी प्रतिष्ठा की ओर मुसलमानों का ध्यान आकृष्ट किया।

सुल्तान

सैद्धान्तिक रूप से सुल्तान निरंकुश हुआ करता था। वह किसी भी नियम में बँधा नहीं था। उसके अधिकार असीमित थे। उस पर न तो मंत्रियों का अंकुश था और न ही उलमा का। उसकी व्यक्तिगत इच्छा ही सर्वोपरि थी। न ही वह किसी व्यक्ति अथवा मंत्रियों के गुट द्वारा निर्देशित हुआ करता था और न ही उसकी इच्छा या उसके परामर्श को स्वीकार करने के लिए कायल था। सल्तनत की स्थापना से पूर्व इस देश में निरंकुश व कठोर, प्रबुद्ध एवं उदार शासकों का निरन्तर शासन रहा। शासकों के व्यक्तिगत गुणों, उनकी योग्यता एवं अयोग्यता, काल की प्रवृत्तियों, शासन की आवश्यकताओं पर ही शासन की प्रकृति तथा शासक की स्थिति निर्भर करती थी। शासक की सैद्धान्तिक स्थिति चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु व्यावहारिक जीवन व प्रशासन में उसे सदैव अपनी प्रतिष्ठा, प्रशासनिक परम्पराओं, शरीयत व कुरान के नियमों, इस देश की पुरानी परम्पराओं, रीति-रिवाजों, न्याय इत्यादि अनेक बातों का ध्यान भी रखना पड़ता था। यह सब उसके अधिकारों को सीमित कर दिया करते थे और उसे मनमानी ढंग से शासन नहीं करने देते थे। उसे अपने उमरा वर्ग, अभिजात वर्ग तथा सर्वसाधारण की भावनाओं को भी ध्यान में रखना पड़ता था, क्योंकि वह जानता था कि उसे उनके सम्मुख एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करना है। शासक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रभाव सर्वसाधारण को विभिन्न वर्गों पर पड़ना बहुत ही स्वाभाविक था। अतएव उसके अनेक कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण जहाँगीरी (विजय) व जहाँदीरी (सुदृढ़ीकरण) हुआ करते थे। उनका वास्तविक उद्देश्य सल्तनत की सीमाओं को बढ़ाना, बाह्य आक्रमणों को रोकना, आन्तरिक विद्रोहों का दमन करना, प्रशासन की व्यवस्था करना, न्याय करना, सर्वसाधारण व कुलीन वर्ग तथा अपने लिए सुख एवं समृद्धि के साधनों को जुटाना व लोकोपयोगी कार्यों को करना था। निःसन्देह दिल्ली व आगरा के अधिकांश सुल्तान, जैसे कि इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुग़लक, सिकन्दर लोदी व इब्राहीम लोदी निरंकुश शासक थे किन्तु उनमें भी लोक-कल्याण की भावना थी। उनके कुछ राजनीतिक आदर्श थे जिन्हें कि वे मन, कर्म, वचन, साम, दाम, दण्ड, भेद से प्राप्त करना चाहते थे। उनको यह हार्दिक इच्छा थी कि सल्तनत की सीमाओं में निरन्तर वृद्धि होती रहे, उनकी सेनाएँ अनविजित प्रदेशों को विजित करती रहें, दूर-दूर तक के प्रदेश स्वतन्त्र व अर्ध-स्वतन्त्र हिन्दू राज्य उनकी अधीनता स्वीकार करें, उन्हें उपहार भेजें व खिराज या करद दें तथा उमरा वर्ग प्रशासन करने में उनका हाथ बटाएँ और सल्तनत की सुरक्षा के लिए कन्धे से कन्धा मिलाकर उनके साथ खड़े हों। वे सुल्तान की गरिमा व अपने पद की प्रतिष्ठा को निरन्तर बढ़ाने या उसे बनाये रखने में मुख्यतः अभिरुचि रखते थे।

राजनीतिक आदर्श

ऐबक ने साम्राज्य का विस्तार किया। ११८७ ई० में १२१० ई० तक उसने

भारतवर्ष में हिन्दू राज्यों को विजित किया व उसने यल्दौज को पराजित करके ४० दिनों तक गजनी को भी अपने अधिकार में रक्खा। इसी काल में मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने पूर्व में बंगाल तथा तिब्बत तक, साम्राज्य की सीमा बढ़ाने की चेष्टा की। इलतुतमिश ने पूर्व में बंगाल तक, पश्चिम में पंजाब व सिंध तक व दक्षिण-पश्चिम में ग्वालियर बुन्देलखण्ड में कालिंजर तक साम्राज्य का विस्तार किया। बलबन के समय में भी साम्राज्य की सीमाएँ लगभग यही रहीं। सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने मालवा में झाइन पर आक्रमण कर मालवा तथा अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरि तक आगे बढ़कर दक्षिण की ओर साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ाने का यत्न किया। सिंहासन पर बैठने के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने खिलजी साम्राज्यवाद को नया मोड़ दिया। उसके समय में मुल्तान व पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा दक्षिण में देवगिर तक सीमाएँ बढ़ीं। इसमें राजपूताना के राज्य, मालवा व गुजरात के अतिरिक्त दक्षिण के तीन अन्य करद देने वाले राज्य भी थे। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह, खिलजी व खुसरो खाँ के अन्तर्गत भी साम्राज्य की यही सीमाएँ रहीं। तुग़लक वंश के संस्थापक गयासुद्दीन तुग़लक ने भी साम्राज्य विस्तार की नीति को जारी रखा। फलतः पूर्व में साम्राज्य की सीमा बंगाल व लिहुत तक तथा दक्षिण में वारंगल तक रहीं। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद तुग़लक ने तो खुरासान तथा हिमालय के पर्वतीय राज्यों को विजित करने का भी स्वप्न देखा, किन्तु वह स्वप्न स्वप्न ही रहा। उसकी साम्राज्यवादी भावना की झलक दक्षिण के हिन्दू राज्यों की विजय करने, दक्षिण में दौलताबाद में दूसरी राजधानी स्थापित करने व प्रादेशिक विद्रोहों को कठोरतापूर्वक दबाने में परिलक्षित होती है। फिरोज़शाह तुग़लक के लखनौती, नगरकोट व थट्टा अभियानों से ज्ञात होता है कि वह भी साम्राज्य के प्रभुत्व को बनाये रखना चाहता था। निःसन्देह सैय्यद वंश के शासक साम्राज्यवादी न थे और न ही तत्कालीन परिस्थितियों में वे साम्राज्य-विस्तार का स्वप्न ही देख सकते थे। किन्तु प्रादेशिक राज्यों की स्थापना के बाद उन राज्यों के शासक भी राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित होते रहे और अपने राज्यों की सीमाओं के विस्तार में निरन्तर लगे रहे। उत्तरी भारत में शर्की राज्य, राजपूताना में राजपूत राज्य, बिहार व बंगाल के राज्य, मालवा, गुजरात व दक्षिण के बहमनी व विजयनगर राज्यों के शासक राज्य की सीमाओं के विस्तार के लिए बराबर संघर्ष करते रहे। बहलोल व सिकन्दर लोदी का जौनपुर के शर्की राज्य को विजित करना व हिन्दू ज़मींदारों की शक्ति को कुचलना उनकी विस्तारवादी भावना का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

निरन्तर सल्तनत की सीमाओं में विस्तार होते रहने के कारण दिल्ली व आगरा के सुल्तानों का प्रशासनिक उत्तरदायित्व भी समय के साथ-साथ बढ़ता रहा। आन्तरिक विद्रोही तत्वों को दबाने व बाह्य आक्रमणों का विफल बनाने के लिए उन्हें विशाल सेना रखनी पड़ी। परिणामस्वरूप प्रशासन की प्रकृति मुख्यतः सैनिक रही।

सेना द्वारा ही शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित की गयी। इसी काल में सुल्तान के नेतृत्व में केन्द्र से लेकर निम्न प्रशासनिक इकाइयों का क्रमशः विकास हुआ। न्याय की व्यवस्था की गई ताकि समाज के विभिन्न वर्गों में पारस्परिक झगड़ों को तय किया जा सके, भू-राजस्व तथा अन्य कर वसूल किए जा सके और समाज के विभिन्न वर्गों की रक्षा की जा सके। उत्तम प्रशासनिक व्यवस्था को विकसित करते समय सुल्तानों ने विदेशी व भारतीय तत्वों, परिस्थितियों, परम्पराओं का विशेष ध्यान रखा; क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। सदियों से चली आ रही भारतीय परम्पराएँ व रीति-रिवाजों की जड़ें भूमि में गहराई तक पहुँच चुकी थीं। उन्हें उखाड़कर फेंकना असम्भव था और न ही शरियत को प्राथमिकता देकर सैद्धान्तिक व्यवहार में असन्तुलन स्थापित कर समस्याओं का निराकरण ही किया जा सकता था। दिल्ली के सुल्तान यह जानते थे कि अल्पसंख्यक मुसलमान बहुसंख्यक हिन्दुओं का आदर करके ही शान्ति की स्थापना कर सकते हैं और सल्तनत को नीचे से सुदृढ़ कर सकते हैं। इसीलिए उन्होंने न्याय करते समय कभी भेद-भाव नहीं किया और न हिन्दू समाज के किसी वर्ग को कानून की परिधि के बाहर रखा। फलतः प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर हिन्दू-मुस्लिम प्रशासनिक सिद्धान्तों में समन्वयीकरण हुआ। अन्य शब्दों में हिन्दू-मुसलमान समाज के विभिन्न वर्गों की भावना ने कभी सुल्तान को अत्याचारी एवं निरंकुश नहीं होने दिया और न ही उन्हें अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने दिया।

एक ओर तो सुल्तान के व्यक्तित्व धर्म ने उसके अधिकारों को सीमित कर दिया तो दूसरी ओर उमरा वर्ग तथा उल्मा वर्ग ने उस पर सदैव अंकुश लगा रखा। उसे बाहर से यह दिखाना पड़ता था कि वह इस्लाम में विश्वास करता है; उसके प्रति निष्ठावान है, उसके प्रचार करने के लिए उद्यत है और वह इस्लामी राज्य की स्थापना करना चाहता है। इसलिए वह इस्लाम के सिद्धान्तों में विश्वास करता था। वह इस्लामी रीति-रिवाजों अर्थात् रमज़ान में रोज़ा रखना, पाँच समय की नमाज पढ़ना, मस्जिद में जाकर प्रार्थना करना, ज़कात देना, ग़रीबों को दान देना आदि का पालन करता था। किन्तु साथ ही साथ वह न तो व्यावहारिक-जीवन में शरीयत का पालन करता था और न ही आदर्श मुसलमान की भाँति पवित्र जीवन व्यतीत करता था। लगभग सभी सुल्तान मदिरापान करते थे, संगीत सुनते थे, शान व शौकत से जीवन व्यतीत करते थे, शासन करते समय या न्याय करते समय भी शरीयत के नियमों का उल्लंघन करते थे। उनकी कथनी व करनी में अन्तर था। संक्षेप में प्रत्येक सुल्तान के दो मुखौटे होते थे। उनमें से एक मुसलमानों के लिए तो दूसरा अन्य जातियों के लिए। वे यह जानते थे कि यह देश विविध धर्मों, मतों व जातियों का देश है जिसमें सभी जातियों के सम्मान की रक्षा करना शासक के लिए अनिवार्य है। इसीलिए उन्होंने प्रशासन को व्यापक आधार पर रखने का प्रयास किया।

सुल्तानों का राजत्व सिद्धान्त

इन सुल्तानों के सम्मुख विदेशी व भारतीय परम्पराएँ थीं जिनके अनुसार उन्हें पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया तथा प्रजा का मालिक समझा गया। शासक के पद को दैवी रंग प्रदत्त किया गया, ताकि वह उदार, समदृष्टा, साहसी, वीर, कर्त्तव्य परायण, न्याय-प्रिय और सर्व-गुण-सम्पन्न हो। अपनी प्रतिष्ठा को ऊपर उठाने के लिए एक ओर तो कुछ सुल्तानों, इल्तुतमिश व मुहम्मद-बिन-तुगलक ने खलीफ़ा से मानपत्र प्राप्त करके बढ़ाई। दूसरी ओर उन्होंने बलबन की भाँति ईरानी शासकों की दरबारी परम्पराओं व राजत्व सिद्धान्त को अपनाया। अपने आकर्षक व्यक्तित्व व वतन्त्र विचारधारा से, अलाउद्दीन खिलजी व मुहम्मद बिन-तुग़लक ने उसकी गरिमा ो बढ़ाने के लिए राजत्व सिद्धान्त को नया रूप दिया व विशेष उपाधियाँ ग्रहण कीं। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए अपने लिए कुछ विशेष अधिकार भी सुरक्षित रक्खे। बिना उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगे हुए प्रतिष्ठा में वृद्धि हुए तथा उसके विशेषाधिकार दिए हुए उसे सर्वसाधारण के ऊपर व उससे सर्वश्रेष्ठ कैसे समझा जा सकता था। उसके आचार व्यवहार तथा आचरण अन्य लोगों से भिन्न होने आवश्यक थे।

सुल्तानों की सार्वभौमिकता एवं निरंकुशता

अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करना सुल्तान का प्रमुख कार्य था। उन्होंने अपनी शाही प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए सुल्तान के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और अपनी सल्तनत के सम्बन्ध में नवीन धारणा बनाई। उन्होंने ईरानी सम्राटों, जो कि अपनी भव्यता, विलासता, गरिमा, गौरव, सर्वश्रेष्ठताओं के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे, का अनुकरण किया और उन्हीं की भाँति व्यवहार करना आरम्भ किया। डॉ० आर० पी० त्रिपाठी के अनुसार भारत में मुस्लिम सार्वभौमिकता का इतिहास इल्तुतमिश से प्रारम्भ होता है। उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए और मुस्लिम संसार में शासक का स्तर प्राप्त करने तथा इस्लामी कानून की औपचारिकताओं को पूर्ण करने हेतु बग़दाद के खलीफ़ा से मानपत्र लिया। उसने अपना नाम खुत्बा में खलीफ़ा के नाम के साथ पढ़वाया व अपने नाम के सिक्के निकलवाए, जो कि प्रमुख राज-चिह्न थे। उसने खलीफ़ा से मानपत्र प्राप्त करने के बाद ही शाहंशाह की उपाधि ग्रहण की। वह किसी अन्य अमीर के साथ सार्वभौम शक्ति का भागीदार होने के लिए तैयार न था। इसी कारण उसने गौड़ पर आक्रमण किया और गयासुद्दीन एवाज़ को उसकी अधीनता स्वीकार करने व उसे **सुल्तान-ए-आजम** (महान सुल्तान) स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उसने दिल्ली को भारतवर्ष की राजधानी बनाई और इस प्रकार वह सल्तनत का प्रथम सार्वभौमिक शासक था। उसकी सार्वभौमिक शक्ति तीन बातों पर निर्भर करती थी, कि उसे अधिकारियों ने निर्वाचित किया था; उसे विजित करने और अपने अधिकारों का प्रयोग करने का

अधिकार प्राप्त हुआ था तथा उसे बगदाद के खलीफ़ा ने मान्यता प्रदान कर दी थी। शासक के रूप में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने चालीस गुलामों के गुट का निर्माण किया। उसने अपनी आज्ञा का पालन करवाया। उसके काल में राजाज्ञा सर्वोपरि थी। उसने अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करके अपने ही परिवार में राजत्व को रखना चाहा। इस दिशा में वह गज़नी एवं ग़ौरी सम्राटों से कहीं आगे था। वह यह चाहता था कि शासक ही अपने उत्तराधिकारी का चयन करें ताकि राजत्व परिवार के सदस्यों के मध्य ही रहे। उसका शासन लोकहित व न्याय पर आधारित था। मुस्लिम राजनीतिशास्त्र के वेत्ताओं ने सुल्तान का पद यद्यपि इस्लाम के सिद्धान्त के विरुद्ध माना, किन्तु फिर भी गज़नी एवं ग़ौर शासकों का अनुकरण करते हुए उसने तत्कालीन प्रशासन में सुल्तान के पद को न केवल महत्ता प्रदान की वरन् अपने राजनीतिक सिद्धान्तों, आकर्षक व्यक्तित्व, न्याय तथा व्यवहार द्वारा उसे गरिमा प्रदान थी। यही कारण था कि जब उसने रज़िया को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया तो तुर्की अमीरों जिन्होंने कि एक स्त्री के गद्दी पर बैठने के सम्बन्ध में आपत्ति प्रकट की उन्होंने ही निजामुलमुल्क जुनैदी व उसके ताजिक समर्थकों के विरोध होते हुए ही उसे गद्दी पर बिठा दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि समकालीन न्यायविदों व शेखों ने रज़िया के सिंहासनारोहण को मान्यता भी प्रदान कर दी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि मन्त्रियों का उत्थान व पतन होता रहा, बड़े-बड़े सैनिक नेताओं का स्वागत होता रहा या उन्हें निष्कासित कर दिया गया किन्तु इल्तुतमिश के वंशजों को ही उमरा गद्दी पर बिठाते रहे। इस प्रकार इल्तुतमिश ने सुनियोजित राजत्व सिद्धान्त राजनीतिक आदेशों एवं परम्पराओं का प्रतिपादन करके सुल्तान के पद की गरिमा स्थापित की।

बलबन कभी तुर्की उमरावर्ग, उल्मावर्ग अथवा किसी भी राजनीतिक गुट पर निर्भर नहीं रहा। उसके राजत्व सिद्धान्त का स्रोत ईश्वर की महान् अनुकम्पा थी। सुल्तान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों के शासन काल में चालीस गुलामों के गुट के सदस्यों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं व राजनीति में निरन्तर हस्तक्षेप करने के कारण तथा सुल्तानों के गद्दी पर बिठाने व उतारने के खेल के का कारण सुल्तान की प्रतिष्ठा, उसके गौरव व गरिमा को महान् क्षति पहुँची। सुल्तान काठ की पुतली की भाँति अमीरों के हाथों में नाचने लगा। इल्तुतमिश के निधन के बाद छः वर्षों में तीन सुल्तान हुए और सभी अमीरों का महत्वाकांक्षाओं व गुटबंदी के शिकार हुए। बलबन बीस वर्ष तक उप-सुल्तान या **नायब ममलिकत** रहा। उसके राजनीतिक अनुभव ने उसे राज्य में बताया कि राज्य में सुल्तान के स्थान पर अमीर सर्वोपरि हो गए हैं; अमीर ही सर्वेसर्वा हैं तथा राजनीतिक शक्ति उन्हीं के हाथों में है और वे पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। उसने सिंहासन पर बैठने के उपरान्त शासक की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः वापस लाने का बीड़ा उठाया और सुल्तान की गरिमा व गौरव को अत्यधिक आकर्षक बनाने का प्रयास

किया। उसने अपने रहन-सहन का ढंग बदल दिया। वह अब एकान्त में जीवन व्यतीत करने लगा और अमीरों व सर्वसाधारण से दूर रहने लगा। जब वह अमीर व खान था तो मदिरा गोष्ठियाँ, नृत्य व संगीत की गोष्ठियों का आयोजन किया था व अपना समय उत्सव व समारोहों में व्यतीत किया करता था, किन्तु अब उसने यह सब करना बन्द कर दिया। दरबार में वज़ीर के अतिरिक्त उससे कोई बात भी नहीं कर सकता था। वह न तो दरबार में हँसता या मुस्कराता था और न ही किसी को ऐसा करने की आज्ञा ही दिया करता था। निजी जीवन में भी उससे केवल कुछ ही विशेष लोग बातचीत कर सकते थे। अन्य अमीरों व गणमान्य व्यक्तियों को अपने से दूर ही रखता था। उसने अपने को प्राचीन अफरासियाब वंश का वंशज बताया और उसने रक्त की शुद्धता के सिद्धान्त व कुलीन वर्ग की पवित्रता पर विशेष बल दिया। उसके अनुसार केवल इल्बारी तुर्कों को ही शासन करने का अधिकार है। जो लोग कुलीन वंश के नहीं थे उन्हें वह राजकीय पदों पर नियुक्त करने के बिल्कुल विरुद्ध था। उसके विचार में सभी उच्च पदों पर उच्च परिवारों के सदस्यों की ही नियुक्तियाँ होनी चाहिए। उसने अमीरों के वंश की छान-बीन कराई और तीस ऐसे अधिकारियों को निलम्बित कर दिया जो कि निम्न परिवारों के थे। वज़ीर निज़ाम उल-मुल्क ने ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति के लिए सन्तुति की जो कि संदिग्ध वंश का होते हुए भी निपुण, दक्ष, योग्य एवं अनुभवी था। बलबन ने वज़ीर की भर्त्सना की और आदेश दिया कि छान-बीन की जाय कि वह किस परिवार का है। अन्ततोगत्वा उसे बताया गया कि वज़ीर निजाम उल-मुल्क का जन्म जुलाहे के घर में हुआ था। वह बलबन की दृष्टि में गिर गया। वह वंश की कुलीनता पर विशेष बल दिया करता था। यहाँ तक कि उसने अपने अधिकारियों तथा अमीरों की वंशावलियाँ देखना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपनी वंशावली को फिरदौसी के शाहनामे से अफरासियाब से अनुरेखित करने हुए दरबार में बड़े गौरव से कहना प्रारम्भ किया कि उसकी धमनियों में उच्च वंश का रक्त है। सैय्यद अशरफ जहाँगीर सिमनानी ने अपने एक पत्र में लिख है कि बलबन ने अपने अधिकारियों व अमीरों के परिवारों के सम्बन्ध में बड़ी छानबीन करवाई। शीघ्र ही दिल्ली में लोगों के पारिवारिक स्तर के निर्धारण करने में उसकी सहायता के लिए देश के विभिन्न भागों से ज्योतिषी एकत्र हो गए। इस प्रकार वंशावलियों का निरीक्षण करना बलबन की आदत बन गई।

बरनी ने **तारीख-ए-फिरोजशाही** में निम्न परिवार के लोगों को पद दिये जाने के बारे में बलबन के विचार उल्लिखित किए है। बलबन के राज्यकाल मे फखर बाउनी नामक एक प्रसिद्ध रईस था। उसने सुल्तान से बातचीत करने के लिए बड़े-बड़े कर्मचारियों को अनेक बहुमूल्य उपहार दिए। इन अमीरों ने सुल्तान से अनुरोध किया कि वह फखर बाउनी को भेंट करने का अवसर प्रदान करें। किन्तु उसने उनका निवेदन स्वीकार न किया और यह कहा कि "बादशाही सम्मान, वैभव तथा प्रतिष्ठा

पर निर्भर है। लोगों से मिलने के कारण, यह वैभव, प्रतिष्ठा तथा सम्मान नष्ट हो जाता है। रईस, बाज़ारियों व सर्वसाधारण का अफसर होता है, सुल्तान बाज़ारियों के अफसर से कैसे मिल सकता है या इस बात की आज्ञा दे सकता है कि वह सुल्तान से वार्तालाप करे। यदि बादशाह कमीनों, तुच्छ, चरित्रहीनों मुफ़रियों, सरहंगों, अयोग्य, अनुचित लोगों, बाज़ारियों, नर्तकियों, मसखरों और अन्य निम्न श्रेणी के लोगों से वार्तालाप करने लगे तो और राजसिंहासन का अधिकारी उच्च पदाधिकारियों एवं अन्य विश्वासपात्र अधिकारियों के अतिरिक्त सर्वसाधारण को मुँह लगाने लगे तो सुल्तान का वैभव, सम्मान तथा उसकी प्रतिष्ठा अपने हाथों से नष्ट कर देगा। अपने देशवासियों को स्वयं अपने ऊपर हावी कर लेगा। प्रजा की धृष्टता से सुल्तान का सम्मान नष्ट हो जावेगा। जब कभी सुल्तान सर्वसाधारण की दृष्टि से गिर जाता है तो उसे अपनी आज्ञाओं का पालन करना कठिन हो जाता है।"[1] बरनी ने ख्वाजा ताजुद्दीन मकरानी से जिसका बलबन बहुत आदर करता था, सुना था कि बलबन ने अपने सिंहासनारोहण के प्रथम वर्ष में मलिक अमीर अली सरजानदार के अमरोहे का अक्ता प्रदान की। सुल्तान ने दरबार के उच्च पदाधिकारियों को आदेश दिए कि वे एक सदाचारी मुत्सरिफों, जो कि कुलीन और योग्य हो, अमरोहे की अक्ता की ख्वाजगी के लिए चुन कर उपस्थित करे। उस समय मलिक अलाउद्दीन किश्ली खाँ, अमीर हाजिब तथा मलिक निज़ामुद्दीन बुज़मला **नायब वकीलदर** थे। उन लोगों के इस पद के लिए कमल महियार को चुना और बलबन से संस्तुति की कि वह उसे अमीरोहें की ख्याजगी प्रदान कर दे। बलबन ने उनसे पूछा कि महियार शब्द का अर्थ क्या है? महियार ने उत्तर दिया कि उसका पिता महियार व हिन्दू दास था। जैसे ही बलबन ने यह सुना, वह दरबार से उठ खड़ा हुआ और एकान्त में चला गया। उसके क्रोध का आभास अधिकारियों को हो गया। उसने थोड़ी देर बाद आदिल खान शम्सी, तिमुर खाँ, मलिक-उल-उमरा, फखरुद्दीन कोतवाल तथा एमाद-उल-मुल्क खान-ए-अर्ज़ को बुलाया। तत्पश्चात् उसने मलिक अलाउद्दीन, किशली खान, मलिम निज़ामुद्दीन बुज़गला और नायब अमीर हाज़िब, नायब वकीलदर तथा खास-ए-हाजिब एमामी पाँचों व्यक्तियों को बुलाया। उसने उनसे कहा कि "आज मैंने अपने भतीजे हाजिब निजामुद्दीन बुज़गला वकीलदर को ऐसी बातें करते देखकर सहन कर लिया जो यदि मेरा पिता भी करता तो मैं सहन न करता।" तत्पश्चात् उसने कहा कि "ये लोग मौलाज़ादे तुच्छ या नीच को चुन कर मेरे पास लाये और उसे अमरोहा की ख्वाज़गी प्रदान करने की उन्होंने संस्तुति की और कहा कि वह बड़ा योग्य और अनुभवी पुरुष है।" फिर उसने आदिल खाँ और तीमूर खाँ से कहा कि तुम दोनों मेरे बड़े मित्र हो। तुम लोग यह कान खोल कर सुन लो और भली-भांति समझ लो कि मैं अफरासियाब के वंश का हूँ और मेरे पूर्वजों का संबंध अफरासियाब से है। मुझे विश्वास है कि ईश्वर ने मुझे यह विशेषता प्रदान की है जिसके कारण मैं किसी तुच्छ, कमीने और चरित्रहीन को अपने राज्य के कोई पद अथवा कार्य नहीं सौंप सकता। जब मैं उन्हें देखता हूँ तो मेरे

शरीर की नसें फड़कने लगती हैं। मैं यह नहीं चाहता हूँ कि मैं किसी कमीने, नीच और चरित्रहीन को अपने राज्य के कार्यों में, जिसे ईश्वर ने मुझे सौंपा है, सम्मिलित करूँ और उन्हें कोई पद, कार्य या अक़्ता प्रदान करूँ। आज मैंने इन दोनों पदाधिकारियों की बात सहन कर ली है। तुम चारो व्यक्ति इस बात के साक्षी रहना कि इसके पश्चात् किसी भी पदाधिकारी ने कोई उच्च पद अथवा अक़्ता, ख्वाजगी, मुल्सरिफी, मुदव्वरी आदि किसी कमीने, नीच, चरित्रहीन व्यक्ति चाहे वह कितना भी योग्य क्यों न हो, प्रदान करने के लिए मेरे सम्मुख निवेदन किया तो मैं ऐसा कठोर दण्ड दूंगा कि संसार के अन्य व्यक्ति भी शिक्षा ग्रहण कर सकें।"[२]

बलबन ने अपने राज्यकाल के बीस वर्षों में सुल्तान की प्रतिष्ठा बढ़ाने उसके ऐश्वर्य, वैभव व सम्मान की रक्षा इस प्रकार की कि उससे अधिक अन्य सुल्तान न कर सके। उसने फर्राशों, तश्तदारों, ख्वाजा सरायों और अपने निजी कर्मचारियों के लिए कठोर नियम बना दिये थे कि वे बिना टोपी, मोज़े और पूरे वस्त्र पहने उसके सम्मुख उपस्थित न हों। बरनी ने लिखा है कि चालीस वर्ष के समय में, जब तक वह खान और सुल्तान रहा, उसने किसी भी साधारण कर्मचारी, बाजारी, तुच्छ, कमीने, चरित्रहीन नर्तकी तथा विदूषक को मुंह न लगाया। उसने न अपने जानने वालों और न दूसरों के सम्मुख कोई ऐसा कार्य किया या बातचीत की जिसके कारण सुल्तान के सम्मान को किसी प्रकार ठेस पहुँचती। वह न तो किसी से भी दिल्लगी करता था और न उसके सामने कोई मज़ाक कर सकता था। वह न तो किसी सभा में ठहाका मार कर हँसता था, न दूसरा कोई ठहाका मार कर हँस सकता था।[3]

उसने सुल्तान के पद की गरिमा को बढ़ाने हेतु अपने पौत्रों के नाम ईरानी सम्राटों के नाम पर अर्थात् कैकुबाद, कैखुसरो और कैकौस रक्खे। उसने अपने पद की गरिमा बढ़ाने के लिए राजत्व सिद्धान्त में दैवी तत्व डाला। उसकी दृष्टि में सुल्तान महान् ईश्वर का प्रतिनिधि है। खलीफाओं की पदवी "जिल्लाह" होती थी। उसके बाद सेलजूक शासकों ने यह पदवी ग्रहण की, इस पदवी का प्रयोग कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश के लिए भी किया गया। किन्तु डॉ० त्रिपाठी के अनुसार बलबन ही दिल्ली का प्रथम ऐसा शासक था जिसने उसकी महत्ता को गम्भीरतापूर्वक लिया। यद्यपि इस समय तक बग़दाद में खिलाफत का अन्त मुग़लों ने कर दिया था और मुसलमानों की प्रतिष्ठा धूल-धूसरित कर दी थी। मध्य एशिया व पश्चिम एशिया में सम्भ्रान्त मुसलमान परिवार नष्ट हो चुके थे। समस्त एशिया में केवल दिल्ली में ही मुसलमानों के वैभव व उनकी गरिमा चिराग़ जल रहा था। बलबन के दरबार में अनेक देशों के राजकुमारों व गणमान्य व्यक्तियों ने शरण ले रखी थीं। अतएव बलबन ने हर ढंग से दिल्ली सल्तनत की प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने की चेष्टा की। यद्यपि बग़दाद की खिलाफत समाप्त हो चुकी थी किन्तु फिर भी वह दिवंगत खलीफा का नाम खुत्बा में पढ़वाता रहा व सिक्कों पर अंकित करवाता रहा। डॉ०

त्रिपाठी के शब्दों में बलबन का राजत्व सिद्धान्त शक्ति एवं न्याय पर आधारित था। उसका मुख्य उद्देश्य सेना व राजतंत्र को अपने हाथों में रखना था। वह यह नहीं चाहता था कि अमीर ही सर्वेसर्वा हो। राज्य का नेतृत्व उनके हाथों में हो। वह ताज को एक पृथक अनूठा अस्तित्व देना चाहता था। उसे ऐसा बना देना चाहता था कि उसकी शक्ति का स्रोत अमीर न होकर शासक की अपनी शक्ति तथा उसका व्यक्तित्व ही हो। वह सैनिक तन्त्र में सर्वोपरि हो। शासक का क्या उत्तरदायित्व हो उसे वह अच्छी तरह से जानता था। यदा-कदा उसकी चर्चा भी वह किया करता था। इस प्रकार से बलबन ने हर तरह से शासक की प्रतिष्ठा में वृद्धि की।

बलबन की सम्पूर्ण आशाएँ उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद जो कि सभ्य, सुशील, लोकप्रिय एवं सौम्य था पर केन्द्रित थी। यदि वह गद्दी पर बैठता तो निःसन्देह बलबन के कार्य को आगे बढ़ाता, किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी मृत्यु मंगोलों से युद्ध करते समय हो गई जिससे बलबन की आशाओं पर पानी फिर गया। उसने अपने द्वितीय पुत्र बुग़राखाँ को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा किन्तु वह उसे मृत्युशैया पर छोड़ कर बंगाल चला गया। तदुपरान्त बलबन ने अपने वजीर ख्वाजाहसन बसरी तथा वरिष्ठ अमीरों को बुलाया और उनसे कहा कि उसने दिवंगत राजकुमार मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया है और वे उसके प्रति निष्ठा प्रकट करें। किन्तु उसकी मृत्यु होते ही अमीरों ने उसकी अन्तिम इच्छा को ठुकरा दिया और बुग़रा खान के पुत्र कैकुबाद को गद्दी पर बिठा दिया। कैखुसरो ने मंगोलों से सहायता प्राप्त कर गद्दी को अधिकृत करने की चेष्टा की, किन्तु शीघ्र ही उसे पकड़ कर मौत के घाट उतार दिया गया। दुर्बल, व्यसनी, अनुभवहीन, अयोग्य एवं विलासी सुल्तान कैकुबाद ने बलबन के कार्यों पर पानी फेर दिया। उसके मदिरा व भोग में लिप्त होने के कारण सुल्तान की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। कर्मठ व योग्य अमीरों का स्थान विदूषकों व चापलूसों ने ले लिया। दरबारी नियमों का उल्लंघन होने लगा। एक बार फिर सुल्तान अमीरो के हाथ की कठपुतली बन गया। यदि मलिक एतुमुरकच्छन व मलिक एतुमुर सुरखा खिलजी अमीरों को मारने के लिए षड़यन्त्र न रचते तो थोड़े दिनों तक बलबनी वंश का शासन और चलता। खिलजियों के नेता जलालुद्दीन फिरोज़ खिलजी ने पहले तो दोनों मन्त्रियों को ठिकाने लगाया, फिर रोगग्रस्त कैकुबाद की जीवन-लीला समाप्त की और उसके बाद बलबनी वंश के अन्तिम शासक कैकौस को पदच्युत करके अपने वंश की स्थापना प्रारम्भ की। बलबनी वंश के अन्त के साथ ही इलबारी तुर्कों की प्रभुता का काल भी समाप्त हुआ।

इलबारी काल में तुर्की शासकों ने, विशेषकर बलबन ने तुर्की रक्त की शुद्धता का नारा लगाया और प्रशासन में उन्हीं को प्राथमिकता दी। लगभग ८० वर्षों तक इलबारी तुर्कों का ही प्रभुत्व बना रहा। उन्होंने न केवल एक नवीन राजत्व सिद्धान्त व राजनीतिक आदर्शों का प्रतिपादन किया वरन् सुल्तान की प्रतिष्ठा में वृद्धि

करने हेतु अनेक उपकरण अपनाए जो कि सुल्तान व सल्तनत के साथ निरन्तर सम्बद्ध रहे। उन्होंने शासक को निर्वाचित करने के सिद्धान्त व उसके वंश को शासन करने के अधिकार के मध्य समन्वयीकरण किया। किन्तु अपने सीमित राजनीतिक अनुभव एवं राजनीतिक अस्थिरता के कारण वे यह नहीं निश्चय कर पाए कि शासक को निर्वाचित करने अथवा उसको वंश को शासन करने देने में कौन सी बात सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने बराबर लोगो के हृदय में एक बात बैठानी चाही कि तुर्क जन्मजात से शासक हैं और सार्वभौमिकता पर उनका ही एकाधिकार है। परिणामस्वरूप ग़ैर तुर्कों या अर्धतुर्कों तथा विदेशी मुसलमानों व भारतीय मुसलमानों के मन में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। खिलजी क्रान्ति ने सर्वप्रथम रक्त की शुद्धता एवं किसी एक जाति ही के राजनीतिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया। दूसरे प्रशासन को व्यापक आधार प्रदान किया। तीसरे दिल्ली के सिंहासन के प्रति बढ़ती हुई निष्ठा को समाप्त कर दिया। चौथे, प्रशासन में दीवानी तत्व को कम कर उसे भी सैनिक प्रकृति में वृद्धि कर दी। यह उस समय की आवश्यकता थी।

खिलजी शासकों का राजत्व सिद्धान्त

राजत्व सिद्धान्त की दृष्टि से खिलजी काल महत्वपूर्ण है। यद्यपि जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिलजी एक सैनिक दल की सहायता से गद्दी पर बैठा था किन्तु उसका राजत्व सिद्धान्त उदारता व दयालुता पर आधारित था। वह कम से कम रक्तपात व अत्याचार करने में विश्वास करता था। यह बात नहीं कि उसमें साहस व क्षमता की कमी रही हो। किन्तु पिछले ४० वर्षों का इतिहास उसके सामने था। बलबन की क्रूरता उसके द्वारा विष व खंजर का प्रयोग, शाही अमीरों का विनाश, उसका लौह व रक्त की नीति पर अटूट विश्वास व तुर्की अमीरों की महत्वाकांक्षाओं को सीमित करना, उसकी दृष्टि में वे ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था को जन्म दिया जो कि केवल सैनिक शक्ति व भय तथा आतंक पर ही आधारित थी। प्रशासन को अनुदार बनाने के लिए उसने अमीरों व सर्वसाधारण के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार करना प्रारम्भ किया और उनके प्रति नम्रता प्रदर्शित की जिससे वह लोकप्रिय होने लगा। किन्तु युवक खिलजी अमीर जो कि अपना भविष्य सैनिक जीवन में देख रहे थे, उन्होंने उसकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता पर सन्देह प्रकट किया। वे उसे बुद्धिहीन, निर्बल व शासन करने के लिए अयोग्य समझने लगे। यह सभी अमीर उसके भतीजे व दामाद अलाउद्दीन के पास एकत्र होने लगे और अन्त में उन्हीं के सहयोग से अलाउद्दीन ने उसकी हत्या करवा दी। तत्पश्चात् अलाउद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा।

अलाउद्दीन खिलजी ने अपने को युवक खिलजी अमीरों की महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप ढाला। उसका व्यवहार व दृष्टिकोणों जलालुउद्दीन खिलजी से बिल्कुल ही भिन्न था। उसने गद्दी पर बैठते ही बलबनी परम्पराओं को अपनाया ताकि सुल्तान की गिरी हुई प्रतिष्ठा को ऊपर उठाया जा सके। बलबन की भाँति उसने भी अमीरों

के हृदय में भय व आतंक उत्पन्न कर दिया। उसने इल्तुतमिश की भाँति साम्राज्य विस्तार व वलवन की भाँति साम्राज्य को संगठित करने की नीति अपनाई किन्तु उसका साम्राज्यवाद इल्बारीयों के साम्राज्यवाद से कुछ मामलों में भिन्न था। उसका उद्देश्य केवल मंगोल आक्रमणों का विफल वनाना ही नहीं वरन् साम्राज्य का विस्तार करना और उसके प्रशासन को व्यापक आधार प्रदान करना था। उसका प्रशासनिक दृष्टिकोण व्यवहारिक था। उसने धर्म को राजनीति की चेरी नहीं वनने दिया। इसके विचार में राजा को स्वयं अपने हितों को देखना चाहिए और उसे धार्मिक वर्ग के निर्देशन में कार्य नहीं करना चाहिए। उसने अपने शासन काल में ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जो शरीयत के नियमों व इस्लाम के सिद्धान्त के विरुद्ध हो या अन्य मुसलमान शासकों द्वारा स्थापित परम्पराओं के विरुद्ध हो। डॉ० त्रिपाठी के अनुसार भारतवर्ष के वाहर वह इस्लाम का रक्षक माना जाता था।[३] वरनी के अनुसार वह इस्लाम की चिन्ता नहीं करता था। अमीर खुसरो उसे धर्म का समर्थक मानता था। इतना शक्तिशाली सुल्तान होते हुए भी अलाउद्दीन ने कभी भी सिकन्दर से ऊँची पदवी नहीं ग्रहण की। वह अपने को यामि-उल-खिलाफत नासिरी अमीरुल मोमनीन ही वरावर कहता रहा। वलवन की भाँति वह खिलाफत के प्रति निष्ठा प्रकट करता रहा और अपने को खलीफा का प्रतिनिधि ही मानता रहा, हालांकि खिलाफत का अस्तित्व अब नाममात्र को रह गया था।

इस काल में सभी इल्वारी तुर्क, नव मुसलमान व भारतीय मुसलमान खिल्जियों के विरुद्ध थे। इल्वारी अपने खोये हुए प्रभाव को प्राप्त करना चाहते थे और इसीलिए उन्हें अन्य दो जातियों से सहयोग मिला। लेकिन फिर भी लगभग ६ वर्ष तक अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुवारकशाह ने शासन किया। उसने वह कार्य किया जो कि उसका पिता भी नहीं कर पाया था। उसने खिलाफत की मिथ्या को समाप्त कर दिया। उसने खलीफा का नाम खुत्वा में पढ़वाना वन्द कर दिया और उसके प्रति निष्ठा प्रकट करनी वन्द कर दी। दिल्ली सल्तनत का किसी भी विदेशी शक्ति के साथ कोई सम्वन्ध न रहा। अब वह पूर्णतः स्वतन्त्र हो गई। उसने अपने को महान् इमाम व ईश्वर का प्रतिनिधि कहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार अपने साम्राज्य के वाहर की किसी भी राज्य की संवैधानिक श्रेष्टता को उसने मान्यता प्रदान नहीं की।

वास्तव में खिलजी शासकों ने सार्वभौमिक शक्ति, जातीय श्रेष्ठता, निर्वाचन या खलीफा की स्वीकृति से नहीं प्राप्त की। उनके राजत्व का आधार सैनिक शक्ति या व्यक्तिगत शक्ति थी। उनके विचार में राजत्व किसी जाति का एकाधिकार नहीं था। जिसमें शक्ति एवं योग्यता हो वह उसे मुलभतः प्राप्त कर सकता था। उनकी दृष्टि में राजत्व को किसी धार्मिक समर्थन की आवश्यकता नहीं होती। खिलजी शासक कभी भी धार्मिक वर्ग अथवा उलमाओं की सहायता पर निर्भर नहीं रहे। लेकिन फिर

भी गैर खिल्जियों, भारतीय मुसलमानों व इल्वारी तुर्कों के कारण उनका पतन हुआ। सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह का वध गुजरात के बरवारियों ने किया और उन्होंने अपने नेता खुसरो खाँ को गद्दी पर बिठाकर सुल्तान की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी।

तुगलक शासकों का राजत्व सिद्धान्त

जब गयासुद्दीन तुगलक ने अपने हाथों में सत्ता की बागडोर ली तो उस समय सुल्तान की प्रतिष्ठा नाममात्र को थी। उसने अपने दरबार में सादगी पर बल दिया। उसकी उपस्थिति में नर्तकियों व गायकों या सन्देहास्पद व्यक्ति कभी भी दिखाई नहीं देते थे। वह अधिकारियों व अमीरों के मध्य लोकप्रिय था और उनसे मेल-जोल रखता था। वह प्रातः व सायंकाल दरबार करता था। उसने सुल्तान की प्रतिष्ठा व सल्तनत के गौरव को सुरक्षित करने का सदैव प्रयास किया। उसने अलाउद्दीन खिलजी की भाँति साम्राज्य का विस्तार दक्षिण व बंगाल की ओर किया। उसने नासिरी अमीर उल मोमनीन की पदवी ग्रहण की। उसका राजत्व सिद्धान्त वास्तव में न्याय, सौम्यता एवं उदारता पर आधारित था।

गयासुद्दीन तुगलक के उत्तराधिकारी मुहम्मद-बिन-तुगलक में न तो खलीफा और न ही अमीरुल मोमनीन की पदवी ग्रहण की। उसका राजनीतिक दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था। वह बुद्धिवाद से प्रभावित था। उसके राजत्व सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य विशाल साम्राज्य को सुदृढ़ बनाना व नवीन प्रदेशों को विजित करना था। उसने अपना समय इसी में व्यतीत किया। वह बलबन की भाँति स्वयं को ईश्वर की परिछाई मानता था। इसीलिए उसने अपने सिक्कों पर उल-सुल्तान-जिल्लाह शब्द अंकित करवा लिए थे। वीर एवं साहसी होने के कारण उसने अपनी सार्वभौमिक शक्ति को विविध प्रकार से शक्तिशाली करने की चेष्टा की। उसने एक ओर तो शरियत की उपेक्षा की तो दूसरी ओर अपने राजनीतिक व्यवहार को तर्क पर आधारित किया। उसका उद्देश्य शरियत के नियमों का उल्लंघन करना नहीं वरन् विधि-वेत्ताओं के विचारों को तर्क की कसौटी पर कस कर देखना था। वह वही कार्य करता था जो कि उसे महत्वपूर्ण और अच्छा लगता था। उसने पुराने उमरावर्ग को धीरे-धीरे निलंबित कर दिया व उसके स्थान पर निम्नवर्ग के लोगों को नियुक्त किया। खिलजी सुल्तानों की भाँति वह किसी जाति द्वारा शासन करने का एकाधिकार पर विश्वास नहीं करता था। वह बराबर लोगों को बताता था उनका सुल्तान के प्रति क्या कर्तव्य है और प्रशासन में सुल्तान का क्या महत्व है। उसने अपने सिक्कों पर यह अंकित करवा दिया था कि सार्वभौमिकता सभी व्यक्तियों को नहीं प्रदान की जाती है, वरन् केवल एक व्यक्ति को ही दी जाती है अथवा जो सुल्तान की आज्ञाओं का पालन करता है वही ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है या सुल्तान ईश्वर की परिछाई है या ईश्वर सुल्तान का सहायक है आदि-आदि। सिक्कों पर अंकित इन शब्दों से ज्ञात होता है कि वह इल्वारी तुर्कों की भाँति शासक को ईश्वर का एकमात्र प्रतिनिधि मानता था।

उसके राजनीतिक आदेश यद्यपि महान् व सर्वोत्तम थे। किन्तु फिर भी उसके राज्य के मामले उसकी इच्छाओं के प्रतिकूल ही हो गए। उसकी व्यक्तिगत योग्यता, उदारता, न्यायप्रियता ही उसको लोकप्रिय न बना सकी। जब साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह होने लगे तो उसने मिस्र के खलीफा से अनुरोध किया कि वह उसे दिल्ली सल्तनत के शासक के रूप में मान्यता प्रदान करे। खलीफा का मानपत्र प्राप्त होते ही उसने अपना नाम खुत्बा में पढ़वाना बन्द कर दिया और उसमें खलीफा का नाम डाल दिया। खलीफा के नाम से सभी आदेश पारित होने लगे तथा वह खलीफा की ओर से ही लोगों का अभिवादन स्वीकार करने लगा। इस प्रकार उसने खलीफा की संवैधानिक श्रेष्ठता को पुनः स्थापित कर दिया और दिल्ली सलतनत को खलीफा के अन्तर्गत एवं अधीनस्थ राज्य बना दिया, किन्तु ऐसा करने के बावजूद भी असफलताएँ उनका मुख निहारती रहीं। उसने एक स्तर पर सिंहासन छोड़ देने पर भी विचार किया किन्तु घटना-चक्र ने उसे ऐसा न करने दिया।

फिरोज तुगलक के राजत्व सिद्धान्त

सुल्तान फिरोज़शाह जब गद्दी पर बैठा तो उस समय तक राजत्व सिद्धान्त का विकास हो चुका था और उसमें कई नवीन प्रयोग भी हो चुके थे। जिन कठिन परिस्थितियों में वह उलमाओं, शेखों, मसाहिकों के सहयोग से सिंहासन पर बैठा उसके कारण उसके लिए अनिवार्य हो गया कि वह उनके प्रति आभारी रहे। अपने हाथों को सुदृढ़ करने व राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए उसे धर्म का सहारा लेना पड़ा और यह घोषणा करनी पड़ी कि वह इस्लाम की रक्षा करेगा। उसके राजत्व सिद्धान्त में धर्म का पुट अवश्य था किन्तु वह धर्म से ओतप्रोत या पूर्णतः इस्लाम द्वारा प्रभावित नहीं था। वह स्वभाव से उदार था और अत्यन्त भावात्मक, किन्तु धर्मान्ध नहीं था। उसने समकालीन सन्तों से आशीर्वाद अवश्य प्राप्त किया तथा अनेक कसमें खाईं कि वह धर्मपरायण रहेगा फिर भी व्यवहारिक जीवन में उसने कभी-कभी इस्लाम का पालन नहीं किया। उसने इस्लाम के प्रति सद्भावना व निष्ठा केवल इस आशय से व्यक्त की कि उसे समाज के सभी वर्गों का सहयोग राजनीतिक संकट को दूर करने के लिए चाहिए था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने प्रार्थना करते समय यह कहा कि "हे ईश्वर ! राज्यों की ख्याति, शान्ति नियम, प्रशासन की गतिविधियाँ मानव पर नहीं निर्भर करती हैं। राज्य का स्थायित्व आपकी अनुकम्पा पर है। हे ईश्वर आप ही मेरे शरणदाता और मेरी शक्ति हैं।" वह बराबर ईश्वर से डरता रहा। अपने शासन काल में प्रत्येक अवसर पर वह कठोर पग उठाने के लिए भयभीत रहा कि उसे ईश्वर को अपने कार्यों के लिए उत्तर देना पड़ेगा। देखने में तो उसका यह दृष्टिकोण पूर्णतः धार्मिक था किन्तु वास्तव में वह उसके दुर्बल व्यक्तित्व का साक्षात् उदाहरण था। चूँकि वह उलमाओं की सहायता से ही गद्दी पर बैठा था अतएव वह उनके विचारों की उपेक्षा भी नहीं कर सकता था। दूसरे, उलमाओं के विचारों की उपेक्षा करने

का परिणाम उसने अपने चचेरे भाई सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में देख ही लिया था। वह पुनः इस त्रुटि को दोहराना नहीं चाहता था। यही नहीं असन्तुष्ट अमीरों को भी पक्ष में करने का यही एक मार्ग था। उसके राजत्व आदर्श में सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि भूतपूर्व शासकों के राजत्व सिद्धान्तों की भाँति उसमें निरंकुशता व सैनिक तत्वों का पूर्णतः अभाव था। उसकी शक्ति का मुख्य आधार नहीं तलवार था न ही वह उस पुराने सिद्धान्त कि 'यदि तुम अपने देश में शान्ति व सुव्यवस्था चाहते हो तो अपनी तलवार को सदैव लहराने दो।' में विश्वास करता था। उसके राजत्व सिद्धान्त में नरसंहार व रक्तपात के लिए कोई स्थान न था। उसने अपने राजत्व सिद्धान्त में सहिष्णुता, क्षमा, प्रेम और उदारता के तत्व रक्खे व अत्याचार व कठोर दण्ड को सदैव उससे परे रक्खा। वह अपनी शक्ति का मुख्य आधार तलवार को नहीं वरन् उदारता व प्रेम को बनाना चाहता था। वह सर्वसाधारण के मध्य आतंक व हिंसा का पात्र न होकर उनका लोकप्रिय नायक होना चाहता था। उसने मुहम्मद तुग़लक का आक्रोश देखा था, उसकी आशंका उत्पन्न करने वाली नीतियाँ देखी थी और यह भी देखा था कि किस प्रकार उसके समय भीषण विद्रोह रक्तपात हुए थे। अतएव परिस्थिति ने उसे उदार बना दिया। वह लोगों को दण्ड देने में हिचकिचाता था। वह क्षमा करने के पक्ष में था। अपने अनुज मुहम्मद-बिन-तुग़लक की भाँति उसने भी खलीफा से मानपत्र प्राप्त किया और मिस्र के खलीफा को उसने उपहार भेजे। उसने खुत्बा में अपने से पहले के सुल्तानों के नाम पढ़वा कर उनके प्रति निष्ठा प्रकट की और जिसका प्रभाव तत्कालीन सर्वसाधारण पर बिना पड़े हुए नहीं रह सका। वास्तव में उसके राजत्व सिद्धान्त के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलू थे। शासक की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए और उसकी लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए फिरोज़शाह तुग़लक ने मध्यम मार्ग अपनाया। उसने न तो उलमावर्ग की उपेक्षा की और न ही अधारतः शरीयत का पालन व्यक्तिगत जीवन या राजनीतिक जीवन में ही किया। उसकी मृत्यु के बाद जो दौर आया उसमें एक बार फिर शासकों के राजत्व सिद्धान्तों में परिवर्तन आया। जब सुल्तान अयोग्य हो जायँ तो उनका कोई राजनीतिक आदर्श व राजत्व सिद्धान्त नहीं रह जाता। वे अमीरों के हाथ में कठपुतली की तरह नाचते हैं। यही हाल सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के उत्तराधिकारियों का भी हुआ। सुल्तान की प्रतिष्ठा एक बार फिर मिट्टी में मिली।

सुल्तान फिरोज़शाह की मृत्यु के उपरान्त तुग़लक साम्राज्य का बड़ी तीव्र गति से पतन हुआ। तैमूर के आक्रमण ने तुग़लक राजकुमारों के मध्य गृह युद्ध समाप्त कर तुग़लक वंश जो कि अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था, समाप्त कर दिया। सैयद वंश के शासकों ने तलवार का सहारा लेकर शासन किया। खिज्र खाँ ने तुगलक सुल्तानों के नाम से सिक्के निकाले और मुग़लों का नाम खुत्बा में पढ़ना प्रारम्भ किया। उसने स्वयं **रैय्यत-ए-आला** की पदवी ग्रहण की। अमीर तैमूर की प्रभुता स्वीकार करने के

कारण खलीफा का नाम सिक्के व खुत्वा से निकल गया। खिज्र खाँ के पुत्र ने तैमूरियों के प्रति निष्ठा प्रकट करना बन्द कर दिया व तुगलकों के नाम सिक्कों पर से हटा दिए। उसने नायव-ए-अमीर उल मोमनीन की पदवी ग्रहण की। वास्तव में राजत्व सिद्धान्त को उनका कोई योगदान न था। उन्होंने अन्त में अफगान सरदारों के हाथों में प्रशासन सौंप दिया।

वहलोल लोदी के नेतृत्व में जैसे ही लोदी वंश की स्थापना हुई और प्रथम अफगान साम्राज्य स्थापित हुआ वैसे ही एक नवीन राजत्व सिद्धान्त जो तुर्की राजत्व सिद्धान्त से भिन्न था, का विकास हुआ। अफगान कवायली थे तथा उन्हें कवायली नियमों का सदैव ध्यान रहता था। वहलोल लोदी ने सदैव अपने को अमीरों में से एक समझा। वह अफगानों के नेता व सुल्तान की पदवी से ही सन्तुष्ट था। उसके काल में प्रथम अफगान साम्राज्य कवायली जातियों का एक संघ था, जिसका वही अध्यक्ष था। वह कभी भी सिंहासन पर नहीं वैठता था, यहाँ तक कि **दरवार-ए-आम** में भी और कभी भी शाही आदेश नहीं देता था। वह विभिन्न अफगान कवायली नेताओं को **मसनद-ए-आली** कहकर सम्वोधित किया करता था। यदि कोई व्यक्ति उससे क्रुद्ध या रुष्ट हो जाता था तो वह स्वयं उसके घर पर जाता था और पेटी से अपनी तलवार निकाल कर या कभी-कभी अपनी पगड़ी से शश निकाल कर उसके सम्मुख रख देता था और कहता था कि यदि वह उसे पसन्द नहीं है तो वह किसी अन्य अफगान को अपना नेता चुन ले। उसने कभी भी अपने अधिकारों का प्रयोग स्वेच्छाचारी ढंग से नहीं किया। वह अफगानों को विश्वास दिलाना चाहता था कि सद्भाव ही उनकी शक्ति का स्रोत है। वह वहुत ही सादा जीवन व्यतीत करता था। उसके उत्तम आचरण व व्यवहार के कारण अफगान सरदारों ने विद्रोह व षडयन्त्र रचना वन्द कर दिया और वे उसके प्रति निष्ठावान वने रहे। इन अफगान सरदारों को वार-वार अपनी शक्ति एवं प्रभाव का ध्यान रहा। उसने उनकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में सुल्तान की प्रतिष्ठा के मूल्य पर वृद्धि की। इस प्रकार उसने ताज की प्रतिष्ठा गिरा दी तथा शासक को एक अमीर के स्तर पर ला दिया। उसने एक निरंकुश शासक के स्थान पर अनेक स्वेच्छाचारी शासक उत्पन्न कर दिये। उसकी इस नीति से अफगान सन्तुष्ट रहे किन्तु ग़ैर अफगानों को वड़ी निराशा हुई। क्योंकि ग़ैर अफगान तत्वों के लिए अफगान प्रशासन में अधिक स्थान न था। वास्तव में वहलोल लोदी साम्राज्य का शासक न होकर केवल अफगानों का सुयोग्य नेता ही कहा जा सकता है। निःसन्देह उसके राजत्व सिद्धान्त की नींव वहुत ही गहरी थी, किन्तु उसकी राजनीतिक विचारधारा वलवन, खिलजी तथा तुगलकों की विचारधारा की तुलना में वड़ी संकीर्ण थी। उसने केवल अफगान अमीरों की विचारधारा को ही मान्यता दी।

वहलोल लोदी का उत्तराधिकारी सुल्तान सिकन्दर लोदी अपने पिता से भिन्न

था। वह शासक की शक्ति को विभाजित करने में विश्वास नहीं रखता था। न तो वह साम्राज्य का विभाजन किए जाने के पक्ष में था और न ही उसे यह स्वीकार था कि अफगान अमीर स्वेच्छाचारी ढंग से व्यवहार करें। वह सुल्तान की गरिमा व प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना चाहता था, ताकि अफगान अमीरों की महत्वाकांक्षाओं को नियंत्रित कर सकें। उसने एक ओर तो अपने भाई बरबकशाह, जो कि सिंहासन के लिये प्रतिद्वन्द्वी था, की ओर कठोर दृष्टिकोण अपनाया और दूसरी ओर धीरे-धीरे उसने अपने अन्य प्रतिद्वन्दियों को समाप्त कर प्रशासन पर अपना एकाधिकार स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् उसे आभास हुआ कि अफगानों की विचारधाराएँ भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं अतएव उसने कवायली राजत्व सिद्धान्त के स्थान पर नवीन राजत्व सिद्धान्त अपनाया। उसने तुर्की राजत्व सिद्धान्त को प्राथमिकता दी। उसने अमीरों के प्रति सद्भाव, उदारता, नम्रता का व्यवहार त्याग दिया और कठोर दृष्टिकोण अपनाया ताकि वे उसके प्रति निष्ठावान बनें व उसके अधीन रहें। उसने सिंहासन पर बैठना प्रारम्भ किया, शाही आदेश जारी किए, तुर्कों की भाँति दरबार की व्यवस्था की तथा पुराने दरबारी नियमों को पुनः लागू किया और अमीरों को बताया कि उन्हें सुल्तान का किस प्रकार आदर करना चाहिए। यहाँ तक कि जब वह राजधानी में नहीं रहता था तो भी उसके आदेशों को औपचारिक ढंग से स्वीकृत किया जाता था। उसका फर्मान प्राप्त करने के लिए अमीरों को छः मील आगे जाकर स्वीकार कर अपने सिर पर रखना पड़ता था। इस मामले में उसने दिल्ली के तुर्की सुल्तानों से प्रेरणा ग्रहण की। वह इतना प्रभावशाली, कठोर व कर्मठ था कि सभी अफगानों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था। जो अमीर उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता था उसे वह उचित दण्ड दिया करता था। इस प्रकार सिकन्दर लोदी ने एक बार फिर सुल्तान की खोई हुई प्रतिष्ठा वापस ला दी।

जब इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा तो उसने अपने पिता के पद-चिन्हों पर चलना प्रारम्भ किया। उस समय अनेक अफगान कवायली नेता स्वतन्त्र होने के लिए लालायित थे। वे यह चाहते थे कि जिस प्रकार बहलोल लोदी ने उन्हें राजनीतिक शक्ति व सम्मान प्रदान किया था, वही उन्हें पुनः प्राप्त हो जाय। किन्तु इब्राहीम इसके लिए तैयार न था, क्योंकि उससे साम्राज्य के विभाजन व विघटन की सम्भावना बढ़ जाती और उसने यह स्पष्टतः कहा कि सुल्तान का कोई सम्बन्ध या कबीला नहीं होता और सभी व्यक्ति और कबीले उसके सेवक हैं। वह किसी भी कबीले या व्यक्ति को विशेष अधिकार देने के पक्ष में नहीं था चाहे वह उससे या उसके कबीले से ही क्यों न सम्बन्धित हों। उसके विचार में सभी अधिकार व विशेषाधिकारों की उत्पत्ति सुल्तान से ही होती है। उसका यह राजत्व सिद्धान्त बलबन, अलाउद्दीन व मुहम्मद तुग़लक के राजत्व सिद्धान्त के अत्यन्त निकट तो था ही अपितु उसने विभिन्न कबीलों द्वारा विशिष्ट अधिकारों को अधिकृत करने के सभी दावों को ठुकरा दिया। यद्यपि यह विचारधारा अनेक अफगान सरदारों को मान्य नहीं थी किन्तु उसमें ठोस सिद्धान्त

निहित थे। अपने पिता की भाँति इब्राहीम ने भी भव्य दरबार की व्यवस्था की। वह रत्नजड़ित सिंहासन पर शान-शौकत से बैठता था। उसने आदेश दिया कि दरबार में कोई व्यक्ति नहीं बैठेगा। वे अफगान अमीर जो किसी समय बहलोल लोदी से समता रखते थे, उन्हें भी हाथ जोड़कर उसके सम्मुख खड़े रहना पड़ता था। इब्राहीम के नए दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप दरबार का वातावरण बदल गया। सिकन्दर लोदी का समय लौट आया। दरबार में उसी तरह अनुशासन व नियमों का पालन होने लगा। अमीरों को यह अनुभव होने लगा कि सुल्तान उनसे कहीं सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ है। इब्राहीम के इस प्रकार के व्यवहार से पुराने अमीरों में उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। उसने उन्हें दबाने की ज्यों-ज्यों चेष्टा की त्यों-त्यों उसमें असन्तोष बढ़ता गया, जो कि आगे चलकर उसके व लोदी साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ।

लोदी सुल्तानों ने शाह या सुल्तान से ऊपर कोई उपाधि ग्रहण नहीं की। वे अपने को खलीफा अमीरुल मोमनीन का नायब कहते थे। यह परम्परा उन्होंने सैय्यद शासकों से प्राप्त की थी। उनका कोई सम्बन्ध मिस्र के खलीफा से न था। वास्तव में खलीफा का नाम भारत के स्वतन्त्र राज्यों में लुप्त होने लगा था, क्योंकि वहाँ के शासकों ने अपने सिक्कों व खुत्बा में उसका नाम रखना बन्द कर दिया था। संक्षेप में सम्पूर्ण सल्तनत काल में राजत्व सिद्धान्त का समय के साथ-साथ विकास होता रहा। सुल्तान की निरंकुशता अथवा स्वेच्छाचारिता उसके व्यक्तित्व पर ही नहीं वरन् परिस्थितियों व राजनीतिक समस्याओं पर भी बहुत कुछ निर्भर करती थी। उसके अधिकारों की सीमाएँ भी राज्य की आवश्यकताओं व समस्याओं तथा उसके निजी व्यक्तित्व के ऊपर ही निर्भर किया करती थी।

इस काल में व्यवहारिक एवं प्रशासनिक कारणों से सुल्तानों को एक निश्चित एवं निर्धारित नीति के अनुसार कार्य करना पड़ा। प्रारम्भ में वे साम्राज्य का विस्तार करने, नवीन प्रदेशों को विजित करने, विद्रोहों का दमन करने, अमीरों को वेतन के स्थान पर अक्ताएँ प्रदान करने तथा उन्हें उपहार देने में ही व्यस्त रहे। उनका ध्यान लोकोपयोगी कार्यों की ओर न गया। किन्तु धीरे-धीरे जब सल्तनत स्थायी हुई व आक्रान्ताओं का सैनिक उत्साह ठण्डा हुआ तो शासकों का ध्यान प्रशासन की ओर गया। सर्वप्रथम उनकी दृष्टि प्रशासन को चलाने के लिए धन की ओर गयी। चूँकि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में राजा की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व था, अतएव सैनिक व्यवस्था के अतिरिक्त उनका ध्यान भू-राजस्व वसूल करने की व्यवस्था की ओर गया। चूँकि इस व्यवस्था से अनेक प्रश्न सम्बद्ध थे अतएव प्रशासक वर्ग की आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रशासक वर्ग के संगठित होने के साथ ही साथ राज्य में जनता की सुरक्षा, शान्तिपूर्ण प्रशासन, लोकोपयोगी कार्यों एवं न्याय-व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने हाथों में लिया। इस प्रकार हिन्दू शासकों के राज्यों के पतन के

उपरान्त लगभग अनेक वर्षों तक प्रशासन में जो शून्य बन गया था वह समाप्त हो गया। बलबन के समय से प्रशासन को नवीन उत्तरदायित्व सँभालने पड़े अर्थात् सड़कों का बनवाना, शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना करना, विद्रोही तत्वों का दमन करना, सड़कों की सुरक्षा करना, चोरों व डाकुओं का दमन करना, उसके बाद सुल्तानों ने व्यापार व विनिमय की ओर ध्यान दिया। दुर्भिक्ष के समय लोगों को खाद्य-सामग्री पहुँचाना, बाजार में मूल्य निर्धारित करना, न्याय की व्यवस्था करना एवं दण्ड विधान को सरल बनाना आदि। इस प्रकार धीरे-धीरे प्रशासन सैनिक प्रवृत्ति के साथ-साथ लोकोपयोगी राज्य भी बन गया।

दिल्ली के सुल्तानों ने कभी भी इस्लाम पर आधारित राज्य स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। उनका कार्य उनके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित था। इस्लामी कानून व शरीयत के नियम उनके सम्मुख आदर्श मात्र थे। उनकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण बात एक सुव्यवस्थित प्रशासन की आवश्यकता थी। इस सुव्यवस्थित प्रशासन को स्थापित करने में उन्हें इस्लाम के अनेक कानूनों का उल्लंघन करना पड़ा, जैसे कि शासक को निर्वाचित करना, सम्पत्ति के बँटवारे से सम्बन्धित नियम तथा इस्लाम के द्वारा क्या वर्जित है और क्या मान्य है, दोनों में स्पष्ट भेद आदि। वास्तव में दिन प्रतिदिन प्रशासन को चलाने के लिए सुल्तानों को आवश्यकतानुसार नये नियम बनाने पड़े जो कि इस्लामी कानून व शरीयत से भिन्न थे। सल्तनत के नियम व राजाज्ञाएँ सुल्तान की इच्छा थी। इस समय कुरान में निहित राजनीतिक आदर्शों के अर्थ की व्यंजना निरंकुशता के लिए बाधक सिद्ध हो सकती थी, अतएव उलमाओं के हाथ की यह बात न थी कि वे सुल्तानों को उनको अपने राजनीतिक आदर्श परिवर्तित करने के लिए बाध्य कर सकें। वे जानते थे कि सुल्तान का पद व सुल्तान दोनों ही ग़ैर इस्लामी हैं अथवा इस्लाम में दोनों के लिए कोई स्थान नहीं है, फिर भी वे सभी देशों में हैं। उलमा या धार्मिक व्यक्तियों के सम्मुख दो में से एक ही विकल्प था कि वह इस पद को या तो सुल्तान की स्वेच्छा पर छोड़ दें व राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप न करें या वे उनके साथ समझौता कर लें कि वे उनके प्रत्येक ग़ैर इस्लामी कार्य की सम्पुष्टि करते रहें। सूफी सन्तों ने राज्य को अपने से दूर रक्खा व उलमाओं के मार्ग को अपनाया। दोनों ही वर्ग यह जानते थे कि वे बहुसंख्यक हिन्दुओं से घिरे हुए हैं। वे ऐसे देश में हैं जहाँ कि सुल्तान का धर्म राज्यधर्म या जनता का धर्म नहीं हो सकता है। अतएव, सुल्तान को इस्लाम का प्रचार करने व इस्लामी कानूनों का पालन करने के लिए बाध्य करना सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से सम्भव न होगा। उससे संघर्ष बढ़ेगा, अस्थिरता उत्पन्न होगी व अशान्ति बनी रहेगी। इस बात को ध्यान में रखकर सूफी सन्तों ने सुल्तान पर कभी इस बात के लिए दबाव नहीं डाला कि वह शरीयत के नियमों को सर्वसाधारण पर जबरदस्ती थोपें। वे अपने आध्यात्मवाद में लिप्त रहे। उलमाएँ अखिरत को इन बुनियादी बातों से कोई मतलब न था। उलमाएँ दुनिया का प्रभाव सुल्तान पर केवल नाममात्र को था।

सुल्तान के धार्मिक कर्त्तव्य

तारीख फखरुद्दीन मुबारकशाह में फखरे मुदब्बिर ने सुल्तान के धार्मिक कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उसका कर्तव्य है कि वह शुक्रवार व ईद की नमाज़ के समय खुत्वा पढ़े; इस्लाम द्वारा वर्जित विषयों की सीमाएँ निर्धारित करें, दान के लिए कर वसूल करें, अपने धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करें, मुसलमानों के मध्य मुकदमों को तय करें, लोगों की शिकायतों को सुने, राज्य की सुरक्षा के लिए कार्य करें, शान्ति भंग करने वालों तथा विद्रोहियों का दमन करे तथा धर्म के नवीन प्रक्रियाओं, धार्मिक प्रथाओं जो कि इस्लाम को मान्य थे उसके विरुद्ध हों, उनके प्रवेश को रोकें।[६] इसके अतिरिक्त सुल्तान का प्रमुख कर्तव्य है कि वह अपने कोष में से कुछ धन दान व धर्म के लिए पृथक कर दे। यद्यपि यह इस्लाम के प्रति कर्तव्यों में नहीं था। वरनी ने तारीख-ए-फिरोज़शाही में सुल्तान व इस्लाम के मध्य क्या सम्बन्ध होने चाहिए, के वारे में लिखा है कि एक वार सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक ग़जनी ने सुल्तान मुहम्मद की सभा में यह कहते हुए सुना कि सुल्तान शासन की व्यवस्था के विषय में जो आवश्यक कार्य करते हैं, जिस प्रकार वे खाते-पीते हैं, वस्त्र धारण करते हैं, सवार होते हैं, उठते-वैठते या राजसिंहासन पर विराजमान होते तथा लोगों को अपने सम्मुख वैठाते और सिजदा कराते हैं, वह सब ईश्वर के विरोधी पथ-भ्रष्ट के नियम हैं जिनका वे हृदय से पालन कर रहे हैं, सर्वसाधारण से वे अपने सभी विषयों से सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, यह नियम मुहम्मद को सुन्नत के विरुद्ध हैं। यह शिर्क है इसका उन्हें कयामत के दिन दण्ड भोगना पड़ेगा। वरनी के अनुसार दीनपनाही चार कार्यों पर निर्भर थी—(१) इस्लाम के सम्मान तथा प्रतिष्ठा को वढ़ाना, शरा का पालन करने, उन कार्यों को रोकने जिनकी कि शरा में मनाही है, कुफ्र, काफिरी, शिर्क वुतपरिस्ती को वन्द करना; यदि शिर्क या कुफ्र ने जड़ पकड़ ली हो तो सभी काफिरों को उखाड़ कर फेंकना सम्भव न हो तो कम से कम इस्लाम के कारण व दीनपनाही के लिए मूर्ति-पूजकों को, हिन्दुओं को अपमानित, कलंकित तथा तुच्छ वनाने का प्रयास करना क्योंकि वे इस्लाम के घोर शत्रु हैं। व्राह्मणों का जो कि कुफ्र के नेता हैं तथा जिनके कारण कुफ्र और शिर्क फैलता है और कुफ्र की आज्ञाओं का पालन कराया है, उनका समूल उच्छेदन कर दिया जाय। इस्लाम के सम्मान के लिए यह आवश्यक है कि किसी काफिर को आदरपूर्वक जीवन व्यतीत न करने दिया जाय और मुसलमानों के मध्य में उनका अपमान व तिरस्कार होता रहे। उन्हें चैन व सन्तोष का जीवन न प्राप्त हो। हिन्दू मूर्तिपूजकों को किसी विलायत व अक्ता का हाकिम न वनाया जाय। (२) उन नगरों में जहाँ इस्लामी राज्य है और सुल्तान के वैभव के कारण मुसलमान व्यभिचार, दुराचार, पाप तथा अपराध में ग्रसित हो गए हों तो उन्हें दण्ड दिया जाय। अप-राधियों व आज्ञा का उल्लंघन करने वालों को विष दे दिया जाय। (३) कि सम्राट को चाहिये कि वह दीने मुहम्मदी की शरा की आज्ञाओं का पालन ऐसे लोगों को सौंप दे जो कि ईश्वर से भय रखने वाले हों, धार्मिक पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले तथा

नमाज़ी हों। उसे चाहिये कि वह बेईमानों, भगवान का भय न रखने वालों, सत्य को न पहचानने वालों, धोखेबाजों, लालचियों व सांसारिक व्यक्तियों, दुष्टों, अन्यायियों को शरा की आज्ञा का पालन कराने का कार्य न सौंपे। उसे चाहिये कि वह दार्शनिकों तथा उनके ज्ञान और उस पर विश्वास करने वाले को नगरों में न रहने दें। दार्शनिकों को अपने ज्ञान का प्रसार करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये। उसे चाहिये कि वह अधर्मियों तथा भ्रष्ट लोगों व सुन्नी धर्म के विरोधियों का अनादर व अपमान करता रहे व उन्हें राज्य में कोई पद प्रदान न करें। (४) उसे न्याय करना चाहिये।" वलवन ने यह सब बातें सुनीं व अपने पुत्रों, भतीजों और विशेष अधिकारियों को वतायी। तत्पश्चात् वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसने कहा कि वह दीनपनाही नहीं कर सकता है। वह कौन है जो कि इस बात की आकांक्षा कर सके, क्योंकि यदि समस्त सुल्तान **दीनपनाही** करना चाहें तो भी नहीं कर सकते। वह केवल अत्याचार को रोक सकता है, अत्याचारी को दण्ड दे सकता है तथा विना किसी भेदभाव के न्याय कर सकता है।[७] प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई भी सुल्तान व्यावहारिक रूप में **दीनेपनाही** के इस चार नियमों का पालन कर सकता था ? पहले नियम का पालन करना असम्भव था, दूसरे, तीसरे व चौथे नियम का पालन सुल्तानों ने किया। उन्होंने कुछ धार्मिक व्यक्तियों व उलमाओं को न्याय विभाग व दान विभाग में नियुक्त किया ताकि वे सुल्तानों के गैर-इस्लामी कार्यों की भर्त्सना न करें और विरोधी गुट के नेताओं के रूप में न उठ सकें। जहाँ तक सम्भव हो सका दिल्ली के सुल्तानों में इस्लाम की रक्षा करने का भी प्रयास अपने ही ढंग से किया। उन्होंने उन सभी ग़ैर इस्लामी मतों तथा इस्लाम विरोधी विचार-परम्पराओं को दवाने में कोई कसर न उठा रक्खी। उन्होंने उन लोगों को भी दण्ड दिया जो कि इस्लाम के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला प्रचार करते थे।

सुल्तान की गरिमा

शासक के रूप में सुल्तान के लिये अनिवार्य था कि वह अमीरों व सर्वसाधारण के हृदय में आतंक, भय एवं निष्ठा उत्पन्न करे। उसकी उपस्थिति मात्र ही प्रजा को भयभीत करने के लिये उपयुक्त होनी चाहिए। जिस सुल्तान की उपस्थिति से भय नहीं उत्पन्न होता वह किसी कार्य के योग्य नहीं माना जाता था। वह उन कार्यों को सम्पन्न नहीं करा सकता जिनके लिये ईश्वर ने उसको आज्ञा दी है। इस काल में अपनी सम्प्रभुता व ऐश्वर्य बनाये रखने के लिए कुछ विशेष अधिकार सुरक्षित रहे, अर्थात् शाही उपाधियों, खुत्वा, सिक्का, वैय्यद, विशेष प्रकार के अभिवादन करने की प्रथाएँ अर्थात् सिजदा व पैबोस, आरक्षित शिकारगाह, नौबत, विशेष प्रकार के राजचिह्न, पताकाएँ, शिविर, वस्त्र आदि। इन सब का प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति को करने की आज्ञा नहीं थी क्योंकि यही वस्तुएँ सुल्तान व सर्वसाधारण में भेद इंगित किया करती थीं। सुल्तान कभी भी अकेले नहीं जाता था। उसके साथ उसके अमीर, सैनिक,

नौकर, चाकर, अंगरक्षक, गणमान व्यक्तियों का रहना आवश्यक था। वह शान-शौकत में एक जुलूस के साथ निकलता था। आखेट खेलने के लिये जाते समय भी उसके साथ अत्यधिक संख्या में अधिकारीअ मीर आखेट का प्रवन्ध करने वाले, शिकारी व वहेलिये हुआ करते थे। जव वह किसी अभियान पर जाता था तो भी उसके साथ हज़ारों की संख्या में सैनिक, सेनानायक, नौकर-चाकर आदि हुआ करते थे। वह **दीवान-ए-आम** में भी मंत्रियों, अधिकारियों, विदेशी राजपूतों, गणमान्य व्यक्तियों आदि की उपस्थिति में एक मंच पर रखे हुए सिंहासन पर बैठता था जिससे उसके महान पद का प्रतिष्ठा व गरिमा, वैभव, ऐश्वर्य एवं आकर्षक व्यक्तित्व का आभास होता था।

सुल्तान की उपाधियाँ

इस काल में सुल्तानों ने महान् पदवियाँ ग्रहण कीं। यह पदवियाँ उसके विशिष्ट पद एवं असीमित अधिकारों का प्रतीक थीं। शासकों ने सुल्तान की पदवी के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण पदवियाँ भी ग्रहण कीं। मिनहाज ने सुल्तान इल्तुतमिश की पदवी, सुल्तान-ए-मुअज्ज़म, शहरयारे आज़म, शम्सुदुनियाँ वदीन, अवुल मुजफ्फर इल्तुतमिश अस्सुल्तान यमीनें खलीफतुल्लाह नासिरें अमीरूल मोमनीन दी है।[८] रज़िया की पदवी नूसरत अमीर उल मोमनीन,[९] सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की पदवी, सुल्तान अल-आज़म-उल मुअज्ज़म नासिरूद्दुनियाँवदीन महमूद अवुल मुजफ्फरशाह बिन अस्सुल्तान यमीने खलीफा उल्लाह, नासिरे अमीरूल मोमनिन थी।[१०] वरनी ने वलवन की पदवी, अस्सुल्तान मों अज्ज़ुम ग़यासुद्दीनियाँ वद्दीन वलवन,[११] कैकुवाद की पदवी अस्सुल्तानुल अकरम मुइज्जुदुनियाँ वद्दीन कैकुवाद का उल्लेख किया है।[१२] डॉ० त्रिपाठी के अनुसार गुलाम वंश के शासक अपने को नसीरी अमीरूल मोमनीन या नुसरत अमीरूल मोमनीन कहते थे।[१३] खिलजी शासकों में जलालुद्दीन ने सुल्तान की पदवी के साथ जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी की पदवी धारण की। अलाउद्दीन खिलजी ने सुल्तान की पदवी के साथ-साथ अवुल मुजफ्फर सुल्तान अलाउद्दीन व दीन मुहम्मदशाह की पदवी ग्रहण की।[१४] खिलजी शासक अपने को यामिनी-उल-खिलाफत नासिरूल मोमनीन कहते थे। इसी प्रकार से खुसरो खाँ ने भी अपने को यामिनी अमीरूल मोमनीन कहना प्रारम्भ किया।[१५] सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक ने नसीरी अमीरूल मोमनीन की पदवी ग्रहण की। उसके सोने के सिक्कों में अस्सुल्तानुल गाज़ी गयासुद्दीनियावद्दीन अवुल मुजफ्फर व नासिरे अमीरूल मोमनीन की पदवी मिलती है। उसके मिश्रित धातुओं से बने सिक्कों में अवुल मुजफ्फर तुग़लकशाह व श्री सुल्तान गयासुद्दीन की पदवी अंकित मिलती है।[१६] एसामी से अनुसार उसने गयासुद्दीन की पदवी ग्रहण की।[१७] इसी प्रकार से मुहम्मद बिन तुग़लक ने अपने को यामीन अमीर-उल मोमनीन कहा। उसके स्वर्ण के सिक्कों में आवूवक्र अल मुजाहिद फी सवीउल्लाह मुहम्मद विन तुग़लकशाह अंकित मिलता है। फिरोज़शाह तुगलक ने अपनी पदवी, सैफुल अमीरूल

मोमनीन और बाद में नायब अमीरूल मोमनीन तथा अल-खलीफा अमीरूल मोमनीन रक्खी। उसके सिक्कों में भी यही पदवी अंकित मिलती है।[१८] एसामी के अनुसार उसने अपनी उपाधि अबुल मुजाहिद रक्खी।[१९] तैमूर के आक्रमण के उपरान्त जब सैय्यदों ने अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की तो सैय्यद शासकों ने रैयत-ए-आला व मसनद-ए-आली की पदवियाँ ग्रहण की। लोदी सुल्तानों ने केवल सुल्तान की ही पदवी ग्रहण की। बहलोल ने सुल्तान की पदवी ग्रहण की।[२०] उसके पुत्र शहजादा निज़ाम ने सुल्तान सिकन्दर[२१] और सिकन्दर के पुत्र इब्राहीम ने सुल्तान की पदवी ग्रहण की।[२२]

जब कोई व्यक्ति सुल्तान बनकर गद्दी पर बैठता था तो उसका नाम खुत्बा में पढ़ा जाता था ताकि उसके पद को वैधानिक मान्यताएँ मिल जाँय। वह इसी समय अपने नाम के सिक्के भी निकलवाता था। सुल्तान के लिये सिक्का व खुत्बा बहुत ही महत्वपूर्ण थे। कभी-कभी किसी अभियान में विजयी होकर वापस आने के उपरान्त विजयोल्लास में भी वह सिक्के निकलवा दिया करता था। अतः सिक्कों का निकलवाना उसी का शाही अधिकार था। दिल्ली सलतनत के पतन के उपरान्त जब स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई तो वहाँ के सुल्तानों ने भी यही परम्पराएँ अपनायीं।

सुल्तानों के विशिष्ट राजचिन्ह

सुल्तान के लिए कुछ विशिष्ट राजचिह्न भी हुआ करते थे, जैसे कि ताज व सिंहासन, छत्र व दूरबाश, सायावान, नौबत व पताकाएँ, हाथी व अपार धन-सम्पत्ति आदि। दिल्ली से सुल्तानों का ताज ईरानी शासकों व गज़नवियों के ताज से भिन्न हुआ करता था क्योंकि वह केवल अलंकरण के ही लिए नहीं वरन् सिर पर पहनने के लिए भी हुआ करता था। उसमें हीरे-जवाहरात लगे होते थे। वह गोलाकार हुआ करता था। वह माथे की ओर से थोड़ा ऊपर की ओर उठा हुआ रहता था। सुल्तान के लिए सिंहासन लकड़ी का बना हुआ होता था। उस पर सोने की चादर मढ़ी होती थी। सिंहासन का आकार चौकोर हुआ करता था। उसमें चार पाए लगे हुए होते थे। उसकी भव्यता तो बढ़ाने के लिए सुल्तान कभी-कभी उस पर बहुमूल्य छतरियाँ लगवा लिया करते थे। सुल्तान के लिए छत्र का प्रयोग करना आवश्यक था। उसके हाथ में शाही छड़ी शाही शक्ति का प्रतीक हुआ करती थी। छत्र का रंग कैसा हो यह सुल्तान की व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करता था। उसका प्रयोग केवल शासक ही कर सकता था अथवा वह व्यक्ति जिसे शासक ने स्वयं छत्र प्रदान किया हो। शासक व किसी व्यक्ति को प्रदान किए गये छत्र में अन्तर होता था। इस काल में बल्बन ने अपने पुत्र शाहजादा मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते समय उसे छत्र व दूरबाश प्रदान किया। जब मुहम्मद की मृत्यु हो गयी तो बुग़रा ख़ाँ को यह विशिष्ट सम्मान प्राप्त हुआ। उसका पुत्र कैकुबाद जब दिल्ली के सिंहासन पर

बैठा तो उसने पिता से सफेद छत्र प्रयोग करने की अनुमति माँगी, जो कि उसने उसे दे दी।[२३] दूरवाश एक लकड़ी की छड़ी होती थी जिसके ऊपरी भाग पर सोने की मूंठ लगी होती थी। इसी प्रकार से सायावान, नौवत तथा अलम अथवा पताकाओं का प्रयोग भी सुल्तान का विशिष्ट अधिकार था। विना सुल्तान की आज्ञा के कोई भी व्यक्ति उनका प्रयोग नहीं कर सकता था। सुल्तान इल्तुतमिश ने जव मलिक नसीरुद्दीन को वंगाल का गवर्नर नियुक्त किया तो उसने उसे लाल सायावान प्रयोग करने की अनुमति दी।[२४] सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मलिक काफूर को दक्षिण में लाल सायावान प्रयोग करने की अनुमति दी।[२५] इसी प्रकार से सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने दिल्ली का प्रशासन राजकुमार फतहखान को सौंपने व वंगाल अभियान पर स्वयं जाते समय उसे लाल सायावान प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की।[२६] नौवत वजाने का विशिष्ट अधिकार भी सुल्तान का हुआ करता था। नौवत या शाही वाद्य-यन्त्रों में नगाड़े, तुरही आदि हुआ करते थे। कभी-कभी सुल्तान अन्य व्यक्तियों को भी नगाड़े वजाने का अधिकार प्रदान कर दिया करता था। लेकिन ऐसा वहुत ही कम होता था व कुछ ही अवसरों पर उसे नगाड़े वजाने का अधिकार मिलता था। वह व्यक्ति यात्रा करते समय ही नगाड़े वजा सकता था किन्तु शहर में नहीं। शिहावुद्दीन अल उमरी के अनुसार जिस समय सुल्तान मुहम्मद तुग़लक महल में प्रविष्ट होता था या यात्रा पर जाता था उस समय सिकन्दर महान् की तरह वाद्य यन्त्र वजाये जाते थे। २०० नक्कारे, ४० वड़े तम्वूरे, २० वड़ी दुन्दुभी तथा १० वड़े मंजीरे होते थे। उसके लिए ५ वार नक्कारे वजाये जाते थे।[२७] जव सुल्तान की सवारी निकलती थी तो उसके दोनों ओर लोग शाही पताकाएँ लेकर चलते थे। इन पताकाओं में मछली व अर्धचन्द्र वना हुआ होता था। पताकाओं के साथ-साथ निशान या शाही चिन्ह भी सुल्तान के जुलूस के साथ लोग लेकर चलते थे। शिहाउद्दीन अल-उमरी के अनुसार मुहम्मद विन तुग़लक की अनेक पताकाएँ काले रंग की होती थीं। जिनके मध्य काले रंग का अजगर वना हुआ होता था। उसके आने-जाने के समय दाहिनी ओर काली पताकाएँ तथा वाईं ओर लाल पताकाएँ होती थीं।[२८] इसी प्रकार से अनेक संख्या में हाथी रखना तथा उस पर सवारी करना भी सुल्तान का प्रमुख अधिकार था। हाथी का शिकार करना व उन्हें पकड़ कर लाना भी उसी का विशिष्ट अधिकार था। मध्यकाल में यदि कोई भी व्यक्ति किसी भाँति अनेक हाथी व सोना प्राप्त कर लेता था तो उसे दक्ष सैनिक भर्ती करने में समय नहीं लगता था। वह सर्वसाधारण को अपने पक्ष में करके उन्हें इस वात के लिए राजी कर लिया करता था कि वे उसे अपना शासक मान लें और शासन करने वाले सुल्तान को पदच्युत कर दें। उदाहरणार्थ, वलवन के शासनकाल में लखनौती में उसे प्रान्तप्रति तुग़रिल वेग ने जाजनगर पर आक्रमण करके हाथी व सम्पत्ति ग्रहण की और छत्र धारण कर लिया।[२९] इसीलिए हाथी व सोने पर अधिकार रखना सुल्तान का ही विशेष अधिकार था। वहुत वाद में दिल्ली के सुल्तानों ने उपहार में हाथी देना प्रारम्भ

किया। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने अपने भाई नायव वरवक़ को ६ हाथी उपहार में दिये। वह इतना प्रसन्न हुआ कि जव भी वह दरवार में जाता था तो उन हाथियों को अपने साथ लाता था।[३०] इस काल में हाथियों को सुल्तान का अभिवादन करने के लिए प्रतिदिन लाया जाता था।

सुल्तान के दरबार की व्यवस्था

सुल्तान की गरिमा, उसका ऐश्वर्य, वैभव, व्यक्तित्व, प्रभाव तथा उसकी प्रतिष्ठा उसके दरवार से ही मालूम होती थी। दिल्ली के सुल्तान दरवार का आयोजन करने में चौकस रहते थे। यह सुल्तानों के ऊपर निर्भर करता था कि वे सप्ताह में प्रतिदिन दरवार करें या एक-दो वार या विशेष अवसरों पर, विदेशी राजदूतों या गणमान्य व्यक्तियों के आगमन पर या अपने सिंहासनारोहण की घोषणा करने पर या सिंहासनारोहण की वर्षगाँठ मनाने या अपना जन्मोत्सव मनाने के उपलक्ष में या सामाजिक अथवा धार्मिक पर्व पर, सर्वसाधारण व अमीरों से नज़र व निसार अथवा उपहार प्राप्त करने के लिए दरबार का आयोजन करें। इस सम्वन्ध में उनका कोई विशेष नियम नहीं था। कभी-कभी किसी अभियान में विजयी होकर वापस लौटने या राजकुमार एवं राजकुमारियों के जन्म-दिन या विवाहोत्सव पर भी दरवार का आयोजन किया जाता था। जव कोई विदेशी राजदूत आता था तो उसके स्वागत करने के लिए भव्य एवं प्रभावशाली दरवार का विशेष ढंग से आयोजन किया जाता था। इस समय अधिकारियों का मुख्य उद्देश्य शाही अतिथि को राज्य की भव्यता एवं सम्पन्नता से प्रभावित करना ही होता था। १८ फरवरी १२२८ ई० को जव खलीफा के राजदूत इल्तुतमिश के लिए खिलअतें व मानपत्र लेकर राजधानी पहुँचे तो शहर व दरवार को सजाया गया और समारोह मनाया गया।[३१] ८ मार्च १२६० ई० को वलवन के स्वागत में दिल्ली में हौज़-ए-रानी के निकट सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने दरवार का आयोजन करवाया।[३२] मार्च १२६० ई० में खुरासान से आये हुए दूत के सम्मान में दिल्ली में भव्य दरबार का आयोजन हुआ।[३३] ज़ियाउद्दीन वरनी ने वलवन द्वारा आयोजित दरवार व उसकी भव्यता का विस्तृत विवरण दिया है। उसने लिखा है कि **दरबार-ए-खास** के प्रवन्धकों, **हाज़ियों**, **सिलहदारों**, **सरजानदारों**, **सहमुलहश्मों**, उनके **नायबों**, **चाउशों**, **नकीवों** और पहलवानों से उत्तम रूप से सुसज्जित किया जाता था। हाथियों व आभूषण से सुसज्जित घोड़े वाएँ व दाएँ खड़े किए जाते थे। सुल्तान वलवन अपने सूर्य के समान मुख व कपूर की भाँति श्वेत दाढ़ी के साथ सिंहासन पर इस प्रकार विराजमान होता था कि लोग काँप उठते थे। दरबार में उसके निकटतम सम्वन्धी सिंहासन के पीछे **शाहनाए पील**, **सरजानदरान**, **सिलहदारान**, **अरवुरबकान** व अमीर-ए-जीलमान और उनके नायव दाएँ व वाएँ खड़े रहते थे। सुल्तान के दरवार में प्रवेश करने पर सह-मुल-हश्म, **चाऊश और नकीव** इस प्रकार उच्च स्वर में खवर देते थे कि उनकी आवाज़ दो-दो

कोस तक सुनाई देती थी। यदि दूसरे देशों के राजदूत तथा अन्य स्थानों के राजा व रायज़ादे एवं मुकद्दम आते थे तो उन्हें दरबार में **खाकबोस** करना पड़ता था। अधिकांशत: वे चकित होकर मूर्छित हो जाते थे और उन्हें सुध-बुध भी नहीं रहती थी। बिसमिल्लाह की आवाज़ दूर-दूर तक जाती थी। बलबन ने ताज की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ईरानी रीति-रिवाजों व परम्पराओं को अपनाया। उसका यह अटूट विश्वास था कि जब तक ईरानी परम्पराओं व रहन-सहन को नहीं अपनाया जाता तब तक राजत्व सम्भव नहीं। उसने दरबार और अपने परिवार में ईरानी परम्पराओं का पूर्णत: पालन किया। उसने अपने शासनकाल में प्रथम व द्वितीय वर्षों में अपने ठाठ-बाट को बढ़ाने, वैभव को बढ़ाने के लिए राजसभा तथा सवारी की शान-शौकत बढ़ाने के लिए भी प्रयास किया। उसने अनेक सीस्तानी पहलवानों को ६००००-७०००० जीतल वेतन देकर अपनी सेवा में रखा। वे अपने कन्धों पर नंगी तलवारें रखे हुए उसके घोड़े के साथ-साथ चलते थे। उसकी सवारी के समय उसका चमक-दार मुखड़ा अपनी दमक दिखाता था तो दूसरी ओर सीस्तानी पहलवानों की तलवारें चमचमाती थीं जिससे दर्शकों की आँखें चमचमा उठती थीं। उसने अपने **दरबार-ए-आम** को प्रबन्धकों, **हाजिबों, सिलेहदारों, सरजानदारों, सहमुलहश्मों, नायबों, नक़ीबों** तथा पहलवानों से सुशोभित किया। विशेष अवसरों पर दरबार को बहुमूल्य कालीनों, वस्त्रों, रंग-बिरंगे ख्वान, चाँदी व सोने के बर्तनों, ज़री के पर्दों, झाड़-फ़ानूसों से सजाया जाता था। वहाँ शरबत व पान की व्यवस्था की जाती थी। दोपहर व संध्या के पूर्व की नमाज़ के भव्य जश्न का समय निर्धारित था। ऐसे अवसरों पर खान, मलिक तथा मन्त्री अपने-अपने उपहार उसे भेंट किया करते थे और वह उन्हें उपहार देकर उनका आदर-सम्मान किया करता था। दरबार के अनुशासन पर वह विशेष ध्यान देता था। इस सम्बन्ध में उसके नियम अत्यन्त कठोर थे। उसने अपने दरबार में ईरानी परम्पराएँ भी लागू कीं। उसने नौरोज का जश्न मनाना प्रारम्भ किया। उसने गज़नी के दरबार की भाँति अपने दरबार को सुसज्जित कर उसे वैभव-शाली बनाया। सैकड़ों मील चल कर लोग उसके दरबार को देखने आया करते थे।[34] अपने पितामह की भाँति कैकुबाद भी भव्य दरबार का आयोजन तो किया करता था किन्तु उनमें अनुशासन नहीं रहता था। अपने पिता बुग़रा खाँ से मिलने के लिए जब वह अवध गया तो उसने सरयू नदी के किनारे भव्य दरबार का आयोजन किया।[35] इसी प्रकार से खिलजी सुल्तान भी अपने दरबार का आयोजन करते थे।[36] मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने अपने दरबार की व्यवस्था करने में बलबन का अनु-करण किया। इब्नबतूता ने उसकी दरबार की व्यवस्था का विस्तृत विवरण दिया है। उसने लिखा है कि सुल्तान का देहली में महल दारे-सरा कहलाता था। उसमें अनेक द्वार थे। प्रथम द्वार पर पहरा देने के लिए सैनिक थे। शहनाई, तुरही तथा सिंगा बजाने वाले भी यहीं बैठते थे। जब कोई अमीर अथवा बड़ा आदमी आता था तो उसके स्वागत में वे तुरही बजाते थे। दूसरे व तृतीय द्वार पर भी यही होता था।

प्रथम द्वार के बाहर एक चबूतरे पर जल्लाद बैठते थे जिनका कार्य मृत्यु-दण्ड पाने वाले व्यक्तियों की हत्या करना था। प्रथम तथा द्वितीय द्वार के मध्य बड़े-बड़े दालान तथा चबूतरे बने थे। वहाँ नौबत वाले बैठते थे। द्वितीय द्वार पर भी द्वारपाल बैठे रहते थे। दूसरे तथा तीसरे द्वार के बीच में एक चबूतरा था जहाँ नकीबों का सर्वोच्च अधिकारी बैठता था। उसके हाथों में सोने का गदा होता था। वह अपने सिर पर सोने का एक जड़ाऊ टोपा पहने रहता था जिस पर मोर के पंख लगे होते थे। अन्य नक़ीब उसके सामने खड़े रहते थे। उन नकीबों के सिर पर टोपी रहती थी जिसमें सुनहरी कालर लगी रहती थी और उनकी कमर में सुनहरी पेटियाँ बँधी रहती थीं। उनके हाथों में कोड़े होते थे जिनकी मूठ सोने व चाँदी की होती थी। दूसरे द्वार से चलकर एक बहुत बड़ा कमरा मिलता था जहाँ साधारण लोग बैठते थे। तृतीय द्वार पर भी चबूतरे बने थे जिन-पर द्वार के सचिव बैठते थे क्योंकि जब तक सुल्तान की अनुमति प्राप्त नहीं होती थी तब तक किसी को भी द्वार में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। प्रत्येक अमीर के साथ आने वाले व्यक्तियों की संख्या निर्धारित होती थी। जब भी कोई द्वार पर आता था तो द्वार के सचिव उसके आने का समय नोट कर लिया करते थे। रात्रि की नमाज़ के बाद द्वार के सचिव सुल्तान के सम्मुख विवरण पढ़ दिया करता था। द्वार पर जितनी भी घटनाएँ होती थीं उनका विवरण भी वे लिख दिया करते थे। कोई भी अधिकारी तीन दिन से अधिक अनुपस्थित रहता था तो उसे बिना सुल्तान की अनुमति के द्वार में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। यदि वह किसी रोग के कारण अनुपस्थित रहता था तो वह अपने पदानुसार सुल्तान की उपस्थिति में उपहार लेकर जाता था। तृतीय द्वार में प्रवेश करने पर एक बड़ा भारी कमरा मिलता था जिसका नाम हज़ारसितून अथवा हज़ार खम्भों वाला कमरा कहा जाता था।

मुहम्मद तुग़लक का दरबार व उसकी व्यवस्था

प्रायः मुहम्मद तुग़लक का दरबार मध्याह्नोत्तर व सायंकाल की नमाज़ (अस्त्र की नमाज़) के बाद ही लगता था। किन्तु कभी-कभी वह प्रातः ही दरबार में बैठता था। उसका सिंहासन एक मंच पर रक्खा रहता था जिस पर एक श्वेत चादर पड़ी रहती थी। उसके पीछे एक बहुत बड़ा तकिया रक्खा रहता था। दो अन्य तकिए उसके हाथों के सहारे के लिए दाहिने व बाएँ ओर रखे रहते थे। वह घुटनों को मोड़कर बैठता था। उसके सिंहासन पर बैठने के बाद वज़ीर उसके सम्मुख खड़ा हो जाता था। वज़ीर के पीछे उसके सचिव खड़े रहते थे, उनके पीछे हाजिबों का सरदार तथा हाजिब खड़े रहते थे, उसके उपरान्त खास हाजिब, नायब खास हाजिब, वकीलदर उसका नाम व उच्च हाजिब, मुख्य अधिकारी आदि हुआ करते थे। हाजिबों के पीछे नक़ीब होते थे जिनकी संख्या १०० के लगभग थी। सुल्तान के गद्दी पर बैठने के बाद ही हाजिब व नक़ीब उच्च स्वर में बिसमिल्लाह कहते थे। उसके बाद मलिक कबीर सुल्तान के पीछे चँवर लेकर खड़ा होता था और मक्खियाँ उड़ाता था। सौ सशस्त्र

सैनिक सुल्तान के दाहिनी ओर, सौ सैनिक उसके बाईं ओर ढाल, तलवार तथा धनुष लेकर खड़े रहते हैं। इसी भवन में दाहिनी व बाईं ओर मुख्य काज़ी, मुख्य खातिब, आम काज़ी, बड़े-बड़े फकीर, सैय्यद सुल्तान के परिवार के सदस्य, बड़े-बड़े अमीर, परदेशी अन्य देशों के लोग तथा सैनिक अधिकारी खड़े रहते थे। तत्पश्चात् सजे हुए हाथी व घोड़े सुल्तान के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत किए जाते थे। **हाजिब व नकीब** ही अमीरों परदेशियों को सुल्तान के सम्मुख उपस्थित करते थे। सुल्तान को उपहार देने व उससे उपहार प्राप्त करने से सम्बन्धित कुछ नियम थे, जिनका पालन किया जाता था। इस प्रकार के दरवार के आयोजन से सम्राट की प्रतिष्ठा बढ़ती थी। उसका दरवार आकर्षण का केन्द्र था। उसकी न्यायप्रियता एवं कठोरता दोनों उसके राजत्व आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते थे। उसने उलमा वर्ग को भी शासन में कभी भी प्रधानता नहीं दी। यहाँ उसने वलवन या सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के राजत्व के आदर्शों का अनुकरण किया।

इब्नबतूता ने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के दरबार की व्यवस्था का जो विवरण दिया है उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। ईद पर दरवार विशेष ढंग से सजाया जाता था।[३७] अपनी बहन का विवाह अमीर सैफुद्दीन गद्दा से करते समय उसने **कुश्क-ए-लाल** में भव्य दरवार का आयोजन किया।[३८] शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार वह सप्ताह में केवल एक दिन मंगलवार को आम दरवार का आयोजन किया करता था। इस दिन वह प्रजा की शिकायतें सुनता था। अन्य दिनों में वह अपना दरवार प्रातःकाल व सायंकाल करता था।[३९] उसके दरवार में दवीर को छोड़कर कोई भी व्यक्ति अस्त्र-शस्त्र लेकर नहीं आ सकता था। वह स्वयं दरवार में तरकश व तीर तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र लेकर वैठता था।

फिरोजशाह के दरवार की व्यवस्था

अफीफ के अनुसार फिरोज़शाह तुग़लक तीन स्थानों पर वैठकर दरवार किया करता था। पहले स्थान को **महलेसहने गुंली**, महलेदाका या **महलेअंगूर**, दूसरे स्थान को **महले छज्जा** चौवीन तथा तीसरे को **महलेवारेआम** या **सहनेमियानगी** कहते थे। समस्त खान, मलिक अमीर तथा प्रतिष्ठित लोग, कुछ प्रसिद्ध लेखक **सहनेगुर्ली** के दरवार में जाते थे और वहाँ सुल्तान का ;अभिवादन करते थे। **महलेछज्जा चौवीन** बड़े खास लोगों का स्थान था। महलेसहने मियानगी में दरवार-ए-आम हुआ करता था। सुल्तान का यह नियम था कि वह **महल-ए-सहान** गुलीं में प्रातः ८ वजे तक रहता था, उसके पश्चात् वह **महल-ए-चौबीन** में शैख उल इस्लाम के साथ महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श लेने के लिए जाता था। यहाँ अन्य किसी भी व्यक्ति को आने नहीं दिया जाता था। यहाँ विचार-विमर्श समाप्त होने के बाद शैख सुल्तान के साथ भोजन करता था व उसके वाद महल से चला जाता था। कभी-कभी **महल-ए-छज्जाए चौवीन में** ही सुल्तान वरिष्ठ अधिकारियों, मन्त्रियों व अमीरों से परामर्श लिया करता था और महत्वपूर्ण

विषयों पर उनसे वार्तालाप करके नवीन कानून लागू करता था। यहीं विशेष गोष्ठियाँ भी आयोजित होती थीं जिनमें गायक, नृतक, पहलवान, कहानी सुनाने वाले, जिनकी संख्या ३००० के लगभग थी देश के विभिन्न भागों से आकर शुक्रवार को उसका मनोरंजन किया करते थे और उससे उपहार व इनाम प्राप्त करते थे। सुल्तान अपना राजकार्य **महल-ए-सहान मियानगी** में किया करता था। यहाँ **दरबार-ए-आम** हुआ करता था। सम्भवतः यहाँ ९ बजे प्रातः के बाद ही राजकार्य होता था। क्या मुहम्मद तुग़लक की भाँति फिरोज़ भी सायंकाल को दरबार करता था, यह ठीक तरह से ज्ञात नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि **महल-ए-सहानए गुलीं** में प्रातः ही वह मुकद्दमों को सुनकर उन पर फैसला दे दिया करता था। यहाँ वह विदेशों से आये हुए राजदूतों व गणमान्य व्यक्तियों का आदर-सत्कार भी किया करता था। इसके अतिरिक्त इसी दरबार में वह खिलअतें, उपहार भी अमीरों, मुक्तों तथा अन्य व्यक्तियों को देता था। ईदों के विशेष अवसरों पर इस दरबार को बहुत ही अच्छे ढंग से सुसज्जित किया जाता था। इसके बाहर एक बड़ा शामियाना लगा दिया जाता था जहाँ कि सुल्तान दरबार किया करता था।

फिरोजशाह तुग़लक ने अपने समय में दरबार की कुछ परम्पराएँ निर्धारित कर दी थी। वह शाही जुलूस में अधिकारियों के साथ दरबार में प्रवेश करता था। इस समय वह तख्त रवाँ पर बैठकर आता था। उसके ऊपर छत्र लगा हुआ होता था। उसके चारों ओर अंगरक्षक अपने हाथों में तलवार लेकर चलते थे और उसके साथ-साथ चलने वाले लोग बड़ी शान-शौकत से जुलूस के साथ चलते हुए लोगों के हृदय में भय उत्पन्न कर करते थे। दरबार में प्रत्येक व्यक्ति अपने पदानुसार प्रवेश करता था। सुल्तान के सिंहासन पर बैठने के उपरान्त **सरपर्दादारानेखास** तथा **सरपर्दा** (राजप्रसाद के विशेष अधिकारी) सुल्तान के पास आकर उसका अभिवादन करते और उसके पूछते कि अभिवादन करने वालों के लिए क्या आदेश है। सुल्तान उनसे कहता कि उन्हें प्रस्तुत किया जाय। इसके पश्चात् **सरपर्दादाराने-ए-खास** सुल्तान का यह आदेश अमीर हाजिब तक पहुँचा देते थे। सर्वप्रथम हाजिब फिर **दीवान-रसालत, दीवान-ए-कज़ा, दीवान-ए-वज़ारत** के अधिकारी सुल्तान का अभिवादन करते थे। **दीवान-ए-वज़ारत** का स्थान सर्वदा सिंहासन के दाहिनी ओर होता था। **दीवान-ए-वज़ारत** के अधिकारियों के बाद **दीवान-ए-अर्ज़** के अधिकारी और उनके साथ **कोतवाल** अभिवादन करते थे। उनका स्थान सिंहासन के बाएँ ओर होता था। समस्त शाहजादे तथा विश्वासपात्र सुल्तान के सिंहासन के पीछे खड़े होते थे। कुछ अमीर, मलिक, **अक्तादार** तथा प्रबंधक भी बाईं ओर खड़े होते थे। प्रत्येक अपनी-अपनी श्रेणी या पदानुसार पंक्ति में खड़े होते थे।[८०]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने सभी दरबारियों के लिए उनकी पोशाकें निर्धारित कर दी थीं। उसके आदेशानुसार कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति बिना कुलाहें मुजुक (एक विशेष प्रकार की टोपी) के दरबार में नहीं आ सकता था। सभी

अधिकारियों के लिए उत्तम सूती जामा, मोज़े व टोपी पहन कर आना अनिवार्य था। यहाँ तक कि तलवार चलाने वाले को भी वह पोशाक, जो उनको दी जाती थी, पहन कर आना पड़ता था। इस पोशाक में जामाए-ज़रदोज़ी, सफेद वन्द, सुनहरी पेटी, कुलाहे वरबकी (वरबकी टोपी) हुआ करती थी।

दरवार में सभी व्यक्ति अपने पद व श्रेणी के अनुसार स्थान ग्रहण करते थे। वजीर खान-ए-जहाँ सिंहासन के बाईं ओर वैठता था। अमीर-ए-मुअज्जम अमीर अहमद इक़वाल खानेजहाँ से कुछ ऊँचे तथा खानेजहाँ के पीछे वैठता था। मलिक निज़ाम उलमुल्क अमीर हुसैन, जो कि नायव वज़ीर मुमालिक था, खानेजहाँ के नीचे राजसिंहासन के पास वैठता था। दाईं ओर खाने-ए-जहाँ के पीछे एक क़ालीन विछा रहता और उस पर काज़ी सद्रे-ए-जहाँ और वाँहवना पालती मार कर वैठते थे। उसके वरावर मंगाली खाँ वैठता था। एक दूसरे क़ालीन पर जाफर खाँ, उसके वरावर अहमद खाँ अनीरत्थू वैठते थे। उसके पास आज़म खाँ खुरासानी वैठता था और उनके पीछे राय मदार देव, राय सवीर, रायदत्त, अदहरन भूमि पर वैठते थे।

अफीफ के अनुसार भूमि पर सिर रखकर सुल्तान का अभिवादन किया जाता था। उस समय तीन वार इस प्रकार के अभिवादन करने की परम्परा थी। फिरोज़-शाह से पूर्व नायव वजीर को सिंहासन के निकट वैठने की अनुमति न थी किन्तु मलिक निज़ाम उल-मुल्क को यह अधिकार दे दिया गया क्योंकि वह उसका वहनोई था।[४१] सुल्तान का यह नियम था कि जव सभी अधिकारी उसका अभिवादन कर चुकते तो वह खान-ए-जहाँ से वातचीत करता था। इस वीच वह किसी अन्य व्यक्ति से वातचीत नहीं करता था। यदि सुल्तान अन्य किसी व्यक्ति से वातचीत करना चाहता तो खान-ए-जहाँ उस व्यक्ति की ओर संकेत कर दिया करता था। वह व्यक्ति आकर सुल्तान से वात कर लिया करता था। दरवार के कार्यों को निवटाने में मलिक नायव वरवक तथा हाजिवों का प्रमुख हाथ रहता था। मुख्य हाजिव या सैय्यद उल-हाजिव ही प्रत्येक व्यक्ति को सुल्तान के सम्मुख प्रस्तुत करता था। सुल्तान की स्मरण-शक्ति इतनी तेज़ थी कि वह अमुक व्यक्ति को देखकर ही उसे पहचान जाता था। यदि वह किसी अमीर से रुष्ट हो जाता तो स्वयं उस व्यक्ति पर रोप प्रकट न कर अपनी भावना वजीर के द्वारा उस व्यक्ति तक पहुँचा देता था। साधारण व्यक्तियों से वातचीत करना सुल्तान की प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। इस प्रकार से सुल्तान फिरोज़-शाह ने अपने दरवार का आयोजन पूर्ववर्ती शासकों की भाँति किया।[४२]

लोदी वंश के प्रथम अफगान शासक वहलोल लोदी अफगान कवायली सिद्धान्तों पर चला। वह सभी अफगान अमीरों को समान समझता था तथा कभी भी भव्य दरवार के पक्ष में न था। सभी अमीर व मन्त्रीगण एक कालीन पर ही वैठ जाते थे और उसके साथ विना किसी भेदभाव के विचार-विमर्श कर लिया करते थे। किन्तु उसके उत्तराधिकारी सुल्तान सिकन्दर लोदी व इब्राहीम लोदी ने उसको

परम्पराओं का अनुसरण न कर तुर्की शासकों की परम्पराओं पर चलते हुए भव्य दरबार करने की परम्परा जारी रक्खी।

जश्न-ए-दरबार

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि दिल्ली के सुल्तान दरबार करने में बड़ी रुचि रखते थे। वे विभिन्न अवसरों पर दरबार को भव्य बनाने का प्रयत्न करते थे। दोनों ईदों के अवसर पर संध्या समय दरबार में गायन, नृत्य और मनोरंजन का पूर्ण प्रबन्ध रहता था। जब दरबार का आयोजन नज़र व निसार प्राप्त करने के लिए होता था तो उस समय राजकवि सुल्तान की प्रशंसा में कवित्त व छन्द पढ़ने के लिये उपस्थित रहते थे। कुछ अवसरों पर दरबार को विशिष्ट ढंग से सजाया जाता था। उन दरबारों को जश्न-दरबार कहा जाता था। दरबार में नौरोज, दोनों ईद तथा अन्य त्योहार बड़े जोर-शोर से मनाए जाते थे। इन त्योहारों का विवरण यद्यपि अन्यत्र दिया गया है फिर भी यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इन अवसरों पर दरबार की भव्यता चार गुना बढ़ जाती थी। चारों ओर राज्य का वैभव, उसकी आर्थिक सम्पन्नता व समृद्धि, शान-शौकत की झलक दिखायी देती थी और उसके मध्य सुल्तान का आकर्षक व्यक्तित्व सूर्य की भाँति चमकता था। सुल्तान मुइज़उद्दीन कैकुबाद नौरोज़ का त्योहार मनाता था। अमीर खुसरो ने **क़िरानुस्सादैन** में लिखा है कि वसन्त ऋतु आते ही सुल्तान नौरोज़ के समारोह मनाने की तैयारियाँ आरम्भ कर देता था। एक अवसर पर उसने महल सजवाए, पाँच प्रकार के छत्र बनवाए। उसके दोनों ओर दरवाश लिये हुए तथा लोग दोनों ओर लाल और काले झण्डे लिये खड़े होते थे। उस दिन वह सिंहासन पर विराजमान होता था। अमीर उसे उपहार दिया करते थे। तत्पश्चात् साक़ी लाल मदिरा के प्याले सभी को भेंट करता था। मदिरापान महफ़िल के बाद सुल्तान अमीरों को उपहार दिया करता था।[१३]

इस काल में सुल्तान के सिंहासनारोहण पर कई दिनों तक जश्न मनाए जाते थे। दिल्ली में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के सिंहासनारोहण पर दिल्ली शहर को सजाया गया, वहाँ बड़े-बड़े शमियाने लगाए गए और कई दिनों तक जश्न मनाया गया। किसी को भी भोजन, शर्बत तथा ताम्बूल से रोका न गया। सुल्तान के आदेशानुसार सभी को स्वादिष्ट भोजन दिया जाता था। प्रत्येक शामियाने के नीचे गायक गाना गाते थे तथा नर्तकियाँ नृत्य किया करती थीं। जब सुल्तान किसी अभियान में विजयी होकर लौटा करते थे तो विशेष प्रकार के दरबारों का आयोजन होता था तथा कई दिनों तक जश्न मनाया जाता था।[१४]

दरबार के नियम

दरबार में अनुशासन व शिष्टाचार का होना अनिवार्य था। दरबार में सभी उत्सव एवं राजकीय समारोह बड़े ही उत्तम ढंग से दरबारी नियमों के अन्तर्गत ही मनाए जाते थे। इस समय सभी का आचरण व व्यवहार संतुलित रहता था। इस

बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था कि दरबार की प्रतिष्ठा व गरिमा भंग न हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने पदानुसार दरबार में स्थान ग्रहण करता था। अवसर के अनुरूप वह वस्त्र धारण करता था और सुल्तान को उपहार देते समय या उसके सम्मुख उपस्थित होते समय सभी नियमों का अक्षरतः पालन किया करता था। सभी अमीरों के लिए दरबार में उपस्थित होना अनिवार्य था। यदि कोई अमीर किसी कारण-वश उपस्थित नहीं हो पाता था तो उसका स्थान या तो उसका प्रतिनिधि या वकील ले लिया करता था। अमीरों के खड़े होने के लिये पंक्तियाँ तथा उनके अनुचरों के लिये विशेष स्थान निर्धारित होते थे। उनके लिये समय-समय पर विशेष वेषभूषा निर्धारित की जाती रही। उसे पहन कर वे दरबार में उपस्थित होते थे। सुल्तान स्वयं शाही खिलअत और अमीरे खिलअत, जिसमें एक ज़री का कुर्ता, तातार टोपी, सफेद पेटी तथा सुनहरी पट्टी का कमरबन्द होता था, धारण करता था। जिन अमीरों को खिलअत नहीं मिलती थी वे एक ऊनी कोट तथा टोपी पहन कर दरबार में आते थे। उन्हें आज्ञा न थी कि वे प्रतिदिन पहनने वाले वस्त्र, कुर्ता या जामा पहनकर दरबार में आवें। दरबार के अधिकारी भी अपने वस्त्र सम्मानित चिह्नों को पहनकर उपस्थित होते थे। वज़ीर तथा अन्य अधिकारियों का यह उत्तरदायित्व था कि वे दरबारी नियमों का पालन कराएँ और उनका उल्लंघन न होने दें। शाहनाए बर का यह कर्तव्य था कि जब सुल्तान को उपहार दिए जा रहे हों उस समय सभी नियमों का पूरी तरह से पालन हो।

उपहार दिये जाने की पद्धति प्रारम्भ होने से पूर्व अमीर अधिकारी तथा अन्य व्यक्ति जो कि सुल्तान की सहायता करते थे, सुल्तान के दोनों ओर पंक्ति में अपने हाथ जोड़कर उन्हें अपनी छाती पर रखे हुए खड़े रहते थे। उपहार देने वालों को बरबक उपस्थित करता था और वह उसे सुल्तान के पास ले जाता था। तदुपरान्त उपहार देने वाला व्यक्ति सुल्तान का अभिवादन तीन बार किया करता था। उसके बाद वह सिंहासन की ओर बढ़ता था। पुनः अभिवादन करता था, सुल्तान के सम्मुख नतमस्तक होता था और फिर सिर झुकाकर वहीं खड़ा रहता था। उसके बाद वह नज़र भेंट करता था। यदि उपहार देने वाला व्यक्ति कोई विशिष्ट व्यक्ति होता था तो सुल्तान उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता था, उसे गले से लगा लेता था या उसके उपहार को छू लिया करता था, जिससे उसके मस्तिष्क को शान्ति मिलती थी। तत्कालीन नियमों के अनुसार सुल्तान का अस्तित्व सभी लोगों से पृथक एवं दूर रहने में ही था। यहाँ तक कि वह अपने को अमीरों से भी दूर रखने का प्रयास करता था। किन्तु कभी-कभी ऐसी विचित्र स्थिति भी आ जाती थी जब कि उसे दरबार के नियमों का उल्लंघन भी करना पड़ता था। उदाहरणार्थ, सुल्तान मुइज़ुद्दीन कैकुबाद जब अपने पिता बुग़रा खान से सरयू नदी के किनारे मिल रहा था तो पिता के स्नेह में विह्वल होकर उसने उन नियमों का उल्लंघन करते हुए अपने पिता को

अपने सिंहासन के पास बिठाया व उसका आदर सत्कार किया। दरबार का सम्पूर्ण वातावरण बनावटी व दिखावटी ही हुआ करता था, लेकिन फिर भी उसकी अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्रशासन में सुल्तान की गरिमा व प्रतिष्ठा के लिये यह आवश्यक था कि उसके अंतर्गत सहस्रों अधिकारी व अमीर थे। इसलिये उसके दरबार में दरबार की व्यवस्था तथा दरबारी कार्यों को सम्पन्न कराने के लिए अनेक अधिकारी हुआ करते थे। दरबार में उनकी सहायता करने के लिए बरबक, हाजिब तथा वकीलदर तीन प्रमुख अधिकारी हुआ करते थे। इन अधिकारियों के नायब भी हुआ करते थे, जो कि उनकी सहायता करते थे। बरबक सुल्तान की जीह्वा हुआ करता था। वह लोगों की अर्जिया सुल्तान के सम्मुख प्रस्तुत करता था। हाजिब दरबार में उपहार देने से सम्बन्धित सभी गतिविधियों की देख-रेख किया करता था। दरबार में दो हाजिब एक हाजिब अमीरों को उपस्थित करने व दूसरा सर्वसाधारण में से किसी व्यक्ति को सुल्तान के सामने प्रस्तुत करने के लिये होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब सुल्तान मुकद्दमों को सुनता था या सैनिकों का निरीक्षण करता था या किसी नवआगन्तुक का स्वागत करता था तो एक हाजिब उसके पास खड़ा रहता था और दूसरा अन्य कार्य किया करता था। वकीलदर सचिव का कार्य किया करता था। उसके अतिरिक्त दरबार में शाहनाए-बरगाह—जो कि दरबार की व्यवस्था किया करता था, दावातदार जो कि सुल्तान के क़लमदान को रखता था तथा मुहरदार जो कि सुल्तान की मुहर को रखता था, होते थे। उनके अतिरिक्त अनेक ग़िलमान या परिचर दरबार में विभिन्न अधिकारियों की सहायता करने के लिये उपस्थित रहते थे। दरबार में नक़ीब व चौश भी होते थे, जिनका कार्य शाही जुलूस के आगे चलना, दरबार में नव-आगुन्तकों को लाना, दरबार प्रारम्भ व समाप्त होने की सूचना देना आदि होता था। दरबार व प्रशासन के सभी अधिकारी व अमीर उन सितारों के समान थे जो कि सुल्तान के चारों ओर मण्डराया करते थे।[४५]

दिल्ली के सुल्तानों की दिनचर्या

दिल्ली के अन्य सुल्तानों की भाँति सुल्तान सिकन्दर लोदी की सुनिश्चित दिनचर्या थी। वह प्रतिदिन दरबार-ए-आम करता था। मध्याह्नोत्तर की नमाज़से लेकर एशा (रात्रि की अन्तिम) नमाज़ तक वह मन्त्रियों के साथ रहता था, क़ुरान का पाठ किया करता था तथा समूह में नमाज़ पढ़ता था। सोने के समय की नमाज़ पढ़ कर वह अन्तःपुर में प्रवेश करता था। कुछ देर तक अन्तःपुर में रहकर एकान्त में जाकर बैठ जाता था और पूरी रात जागता रहता था। दिन के भोजन के बाद वह सोया करता था। सन्ध्या समय वह राज्य व्यवस्था के संचालन, सामन्तों, अमीरों को फरमान तथा निकटवर्ती शासकों को पत्र लिखने में व्यतीत करता था।[४६]

सुल्तान की मजलिसें

सुल्तान विभिन्न प्रकार की गोष्ठियों का आयोजन किया करते थे। इल्तुतमिश ग्यारह मास तक ग्वालियर के किले के समीप रहा। वहाँ मिनहज तज़कीर किया करता था। प्रारम्भ में सप्ताह में तीन बार तज़कीरें होती थीं, बाद में रमज़ान में प्रतिदिन होने लगी। मुहर्रम के प्रथम दस दिन तथा ज़िलहज्जा के प्रथम दस दिनों में प्रतिदिन तज़कीरें हुआ करती थीं। क़ैक़ुबाद की महफिलों में रमणियाँ व गायक, जिया जहजी तथा हुसाम जो अपने समय के बहुत बड़े विदूषक थे और नदीमों में गिने जाते थे, उसे चुटकला या परिहास सुनाते थे।[४७]

ज़ियाउद्दीन बरनी ने सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिलजी की महफिलों का विवरण दिया है। उसने लिखा है कि सुल्तान के उत्तम स्वभाव, ऊँचे चरित्र और दिल की सच्चाई के कारण उसकी भोग-विलास की महफिलों में एक से बढ़कर एक व्यक्ति अद्वितीय नदीम, सुन्दर लड़कियाँ, युवतियाँ तथा रमणियाँ तथा चित्ताकर्षक गायक एकत्र हो गये थे। मदिरापान की गोष्ठियों में सुल्तान का आतंक न था। उसने अपने मित्रों को आज्ञा प्रदान कर दी थी कि वे अपने घरों में दरबारी वस्त्र, मोज़ा आदि उतार करके और बारानी पहन कर ही उसकी महफिलों में आया करें ताकि वे वहाँ निश्चिन्त होकर बैठ सकें। उसकी महफिलों में सभी बिना भय के आपस में बातचीत कर सकते थे और वे हँसी-मजाक करते थे। वह अपने साथियों के साथ शतरंज तथा चौरस खेलता था। खेलते समय उसके साथियों को न उससे किसी प्रकार का भय रहता और न ही झिझक। सुल्तान की नृत्य एवं गायन की गोष्ठियों में ताजुद्दीन ईराकी, अमीर खुसरो, मुईद जाजर्मी, सद्र आली, अमीर अरसलान कुलाही आदि उपस्थित रहते थे। उनका मुकाबला कोई भी व्यक्ति काव्य-पाठ, कला, बुद्धिमत्ता में नहीं कर सकता था। अमीर खासा व हमीद राजा इसकी महफिलों में नई गज़लें पढ़ते थे। अमीर खुसरो प्रतिदिन उसकी नई गज़ल पढ़ता था। उसके महफिल के साथी साक़ी हैबत खाँ और निज़ाम थे। यल्दौज़ उनका सरदार था। उसके गायकों में मुहम्मद सना चंगी ढोल बजाता तथा फुतूहा, फक्राई की पुत्री एवं नुसरत खातून गाना गाती थी। उनके सुनने वाले होश-हवाश खो बैठते थे। दुख्तर खासा, नुसरत बीबी, मेहर अफरोज़ इतनी कृत्रिम भाव वाली युवतियाँ थीं कि जिस ओर देखती थीं, वे नाज़ अन्दाज़ दिखाती थीं कि लोग उन पर लट्टू हो जाते थे। वे उसकी महफिल में नृत्य करती थीं। अमीर खुसरो जो कि उसकी महफिलों में नदीमों का नेता था, प्रत्येक दिन रमणियों तथा युवतियों की सुन्दरता पर नई गज़लों की रचना किया करता था। साकियों द्वारा मदिरापान कराते समय या युवतियों के कृत्रिम भाव दिखाने के समय उसकी गज़लें पढ़ी जातीं।[४८]

सिंहासनारोहण के बाद प्रथम वर्षों तक सुल्तान अलाउद्दीन महफिलों का आयोजन करवाया करता था।[४९] यह महफिलें दो प्रकार की होती थीं। प्रथम महफिलें

जिनमें मनोरंजन का प्रवन्ध होता था। दूसरी वे महफिलें जिसमें वह राजनीतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया करता था।[५०] दूसरे प्रकार की महफिलों में भाग लेने वालों की संख्या सीमित थी। ऐसी महफिलों में मलिक अला-उल-मुल्क, व्याना का काजी ज़ियाउद्दीन और मुग़ीसउद्दीन, मौलाना जाहिरलंग तथा मौलाना मर्शीद कुहरामी हुआ करते थे।[५१]

शिहाबुद्दीन के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक दरबार का कार्य समाप्त करने के उपरान्त निजी गोष्ठी में आलिमों को आमन्त्रित करता था। वह उनके साथ भोजन व वार्तालाप करता था। आलिमों को विदा देने के उपरान्त वह नदीमों व गवैयों के साथ वैठकर कहानी व गाना सुना करता था।[५२] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक दरबार के कार्य से निवृत्त होकर गायकों का गान तथा नर्तकियों का नृत्य देखा करता था। इब्नबतूता ने लिखा है कि सर्वप्रथम युद्ध में वन्दी बनाई गई हिन्दू राजाओं की पुत्रियों से वह गाना सुनता था और उनका नाच देखता था।[५३]

सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक कुछ विशेष अवसरों पर अपने मनोरंजन हेतु, गोष्ठियों का आयोजन कराता था। ईद व शबेबरात के त्योहारों पर विशेष प्रकार की मनोरंजन गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। जुमे की नमाज़ के उपरान्त **महले-ए-छज्जाये चौबीन** में वह गायकों का गायन सुनता, नर्तकियों का नृत्य देखता, पहलवानों का मल्ल युद्ध देखता और अदूतियों से किस्से-कहानियाँ सुना करता था।[५४]

सुल्तान की प्रतिष्ठा व वैभव वढ़ाने के लिए वलवन के अपने शासनकाल में शाही सवारी की शान को वढ़ाया। उसकी सवारी के साथ सीस्तानी पहलवान नंगी तलवार लिये हुए चलते थे।[५५]

मुहम्मद तुग़लक दोनों ईदों का त्योहार वड़ी धूम-धाम से मनाया करता था। ईद से पूर्व रात्रि में वह मुख्य अधिकारियों, कर्मचारियों, परदेशियों, सचिवों, हाजिवों, नकीवों, सैनिक अधिकारियों, समाचार सम्वन्धी अधिकारियों, दासों इत्यादि को उनकी श्रेणी पदानुसार एक-एक खिलअत भेज दिया करता था। ईद के दिन प्रातःकाल उसके हाथी रेशमी वस्त्रों, सोने तथा जवाहरातों से सजाए जाते थे। उसकी सवारी में ११६ हाथी होते थे। प्रत्येक हाथी पर रेशम का वना हुआ छत्र होता था जिसमें वहुमूल्य रत्न जड़े होते थे। प्रत्येक छत्र की मुठिया शुद्ध सोने की होती थी। प्रत्येक हाथी पर जवाहरात से जड़ी हुई गद्दी होती थी। वह एक सजे हुए हाथी पर सवार होकर निकलता था। उसके आगे-आगे ज़ीनपोश होता था, जिसमें कि वहुमूल्य रत्न जड़े होते थे। शाही हाथियों के सामने दास व सेवक होते थे। प्रत्येक सोने की रोएँदार टोपी पहने रहता था। उनकी कमर में सोने की पेटी जवाहरातों से जड़ी होती थी। सुल्तान के आगे-आगे नक़ीव भी होते थे। उनकी संख्या ३०० होती थी। प्रत्येक नकीव ऊँची सुनहरी टोपी पहनता था। पेटी वाँधे रहता था और हाथ में सोने की मूँठ का एक डण्डा लिये रहता था। सुल्तान के पीछे-पीछे काज़ी उलकुज़ात सद्रेजहाँ कमालउद्दीन गज़नवी,

काज़ी उल कुज़ात, नासिरुद्दीन ख्वारिज़मी तथा छोटे-मोटे परदेशी, खुरासानी, एराक़ी, शामी, मिस्त्री तथा मग़रवी (उत्तर-पश्चिम अफ्रीका के निवासी) हाथी पर सवार होकर चलते थे। आज़ान देने वाले भी हाथियों पर 'अल्लाह हो अकबर' का नारा लगाते चलते थे। सुल्तान राजभवन के मुख्य द्वार से अपने सेवकों के साथ निकलता था। उसके प्रस्थान करने से पूर्व सैनिक उसकी प्रतीक्षा करते थे और प्रत्येक अमीर अपनी-अपनी टोली लिये पताकाओं तथा तुरही के साथ खड़ा रहता था। सर्वप्रथम सुल्तान की सवारी अग्रसर होती थी और उसके आगे-पीछे लोग चला करते थे। पीछे चलने वाले लोग तुरही, बिगुल व शहनाई बजाते रहते थे। उनके पीछे-पीछे सुल्तान के सेवक चलते थे। उनके पीछे-पीछे सुल्तान का भाई मुबारक खाँ, अपनी पताकाओं व सैनिक सहित और उसके पीछे सुल्तान के भतीजा बहराम खाँ की पताकाएँ, सवारी व सैनिक और उसके पीछे सुल्तान के चचेरे भाई फिरोज़ की पताकाएँ सैनिक व सेवक तथा अन्य अमीरों की पताकाएँ व सैनिक होते थे। इस जुलूस में सभी अमीर अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए निकलते थे। ईदगाह के द्वार पर पहुँच कर सुल्तान रुक जाता था। वह काज़ियों, बड़े-बड़े अमीरों, मुख्य परदेशियों को लेकर ईदगाह में प्रवेश करता था और वहाँ नमाज़ पढ़ता था। ईद उदज्जहा में सुल्तान एक भाले से ऊँट की गर्दन में छेद करके उसकी हत्या कर अपने महल को लौट आता था। शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की सेवा में ८० से अधिक खान, १००,००० अश्वरोही, ३००० हाथी, २०,००० तुर्कदास, १०,००० ख्वाजा सरा, १००० खजान्दार (कोषाध्यक्ष), १००० बशमकदार (सुल्तान के जूतों की देख-रेख करने वाले अधिकारी), २००,००० रिकबिया (रक्षक) जो कि अस्त्र-शस्त्र धारण करके सुल्तान के साथ उसकी सवारी के आगे-आगे चलते थे। सुल्तान कभी युद्ध के लिये जाता था, कभी देहली में एक स्थान से दूसरे स्थान तक और कभी अपने प्रासाद में घूमने के लिये निकलता था। जब वह युद्ध के लिये सवार होकर जाता था तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानो पर्वत चल रहे हों, रेत उड़ रही हो, समुद्र उमड़ रहे हों, विद्युत चमक रही हो। हाथियों पर बनाए हुए बुर्ज नगर या दुर्गम दुर्ग की तरह दिखाई पड़ते थे। जानवरों द्वारा उड़ाई गई धूल के कारण आँखों को दिन में भी रात्रि दिखाई पड़ती थी। जब वह शिकार पर जाता था तो उसके साथ एक छोटा रक्षक दल होता था जिसमें १०००० सवार तथा २०० हाथी से अधिक नहीं होते थे। उसके साथ लकड़ी के चार मण्डप ८०० ऊँटों पर लाद कर ले जाये जाते थे। यह मण्डप सुनहरे काम के काले रेशमी कपड़ों की झालरों के बने होते थे। जब वह मनोरंजनार्थ जाता था तो उसके साथ ३०,००० सवार अधिक संख्या में हाथी, १००० घोड़े ज़ीन सहित तथा सुनहरे काम के कपड़ों की झालरों से सुसज्जित होते थे। जब वह महल ही में इधर-उधर जाता था तो उसके सिर पर छत्र लगा रहता था। उसके पीछे-पीछे सिलहदार अस्त्र-शस्त्र लेकर चलते थे और उसके चारों ओर १२,००० दास पैदल चला करते थे।[५६]

सुल्तान का व्यक्तिगत जीवन

सुल्तान के व्यक्तित्व का दूसरा पहलू व्यक्तिगत या घरेलू हुआ करता था। वह पहलू भी प्रशासन में उसके स्थान के समान महत्वपूर्ण हुआ करता था। एक व्यक्ति के रूप में वह सम्पूर्ण समाज का मार्ग निर्देशन किया करता था। उसके व्यक्तिगत जीवन, आचरण, व्यवहार, चरित्र एवं धर्म निष्ठा से समाज के विभिन्न वर्ग आकर्षित और प्रभावित होते थे। दिल्ली के सुल्तानों में व्यक्तिगत असमानताएँ होते हुए भी कुछ समान बातें थीं। वे ईरान के सासानी शासकों की भाँति बड़े-बड़े महलों में रहना चाहते थे तथा असंख्य अधिकारियों, अमीरों, सेवकों व परिवारों से घिरे रहना चाहते थे। उनकी सदैव यह महत्वाकांक्षा रहती थी कि संसार के सभी लोग उनके सामने नत-मस्तक हों। उनके प्रति आदर व श्रद्धा प्रकट करें, उनके पास असीमित धन व सम्पत्ति हो, उनके पास असीमित अधिकार व राजनीतिक शक्ति हो, सभी वित्तीय अधिकार उनके हाथों में हो और जिस पर वे कृपालु या दयालु होना चाहें वे हों, उनके पास अत्यधिक आभूषण, सोना-चाँदी, हीरे-मोती व बहुमूल्य वस्तुएँ हों, जो कि वे उपहार या दान में दे सके, उनके पास बड़ी सेना हो कि वे निरन्तर अनिविजित प्रदेशों को विजित कर सकें, उनके पास असंख्य सेवक, नौकर-चाकर, परिचर, दास, दासियाँ व एक विशाल प्रतिष्ठान हो और उसके साथ बड़ा हरम हो जिसमें विभिन्न जातियों व कबीलों की सहस्त्रों स्त्रियाँ हों, जिन पर वे अधिक धन व्यय कर सकें और उनके साथ अधिक से अधिक भोग कर सकें व अपनी काम-पिपासा को शान्त कर सकें। दिल्ली के सुल्तान अपने व्यक्तिगत जीवन को भी उतना ही भव्य बनाना चाहते थे जितना कि उनका सार्वजनिक जीवन था। बिना इन शाही उपकरणों के सुल्तान को सुल्तान कैसे समझा जा सकता था।

अपने उच्च पद की गरिमा व प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए दिल्ली के सुल्तानों के बड़े-बड़े महल, बड़े हरम, बड़े प्रतिष्ठान, अधिक संख्या में दास-दासियाँ, सेवक, परिचर, नौकर आदि हुआ करते थे और उसके व्यक्तिगत खर्च के लिए निर्धारित **खालसा** भूमि का क्षेत्र हुआ करता था। वे अपने लिए विशाल महलों का निर्माण किया करते थे। कोई भी सुल्तान यह नहीं चाहता था कि वह अपने पूर्वगामी सुल्तानों के महल में निवास करे क्योंकि वे उनमें रहना अशुभ समझते थे। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में दो महलों, एक सुल्तान के निवास के लिए तथा दूसरा प्रशासनिक कार्यों के लिए था, का उल्लेख मिलता है। उन्हें **क़सर-ए-सफेद** और **कसर-ए-फिरोजी** अथवा सफेद महल तथा विजय महल का नाम दिया गया। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने **कुश्क-ए-सब्ज** अथवा हरा महल बनवाया। इसी प्रकार से इन सुल्तानों ने नई-नई राजधानियाँ दिल्ली व आगरे में स्थापित की और उनमें महल बनवाये। उदाहरणार्थ—सिरी, किलोखड़ी, शहर-एन नौ, तुग़लका बाद, फिरोजाबाद, आगरा आदि। दिल्ली में तो इन सुल्तानों ने कई नई राजधानियाँ बनाई जिसमें

उन्होंने महल, मस्जिदें, बाज़ार, सड़कें आदि निर्मित कराये और उनको हर तरह से सुन्दर बनाने की चेष्टा की। फिरोजशाह तुग़लक ने अपनी नई राजधानी फिरोज़ाबाद में तीन महल, अमीरों, सुल्तान के साथियों व सर्वसाधारण के लिए बनवाये। इस प्रकार के कार्यों से सुल्तान की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी।

सुल्तानों के प्रतिष्ठान

इस काल में अधिकांश सुल्तान भोग-विलास में ही अपना समय व्यतीत करते रहे। उनके पास अनेक स्त्रियाँ व रखैलें तथा दासियाँ होती थीं, जो कि उनके मनोरंजन का साधन ही नहीं वरन् उनकी वासना की तृप्ति का साधन भी हुआ करती थी। इन सुल्तानों में से कुछ तो सुन्दर, सुडौल व आकर्षक स्त्रियों को प्राप्त करने के लिए एक पृथक विभाग भी रखते थे। उनमें एक मुख्य रानी हुआ करती थी जिसका पुत्र ही गद्दी पर बैठने का अधिकारी होता था। उस रानी के अनेक अधिकार व विशिष्ट अधिकार हुआ करते थे। अपने पुत्र की अल्पवयस्कता में वह उसकी संरक्षिका होती थी। राजमाता के रूप में उसका मान-सम्मान होता था व राजनीति पर उसका पूर्ण प्रभाव होता था। अन्य रानियों की संख्या सुल्तान के चरित्र पर निर्भर करती थी। सुल्तान चाहे किसी को हरम में रख सकता था यह उसका विशेष अधिकार था जिस पर कोई भी व्यक्ति उसके विरुद्ध आक्षेप नहीं लगा सकता था। दिवंगत सुल्तान की मृत्यु के उपरान्त रानी व पटरानियाँ व रखैलों की दशा पूर्व जैसी नहीं रहती थी। वे नये सुल्तान के अन्तर्गत पराधीन हो जाती थीं। यदि दिवंगत सुल्तान की विधवा रानी विवाह करना चाहती थी तो कर सकती थी। यही बात पदच्युत हुए सुल्तानों की स्त्रियों पर लागू होती थी। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की माँ ने कुतुबुद्दीन खाँ से १२५५-५६ में विवाह किया।[५७] खुसरो खाँ ने दिवंगत सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक-शाह की पत्नियों से विवाह किया। उसने खिज्र खान की प्रिय पत्नी से भी बलपूर्वक विवाह किया। शाही हरम में सुल्तान की पत्नियों, उप-पत्नियों, रखैलों के अतिरिक्त उसकी माँ, बहनें तथा अन्य महिलाएँ रहा करती थीं। हरम में ही सुल्तान की सन्ततियों को शिक्षा मिलती थी। वहाँ उनका पालन-पोषण होता था। हरम की व्यवस्था के लिए अनेक महिला अधिकारी हुआ करती थीं। वहाँ **हाकिमा**, जो कि कुलीन वर्ग की महिला होती थी, हरम की व्यवस्था की देख-रेख किया करती थी। वहाँ हाकिमा के अतिरिक्त एक ख्वाजासरा (मुख्य हिजड़ा) भी हुआ करता था जो कि बाहर से हरम की व्यवस्था करता था। उनके अतिरिक्त निरीक्षकों व रक्षकों के अतिरिक्त महिला भण्डार अधिकारी हुआ करते थे। भण्डार की महिला अधिकारी ही आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की व्यवस्था किया करती थी तथा हिसाब-किताब रक्खा करती थी। हरम की प्रत्येक महिला को महल में रहने के लिए पृथक-पृथक कक्ष दिये जाते थे और उस पर कड़ी निगरानी रक्खी जाती थी। हरम की सुरक्षा के लिए बाहर रक्षक तैनात किये जाते थे और अन्दर से सशक्त महिलाएँ उसकी रक्षा किया करती थीं। बिना सुल्तान की

आज्ञा के कोई भी स्त्री हरम में प्रवेश नहीं कर सकती थी और न ही हरम के वाहर कोई स्त्री जा सकती थी। वाहर से ख्वाजा सरा अपने सहायकों के साथ हरम की रक्षा किया करता था।

सुल्तान के घरेलू कर्मचारी

सुल्तान की सेवा के लिए अनेक दास हुआ करते थे। इन दासों के सम्बन्ध में अन्यत्र चर्चा विस्तार में की गई है। दासों के अतिरिक्त उसकी सेवा में ज्योतिषी,[५८] दरवारी, कवि, गायक, विदूषक, कहानीकार आदि अनेक व्यक्ति हुआ करते थे। यह सभी व्यक्ति सुल्तान के लिए आवश्यक थे। बिना उनके दरवार का वैभव नहीं वढ़ता था। उसी प्रकार से सुल्तान अनेकों दरवारियों, जिनमें कि उल्मा, धार्मिक, गणमान्य व्यक्ति और सुल्तान के परम विश्वासपात्र एवं मित्र हुआ करते थे जो कि उसके साथ रहते थे। उसके घरेलू अधिकारियों में उसकी रक्षा हेतु **सरजानदार**[५९] तथा **सरसिलहदार**[६०] हुआ करते थे। **सरजानदार** उसके अंगरक्षक होते थे और **सरसिलहदार** उसके अस्त्र-शस्त्र की व्यवस्था करने वाले होते थे। घर के कार्य के लिए **सरआबदार**[६१], जो कि सुल्तान के स्नान व नहाने धोने के लिए पानी का प्रवन्ध करता था, खरीतादार या **दावतदार**[६२] जो कि सुल्तान का कमलदान रखता था, **तहवीलदार**[६३] जो सुल्तान का बटुआ या पर्स रखता था, **चश्नीगीर**[६४] जो कि उसकी रसोई का प्रवन्धक होता था, **सर ज़ामादार**[६५] जो कि उसके वस्त्रों का प्रवन्ध करता था, **तश्तदार**[६६] जो कि सुल्तान के पास पीकदान व हाथ धोने का बर्तन लेकर उपस्थित रहता था, **साकिए-खास**,[६७] जो कि सुल्तान के लिए पेय पदार्थों का प्रवन्ध करता था, तथा **मशालदार**[६८] जो कि प्रकाश की व्यवस्था करता था, आदि होते थे। इन व्यक्तियों के अन्तर्गत भी अनेक कर्मचारी होते थे। सुल्तान के अस्तबल की देख-रेख करने के लिए **अमीर-ए-आखूर**[६९] तथा हाथियों के अस्तबल की देख-रेख करने के लिए **शाहना-ए-पील**[७०] हुआ करते थे। सुल्तान के लिए शिकार की व्यवस्था कराने के लिए **अमीर-ए-शिकार**[७१] हुआ करता था। इसके अतिरिक्त **छत्रदार**[७२] शहनाए आखुर,[७३] **खासादार**[७४] **शराबदार**[७५] इत्यादि सेवक भी हुआ करते थे। उपर्युक्त अधिकारियों व उनके विभागों को सामान देने के लिये विभिन्न कारखाने हुआ करते थे। यह कारखाने पताकाएँ, अस्त्र-शस्त्र, कालीन, पर्दे आदि हजारों प्रकार की वस्तुएँ वनाकर उन्हें देते थे। इन कारखानों के सम्वन्ध में विस्तृत विवरण आर्थिक इतिहास के खण्ड में दिया गया है। सुल्तान के निजी प्रतिष्ठान की झलक हमें **मसालिक-उल-अवसार** के एक उद्धरण में मिलती है, जहाँ कि शहाबुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि मुहम्मद तुग़लक के खर्चे पर १२०० हकीमों, १०००० वहेलिए, जो कि घोड़ों पर सवार होकर पक्षियों का शिकार खेलना सिखाते हैं, ३०० हकौव्ये जो कि आगे वढ़ कर शिकार के लिए जानवरों को एकत्र करते हैं, ३००० ऐसे व्यक्ति रहते थे जो कि, जब कि वह शिकार खेलने के लिए जाता है, उसे आखेट खेलने की सभी वस्तुओं का प्रवन्ध कराते थे,

५०० व्यक्ति उसके साथ सर्वथा भोजन करने के लिए उपस्थित रहते थे। वह १२०० गायकों, उन दास गायकों को छोड़कर जिनकी संख्या १००० थी जिनको गाना सिखाने का कार्य सौंपा गया था, का पालन-पोषण करता था। उसके पास तीन भाषा अरवी, फारसी और प्राकृत भाषा के १००० कवि थे। वह २०,००० व्यक्तियों, खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार तथा अन्य अधिकारियों की उपस्थिति में सैनिकों का निरीक्षण किया करता था। निजी भोजन के समय, रात्रि भोज या नाश्ते के समय सुल्तान २०० विद्वान अधिवक्ताओं का स्वागत करता था जो कि उसके साथ भोजन करते तथा उससे विभिन्न विषयों पर वार्ता किया करते थे। उसकी रसोईघर में २५०० गाय-बैल, २००० भेंड़े तथा अन्य जानवर व पक्षी प्रतिदिन मारे जाते थे और उनका मांस पकाया जाता था।[७६] निःसन्देह इतने बड़े प्रतिष्ठान के लिए सुल्तान को अतुल धनराशि की आवश्यकता होती होगी। उसके पास असीमित धन, सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, आभूषण आदि तो होते ही थे किन्तु साथ ही साथ उसकी आय के अनेक स्रोत भी हुआ करते थे।

सुल्तानों की आय के स्रोत 'खालसा'

दिल्ली के सुल्तानों के आय के अनेक स्रोत थे। सल्तनत की सम्पत्ति पर यद्यपि उनका पूर्ण अधिकार था और वे उसका उपयोग करते थे किन्तु उनकी आय के मुख्य स्रोतों में निकटवर्ती शासकों, अमीरों तथा अन्य व्यक्तियों से समय-समय पर प्राप्त उपहारों के अतिरिक्त युद्धों में लूट के माल में उनका भाग भी होता था। वे अपने व्यक्तिगत एवं परिवार के व्यय के लिए सल्तनत की सीमाओं में कुछ भूमि जिसे कि **खालसा** कहते थे निश्चित कर दिया करते थे। उस भूमि से उपलब्ध राजस्व उन्हीं के कोष में जाता था। **खालसा** क्षेत्र कभी समान नहीं होता था। वह निरन्तर घटता-बढ़ता रहता था।[७७] **खालसा** भूमि का क्षेत्र सुल्तान फिरोजशाह के दुर्बल उत्तराधिकारियों के समय बिल्कुल ही कम रह गया। सैय्यद शासकों के पास बिलकुल ही **खालसा** भूमि न थी। सुल्तान बहलोल लोदी ने **खालसा** क्षेत्र निर्धारित करने के स्थान पर प्रत्येक **सरकार** में कुछ परगने अपने लिए निर्धारित कर दिये थे। १४५२-५३ में उसने ७ परगने अहमदखान मेवाती तथा ७ परगने दरियाव खान को दिए जो कि खित्ताए सम्भल की मुक्ता से ले लिए थे तथा कुछ परगने पंजाब में अपने लिए आरक्षित कर लिए थे। इब्राहीम लोदी ने अपने लिए सण्डीला का परगना तथा जौनपुर की रियासत के कुछ परगने रख लिए थे। इस प्रकार से लोदी सुल्तानों में कभी भी अपने लिए विशाल भू-भाग **खालसा** के रूप में निर्धारित नहीं की वरन् उनकी **खालसा** के अन्तर्गत परगने विभिन्न सरकारों में फैले हुए थे, जिनकी व्यवस्था उन्हीं के अमीरों एवं अधिकारियों के द्वारा होती थी।

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक की आय के साधनों में **अमलक** से आय होती थी। अफीफ ने लिखा है कि सुल्तान ने नहरें खुदवा कर ऊसर भूमि को खेती योग्य

बनवाया। उसने शेखों और विद्वान विधिवेत्ताओं को बुलवाया और उनसे पूछा कि यदि कोई व्यक्ति व्यक्तिगत श्रम एवं अपने ही धन से नहरें खुदवाता है और वे नहरें नगरों व गाँवों से होकर निकलती हैं और वहाँ के निवासी भूमि का प्रयोग करके उससे लाभ उपार्जित करते हैं तो क्या वह व्यक्ति अपने उद्यम के लिए कुछ धन प्राप्त करने के लायक है या नहीं ? विधिवेत्ताओं ने कहा कि वह **हक्की-ए-शर्ब** या उत्पादन का १० प्रतिशत प्राप्त करने का अधिकारी है। अफीफ के अनुसार तत्पश्चात् सुल्तान ने नवीन नहरों से सिंचाई होने वाले समस्त क्षेत्र को अपनी **अमलक** में सम्मिलित कर लिया। इसी प्रकार पूर्व शासकों की भाँति सुल्तान फिरोज़शाह ने भी उजाड़ भूमि में अनेक गाँव बसाए और उन्हें भी अपनी **अमलक** में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार इस काल में **अमलक** में (१) हक्की-ए-शर्ब, (२) नये बसे हुए गाँवों का उत्पादन आता था। सुल्तान फिरोज़शाह को अपनी **अमलक** से २ लाख टंका प्रतिवर्ष की आय होती थी। अन्य सुल्तानों की तुलना में उसके पास विशाल अमलक थी, जिसके प्रबन्ध के लिए पृथक कर्मचारी एवं कोषाध्यक्ष था। पूर्व सुल्तानों की भाँति सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने भी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को राज्य की सम्पत्ति से पृथक रखा।[७८] सुल्तान की व्यक्तिगत आय का अन्य स्रोत अधीनस्थ हिन्दू राजाओं से प्राप्त धन, उपहार इत्यादि तथा प्रान्तीय गवर्नरों से प्राप्त खिदमती था।[७९]

पेशकश

सुल्तान की आय का स्रोत अमीरों तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियों से समय-समय से प्राप्त होने वाला पेशकश भी था। इस काल में यह प्रथा थी कि अमीर तथा अन्य लोग सुल्तान को पेशकश या भेंट दें। इस भेंट से सुल्तान की बड़ी आमदनी हो जाती थी। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद को २८ मई १२५८ को लखनौती के मुक्ता इज्जुद्दीन बलबन यूजबकी ने खज़ाना, धन-सम्पत्ति, बहुमूल्य वस्तुएँ तथा दो हाथी पेशकश में प्राप्त हुए।[८०] सुल्तान मुइज़ुद्दीन क़ैकुबाद ने मंगोल आक्रमणों पर आक्रोश प्रकट करते हुए कहा कि "मैं हिन्द के राजाओं से प्रत्येक वर्ष जज़िया लेता हूँ और धन सम्पत्ति प्राप्त करता हूँ। धन सम्पत्ति के लिए कभी गुजरात तो कभी देवगिर के राजा के पास फरमान भेजता हूँ। कभी तिलंग से घोड़े प्राप्त करता हूँ। बंगाल से हाथी वसूल करता हूँ। मालवा व जाजनगर से धन-सम्पत्ति प्राप्त करता हूँ।"[८१] इब्नबतूता ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति जो सुल्तान के सम्मुख दरबार में उपस्थित होता है वह उसे उपहार भेंट करता है।[८२] उसने अन्यत्र लिखा है कि जब भी कोई आमिल दरबार में आता है तो वह भी उपहार लेकर आता है।[८3] अफीफ के अनुसार सुल्तान फिरोज़ के समय में यह प्रथा थी कि प्रतिवर्ष जब अक्ताओं से मुक्ते चरण चूमने के लिए आये तो अपने साधन के अनुसार वे उपहार में लाए। वे अरबी घोड़े, बहुमूल्य दास, हाथी, बहुमूल्य वस्त्र, सोने व चाँदी के बर्तन, अस्त्र-शस्त्र, ऊँट, चौपाए इत्यादि अपनी **अक्ता** के साधन के अनुसार लाते थे। प्रत्येक

प्रकार की वस्तु कोई १०००, ५०, २०,११ की संख्या में लाता था।[८४] आज़म हुमायूँ खान-ए-जहाँ ने फिरोज़शाह तुग़लक को उत्तम उपहार में सोना, चाँदी, अरबी तथा तातारी घोड़े ज़ीन सहित तथा बिना ज़ीन सहित भेंट किए।[८५] वह प्रत्येक वर्ष सुल्तान को ४ लाख तक पेशकश में दिया करता था।[८६] ग्वालियर के राजा राय कीरतसिंह अधीनता स्वीकार करने पर सुल्तान बहलोल लोदी को कई लाख तन्के नक़द, कुछ खेमे, सरापर्दे, घोड़े, हाथी, ऊँट पेशकश में दिये।[८७] वेहता के राजा ने उसे कई लाख तन्के, घोड़े, हाथी, पेशकश में दिये।[८८] धौलपुर के राजा ने कई मन सोना उसे भेंट किया।[८९] बारी परगने के हाकिम इक़बाल खाँ ने भी उसे कई मन सोना भेंट में दिया।[९०] ग्वालियर के शासक राजभान ने उसे ४० लाख तन्के भेंट में दिए।[९१]

सुल्तान को निकटवर्ती देशों के शासकों से प्राप्त होने वाले उपहार इत्यादि भी उसकी धन सम्पत्ति में वृद्धि करने का स्रोत होते थे। सुल्तान इल्तुतमिश को लखनौती के सुल्तान गयासुद्दीन से ४० हाथी तथा ४० लाख तन्का धन प्राप्त हुआ।[९२] उच्च में उसे नासिरुद्दीन कुबाचा से अधिक धन प्राप्त हुआ।[९३] इब्नबतूता के अनुसार चीन के शासक ने उसके पास १०० दास व दासियाँ, ५०० मखमल के थान, जिनमें १०० थान जैतून तथा १०० थान ख्न्सा के बने थे, ५ मन कस्तूरी, रत्नों से जड़ी हुई ५ खिलअतें, ५ जड़ाऊ निषंग, ५ तलवारें भेजी थी।[९४]

अभियानों से आय

सुल्तानों की आय का एक अन्य स्रोत खम्स था। उन्हें अभियानों से प्राप्त लूट के माल में से पाँचवाँ भाग मिलता था। ग्वालियर से प्राप्त लूट में से सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद को २२ लाख टंके प्राप्त हुए।[९५] बलबन को लखनौती में तुगरिल-बेग के विद्रोह को दबाने में अपार धन प्राप्त हुआ।[९६] सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिलजी ने झैइन से अत्यधिक धन प्राप्त किया।[९७] अलाउद्दीन द्वारा धन प्राप्त करने के सम्बन्ध में अनेक सन्दर्भ हैं। नुसरत खाँ ने अमीरों की सम्पत्ति छीन कर एक करोड़ तन्के राजकोष में दाखिल किया। गुजरात को विजय के सन्दर्भ में प्राप्त धन, दक्षिण से प्राप्त धन, द्वारसमुद्र अभियान से प्राप्त धन के अनेक सन्दर्भ समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलते हैं।[९८]

व्यय

सुल्तान अनेक मदों पर धनराशि व्यय किया करते थे। धन व्यय करने पर उनके ऊपर कोई प्रतिबन्ध न था। कुतुबुद्दीन ऐबक अपनी दानशीलता के लिए सुप्रसिद्ध था। उसे द्वितीय हातिम व लाखबख्श कहते थे।[९९] वह अपने धन से दासों को भी खरीदा करता था।[१००] सुल्तान इल्तुतमिश अपना धन दान देने, दासों को खरीदने तथा इमारतें इत्यादि बनवाने में खर्च किया करता था। सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज़

दान देने में हातिम द्वितीय था।[१०१] वह लोगों को अधिक से अधिक दान व इनाम दिया करता था। सुल्तान मुइज़ुद्दीन बहरामशाह की भी यही आदत थी।[१०२] सुल्तान कैकुबाद भोग-विलास पर व्यय करता था।[१०३] बरनी ने लिखा है कि मलिक निज़ामुद्दीन दादबक ने, जो कुछ भी हिन्दुस्तान की अक्ता, लूट के माल, राजे-महाराजों के उपहार और पिछले कई वर्षों की न्योछावर (निसार) एकत्र करके खजाने में जमा किया था, वह सब सुल्तान मुइज़ुद्दीन कैकुबाद ने व्यय कर दिया।[१०४] मुहम्मद तुगलक ईद से पूर्व राज्य के कर्मचारियों को उनकी श्रेणी के अनुसार खिलअतें भेजता था और लोगों को उपहार देता था। वह विभिन्न अवसरों पर सभी लोगों को दावतें दिया करता था।[१०५] वह विदेशियों को भी अत्यधिक उपहार दिया करता था। उसने शेख उलशेख रुकुनुद्दीन को सोने की बनी हुई नालें व कीलें उपहार में प्रदान कीं।[१०६] उसने नासिरुद्दीन तिर्मिज़ी को चाँदी के एक लाख तन्के तथा २०० दास दिये।[१०७] उसने अब्दुल अजीज अर्दवेली को २००० तन्के सोने के थाल में दिए।[१०८] शम्सुद्दीन अन्दकानी नामक व्यक्ति को प्रत्येक छन्द के लिए एक-एक हजार दीनार दिए।[१०९] उसने अज़ीउद्दीन नामक फ़क़ीह को दस हज़ार चाँदी के तन्के दिए; काज़ी मुज्दुदीन शीराज़ी के गुणों के बारे में सुनकर उसने शेखजादा दमिश्की के हाथों उसके लिए दस हज़ार दीनार भेजे। इसी प्रकार के अन्य सन्दर्भ मिलते हैं।[११०]

शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार मुहम्मद तुग़लक प्रतिदिन २ लाख तन्के दान में दिया करता था। कभी-कभी तो वह ५० लाख तन्के दान में दे दिया करता था। उसने ४०,००० दीनों व दरिद्रों को जीविका प्रदान करने का दायित्व अपने ऊपर ले रक्खा था। इनमें से प्रत्येक को प्रतिदिन एक दिरहम तथा रोटी के लिए ५ रतन गेहूँ या चावल मिलता था।[१११] सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक भी अपनी दानशीलता के लिए सुप्रसिद्ध था। समाज का कोई ऐसा वर्ग न था जो कि उसके शासन काल में उपहार, दान या पेशकश, वजीफों व अनुदानों से वंचित रहा हो।

समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से यह पता नहीं चलता है कि सुल्तान अपने धन से इमारतें, मस्जिदें, मदरसे, मकबरों आदि का निर्माण कराते थे या राज्य का धन इमारतों के निर्माण में व्यय किया करता था। क्या सुल्तान की व्यक्तिगत सम्पत्ति राज्य के धन से पृथक थी। अन्य मदों पर व्यय करने के अतिरिक्त सुल्तान अपनी व्यक्तिगत आय का बहुत बड़ा भाग अपने हरम पर भी व्यय करते होंगे ? इस सम्बन्ध में यद्यपि समकालीन इतिहासकार मौन हैं किन्तु हरम जैसी संस्था को देखते हुए होने वाले व्यय का कुछ न कुछ अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हरम में स्त्रियों की सुविधा व उनकी देखभाल व सेवा के लिए सैकड़ों हिजड़ों, दास-दासियाँ, नर्तकियाँ, गायिकाएँ, सेविकाएँ इत्यादि होती थीं, जिनपर सुल्तान को अत्यधिक धन व्यय करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त अपनी व हरम की स्त्रियों, परिवार के सदस्यों का सभी

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुल्तानों के निजी कारखाने होते थे जहाँ कि विविध वस्तुओं का उत्पादन या व्यवस्था होती थी। अतएव कारखानों पर भी उसे धन व्यय करना पड़ता था। संक्षेप में सुल्तान की व्यक्तिगत आय का अधिक से अधिक भाग व्यय हो जाया करता था।

दिल्ली के सभी सुल्तान ग़रीबों की अधिक से अधिक सहायता करते थे।[११२] प्राकृतिक प्रकोप, दुर्भिक्ष व महामारी के समय या मंगोलों के आक्रमण के दौरान भी सुल्तान भूखे व गरीब लोगों की सहायता धन व अनाज में किया करते थे ताकि वे सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।[११३] अपनी ओर से सुल्तान प्रत्येक धार्मिक व्यक्तियों, खानकाहों के रख-रखाव के लिये शहरों, गाँवों तथा निकटवर्ती प्रदेशों में वक्फ में भूमि प्रदान किया करते थे। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल को छोड़कर जब कि प्रशासन ने वक्फ, इनाम, **मिल्क, मफरूज** व **इदरार** में दी गई भूमि जब्त करवा ली थी, सल्तनत के शेष काल में इस प्रकार के अनुदान बराबर बने रहे। इस प्रकार के अनुदानों से जो राजस्व मिलता था उससे न केवल मकबरों, मस्जिदों, खानक़ाहों इत्यादि की देखभाल करने वालों का पेट भरता था वरन् अनेक गरीबों की भी परिवरिश होती थी।[११४] फिरोज़शाह तुग़लक ने ग़रीबों को दान देने के लिए **दीवान-ए-खैरात** की स्थापना करवा दी। इसी प्रकार से बेरोजगारों की समस्या को समाप्त करने हेतु उसने रोज़गार विभाग खुलवा दिया।[११५]

एक अन्य पुनीत कार्य जिस पर कि सुल्तान व्यय किया करते थे वह था चिकित्सालयों की स्थापना। अफीफ के अनुसार सुल्तानों ने अनेक चिकित्सालयों की स्थापना की। मुहम्मद तुग़लक के काल में केवल दिल्ली में ७० अस्पताल थे।[११६] फिरोज ने अनेक अन्य अस्पतालों की स्थापना की और उनके प्रबन्ध के लिए गाँव अनुदान में दिए।[११७] इन अस्पतालों पर होने वाले खर्च का वाहन सरकार करती थी।

दिल्ली के सुल्तानों की आस्था सूफी मत में थी। अतएव उन्होंने दिल्ली, दोआब, सिन्ध, मुल्तान, सागर, धार, गुजरात, बिहार, बंगाल तथा सल्तनत के प्रत्येक भाग में खानकाहों की स्थापना की।[११८] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में दिल्ली व उसके समीपवर्ती क्षेत्र में २००० खानकाहें थीं। फिरोज़ ने न केवल १२० नई खानकाहें बनवाई वरन् अन्य की मरम्मत करवाई और उन्हें पुनः आबाद किया।[११९] बरनी के अनुसार उसने उच्च में शेख जमालुद्दीन की खानक़ाह का जीर्णोद्धार करवाया।[१२०] अजोधन में उसने शेख फरीद उद्दीन के वंशजों को आश्रय दिया, उन्हें इनाम, भूमि व गाँव अनुदान में दिए[१२१] और दिल्ली के समीप जो खानक़ाहें थीं उन्हें १०, ५, २० हज़ार तन्के व्यय व वजीफे के लिए दिये। इन खानकाहों के प्रबन्ध व प्रबन्धकों के लिए प्रति वर्ष वह ५००० से ३०००० तन्का दिया करता था।[१२२]

मुहम्मद तुग़लक अपने पूर्वजों तथा सूफी सन्तों के मक़बरों के प्रबन्ध पर अधिक

व्यय किया करता था। इब्नबतूता ने जब उसे बताया कि वह उसका प्रबन्ध किस प्रकार करे तो उसने वज़ीर को आदेश दिये कि वह उसे ५०,००० दीनार दे दे और उसे आने वाली फसल पर ३ लाख मन अनाज देने की व्यवस्था करे।[१२३] वे मदरसों, मकतबों पर भी व्यय किया करते थे। मकबरों के प्रबन्धकों, मदरसों व मकतबों के शिक्षकों व विद्यार्थियों को वे वृत्तियाँ दिया करते थे। सुल्तान इल्तुतमिश, अलाउद्दीन खिलजी, फिरोज़शाह तुग़लक ने अनेक मदरसों की स्थापना की। मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में केवल दिल्ली में १००० मदरसे थे जिनका खर्च राजकोष से होता था।[१२४] इन मदरसों के अतिरिक्त अनेक मक़तब जो कि मस्जिदों व खानकाहों से संलग्न थे, जिनका खर्च भी सुल्तान उठाता था। दिल्ली के सुल्तानों को पढ़ने लिखने का शौक था। अतएव वे अपने निजी पुस्तकालयों, कुरान पढ़ने वालों, कहानी कहने वालों तथा नदीमों पर भी अधिक धन व्यय किया करते थे।[१२५]

उल्माओं को प्रश्रय देना सुल्तान अपनी संस्कृति तथा धार्मिक मनोवृत्ति के अनुकूल समझते थे। वे उल्मा जो शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत थे, सुल्तान उन्हें वृत्तियाँ (इदारात), इनाम (इनामात) एवं वेतन (मुशादारात) दिया करते थे। इसके अतिरिक्त वे उन्हें वक्फ, मिल्क या इनाम में भूमि अनुदान भी दिया करते थे।[१२६]

जब कभी सुल्तान सूफी सन्तों की दरगाहों में दर्शन करने जाते थे तो वे वहाँ अत्यधिक दान दिया करते थे। मुहम्मद तुग़लक जब बहराइच में सिपहसालार मसूद गाजी के रोज़े की ज़ियारत करने के लिए गया तो उसने वहाँ के प्रबन्धकों को बहुत दान दिया।[१२७]

फिरोजशाह तुग़लक ने मुइज़ुद्दीन साम, मुइज़ुद्दीन बहराम, रुकुनद्दीन फिरोज, जलालुद्दीन फिरोजशाह, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन, मुबारकशाह खिलजी, निजामुद्दीन औलिया, मलिकताजुल मुल्क काफ़ूरी के मकबरों की मरम्मत करवाई।[१२८] उसने रुकुनुद्दीन फिरोज़शाह के मकबरे के समीप एक खनकाह बनवाई।[१२९] इस प्रकार से वह इन मदों पर अत्यधिक धन व्यय किया करता था। उसने सैय्यदों, शेखों, धार्मिक व्यक्तियों, जिन्हें इदरार, इनाम में गाँव व भूमि मिलती थी, पुनः प्रदान की। उसने दिल्ली के अध्यापकों, मुफ्तियों, मुज़किरों, विद्यार्थियों, हाफिजों, कुरान पढ़ने वालों, मस्जिद वालों, मक़बरों के सेवकों, हैदरियों, कलन्दरों को इदरार व वजीफे दिये। जिन्हें इससे पूर्व १००, २०० तन्के मिलते थे, उसके स्थान पर उन्हें ४००-५००-७०० तथा १००० तन्के मिलने लगे। जिन विद्यार्थियों को १० तन्के भी न मिलते थे उनके इदरार १००-२००, ३०० तन्के निश्चित किए। उसने स्वर से कुरान पढ़ने वालों हाफिजों, मुजकिरों, मुकरियों, आज़न देने वालों मकबरों के मुजाकिरों को १०००-५००-३००-२०० तन्के देना प्रारम्भ किया।[१३०] सुल्तान धार्मिक उत्सवों, त्योहारों पर सूफी सन्तों के पास फ़ुतूह भेजा करते थे।[१३१] उनके दरबार में उनका

गुणगान करने के लिए अनेक कवि होते थे, जिन्हें कि वे समय-समय पर अत्यधिक इनाम में दिया करते थे। इसी प्रकार से दरबारी गायकों, नर्तकियों, कव्वालों, गज़ल पढ़ने वालों, वादकों इत्यादि पर भी सुल्तान अत्यधिक धन व्यंय किया करते थे।[१३२] सुल्तान विना ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त निकलवाए कोई कार्य न करते थे। कोई भी संस्कार तथा त्योहार अनके परामर्श के बिना नहीं सम्पन्न होता था। सुल्तान उन्हें इनाम व सम्पत्ति प्रदान किया करते थे।[133] सुल्तान अलाउद्दीन ने उन्हें इनाम में गाँव दिए थे।[१३४] इस काल में सुल्तान चिकित्सकों तथा शल्य-चिकित्सकों को भी प्रश्रय दिया करते थे। जिन पर भी वे अत्यधिक धन व्यय करते थे।[१३५]

राज्य की आय का कुछ भाग कारखानों पर व्यय होता था। सुल्तानों के निजी कारखाने होते थे, जिन पर वे अधिक से अधिक धन व्यय करते थे।[१३६] फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में केवल रतीवी कारखानों पर प्रतिमाह तीन लाख बीस हज़ार चाँदी के टन्के व्यय होते थे। ग़ैर रतीवी कारखानों पर खर्च कहीं अधिक होता था। शीत ऋतु में **जामादारखाना** परिधानों पर ६ लाख तन्के व्यय करता था। इसी भाँति अधिकारियों व कारीगरों को वेतन की राशि को छोड़कर केवल **अलमखाना** के लिए ही प्रतिवर्ष ८०,००० तन्के का माल खरीदा जाता था। दो लाख तन्का **फर्राशखाना** पर व्यय होता था। फिरोजशाह तुग़लक बड़े गर्व से कहता था कि ३६ कारखानों में से केवल एक कारखाने पर ही उसका व्यय मुल्तान शहर के खर्च के बराबर है।[१३७] अलाई काल में तो **खालिसा** भूमि का अधिक राजस्व कारखानों के लिए सुरक्षित रहता था।[१३८]

दिल्ली के सुल्तान नई-नई इमारतों को बनवाने तथा राजधानियाँ स्थापित करने में बड़ी रुचि लेते थे। वे इनके निर्माण कार्य हेतु कारीगरों, शिल्पकारों इत्यादि के बड़े समूह अपने पास रखते थे। सुल्तान अलाउद्दीन के निर्माण विभाग में ७०,००० वास्तुकार कार्यरत थे।[१३९]

सुल्तान शान-शौकत से जीवन व्यतीत करने के आदी थे। उनके लिए यह अनिवार्य था कि वे इस प्रकार का जीवन व्यतीत करें। इसलिए वे बहुमूल्य हीरे, जवाहरात, मोती, बहुमूल्य वस्त्र इत्यादि व्यापारियों से खरीदा करते थे। कभी-कभी वे व्यापारियों को धन देकर अपने लिए वस्तुएँ भी मँगाते या उनसे ऋण लेते थे। ऋण लेने की दशा में वे उन्हें पुरस्कृत करते थे। इस प्रकार से इस मद पर भी सुल्तानों का अधिक व्यय होता था।

सुल्तानों को फलों के उद्यान लगवाने का बड़ा शौक़ था। वे अपने लिए फलों के बाग लगवाया करते थे।[१४०]

वे धार्मिक त्योहारों जैसे कि दोनों ईदों, **शब-ए-बरात, मजलिस-ए-क़िरात** पर अत्यधिक धन खर्च करते थे। वे अपने-अपने परिवार के सदस्यों आदि पर से भूत-प्रेत की छाया हटाने के उद्देश्य से दान में धन दिया करते थे। इसके अतिरिक्त हज पर

जाने वालों को भी वे वित्तीय सहायता दिया करते थे। इसे वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे।

दरबार में विदेशों से आए हुए राजदूतों तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियों, निकट के राज्यों से आए हुए शासकों इत्यादि को भेंट देना और उन्हें सम्मानित करना सुल्तान का परम कर्त्तव्य था। उनका सम्मान करने में कभी-कभी वे अपनी पूंजी भी लगा देते थे। इसके अतिरिक्त वे कभी-कभी विदेशों में रहने वाले कवियों या धार्मिक व्यक्तियों, विधिशास्त्रियों के लिए भी उपहार इत्यादि भेजा करते थे। बरनी ने लिखा है कि मुहम्मद तुग़लक ने सुनार गाँव के सुल्तान बहादुरशाह को उसका राज्य वापस करते हुए उसे समस्त राज्य सौंप दिया।[१४१] तदुपरान्त उसने मलिक संजर बदख्शनी को ८० लाख तन्के, मलिक उलमुल्क एमाउद्दीन को ७० लाख तन्के, सैय्यद अज़उद्दौला को ४० लाख तन्के, मौलाना नसीर तबील काजी कासबा, खुदादादज़ादा गयासुद्दीन, खुदावन्दज़ादा क़िवा मुद्दीन तथा मलिक उल नुदमा नासिर खाफी को लाखों तन्के और अपार सोना प्रदान किया। वह बहराम गज़नी को प्रत्येक वर्ष १०० लाख तन्के देता था। ग़जनी के काज़ी ने कभी इतना धन नहीं देखा था।[१४२] उसके शासनकाल में मुग़लिस्तान से अमीरे तुमन तथा अमीर-ए-हज़ारा भी आए। सुल्तान उन्हें लाखों करोड़ों की सम्पत्ति, जड़ाऊ बहुमूल्य ज़ीने, मोती, जवाहरात, सोने-चाँदी के बर्तन, सोने-चाँदी से भरे हुए तन्कों के थाल, सोने के काम के वस्त्र, सुनहरे कपड़े की पेटियाँ, सजे हुए घोड़े प्रदान करता था।[१४३] राज्य के हित एवं लोकोपयोगी कार्यों के हेतु सुल्तान कभी-कभी शहरों की स्थापना किया करते थे।[१४४] बाँध बनवाने, नहरें खुदवाने, कुश्क बनवाने तथा मकबरों की मरम्मत करवाने में भी वे धन व्यय करते थे। संकट-काल में एवं साधारण समय में कभी-कभी सुल्तान व्यापारियों व अमीरों की आर्थिक सहायता भी किया करते थे।[१४५]

बाह्य देशों के शासकों को धन व उपहार भेजने में व्यय

इब्नबतूता के अनुसार मुहम्मद तुग़लक ने चीन के सम्राट के लिए अनेक उपहार एकत्र किये, उसमें उत्तम प्रकार की १०० ज़ीने तथा अन्य सामग्रियों सहित घोड़े, सौ हिन्दू दास तथा दासियाँ, जो संगीत व नृत्य में दक्ष थीं, बैरभी कपड़े के सौ थान, जो कि एक प्रकार का सूती कपड़ा होता था, जिसके एक-एक थान का मूल्य १००-१०० दीनार होता था, खज नामक रेशमी कपड़े के १०० थान, जिनमें ५-५ रंगों के रेशम का प्रयोग होता था, ४०० थान सलाहिया के, २०० थान शोरीन बाफ के, १०० थान शानबक के, ५०० थान काश्मीरी ऊनी कपड़ों के, जिनमें सौ काले रंग के, १०० सफ़ेद रंग के, १०० लाल रंग के, १०० हरे रंग के, १०० नीले रंग के थे, १०० सूती कतान के थान, १०० टुकड़े कापल के कपड़े, एक सिरोचा (डेरा) छः (छोटे) खेमे, सोने के चार शमादान, चार चाँदी के जिनपर मीनाकारी थी, सोने के चार तश्त लोटों सहित, चाँदी के ६ तश्त, दस जड़ाऊ खिलअतें, १० शाशिया टोपियाँ,

जिनमें से एक पर जवाहरात जड़े हुए थे, १० जड़ाऊ निषंग, जिनमें से एक पर मोती जड़े हुए थे, १० तलवारें जिसकी एक म्यान पर मोती जड़े हुए थे, दस्ताने जिनपर मोती जड़े हुए थे, १५ ख्वाजासरा भेजे।[१३५] सुल्तान के व्यय की अन्य मद निकटवर्ती देशों के शासकों के पास उपहार भेजना भी था। इस मद पर सुल्तान अत्यधिक धन व्यय किया करते थे। इल्तुतमिश को जब खलीफा से मानपत्र मिला तो उसने राजदूतों को अत्यधिक उपहार दिये।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सुल्तान विभिन्न मदों पर व्यय किया करते थे। धन व्यय करने पर उन पर कोई अंकुश व प्रतिबन्ध न था, चूँकि सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रूप में उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति ही समझी जाती थी और वह राज्य की सम्पत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझते थे।

सुल्तानों की जीवन-शैली

कुतुबुद्दीन ऐबक चौगान खेलने का बहुत शौकीन था। चौगान खेलते समय ही वह घोड़े पर से गिरा और उसकी मृत्यु हो गई।[१३७] सुल्तान इल्तुतमिश धार्मिक प्रवृत्ति का था। अतएव उसकी रुचि आमोद-प्रमोद में न थी। उसका पुत्र सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज भोग-विलास में ग्रस्त रहता था। दुराचार व व्यभिचार ने उसे पूर्णरूप से अपने वश में कर लिया था। वह विदूषकों व नपुंसकों के साथ रहा करता था और अत्यधिक मदिरापान किया करता था। नशे के हालत में हाथी की सवारी करने में उसे बड़ा आनन्द आता था।[१४८] वह अपव्ययी व भोगी था। वह अपना समय भोग-विलास, ऐश व इशरत में व्यतीत करता था। दुराचार व व्यभिचार ने उसे पूर्णतः अपने वश में कर लिया था। वह नपुंसकों व विदूषकों को उपहार दिया करता था। सुल्तान नसिरुद्दीन महमूद धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसे कुरान की प्रतिलिपियाँ बनाने में ही आनन्द आता था।

बलबन की रुचि रमजान के महीने में रोजे रखने व नमाज पढ़ने में अधिक थी। सुल्तान बनने के बाद बलबन ने मदिरापान की गोष्ठियों का आयोजन करना व मदिरापान करना बन्द कर दिया। वह एक कठोर अनुशासक बन गया।[१४९]

बलबन का उत्तराधिकारी कैकुबाद, जिसका पालन-पोषण उसके पितामह के ही निर्देशन में हुआ था तथा जिसने शैशवावस्था में कभी मदिरा का प्याला भी मुँह से न लगाया था, सुल्तान बनते ही व्यसनी व व्यभिचारी बन गया। उसके हृदय में भोग-विलास, सुखभोग, काम-वासना तथा इन्द्रिय-लोलुपता की इच्छा बड़ी प्रबल थी। गद्दी पर बैठने से पूर्व वह बाण चलाने व गेंद खेलने में रुचि लिया करता था और उनसे अपना मनोरंजन किया करता था। सुल्तान बनने के पश्चात् उसने अपना समय महफिलों, विलासप्रिय चुटकलेबाजों, विदूषकों, सुन्दरियों, गायकों, नर्तकियों के मध्य व्यतीत करना प्रारम्भ किया।[१५०] वह मदिरापान किया करता था।[१५१] कभी-कभी

मदिरा पीकर वह सुध-बुध भी खो बैठता था। ऐसी हालत में वह चाँदी के हज़ार तन्के अपने साक़ी पर न्योछावर कर दिया करता था। वह सुन्दर रमणियों के हाव-भाव, नाज़ व अन्दाज़ पर आसक्त रहता था। वह उनके साथ चौसर खेलते समय उनसे झगड़ना, चुटकुले सुनना तथा उनका नृत्य देखना उसे अधिक पसन्द था। बरनी ने सुल्तान की इस प्रकार की गोष्ठियों का विवरण दिया है। वह लिखता है कि "सुल्तान विलास में मस्त हो गया। वह आमोद-प्रमोद भोग में पड़ा रहने लगा। उन रमणियों के साथ शतरंज व चौसर खेलने और उनके साथ पाँसा फेंकने में वह आनन्द लेने लगा। वह उन सुन्दरियों पर इतना आसक्त हो गया कि उन पर ३०,००० तन्के तक न्योछावर करने लगा। वे सुन्दरियाँ उसके साथ उठने-बैठने लगीं, शतरंज व चौसर खेलने लगीं, सुल्तान के अमीरों व सहचरों के साथ चुटकुलेबाजी करने लगीं और वे छेड़छाड़ व वाक्-प्रहार से उसके हृदय को व्याकुल करने लगीं और उसे आनन्द देने लगीं। उनमें से कुछ को सुल्तान ने हीरे-मोतियों से लाद दिया।[१५२]

अमीर खुसरो ने भी **क़िरान-उस्स-सादैन** में लिखा है कि सुल्तान क़ैक़ुबाद ने किलोखड़ी में मदिरापान और भोग-विलास की महफिलें प्रारम्भ कर दी। वहाँ मदिरा का दौर चलने लगा। गायक, संगीत में अपनी निपुणता दिखलाने लगे और बजाने वाले चंग, बाँसुरी आदि बजाने लगे।[१५३] क़ैक़ुबाद प्रीतिभोज देने का भी बहुत ही शौकीन था। अमीर खुसरो ने **क़िरान-उस्स-सादैन** में उसके द्वारा अपने पिता को दिये गये शाही भोज का सुन्दर विवरण इन शब्दों में दिया है—'रात में पुत्र ने बड़े समारोह से प्रीतिभोज किया। एक ओर मोमबत्तियाँ अपनी छटा दिखा रही थीं तो दूसरी ओर दीपक के प्रकाश से प्रत्येक वस्तु जगमग-जगमग कर रही थी। विशेष प्रकार की मदिरा का प्रबन्ध किया गया था। वह बड़ी सुन्दर सुराहियों में भरी हुई थी। मदिरा के भरे हुए प्याले को देखकर ही लोग मूर्च्छित हो जाते थे। साक़ी की चपलता और सुन्दरता ने सभी को मूर्छित कर दिया था। महफिल में जो चंग और रबाब बजाने के लिए लाए गए थे वे भी बड़ी होशियारी से तैयार कराए गए थे। गायकों की मधुर तानें तथा नर्तकियों के नृत्य से समारोह की शोभा और भी बढ़ गई थी। भोजन के लिए नाना प्रकार की वस्तुएँ पकवाई गईं थीं। भिन्न-भिन्न प्रकार की रोटियाँ, समोसे, पुलाव, दुम्बे का मांस, जिसमें चिकनाई भरी हुई थी, बटेर, तेन्दू, दुर्राज के मांस तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के हलवे तैयार कराए गए थे। पान के बीड़े की प्रशंसा ही असम्भव है। इस प्रकार यह समारोह रात भर बड़ी शान से होता रहता था।[१५४]

बरनी के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी मलिक काफ़ूर पर आसक्त था। उसे बाज उड़ाने का भी बड़ा शौक था।[१५६] उसका उत्तराधिकारी शिहाबुद्दीन अपना समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी अपने दास खुसरो खाँ पर बुरी तरह आसक्त था और उसके साथ गुर्दा-भोग व मदिरा-पान किया करता था।[१५७] वह एक क्षण भी बिना खुसरो के नहीं रह सकता था। वह शिकार खेलने का भी शौक़ीन था।[१५८]

सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक दोनों ईदों के अवसर पर जश्न मना कर अपना मनोरंजन किया करता था। ईदों के जश्न का विवरण इब्नबतूता ने दिया है। अपने दरबार में भी वह गायकों का गाना व नर्तकियों का नृत्य देखा करता था। जब कभी वह लम्बी यात्रा के बाद राजधानी को वापस लौटता था उस अवसर पर शरबत हौजों में भर दिया जाता था और लोगों को शर्बत पान, पुंगीफल दिए जाते थे। सुल्तान के आने पर जश्न मनाया जाता था।[१५९] मुहम्मद तुग़लक यदा-कदा मनोरंजन के लिए सैर-सपाटों पर भी जाया करता था। उस समय भी लगभग ३०००० सवार और कुछ हाथी भी उसके साथ हुआ करते थे।[१६०]

सुल्तान फिरोज़ तुग़लक मदिरा पीने का शौकीन था। जब लखनौती पर दूसरी बार चढ़ाई करने जा रहा था तो उसने मार्ग में डेरा डाला। प्रातःकाल की नमाज़ के बाद उसके सामने केसरिया, गुलाबी और सफेद रंग की मदिरा उपस्थित की गई। वह मदिरापान करने जा ही रहा था कि तातार खान उसके द्वार पर उपस्थित हो गया। उसने तत्काल मदिरा का प्याला पलंग के नीचे छुपा दिया।[१६१]

सुल्तान बहलोल लोदी बड़ा ही धर्मनिष्ठ तथा दानी सुल्तान था। वह न तो किसी भिखारी को अपने द्वार से खाली जाने देता था और न ही अपने लिए धन संचित करता था। वह अमीरों व सैनिकों के साथ समान व्यवहार करता था। यदि कोई व्यक्ति रुग्ण हो जाता था वह स्वयं उसे देखने जाता था और उसके प्रति संवेदना प्रकट करता था। यदि कोई व्यक्ति मर जाता था तो उस समय दिल्ली में यह प्रथा थी कि दिवंगत व्यक्ति की मृत्यु के तीसरे दिन उपस्थित लोगों में पान, मिश्री तथा शकर का वितरण किया जाता था। सुल्तान ने उसे बन्द करा दिया और उसने केवल फूल व गुलाब जल देने की प्रथा चालू की। वह शरा के विरुद्ध कोई कार्य न करता था। उसके महल में कोई भी पर्दादार या द्वारपाल नहीं रहता था। भोजन के समय जो कोई भी उपस्थित होता था वह उसके साथ भोजन करता था। वह गोष्ठियों में सिंहासन पर नहीं बैठता था और न ही लोगों को खड़े होने की अनुमति देता था। सभी लोग कालीन पर बैठते थे। वह अमीरों को पत्रों में **मसजद-ए-आली** शब्द से सम्बोधित किया करता था। यदि कोई अमीर उससे रुष्ट हो जाता था तो उसे मनाने के लिए वह उसके घर पहुँच जाता था। वह पाँचों समय की नमाज़ जमात के साथ पढ़ता था।[१६२]

सुल्तान सिकन्दर लोदी ने प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित कर दिया था। वह क्रमानुसार कार्य किया करता था। वह केवल दिन में भोजन के उपरान्त सोता था और रात भर राज्य के प्रबन्ध की व्यवस्था किया करता था। रात्रि समाप्त होने में जब ६ घड़ी रह जाती थी तो वह १७ विद्वानों के साथ भोजन किया करता था। उस समय यह प्रथा कि वे लोग हाथ धोकर बैठ जाते थे, सुल्तान सिकन्दर लोदी पलंग पर बैठ जाता था। एक बड़ी कुर्सी पलंग के पास लाई जाती थी और भोजन

उसी कुर्सी पर रख दिया जाता था। उस थाल से वह भोजन करता था। अन्य लोग के सामने भी भोजन की थालियाँ रक्खी जाती थीं। वह दाढ़ी मुड़वाता था व कभी कभी मदिरापान भी किया करता था।[१६३] वह शिकार व चौगान खेलने का बहुत ही शौकीन था। वह गाना सुनने का भी बहुत शौकीन था।[१६४] वाद्ययंत्रों में शहनाई सुनना उसे अधिक पसन्द था। उसके आदेश थे कि केवल राग मालकोस, कल्याण, कांगड़ा और हुसैनी ही बजाये जायें।[१६५] अहमद यादगार के अनुसार उसने १५०० दीनार में चार दास खरीद रखे थे उनमें से एक चंग, दूसरा काश्न, तीसरा तम्बूरा और चौथा वीणा बजाता था। उनके अतिरिक्त उसके पास चार शहनाई बजाने वाले थे। जब आधी रात व्यतीत हो जाती थी तो वे शहनाई पर अबदारा, अज़ाना, हिसीं, रामकली नामक राग बजाते थे।[१६६] मुहम्मद कबीर के अनुसार वह गेंद खेलने में भी रुचि रखता था।[१६७]

सुल्तान द्वारा त्योहारों पर जश्न मनाना

सुल्तान विभिन्न त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाते थे। ईद के दिन सुल्तान का महल बड़े सुन्दर ढंग से सजाया जाता था। दरबार के बड़े कक्ष के बाहर बरगाह खड़ी की जाती थी, जो कि एक विशाल मण्डप की भाँति होता था। इस मण्डप में बड़े-बड़े स्तम्भ होते थे और मण्डप के चारों ओर रावटी लगी होती थी। भिन्न-भिन्न रंगों के रेशम के वस्त्र से वृक्ष बनाये जाते थे और उसमें फूल लगाये जाते थे। एक बड़े कक्ष को तीन पंक्तियों से सजाया जाता था।[१६८] प्रत्येक दो वृक्षों के मध्य में एक कुर्सी रखी जाती थी। उस पर एक गद्दी रखी होती थी। उसके मध्य में विशाल सिंहासन रखा होता था जो कि शुद्ध सोने का बना होता था तथा जिसमें रत्न जड़े होते थे। उस सिंहासन पर छत्र बना होता था। सुल्तान जैसे ही सिंहासन पर बैठने के लिए आता था, हाजिब तथा नकीब उच्च स्वर में बिसमिल्लाह का नारा लगाते थे। उसके बाद उपस्थित जन उसका अभिनन्दन करते थे। इस दिन वे लोग जिनको ग्राम अनुदान में मिले थे, अपने साथ दीनार लाते थे और वे वहीं रखे हुए सोने के थाल में दीनार डाल देते थे। इस प्रकार जो धन एकत्र होता था उसमें से कुछ धन सुल्तान जिसे चाहता था उपहारस्वरूप दे दिया करता था। जब लोग अभिवादन कर चुकते थे तो सभी लोगों के लिए उनकी श्रेणी के अनुसार भोजन लाया जाता था। यहाँ पर सेवक लोगों पर गुलाब जल छिड़कते थे। भोजन के बाद सभी लोग वहाँ से वापस चले जाते थे।[१६९]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक दोनों ईदों, ईद तथा बकरीद, शबेबरात तथा नौरोज़ के दिन आम जश्न करता था। ईद का दिन निकट आते ही पहले से ही जश्न की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती थीं। ईद के दिन कूश्के फिरोज़ाबाद सात प्रांगणों में आम के वृक्ष की पत्तियाँ फैला दी जाती थीं। मध्य प्रांगण में सुल्तान के आदेशानुसार बारगाह लगाई जाती थी। उस स्थान को दरबार-ए-मण्डप का स्थान कहा जाता था।

उस स्थान पर सुल्तान ने एक कूश्क आम लोगों के लिए वनवाया था। जब वह खास व आम सभी के लिए दरबार करना चाहता था तो उस स्थान पर ही बैठता था। उस कूश्क के दोनों किनारे लकड़ी के दो पाशेव वाँधे जाते थे और वहाँ हर प्रकार के पौधे रक्खे जाते थे। उनमें से कुछ पौधे रेशम, नरमीने, सोने-चाँदी की कमानों, सफेद वस्त्र, मोम तथा अन्य फूल भी वड़ी संख्या में रक्खे जाते थे। उस प्रांगण की समस्त दीवारों पर नरमीना कपड़ा लगाया जाता था। फर्श पर चादर विछाई जाती थी। सूखे तथा पके हुए मेवे यहाँ रक्खे जाते थे। प्रातःकाल तथा मध्याह्न में सुल्तान फिरोज़शाह वहाँ आकर बैठता था। सर्वप्रथम तेग़दार (तलवार चलाने वाले) दासों को आज्ञा दी जाती थी कि वे उपस्थित हों। दस छत्र-सुल्तान के दाईं ओर और १० वाईं ओर और एक उसके सिर पर रक्खा जाता था। यह छत्र विभिन्न रंगों के होते थे। इसी प्रकार से उस समय मवासानी (?) निशानों को, जिनकी संख्या १६० से १७० होती थी, को सुन्दर ढंग से सजाया जाता था। वे मरातिव पायगाहों के साथ जो कि सोने व चाँदी की गढ़ी हुई ज़ीनों से सुसज्जित किये जाते थे, महल में प्रवेश करते थे। उसके वाद कुछ सजे हुए हाथी जिन पर सुनहरे हौदे व दो रंग के कपड़े पड़े होते थे, महल में प्रवेश करते थे। वे हाथी सुल्तान को सलाम करते थे और उसके वाद दाईं व वाईं ओर खड़े हो जाते थे। उसके वाद गायक व नर्तकियाँ लायी जाती थीं। समस्त गायक केसरिया वस्त्र धारण किये हुए तथा लाल पगड़ी पहने हुए रहते थे। नर्तकियाँ जड़ाऊ बहुमूल्य वस्त्र धारण किये रहती थीं और उनमें से प्रत्येक ४०-४० हजार तन्के के मूल्य के वस्त्र पहन कर दरवार में आती थीं। तत्पश्चात् कव्वाल वाद्य हाथ में ले लिया करते थे और नर्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ कर दिया करती थीं। तत्पश्चात् सभी वड़े खानों, अमीरों, गणमान्य व्यक्तियों, मन्त्रियों, सूफियों को सुल्तान का अभिनन्दन करने की अनुमति दी जाती थी। जव एक पहर दिन चढ़ जाता था तो सुल्तान नमाज़ के लिए सवार होता था। उसके साथ-साथ सभी खान, मलिक व सूफी जश्न की सभा के वाहर आते थे। कूश्के नुज़ूल के पास नमाज़ पढ़ने के वाद सुल्तान अपने महल में लौट जाता था और तत्पश्चात् दरवार में बैठता था। उस समय वह लोगों से उपहार स्वीकार करता था और खानों व मलिकों को खिलअतें तथा कव्वालों व नर्तकियों को इनाम दिया करता था।'[१७०]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक शवेवारात का त्योहार भी वड़े धूम से मनाता था। सावन का महीना आते ही व शवेवारात की आतिशवाज़ी को तैयारी करने का आदेश दे दिया करता या। शावान की १५ तारीख को वह रात को कूश्के फिरोज़ा-वाद में फुलझड़ियाँ छुड़ाता था। जव शवेवरात निकट आ जाती तो १३, १४, १५ तारीख की रात को आतिशवाज़ी एकत्र की जाती और उन्हें कूश्के नज़ूल में छुड़ाया जाता था। इन तीनों रातों में वहाँ इतनी मशालें जलाई जाती थीं कि कूश्के नज़ूल का चारों ओर का मैदान दिन के समान चमकने लगता था। उस समय ढोल व शहनाई, मीर तथा अन्य वाद्ययन्त्र वजाये जाते थे। दिल्ली के आस-पास के लोग हिन्दू

व मुसलमान इन तमाशों को देखा करते थे। इस अवसर पर पीलखाने के अधिकारी मिट्टी की हाथी व ऊँट तैयार करके सुल्तान को पेश करते व उससे उपहार प्राप्त करते थे।[१७१]

शिकार खेलना

दिल्ली के लगभग सभी सुल्तान शिकार खेलने के बहुत ही शौकीन थे। उन्होंने शिकार की व्यवस्था करने के लिए केन्द्रीय प्रशासन में **अमीरे-ए-शिकार** का पद स्थापित किया, जिस पर अमीरों की समय-समय पर नियुक्तियाँ निरन्तर होती रहती थीं। वलवन को शिकार खेलने का बहुत शौक था। वह शीत ऋतु के प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा किया करता था। उसने आदेश दे रखे थे कि दिल्ली के दस-बीस कोस तक शिकारगाहों व मैदानों की पूर्णतः सुरक्षा की जाय ताकि वहाँ कोई अन्य व्यक्ति शिकार न खेलने पाये। उसने इस कार्य हेतु अनेक वहेलिए नियुक्त कर रक्खे थे। उसने अपने शिकारखाने में बहुत बड़ी संख्या में शिकारेदार तथा चिड़ीमार नौकर रखे थे। वह शीतऋतु में रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपने महल से निकल कर रेवाड़ी या उसके समीपवर्ती प्रदेश तक शिकार खेलने जाता था और रात्रि में देर से वापस लौटता था।[१७२] जव वह खान था तो उस समय शिकार के समय उसके साथ १००० दास, जिनमें कि गायक तथा धनुर्धारी भी सम्मिलित थे, रहते थे। इन सभी व्यक्तियों को शिकार के समय उसके दस्तरखान से भोजन मिलता था।

सुल्तान अलाउद्दीन भी शिकार खेलने का बहुत शौकीन था।[१७३] क़ुतुबुद्दीन, मुबारकशाह खिल्जी शिकार खेलने के लिए सरसावे जाता था।[१७४] मुहम्मद तुग़लक जिस प्रकार पूर्ण प्रवन्ध करके शिकार खेलने जाया करता था उसका विस्तृत विवरण इब्नबतूता ने दिया है।[१७५] शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार जव वह शिकार पर जाता था तो उसके साथ एक छोटा रक्षक दल होता था। उसमें १०००० सवार, २०० हाथी से अधिक नहीं होते थे। वह अपने साथ लकड़ी के चार मण्डप ८०० ऊँटों पर लदवा कर ले जाता था। प्रत्येक मण्डप २०० ऊँटों पर रक्खे जाते थे। प्रत्येक मण्डप में २ मंजिलें होती थीं। इसके अतिरिक्त उसके साथ खरगाह खेमे, डेरे इत्यादि होते थे।[१७६] अफीफ ने सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक की शिकार में विशेष रुचि का सविस्तार विवरण दिया है। उसे अल्पावस्था से ही शिकार खेलने में बड़ी रुचि थी। मुहम्मद तुग़लक उसके विषय में कहा करता था कि यद्यपि वह बुद्धिमान व समझदार व्यक्ति है किन्तु व्यर्थ में वह अपना समय गौरैय्ये के पीछे नष्ट करता है।[१७७] जाजनगर को विजित करने के वाद वह हाथियों का शिकार करने के लिए निकटवर्ती जंगलों की ओर जाता था। इस अवसर पर उसने ८ भयंकर हाथियों को पकड़ा।[१७८] फिरोजशाह ने असंख्य चीते, सियाहगोश, कुत्ते एकत्र किए। उसने बहुत से शिकारी शेर भी एकत्र किए। वाज-वहरी, तुरमती, शाहीन, सीमतन तथा

अन्य इसी प्रकार के पक्षी इतनी बड़ी संख्या में एकत्र किये। उसने प्रत्येक जानवर की देखभाल के लिए दो-दो तीन-तीन दास नियुक्त किये। इन सब जानवरों के रक्षक घोड़ों पर सवार होकर यात्रा करते थे। जिस प्रकार वह आखेट खेलता था उसका रोचक विवरण अफीफ ने दिया है।[१७९] वह मछलियों का भी शिकार खेलता था।[१८०] वरनी ने लिखा है कि फिरोज़शाह तुग़लक वर्ष के बारह मास में बिना शिकार किये नहीं रह सकता था। जब कभी भी वह शिकार खेलने जाया करता था तब जंगल में न तो कोई भेड़िया, नीलगाय, हिरन, बारहसिंगे और न ही कोई पक्षी उसके शिकार से बच पाता था। शिकार से उसके सैनिक शिविर को इतना मांस मिलता था कि गाय व भेड़ की हत्या करने की आवश्यकता ही नहीं होती थीं। उसके शिकार में इतना अधिक संलग्न होने के कारण **अमीर-ए-शिकार** के पद की गरिमा में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। **आरज़ान-ए-शिकार** (शिकार की देख-रेख करने वाला) उनके पदाधिकारी तथा बाज़ वाले, सभी लोग शाही अनुकम्पा व उसके दान से सम्मानित होने लगे। इस प्रकार अनेक शिकारी सुल्तान की सेवा में प्रविष्ट हो गये।[१८१]

अफसाहाना-ए-शाहान के लेखक मु० कबीर के अनुसार बहलोल लोदी शिकार खेलता था।[१८२] सुल्तान सिकन्दर लोदी शिकार खेलने के लिए सम्भल जाया करता था।[१८३]

सुल्तानों का पारिवारिक जीवन व 'हरम'

जब दिल्ली के सुल्तान अपनी राजधानी में रहते थे तो वे अपना अधिक से अधिक समय हरम में व्यतीत करते थे। दिल्ली के सुल्तानों के अन्तःपुर का क्रमिक विकास हुआ। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त जैसे-जैसे तुर्की सुल्तानों के पैर यहाँ जमते गये उनके पारिवारिक जीवन में भी क्रमशः स्थायित्व आता गया। उनके पारिवारिक जीवन का केन्द्र उनका व्यक्तिगत अन्तःपुर या हरम था जहाँ कि उनकी पत्नियाँ, रखैलें, पुत्रियाँ. सगे-सम्बन्धियों की स्त्रियाँ या महिलाएँ, माताएँ आदि रहती थीं तथा जिनकी सेवा में अनेक दासियाँ तथा महिलाएँ कर्मचारी रहा करती थीं। हरम कितना बड़ा हो उसमें कितनी पत्नियाँ व रखैलें हों, यह सुल्तान की व्यक्तित्व, उसकी काम-पिपासा, व्यक्तिगत साधनों तथा अनेक अन्य बातों पर निर्भर करता था। यह उनका व्यक्तिगत मामला था। इसमें किसी उल्मा और किसी अमीर को कुछ कहने का अधिकार न था। हरम में ही सुल्तान के पुत्रों व पुत्रियों का पालन-पोषण होता। वहीं उन्हें शिक्षा दी जाती थी। हरम की सुरक्षा एवं उसकी व्यवस्था को सुल्तान को ही पूर्ण ध्यान रखना पड़ता था। हरम में प्रवेश करने की केवल सुल्तान व राजकुमारों को ही अनुमति थी। बिना सुल्तान से पूर्व अनुमति लिए हुए कोई भी महिला उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थी। अन्य पुरुषों का उसमें प्रवेश करना वर्जित था। 'हरम' की पवित्रता को बनाये रखने के लिए सुल्तानों ने कठोर नियम बनाये,

जिनका उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। दिल्ली के सुल्तान के हरम में स्त्रियों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ पूर्व सुल्तानों के हरम भी उन्हें विरासत में मिलने के कारण उसमें स्त्रियों की कभी कमी नहीं रहती थी। हरम के लिए विशाल महल, जो कि चारों ओर से सुरक्षित होता था तथा जिसकी बाहर से सुरक्षा सशक्त सैनिक तथा हिजड़े तथा अन्दर से महिला रक्षिकाएँ तथा कर्मचारी किया करते थे। हरम को व्यवस्थित रखने के लिए एक पृथक प्रशासनिक व्यवस्था घरेलू विभाग के अन्तर्गत होती थी। सुल्तान ही स्वयं अपने 'हरम' पर व्यय किया करता था। महल के अन्दर की सभी स्त्रियों को जीवनयापन की सभी सुविधाएँ एवं सुख प्रदान किये जाते थे। उन्हें महल से बाहर अकेले निकलने की अनुमति नहीं होती थी। उनका मनोरंजन करने के लिए वहाँ गायिकाएँ तथा नर्तकियाँ तथा सैकड़ों दासियाँ जो कि विभिन्न कलाओं में प्रवीण होती थीं, हुआ करती थीं।

साधारणतः सुल्तान की माँ ही अन्तःपुर की प्रथम महिला होती थी। उसके बाद सुल्तान की प्रमुख पत्नी का अन्तःपुर में विशेष स्थान होता था। इस काल में समय-समय पर हरम की महिलायें राजनीति में भाग लेने की चेष्टा कीं। अन्यथा वे सुल्तान के हाथों में कठपुतली की भाँति नाचती रहती थीं और उसे पूर्ण सुख दिया करती थीं। सुल्तान विश्राम करने के लिए महल में आता था। जितनी देर वह वहाँ की स्त्रियों के मध्य रहता था, वह उनसे घिरा हुआ अपना मनोरंजन करता रहता था।

इल्तुतमिश की अनेक रानियाँ थीं। उसकी मृत्यु के उपरान्त प्रमुख रानी शाह तुर्कान, जो कि अत्यन्त महत्वाकांक्षी, दुष्ट, स्वार्थी एवं बुद्धिहीन थी, ने रज़िया के उत्तराधिकार के अधिकार को ठुकराकर अमीरों व उलमाओं को अपने पक्ष कर अपने पुत्र रुकुनुद्दीन को गद्दी पर बिठवा दिया। उसने अन्य रानियों के साथ दुर्व्यवहार किया। उनके पुत्रों में से कुछ को मरवा दिया, शेष को बन्दीगृह में डलवा दिया। किन्तु फिर भी रज़िया गद्दी पर बैठने में सफल हुई। उसने अपने भाई रुकुनुद्दीन को गद्दी पर से उतरवा दिया व माँ शाह तुर्कान को बन्दीगृह में डाल दिया। शाही अन्तः-पुर का संगठन, उसकी व्यवस्था और उसके जीवन को व्यवस्थित करने का श्रेय बलबन को है। बलबन ने उसे अनुशासित किया। वहीं उसके पुत्रों मुहम्मद, बुग़रा खान तथा पौत्रों क़ैकुबाद, कैखुसरो तथा कैमूर का पालन-पोषण तथा प्रारम्भिक शिक्षा उसकी निगरानी में हुई। इस भाँति हरम राजकुमारों की शिक्षा एवं पालन-पोषण का केन्द्र बन गया। बलबन की मृत्योपरान्त हरम की गरिमा, उसका अनुशासन सुल्तान मुइजुद्दीन कैकुबाद की काम-पिपासा, मदिरापान, विलासी प्रवृत्ति एवं चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण समाप्त हो गया। वहाँ निम्नकोटि की चरित्रहीन, सुन्दर गायिकाएँ, नर्तकियाँ, साक़ी, कृत्रिम हाव-भाव प्रदर्शित करने एवं कामुकता को जाग्रत करने वाली युवतियाँ पहुँच गईं, जिसके कारण हरम की पवित्रता भंग हो गयी। किन्तु

इस प्रकार की हरम में स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। सुल्तान जलालुद्दीन फ़िरोजशाह खिल्जी के गद्दी पर बैठने के बाद उसकी प्रमुख पत्नी मलिकाए-जहाँ ने हरम को पुनः सुव्यवस्थित कर लिया। वह प्रभावशाली महिला थी। अपने पति सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के वध के उपरान्त उसने अपने पुत्र कद्र खाँ को सुल्तान रुक्नुद्दीन इब्राहीम की पदवी से सुल्तान घोषित किया। वह मन्त्रियों व अमीरों को किलोखड़ी से दिल्ली लाई और कूश्केसब्ज में रहने लगी। इसी मध्य उनका दामाद अलाउद्दीन कड़ा से दिल्ली की ओर गद्दी अधिकृत करने के लिये रवाना हुआ। सुल्तान रुकुनुद्दीन इब्राहीम भयभीत हुआ। वह दिल्ली छोड़कर मुल्तान भाग गया। अलाउद्दीन ने दिल्ली पहुँचते ही मलिका-ए-जहाँ को बन्दीगृह में डलवा दिया और स्वयं गद्दी अधिकृत कर ली।

सुल्तान अलाउद्दीन के शासन काल में हरम में स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई। उसे जो हरम विरासत में मिला था उसमें पहले से ही अधिक स्त्रियाँ थीं। उसने देवगिर के शासक राजा रामचन्द्र देव की पुत्री मरहटी से विवाह करके उसे अपने हरम में रखा। कालान्तर में गुजरात के शासक करण बघेला की पुत्री कमलादेवी व उसकी पुत्री देवलदेवी उसके अधिकार में आई और उसने उन्हें भी अपने हरम में रक्खा। शाही अभियानों में बन्दी बनाई गई अनेक सुन्दर स्त्रियाँ हरम में रक्खी गयीं। कभी-कभी दास-दासियों के बाजार से भी सुन्दर युवतियों को खरीदकर वह उन्हें अपने हरम में ले आता था। उसके हरम की सबसे महत्वपूर्ण घटना, देवल रानी तथा राजकुमार खिज्र खाँ के मध्य प्रेम व उनका विवाह था। अमीर खुसरो ने इस प्रेम पर देवल रानी वो खिज्र खान शीर्षक के अन्तर्गत मसनवी लिख कर उसे अमर बना दिया। अलाउद्दीन खिल्जी के कठोर अनुशासन व नियमों के कारण हरम सुव्यवस्थित रहा। किन्तु सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक खिल्जी के सिंहासन पर बैठते ही वह व्यभिचार, विलासिता तथा व्यसन का केन्द्र बन गया। उसने जबरदस्ती खिज्रखान की विवाहिता पत्नी देवलदेवी से विवाह किया तथा सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के हरम के अनेक स्त्रियों को अपना बना लिया। वह सदैव व्यभिचार में रत रहता था। उसके वध के उपरान्त खुसरो खान ने गद्दी पर बैठते ही देवल रानी से विवाह किया और हरम पर अनेक अत्याचार किए। उसने सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह की पत्नी को भी नहीं छोड़ा और उससे भी विवाह किया।

खिल्जी सुल्तानों की तुलना में तुग़लक सुल्तानों का हरम के प्रति दृष्टिकोण भिन्न था। वे उनकी भाँति स्त्रियों को बलपूर्वक हरम में लाने के पक्ष में न थे। न ही वे कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिलजी की भाँति कामुक व व्यसनी थे। गयासुद्दीन तुग़लक ने गद्दी पर बैठने के बाद, सर्वप्रथम आदेश दिया कि हरम की स्त्रियों के साथ आदर-पूर्वक व्यवहार किया जाय, उन सभी लोगों को दण्ड दिया जाय जिन्होंने कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के वध के तीन दिन बाद खुसरो खान को उसकी पत्नी के साथ

विवाह करने की अनुमति दी थी। उसने अलाउद्दीन खिल्जी की पुत्रियों का विवाह भले घरानों में करवा दिया तथा असामाजिक तत्वों को हरम से बाहर निकाल दिया। उसकी प्रमुख पत्नी मख्दूमा-ए-जहाँ एक पवित्र महिला थी। उसने हरम की पवित्रता को बनाए रक्खा। गयासुद्दीन तुग़लक के मृत्योपरान्त राजमाता मख्दूम-ए-जहाँ के अन्तर्गत हरम सुव्यवस्थित रहा। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने हरम का सम्पूर्ण कार्यभार मखदूम-ए-जहाँ पर ही छोड़ दिया था।

राजकुमार व राजकुमारियों का विवाह

इस काल में राजकुमारों व राजकुमारियों के विवाह के सन्दर्भ समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में कम मिलते हैं। शाही परिवार में अन्तर्जातीय विवाह होते थे। अमीर खुसरो ने देवल रानी व खिज्र खाँ के विवाह का विस्तृत विवरण दिया है। जब खिज्र खाँ युवा हो गया तो अलाउद्दीन व मलिक-ए-जहाँ ने उसका विवाह अलप खाँ की पुत्री से करना चाहा, किन्तु महल की महिलाओं ने उन्हें बताया कि खिज्र खाँ राजाकरण व कमलादेवी की पुत्री देवल रानी से प्रेम करता है। इसके बावजूद भी खिज्र खाँ का विवाह अलप खाँ की पुत्री से तय कर दिया गया। सुल्तान के आदेशानुसार विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। शाही महल सजाया गया। दीवारों पर नाना प्रकार के चित्र बनवाए गए, महल में शमियाने लगाए गए और फर्श पर कालीन बिछाए गए। ढोल व ताशे बजने लगे। जादूगर व बाजीगर तमाशा दिखाने लगे। तीन वर्ष तक विवाह की तैयारियों के उपरान्त फरवरी १३१२ में विवाह की तिथि निश्चित हुई। खिज्र खाँ की बारात निकली और सद्र-ए-जहाँ ने निकाह पढ़ा। जवाहरात व मोती लुटाए गए और लोगों को बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान की गई।[१८४] इस विवाह से खिज्र खाँ तनिक भी प्रसन्न न हुआ। तत्पश्चात् उसने देवल रानी से विवाह किया।

पूर्वकाल की भाँति राजकुमारियों के विवाह भी हरम में ही सम्पन्न होते थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने अपनी बहन फिरोज खुनदा का विवाह अमीर सैफुद्दीन से किया। इस अवसर पर सुल्तान ने मलिक फतहउल्लाह (शू नवीस, विवाहों का प्रबन्ध करने वाला अधिकारी) को समस्त प्रबन्ध करने का आदेश दिया। मलिक फतह उल्लाह ने कूश्के लाल के दोनों बड़े प्रांगणों में बड़े-बड़े पंडाल लगवाए और प्रत्येक में उसने बड़े-बड़े कुब्बे तैयार करवाए। उसने उत्तम प्रकार के फर्श तथा तकिए लगवाए। शम्सुद्दीन तबरेजी (गायकों का मुख्य अधिकारी) ने गायकों, नर्तकियों तथा गणिकाओं का प्रबन्ध किया। बावर्ची, नानबाई, मांस भूनने वाले, हलवाई, सक्को तथा पान लगाने वालों का प्रबन्ध किया गया। विवाह की रात्रि से दो दिन पूर्व सुल्तान के महल से स्त्रियाँ कूश्के लाल में आईं। यहाँ उन्होंने सुन्दर फर्श बिछाए, सामान लगवाए और उसे उत्तम ढंग से सजवाया। उसके बाद उन्होंने अमीर सैफुद्दीन को वहाँ बुलाया, उसके हाथों, पैरों में मेंहदी लगाई। शेष स्त्रियाँ नाचने-गाने में लगी रहीं। उसके बाद अमीर सैफुद्दीन को खिलअत, रेशम की पगड़ी इत्यादि वस्त्र प्रदान किए गए।

वह घोड़े पर सवार होकर वारात के साथ कूश्के लाल के द्वार पर पहुँचा जहाँ उसका स्वागत किया गया। दुलहिन स्त्रियों के साथ आई। उसने अपना मुँह दूल्हे को दिखाया। उसके वाद निकाह पढ़ा गया और इस प्रकार अमीर सैफुद्दीन का विवाह हो गया।[१८५] विवाह के वीस दिन उपरान्त जव अमीर सैफुद्दीन ने महल में प्रवेश करना चाहा तो अमीर-उल-पर्दादारिया, जो कि महल के द्वार का मुख्य अधिकारी था, ने उसे प्रवेश करने से रोका। किन्तु अमीर सैफुद्दीन ने महल के नियम की ओर ध्यान न देते हुए मुख्य द्वारपाल के वाल घसीट कर उसे पीछे धकेल दिया और उसे कुन्दे से मारा। इस घृणित कार्य के लिए अमीर सैफुद्दीन को वन्दीगृह में डलवा दिया गया। वरनी ने लिखा है कि मुहम्मद तुगलक अन्तःपुर में जाने से पूर्व ख्वाजा सरायों को महल में सूचना देने के लिए भेज देता था ताकि उससे पर्दा करने वाली स्त्रियाँ छिप जायँ और सुल्तान की दृष्टि उन पर न पड़े।[१८६] वह मख्दूम-ए-जहाँ की आज्ञाओं का इतना पालन करता था कि उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करता था। इब्न-वतूता ने लिखा है कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के गद्दी पर वैठने के वाद मख्दूम-ए-जहाँ के सम्मुख सभी शाहजादियाँ, मंत्रियों व अमीरों की पुत्रियाँ उत्तम वस्त्र व आभूषण पहन कर उसकी सेवा में उपस्थित होती थीं। वह एक सोने के सिंहासन पर जिसमें जवाहरात जड़े हुए थे, पर वैठती थी। वे उसका अभिवादन किया करती थीं। इब्न-वतूता के विवरण से मख्दूम-ए-जहाँ का हरम में स्थान प्राप्त होता है। जव भी वह पालकी पर जाती थी और यदि सुल्तान वीच में उसे मिल गया तो वह अपने घोड़े से उतर कर उसका अभिवादन किया करता था और उसके पैरों को चूमता था।[१८७]

सुल्तान के परिवार के सदस्य

अभिजात वर्ग में सुल्तान के परिवार के सदस्यों का स्थान सुल्तान के वाद था। वह एक विशेष अधिकारयुक्त वर्ग था। चूँकि इस काल में सुल्तान ही राज्य का सर्वेसर्वा सर्वोच्च अधिकारी, वैभव-सम्पन्न तथा गौरवमयी व्यक्ति था, अतएव उसके पुत्र, भाई अन्य सगे-सम्वन्धियों का मुसलमान समाज में विशेष स्थान था। उनकी गणना गणमान्य व्यक्तियों में होती थी। उनकी निजी प्रतिष्ठा थी। उन्हें कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे। उन्हें समय-समय पर उपाधियाँ, सम्मानित चिह्न, पद, जागीरें, विशेषाधिकार जैसे कि नगाड़े, छत्र, पताकाएँ आदि मिलती थीं। सुल्तान इल्तुतमिश ने अपने जेष्ठ पुत्र मलिक नासिरुद्दीन महमूद को सर्वप्रथम हाँसी की अक्ता प्रदान की और उसके वाद १२२६ ई० में उसे अवध का प्रदेश दिया।[१८८] जव सुल्तान इल्तुतमिश को खलीफा से मानपत्र प्राप्त हुआ तो उसने उसे एक वहुमूल्य ख़िलअत तथा लाल छत्र उसके पास लखनौती भेजा।[१८९] इस प्रकार से उसे छत्र, खिलअत से सम्मानित किया गया। सुल्तान इल्तुतमिश ने अपने द्वितीय पुत्र रुकुनुद्दीन फिरोज को १२२७-२८ ई० में वदायूँ की अक्ता तथा हरा छत्र प्रदान किया।[१९०] कुछ समय वाद उसे लाहौर दे दिया गया।[१९१] उसके छोटे भाई मलिक गयासुद्दीन मुहम्मद को सुल्तान इल्तुतमिश

ने अवध प्रदान किया। सुल्तान अलाउद्दीन मसूदशाह ने अपने दो चाचाओं को १२४३ ई० में वन्दीगृह से मुक्त किया और उनमें से मलिक जलालुद्दीन को कन्नौज का प्रदेश व नसीरुद्दीन को बहराइच का प्रदेश दिया।[१८२] सुल्तान नसिरूद्दीन महमूद ने अपने भाई मलिक जलालुद्दीन को सम्भल व बदायूं की अक्ता प्रदान की।[१८३] वलवन ने जव अपने पुत्र कुग़रा खान को लखनौती में नियुक्त किया तो उसने उसे छत्र तथा दूरवाश, जो कि राजचिन्ह थे, प्रदान किए। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा मुहम्मद को मुल्तान, लाहौर व दीपालपुर प्रदान किए। शाहजादा प्रतिवर्ष सुल्तान के लिए उपहार भेजा करता था। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को **खान-ए-खाना,** मझले पुत्र को अरकली खान और लघु पुत्र को कद्र खान की उपाधियाँ प्रदान की। उसने अपने भाई को युगरूश खान की उपाधि दी और उसे **अर्ज़-ए-मुमालिक** का पद दिया। उसने अलाउद्दीन तथा उलुग़ खान, जो कि उसके भतीजे व दामाद थे, इनमें से एक को **अमीर-ए-तुज़ुक** और दूसरे को आखुरबक नियुक्त किया। उसने अलमासबेग को **आमीर-ए-हाजिब-ए-वरबाक** का पद प्रदान किया। उसने अपने मझले पुत्र अरकली खान को छत्र भी प्रदान किया।[१८४] अमीर खुसरो ने तिफला-उल-फुतूह में लिखा है कि सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी ने अपने तीन पुत्रों में से दो को लाल छत्र प्रदान किए और उन्हें दूरवाश न पताकाएँ भी प्रदान कीं। उसने उन्हें मोतियों से जड़ी हुई दो खिलअतें भी दीं। उसने अपने छोटे पुत्र रुकुनुद्दीन को मोतियों तथा याकूत से जड़ी हुई खिलअत प्रदान की।[१८५]

जव सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी गद्दी पर वैठा तो उसने अपने भाई मलिक नुसरत जलेसरी तथा मलिक हिज्बरुद्दीन को क्रमशः उलुग़ खान तथा जफ़रखान की उपाधियाँ दीं।[१८६] जब कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी गद्दी पर वैठा तो उसने अपने मामा मुहम्मद मौलाना को शेरखाँ की पदवी दी।[१८७] इसके वाद खुसरोखान ने गद्दी पर वैठने के वाद अपने भाई को खान-ए-खाना तथा अपने मामा रन्धौल को राय-रायाँ की उपाधियाँ प्रदान कीं।[१८८] खिल्जी वंश के पतन के वाद जव सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक गद्दी पर वैठा तो उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मलिक फख्रउद्दीन जूनाखान को छत्र प्रदान किया, अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उसे उलुग़खान की उपाधि प्रदान की।[१८९] अन्य राजकुमारों में से उसने एक को वहरामखान, दूसरे को जाफरखान, तीसरे को महमूद खाँ, चौथे को नुसरत खाँ की पदवी प्रदान की। उसने अपने भतीजे मलिक असदुद्दीन को नायब वरवक, अपने भगिनेय वहाउद्दीन को **अर्ज़े मालिक** का पद तथा समाने की अक्ता एवं जामाता मलिक शादी को **दीवाने-वज़ारत** नियुक्त किया।[२००] उस युग की परम्पराओं का पालन करते हुए सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने सिंहासन पर वैठने के वाद अपने चचेरे भाई फिरोज़ को **नायव अमीर हाजिब** नियुक्त किया तथा उसे नायव वरवक की उपाधि प्रदान की।[२०१] जव सुल्तान फिरोजशाह गद्दी पर वैठा तो उसने शाहजादा जहाने आज़म मुअज़्जम शादी खान को **वक़ील-दर** नियुक्त किया। वरनी ने लिखा है कि उसने अन्य राजकुमारों को खान की

उपाधियों, बड़े-बड़े पदों तथा अक्ताओं से सम्मानित किया। उसने अपने भाई फतह खाँ को मलिक-उल-मुलूकुल उमरा हक व दीन तथा दूसरे भाई को मलिक उलशर्क फखरुद्दौला वद्दीन मुईनुल इस्लाम अल मुस्लिमीन, मलिक इब्राहीम मुअज्जम को नायब वारबक नियुक्त किया।[२०२]

सैय्यद वंश के शासकों ने अपने परिवार के सदस्यों को पद, पदावियाँ, अक्ताएँ, सम्मानसूचक चिन्ह इत्यादि देने की परम्परा जारी रक्खी।[२०३] सुल्तान मुबारक-शाह ने अपने भतीजे मलिक उशशर्क मलिक बुद्ध को फिरोज़ाबाद व हाँसी की अक्ता प्रदान की। सुल्तान मुहम्मदशाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सैय्यद सालिम को मजलिसे आली सैय्यद खान तथा कनिष्ठ पुत्र को शुजा उल मुल्क की उपाधि प्रदान की एवं अपने भगिनेय मलिक बुद्ध को अला उल मुल्क तथा मलिक रुकुनुद्दीन को नसीरुल मुल्क की उपाधि प्रदान की। उसने उन लोगों को सुनहरी पेटी, मरातिब, नक्कारे (दमामे) तथा अक्ताएँ प्रदान कीं।[२०४]

अफगान सुल्तानों पर परिवर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों के रचयिताओं ने सुल्तानों द्वारा राजकुमारों या अपने परिवार के सदस्यों को पदवियाँ, पद, उपहार, सम्मानसूचक चिन्ह व अक्ताएँ प्रदान किए जाने के सम्बन्ध में सूचनाएँ नहीं दी है। अतएव राज-कुमारों व सम्राट के परिवार के सदस्यों की स्थिति के सम्बन्ध में कहना कठिन है।

राजपरिवार के सदस्यों की आय के स्रोत

राजकुमारों तथा शाही परिवार के सदस्यों की व्यक्तिगत आय के स्रोतों के सम्बन्ध में समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। जब कभी उन्हें कोई पद मिलता था तो उन्हें राज्य की ओर से वेतन मिलता था, नहीं तो अक्तायें ही उनकी आय का स्रोत हुआ करती थीं। सुल्तान इल्तुतमिश के पुत्र मलिक नासिरुद्दीन महमूदशाह के पास हाँसी और उसके बाद अवध की अक्ता थी।[२०५] उसके दूसरे पुत्र रुकुनुद्दीन के पास बदायूँ की अक्ता थी। उसके बाद उसने मुल्तान की अक्ता प्राप्त की।[२०६] मलिक जलालुद्दीन मसूदशाह, जो कि सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद का भाई था, कन्नौज का मुक्ता था।[२०७] उसके बाद उसे सम्भल व बदायूँ की अक्ता दी गई। जब कुतलुग़ खाँ ने सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की माँ से विवाह किया और राजपरिवार का एक सदस्य वह बन गया तो सुल्तान ने अपनी माँ व उसके पति कुतुलुग़ खाँ को अवध की अक्ता प्रदान की। उसके बाद उसे बहराइच की अक्ता दी गई।[२०८] सुल्तान बलबन के चचेरे भाई शेरखाँ के पास लाहौर, दीपालपुर इत्यादि की अक्ताएँ थीं।[२०९] शाहजादा मुहम्मद के पास सिंध व उसके निकटवर्ती प्रदेश अक्ता के रूप में थे।[२१०] बलबन के दूसरे पुत्र बुग़रा खाँ, जिसकी उपाधि नासिरुद्दीन थी, को समाने व सुनाम तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश अक्ता में मिले थे।[२११] तुग़रिलबेग के विद्रोह का दमन करने के बाद बलबन ने बुग़रा खाँ

को लखनौती का मुक्ता नियुक्त किया। शाहजादा महमूद की मृत्योपरान्त बलबन ने उसका छत्र, दूरबाश, अक्ता उसके पुत्र कैखुसरो को प्रदान किए।[२१२]

सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी ने अपने भाई को युग़रेश खाँ की उपाधि व अर्जेमामालिक का पद; अपने भतीजे अलाउद्दीन को अमीर-ए-तुज़ुक का पद, अपने दामाद उत्तुग़ खाँ को आखुरबक़ का पद प्रदान किया। इन सभी व्यक्तियों को उनके पदानुसार उनको वेतन मिलता था। मलिक छज्जू के विद्रोह को दबा दिए जाने के उपरान्त सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी ने अलाउद्दीन खिल्जी को कड़ा की अक्ता प्रदान की।[२१३]

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी से लेकर इब्राहीम लोदी तक राजकुमारों और शाही परिवार के सदस्यों की आय के स्रोत के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं पता चलता है। संभवतः सुल्तानों ने उन्हें जागीरें देना तथा नकद धन प्रदान करना बन्द कर दिया था, जिससे कि वे पूर्णतः उन्हीं पर आश्रित रहे और शक्तिशाली न बन सके।

राजकुमारों का व्यक्तिगत जीवन

समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ राजकुमारों या सुल्तान के परिवार के राजनीतिक जीवन का तो परिचय देते हैं, किन्तु उनमें उनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण नहीं मिलता है। बलबन के पुत्र शाहजादा मुहम्मद की सभा में बुद्धिमान, विश्वासपात्रों, योग्य पुरुषों की कमी न रहती थी। उसके नदीम **शाहनामा, दीवाने सनाई, दीवाने खक़ानी** और शैख निज़ामी का खम्सा पढ़ा करते थे। वे उक्त कवियों के छन्दों पर शाहज़ादे के सम्मुख वाद-विवाद भी करते थे। अमीर खुसरो व अमीर हसन उसकी सेवा में थे। शाहजादा मुहम्मद नदीमों, साहित्यकारों तथा कवियों को वेतन तथा पुरस्कार दिया करता था।[२१४] वे उसकी प्रशंसा किया करते थे। वह सावधानी से मदिरापान किया करता था। शैख उस्मान नामक सुप्रसिद्ध सूफी सन्त के मुल्तान पहुँचने पर उसने उनका आतिथ्य सत्कार किया और उन्हें फ़ुतूह दी। उसने उनके लिए मुल्तान में खनक़ाह बनवाये और उन्हें अनेक ग्राम प्रदान किए, फिर भी शैख उस्मान वहाँ न रुके। तदुपरान्त मुहम्मद ने हज़रत बहाउद्दीन ज़करिया के पुत्र शैख क़दवा को अपनी सभा में आमन्त्रित करके सभा करवायी जिसमें उसने अरबी में गज़लें गवाईं।[२१५] मुहम्मद का भाई बुग़राखान अपने राजकुमार के काल में मदिरा-पान किया करता था। बलबन ने उसे मदिरापान करने से मना किया और उसे बुरे मार्ग पर जाने से रोका।[२१६] बुग़राखाँ का पुत्र मुइज़उद्दीन क़ैक़ुबाद, जो कि बलबन की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा, के सम्बन्ध में बरनी ने लिखा है कि वह सिंहासनारोहण से पूर्व बड़ा सदाचारी था। उसके कठोर निरीक्षक उसे भोग-विलास तथा काम-वासना से दूर रखते थे। उसके शिक्षक उसे पढ़ने, लिखने, बाण फेंकने, गेंद खेलने और भाला चलाने की शिक्षा प्राप्त करने में ही व्यस्त रखते थे।

वरनी ने लिखा कि सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी ने जब अपने पुत्रों को उपाधियाँ प्रदान की तो वे वड़े ठाठ-वाट से रहने लगे।[२१८] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के पुत्रों, खिज्र खाँ, शिहावुद्दीन तथा मुवारक खाँ का जीवन कष्टमय रहा। सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक के पुत्रों उलुग़ खाँ, वहराम खान, जफर खाँ, महमूद खाँ तथा नुसरत खाँ का जीवन सामान्य रहा। इसी प्रकार से अन्य सुल्तानों के पुत्रों को जहाँ तक सम्भव हो सकता था, नियन्त्रण में रखने की चेष्टा की जाती थी ताकि वे शासक के लिए सिर दर्द न वन सकें।

वरनी ने लिखा है कि वुग़रा खाँ के पुत्र कैकुवाद का पालन-पोषण उसके पितामह वलवन के नियन्त्रण में हुआ था। उसके ऊपर अनेक कठोर निरीक्षण नियुक्त किये गये ताकि उसे भोग-विलास से दूर रखा जाय।[२१९] खिज्र खाँ अपने निजी जीवन में दुखी था क्योंकि मलिक-ए-जहाँ देवलरानी उसके प्रेम से प्रसन्न न थी। देवलरानी से विवाहोपरान्त शेख निजामुद्दीन औलिया का मुरीद हो गया। वह अपना अधिक समय नमाज़ और धार्मिक कार्यों में व्यतीत करता।[२२०] अधिकांश राजकुमारों का जीवन कारागार में ही व्यतीत होता था, जहाँ कि उन्हें अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता था। कुछ राजकुमारों को उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर अपने जीवन से हाथ भी धोना पड़ा। शाह तुर्कान ने राजकुमार कुतुवुद्दीन की आँखों में सलाई फिरवा दी और उसे मरवा डाला।[२२१] इल्तुतमिश के दूसरे पुत्र गयासुद्दीन मुहम्मद ने अवध में विद्रोह किया। उसके वाद उसका पता नहीं चला।[२२२] इल्तुत-मिश के अन्य पुत्र नासिरुद्दीन, जलालुद्दीन, अलाउद्दीन कुछ काल तक कैद में ही रहे।[२२३] इल्तुतमिश के ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन के पुत्र का जन्म लूनी के महल में ही हुआ। उसे दरवार से दूर ही रक्खा गया। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के दो पुत्रों का वध वलवन ने करवा दिया।[२२४] शाहजादा मुहम्मद सुल्तान के पुत्र कैखुसरो, जिसे वलवन ने अपना उत्तराधिकारी वनाया था, की रोहतक कस्वे में हत्या कर दी गई।[२२५] अलाउद्दीन खिल्जी ने सुल्तान जलालुद्दीन के दोनों पुत्रों, उसके दामाद, तथा अहमद चाप की आँखों में सलाई फिरवा दी। अरकली खाँ के सभी पुत्रों की हत्या करवा दी गई।[२२६] कुछ ही राजकुमार तथा शाही परिवार के सदस्य थे, जिन्हें कि सुल्तानों से, उनके भरण-पोषण या व्यक्तिगत खर्च के लिए अक्ताएँ मिली थीं। शेष राजकुमारों तथा शाही परिवार के सदस्यों का पोषण राजकोष से होता था।

अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के समय कुतुवुद्दीन वन्दीगृह में था। वहाँ से निकाल कर गद्दी पर विठाया गया।[२२७] कुतुवुद्दीन मुवारकशाह खिल्जी ने अपने चाचा मलिक असद उद्दीन, उसके भाइयों तथा वुग़रा खाँ के छोटे-छोटे २८ पुत्रों की हत्या करवा दी;[२२८] उसने सुल्तान अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खाँ, शादी खाँ तथा मलिक शिहावुद्दीन, जो कि अन्धे कर दिए गए थे, उनकी भी हत्या करवा दी।[२२९] उसने आलाई वंश का कोई भी सदस्य जीवित नहीं छोड़ा।[२३०] अमीर खुसरो ने तुग़लक

नामा में लिखा है कि सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह की हत्या के समय उसके पाँच भाई फरीद खाँ (आयु १५ वर्ष) आबूवक्र (आयु ४ वर्ष) अली खाँ (आयु ४ वर्ष) बहादुर खाँ (आयु ४ वर्ष) उस्मान (आयु ५ वर्ष) जीवित थे। खुसरो खाँ ने उन्हें अन्धा करने का आदेश दिया। दो बड़े लड़कों की हत्या कर दी गई तथा शेष के आँखों से सलाई फिरवा दी गई।[231]

सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के पुत्र और पौत्र राजनीतिक षड़यन्त्रों के शिकार हुए। सैय्यद सुल्तान मुहम्मदशाह के भाइयों का भी यही हाल हुथा। सुल्तान बहलोल लोदी के पुत्रों में निज़ाम, इब्राहीम खाँ, जलाल खाँ, इस्माइल खाँ, हुसैन खाँ, महमूद खाँ तथा शेख आज़म हुमायूँ ने निजाम, सिकन्दर लोदी की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा। सिकन्दर लोदी ने जलाल खाँ को जागीर में कालपी प्रदान किया और उसे १२० घोड़े, १५ हाथी, खिलअत तथा नकद धन देकर वहाँ भेज दिया।[232] जलाल व आज़म हुमायूँ का जीवन कष्टमयी रहा। इस प्रकार से बहुत ही कम राजकुमारों को गद्दी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अन्यथा अनेक राजकुमारों की दुर्दशा ही हुई।

———

४

सल्तनतकालीन मुसलमान उमरावर्ग

मुहम्मद ग़ौरी के समय से मुसलमान उमरावर्ग की संरचना प्रारम्भ हो चुकी थी। उसकी निरन्तर विजयों के कारण उसके अनेक दासों को निम्न स्तर से उन्नति करते हुए अमीर का पद प्राप्त करने का अवसर मिला। मुहम्मद ग़ौरी ने उन्हें अवसर दिया कि वे भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों को विजित करें और तुर्की साम्राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने में उसका हाथ बटाएँ। जैसे-जैसे भारतवर्ष में तुर्की योद्धाओं को क्षत्रियों के विरुद्ध सफलता प्राप्त होती रही वैसे-वैसे उमरावर्ग का विस्तार होता रहा। अमीरों के साधन बढ़ते गये और वे ही सैनिकों की भर्ती करके मुहम्मद ग़ौरी के अभियानों में उसकी सहायता करते रहे। उनकी व्यक्तिगत स्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। जिन गरीब तुर्कों के घरों में एक भी दास नहीं था वे अनेक दासों, घोड़ों, ऊँटों के मालिक हो गये। जिस व्यक्ति के पास केवल एक ही घोड़ा था वह सिपहसालार हो गया और उसके पास नौवत, नगाड़े, पताकाएँ हो गईं। वे सभी अपने पद, प्रतिष्ठा, प्रभाव एवं योग्यता के बारे में अभिज्ञ हो गये। मुहम्मद ग़ौरी ने उन्हें हिन्दुस्तान में नव-विजित प्रदेशों में नियुक्त किया, उन्हें सैनिक व दीवानी अधिकार प्रदान किये ताकि वे उन विजित प्रदेशों को अधिकृत ही नहीं वरन् उन पर प्रशासन भी कर सकें। उसने उन्हें छोटे-बड़े प्रदेश जिन्हें विलायत व अक्ता कहते थे, प्रदान किये। ११७४ ई० में उसके प्रशासक वर्ग में विभिन्न मुसलमान जातियों के अमीर थे। प्रारम्भ में उसने उमरावर्ग में ग़ौरियों व खिल्जियों को प्राथमिकता दी। ग़ौर के एक शहर के १२०० व्यक्तियों को भटिण्डा में नियुक्त किया गया। तरायन के प्रथम युद्ध के समय उसके पास खिल्जी व ग़ौर अमीर थे। ११७९-८० में मुल्तान को विजित करने के उपरान्त उसने अलीकरमख को वहाँ का वली,[1] लाहौर को ११८६ में विजित करने के बाद अली करमख को वहाँ का वली[2], ११८५ में सियालकोट में हुसैन खुरमैल[3], तबरहिन्द में मलिक जियाउद्दीन को नियुक्त किया।[4] इस प्रकार से तरायन के द्वितीय युद्ध के पूर्व केवल ग़ौरियों व खिल्जियों की नियुक्तियाँ ही भारतवर्ष में हुईं।

तरायन के द्वितीय युद्ध के उपरान्त ग़ौरियों की विजय कार्य में भूमिका नगण्य हो गई। खिल्जियों ने बिहार व बंगाल को जीता तथा तुर्कों ने अन्यत्र विजय प्राप्त

की।[५] यद्यपि ११६४ ई० में ग़ौरियों में नुसरुतुद्दीन सलारी के हाथों में हाँसी की अक्ता[६] व वहाउद्दीन महमूद व उसके भाइयों के हाथों में १२०५ में मुल्तान की आक्तएँ रही किन्तु ऐवक के नेतृत्व में तुर्कों ने ही विजय कार्य सम्पन्न किया। ऐवक ने हुसामुद्दीन उग़लवक नामक तुर्क को सर्वप्रथम कोल उसके उपरान्त अवध का गवर्नर नियुक्त किया,[७] हिज्रबुद्दीन हसन अरदव को वदायूँ व महोवा का गवर्नर नियुक्त किया,[८] अलाउद्दीन तुगरिल को ११६६ ई० में व्याना में नियुक्त किया।[६] १२०४ ई० में मुल्तान व उच्च नसीरुद्दीन एतमूर नामक तुर्क के हाथों में था।[१०] ग़जनी से भारत तक का मार्ग यल्दौज नामक तुर्क के हाथों में था।[११] इस प्रकार से ग़ौरियों के स्थान पर तुर्कों की नियुक्तियाँ भारत में की गई, जिससे तुर्की उमरावर्ग की संरचना क्रमशः हुई। किन्तु उनमें सवसे अधिक इल्वारी तुर्क ही थे। उसके सुप्रसिद्ध तुर्की सेना-नायकों में से कुतुवुद्दीन ऐवक, मलिक नासिरुद्दीन कुवाचा, मलिक वहाउद्दीन तुगरिल, मुहम्मद वख्तियार खिल्जी, इजुउद्दीन हुसैन खुरमैल आदि थे। इसके अतिरिक्त उसके अमीर वर्ग में गैर तुर्की अमीर भी थे, उदाहरणार्थ सद्र-उल-मुल्क ताजुद्दीन अली, जो कि सैय्यद था। वह राजकीय नियमों की अच्छी जानकारी रखता था। ऐवक ने रणथम्भौर अभियान पर जाते समय उसे दिल्ली का प्रशासन सम्भालने के लिये नियुक्त किया।[२]

मुहम्मद ग़ौरी ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में सिंध के उस पार के प्रदेशों को ग़ौरियों के हाथों में और भारतवर्ष में विजित प्रदेशों को मुख्यतः तुर्कों व खिल्जियों के हाथों में ही रक्खा। उसकी मृत्योपरान्त उत्तराधिकार का जब प्रश्न उठा तो उसके सभी तुर्की अमीर एक ओर हो गये और उन्होंने ग़ौरी अमीरों का विरोध करना प्रारम्भ किया। कालान्तर में दोनों गुटों में संघर्ष हुआ। तुर्की अमीरों ने सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी का कोष छीन लिया। तदुपरान्त ग़जनी के समीप ताजुद्दीन यल्दौज के नेतृत्व में तुर्कों की सेना ने ग़ौर के अमीरों को पराजित करके मार डाला। यल्दौज ने ग़जनी पर अधिकार कर लिया।[१३] भारतवर्ष का साम्राज्य ऐवक ने अपने अधिकार में कर लिया। सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी के आश्रितों व अमीरों में २ को सुल्तान की पदवी, २६ को मलिक तथा ५ को अमीर का पद प्राप्त था।[१४]

मुहम्मद ग़ौरी के वध के उपरान्त जव हिन्दुस्तान में कुतुवुद्दीन ऐवक नव-स्थापित तुर्की साम्राज्य का शासक वना तो उसे विरासत में तुर्की व ग़ैर तुर्की अमीरों का उमरावर्ग मिला। यह उमरावर्ग दो भागों में विभक्त था—(१) वे अमीर जो कि मुहम्मद ग़ौरी के दास थे, जो कि मुइज्ज़ी अमीर कहलाते थे। (२) वे अमीर जो कि ऐवक के दास थे, जो कि कुतुवी अमीर कहलाए।

इन अमीरों का प्रमुख कर्तव्य सुल्तान के कार्य में सहायता करना, उसकी शक्ति को वढ़ाने में हाथ वँटाना, साम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रशासन करना इत्यादि था। मुहम्मद ग़ौरी की मृत्योपरान्त जव भारतीय प्रदेशों की सत्ता ऐवक के हाथों में आई

और यहाँ एक स्वतन्त्र सल्तनत की स्थापना हुई तो मुइज्ज़ी व कुतुवी अमीरों का दायित्व अत्यधिक वढ़ गया। उन्होंने ऐवक को अपना शासक स्वीकार किया। वे उसके आदेशों का पालन करने लगे और नवस्थापित सल्तनत की सीमाएँ वढ़ाने में उसका साथ देने लगे। ऐवक के नेतृत्व में उमरावर्ग का क्रमशः विकास हुआ। उसकी संरचना एवं प्रकृति में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा। यह कार्य दो प्रकार से प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम, ऐवक ने तुर्की अमीरों को उनकी सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें अक्ताएँ अथवा भूमि का कुछ भाग प्रदान किया, जिससे वे अपने पदानुसार सेना रख सकें, उस क्षेत्र से राजस्व वसूल कर सकें और अपनी अक्ता में शांति एवं सुरक्षा वनाए रख सकें। दूसरे, उसने केन्द्र में कुछ अमीरों को विभिन्न पदों पर नियुक्त किया ताकि वे नवीन प्रशासनिक व्यवस्था की रूप-रेखा वना सकें तथा कालान्तर में उसका विकास कर सकें। इस काल में प्रशासन की प्रकृति मुख्यतः सैनिक होने के कारण यह कार्य लगभग अपूर्ण रहा। किन्तु अपने शासनकाल के चार वर्षों में उसने स्वतंत्र शासक के रूप में जैसा कि मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है कि उसने अपना नाम खुत्वा में पढ़वाया, उसने अपने नाम के सिक्के निकलवाए। इस प्रकार उसने सुल्तान के पद की गरिमा प्रदान की। इससे उसकी श्रेष्ठता एवं उसके श्रेष्ठ पद का आभास अमीरों को हुआ। ऐवक को उमरावर्ग का विस्तार करने का यद्यपि समय न मिला किन्तु फिर भी उसने उसे दृढ़ता प्रदान करने हेतु ताजुद्दीन यल्दौज, मलिक नासिरुद्दीन कुवाचा, मुहम्मद विन वख्तियार खिल्जी तथा अन्य अमीरों को अपने पदों पर वने रहने दिया। साथ ही साथ मुहम्मद ग़ोरी द्वारा चलाई गई अक्ता प्रणाली को उसने जारी रक्खा। अमीरों की कई श्रेणियाँ उनके अन्तर्गत क्षेत्र प्रदेश व भू-भाग से भूराजस्व से आय को ध्यान में रखकर निर्धारित की गई। कुछ अमीर वड़े प्रदेश या विलायत के अक्तादार, कुछ उससे छोटे प्रदेश के अक्तादार तथा अन्य छोटे-मोटे भू-भाग के अक्तादार नियुक्त हुए। इल्वारी तुर्कों के अतिरिक्त उसके उमरावर्ग में हब्शी भी थे। उसने कायमाज़ रूमी, जो कि सम्भवतः हब्शी था, को अवध की अक्ता प्रदान की और उसे खिल्जी मलिकों के विद्रोह को दवाने के लिए लखनौती भेजा।[१५] ऐवक ने अनेक अफ़गान को भी प्रश्रय दिया और उन्हें अमीर का पद प्रदान किया। ऐवक अभी उमरावर्ग की संरचना व संगठन तथा साम्राज्य निर्माण कार्य में लगा ही हुआ था कि उसकी आकस्मिक मृत्यु होने के कारण उसका कार्य अधूरा रह गया।

नव-स्थापित तुर्क-अफ़गान साम्राज्य के लिए उमरावर्ग के महत्व को जानते हुए सुल्तान इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम मुइज्ज़ी अमीरों, कुतुवी अमीरों व खिल्जी अमीरों के प्रभुत्व को समाप्त किया। उसने यल्दौज़ को १२१५-१६ में, कुवाचा को १२२६ तथा खिलजी अमीरों को उसी वर्ष समाप्त किया। इसी काल में उसने स्वयं तुर्की दासों को खरीद करके चिहिलगानी की स्थापना की। मिनहाज ने २५ शम्सी दासों या मलिकों का जीवन परिचय दिया है। इल्तुतमिश ने साथ ही साथ ग़ोर व खिल्जी अमीरों के अतिरिक्त, स्वतन्त्र ताज़िक या फारसी वोलने वाले अमीरों को भी एकत्र

किया। उसने भी अक्तादारी प्रथा के आधार पर उसे संयोजित करना प्रारम्भ किया। उसके समय इस्लामी देशों से अनेक मुसलमान दिल्ली आये और उनमें से अनेक विद्वान दार्शनिक, इतिहासकार, विधि के ज्ञाता, शासक और सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति थे। उनके आगमन से इल्तुतमिश का कार्य सरल हो गया। उसने तुर्की व ग़ैर तुर्की दोनों को ही अपने उमरावर्ग में विशेष स्थान दिया ताकि दोनों जातीय तत्वों में सन्तुलन बना रहे। इल्बारी तुर्कों की संख्या प्रशासन में अधिक थी। इसके विपरीत गैर तुर्की या ताज़िकों में मिनहाज-उस-सिराज के अनुसार ख्वारिज्म का राजकुमार मलिक फिरोज़शाह इल्तुतमिश, तुर्किस्तान का राजकुमार मलिक अलाउद्दीन जानी, मलिक इज्जुद्दीस हमज़ा जलील निज़ाम-उल-मुल्क, कमालुद्दीन जुनैदी वज़ीर व उसका नायब ख्वाजा मुइज-वुद्दीन आदि सभी ताज़िक थे। इसके अतिरिक्त मलिक फख़् उल मुल्क इसामी, जो बगदाद में वज़ीर था तथा जो इल्तुतमिश के शासनकाल के अन्त में आया, वह भी ताज़िक था। इस काल में ताज़िकों की अपेक्षा इल्बारी तुर्कों को ही प्रशासन में प्राथमिकता दी गई। जिसके कारण उन्हीं का प्रशासन में प्रभुत्व बना रहा। इल्तुत-मिश भी ताज़िकों की तुलना में इल्बारी तुर्कों को अपनी जाति की अभिज्ञता के कारण चाहता था। साथ ही इल्तुतमिश ने ईरान व मध्य-एशिया से आने वाले अनेक गणमान्य व्यक्तियों को उमरावर्ग में सम्मिलित किया। उसने कुबाचा को पराजित करने के बाद उसके अमीर मलिक सिनानउद्दीन छत्तीचर, जो कि एक हब्शी था, तथा जो सिंध व देवल का मुक्ता था, को भी अपने उमरावर्ग में ले लिया। प्रो० इरफान हबीब के अनुसार इल्तुतमिश ने अपने उमरावर्ग के लिए सभी स्रोतों से दास, जो कि विभिन्न जातियों के थे एकत्र किये। मिनहाज ने २५ शम्सी दासों में से १८ दासों की कबायली या प्रादेशिक उत्पत्ति के बारे में बताया है, इनमें से ६ किपचाक, ५ क़िराखिता, ३ रूमी, ३ इल्बारी, १ गरजी, १ ख्वारिज़मी थे। इन २५ दासों में से केवल हिन्दू खान ही ग़ैर तुर्क था।

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद सुल्तान रूकुनुद्दीन के शासनकाल में तुर्की अमीरों में ताजुल-मुल्क दबीर-ए-मुमलिक़, बहाउद्दीन हुसैन अशारी, किरीमउद्दीन ज़ाहिद, ज़ियाउल-मुल्क पुत्र निज़ाम-उल-मुल्क, निजामुद्दीन शफ़ीरक़नी, ख्वाजा रशीदउद्दीन मरकानी, अमीर फख़्उद्दीन दबीर तथा अनेक अन्य ताज़िक अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया गया।[१६] लेकिन फिर भी ताज़िक उमरावर्ग व प्रशासन में बने रहे। सुल्तान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों के समय उमरावर्ग बहुजातीय बना रहा। रजिया के समय हब्शी अमीरों की संख्या बढ़ी किन्तु इल्बारी तुर्कों की घृणा के कारण जब जमालुद्दीन याक़ूत हब्शी विवादास्पद बना और उसका पतन हो गया तो हब्शी अमीरों का प्रभाव कुछ समय के लिए कम हो गया। सुल्तान अलाउद्दीन मसूद के शासनकाल में वे पुनः शक्ति में आये। किन्तु केवल थोड़े समय के लिए सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के समय तक ताज़िकों तथा हब्शियों का व भारतीय मुसलमानों का प्रभाव राजनीति में कम हो जाता है या समाप्त हो जाता है और

इल्वारी तुर्कों का वोलबाला बना रहता है। बलवन ने अपने शासन काल में कई नवीन तत्वों को उमरावर्ग में प्रवेश दिया। निःसन्देह वह इल्वारी तुर्कों की श्रेष्ठता में विश्वास रखता था। फिर भी उसने नव मुसलमानों (मंगोल) में से दो अमीरों को सरिस्तादार-ए-मैमना तथा सरिस्तादार-ए-मैसर नियुक्त किया व मलिक ऐतग़ीन को भी उमरावर्ग में प्रवेश दिया।[७] यद्यपि अफगानों ने उमरावर्ग में मुहम्मद गौरी के समय से ही प्रवेश पा लिया था, किन्तु बलवन के समय उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई। बलबन उन पर विश्वास करता था। उसकी सेना में १००० मलिक अफ़गान सैनिक थे, जिन्होंने कि कोहपाया के हिन्दुओं के विरुद्ध सैनिक अभियानों में अपनी रण-कुशलता का प्रमाण दिया। उसने अनेक अफ़गानों को नव-निर्मित दुर्गों में रक्खा। इस प्रकार से इल्वारी काल में उमरावर्ग में विभिन्न जातीय तत्वों के कारण उमरावर्ग सदैव विभाजित रहा। अमीरों के विभाजन का आधार न केवल जाति थी वरन् उनके पद व श्रेणियाँ जन्म तथा सम्पत्ति भी थी।

इल्वारी काल में शासक वर्ग का दृष्टिकोण गैर तुर्की विदेशी या स्थानीय के प्रति इससे भी ज्ञात होता है कि उमरावर्ग में विभिन्न जातीय तत्वों में भेदभाव था। शासक वर्ग गैर तुर्कों में विदेशी तत्वों के प्रति सदैव उदार रहा और स्थानीय तुर्कों अथवा ताज़िकों के प्रति सदैव कठोर रहा तथा उन्हें दूर करने का प्रयास होता रहा। बरनी के अनुसार इल्तुतमिश भारतीय मुसलमानों से घृणा करता था। उसने उन व्यक्तियों को उनके निम्न परिवारों में जन्म लेने के कारण राजकीय सेवा से पदच्युत कर दिया था। वजीर निजाम-उल-मुल्क की संस्तुति पर जमाल मज़रूक को कन्नौज का **मुत्सरिफ** नियुक्त किया गया। किन्तु अजीज बहरोज़ नामक अमीर ने इस नियुक्ति पर आपत्ति प्रकट की और कहा कि निज़ाम उल-मुल्क स्वयं निम्न परिवार से हैं। इस पर छान-बीन हुई और ज्ञात हुआ कि उसका जन्म जुलाहे के परिवार में हुआ था। उस समय से उसने सुल्तान का विश्वास खो दिया। बरनी ने कुलीन वंश व निम्न वंश में भेदभाव के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। निःसन्देह निम्न जाति के लोगों के बारे में वह कहता है कि उन्हें राजकीय पदों पर नियुक्त नहीं करना चाहिए तथा अमीरों व स्वतन्त्र परिवारों में जन्में व्यक्तियों के ऊपर प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए, क्योंकि निम्न परिवारों में जन्में व्यक्तियों में केवल दोष ही दोष होते हैं, जैसे कि वे अनुदार, झूठे, कंजूस, धन गबन करने वाले, गलत कार्य करने वाले, झूठ बोलने वाले, बुरा कहने वाले, कृतघ्न, गन्दे, अन्यायी, हत्यारे, पाजी, नाटकीय स्वभाव तथा स्वर्ण-विहीन होते हैं। बरनी के विचार वास्तव में व्यक्तिगत विचार थे, जो कि उसने अन्य लोगों के मुँह से कहलवा कर उनके विचार बता दिये। सत्य तो है कि इल्बारी तुर्क स्वयं अपनी निम्न उत्पत्ति के सम्बन्ध में आवश्यकता से अधिक अभिज्ञ थे। बरनी ने उन परिस्थितियों का विवेचन नहीं किया जिनसे निजाम-उल-जुनैदी की नियुक्ति वज़ीर के पद पर हुई या किस प्रकार शुद्ध विदेशी तुर्कों के मध्य उन्नति करते-करते उसने राज्य का सर्वोच्च पद प्राप्त किया। उसकी नियुक्ति पर अन्य तुर्की

अमीरों में क्या प्रतिक्रिया हुई आदि-आदि। इन सभी विषयों पर वरनी मौन है। इल्तुतमिश स्वयं हीन भावना से ग्रस्त था। उसने एक अवसर पर कहा कि जब वह यह देखता है कि गणमान्य व्यक्ति हाथ जोड़े हुए उसकी उपस्थिति में खड़े हुए हैं तो उसे ऐसा महसूस होता है कि वह सिंहासन से उतर कर उनके हाथों व पैरों को चूम ले।[१८] उसे अपनी निम्न परिवार में उत्पत्ति का आभास था। लेकिन फिर भी तुर्कों का गुट जो कि श्रेष्ठ भावना से परिपूर्ण था व जिसमें जातीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, उनसे ऐसे कार्य करवाता रहता था जो कि उसकी इच्छा और विचारों के बिलकुल ही विरुद्ध होते थे।[१९]

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद लगभग ३० वर्षों तक तुर्क व ताज़िक अमीर के मध्य राजनीतिक शक्ति के लिए संघर्ष चलता रहा। इल्बारी तुर्कों के हाथों में ही सत्ता रही परिणामस्वरूप वे घमण्डी, दम्भी, स्वाभिमानी हो गये और अपनी ही हाँकने लगे कि 'मैं ही मैं हूँ तू कुछ भी नहीं है।' ताज़िकों के साथ उनका वैमनस्य उस समय चरम शिखर पर पहुँचा जबकि सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज के शासनकाल में तुर्की अंग-रक्षकों ने अनेक ताज़िक अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया। रज़िया के समय हब्शी अमीरों को प्राथमिकता देकर तुर्की गुट की प्रभुसत्ता को समाप्त करने का प्रयास विफल सिद्ध हुआ। लेकिन भारतीय मुसलमान उन्हें गिराने का सदैव यत्न करते रहे। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में इमादुद्दीन रैहान, जो कि भारतीय मुसलमान था, ने तुर्की गुट को कुछ समय के लिए शक्तिहीन करके वकील-ए-दर का पद अवश्य प्राप्त कर लिया। लेकिन वलवन ने तुर्की अमीरों की सहायता से उसे उखाड़ कर फेंक दिया और तुर्कों की प्रभुसत्ता पुनः स्थापित कर दी।

तुर्की कुलीन तंत्र की पुनः स्थापना के पश्चात् वलवन नायब-ए-मुमलिकत या उप-सुल्तान बन गया। धीरे-धीरे वह स्वयं शक्तिशाली व प्रभावशाली बन गया। उसने सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद से अपनी पुत्री का विवाह किया। तत्पश्चात् अवसर देखकर उसने सुल्तान के सभी पुत्रों को विष दिलवाकर इस संसार से विदा कर दिया और सुल्तान को भी मौत की नींद सुला दिया। निर्विरोध-सिंहासन पर वैठते ही उसने तुर्की कुलीन तन्त्र की ओर से आँखें फेर ली। इसी तन्त्र का सक्रिय सदस्य होने के कारण वह उसके सदस्यों के गुणों, अवगुणों, महत्वाकांक्षाओं से भली-भाँति परिचित था और वह यह नहीं चाहता था कि वे उत्तरोत्तर इल्तुतमिश काल की कहानी दुहराएँ और उसके शासन-काल में भी वही भूमिका निभाएँ। उसने अनुवांशिक एवं पारिवारिक हितों की सुरक्षा के लिए तथा इस विचार से कि उसके उत्तराधिकारी ही शासन करते रहें। तुर्की कुलीन तन्त्र के स्थान पर तुर्की नौकरशाही व ऐसे उमरावर्ग का संगठन किया जो कि उसके विचारानुसार, आदेशानुसार तथा इच्छानुसार कार्य करता रहे और उसके आदेशों का पालन करता रहे। उसने इल्तुतमिश द्वारा निर्मित चालीस गुलामों के गुट व शम्सी अमीरों को विष या कटार द्वारा राजनीतिक मंच से हटा दिया। इन

अमीरों में भटनेर, सुनाम, समाना का मुक्ता शेरखान सुन्कर जो कि चालीस गुलामों के गुट का महत्वपूर्वक सदस्य था जिसने कि मंगोलों को आतंकित कर रखा था, तथा किशलू खान, जो कि अत्यन्त योग्य और श्रेष्ठ अमीरों में था, के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्य शम्सी अमीरों तक तुर्की कुलीन तन्त्र के सदस्यों का सर्वसाधारण के मध्य या तो अपमान किया गया या उन्हें दण्ड दिया गया। इल्तुतमिश की भाँति वलवन भी अपनी निम्न उत्पत्ति के वारे में अभिज्ञ था, इसलिये वह भी भारतीय मुसलमानों से घृणा करता था और प्रशासन से दूर रखता था। उसने तुर्कों व भारतीय मुसलमानों के मध्य भेद-भाव वनाए रखा। वलवन की मृत्यु के पश्चात् भारतीय मुसलमानों ने तुर्की कुलीन तन्त्र के अन्य सदस्यों के भाग्य का निवटारा कर दिया। सुल्तान मुइज़उद्दीन कैकुवाद के वज़ीर निज़ाम-उल-मुल्क ने अमीर मलिक शाहिक, आरिज-ए-मुमालिक, मलिक तुज़की जिसके पास वरन की अक्ता थी, को वर्वाद कर दिया। उसने सुल्तान से आज्ञा लेकर अनेक गणमान्य अमीरों को मरवा दिया तथा शेष को परिवार सहित दिल्ली के वाहर निकलवा दिया। उसने वजीर ख्वाजा खातिर को अपमानित किया। इस प्रकार से मलिक निज़ामउलमुल्क के पतन के उपरान्त केवल दो तुर्की अमीर मलिक ऐतमुर कच्छन व मलिक ऐतमुर सुरखा ही शेष रहे। वे खिल्जी मलिकों के उत्कर्ष को रोक न सके। अनएव शीघ्र ही जलालुद्दीन फिरोज़ खिल्जी के नेतृत्व में खिलजी क्रान्ति हुई व वलवनी वंश का स्थान खिल्जी वंश ने ले लिया।

जलालुद्दीन फ़िरोजशाह खिल्जी के सिंहासन पर वैठने के वाद उमरावर्ग की संरचना व संगठन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। उसमें विभिन्न जातीय तत्व ज्यों के त्यों वने रहे। उसने वलवन के काल के तुर्की अमीरों को यथावत् अपने पदों पर वने रहने दिया। इल्वारी तुर्कों के प्रति कृपा दिखाने का मुख्य कारण यह था कि वे अधिक समय तक उनकी सेवा में रह चुका था। वरनी के अनुसार वह उन अमीरों जिन्होंने वलवन की सेवा की थी, के समक्ष सिंहासन पर वैठना पसन्द नहीं करता था। वह उन्हें अपने सम्मुख खड़े नहीं देखना चाहता था। यह केवल उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए था। उसने अनेक पदों पर अपने सगे-सम्वन्धी खिल्जी सम्वन्धियों को नियुक्त किया। उसके वाद उसने नव-मुसलमानों को भी उमरावर्ग में प्रवेश दिया। १२९१-९२ ई० में जव चंगेज खान के पौत्र अव्दुल्लाह ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तो जलालुद्दीन ने उसके साथ सन्धि कर ली। जलालुद्दीन फ़िरोज-शाह खिल्जी ने अपनी पुत्री का विवाह मंगोल के सरदार उलूग़ से कर दिया और अनेक मंगोल **अमीरान-ए-सादा व अमीरान-ए-हज़ारा**, जिन्होंने कि इस्लाम ग्रहण कर लिया था, को दिल्ली में वसने की अनुमति दे दी। उसने उन्हें इक्ताएँ दीं व उनके वेतन निर्धारित किए। इस प्रकार अनेक मंगोल दिल्ली के विभिन्न मुहल्लों इन्द्रपत, किलोखड़ी और ग्यासपुर में वस गये। वरनी के अनुसार इस काल में इस्लामी देशों से अनेक मुसलमान भारत में आए किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे पुराने विदेशी परिवारों को हटाकर राजनीति में

अपना स्थान नहीं बना सके। केवल मुइद जाजरमी तथा अमीर बहर सद्रउद्दीन को ही उमरावर्ग में प्रवेश करने का अवसर मिला। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के अन्तर्गत उमरावर्ग की संरचना में पुनः परिवर्तन हुआ। उसने नव मुसलमानों को धीरे-धीरे समाप्त करवा दिया। उनके स्थान पर उसने भारतीय मुसलमानों को आगे बढ़ने का सुअवसर प्रदान किया। इस काल में मलिक नायब काफ़ूर हज़ार दीनारी, खुसरो खान, मलिक शाहीन, मलिक यकलाखी, मलिक अहमद झीतम को खिल्जी अमीरों की बढ़ती हुई शक्ति को सन्तुलित करने के हेतु नियुक्त किया गया। इसी प्रकार उसने शरफ़ क़ायूनी को दीवान-ए-विज़ारत के पद पर नियुक्त कर विदेशी तत्वों को राजनीति में आगे बढ़ाने की चेष्टा की। उसने अफ़ग़ान तत्व को भी प्रश्रय प्रदान किया। मलिक ईख्तया-रुद्दीन यल अफ़ग़ान का उत्कर्ष इसी काल में हुआ। संक्षेप में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासन काल में एक ओर तो उमरावर्ग में भारतीय मुसलमानों, विदेशी अमीरों तथा अफ़ग़ानों को स्थान मिला तो दूसरी ओर खिल्जी अमीरों व नव मुसलमानों का ह्रास हुआ। इस काल में किसी एक जाति का प्रभाव राजनीति में नहीं रहा। शासक-वर्ग को व्यापक आधारशिला प्रदान की गई।

खिल्जी काल में तुर्की कुलीन तन्त्र का वह उमरावर्ग जो कि बराबर लोगों को भयभीत व आतंकित रखने में विश्वास करता था तथा जो कि तत्कालीन समाज के सभी वर्गों में जातीय उपद्रव उत्पन्न करता था, की शक्ति समाप्त हो गई। खिल्जी सुल्तानों ने उन्हें शक्तिहीन बनाकर विवश कर दिया कि वे अन्य उभड़ते हुए जातीय तत्वों के साथ सामाजिक तालमेल बैठाएँ। तुर्की कुलीन तन्त्र जो खिल्जी से पूर्व शक्ति का उपयोग करता रहा और जिसका तीस वर्षों तक राजनीतिक एकाधिकार बना रहा, उसके विरुद्ध खिल्जियों की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप उमरावर्ग की संरचना में कुछ अन्तर आया और गैर तुर्की तत्वों को ऊपर उठने का अवसर मिला। ग़ैर तुर्की तत्वों के उत्कर्ष का परिणाम यह हुआ कि जातीय श्रेष्ठता की भावना शनैः शनैः अमीरों के हृदय से दूर होने लगी।

तुग़लक वंश की स्थापना के साथ ही जातीय श्रेष्ठता की भावना का कुछ सीमा तक अन्त हो गया। तत्कालीन आन्तरिक परिस्थितियाँ ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म दे चुकी थीं कि उनके प्रभाव में कोई भी एक जातीय तत्व राजनीति में अपना एकाधिकार नहीं स्थापित कर सकता था। तुग़लक स्वयं विदेशी थे। खिल्जी काल से पूर्व उनमें अभिजात वर्ग के कोई चिह्न न थे। दूसरे राजनीति में शक्ति में आने के लिए उन्हें मुख्यतः खिल्जी अमीरों के सहयोग व समर्थन पर ही निर्भर रहना पड़ा और तीसरे खिल्जियों की भाँति उन्होंने भी प्रशासन को व्यापक आधार पर रखने की चेष्टा की। तुग़लक जो कि करूनाह तुर्क थे, जिन्होंने कि जाट स्त्रियों से विवाह किया तथा जिनकी धमनियों में विदेशी व स्वदेशी रक्त प्रवाहित हो रहा था, ने उमरावर्ग में अफ़गान, विदेशी, हिन्दू, मंगोल, खुरासानी व अरब जातीय तत्वों को समुचित स्थान

दिया। गयासुद्दीन तुगलक ने मलिक मुख अफगान व उसके छोटे भाई को प्रश्रय दिया। उसने अपने उमरावर्ग गुलचेहरा हिन्दू को भी रक्खा। मुहम्मद तुग़लक ने भारतीय मुसलमानों व हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त कर रक्त की शुद्धता के सिद्धान्त को सदैव के लिए दफना दिया। उसने एक संगीतज्ञ के पुत्र नजीवा को गुजरात, मुल्तान व बदायूँ के प्रान्त सौंपे और उसे उच्च पद पर नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त उसने अज़ीज खम्मार और उसके भाई फिरोज़ हज्जाम, मनका रसोइये, मसूद खम्मार (कलाल), लाध्धा माली तथा अनेक निम्न परिवारों में उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों को अक्ताएँ प्रदान कीं। उसने एक जुलाहे के पुत्र शेख बाहू को अपने निकट रहने का सम्मान प्रदान किया, पीरा माली को दीवान-ए-वज़ारत सुपुर्द किया और उसे मलिकों, अमीरों, वलियों तथा मुक्तों का मुखिया बना दिया। उसने किशन बाज़ार इन्दरी को अवध का प्रान्त दिया। इसी प्रकार गुजरात में जहाँ खान व मलिकों की नियुक्तियाँ होती थीं वहाँ उसने मुकबिल को नियुक्त किया। उसने अजमेर में नुमरा जाति के एक व्यक्ति की नियुक्ति की। इसके अतिरिक्त जो भी योग्य व्यक्ति विदेशों से आए उन्हें भी उमरावर्ग में प्रवेश देने की चेष्टा की और उन्हें प्रान्तीय शासक, न्यायाधीश व मन्त्री भी नियुक्त किया। इन विदेशियों में खुरासानियों की संख्या अधिक थी। संक्षेप में सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल में उमरावर्ग की संरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यदि बरनी के कथनों की सार्थकता पर विश्वास कर लिया जाए तो निःसन्देह इस काल में निम्न जाति के लोगों को पहली बार उच्च पदों पर आसीन होने व उमरावर्ग में प्रवेश करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसका विरोध न केवल उल्माओं ने वरन् मुसलमान समाज के अन्य वर्गों ने भी किया और ऐसे निम्न जाति के व्यक्तियों को हटाने की चेष्टा भी की गई।

मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल में विदेशी अमीरों में मलिक अलाउलमुल्क फसहिउद्दीन खुरासानी, अजदउद्दीन शवानक़री, शेख जादा इस्फ़हानी, शेख जादा दमिश्की, शेख जादा निहावन्दी, शेख जादा विस्तामी, मलिक संजरबदख्शानी आदि थे। अफगान अमीरों में मलिक खट्टाह अफगान, जलहू अफगान, तुग़ान यल अफ़गान, बहराम अफगान, मण्डी अफ़गान तथा मलिक शाहू लोदी आदि थे।[२०] हिन्दुओं में रतन जिसे सुल्तान ने आज़िम उस सिंध की उपाधि दी थी, गुलचेहरा क़रा जिसे सुल्तान ने देवगिरि का नायब वज़ीर नियुक्त किया था, बहारन जो कि गुलबर्गा का मुक्ती था, उमरावर्ग में थे। इस काल में मंगोलों ने भी धन व सम्मान प्राप्त किया। उनमें से अनेक को सेना में उच्च पद प्राप्त हुए। उनमें से एक का नाम कलमी था।[२१] संक्षेप में मुहम्मद तुग़लक के उमरावर्ग में भारतीय मुसलमान, खुरासानी, अरबी, अफ़गान, हिन्दू आदि जातीय तत्व थे जिसके कारण उमरावर्ग को व्यापक बनाने की परम्परा बनी रही।

सुल्तान फिरोज़शाह के शासनकाल में उमरावर्ग में विभिन्न जातीय तत्वों की

स्थिति में थोड़ा परिवर्तन हुआ। उसने किवाम-उल-मुल्क खाने जहाँ आज़म हुमायूं जो कि वास्तव में तिलंगाना का हिन्दू था, को वजीर नियुक्त किया। उसने इमाद-उल-मुल्क शब्बीर सुल्तानी, जो एक गुलाम था, को ५००, सैनिकों तथा पहलवानों का सरदार नियुक्त किया। सुल्तान के ही आदेश से अनेक भारतीय मुसलमान जो कि खान व मलिक थे, राजकीय सेवा में भर्ती हुए। उसने मुहम्मद बिन तुगलक की भाँति अफ़गानों को उमरावर्ग में रक्खा। उसकी सेवा में मलिक अफगान, मलिक दाऊद खान अफ़गान तुगलकपुर का मुक्ती, मुहम्मदशाह अफगान, मलिक बल्ली अफ़गान और मलिक शाहू अफ़गान का पुत्र यासीन अफ़गान थे।[२२] उनके अतिरिक्त मलिक वीर अफ़गान और मलिक खिताब अफ़गान भी उसकी सेवा में थे।[२३] ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में विदेशी मुसलमानों ने उत्तरी भारत में आना बन्द कर दिया था या वे आते रहे हों तथा राजकीय सेवा में प्रवेश करने के इच्छुक न रहे हों। इसी कारण सुल्तान फिरोज-शाह तुग़लक के शासन-काल में ईरानी व खुरासानी, बल्खी व बदख्शानी देखने को नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार से केवल रायभीरन भट्टी को छोड़कर कोई हिन्दू उसकी सेवा में न था। हिन्दुओं को उमरावर्ग में न रखने का कारण उसकी धर्मान्धता नहीं वरन् हिन्दू अमीरों के विरुद्ध पिछले शासनकाल में प्रतिक्रिया थी। वह यह नहीं चाहता था कि वह हिन्दुओं को उच्च पद पर नियुक्त करे और मुसलमान उनके विरुद्ध विद्रोह करें। उसने मंगोलों को भी उमरावर्ग से पृथक नहीं रक्खा। उसके समय में दो मंगोल कबतग़ा अमीर मेहमान और मलिक मुअज्जम अमीर अहमद थे। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है उसके उमरावर्ग में उन अमीरों की संख्या अधिक थी जिनके पूर्वज भी राजकीय सेवा में थे, क्योंकि उसने अपने काल में वंशानुगत पर विशेष बल दिया। इसके अतिरिक्त दासों के मामलों में योग्यता व निष्ठा तथा स्वामिभक्ति पर विशेष ध्यान देते हुए उसने उनमें से कुछ को अमीर का पद देकर उमरावर्ग में स्थान दिया। अफीफ के अनुसार सुल्तान का प्रत्येक दास सुल्तान था और उनके पास सैनिक हाथी व छत्र थे। सुल्तान फिरोजशाह की मृत्यु के उपरान्त वे ही शासक-वर्ग का प्रमुख भाग बन गये। उस समय केवल दो ही जातीय तत्व, दास व अफगान ही उमरावर्ग में रह गये, शेष यदि थे भी तो उनका कोई महत्व न था।

बलबन के समय से उत्तरी भारत में अफगानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। उत्तरोत्तर सुल्तान फिरोजशाह के शासनकाल में जब सल्तनत की बागडोर उसके निकम्मे-अयोग्य उत्तराधिकारियों के हाथों में आई तो सर्वप्रथम उसके दासों ने तत्पश्चात् अफगान अमीरों ने राजनीति में भूमिका निभाई। सैय्यद शासक तो पूर्णतः अफगान अमीरों पर ही निर्भर थे। सैय्यद वंश के पतन में अफगान अमीरों का ही हाथ था। अब तक मुसलमान अमीरों के मध्य अफगानों ने अपना उपयुक्त स्थान बना लिया था। सुल्तान बहलोल लोदी के नेतृत्व में प्रथम अफगान साम्राज्य की स्थापना होते ही अफगानिस्तान के पश्तो भाषा वाले क्षेत्र से अनेक अफगान भारत आये और उन्होंने यहाँ अनुदान में भूमि, जागीरें, पद व प्रतिष्ठा प्राप्त की। यह अफगान विभिन्न

कवायली जातियों, नियाज़ी लोदी, सूर, खक्खर, कर्रानी, फारूमूली, सरवानी, दिलज़ाक के थे। बहलोल लोदी ने अपने देश रोह से अफगानों को अपनी सहायता के लिए निमन्त्रित किया और वे उसके निमन्त्रण पर टिड्डियों व चींटियों के झुण्ड की भाँति यहाँ आये और स्थायी रूप से बस गये। बहलोल लोदी ने उन्हें जागीरें और महत्वपूर्ण पद प्रदान किये। उन्होंने उमरावर्ग में प्रवेश किया। इस समय उमरावर्ग में मुख्यतः अफगान व गैर अफगान अमीर ही थे। गैर अफगान मुसलमान अमीरों में सैय्यद शम्सुद्दीन, महमूद मेवाती, अली खान तुर्क बच्चा, अहमद खान शम्सी आदि थे। गैर अफगान अमीरों के लिए कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं था कि उन्हें जागीर न दी जायें या उनकी नियुक्तियाँ उच्च पदों पर न की जाएँ। उसके शासन-काल में पुराने गैर अफगान अमीरों में अहमद खान मेवाती, रुस्तम खान तुर्क बच्चा, मुबारक खान, मलिक फिरोज़ तुर्क, ख्वाजा असार तथा अनेक सैय्यद व कम्बो अमीर थे। उसने उन्हें उनके पदों पर ज्यों का त्यों बना रहने दिया। उदाहरणार्थ, अहमद खान के पास खित्ताए-मेवात, रुस्तम खान तुर्क बच्चा के पास कोल, इक़बाल खान के पास बारी, मुबारकखान के पास साकेत रहने दिया गया। उसके काल में हिन्दू सरदारों को भी उमरावर्ग में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। राय दूदू, राय सकीत सिंह (पुत्र राय त्रिलोक चन्द्र), धोलपुर के राय तथा ग्वालियर के राय मानसिंह उसके प्रतिष्ठित अमीरों में से थे। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय उमरावर्ग की संरचना में कुछ परिवर्तन हुए। नये सुल्तान ने योग्यता तथा कुलीन परिवार में जन्म को विशेष महत्व दिया। रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी के अनुसार वह सर्वप्रथम आवेदक के वंश के बारे में पूछता था उसके बाद उसे अक्ता प्रदान करता था। उसके समय में भी उमरावर्ग में अनेक जातीय तत्व थे। अफगान अमीरों के अतिरिक्त उसमें हिन्दू अमीरों में से राय गणेश, प्रेम देव, मलिक रूपचन्द, जगरसेन कछवाहा आदि थे। उसमें भारतीय मुसलमान व स्थानीय सैय्यद अमीर, कम्बो तथा शेख ज़ादे भी थे। इसी प्रकार से सुल्तान इब्राहीम लोदी की भी उमराओं के प्रति यही नीति थी। उसने भी विभिन्न जातियों तत्वों को उमरा-वर्ग में स्थान दिया।

इस प्रकार से उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इल्बारी, खिल्जी, तुग़लक, सैय्यद व लोदी काल में बराबर उमरावर्ग की संरचना व प्रकृति बदलती रही। उसमें यदा-कदा नवीन जातीय तत्व प्रवेश करते रहे जिनसे उसे व्यापक बनाने में सुगमता होती रही। इस काल में उमरावर्ग कभी सजातीय व सभागी नहीं रहा।

अमीरों की विभिन्न श्रेणियाँ

इस काल में कुलीन तन्त्र के सदस्यों को एक सैनिक पद दिया जाता था, जो कि उसके सामाजिक स्तर को ही नहीं वरन् प्रशासन में उसके स्थान को इंगित करता था। सैनिक पद कई श्रेणियों में विभाजित थे, जैसे कि **सरखैल, सिपहसालार, अमीर, मलिक** और खान। बरनी के अनुसार एक **सर-ए-खैल**, १० अश्वारोहियों का सरदार,

एक **सिपहसालार** १० सर-ए-रवैलों का सरदार, एक अमीर १० सिपहसालारों का सरदार, एक मलिक १० अमीरों का सरदार तथा एक खान दस मलिकों का सरदार हुआ करता था।[२४] शिहाबुद्दीन अलउमरी के अनुसार अमीरों की कई श्रेणियाँ जैसे **खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार** होती थी। तत्पश्चात् अनेक अधिकारी वर्ग होते थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की सेवा में ८० खान थे।[२५] इस प्रकार से कुलीन तन्त्र में कई श्रेणियाँ होती थीं। लेकिन कभी-कभी उनके कार्य उनकी श्रेणियों के अनुसार नहीं होते थे। इस काल में किसी भी व्यक्ति की उच्च पद पर उन्नति धीरे-धीरे ही हुआ करती थी। किसी भी दास, जो कि सैनिक तन्त्र में निम्न पद ग्रहण करके प्रवेश करता था, उसकी उन्नति भी धीरे-धीरे ही हुआ करती थी, उदाहरणार्थ—ताजुद्दीन संजर एक खरीदा हुआ दास था। सर्वप्रथम **चश्नीगीर** का पद दिया गया, उसके पश्चात् **अमीर-ए-आखूर** का पद और अन्त में कोहराम की अक्ता प्रदान की गई।[२६] मलिक सैफुद्दीन ए-वक-ए-वक-युगानात को इल्तुतमिश ने खरीदा था। उसे सर्वप्रथम **अमीर-ए मजलिस** नियुक्त किया गया और बाद में उसे सिरसौती की अक्ता प्रदान की गई।[२७] मलिक नुसरतउद्दीन तयासी मुइज्जी को मुहम्मद गौरी ने खरीदा था। इल्तुतमिश ने उसे जिन्द, बरवाना तथा हाँसी का मुक्ता नियुक्त किया।[२८] मलिक इज्जुद्दीन तुगरिल तुग़ान खान को इल्तुतमिश ने खरीदा था। उसने उसे अपना **साक़िए-खास** नियुक्त किया, उसके बाद उसे **दावातदार** नियुक्त किया। तदुपरान्त उसे **चाश्नीगीर** व **अमीर-ए-आखूर** नियुक्त किया और उसके बाद उसे बदायूं का मुक्ता नियुक्त किया। उसने मुक्ता का पद लगभग ३० वर्ष की सेवा के बाद प्राप्त किया।[२९] मलिक कमरुद्दीन क़ीरान तिमुर खान को इल्तुतमिश ने असदुद्दीन मंगली से ५०,००० जीतल में खरीदा था। सुल्तान ने उसे **अमीर-आखूर** का पद दिया। रज़िया के काल में उसे कन्नौज मुक्ता नियुक्त किया गया।[३०] मलिक हिन्दू खाँ मुबारक को इल्तुतमिश ने मोल लिया और उसे **खज़ीनेदार** नियुक्त किया। उसके बाद उसे यूज़बान (सुल्तान के शिकारी चीतों की देखभाल करने वाला अधिकारी) नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् वह **मशालदार** नियुक्त हुआ। रज़िया ने उसे उच्च की क़िले की **विलायत** प्रदान की।[३१] मलिक इख्तियारउद्दीन ऐतगीन को भी इल्तुतमिश ने खरीदा था। उसे सर्वप्रथम **सरजानदार** नियुक्त किया गया और उसके बाद उसे मन्सूरपुर की अक्ता प्रदान की गई।[३२] इसी प्रकार से मलिक इख्तियारुद्दीन कराकश खाँ ऐतग़ीन जो कि इल्तुतमिश का साक़ी था, को कई वर्ष सेवा करने के उपरान्त बरीहून व दरंगवान की अक्ता दी गई।[३३] इसी प्रकार से बलबन, जलालुद्दीन फ़िरोज खिल्जी, गयासुद्दीन तुग़लक आदि ने अपना जीवन निम्न पदों से प्रारम्भ किया और अन्ततोगत्वा अपनी योग्यता, स्वामिभक्ति, वीरता, साहस और बुद्धिमत्ता का परिचय देकर अमीर से शासक बन गये। कोई भी अमीर यदि उसमें योग्य हो या वह प्रभावशाली हो और वह अन्य लोगों की श्रद्धा उपार्जित करता हो तो वह शासक बन सकता था। यदि उसने अन्य अमीरों के हृदय को जीतने और अपने अन्तर्गत सैनिकों का समर्थन प्राप्त करने

की क्षमता होती थी तो वह गद्दी को अधिकृत कर सुल्तान बन सकता था। सल्तनत काल में निरन्तर अनुवांशिक परिवर्तन इसका प्रमाण है। इस प्रकार से शाही सेवा में विभिन्न जातीय तत्वों के लिए उन्नति करने के लिए अनेक अवसर थे। कोई भी व्यक्ति निम्न पद से अपना जीवन प्रारम्भ कर उच्च से उच्च पद पर पहुँच सकता था।

अमीरों के पद एवं अक्ताएँ

अमीरों को नक़द वेतन देने के स्थान पर उन्हें अक्ताएँ दी जाती थीं। अक्ताओं का क्षेत्र एक समान न होता था। वह एक परगना या उससे कम सरकार या सम्पूर्ण प्रान्त अथवा प्रदेश भी हो सकती थी। अक्ता की आय को ध्यान में रखकर ही वह अमीरों के पद, सैनिक उत्तरदायित्व इत्यादि के अनुसार ही जाती थी। अक्ता ही अमीरों की आय एवं शक्ति का स्रोत हुआ करती थी। अक्ताओं का निरन्तर हस्तान्तरण होता रहता था। यद्यपि सिद्धान्त में अक्ताएँ अनुवांशिक नहीं होती थीं, किन्तु कभी-कभी अपवाद के रूप में अक्तादार की मृत्योपरान्त उसकी अक्ता उसके पुत्रों या सम्बन्धियों को प्रदान कर दी जाती थी। चूँकि अमीरों को अक्ताएँ सुल्तान से ही मिलती थीं। अतएव वे उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। सुल्तान को उनसे अक्ता वापस लेने और उन्हें पदच्युत करने का भी अधिकार था। अतएव जब तक अमीर सुल्तान के प्रति निष्ठावान बना रहता था, तभी तक उसके पास अक्ता रहती थी। अमीरों को अक्ता के साथ-साथ विभिन्न राजकीय पद भी मिलते थे। शिहाबुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि यदि अमीरों की अक्ता में वृद्धि नहीं होती थी तो उन्हें घटाया भी नहीं जाता था। उसके अनुसार खान, मलिकों, अमीरों तथा इस्फहालाओं को अक्ताएँ दी जाती थीं, जिनका आंकलित भू-राजस्व राजकीय प्रपत्रों में दी गई धनराशि से कम ही होता था। यदि अक्ता का राजस्व आंकलित राशि से अधिक नहीं होता था तो उससे कम भी नहीं होता था। कुछ अक्तादारों को आंकलित राजस्व की राशि से दुगना धन मिलता था।[२४] ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में अक्तादारों को अपनी अक्ता से जो आय होती थी वह उन्हीं के पास रहने दी जाती थी। इस सम्बन्ध में सुल्तान सिकन्दर लोदी ने एक विशेष आदेश दिया कि जब किसी को जागीर दी जाय, जागीर देने के उपरान्त उसका वेतन निर्धारित किया जाए। इस प्रकार से अमीरों को वेतन के अतिरिक्त जागीरें भी दी जाने लगीं। यही नहीं यदि जागीर प्राप्त होने के बाद उसकी आय में जितनी भी वृद्धि होती थी वह सम्पूर्ण धनराशि उसी के पास रहने दी जाती थी।[२५]

अधिकांश अमीर प्रशासन में अपना जीवन निम्न पद से प्रारम्भ करते थे और धीरे-धीरे उनकी पदोन्नति करके वे अक्तादार तथा पदाधिकारी बना दिये जाते थे।[२६]

उपाधियाँ

निजाम-उल-मुल्क तूसी ने सियासतनामा में उपाधियों के सम्बन्ध में लिखा है कि सुल्तान व खलीफा बड़ी उदारतापूर्वक उपाधियाँ प्रदान करते हैं, जो वस्त बड़ी

मात्रा में उदारतापूर्वरक प्रदान की जाती है उसका मूल्य घट जाता है। प्रशासन का सिद्धान्त यह होना चाहिये कि उपाधियाँ प्रदान करते समय वह प्रत्येक का पद और उसके महत्व को ध्यान में रक्खें ताकि सभी पदाधिकारियों के मध्य अन्तर दृष्टिगोचर हो। इसके अतिरिक्त एक ही समय में किन्हीं दो व्यक्तियों को एक ही प्रकार की उपाधियों से सम्मानित नहीं किया जाना चाहिये।[३७] तूसी के द्वारा प्रतिपादित नियमों को ध्यान में रखकर ही दिल्ली के सुल्तानों ने अपने अमीरों को समय-समय पर उपाधियाँ प्रदान कीं।[३८] अमीरों को पदवियाँ प्रदान करने से सम्बन्धित कुछ नियम थे। सर्वप्रथम पदवियाँ केवल सुल्तान ही प्रदान कर सकता था। दूसरे इस काल में अमीरों के कार्य-काल की अवधि में केवल एक बार ही पदवी देने का नियम था। तीसरे, पदवी प्राप्त होने के उपरान्त अमीर अपने नाम से नहीं वरन् पदवी से जाना जाता था। चौथे, अपवाद के रूप में कभी-कभी सुल्तान अमीर की मृत्यु हो जाने पर उसकी पदवी उसके पुत्र को दे दिया करता था, अन्यथा वह पदवी वापस ले ली जाती थी। पाँचवें, कुछ पदवियाँ जैसे कि निज़ाम-उल-मुल्क, सद्र-ए-जहाँ, खान-ए-जहाँ इत्यादि वज़ीर तथा अन्य पदों को सुशोभित करने वाले व्यक्ति के लिए आरक्षित रहती थी। इस काल में अपवाद के रूप में ही केवल पदवी के साथ खिलअत तथा अन्य वस्तुएँ दी जाती थीं, अन्यथा अमीरों को केवल पदवी देकर ही सम्मानित किया जाता था।

सम्मान व आदर

सुल्तान अपने अमीरों को विविध प्रकार से सम्मानित करते थे। वे उन्हें उपाधियाँ देकर ही नहीं वरन् उन्हें नकद धन, आभूषण, खिलअतें, वस्त्र तथा विशिष्ट सम्मानसूचक चिन्ह जैसे कि लाल छत्र, पताकाएँ, घोड़े तथा हाथी देकर भी सम्मानित किया जाता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मलिक नायब काफ़ूर को लाल छत्र प्रदान किया।[३९] उसने देवगिरि के शासक राजा चंद्रदेव को भी छत्र प्रदान किया।[४०] कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिलजी ने खुसरो खान को दक्षिण अभियान पर भेजते समय उसे छत्र प्रदान किया।[४१] ग्यासउद्दीन तुग़लक ने बहादुरशाह बूरा को सुनार गाँव देते समय उसने उसे ५ छत्र प्रदान किये।[४२] उसने लखनौती के शासक सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद को पराजित करने और उसके द्वारा अधीनता स्वीकार किये जाने पर उसे छत्र व दूरबाश प्रदान किया।[४३] इब्नबतूता ने लिखा है कि दिल्ली के सुल्तान शीत तथा ग्रीष्म ऋतु में दो बार अपने अमीरों को खिलअतें प्रदान करते थे।[४४] मुहम्मद तुग़लक अपने अमीरों को ज़ीन सहित घोड़े, खिलअतें, मेहराबी खिलअतें, जवाहरातों से जड़ी हुई खिलअतें, क़ुरान इत्यादि प्रदान किया करता था।[४५] फिरोजशाह तुग़लक के काल के सम्बन्ध में जियाउद्दीन बरनी ने लिखा है कि उसने समस्त मलिकों को छत्र, दूरबाश प्रदान करके सम्मानित किया[४६], जो कि ठीक नहीं प्रतीत होता है क्योंकि छत्र व दूरबाश दोनों ही राजचिन्ह थे। फिरोज़शाह तुग़लक ने तातार खाँ को मखमल

का छत्र प्रदान किया। उस छत्र में सुनहरी छुगा के स्थान पर सुनहरा मोर बना हुआ था, जो कि विशेषकर सुल्तान के छत्र पर लगा रहता था।[३७] उसने नायब वज़ीर किवाम-उल-मुल्क को सुनहरी ज़री के काम के तकिये देकर सम्मानित किया और खुदावन्द ज़ादा क़िवामुद्दीन तथा अन्य अमीरों को भी छत्र प्रदान किये।[३८] इस प्रकार से सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के शासन काल तक पदवियों, पताकाओं, छत्र व दूरवाश इत्यादि अमीरों को प्रदान करके उन्हें सम्मानित करने की परम्परा बन चुकी थी।

सैय्यद व लोदी शासकों ने अपने किसी भी अमीर को ,विशिष्ट सम्मानसूचक चिन्हों से सम्मानित न किया। वे केवल अपने अमीरों को उपाधियाँ देकर ही सम्मानित करते रहे।[३९]

खानों, मलिकों एवं अमीरों के अधिकार

इस काल में केवल कुछ ही अमीरों को सुल्तान की ओर से कुछ विशिष्ट अधिकार मिलते थे।[४०] यह विशिष्ट अधिकार अमीर की प्रतिष्ठा में वृद्धि कर दिया करते थे। सुल्तान मुइज़ुद्दीन बहरामशाह के शासनकाल में जब इख्तासरुद्दीन एतग़ीन नायब नियुक्त हुआ तो उसने सुल्तान की बहन से विवाह कर लिया। तत्पश्चात् उसने तेहरी नौबते बजवाना प्रारम्भ कर दिया और वह अपने महल के द्वार पर हाथी रखने लगा।[४१] इसी प्रकार से सुल्तान अलाउद्दीन मसूदशाह के शासन में वज़ीर निज़ामुल-मुल्क मुहाज़बुद्दीन अपने द्वार पर हाथी रखने लगा और नौबत बजवाना प्रारम्भ किया।[४२] सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने उलुगखान बलबन को सफेद छत्र प्रदान किया, जिसका प्रयोग केवल सुल्तान ही कर सकता था।[४३] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने मलिक काफ़ूर को लाल छत्र व दूरवाश प्रदान किया और उसे उपयोग करने का अधिकार दिया।[४४] शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार खानों, मलिकों व अमीरों को पताकाएँ लेकर चलने व सवारी करने का अधिकार था। खान अधिक से अधिक ८ पताकाएँ तथा अमीर कम से कम ३ पताकाएँ ले जा सकता था। अपने निवास स्थान पर खान १० कोतल घोड़े व अमीर अधिक से अधिक २ कोतल घोड़े रख सकता था।[४५] मुहम्मद तुग़लक ने सुनारगाँव देते हुए बहादुरशाह बूरा को पाँच छत्र प्रदान किये।[४६] दिल्ली के सुल्तान अपने विशिष्ट अधिकारों के बारे में सदैव सचेत रहते थे और यह प्रयास करते थे कि उन विशिष्ट अधिकारों का प्रयोग अमीर न करें।

अमीरों का निजी दरबार

सुल्तान की भाँति अमीर भी अपना दरबार लगाया करते थे। इब्नबतूता ने सुल्तान के अमीर कुतुब-उल-मुल्क के दरबार का विवरण दिया है। उसके अनुसार वह चबूतरे पर दरबार लगाता था। उस चबूतरे पर कालीन बिछे थे और जिस पर उसके समीप काज़ी, सालार तथा खतीब बैठते थे।[४७]

अफीफ ने खान-ए-जहाँ के सम्बन्ध में लिखा है कि प्रतिदिन वह मसनद पर बैठ कर अक्ताओं के पराधिकारियों का हिसाब देखा करता था। सुल्तान फ़िरोज़-शाह की अनुपस्थिति में दिल्ली मे उसकी सवारी बड़े शान से निकलती थी।[५८] सुल्तान सिकन्दर लोदी का अमीर मियाँ सुल्तान फारमूली जब दरबार करता था तो उसके सैनिक उसका अभिवादन करने के लिए आते थे।[५६]

अमीरों की आय के स्रोत

इस काल में अमीरों की आय के अनेक स्रोत थे। दिल्ली सल्तनत के प्रारंभिक वर्षों में अधिकांश अमीर, जिन्हें कि देश के विभिन्न भागों में अक्ताएँ मिली हुई थीं, अक्ताओं से वसूल किये जाने वाले भू-राजस्व पर ही नहीं वरन् निकटवर्ती प्रदेशों पर धावा बोल-कर वहाँ लूटमार कर धन एकत्र कर लिया करते थे। उनके अभियानों का मुख्य लक्ष्य दास व धन को प्राप्त करना ही होता था। सुल्तान के साथ अभियानों पर जाने पर भी उन्हें लूटमार करने का अवसर मिलता था और युद्धों में विजयी होने पर उन्हें लूट में से खम्स के रूप में १/४ भाग मिलता था। इस प्रकार छापामार युद्ध तथा अभियान दोनों ही उनकी आय के स्रोत थे। इसके अतिरिक्त अपनी अक्ताओं से या अपने पदानुसार उन्हें उपहार प्राप्त करने का भी अधिकार था। वे स्थानीय राजाओं, रायाओं, रैय्यतों तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों में उपहार लिया करते थे जिनसे उनकी आय में वृद्धि होती रहती थी। क्योंकि उपहार लेने के सम्बन्ध में राज्य की ओर से कोई नियम न था, अतएव किसी भी मात्रा में उसे स्वीकार करने की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। कभी-कभी यही उपहार घूस का रूप ग्रहण कर लिया करते थे। उदाहरणार्थ, इल्तुतमिश के काल में अमीर रिश्वत लिया करते थे। वे नायब-अर्ज़-ममालिक के कार्यालय से कर्मचारियों के लिये शराब, बकरे, भेड़े, चिड़ियाँ, कबूतर, घी, तेल, अनाज भेजकर अपनी अक्ताओं का हस्तान्तरण नहीं होने देते थे।[६०] बलबन रवाते अर्ज़ एमादउलमुल्क की आय का मुख्य स्रोत रिश्वत थी। उसी आय से वह अपव्यय करता था।

अमीरों को सुल्तान की ओर से नकद धन भी उपहार में मिलता था जो कि उनकी आय का अतिरिक्त स्रोत हो जाती थी। इब्नबतूता ने उपहार के नकद धन के सम्बन्ध में लिखा है हिन्दुस्तान के यह प्रथा थी कि जिसको जितना धन पुरस्कार में मिलता है उसमें से उसका १०वाँ भाग काट कर दिया जाता था। यदि किसी को १०,०००० का आदेश हो तो ६०,०००० मिलता था। यदि १०,००० का आदेश हो तो ६००० मिलता था।[६१] मुहम्मद तुग़लक ने अज़ीज़ खम्भार को धार की विलायत प्रदान की व कई लाख तन्के प्रदान किये।[६२] उसने मलिक उल-तुज्जार शिहाबुद्दीन को खम्भायत की अक्ता प्रदान की और बाद में नेहलवाला प्रदेश से ३०,००० दीनार दिलवाये।[६३] इब्नबतूता को उसने बार-बार धन दिया।[६४]

अमीरों के वेतन के सम्बन्ध में मिनहाज़ मौन हैं। किन्तु अमीर राज्य की जो भी सेवा करते थे उन्हें उसके लिए अक्ताएँ मिलती थीं। जितना ऊँचा पद होता था उतनी बड़ी अक्ता उन्हें दी जाती थी। अक्ताओं से अमीरों की अत्यधिक आमदनी होती थी। मिनहाज़ तथा वरनी के ग्रन्थों से पता चलता है कि कभी-कभी अमीर लाखों तन्के उपहार में अपने आश्रितों को दे दिया करते थे और ऋणी हो जाते थे। इससे मालूम होता है कि अमीरों को अत्यधिक धन मिलता था। मिनहाज के अनुसार सुल्तान इल्तुतमिश के शासनकाल में सरजानदारों का वार्षिक वेतन ३०,०००० जीतल था।[६५] वलवन के सीस्तानी अंगरक्षकों का वेतन ६०००० से ७०००० जीतल था।[६६] इससे वड़े-वड़े अमीरों के वेतन का अनुमान लगाया जा सकता है। अमीर खुसरो के पिता सैफुद्दीन महमूद, जो कि इल्तुतमिश व वलवन की सेवा में था, को प्रतिवर्ष १२०० टंका वेतन में मिलते थे।[६७] विरंजतन तथा हथियापायक नामक कोतवालों को प्रतिवर्ष, १,००००० जीतल वेतन में मिलते थे।[६८]

अमीरों को अक्ताओं का राजस्व वेतन दिये जाने की परम्परा सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में ज्यों की त्यों वनी रही, किन्तु कभी-कभी सुल्तान अमीरों का वेतन भी निर्धारित कर दिया करता था। उदाहरण के लिए अमीर खुसरो का वेतन १२०० तन्का प्रतिवर्ष जो कि उसके पिता का वेतन इल्वारियों के समय था, निर्धारित कर दिया।[६९] उसने मलिक खुर्रम के वकीलदर मन्दहार का वेतन एक लाख जीतल निर्धारित किया।[७०] वास्तव में इस समय वेतन निर्धारित करने के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम न था। सुल्तान जैसा सोचता था अपने आप अमीरों का वेतन निर्धारित कर दिया करता था। उसका निर्णय ही अन्तिम होता था। कभी-कभी एक ही पद पर कार्यरत रहने वाले अमीरों को भिन्न-भिन्न वेतन मिलते थे। इस प्रकार से अमीरों का वेतन मनमानी ढंग से निर्धारित होता था।

सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी का वध कर देने के उपरान्त अलाउद्दीन ने जव कड़ा में अपनी स्वाधीनता घोषित की और दिल्ली की ओर कूच करना प्रारम्भ किया तो उसने मार्ग में जलाली मलिकों व अमीरों को ३०-३०, ४०-४० मन सोना देकर अपनी ओर मिला लिया।[७१] उसने उन्हें अक्ताएँ, इनाम तथा पद भी प्रदान किये। किन्तु एक वार सिंहासन अधिकृत करने के उपरान्त जव उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली तो तत्काल उसने अमीरों के प्रति अपनी नीति वदल दी। उसने अपने राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अमीरों का वेतन कम कर दिया और एक विशाल सेना एकत्र की। अमीर खुसरो जिसे जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के शासन-काल में १२०० तन्का प्रतिवर्ष वेतन में मिलते थे। अलाउद्दीन ने उसका वेतन घटा कर १००० तन्का कर दिया।[७२] अभी तक अमीरों को युद्ध में लूट के माल में भाग (खम्स) मिलता था किन्तु १२९८-९९ में गुजरात अभियान से वापस

लौटते समय उसने अमीरों को खम्स देना बन्द कर दिया। उसके विचार में युद्ध में लूट का माल का मुख्य अधिकारी राज्य तथा सुल्तान होता है। अतएव अमीरों व सैनिकों को केवल वेतन ही मिलना चाहिए।[७३] जिस समय सुल्तान ने सैनिकों का वेतन निर्धारित किया उसी समय, यद्यपि वरनी उस सम्बन्ध में मौन है, उसने अमीरों का भी वेतन निर्धारित कर दिया होगा। उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी ने सिंहासनारोहण के उपरान्त अमीरों के वेतन में वृद्धि करने का आदेश दिया और जो धन अनुदान में उन्हें अलाउद्दीन के शासन से पूर्व मिलता था, उन्हें पुनः दिलवाया।[७४]

सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक अमीरों के वेतन तथा आय के संबंध में वहुत ही उदार था। उसने आदेश दिया कि अमीर अपने वेतन या आय का कुछ भाग राजकोष में जमा करें और यदि वे न भी जमा करें तो उन पर किसी प्रकार का दवाव न डाला जाए या उन्हें दण्ड न दिया जाए।[७५] उसने उन्हें अनुमति दी कि वे अपनी अक्ताओं के भू-राजस्व में १० या ११ में से आधा अथवा १० या १५ में से एक भाग ले सकते हैं। वह उन्हें वेतन देने के अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर नकद धन उपहार में दिया करता था।[७६] एसामी के अनुसार उसने अपने सभी कर्मचारियों के वेतन व आय की छानवीन करवाई और अपने ढंग पर उनकी आय व वेतन पुनः निर्धारित किया। जहाँ कहीं उससे मालूम हुआ कि खुसरो खान के शासनकाल में अमीरों ने उसे समर्थन देने के लिए उससे २ वर्ष का अग्रिम वेतन ले लिया है, तो उसने कठोरतापूर्वक उनसे धन वापस ले लिया।[७७]

मुहम्मद तुग़लक ने अमीरों के वेतन से सम्बन्धित पूर्व नीति अपनाई। उच्च पदों पर आसीन अमीरों का वह स्वयं वेतन निर्धारित किया करता था।[७८] अमीरों को वेतन के अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर राजकोष से धन प्राप्त होता रहता था। सिंहासनारोहण के वाद सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने मलिक संजर वदख्शानी को ८० लाख तन्के, मलिक उल-मुल्क एमाउद्दीन को ७० लाख तन्के, सैय्यद अज़दुल्ला को ४० लाख तन्के प्रदान किये। उसने अन्य अमीरों को लाखों तन्कों का सोना प्रदान किया। वह मलिक वहराम गजनी को प्रतिवर्ष १०० लाख तन्के दिया करता था।[७९] शिहाबुद्दीन अलउमरी के अनुसार पदों के अनुसार सम्पूर्ण उमरावर्ग विभिन्न श्रेणियों में विभाजित था। उनमें से सवसे उच्च श्रेणी में खान और उनके अन्तर्गत मलिक अमीर व सिपहसालार होते थे। अमीरों की यह श्रेणियाँ उनके द्वारा सैनिकों की संख्या रखे जाने के अनुसार निर्धारित थी। एक खान को १०,००० अश्वारोही, मलिक को १०००, अमीर को १०० और सिपहसालार को १०० से कम अश्वारोही रखने पड़ते थे।[८०] शिहा-वुद्दीन अलउमरी ने लिखा है कि मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में प्रत्येक खान को दो लाख तन्के, मलिक को ५०,००० से ६०,००० तन्के, अमीर को ३०,००० से ४०,००० तन्के तथा सिपहसालार को २०,००० तन्के के लगभग दिये जाते थे और सिपहसालार

के नीचे के अधिकारियों को १००० से १०,००० तन्के तक प्राप्त होते थे। इसी लेखक के अनुसार खानों में से ही सुल्तान का एक नायब होता था, जो **अमीरिया** कहलाता था। उसे २०,००० से ४०,००० तन्के तक दिये जाते थे। उसने आगे चलकर यह भी लिखा है कि कुछ दरबारियों को ४०,०००-३०,००० से २०,००० तन्के तक मिलते थे।[८१] उसने खुदावन्द ज़ादा ज़ियाउद्दीन जो कि **अमीर-ए-दाद** था, का वेतन ५०,००० तन्का प्रतिवर्ष निर्धारित किया। अमीर गद्दा, जो मलिक सैफुद्दीन के नाम से प्रख्यात था तथा सुल्तान की बहन का पति था, को मालवा, गुजरात, खम्भात तथा नेहरवाला **अक्ता** वेतन में प्रदान की। इस प्रकार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक अपने अमीरों को अधिक वेतन दिया करता था। मुहम्मद तुग़लक ने अमीर बख्त का वेतन ४०,००० तन्का प्रतिवर्ष निश्चित किया और उसे उतनी ही आय की जागीर प्रदान की। उसने हैवत उल्लाह बिन फालकी का वेतन २४,००० दीनार निश्चित किया और उसे भी इतने ही मूल्य की जागीर प्रदान की। उसे उसने २४,००० दीनार नकद भी दिये।[८२] इब्नबतूता के अनुसार प्रान्तों में जो कुछ भी कर अमीर वसूल करते थे उसका २०वाँ भाग अमीर को मिलता था।[८३]

मुहम्मद तुग़लक अपनी दानशीलता के लिए सुप्रसिद्ध था। कभी-कभी वह अपनी इच्छानुसार भी अमीरों का वेतन निर्धारित कर दिया करता था। शिहाबुद्दीन-अल उमरी के अनुसार उसने अपने एक प्रभावशाली अमीर को **शाहना-ए-पील** के पद पर नियुक्त किया और उसे एराक के बराबर **अक्ता** प्रदान की।[८४] उसके समय में सद्र-ए-जहाँ का वेतन ६०,००० तन्का तथा शैख-उल-इस्लाम का वेतन ६०,००० तन्का था। उसने इब्नबतूता को दिल्ली का काजी नियुक्त किया और उसे २$\frac{1}{2}$ गाँव प्रदान किये जिनकी वार्षिक आय ५००० दीनार थी। इस वेतन के अतिरिक्त इब्नबतूता को को दो अन्य ग्राम भी दिये गये थे और उसे १२००० दीनार प्रतिवर्ष और दिये जाते थे।[८५] गयासुद्दीन मुहम्मद जो कि मखदूम-ज़ादा के नाम से लोकप्रिय था और जो कि बगदाद के खलीफा के प्रतिनिधि के रूप में दरबार में आया था, सुल्तान ने उसको कन्नौज के प्रदेश व सीरी का सम्पूर्ण राजस्व तथा अन्य भूमि इत्यादि के अतिरिक्त १०,००० तन्के अतिरिक्त धन के रूप में दिये।[८६] इस प्रकार से मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में अमीरों को अत्यधिक वेतन मिलता था।

सुल्तान मुहम्मद के शासनकाल की तुलना में फिरोज़शाह के शासनकाल में अमीरों के वेतन व आय के सम्बन्ध में बहुत ही कम सूचना मिलती है; किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में मुहम्मद तुगलक के समय के नियम जारी रहे।[८७] सिंहासनारोहण के तत्काल उपरान्त उसने आदेश दिया कि जो वेतन अमीरों को पूर्व शासनकाल में मिलता था उसमें अत्यधिक वृद्धि कर दी जाए।[८८]

फिरोज़शाह तुगलक ने अपने शासनकाल में साम्राज्य में वसूल होने वाले

महसूल (भू-राजस्व) को अपने अमीरों में उनकी श्रेणियाँ व पदानुसार बाँट दिया था। अफीफ ने लिखा है कि खानों को खानों के अनुसार, अमीरों तथा मलिकों को उनकी श्रेणी के अनुसार, प्रतिष्ठित लोगों को उनके आराम के अनुसार, हरम को उसके आराम के अनुसार, वजह तथा गैर वजहो को शाही खजाने से धन दिलाने की व्यवस्था की गई। शेष व्यक्तियों को शाही आदेशानुसार इमलाक प्राप्त होती थी। जब वजहदारों का इमलाक अक्ताओं में चला जाता था तो इमलाक के स्वामी को उसके वजह की आधी आय प्राप्त हो जाती थी।[८९] अन्य शब्दों में वजहदारी प्रथा के अनुसार आवंटित गाँवों के भू-राजस्व में से अमीरों व अधिकारियों को वेतन मिलता था। अमीरों के कुछ अपवादों को छोड़कर वेतन के अतिरिक्त भी धन दिया जाता था। वजीर खान-ए-जहाँ मकबूल को अक्ताओं व परगनों जो कि उसे वजह में प्राप्त हुए थे, के अतिरिक्त १३ लाख तन्के प्रतिवर्ष मिलते थे। यह वेतन उसके द्वारा सेना व सेवकों तथा अपने पुत्रों पर किये जानेवाले व्यय के अलावा वजह से आय के अतिरिक्त था। जब सुल्तान को उसके बड़े परिवार के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ तो उसने उसके प्रत्येक पुत्र के लिए तत्काल ११,००० तन्के की वृत्ति निश्चित कर दी और आदेश दिया कि उसकी जिस पुत्री का विवाह हो उसके जमाता की वृत्ति १५,००० तन्के निर्धारित की जाए।[९०] उसके समय में अन्य अमीरों को ४ लाख से ८ लाख तन्के प्रतिवर्ष वेतन में मिलते थे, जिसके कारण सभी अमीर अत्यन्त समृद्धशाली हो गये। उसके शासनकाल में अमीरों की इतनी अधिक आय थी और उन्हें इतना अधिक वेतन मिलता था कि अधिकांश अमीरों के पास असीमित धन-सम्पत्ति हो गई।

डॉ० अतहर अब्बास रिजवी के अनुसार एक अमीर जो कि १० सिपहसालारों का सरदार होता था, उसे ३०-४० हजार तन्कों तक की अक्ता प्राप्त होती थी। दस सवारों के सरदार सरखैल तथा १० सरखैलों के सरदार सिपहसालार कहलाते थे। सिपहसालार को २०००० तन्कों तक की अक्ता प्राप्त होती थी। मलिक जो कि १० अमीरों के सरदार होते थे उन्हें ५०-६० हजार तन्कों तक की अक्ता प्राप्त होती थी।[९१] अमीरों की आय का अन्य साधन पेशकश या उपहार था, जो कि उन्हें अन्य व्यक्तियों से समय-समय पर मिलते रहते थे।[९२]

अमीरों की आर्थिक विपन्नता एवं सम्पत्ति

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त सल्तनत के इतिहास के प्रारम्भिक वर्षों में अमीर लूटमार का धन एकत्र किया करते थे। राज्य की ओर से उन्हें वेतन तो मिलता ही था किन्तु स्वयं ही आबंटित प्रदेशों में अपनी सेना के रख-रखाव के लिए साधन जुटाने पड़ते थे। जब मुहम्मद बख्तियार खिल्जी को भगवत तथा भीवली की अक्ता प्राप्त हुई तो वह मनेर व बिहार पर छापे मारकर वहाँ से अत्यधिक धन लूट कर ले आता था। इस प्रकार उसके पास अत्यधिक धन एकत्र हो गया।[९३] बंगाल में अली मर्दान खिल्जी के पास अपार धन था।[९४] मलिक हुसामुद्दीन एवाज़ खिल्जी,

जिसने लखनौती में अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की, के पास अत्यधिक धन था, जो कि उसने वसानकोट के दुर्ग वनवाने, मस्जिदों तथा मदरसों का निर्माण कराने तथा मलिकों, सूफियों तथा सैय्यदों को वृतियाँ देने में व्यय किया। उसने गज़नी के इमाम जमालुद्दीन गज़नवी के पुत्र जलालुद्दीन को अत्यधिक धन दिया।[९५] उसके दरवार में तज़कीर करने पर उसे सोने व चाँदी के तन्कों से भरा हुआ वड़ा थाल ही नहीं प्राप्त हुआ वरन् अन्य अमीरों से १०,००० चाँदी के तन्के एक वार, ३०,००० तन्के दूसरी वार और लौटते समय ५,००० तन्के प्राप्त हुए। इस प्रकार कुल मिलाकर उसे १८०००० तन्के मिले। उसके वाद वह फिरोजकोह वापस लौट गया।[९६] ऐवक के पास इतना धन था कि उसने इल्तुतमिश को तीन लाख जीतल में ही नहीं खरीदा, वरन् अनेक दास अपने कार्यकाल में खरीदे।[९७] शम्सी अमीरों में सैफुद्दीन ऐवक जो कि इल्तुतमिश का सरजानदार था, को ३ लाख जीतल वेतन मिलता था।[९८] वलवन के अमीर मलिक अलाउद्दीन किशली खाँ के पास अपार सम्पत्ति थी।[९९] यही दशा उसके रवाते-अर्ज मलिक एमाद-उल-मुल्क की थी।[१००] फखरुद्दीन कोतवाल, जिसके पास अपार धन था, अपने दान के लिए प्रसिद्ध था। यही दशा अमीर अली सरजानदार की थी। उनकी दानशीलता से उनकी सम्पत्ति का आभास मिलता है। क़ैकुवाद के शासनकाल में मलिक निज़ामुद्दीन के पास इतना धन था कि दरवार में जाते समय तथा वहाँ से लौटते समय प्रतिदिन वह सौ तन्के न्यौछावर में देता था।[१०१]

इस काल में अमीरों की व्यक्तिगत सम्पत्ति का आभास दूसरे रूप में सल्तनत-कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा विदेशी पर्यटकों द्वारा दिये गये विवरण से मिलता है। मलिक वहाउद्दीन तुगरिल, जिसे ऐवक ने भियाना की विलायत प्रदान की थी, न केवल दीन दुःखियों का आश्रयदाता था वरन् उसके पास इतना धन था कि हिन्दुस्तान व खुरासान के व्यापारी आते रहते थे और वह उन सभी को रहने के लिए स्थान व भोजन दिया करता था।[१०२] यद्यपि मिनहज़ ने वहाउद्दीन तुगरिल के सम्वन्ध में यह नहीं लिखा कि वह व्यापार करता था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं व्यापार करता था। मलिक फिरोज के भाई असद्दीन मंगली से इल्तुत-मिश ने मलिक कमरुद्दीन क़िरान तिमूर खाँ को ५० हजार जीतल में खरीदा था; जिससे ज्ञात होता है कि असदुद्दीन मंगली दासों का व्यापार करता था।[103] वदायूँ के मुक्ता मलिक ताजुद्दीन संजर कुतुलुक ने कटिहर तथा वदायूँ में कई स्थानों पर मस्जिदें वनवाई। उसके पास भी अत्यधिक सम्पत्ति थी।[१०४] नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में वलवन के पास इतना धन था कि उसकी व्यक्तिगत सेवा में तीन हज़ार अफ़गान सवार तथा प्यादे थे। वह अपने मलिकों और अमीरों को खिलअतें दिया करता था। वह अपने खजाने से अमीरों को वहुमूल्य वस्त्र भी प्रदान करता था।[१०५] वरनी ने लिखा है कि अपनी मलिक व खानों के कार्य-काल में वह सभाएँ करने के लिए सुप्रसिद्ध था। सप्ताह में दो-तीन दिन जश्न किया करता था। वड़े-वड़े

मलिक, खान, प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके अतिथि होते थे। वह सन्तों को घोड़े व बहुमूल्य वस्त्र उपहार में देता था। वह अपने सेवकों को भी वस्त्र तथा घोड़े प्रदान करता था। इससे ज्ञात होता है कि उसके पास अत्यधिक सम्पत्ति थी।[१०६]

खिल्जी काल के प्रारम्भ में अमीरों के पास अत्यधिक धन था। इसका कारण यह था कि वलवनी काल के अन्त में अमीरों पर से वे सभी प्रतिवन्ध हट गये, जो कि वलवन ने अपने राज्यकाल में लगाये थे।[१०७] सुल्तान अलाउद्दीन ने अपने शासन-काल के प्रारम्भ में उन्हें अत्यधिक धन दिया।[१०८] उसने अला-उल-मुल्क को अन्य वहुमूल्य वस्तुओं खिलअत, सूरते शेर कमरवाख्त, दो उत्तम घोड़ों तथा दो गाँव के अतिरिक्त १/२ मन सोना, १०००० तन्के पहली वार दिये और वाद में उसके पास तीन-चार हजार तन्के और दो-तीन सजे घोड़े भेजे।[१०९] इसके वाद उसने अमीरों से सभी प्रकार के अनुदान वक्फ, इनाम इत्यादि छीन लिये, उनके वेतन कम कर दिये, अक्ताएँ जब्त कर लीं और उनके पास केवल उतना ही धन रहने दिया जिससे वे अपना जीवन सामान्य रूप से व्यतीत कर सकें। उसकी मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने पुनः स्वर्ण की मुद्राएँ देखीं और वे मालामाल हो गये।

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने वह धन अमीरों के पास से निकलवा लिया जो कि खुसरो खाँ ने उन्हें दिया था। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के अमीर समृद्धशाली व धनी थे। अवध तथा जफरावाद के मुक्ता ऐन-उल-मुल्क के पास इतना अधिक धन था कि वह ७०-८० लाख तन्के के मूल्य का अनाज व वस्त्र दिल्ली भेजा करता था।[११०] शिहाव सुल्तानी व्यापारी था।[१११] एमाद-उल-मुल्क सरतेज जो कि फसीदउद्दीन के नाम से सुप्रसिद्ध था तथा सिंध में लहरी वन्दर का अधिकारी था, के पास अनेक जहाज थे।[११२] इब्नवतूता के अनुसार मलिक शरीफ जलालुद्दीन वड़ा दानी था, उसने इब्नवतूता की स्थिति को देखते हुए उसे अपना गाँव कर वसूल करने व धन खर्च करने के लिए दे दिया।[११३] कुतुवुलमुल्क वहुत ही धनी अमीर था। शिहाबुद्दीन अल उमरी ने सुना था कि, प्रत्येक खान को लाखों तन्के मिलते थे। यह धन उन्हें व्यक्तिगत खर्च करने के लिए मिलता था। उसके अनुसार सद्र-ए-जहाँ कमालुद्दीन के पास १० ग्राम थे, जिनकी आय ६०,००० तन्के प्रतिवर्ष थी।[११४] मुहतासिव के पास भी एक गाँव था, जिसकी वार्षिक आय ८००० तन्के थी।[११५] वह अन्यत्र लिखता है कि दरवारियों के पास २ ग्राम, कुछ के पास एक ग्राम था और खिलअतों, वस्त्रों तथा जीविका-वृत्ति के अतिरिक्त उनमें से प्रत्येक अमीर को ४०,०००, ३०,००० से २०,००० तन्के तक प्राप्त होते थे।[११६] वरनी के अनुसार मलिक इख्तियारुद्दीन माधो हज्जाम की अश्वशाला में १३००० घोड़े दो हजार तन्के के मूल्य के वाँधे हुए थे जिससे उसकी विपन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है।[११७]

सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के वज़ीर खान-ए-जहाँ तथा अन्य अमीरों के पास अत्यधिक धन था।[११८] खान-ए-जहाँ की कनीज़ों की संख्या २००० थीं। वे

रूम, चीन तथा अन्य देशों की थीं।'[११९] मलिक शाहीन शाहना की मृत्यु के उपरान्त अन्य सामान के अतिरिक्त उनके घर से बहुमूल्य वस्तुएँ, जवाहरात इत्यादि के अतिरिक्त ५० लाख तन्के प्राप्त हुए।[१२०] इसी भाँति एमाद-उल-मुल्क वशीर सुल्तानी भी अत्यधिक धन छोड़कर मरा। उसने अपना धन रखने के लिए एक बार २५०० तन्के के टाट के थैले मोल लिए। वाद में इन थैलों में अपना धन रखना उचित न समझकर उसने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि वे गहरे-गहरे कूप खोदकर उनमें अनाज के समान धन भर दें। उसके पास १३ करोड़ तन्के, ४००० घरेलू दास, ४००० ज़र-दोजी की कबा, २००० सफेद वन्द तथा वन्देज़र कमर थे।'[१२१]

लोदी काल के अमीरों के पास असीमित धन था। चुनार के दुर्ग के अधीक्षक ताज खान-सारंगखानी ने अपने जीवन-काल में अत्यधिक धन एकत्र किया। कालान्तर में उसकी मृत्यु के उपरान्त जब उसकी विधवा पत्नी लाड मलिका ने शेर खाँ से विवाह किया तो उसने उसे एक सौ पच्चास बहुमूल्य रत्न तथा सात मन मोती और १५० मन सोना भेंट किया।[१२२] सुल्तान वहलोल लोदी ने काला पहाड़ फरमूली को अवध की सम्पूर्ण सरकार तथा अन्य परगने जागीर में दिये थे। काला पहाड़ ने तीन हजार मन सोना एकत्र किया था। वह रत्नों व सोने के अतिरिक्त कुछ भी मोल नहीं लेता था।[१२३]

अमीरों द्वारा व्यय

चूँकि अमीरों की नियुक्तियाँ व पदोन्नतियाँ सुल्तान के हाथ में थी अतएव उसकी सेवा करना और सदैव प्रसन्न रखना उनका कर्त्तव्य था। समय-समय पर वे उसे अपने पदानुसार पेशकश व उपहार भेजकर न केवल अपनी अधीनस्थता प्रकट करते थे वरन् उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करते थे। बहुमूल्य पेशकश व उपहार देने में उनकी आय का बहुत बड़ा भाग व्यय को मद में सम्मिलित हो जाता था। तत्कालीन राज-कीय परम्पराओं के अनुसार कोई भी अमीर खाली हाथ दरबार में उपस्थित नहीं होता था। पेशकश या भेंट के सम्बन्ध में यह नियम था कि जितने मूल्य की वे पेशकश भेजते थे उतना ही धन अपने अक्ता की जमा में से घटा कर तथा अन्य मदों पर खर्च निकालकर उन्हें शेष धन केन्द्रीय प्रशासन को देना पड़ता था।[१२४]

सन्तों के मकबरों के प्रबन्ध पर व्यय

अमीर सन्तों के मकबरों के प्रबन्ध पर भी व्यय किया करते थे। इब्नबतूता ने लिखा है कि उसने ख्वाजा कुतुबुद्दीन वख्तियार के मकबरे का प्रबन्ध करने के लिए ४६० व्यक्तियों को नियुक्त किया। उसने १५० नौकर रखे जो खतमी कहलाते थे, ८० विद्यार्थी, ८ अध्यापक जो कि मुर्करी कहलाते थे, एक आचार्य, ८० सूफ़ी, एक इमाम, कई मुअज्जिम; सुन्दर स्वर में कुरान पढ़ने वाले, ईश्वर की प्रशंसा में गान गाने वाले, दूसरे प्रकार के नौकर जो हाशिया कहलाते थे. जिनमें फर्राश, भोजन बनाने वाले, जल

पिलाने वाले, शुरवादार जो कि अन्य पेय वस्तुओं का प्रवन्ध करते हैं, ताम्बोलदार (पान का प्रवन्ध करने वाले) सिलहदार, नेज़ादार, छत्रदार, तश्तदार, हाजिव तथा नक़ीव इत्यादि को दैनिक वृत्ति पर नियुक्त किया। सुल्तान का आदेश था कि प्रतिदिन मकवरे पर १२ मन आटा तथा १२ मन मांस पकाया जाए किन्तु इब्नबतूता ने उसे पर्याप्त न समझ कर ३५ मन आटे व ३५ मन मांस तथा उसी के अनुसार वहाँ शक्कर, घी व पान की व्यवस्था की। इब्नवतूता दोनों ईदों, मुहम्मद साहव के जन्म दिन, १०वें मुहर्रम के दिन, शववरात तथा कुतुबुद्दीन की मृत्यु की दिवस पर १०० मन आटा तथा उतना ही मांस पकवाता था और दरिद्रों को भोजन करवाता था।[१२५]

इस काल में सुल्तानों की भाँति अमीर खर्चीले थे और अपना धन हरम, मदिरापान, जुआ खेलने, दावतें देने, नाच-गाने की महफिलों, कवियों को प्रश्रय देने में खर्च किया करते थे। किन्तु उसके साथ-साथ वे अपना धन नेक कार्यों पर भी व्यय करते थे। वे गरीवों, दरिद्रों, मुहताजों व अनाथों को सदाक़त दिया करते थे। इल्वारी काल में कभी-कभी अमीर अपनी आय की तुलना में इतना अधिक धन दान में दे दिया करते थे कि उन्हें महाजनों से ऋण लेना पड़ता था।[१२६] खिल्जी तथा तुगलक काल में भी अमीरों की यही दशा थी।[१२७] प्राकृतिक प्रकोप, दुर्भिक्ष, महामारी तथा वाह्य आक्रमण के समय भी अमीर मुक्तहस्त से सर्वसाधारण की आर्थिक सहायता किया करते थे, ताकि वे सुविधापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें।[१२८] वे केवल दान ही नहीं दिया करते थे वरन् उत्पीड़ित व्यक्तियों को मुफ्त भोजन प्रदान करने के लिए लंगर भी स्थापित कर दिया करते थे।[१२९] अमीर खानकाहों, मदरसों, मस्जिदों, मकवरों इत्यादि के रख-रखाव पर भी व्यय किया करते थे। वे अपनी ओर से उन्हें अनुदान दिया करते थे। इसके अतिरिक्त वे गरीव लड़कियों के विवाह के लिए दहेज भी दिया करते थे। दिल्ली का कोतवाल फखरुद्दीन प्रतिवर्ष गरीव लड़कियों के विवाह के लिए दहेज दिया करता था।[१३०] अनेक अमीरों की सूफी मत में आस्था थी वे अपनी ओर से खानकाहों का निर्माण करते थे और उनके प्रवन्ध के लिए आर्थिक सहायता देते थे। वे मकतवों व मदरसों पर भी धन व्यय करते थे। वे अपने निर्जी पुस्तकालयों व कुरान पढ़ने वालों या कहानी सुनाने वालों पर भी व्यय किया करते थे। सुल्तान बलवन के राज्य-काल में फ्खरुद्दीन नामक कोतवाल १२००० कुरान पढ़ने वालों को वजीफे दिया करता था। जो कोई कुरान की प्रतियाँ नकल करके लाता था वह उससे कुरान ले लेता था और उसे उपहार भेंट करता था।[१३१] सूफी सन्तों व उलमाओं को प्रश्रय देना उनकी संस्कृति एवं धार्मिक मनोवृत्ति के अनुकूल थी। अमीर उलमाओं को इदारात वृत्तियों तथा इनाम प्रदान करते थे।[१३२] वरनी के अनुसार अमीर विना ज्योतिषियों से परामर्श लिए हुए कोई भी कार्य प्रारम्भ न करते थे। शुभ व उत्तम कार्य अथवा विवाह इत्यादि विना ज्योतिषियों से परामर्श लिए हुए सम्पन्न नहीं हो सकता था। प्रतिष्ठित अमीर, मलिक, गणमान्य व्यक्ति, ख्वाजा-ख्वाजाजादे ज्योतिषियों को अत्यधिक धन इनाम में दिया करते थे। ज्योतिषी ४००-४००-५०० (पन्ना) तथा

२००-२००, ३००-३०० जन्म-कुण्डलियाँ मलिकों, अमीरों, मन्त्रियों, प्रतिष्ठित तथा गणमान्य व्यक्तियों को तैयार करके देते थे और धन प्राप्त करते थे।[१३३] अमीरों के निजी कारखाने होते थे। जहाँ कि उनके लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती थी। अमीर इन्हीं कारखानों में अपने व परिवार के उपयोग में आने वाली वस्तुएँ बनवाते थे या कारखानों के अधिकारी स्वयं उन वस्तुओं का प्रबन्ध करते थे। अफ़ीफ़ के ग्रन्थ से पता चलता है कि खान-ए-जहाँ ने सुल्तान का आदेश प्राप्त होते ही कारखानों में माल तैयार करवाया। उसने अस्त्र-शस्त्र के निर्माण पर ७ लाख तन्का व्यय किया।[१३४]

अमीरों की रुचि भवन-निर्माण में भी थी। वे अपने लिये बड़े-बड़े भव्य महल बनवाया करते थे। उनके द्वारा बनाए गये मकबरों व मस्जिदों को देखकर पता चलता है कि वे अपनी आय का कुछ भाग इस प्रकार के निर्माण कार्यों पर भी व्यय किया करते थे। मलिक हुसामुद्दीन एवाज खिल्जी ने बंगाल में जामा मस्जिद बनवाई।[१३५] मुहम्मद बख्तियार खिल्जी व उसके अमीरों ने बंगाल में मस्जिदें, मदरसों व खानकाहें बनवाई।[१३६] इब्नबतूता ने अपने घर की मरम्मत करवाने में ४०,००० दीनार व्यय किये। उसने अपने घर के सामने एक मस्जिद भी बनवाई।[१३७]

शान-शौकत में जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से वे अपने लिये बहुमूल्य वस्तुएँ, हीरे-जवाहरात, बहुमूल्य वस्त्र, फर्नीचर इत्यादि खरीदते थे।[१३८] वे कभी-कभी व्यापारियों को वित्तीय सहायता भी दे दिया करते थे और अपने वित्तीय संकट के समय जब वे उनसे ऋण लिया करते थे तो उन्हें इनाम दिया करते थे।[१३९]

अमीर फलों के बाग लगवाने के भी बड़े शौकीन थे। अनेक खिल्जी तथा तुगलक अमीरों ने बाग लगवाने पर धन व्यय किया। भूत-प्रेत की छाया उन पर न पड़े इसलिए वे दान दिया करते थे। इसके अतिरिक्त हज पर जाने वालों को भी वे वित्तीय सहायता करते थे।

सुल्तान की भाँति अमीर भी अपने घरों में जश्न मनाया करते थे। वे दावतें दिया करते थे तथा कवि, संगीत व नृत्य की गोष्ठियाँ आयोजित करते थे। वे अतिथियों को विदा देते समय उन्हें उपहार भी दिया करते थे।[१४०]

कभी-कभी उन्हें अवैधानिक कार्यों हेतु रिश्वत या घूस तथा दण्ड-शुल्क भी देना पड़ता था। उपरोक्त मदों के अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे अन्य मद भी थे जिन पर अमीरों को अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए व्यय करना पड़ता था। इन मदों में उनकी सेना भी सम्मिलित थी। सुल्तान को भेंट या उपहार देने के अतिरिक्त कभी-कभी वे अपने साथियों को भी उपहार दिया करते थे।[१४१]

वे विवाह के अवसरों पर भी धन व्यय करने में पीछे नहीं रहते थे। जलाली मलिक कुतुबुद्दीन अलवी ने अपने पुत्र के विवाह पर दो लाख तन्के खर्च किये और

निकाह के दिन उसने सौ सजे हुए घोड़े दान में दिये व हजार आदमियों को टोपी व कपड़े पहनाए।[१४२]

यह अमीर अपनी शान-शौकत का प्रदर्शन करने के लिए दोनों हाथों से धन लुटाया करते थे। कैकुवाद के शासन-काल में मलिक निजामउद्दीन दरबार में आते समय और वहाँ से लौटते समय सौ तन्के प्रतिदिन न्यौछावर किया करता था।[१४३] इस काल में अनेक अमीरों ने अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए गणमान्य व्यक्तियों, कलाकारों, साहित्यकारों, ज्योतिषियों, कव्वालों, कवियों, विद्वानों आदि को प्रश्रय दिया करते थे और उन पर अत्यधिक धन व्यय करने में वे कभी भी पीछे नहीं रहे। बलबन के अमीर अलाउद्दीन किशलीखान ने ख्वाजा शम्स मुइनुद्दीन का गाना सुनकर उसे अपनी पायगाह के सभी घोड़े प्रदान कर दिये। अन्य गायकों को उसने दस-दस हजार तन्के उपहार में दिये।[१४४] बलबन का रवाते-ए-अर्ज़ प्रत्येक वर्ष दीवान-ए-अर्ज़ के कर्मचारियों को अपने घर पर निमन्त्रित करता था और उनमें से प्रत्येक को वस्त्र प्रदान करता था, उनका आतिथ्य-सत्कार करता था और उन्हें उनके पदानुसार २०,००० तन्के देता था।[१४५] वह लोगों को अत्यधिक धन दान में दिया करता था। दान के लिए उसने अनेक गाँव वक्फ कर दिये थे।[१४६] अमीर अली सरजानदार हातिम द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध था। वह हजारों तन्के दान में दिया करता था।[१४७] मलिक अहमद चप नदीमों और गायकों को सुल्तान की महफिल से आमंत्रित करता और उन्हें एक लाख तन्का इनाम में देता था। वह २००-३०० आदमियों को टोपियाँ या सजे हुए घोड़े दान में दिया करता था।[१४८] मलिक नुसरत सुबाह कलाकारों व प्रतिष्ठित लोगों को प्रश्रय प्रदान किया करता था और उन्हें अत्यधिक दान दिया करता था। वह गायकों, गज़ल गाने वालों तथा रमणियों के सिरों पर तन्कों एवं जीतल की बौछार किया करता था।[१४९]

अमीर उल्मा, विद्वान तथा धार्मिक व्यक्तियों का सम्मान करने में अपना धन व्यय किया करते थे। बंगाल में सुल्तान गयासुद्दीन एवाज खिल्जी के अमीरों ने प्रसिद्ध इमाम जलालुद्दीन को ३००० सोने व चाँदी के तन्के प्रदान किए।[१५०] जब वह लखनौती से वापस हुआ तो उसके पास १० हजार तन्के थे, जो उसे वहाँ के सुल्तान तथा अमीरों से प्राप्त हुए थे।

राजसत् का नियम

यद्यपि इस काल में अमीर की मृत्यु पर उसकी चल-अचल सम्पत्ति को राजसत् करने का नियम न था, किन्तु कभी-कभी राजाज्ञा का उल्लंघन करने या किसी आरोप में दोषी पाये जाने पर उनकी सम्पत्ति राजसत् कर ली जाती थी। अलाउद्दीन खिल्जी ने मलिकों, अमीरों तथा उच्च पदाधिकारियों की सम्पत्ति बलपूर्वक अधिकृत कर ली।[१५१] सैय्यद शरीफुद्दीन बिन अबी मुजाहिद अल हसन समरकन्दी ने शिहाबुद्दीन अल उमरी को बताया कि सुल्तान मुहम्मद तुगलक के बराबर मना करने पर भी दिल्ली

के एक खान ने मदिरापान करना न छोड़ा, तदुपरान्त सुल्तान उससे इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने ४३,७००,००० मिश्क़ल श्रव्य की उसकी सम्पत्ति राजसत् कर ली।[१५२] जब मलिक एमाद-उलमुल्क की मृत्यु हुई तो सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने उसको १२ करोड़ टंकों में से ८ करोड़ टंके राजसत् कर लिये और शेष ३ करोड़ तन्के मलिक इसहाक, जामाताओं, पत्नियों तथा उन लोगों को दे दिए जिन्हें एमाद-उल-मुल्क ने अपना पुत्र वना लिया था।[१५३]

अमीरों में अंतर्जातीय विवाह व हरम

इस काल में अमीरों में अन्तर्जातीय विवाह की परम्परा थी। ताजुद्दीन यल्दौज की दो पुत्रियों का विवाह कुतुवुद्दीन ऐवक तथा कुवाचा से तथा कुतुवुद्दीन ऐवक की पुत्री का विवाह इल्तुतमिश से हुआ था।[१५४] कुतुवुद्दीन ऐवक की दो पुत्रियों का विवाह कुवाचा से हुआ था। मलिक इख्तियारुद्दीन करा खिताई ने सुल्तान मुइज्जुद्दीन वहराम की एक वहन से विवाह किया।[१५५] मलिक किरान तीमूरखान ने मलिक यगानतन की पुत्री से विवाह किया।[१५६] कुतुलुग खाँ का विवाह सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद की माँ से हुआ था।[१५७] अमीर शैफुद्दीन (अरव) का विवाह सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की वहन से हुआ।[१५८] रजव का विवाह अवूहर के शासक रानामल की पुत्री से हुआ।[१५९] वहलोल लोदी ने एक सुनारिन से विवाह किया था।[१६०] अमीरों के लिए वहुविवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह करने के लिए कोई प्रतिवन्ध न था। सुल्तान की भाँति उनके हरम में भी अनेक स्त्रियाँ पत्नियों, रखैलों व दासियों के रूप में रहती थीं।

अमीरों की जीवन-शैली

सल्तनतकालीन अमीरों के जीवन-शैली की झलक हमें समकालीन इतिहासकारों की कृतियों व विदेशी पर्यटकों द्वारा लिखे गये संस्मरणों से ही मिलती है। सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी के अमीरों में मलिक वहाउद्दीन तुगरिल मुइज्जी वड़े ही उत्कृष्ट स्वभाव का व्यक्ति था। भियाना की विलायत तथा थानकिर का दुर्ग उसके पास था। जो भी हिन्दुस्तानी व खुरासानी व्यापारी उसके पास आता था वह उनके रहन-सहन की व्यवस्था किया करता था तथा उनका आदर-सत्कार करते हुए उनके भोजन की व्यवस्था भी किया करता था।[१६१] मुहम्मद वख्तियार खिल्जी अपने खिल्जी कवीले से पृथक होकर सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी की सेवा में पहुँचा। ऐवक के समय उसे भगवत व भीवली की अक्ताएँ प्राप्त हुई। उसने अपार धन-सम्पत्ति, घोड़े एवं अस्त्र-शस्त्र एकत्र किये। निकटवर्ती प्रदेशों पर धावा बोलना, वहाँ लोगों को लूटना व नये प्रदेशों को विजित करना ही उसके लिए मनोरंजन था।[१६२] मलिक अलाउद्दीन अली मर्दान खिल्जी ने लखनौती में अनेक अत्याचार किये, किन्तु अत्याचारी होते हुए भी वह स्वभाव से नम्र था। मलिक हुसामुद्दीन एवाज़ खिल्जी ने लखनौती में वसानकोट का दुर्ग वनवाया एवं वहाँ लोगों को वसाया। वह चरित्रवान, साहसी, न्यायप्रिय एवं

दानी था। उसने मस्जिदें व मदरसे निर्मित कराये, मलिकों, सूफियों व सैय्यदों के लिए वजीफे निर्धारित किये।

शम्सी अमीरों में ताजुद्दीन सन्जर कजलक खाँ विद्वानों का आदर करता था। जब मिनहाज-उस-सिराज उच्च पहुँचा (२६ जनवरी १२२८) तो उसने उसका स्वागत किया और उसे बीस मणि प्रदान किये। जब उसे उच्च व उसके समीपवर्ती प्रदेश प्राप्त हुए तो उसने उसे आबाद किया। वह प्रजा के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार किया करता था। वह अपनी पवित्रता, न्यायप्रियता एवं दान-पुण्य के लिए प्रसिद्ध था।[१६३] मलिक हिन्दू खाँ जिसे सुल्तान इल्तुतमिश ने फखरुद्दीन इस्फ़हानी से मोल लिया था, एक धार्मिक व्यक्ति था। वह विद्वानों का बड़ा आदर-सत्कार किया करता था।[१६४] ताजुद्दीन सन्जर कुरैत खाँ बड़ा ही योग्य, पराक्रमी एवं बुद्धिमान अमीर था। वह अपने साथ दो घोड़े रखता तथा घोड़ों के सरपट दौड़ने के समय वह एक घोड़े की पीठ पर से दूसरे घोड़े की पीठ पर आ जाता था। वह धनुर्विद्या में निपुण था। वह शिकार खेलने का शौकीन था। वह शिकारगाह में अपने साथ चीते, बाज तथा शिकारी कुत्ते नहीं ले जाता था। वह केवल तीर से ही शिकार किया करता था।[१६५] मलिक इज्जुद्दीन बलबन किशलु खान, आलिमों, सूफियों का धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का भक्त था। जिस समय बलबन मलिक व खान था उस समय वह मदिरापान किया करता था तथा बड़े-बड़े खान व मलिक, प्रतिष्ठित गणमान्य व्यक्ति उसके अतिथि होते थे। वह जुआ खेलता था और जो भी धन उसे जुए में मिलता था वह उसे दान कर देता था। वह सन्तों को घोड़े, बहुमूल्य वस्त्र आदि उपहार में देता था और अपने सहकारियों को भी घोड़े और वस्त्र आदि प्रदान करता था।[१६६] मिनहाज-उस-सिराज ने जो विवरण शम्सी अमीरों के सम्बन्ध में दिया है उससे मालूम होता है कि शम्सी अमीर केवल अपना समय युद्धों व शिकार खेलने में ही व्यतीत किया करते थे। उनका जीवन-स्तर भी साधारण अमीरों की भाँति था तथा जो कुछ वे कमाते थे खर्च कर दिया करते थे। दूसरे, उनमें से किसी ने न तो कोई लोकोपयोगी कार्य किया और न ही अपनी सन्ततियों को ऐसी शिक्षा प्रदान की कि वे भविष्य में न केवल ख्याति प्राप्त कर सकते वरन् जीवन के किसी क्षेत्र में योगदान दे सकते। इसके पीछे कई कारण थे। सर्वप्रथम अभी तक सल्तनत को न तो स्थायित्व प्राप्त हुआ और न ही उसमें सुदृढ़ता आई थी। दूसरे, इन अमीरों को अपने जीवन में निरन्तर हिन्दू शासक वर्ग से संघर्ष करना पड़ा और संघर्ष की अवधि में वे अमीरों की भाँति जीवन न व्यतीत कर सके। निरन्तर स्थानान्तरण होने के कारण उनके जीवन में भी कभी स्थिरता न आ सकी, जो कि शान-शौकत के जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक थी।

शम्सी अमीरों की तुलना में बलबन के अमीरों की जीवन-शैली बहुत ही लुभावनी और आकर्षक थी। इन अमीरों में सर्वप्रथम सुल्तान बलबन के चचेरे भाई मलिक अलाउद्दीन किशली खान का नाम आता है जो अपनी दानशीलता व उदारता के

कारण हातिमताई से भी अधिक बढ़ गया था। बरनी ने अमीर खुसरो से उसके बारे में सुना था कि उसके समान उदारता व दान देने में कोई अन्य व्यक्ति उस काल में न था। मलिक अलाउद्दीन किशली खान बाण फेंकने, गेंद खेलने और शिकार खेलने का शौकीन था। उसकी प्रशंसा में ख्वाजा शम्स मुईन नदीमेखास तथा कुतुबुद्दीन हसन गौरी ने कई पुस्तकें लिखीं तथा उसकी प्रशंसा में गजलों की रचना की। बलबन के दरबार के गायकों ने यह गजलें कण्ठस्थ कर ली थीं। मलिक अलाउद्दीन किशली खान अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध था। उसने अपने अस्तबल के सभी घोड़े ख्वाज़ा शम्स मुईन को प्रदान कर दिये थे। वह गायकों को दस हज़ार तन्का तक इनाम में दे दिया करता था। वह गेंद खेलने तथा शिकार खेलने के लिए हिन्दुस्तान व खुरासान में प्रसिद्ध था।[१६७]

मलिक अलाउद्दीन किशली खाँ से भी एक पैर आगे बलबन का रवाते अर्ज़ एमाद-उल मुल्क था। वह बलबन के प्रतिष्ठित मलिकों में से एक था। वह अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध था। वह सदैव हर एक व्यक्ति की सहायता करने के लिए तत्पर रहता था। **रवाते अर्ज़** के पद पर कार्य करते हुए जब कभी वह किसी सैनिक का घोड़ा दुर्बल देखता तो उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने के बाद वह अपने ही अस्तबल से मोटा ताजा घोड़ा उसे प्रदान कर देता था या उसके हाथ पर ५० तन्के रखता और उससे कहता कि वह अपना घोड़ा इससे मोटा कर ले।[१६८] वह प्रत्येक वर्ष अपने निवास-स्थान पर अपने विभाग के कर्मचारियों को आमन्त्रित करता, उन्हें वस्त्र उपहार में देता तथा २०,००० तन्के तक उनमें बाँट देता था। यही नहीं वह अपने कर्मचारियों को भोजन खिलाता था। भोजन के ५०-६० थाल दीवाने-ए-अर्ज़ में लाये जाते थे जिनमें मैदे की रोटियाँ, भेड़ का उत्तम मांस, कबूतर और मुर्गी के चूजे, सिकी हुई और तली हुई टिकिया, अनेक प्रकार के शर्बत, फुका व पान होते थे। इस विभाग के सभी लोग दस्तरखान पर साथ बैठते व भोजन करते थे और जो भोजन शेष रहता था उसे भिखारियों को दे दिया जाता था। रवाते-ए-अर्ज़ इमादुलमुल्क पान खाने के लिए प्रसिद्ध था। जितनी बार वह पान खाता था उतनी बार उसी प्रकार के पान सभी लोगों को दिये जाते थे। उसके दीवान में पच्चास-साठ व्यक्ति पान लगाते रहते थे और उन्हें देते रहते थे। वह अधिक दान-पुण्य भी किया करता था तथा उसने दान में अनेक गाँव वक्फ कर दिये।[१६९]

बलबन का दूसरा प्रतिष्ठित अमीर फखरुद्दीन कोतवाल था। वह अपने दान-पुण्य के लिए दिल्ली में बहुत ही प्रसिद्ध था। वह १२००० क़ुरान पढ़ने वालों को वृत्तियाँ दिया करता था। वे लोग १२ घण्टे क़ुरान पढ़ा करते थे तथा उनमें से कुछ लोग तो पूरी क़ुरान पढ़ डालते थे। वह प्रतिदिन नये वस्त्र धारण किया करता था। जिस वस्त्र को वह एक बार पहन लेता था उसे दुबारा न पहनता था। जो कपड़ा वह उतारता था उसे न्योछावर में दे दिया करता था। इस प्रकार उसकी चारपाई व

चादर भी हुआ करती थी। जव यह वस्तुएँ एकत्र हो जाती थीं तो वह अनाथ तथा निर्धन कन्याओं को यह वस्तुएँ दहेज में दे दिया करता था। वह प्रत्येक वर्ष एक हज़ार कन्याओं को विवाह के अवसर पर दहेज दिया करता था। जो कोई क़ुरान की नक़ल करके उसके पास लाता था तो वह उसे उपहार भेंट करता और उससे क़ुरान ले लिया करता था। क़ुरान की यह प्रतियाँ वह अन्य लोगों को पढ़ने के लिए दे दिया करता था।[१७०]

वलवन के शासनकाल में अमीर अली सरजानदार ने भी अपनी दानशीलता के लिए ख्याति उपार्जित की। उसके इस स्वभाव के कारण उसे लोग हातिम खाँ के नाम से पुकराते थे। अमीर खुसरो उसकी वहुत ही प्रशंसा किया करता था। उसी की प्रशंसा में उसने **अस्पनामा** की रचना की। वह कभी भी सौ तन्के से कम दान में नहीं दिया करता था। उसके मुँह से कभी जीतल शब्द नहीं निकलता था। जितना ही वलवन उसकी दानशीलता व उदारता के वारे में सुनता था उतनी ही उसकी अक्ता में वृद्धि कर दिया करता था।[१७१]

वरनी ने **तारीख-ए-फिरोजशाही** में लिखा है कि वलवन के शासनकाल में उसके अमीर दान देने व उदारता में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा किया करते थे। जव कोई खान या मलिक यह सुनता था कि अमुक खान या मलिक ने पाँच सौ व्यक्तियों को दावत दी तो दूसरे हज़ार व्यक्तियों को भोजन देने का प्रयास करते थे। यदि कोई इन खानों या मलिकों से कहता कि अमुक मलिक या खान ने अपनी सवारी के समय २०० तन्के न्योछावर में दिये तो वे ४०० तन्के न्योछावर में दे दिया करते थे। मदिरापान की महफिल में ५० घोड़े दान करता और २०० आदमियों को वस्तु प्रदान करता था, दूसरा अमीर ४०० घोड़े न्योछावर करता व ५०० व्यक्तियों को वस्त्र प्रदान करता था। वरनी ने यह भी लिखा है कि उस समय के मलिक खान तथा गणमान्य व्यक्ति दान-पुण्य व न्योछावर करने के कारण सदा ऋणी रहा करते थे। महफिल के अतिरिक्त उनके घरों में सोने-चाँदी का कोई चिन्ह नहीं मिलता था। अपने दान-पुण्य व उदारता के कारण या झूठी प्रतिष्ठा दिखाने के कारण वे कभी भी धन का संचय न कर सके। उन्हें दिखावा करने के लिए दिल्ली के साहूकारों व मुल्तानियों से कर्ज़ लेना पड़ता था जिसके लिए उन्हें कर्ज़ के साथ उपहार भी दिया करते थे। जव कभी खान व मलिक महफिलों का आयोजन करते थे और अतिथियों को वुलाते थे, तो उनके कर्मचारी उनकी लाज वचाने के लिए मुल्तानियों व साहूकारों के पास जाकर ऋण व्याज पर लेते और अपने नाम से रसीद दे दिया करते थे। इस प्रकार वलवनी काल के लगभग सभी अमीर ऋण लेकर ही अपना जीवन शान-शौकत में व्यतीत करते थे।[१७२]

वलवन के अमीर अनुशासन की सीमा में रहे। उन्हें सदैव भय लगा रहता था कि कहीं उनके आचरण व व्यवहार में कमी आने पर सुल्तान उन्हें दण्डित न करें।

अत: उनका ध्यान भोग-विलास, इन्द्रिय परायणता, मदिरापान और व्यभिचार की ओर कभी नहीं जाता था। वे विदूषकों, गायकों, नर्तकियों से दूर ही रहते थे। किन्तु बलबन की आँख मुंदते ही कैक़ुबाद के शासन-काल में शासक की रुचि के अनुसार विदूषकों, नर्तकियों व गायकों, महफिल करने वालों का बाजार गर्म हो गया तो अमीरों ने भी शासक का अनुकरण किया। वे भी आमोद-प्रमोद व भोग-विलास में फँस गये। बरनी ने लिखा है कि मदिरा का भाव दस गुना बढ़ गया। मसखरों, भाड़ों, चुटकुले-बाज़ों, विदूषकों का सम्मान बढ़ गया। गायकों व रमणियों को चंचलता बढ़ गई। मदिरा व नशीली वस्तुओं को बेचने वालों की थैलियाँ सोने व चाँदी के तन्कों से भर गई। अमीरों को महफिलें सजाने, लोगों से बाजी लगाने, गाना सुनने, जुआ खेलने, धन नष्ट करने के अतिरिक्त और कोई कार्य न रह गया। ऐसे ही वातावरण में मलिक-उल-उमरा फखरुद्दीन कोतवाल के भतीजे व दामाद मलिक निज़ामुद्दीन का उत्कर्ष हुआ। वह शान-शौकत से अपना जीवन व्यतीत किया करता था। वह बहुत बड़ा दानी था।[१७३] प्रत्येक दिन दरबार से जाते समय तथा वहाँ से लौटते समय सौ तन्के न्योछावर किया करता था। शहर के प्रतिष्ठित और उत्कृष्ट आलिम, ज्योतिषी, तबीब, विश्वासपात्र तथा कव्वाल, प्रतिष्ठित कलाकार उसकी सभा में उपस्थित होते थे। उनमें से प्रत्येक को वह उनकी योग्यतानुसार दान दिया करता था।[१७४]

सुल्तान मुइज्जुद्दीन क़ैक़ुबाद के शासन काल में अमीरों के चाल-चलन, आचरण एवं व्यवहार में अशोभनीय परिवर्तन हुआ। जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के अमीर मादक-प्रेमी व लोलुप थे। वे मदिरा के नशे में जो भी उनके मन में आता कह देते थे। उनमें से एक ऐसा अमीर मलिक ताजुद्दीन कूची था, जो कि अपने घर पर मदिरापान की महफिलें आयोजित किया करता था।[१७५] उसके विपरीत मलिक कुतुबुद्दीन अलवी था। वह अत्यन्त दानी था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह पर दो लाख तन्के खर्च किये। निकाह के दिन सौ सजे हुए घोड़े दान में दिये व हज़ार आदमी को टोपी और कपड़े पहनाये।[१७६] मलिक अहमद चप वाण चलाने में पारंगत था। वह बहुत ही उत्तम कविताओं की रचना करता था। वह शतरंज अच्छी खेलता था। वह अपने घर में महफिलों का आयोजन किया करता था। उनमें वह सुल्तान के गायकों को बुलवाता था और उन्हें एक लाख तन्का इनाम में दिया करता था।[१७७] ऐसे अवसरों पर वह दो या तीन सौ आदमियों को टोपियाँ और सैकड़ों आदमियों को सजे हुए घोड़े प्रदान करता था।[१७८] मलिक नुसरत सुबाह अपने दान, पुण्य, हँसी-मजाक करने, कलाकारों को प्रश्रय देने के कारण प्रसिद्ध था। उसके द्वार से कोई भी निराश नहीं लौटता था। वह ७०० सवार रखता था। किन्तु वह आजीवन ऋणी रहा। ऋणदाता उसके द्वार पर सर्वदा उपस्थित रहा करते थे। जिस महफिल में वह अतिथि होता या भोग-विलास में तल्लीन होता वह गजल पढ़ने वाले तथा सुन्दरियों पर तन्के व जीतल की बौछार कर देता था।[१७९]

सुल्तान जलालुद्दीन खिल्जी के शासनकाल में सुल्तान के साथ ही साथ उसके

अमीर भी जीवन में मौज-मस्ती उड़ाते थे। अमीर खुसरो को उस समय एक हज़ार दो सौ तन्के वेतन में मिलते थे। वह शाही पुस्तकालय की देख-रेख करने वाला अफसर था। बड़े-बड़े अमीरों को जो खिलअत प्रदान की जाती थी वही उसे श्वेत पेटी के साथ दी जाती थी। बरनी ने लिखा है कि इस काल में अमीर शाही महफिल में, जिसमें भोग-विलास के साथ-साथ अद्वितीय नदीम, सुन्दर साकी युवतियाँ और रमणियाँ चित्ताकर्षक गायक हुआ करते थे, में भाग लिया करते थे। सुल्तान ने मदिरापान की महफिलों में भाग लेने वाले अमीरों से कह दिया कि वे अपने घरों में दरबारी कपड़े व मोजा न पहन कर आया करें। वे केवल बारानी पहन कर आएँ व निश्चिन्त होकर बैठें। उसकी महफिल में अमीर बिना किसी भय के हँसी-मजाक करते थे। सुल्तान उनके साथ चौसर व शतरंज खेला करता था। इस महफिल में मलिक ताजुद्दीन कूची, मलिक आइज्जुद्दीन गौरी, मलिक क़ीर, मलिक नुसरत सुबाह, मलिक अहमद चप, मलिक कमालुद्दीन, अबुल मुआली, मलिक नसीरुद्दीन कुहरामी और मलिक सद्रुद्दीन मन्तकी आदि अमीर हुआ करते थे। बरनी के अनुसार अवध का इक्तादार मलिक ताजुद्दीन कूची व उसका भाई मलिक फखरुद्दीन कूची उस काल के प्रतिष्ठित अमीरों में से थे। वे बड़ी-बड़ी महफिलों का आयोजन किया करते थे।

जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी का वध करने के बाद अलाउद्दीन खिल्जी ने जलाली मलिकों और अमीरों को तीस-तीस तथा चालीस-चालीस मन सोना देकर अपनी ओर मिला लिया। किन्तु सुल्तान के कारण उन्हें संयमित जीवन व्यतीत करना पड़ा। सुल्तान कुतुबुद्दीन, मुबारकशाह खिल्जी व खुसरो खाँ स्वयं व्यभिचारी थे, अतएव उनके शासनकाल में अमीरों को भोग-विलास करने की छूट मिल गई।

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुगलक ने सिंहासनारूढ़ होते ही अलाई व कुतुबी वंश के अमीरों को अक्ताएँ, पद, इनाम, वेतन देकर उनका जीवन नियंत्रित कर दिया। उसने खुसरो खाँ द्वारा लुटाये गये धन को वापस लेने की चेष्टा की, जिसके कारण व्यभिचार जो कि पूर्वकाल में पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, लगभग समाप्त हो गया। बरनी सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अमीरों की जीवन-शैली पर यथेष्ट प्रकाश नहीं डालता है। किन्तु इब्नबतूता के विवरण से उनकी जीवन-शैली की जानकारी मिलती है। बरनी के अनुसार निजाम भई भगेंड़ी या भाँग खाने वाला था।[८८] शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार दिल्ली में अमीरों के अपने-अपने घर थे। उनमें से कोई सुल्तान के महल में नहीं रहता था और न ही उनमें से कोई राज्य के कार्य बिना वहाँ ठहर सकता था। कार्य समाप्त हो जाने के उपरान्त वे अपने-अपने घरों को चले जाते थे। यह लोग दिन में कई बार, प्रातः तथा तीसरे पहर राज्य कार्य हेतु महल में उपस्थित होते थे।[८९] इब्नबतूता के अनुसार फकीह अलाउलमुल्क एक बड़े जहाज, जिसे ४० मल्लाह खेते थे और जिसके दांये-बांये चार-चार नौकाएँ होती थीं, में सफ़र करता था। इन नावों में ढोल, तुरही, बिगुल, बाँसुरी बजाने वाले होते

थे। बारी-बारी से ढोल व तुरही बजती थी तथा गायक गाना गाते थे। यह गाना बजाना प्रातः से लेकर मध्याह्न के भोजन तक होता रहता था। भोजन के समय सभी नावें जोड़ दी जाती थीं और मुख्य जहाज में दस्तरखान बिछा दिया जाता था जहाँ कि सभी लोग उक्त अमीर के साथ भोजन करते थे और उसके बाद अपनी-अपनी नौकाओं में चले जाते थे।[१८२] इब्नबतूता ने यह भी बताया है कि लहरी बन्दर में प्रतिवर्ष ६० लाख तन्का कर प्राप्त होता था, जिसका २०वाँ भाग अमीर अलाउल-मुल्क को मिलता था। वह बड़े ठाट-बाट से रहता था। अफीफ ने फिरोजशाही अमीरों के सम्बन्ध में लिखा है कि इस काल में कोई खान मलिक व अमीर न था जिसके पास फर्राशखाना न हो। सबके पास उसकी स्थिति के अनुसार फरशीना थे। प्रत्येक के पास रूपवती कनीज़े, जो कि मधुर स्वर में गाना गाती थीं, दुःख तथा चिन्ता दूर करने के लिए उसके साथ-साथ रहती थीं और इस प्रकार सभी अमीर आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे।[१८३] फिरोजशाह के वजीर खानेजहाँ को स्त्रियों में बड़ी रुचि थी। वह सदैव स्त्रियों को एकत्र करने में लगा रहता था। उसके अन्तःपुर में अनेक रूपवती कनीज़े थीं। अफीफ के अनुसार उसके पास रूम व चीन की कनीज़े थीं। खानेजहाँ राज्य-व्यवस्था के कार्य में व्यस्त होने के बावजूद भी अपना समय अन्तःपुर में व्यतीत करता था। उसकी स्त्रियों की संख्या अत्यधिक थी।[१८४]

अफगानों की अपनी सभ्यता थी। उनके रहने व व्यवहार करने का तरीका ही और था। रिजाकुल्लाह मुश्ताकी ने लिखा है कि बहलोल लोदी नित्य हामिदखान की सेवा में उपस्थित होता था व उसका अभिवादन करता था। उसने हामिदखाँ के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा और अफगान साथियों से मूर्खतापूर्ण व्यवहार करने को कहा ताकि हामिद खान उन्हें साधारण व्यक्ति समझने लगे। एक दिन हामिदखान ने उन्हें भोजन पर बुलाया। जब यह लोग उसके यहाँ पहुँचे तो उन्होंने अपने जूते ताक में रख दिये। इस पर हामिदखान ने कहा कि क्या बात है? अफगानों ने कहा कि 'हम जूतों की चोरों से रक्षा करते हैं।' इस पर हामिदखान ने उत्तर दिया कि निश्चित रहे। यहाँ से कोई जूते नहीं ले जावेगा। कुछ क्षण उपरान्त उन्होंने कहा कि खान तुम्हारे कालीन बड़े सुन्दर हैं। यदि तुम एक कालीन हमें दे दो तो हम अपने पुत्रों के लिए टोपियाँ बनवा कर उन्हें भेज देंगे। हामिदखान ने उससे कहा कि वह उन्हें इससे अच्छा इनाम देगा। उसके बाद सभी अफगान भोजन करने के लिए बैठ गये। भोजन करने के बाद उनके समक्ष सुगन्धित वस्तुएँ लाई गई। कुछ लोगों ने उन्हें मला और कुछ लोगों ने फूलों को खा लिया, कुछ पान के बीड़े को खोलकर चूना चाट गये और जब उनका मुँह जलने लगा तो उन्होंने पान फेंक दिये। जब हामिद खाँ ने बहलोल से पूछा कि यह कैसे लोग हैं तो उसने उत्तर दिया कि यह वहशी लोग हैं, खाने और मरने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते हैं और उन्होंने कभी ऐसे समारोह नहीं देखे हैं। यह सही है कि अफगानों ने इस तरह का व्यवहार बहलोल लोदी के

कहने पर ही किया, किन्तु इसी प्रकार के व्यवहार के कई उदाहरण अन्यत्र भी मिलते हैं। जिस दिन बहलोल गद्दी पर बैठा और मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए गया तो उस समय मुल्ला क़ादन प्रवचन दे रहे थे। बहलोल भी वहीं उपस्थित था। मुल्ला ने प्रवचन समाप्त करने के बाद कहा कि 'ईश्वर धन्य है, बड़ा विचित्र समय आ गया है, मेरी समझ में नहीं आता कि वे लोग बज्जात (एक कुरूप या काना व्यक्ति जो कयामत के पूर्व प्रकट होगा) के पूर्वगामी हैं या बाद के। इनकी भाषा ऐसी है कि ये लोग माता को मूर, भाई को रूर तथा ग्राम को शूर, सेना को तूर तथा जनेन्द्रिय को नूर कहते हैं।' वह यह बात कह ही रहा था कि बहलोल ने मुख पर रूमाल रखकर हँसते हुए कहा कि 'मुल्ला क़ादन बस करो, हम लोग भी मनुष्य हैं।'[१८५] अफगान गरीब थे। जब बहलोल लोदी गद्दी पर बैठा तो उस समय अफगानों में यह रीति प्रचलित थी कि किसी व्यक्ति को परलोक सिधारने के तीन दिन बाद दिवंगत व्यक्ति के परिवार के सदस्य मिथी, पान तथा शक्कर का वितरण करें। सुल्तान ने अफगानों की गरीबी देखते हुए यह प्रथा बन्द करवा दी और आदेश दिया कि ऐसे अवसर पर केवल फ़ूल व गुलाब जल ही बाँटा जाए।[१८६] बहलोल लोदी के अमीर जमालखान का एक और भाई था। दोनों के पास पहनने को एक ही जोड़ा कपड़ा था। जब उनमें से एक कपड़े पहन कर दीवान में चला जाता तो दूसरा चादर बाँध कर घर में बैठा रहता था। उसके पास एक ही घोड़ा था, वह भी एक भाई ने किसी को दान में दे दिया।[१८७] अफगान अमीर भी सादा जीवन व्यतीत करते थे। भीखन खान लोदी अपने पास कोई सेवक नहीं रखता था। एक रात वह कोठे पर बाहर सो रहा था। वर्षा आ गई, उस समय उसके विश्वस्त सेवकों में से कोई न था। वह व उसकी पत्नी दोनों वर्षा के कारण पलंग अन्दर ले गये। प्रातःकाल जब भीखन खान दरबार में उपस्थित हुआ तो सुल्तान सिकन्दर लोदी ने उससे कहा कि इतने बड़े-बड़े अमीर रात्रि में अपने पास कोई सेवक नहीं रखते हैं और स्वयं पलंग बाहर से भीतर ले जाते हैं।[१८८]

बहलोल लोदी के समय उसके एक अमीर अमर खान सरवानी के पास ५०० सवार, उसके भाई तथा पुत्रों के पास २०० सवार थे।[१८९] मलिक बद्रुद्दीन भीलन को सात लाख तन्के की जागीर मिली और उसे उस परगने से ८ लाख तन्के प्राप्त हुए, दूसरी फसल में उसे १२ लाख तन्के प्राप्त हुए।[१९०] कोल के मीरान सैय्यद फजल उल्लाह रसूलदार व उसके भाइयों को ५ लाख तन्के की आय की जागीर प्राप्त थी।[१९१] सुल्तान सिकन्दर लोदी के अमीर बहुत ही उदार व धनी थे। रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी ने मसनदे आली हुसेन खान खाने जहाँ लोदी के बारे में लिखा है कि जब वह किसी सिपाही को अपने अन्तर्गत नियुक्त करता था तो उसकी जीविका के साधन भी उसे प्रदान कर देता था और उसमें वह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करता था। जब वह किसी के लिए कुछ निश्चित कर देता था तो उसकी वृत्ति उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों को प्रदान कर दी जाती थी। यदि उसके पुत्र न होता तो भाई को

प्रदान कर दी जाती थी। यदि भाई न हो तो भतीजे, भगिनेय, जमाता या उसका कोई सम्बन्धी होता था, उसे प्रदान कर दी जाती। यदि उनमें से कोई न मिलता तो उसकी बिरादरी के किसी व्यक्ति को बुलाकर उसे प्रदान कर दी जाती थी। आलिमों व सूफियों में से जो कोई भी उसके पास आता उसे वह कोई ग्राम भूमि अथवा अदरात प्रदान कर देता था। वह अपने पड़ोसियों तथा आस-पास की मस्जिदों की देख-रेख किया करता था। उसने एक अवसर पर मियाँ कादन नामक विद्वान की सेवा की, उसे भोजन दिया, घोड़ा दिया और वृत्ति प्रदान की।[१८२] खानेजहाँ के पुत्र जैनुद्दीन को उसकी जागीर मिली तथा उसके भाई अहमद खान को कैथल के समीप उसकी माता के नाम एक टप्पा या ग्राम दिया गया। जैनुद्दीन को प्रतिवर्ष एक लाख तन्के घोड़े के क्रय हेतु तथा एक लाख तन्के वस्त्रों के क्रय के लिए और एक लाख तन्के पान तथा अन्य वस्तुओं के लिये मिलते थे। वह विद्वान तथा पवित्र व्यक्तियों के साथ भोजन किया करता था। उसकी रसोई सभी के लिए खुली रहती थी। सभी को तीन वार भोजन दिया जाता था। रमजान के महीने में अफ्तार का भोजन तथा सहर का खाना जिनमें शरींविरंज के प्याले होते थे सभी को दिये जाते थे। वह जो स्वयं खाता था वही अन्य लोगों को खिलाता था। प्रत्येक वर्ष वह अपने सम्बन्धियों में से समस्त स्त्रियों व पुरुषों को देहली से आगरा भेंट करने के लिए बुलवाया करता था। विदा के समय वह प्रत्येक व्यक्ति को आदेश देता था कि जो कुछ भी उसकी इच्छा हो वह कह दे। वही वस्तु उसे प्रदान कर देता था। जो कोई पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में कहता था तो वह उसे पूरा सामान वस्त्र, पलंग, सोने के समय के कपड़े और यदि वह दायरे के किसी व्यक्ति के घर से कोई अतिथि आ जाता था तो उसके भोजन हेतु उसकी रसोई से भोजन मँगवा लेता था और उसे वह अपना अतिथि समझता था। मुहम्मद साहब की मृत्यु के १२ दिनों के बीच वह नित्य-प्रति २ हज़ार तन्के का भोजन वितरण करता था। प्रथम व अन्तिम दिन ८-८ हज़ार तन्के के उत्तम भोजन तथा हलवे तैयार होते थे।[१८३] सुल्तान सिकन्दर लोदी के काल का दूसरा गणमान्य अमीर जबरूद्दीन था। वह बड़ा ही पवित्र जीवन व्यतीत करता था। वह ४ महीने आगरे में तथा ८ महीने दिल्ली में रहता था। जब वह दिल्ली में रहता तो सोमवार के दिन शम्सी हौज पर आलिमों, सूफियों, कवियों, विद्वानों, कव्वालों तथा वादकों के साथ समय व्यतीत करता था। उसकी रसोई में अत्यधिक भोजन पकता था। वह मालवा में शिकार खेलता था। उसका अन्तःपुर उसके शिविर के साथ ही रहता था। वह कहीं भी ठहरता था तो बिना अन्तःपुर के नहीं ठहरता था।[१८४] मियाँ भूवा की गोष्ठी में सर्वदा विद्वान व दार्शनिक ही भाग लेते थे। उसने प्रत्येक विषय पर पुस्तकें एकत्र कर ली थीं। उसने खुरासान, एराक़ तथा मुवारुन्नहर से विद्वानों को बुलाया और उन्हें प्रश्रय दिया। उसने तिब्बे सिकन्दरी की रचना उनसे करवाई। उसकी रसोई में अत्यधिक भोजन बनता था। उसमें प्रतिदिन १५०० पक्षियों का मांस पकाया जाता था।[१८५] मियाँ सुलेमान फर्मूली पान खाने का शौकीन था। जब वह स्वयं पान खाता था तो

सभी उपस्थित व्यक्तियों को पान खिलवाता था। उसके सेवक कई-कई सौ बीड़े पान लगवा कर लाते थे और उसके दरबार में जितने लोग उपस्थित होते थे उन्हें पान खिलाते थे। यदि वह १० बार स्वयं पान खाता तो १० बार ही उपस्थित लोगों को देता था। यदि वह कपूर खाता तो दोनों ओर से तीनों अँगुलियों से कपूर लेकर बाँटता था। उसके सेवक पाँच-पाँच सौ तोले की काफ़ूरदानी उसके दोनों ओर लेकर खड़े रहते थे। यदि वह कस्तूरी खाता तो भी वह इसी प्रकार बाँटता था। जब तक वह अन्य लोगों को न खिलाता तब तक वह स्वयं कोई वस्तु न खाता था। उसकी रसोई में अत्यधिक भोजन बनता था। उसके थाल इतने बड़े होते थे कि १० व्यक्तियों के लिये पर्याप्त होते थे। वह वर्षा ऋतु में दरिद्रों को कंबा व कम्बल प्रदान करता था। आशुरे के दिनों में वह विधवाओं को चादरें प्रदान करता था। मुहम्मद साहब की मृत्यु के दिनों तथा रजब मास में वह नक़द धन देता था।[१८६] जलाल खान लोदी, खानेखाना नोहानी तथा मियाँ भूवा का पुत्र दिलावर खान अपव्यय करने में व भोग-विलास में व्यस्त रहते थे। उनके अत्यधिक पत्नियाँ थीं और उसी के अनुसार उनका व्यय भी था। दिलावर खान के घर में प्रतिदिन बाजार से कई हज़ार तन्के का फूल आता था।[१८७] कन्नौज का मुक्ता मियाँ गदाई फारमूली बड़ा ही सम्मानित व्यक्ति था। वह सदैव विद्वानों के साथ रहता था और सदैव हलुआ बाँटता रहता था।[१८८] सैय्यद खान मुबारक खान यूसुफ खैल का पुत्र था, वह लखनौती का अक्तादार था। उसका यह नियम था कि जब कोई उसके पास आता था तो वह उसका अतिथि-सत्कार अवश्य करता था। जब वह भोजन के लिये बैठता था तो सभी के समक्ष भोजन लगाया जाता था। बड़ी-बड़ी चीनी की तश्तरियों में नाना प्रकार के व्यंजन, रोटियाँ व अचार, पान के बीड़े और बीड़े के ऊपर एक सोने की मोहर रक्खी जाती थी, उन्हें द्वार पर उपस्थित फकीरों में भेज दिया जाता था। फकीरों की शुभकामनाएँ प्राप्त करने के बाद ही वह भोजन करता था। जिस स्थान पर वह बैठता था उसके पास गठरी में तीन प्रकार के वस्त्र मलमल, जोवार व खासा रखे होते थे। वह उन्हें दरवेशों को भेंट में दिया करता था। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होता था जिसे कि दान में वह एक लाख तन्के न दे। उसने मियाँ एमाद फारमूली के पुत्र शैख अहमद, जो कि अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये घर जा रहा था, को अनेक मुहरें प्रदान की। उसकी दानशीलता की कोई सीमा न थी।[१८९] मसनद-ए-आली आजम हुमायूँ सरवानी कड़ा का मुक्ती था। प्रत्येक वर्ष वह २ हज़ार कुरान की प्रतियाँ क्रय करता था और उनमें से कुछ तो अध्ययन हेतु अन्तःपुर में रखता था और कुछ को हाफिज़ों को उन्हें ठीक करने के लिए दे देता था। जब मुहम्मद साहब की मृत्यु का मास अथवा रजब आता तो वह उन्हें विद्वानों को प्रदान कर देता था और अन्य प्रतियाँ क्रय कर लेता था। मुल्तान व उच्च से लोग कुरान प्राप्त करने की इच्छा से उसके पास आते थे। वह उन्हें कुरान देकर विदा कर देता था। दूसरे वर्ष फिर वह उतनी ही कुरान की प्रतियाँ खरीद लेता था। ईदुज्ज़हा के दिन वह ३००० गाय, दुम्बे तथा ऊँट की

कुरबानी करता था। उसके पास ४५००० सवार थे व उसकी गजशाला में ७०० हाथी थे। उसके पास २५०० मरातिबदार तथा कई बड़े-बड़े अमीर सेवा में रहते थे।[२००] अहमद खाँ जमाल खान सारंगखानी का पुत्र था। वह जौनपुर का हाकिम था। उसके पास २०,००० अश्वारोही थे। उसने प्रत्येक कार्य के लिए एक समय निर्धारित किया था। वह उस कार्य को उसी समय पर करता था। वह बहुत ही उदार व दानी था। उसने २५ हजार तन्के दान में दिये।[२०१] अहमद खाँ का ज्येष्ठ पुत्र आज़मलाद खाँ बहुत ही सदाचारी व दानी था। वह गणना में पूर्ण संख्या से अधिक कुछ नहीं जानता था। वह स्वयं ढाई या डेढ़ के विषय में कुछ नहीं समझता था। यदि उसकी चर्चा होती तो वह यह पूछता कि ढाई क्या होता है। यदि फारसी भाषा में उसे समझाया जाता तो वह समझ लेता था किन्तु यदि हिन्दी भाषा में समझाया जाए तो वह नहीं समझ पाता था। वह किसी को १ सेर या २ सेर सोने से कम दान न देता था। जहाँ कहीं से जो कोई भी उपहार आता था वह स्वयं नहीं देखता था और न उसे अपने खजाने में भिजवाता था। वस्तुओं की सूची उसे सुना दी जाती थी। यदि शतरंज खेलते समय कोई पेशकश उसकी सेवा में आती तो वह पेशकश के लाने वाले को ही वह वस्तु प्रदान कर दिया करता था। यदि वह शाहनामा या सिकन्दरनामा सुन रहा हो तो उस समय जो कुछ भी आता वह पढ़ने वाले को दे दिया करता था। यदि कोई वस्तु जल पीने के समय आती तो वह वस्तु जल पिलाने वाले को दे देता था। यदि चौगान खेलते समय, कोई वस्तु आती तो वह रिक़ाबदारों को मिल जाती थी। यदि वह चिकित्सकों, ज्योतिषियों, वादकों तथा कहानी कहने वालों में से किसी के साथ होता, जो भी वहाँ उपस्थित होता तो वह वस्तु उसी व्यक्ति को प्रदान करा दी जाती थी। उसके पास उत्तम वस्त्र किमाशवाण, गुजरात की वस्तुएँ जैसे कि कलमदान, जवाहरातों के सन्दूक, चौकी आदि आती थी। पटना के हिन्दू राजा ने एक बार उसे एक हाथी, दो गधों के बोझ के बराबर उत्तम वस्त्र बेल-बूटों से सजा एक खेमा भेजा जो बंगाल में तैयार हुआ था। जो कुछ भी उसे मिलता था वह दान में दे दिया करता था। उसका यह नियम था कि वह प्रत्येक व्यक्ति को एक या २ तन्के उसकी आवश्यकतानुसार प्रदान करता था। शीत ऋतु में वह सेवकों व अतिथियों को क़बा प्रदान करता था। वह किसी को एक क़द (कपड़े की एक किस्म) नहीं प्रदान करता था। कम से कम दो या चार हर व्यक्ति को क़द देता था। वह किसी को क़द व किसी को कबाएँ (ढीला वस्त्र जो अन्य वस्त्रों के ऊपर पहना जाता था) प्रदान करता था। प्रत्येक दिन वह दो कबाएँ पहनता था और उन्हें दान कर देता था। दो दिन बाद वह लबादा पहनता था। शीत ऋतु में वह सोने के समय के वस्त्र रंगीन क़द के वस्त्र तैयार करवाता था और उनमें उत्तम प्रकार के मलमल के अस्तर लगवाता था। ८वें दिन वह उन्हें दान कर देता था। उसके लिए रात-दिन रेशमी वस्त्र सिले जाते थे। उसके घर में कोई धोबी नहीं आता था। जो वस्त्र पुराना या फट जाता था उसे दान कर दिया जाता था। उसने अपने अन्तःपुर के लिये मंदल

बनवा दिया था। रात्रि में वह उसी मंदल में रहता था और छज्जे पर बैठकर चारों ओर दृष्टिपात किया करता था। मंदल की छत पर जाने का कोई मार्ग न था। बाहर से भीतर जल भेजा जाता था। उसके अन्दर फुव्वारे बनवा दिये गये थे। भीतर एक हौज़ था जिसमें बाहर से ही जल डाला जाता था जो कि उस हौज में एकत्र हो जाता था। एक ही द्वार से लोग अन्दर जाते थे तथा द्वार पर हाजिब बैठा रहता था। भीतर की चौखट पर एक पर्दादार खड़ा रहता था। भीतर की ओर एक ख्वाजा सरा रहता था। भीतर की दीवार के पीछे एक वृद्धा रहती थी। यदि कोई कार्य होता तो हाजिब पर्दादार से कहता, पर्दादार ख्वाजासरा से और वह दीवार के पीछे वृद्धा से कहता था। वृद्धा स्त्री महिला हाजिब से कहती थी जो कि वह खान तक पहुँचाता था। महल के भीतर दान के लिये एक सप्ताह निश्चित था। जिन लोगों को दान प्राप्त होता था वे एकत्र हो जाते थे और उन्हें दान मिल जाता था। अन्तःपुर की रसोई के लिए लकड़ी दीवार के ऊपर से फेंकी जाती थी और वहाँ वह ले ली जाती थी। रसोई की अन्य वस्तुएँ पर्दादार को दे दी जाती थीं। वह उन वस्तुओं को ख्वाजासरा को दे दिया करता था। ख्वाजासरा पर्दादार को और पर्दादार फर्राशों को दे वस्तुएँ सौंप दिया करता था। हरम की स्त्रियाँ असवों (गाड़ी) में यात्रा करती थीं। उनमें सन्दूक रहते थे। प्रत्येक में एक स्त्री रहती थी। सन्दूक में ताला लगा दिया जाता था। प्रत्येक सन्दूक के साथ एक डोला रहता था जिसमें स्त्री की गठरी तथा अन्य सामान होता था। डोले पर दो खोल चढ़े रहते थे। मार्ग में कई स्थानों पर शिविर लगाये जाते थे। प्रत्येक स्थान के लिये ऊँट या फर्राश निश्चित थे।[२८२] अवध का मुक्ता मियाँ मुहम्मद फ़ारमूली जिसे काला पहाड़ भी कहते थे, शिकार खेलने का शौकीन था। वह साल भर में ३ मास तक शिकार खेलता था।[२८३] मियाँ हुसैन फार्मूली चम्पारन का मुक्ता था। वह बड़ा ही दानी व वीर था। उसके पास अत्यधिक सम्पत्ति थी। उसके पास २०,००० ग्राम थे।[२८४] मियाँ तादा बड़ा ही बुद्धिमान व्यक्ति था। वह कला-कौशल में निपुण था। कोई कला ऐसी न थी जिसका उसे ज्ञान न था। वह संगीत में निपुण था और इस कला में उसके समान निपुण कोई न था। चिकित्सा के ज्ञान में भी बड़े-बड़े लोग उसका लोहा मानते थे। बड़े-बड़े ब्राह्मण तथा संगीतज्ञ उससे शिक्षा प्राप्त करते थे। वह सोना तथा चाँदी रसायनिक क्रिया द्वारा बनाना जानता था।[२८५]

अमीर भीखन खाँ बड़ा दानी था। उसका मनसब सात हज़ारी था। उसकी यह प्रथा थी कि जब वह भोजन के लिये बैठता था तो चीनी के एक बड़े थाल में नाना प्रकार के भोजन लगाकर दो-तीन तन्दूरी रोटी, एक अशर्फी तथा पान का एक बीड़ा रखकर वह सर्वप्रथम भिखारियों को भिजवाता था। तदुपरान्त वह स्वयं भोजन किया करता था। एक दिन उसने अपने मुसाहिब अहमद खाँ को बहुत ही दुःखी देखा। भीखन खाँ ने उससे इसका कारण पूछा। उसने निवेदन किया कि उसके घर से आदमी ने आकर सूचना दी है कि उसकी पुत्री का विवाह है और उसे ही उसकी

व्यवस्था करनी है। भीखन खान ने उससे पूछा कि कितने सामान की आवश्यकता होगी ? उसने उत्तर दिया ३०,००० तन्कों की। भीखन खान ने अपने सेवक से अपना सन्दूक मँगवाया और उसमें से तीन मुट्ठी अशर्फी निकाल कर उसके पल्ले में डाल दी। अहमद खाँ वहाँ से चल दिया। उसके पीछे-पीछे भीखन खाँ का सेवक पहुँचा और उसने उससे कहा कि वह दीवान के मुंशियों के पास जाकर हिसाब करा दे कि कितना धन उसे मिला है। जब हिसाब किया गया तो ८०,००० तन्के निकले, तदुपरान्त भीखन ने अहमद खाँ को बुलाया और एक मुट्ठी अशर्फी उसके पल्लू में डाल दी ताकि एक लाख तन्के पूरे हो जाँय। दरबार में आते हुए भीखन खाँ २ हजार तन्के फकीरों को नित दिन दान में दिया करता था। उसने अपने जीवन-काल में ४० मस्जिदों का निर्माण करवाया और उनमें कुरान पढ़ने वाले इमाम नियुक्त किये।[२०६]

इब्राहीम लोदी का अमीर तातार खाँ बड़ा दानी था।[२०७] हैबत खाँ गुर्ग अन्दाज़ अपना समय जश्न में व्यतीत करता था। वह सभाओं में दान दिया करता था। एक दिन मोमिन नामक कवि ने उनकी प्रशंसा में एक किता की रचना की और कव्वालों को दे दी कि वे उसकी सभा में उसके समक्ष पढ़े। कव्वालों ने जश्न में उसे पढ़ा। उसने वह कालीन जिस पर वह बैठा हुआ था उस कवि को दे दिया और ७,००० तन्के कव्वालों को इनाम में प्रदान कर दिये।[२०८]

अमीरों के जीवन में उतार-चढ़ाव

मुहम्मद ग़ौरी के वध के पश्चात् उसके मलिक व अमीर ताजुद्दीन यल्दौज, कुबाचा व ऐबक के मध्य बँट गये। अन्य अमीरों ने गजनी के शासक गयासुद्दीन गौरी के प्रति निष्ठा प्रकट की। भारतवर्ष में नवस्थापित तुर्की साम्राज्य में राजनीतिक उथल-पुथल के साथ अमीरों का भाग्योदय व पतन हुआ। ऐबक की मृत्योपरान्त तुर्की अमीर आराम शाह का पतन सुल्तान इल्तुतमिश के द्वारा हुआ।[२०९] इसी प्रकार से सुल्तान इल्तुतमिश ने कुबाचा व यल्दौज के विरुद्ध चढ़ाई करके उनका अन्त किया।[२१०] इसी काल में अनेक अमीरों का अन्त पारस्परिक वैमनस्य के कारण हुआ।[२११] मिनहज ने लिखा है कि शम्सी काल में कुछ दुष्ट लोगों के भड़काने के कारण सुल्तान अलाउद्दीन मसूद को अमीरों को मरवा डालने की आदत पड़ गई थी।[२१२] इस प्रकार से राजनीतिक षडयन्त्रों व कुचक्रों के कारण अनेक अमीरों का पतन बराबर होता रहा। कभी-कभी विद्रोह करने के कारण भी अमीरों का पतन होता था। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में बलबन ने अपने प्रतिद्वन्दी अमीरों का दमन किया।[२१३] अपने शासनकाल मे उसने अनेक तुर्की अमीरों को मौत के घाट उतार कर उनके परिवारों को नष्ट कर दिया।[२१४]

अलाई राज्यकाल में भी अमीरों के जीवन में बराबर उतार-चढ़ाव होता रहा। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी ने गद्दी पर बैठने के बाद दिल्ली के स्थान पर किलोखड़ी को ही अपनी राजधानी बनाया। उसने अपने मलिकों, अमीरों, सहायकों

व सम्बन्धियों, जो कि उमरावर्ग में आते थे, को आदेश दिया कि वे किलोखड़ी में ही निवास करें और वहाँ अपने लिये हवेलियाँ बनवा लें। बरनी ने लिखा है कि अनेक अमीर जो कि योग्य व अनुभवी थे, जिन्होंने कि "शीतोष्ण का असार-वादन व राज्यों के उलट-फेर व आकाश के परिवर्तन को देखा था, वे बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किये गये। जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी ने उन्हें उच्च पद व बड़ी-बड़ी अक्ताएँ प्रदान की।[२१५] परिणामस्वरूप उसके अमीर अपने घरों पर महफिलों का आयोजन करने लगे और मदिरापान करने लगे। जलाली युग में उनकी स्थिति उत्तम रही। वे शान-शौकत से अपना जीवन व्यतीत करते रहे। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के वध के उपरान्त अलाउद्दीन ने अनेक मलिकों को कड़ा-मानिकपुर में तीस-तीस और चालीस-चालीस मन सोना देकर अपनी ओर मिला लिया।[२१६] जब मलिक ताजुद्दीन कूची, मलिक अमाजी आखुरबक, मलिक अमीर अली दीवान, मलिक उस्मान अमीर आखूर, मलिक अमीर कलां, मलिक उमर सुर्खा, मलिक हिरनमार को, उसके विरुद्ध भेजा गया तो वे बरन में आकर उससे मिल गये। अलाउद्दीन ने उन्हें बीस-बीस मन सोना व तीस-तीस मन चाँदी प्रदान किया।[२१७] दिल्ली में प्रवेश करने के बाद उसने फिर धन लुटाया। अमीर भोग-विलास, मदिरापान, ऐश-आराम में लग गये। उनके घरों में महफिलें होने लगीं। उसने अमीरों को उच्च पद व अक्ताएँ प्रदान कीं। किन्तु राज्य के प्रथम वर्ष में उसने जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के पुत्रों उलुग खाँ तथा जफ़र खाँ, उसके दामाद उलगू तथा अहमद चप की आँखों में सलाई फिरवा दी। उसने उनकी सम्पत्ति, दास-दासियाँ सभी कुछ छीन लिया। उसने अरकली खाँ के पुत्रों की हत्या करवा दी। उसके बाद उसने अला-उल-मुल्क तथा अन्य मलिकों व अमीरों को कड़े से बुलवाया और उसे दिल्ली का कोतवाल नियुक्त किया गया। तदुपरान्त उसने अनेक जलाली अमीरों को कंगाल बना दिया। बरनी ने लिखा है कि अलाउद्दीन ने अनेक जलाली अमीरों को कैद कर लिया, कुछ की आँखों में सलाई फिरवा दी व उन्हें अन्धा बना दिया तथा अन्य की हत्या करा दी। जो उसने उन्हें धन दिया था वह सब उनसे वसूल कर लिया। उसने अनेक ग्राम खालसा में मिला लिये, उनके घर-बार तहस-नहस कर दिये। केवल मलिक कुतुबुद्दीन अलवी नासिरुद्दीन व कदर खाँ के पिता अमीर जमाली को छोड़कर सभी जलाली अमीर समूल नष्ट कर दिए गए। नुसरत खाँ ने पूछताछ करके जलाली अमीरों की सम्पत्ति का अपहरण करके एक करोड़ तन्का की धनराशि राजकोष में जमा की।[२१८] अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में एक दूसरे ढंग से भी पुराने अमीरों का विनाश हुआ। कुछ तो युद्ध में मारे गये या उन्होंने विद्रोह करके अपनी मौत बुला ली। प्रसिद्ध अमीर जाफर खाँ मंगोल नेता कुतुलुग ख्वाजा से युद्ध करता हुआ मारा गया।[२१९] नुसरत खाँ की मृत्यु रणथम्भौर पर आक्रमण करते समय हुई।[२२०] अकत खाँ ने तिलपट में विद्रोह किया व मारा गया।[२२१] अलाउद्दीन के भांजों मलिक उमर तथा मंगू खान ने बदायूँ व अवध में विद्रोह किया व मारे गये।[२२२] सोदी मौला के विद्रोह के कारण बलबन के

समय के कोतवाल मलिक उल-उमरा फखरुद्दीन के पुत्रों व पौत्रों को मौत के घाट उतरवा दिया गया व उसके घर-बार का कोई चिन्ह न रहा।[२२३] इन विद्रोहों को देखते हुए सुल्तान अलाउद्दीन ने मलिक हुसामुद्दीन तथा ऐन-उल-मुल्क मुल्तानी के परामर्श पर मदिरापान की गोष्ठियाँ बन्द कर दीं। मलिकों व अमीरों के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उन्हें दी गई मिल्क, इनाम या वक्फ में दी गई भूमि छीन ली और उसे **खालसा** में मिला लिया तथा उनके पास धन, सम्पत्ति नहीं रहने दी। परिणामस्वरूप अमीरों का बड़ा भारी समुदाय कंगाल हो गया। अधिकांश अमीर कष्ट का जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय बाद १३११ ई० में जब मलिक काफूर दक्षिण से ८६ हज़ार मन सोना, मोती, जवाहरात के बहुत से सन्दूक लेकर दिल्ली पहुँचा तो सुल्तान अलाउद्दीन ने दो-दो, चार-चार, एक-एक और आधा-आधा मन सोना मलिकों व अमीरों को प्रदान किया।[२२४] अमीरों के 'पुराने दिन पुनः वापस लौट आए और वे वहीं शान-शौकत से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में पुराने अमीरों का पतन हुआ। शरफ कानीनी की हत्या हुई तथा ख्वाजा अली दबीर के पुत्र मलिक हमीदुद्दीन तथा मलिक अइज्जुद्दीन को उनके पदों से वंचित कर दिया गया। मलिक नायब काफूर ने अलप खाँ को मरवा डाला। मलिक कमालुद्दीन गुर्ग का भी यही हाल हुआ। सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु के ३५ दिनों उपरान्त मलिक नायब का वध हुआ। सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक के गद्दी पर बैठते ही बरवारियों का उत्थान हुआ।

खुसरो खाँ के शासनकाल में अलाई व कुतुबी अमीरों की बड़ी दुर्गति हुई थी। किन्तु ग्यासुद्दीन तुगलक के गद्दी पर बैठते ही उन्हें पद, वेतन, अक्ताएँ, इनाम इत्यादि प्राप्त हो गये। उसने अमीरों का पुनः मान-सम्मान किया।[२२५] मुहम्मद तुगलक के समय अमीरों के जीवन में अत्यधिक उतार-चढ़ाव आया। प्रारंभ में विदेशी अमीरों, मलिक संजर बदख्शानी, मलिक उल मुल्क एमादुद्दीन कासना, नासिर ख्वाफी इत्यादि का बड़ा मान-सम्मान हुआ। खुरासान, एराक, मुवारुन्नहर, ख्वारिज्म, सीस्तान व हेरात, मिस्र व दमिश्क से जो भी उसकी सेवा में आता था उसे वह मालामाल कर देता था। बरनी के अनुसार वह उन्हें लाखों और करोड़ों की धन-सम्पत्ति, जड़ाऊ व बहुमूल्य जीने, मोती, जवाहरात, सोने व चाँदी के बर्तन, सोने व चाँदी के तन्के से भरे हुए थाल, मनो मोती, सोने के काम के वस्त्र, सुनहरे कपड़ों की पेटियाँ तथा सजे हुए घोड़े प्रदान करता था।[२२६] उन्हें वह अक्ताएँ व खिलअतें देता था। किन्तु शासनकाल के द्वितीय चरण में उसने निम्न जाति के व्यक्तियों, अजीज़ खम्मार, उसके भाई फिरोज़ हज्जाम, मनका तब्बारव (बावर्ची), मसऊद खम्मार, लद्धामाली इत्यादि को उच्च पद एवं अक्ताएँ प्रदान कर पुराने व उच्च वंश के अमीरों को दरिद्र बना दिया।[२२७] सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण अनेक अमीरों के परिवार नष्ट हो गये। सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के अमीरों के प्रति उदार दृष्टि-

कोण के कारण अमीरों के जीवन में उतार-चढ़ाव की गति सामान्य हो गई। उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में दासों का उत्कर्ष हुआ और वे अमीर बन गये। सैय्यद काल में एक बार पुनः अमीरों के जीवन में उच्छृङ्खलता उत्पन्न हुई और तुर्की या ताज़िक अमीरों का स्थान हिन्दुस्तानी व अफ़ग़ान अमीरों ने ले लिया। इस प्रकार से सल्तनत के लगभग ३०० वर्षों से अधिक इतिहास में अमीरों व उनके परिवारों के जीवन में राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों के कारण बराबर उतार-चढ़ाव होता रहा। इस वर्ग में पूर्वतः निरंतर गतिशीलता बनी रही। अनेक अमीरों ने अपना जीवन दास से प्रारंभ किया और वे तथा उनके परिवार के सदस्य उच्च पदों पर पहुँचे, किन्तु एक या दो पीढ़ी के बाद उनके परिवारों का कोई भी चिह्न शेष न रहा, जिसके कारण उमरावर्ग में निरंतरता व गतिशीलता तो बनी रही, परन्तु उसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होते रहे।

५

मुसलमान समाज (उलमा एवं सूफी सन्त)

अहल-ए-कलम

मुस्लिम समाज के अभिजात वर्ग के दूसरे वर्ग में विद्वान, कवि, साहित्यकार धार्मिक व्यक्ति आदि थे। मुस्लिम समाज में वे उलमा व सादात के नाम से विख्यात थे। मुसलमान समाज में वे अहल-ए-कलम भी कहलाते थे। वे कलम के धनी थे। उनका एक व्यापक वर्ग था जो कि बहुत प्रभावशाली ही नहीं, विशेषाधिकारयुक्त वर्ग था। इस वर्ग के सदस्यों ने न केवल समाज तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में ही अपनी भूमिका निभायी वरन् यदा-कदा वे राजनीति को भी प्रभावित करते रहे।

अहल-ए-साआदात

मुसलमान समाज का विशाल जनसमुदाय बाहर से देखने में एक था किन्तु अन्दर से वह पूर्णतः विभाजित था। उसमें सबसे प्रथम श्रेणी में सादात की गिनती होती थी जो कि मुहम्मद साहब की पुत्री फातिमा के वंशज थे तथा जिन्हें मुसलमान समाज बहुत ही आदर की दृष्टि से देखता था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व और उसके बाद अनेक सैय्यद मुसलमान देशों से भारत आए और यहाँ आकर बस गये। यह कहना बहुत ही कठिन है कि सैय्यदों व ग़ैर सैय्यदों की संख्या कितनी थी, किन्तु निःसन्देह वे देश के विभिन्न भागों में फैले हुए थे।[1]

इस्लाम में मुहम्मद साहब के परिवार के विरुद्ध शत्रुता ग़ैर-कानूनी थी और सादात को बुरा-भला कहना वर्जित था। इल्तुतमिश ने अपने पुत्र को आदेश दिये थे कि मुहम्मद साहब के वंशजों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करना एक नियम व इस्लाम का आधार समझे। अपने राज्यकाल के प्रारम्भ में उसने सैय्यदों को हज़ारों व लाखों तन्के इनाम में दिये।[2] बलबनी वंश का इतिहास लिखते समय बरनी ने कुछ सैय्यदों का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि बलबन के समय यदि नगर में कोई सैय्यद परलोक सिधार जाता था तो बलबन उसके जनाज़े के निकलने के समय उपस्थित रहता था। वह जनाज़े की नमाज़ पढ़ता और उसके तीज़े में सम्मिलित होता था। वह उसके भाइयों तथा पुत्रों को वस्त्र प्रदान करता था और उन्हें आश्रय दिया करता था। वह उन्हें गाँव व वजीफे भी दिया करता था।[3] अलाई काल के सैय्यदों का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि उस समय बड़े-बड़े सैय्यद विद्यमान थे। सभी लोग उनके वंश

को उत्कृष्ट समझते थे और उनके चरित्र से प्रभावित थे। उन सैय्यदों में से सैय्यद ताजुद्दीन व सैय्यद रुकुनुद्दीन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सैय्यद ताजुद्दीन के पिता सैय्यद कुतुबुद्दीन तथा उनके दादा सैय्यद अइज्जुद्दीन वदायूँ के काज़ी रह चुके थे और वर्षों तक अवध की कज़ा का कार्य उनके हाथों में रहा। अलाउद्दीन खिल्जी ने सैय्यद ताजुद्दीन को अवध से हटाकर वदायूँ का काज़ी बना दिया। सैय्यद ताजुद्दीन का भतीजा सैय्यद रुकुनुद्दीन कड़े का काज़ी था। वे करामात या चमत्कार भी दिखाते थे और सभा भी करते थे। वरनी दोनों सैय्यदों से मिला और उसने उनके पैर भी छुए। वह उनसे बहुत ही प्रभावित था। वरनी ने कैथल के सैय्यदों का विवरण देते हुए लिखा है कि सैय्यद मुग़ीसउद्दीन और उसके बड़े भाई सैय्यद मुजीउद्दीन काली पगड़ी वाले थे और वे ज्ञान, धर्मनिष्ठता, भगवान की भक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। इसी वंश का सैय्यद जलालुद्दीन कैथली भी बहुत प्रसिद्ध था। वरनी का पिता उसकी पुत्री का नाती था। इस काल में लुहता के सैय्यद भी प्रसिद्ध थे। दिल्ली के सभी विद्वान उन पर गर्व किया करते थे। अलाई राज्य-काल के प्रारम्भ में गरदेज़ के सैय्यदों में सैय्यद छज्जू तथा सैय्यद अजली के पूर्वज बहुत ही प्रसिद्ध थे। सैय्यद मजीउद्दीन चुनारी, सैय्यद अलाउद्दीन ज्यूरी, सैय्यद अलाउद्दीन पानीपती, सैय्यद हसन व सैय्यद मुवारक अपने समय के बड़े-बड़े विद्वान थे और लोगों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। उनके अतिरिक्त मलिक मुइनुद्दीन, मलिक ताजुउद्दीन जाफर, मलिक जलालुद्दीन, मलिक जमाल तथा सैय्यद अली भी अपनी पवित्रता व विद्वता के लिए प्रसिद्ध थे। वदायूँ व व्याना के सैय्यद अपने वंश के लिए प्रसिद्ध थे। अलाई राज्यकाल में इन सैय्यदों में कज़ा विभाग (न्याय विभाग) में तीन सैय्यद उच्च पदाधिकारी नियुक्त हुए—दाउद मलिक का पिता काज़ी सद्रद्दीन आरिफ जो कि मिनहाज़ की पुत्री का नाती था तथा वर्षों तक उपकाज़ी के पद पर रहा और उसके वाद सद्रजहाँ नियुक्त हो गया। दूसरा सैय्यद काज़ी जलालुद्दीन वल्वलजी था जिसकी नियुक्ति नायव काज़ी के पद पर हुई और तीसरा सैय्यद मौलाना जियाउद्दीन व्याना था। इस प्रकार से समस्त अलाई काल में उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था।[3]

मुहम्मद तुग़लक ने गद्दी पर वैठने के वाद सैय्यदों का मान-सम्मान किया। उसने सैय्यद अजदुद्दौला को ४० लाख तन्के उपहार में दिये। इब्नवतूता सैय्यदों को शुराफा कहता है और उसने लिखा है कि भारतवर्ष में अरव वासियों को सैय्यद कह कर सम्वोधित किया जाता था।[4] आरम्भ से ही सैय्यदों के प्रति निष्ठा प्रकट करने की भावना यहाँ के लोगों में प्रवल थी। जव विहार के महान् सन्त हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी के पास एक सैय्यद १० मुहर्रम को पहुँचा तो उसने कहा कि उसका यह परम कर्तव्य है कि वह उस सैय्यद के घर पर जाकर उसके पूर्वज ईमाम हुसैन के वलिदान के सम्वन्ध में शोक प्रकट करें।[5] तैमूर भी सैय्यदों का आदर करता था। भटनेर की घेरावन्दी के समय वहाँ के राय दल चैन ने एक सैय्यद को तैमूर के पास भेजा कि वह घेरा उठा ले और युद्ध वन्द कर दे। तैमूर ने उस वूढ़े सैय्यद के प्रति कृतघ्नता

प्रकट की और अपने सैनिकों को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया।[७] जाटों का दमन करने के उपरान्त अनेक सैय्यद तैमूर के सन्मुख उपस्थित हुए। तैमूर ने उनका स्वागत किया और उन्हें शरण दी। उसने उन्हें बहुमूल्य खिलअतें प्रदान कीं और उनके साथ अपना निजी अधिकारी इस आशय से भेजा कि वह तैमूरी सैनिकों से उनकी रक्षा करे। तैमूर ने उन्हें क़रा धन से भी मुक्त कर दिया। उसने जब दिल्ली में नरसंहार के लिए आदेश दिये तो सैय्यदों का विशेष ध्यान रक्खा। उसने आदेश दिये कि उनको छोड़ दिया जाए और उनकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा जाए।

शासक वर्ग तो सैय्यदों का आदर करता ही था और उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखता था, किन्तु साथ ही साथ सूफी सन्तों की आस्था भी उनके प्रति कम न थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में मनिकपुर के महान् सूफी सन्त हज़रत हिसामुद्दीन ने अपने शिष्य सैय्यद हमीद राजा को कभी भी आज्ञा न दी कि वह उसकी सेवा करे क्योंकि वह एक सैय्यद था।[८] रिज़्क़ुल्लाह मुश्ताक़ी के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी के राज्यकाल में किसी सैय्यद ने भू-राजस्व गबन कर लिया था। जब यह मामला सुल्तान के सम्मुख आया तो उसने न केवल उसे माफ कर दिया वरन् वह धन उसी के पास रहने दिया।[९] किन्तु बहुत ही कम ऐसे सैय्यद थे, जो कि बेईमान, झूठे, फरेबी हों। उनमें से शत-प्रतिशत, पवित्र, निष्ठावान, ईश्वर के प्रति भय रखने वाले, विनम्र, सौम्य और सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने वाले थे। सैय्यदों ने या तो शिक्षा का कार्य ग्रहण किया या उन्होंने न्याय-विभाग में कार्य करना अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल समझा। उनकी आर्थिक दशा कई बातों पर निर्भर करती थी। जब कभी सुल्तान की कृपा-दृष्टि उन पर पड़ी तो उन्हें सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला, अन्यथा वे आर्थिक कठिनाइयों के कारण साधारण जीवन व्यतीत करते रहे। अफीफ ने उनकी दशा का विवरण देते हुए लिखा है कि सैय्यद अपनी पुत्रियों का विवाह अल्पावस्था में ही कर दिया करते थे। क्योंकि उनके पास धन की कमी नहीं रहती थी, जिनके पास धन न होता था उन्हें उनकी पुत्रियों के विवाह के लिए राजकोष से धन मिलता था। निःसन्देह इस समय उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होने का मुख्य कारण यह था कि सुल्तान ने उन्हें वृत्तियाँ, धन, गाँव, वज़ीफे आदि प्रदान कर दिये थे।[१०]

उल्मा

मुस्लिम समाज में उल्माओं का भी श्रेष्ठ स्थान था। अब्दुर रशीद के अनुसार यह इसलिए नहीं था कि इस काल के हमारे प्रमुख इतिहासकार धार्मिक व्यक्ति थे वरन् इसीलिए कि इस काल में यह वर्ग तत्कालीन समाज को नियन्त्रित करने व उसके विचारों को परिवर्तित करने की महान् शक्ति रखता था।[११] वास्तव में अपने धार्मिक ज्ञान के कारण, हदीसों में उन्हें मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी की संज्ञा दिये जाने के कारण और कभी-कभी इजराइलियों के पैगम्बरों से उनकी तुलना की जाने के कारण उन्हें मुस्लिम समाज में श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था।[१२] फख़्रुमुद्दबिर

ने तारीखे-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाह में उनके सम्बन्ध में लिखा है कि सभी लोगों को यह ज्ञात है कि ईसा के यह शिष्य एवं पैगम्बरों के उपरान्त सत्य वोलने वाले व्यक्तियों (सिद्दीकीन) शहीदों (शाहीदान) विद्वानों (अलीमान) का नाम आता है। विद्वानों की गणना सिद्दीकियों की श्रेणी में होती है और वे शहीदों से ऊपर होते हैं। मुहम्मद साहव ने कहा है कि "उल्मा पैगम्वरों के उत्तराधिकारी हैं।" उन्होंने यह भी कहा कि "पुनर्जीवन के दिन उल्मा द्वारा प्रयोग की गई स्याही शाहीदानों के रक्त से तौली जावेगी और विद्वानों की स्याही का पलड़ा भारी होगा⋯यह विश्व विद्वानों की दयालुता पर निर्भर रहता है⋯ शरीयत के नियम⋯उनके द्वारा लागू किये जाते हैं⋯ ईश्वर का धर्म उन्हीं के कारण मजवूती से खड़ा रहता है⋯।" पैगम्वर साहव ने कहा है कि शैतान के लिए एक ही फकीह हजारों पवित्र व्यक्तियों से कहीं अधिक भयावह है। उन्होंने यह भी कहा कि—"यदि कोई भी शैतान न होता, आदम के पुत्रों को हानि न पहुँचती, यदि कोई भी पवित्र व्यक्ति न होते तो दुष्ट व्यक्ति नष्ट कर दिये गये होते; यदि कोई उल्मा न होते निःसन्देह लोग जानवरों की तरह भटकते होते।" मुहम्मद साहव ने कहा कि "उत्कृष्ठ शासक व अमीर वही है जो कि उल्मा के घरों पर जाते हैं और सबसे बुरे उल्मा वे हैं जो शासकों व अमीरों के द्वार पर जाते हैं।" उल्मा प्रतिष्ठा और स्तर में अन्य व्यक्तियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं⋯ उनके वाद उसके शासकों की गिनती होती है।[१३] मुहम्मद साहव ने अपनी हदीस में यह कहा कि "उल्मा का सम्मान करो क्योंकि वे पैगम्वर के उत्तराधिकारी हैं। जो उनका सम्मान करता है, इस्लाम के पैगम्वर तथा अल्लाह का सम्मान करता है।" वास्तव में मध्यकाल में लोग उल्माओं से यह आशा करते थे कि उनका चरित्र बहुत ही उत्तम होगा, वे पवित्र व धर्मनिष्ठ होंगे और उनका आचरण सर्वोत्तम होगा, वे सुन्नाह व शरीयत के नियमों का अक्षरशः पालन करेंगे और सांसारिक माया-मोह व लोलुपता से पूर्णतः मुक्त होंगे। इस काल में सर्वसाधारण की अपेक्षा उनकी असफलताओं व उनके दुर्गुणों की अत्यन्त भर्त्सना होती थी क्योंकि उनको यह धारणा थी कि जब किसी अनपढ़ व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके पास भी उसके पाप समाप्त हो जाते थे। किन्तु यदि कोई विद्वान् परलोक सिधार जाता है तो उसके वाद भी उसके पाप जीवित रहते हैं। साधारणतः लोग यह आशा करते थे कि उल्मा इल्म-ए-फरंज (उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून) में दक्ष होंगे क्योंकि उसी के द्वारा वे मुसलमानों के जीवन को शरीयत के कानूनों के अनुसार ढालने में सफल हो सकेंगे। जो उल्मा धन कमाने की धुन में रहते थे उन्हें बहुत ही बुरा समझा जाता था। ज्ञान उपार्जित करना उत्तम था किन्तु जब इसका प्रयोग धन अर्जित करने के लिए किया जाता था और विद्वान् दर-दर पर उसके लिए जाते थे तो उसके प्रति श्रद्धा समाप्त हो जाती थी। उल्माओं द्वारा राजनीति में हस्तक्षेप करने को भी बुरा समझा जाता था। वे राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए असफल थे। क्योंकि वे समय की आवश्यकताओं से बिलकुल अनभिज्ञ थे।[१४]

उलमाओं की दो श्रेणियाँ हुआ करती थीं—**उलमा-ए-आखिरत** व **उलमा-ए-दुनियाँ**। इस प्रकार का भेद का मुख्य आधार सांसारिक मामलों के प्रति उनके विविध-दृष्टिकोण एवं रहन-सहन का उच्च स्तर था। **उलमा-ए-आखिरत** सांसारिक माया-मोह से दूर रहते थे। वे अपने को राजनीति से पृथक् रखते थे व अपना समय चिन्तन, मनन, अध्ययन एवं शिक्षा में लगाया करते थे। वे शासकों व उनकी सम्पत्ति से दूर रहते थे और कभी भी धन बटोरने की न सोचते थे। उनका मुख्य उद्देश्य ज्ञान का प्रसार करना और समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना था। उनका सभी लोग आदर करते थे। उनके बिलकुल विपरीत **उलमा-ए-दुनियाँ** थे, जिनका दृष्टिकोण पूर्णतः सांसारिक था। उन्हें संसार से मोह था। वे इस संसार में धन व प्रतिष्ठा के दीवाने थे और यदि आवश्यकता पड़े तो वे अपनी आत्मा को भी बेचने के लिए तत्पर रहते थे। वे स्वतन्त्रतापूर्वक शासकों व उमरावर्ग के मध्य विचरण करते थे और उनके अच्छे व बुरे कार्यों के लिए उन्हें नैतिक बल प्रदान किया करते थे। इस काल में **उलमा-दुनियाँ** को मुसलमान अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे क्योंकि वे उन्हें मुस्लिम समाज की सभी बुराइयों एवं उसके दुर्भाग्य के लिए उत्तरदायी ठहराते थे। यदि शासक रमज़ान का रोज़ा न रक्खे तो भी उसे बुरा नहीं कहते थे। शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी के अनुसार उनकी यह महान् इच्छा होती थी कि वे **मुतवली** या अध्यापक या काज़ी या **सद्र-ए-जहाँ** बनें। वास्तव में वे ही **सद्र-ए-जहाँ**, **शेख-उल-इस्लाम**, काज़ी व **मुफ्ती** के पदों पर नियुक्त किये जाते थे। वे सांसारिक लाभ उठाने के लिए ज्ञान प्राप्त करते थे।

उलमा-ए-आखिरत व **उलमा-ए-दुनियाँ** के अतिरिक्त व्यावसायिक दृष्टि से **उलमा-ए-दुनियाँ** की कई श्रेणियाँ हुआ करती थीं। उन श्रेणियों में से एक श्रेणी अध्यापकों की थी। अपनी शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त एक विद्वान आमतौर पर किसी मस्जिद में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करता था या अपने घर के आगे लगे हुए छप्पर में विद्यार्थियों को पढ़ाना शुरू करता था। ऐसे अध्यापकगण शान-शौकत के जीवन से ही नहीं वरन् राजनीति से भी दूर रहा करते थे। उनका मुख्य उद्देश्य केवल ज्ञान का प्रचार करना ही होता था। इनमें से अधिकांश अध्यापकों का जीवन अस्थिर तथा दरिद्रता का होता था। कुछ विशेष उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करने में सहायक सिद्ध होते हैं। **मशरिक-उल-अनवर** के रचयिता मौलाना रज़ीउद्दीन हसन का जन्म व पालन-पोषण बदायूँ में हुआ था। अपनी शिक्षा समाप्त करने पर वह अपने जन्म-स्थान कोल (अलीगढ़) आया, जहाँ उसने नायब **मुशरिफ़** का पद ग्रहण किया। एक **मुशरिफ़** ने उससे कुछ अपशब्द कह दिये, जिससे उसे हँसी आ गई। **मुशरिफ़** ने उस पर दवात फेंक कर मारी, किन्तु वह बच गया। उसे यह बात प्रतिष्ठा के विरुद्ध लगी। उसने यह पद त्याग दिया। तदुपरान्त उसने **वली** के पुत्र को पढ़ाना प्रारम्भ किया। उसे केवल १०० तन्के वेतन में मिलते थे और इस वेतन से वह सन्तुष्ट था। उसने यह नौकरी भी छोड़ दी और इधर-उधर घूमना प्रारम्भ किया।

हदीस का प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण, जहाँ-जहाँ कहीं भी वह जाता था उसका आदर-सत्कार होता था। अन्ततोगत्वा वह नागौर पहुँचा, जहाँ काज़ी हमीदउद्दीन और कमालुद्दीन ने उससे अनुरोध किया कि वह हदीस उन्हें पढ़ाए। उसने विद्वानों को **मिसवाह-उद-दूजा** पढ़ाना प्रारम्भ किया और उन्हें सर्टिफिकेट भी देना प्रारम्भ किया। वह नागौर से जालौर व गुजरात भी गया। उन प्रदेशों में स्थिति यह थी कि कोई भी मुसलमान स्वतन्त्रतापूर्वक वहाँ भ्रमण नहीं कर सकता था। अतएव उसने वेष वदलकर घूमना प्रारम्भ किया। वाद में वह लाहौर और वहाँ से वगदाद गया। उसकी विद्वता से खलीफा प्रभावित हुआ और उसने उसे अपनी सेवा में रख लिया। १२२० ई० में खलीफा अलनासिर ने उसे अपना राजदूत वनाकर इल्तुतमिश के दरवार में भेजा। इस प्रकार वह दिल्ली पहुँचा और वहाँ १२३९ ई० तक रहा। दूसरा उदाहरण मौलाना अलाउद्दीन उसूली का है। वे वदायूँ के निवासी थे व विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे। यद्यपि वे दरिद्रता में अपना जीवन व्यतीत करते थे किन्तु किसी से कुछ भी नहीं लेते थे। वे वहुत ही कम अवसरों पर लोगों से उपहार लिया करते थे। विशेषकर ऐसे अवसरों पर जव कि उन्हें धन की वहुत अधिक आवश्यकता होती थी या दुर्दिनों का सामना करना पड़ता था। एक दिन वह उन वीजों को खा रहा था जिनमें से तेल निकाला जा चुका था। उसी समय उसका नाई आ पहुँचा। उसने तत्काल उन वीजों को अपनी पगड़ी में छुपा लिया। जव नाई ने वाल वनाने के लिए उसके सिर से पगड़ी हटाई तो वे वीज गिर पड़े। वह नाई उसकी दरिद्रता से वहुत दुखित हुआ। जव उसने यह वात वदायूँ के कुछ गण-मान्य व्यक्तियों को वताई तो उन्होंने उन्हें सहायता दी। एक व्यक्ति ने उसे घी व पकवान भेजे किन्तु मौलाना ने न केवल उन्हें लेने से मना कर दिया वरन् उस नाई को वुला कर फटकारा कि उसने लोगों को उसकी दरिद्रता के वारे में क्यों वताया। मौलाना अलाउद्दीन उसली से शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने इस्लामी कानून की शिक्षा ली। उस समय शेख निज़ामुद्दीन औलिया की आयु पंद्रह या सोलह वर्ष की थी और वह एक छोटे से मकान में अपनी विधवा माँ व वहन के साथ रहते थे व कभी-कभी सभी के साथ उन्हें भूखे रहना पड़ता था। जव शेख निज़ामुद्दीन औलिया की शिक्षा समाप्त हो गई तो उनकी माँ ने उनके लिए एक दस्तार विन कर तैयार किया जो कि मौलाना अलाउद्दीन उसूली ने उनके सिर पर वाँधा।[१०] तीसरा उदाहरण मौलाना वुरहानुद्दीन नसफी का है जो कि दिल्ली के महान् विद्वान थे। जव कभी कोई विद्यार्थी उनके भाषण सुनने के लिए उनसे आज्ञा मानने के लिए जाता था तो वे उससे तीन प्रतिज्ञाएँ करने के लिए कहते थे। वह केवल एक वार दिन में भोजन करेगा, वह कोई भी भाषण सुनना न छोड़ेगा, वह केवल सलाम वालाकुम कह कर ही उसका अभिवादन करेगा और कभी भी उसके पैर नहीं छुयेगा या हाथ नहीं चूमेगा। चौथा उदाहरण ख्वाजा शम्सुलमुल्क का है जो कि दिल्ली के महान् विद्वान् थे और जिन्होंने मुस्तौफ़ी के पद पर कुछ समय तक कार्य किया था। वाद में उन्होंने

नौकरी छोड़ दी व अपने घर के छज्जे पर बैठकर विद्यार्थियों को पढ़ाना शुरू किया। उनके साथ केवल तीन शिष्यों शेख निज़ामुद्दीन औलिया, काजी फख्रउद्दीन नकीला और मौलाना बुरहानुद्दीन को ही छज्जे में बैठने की अनुमति थी।[६] उपरोक्त चारों उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस काल में अध्यापक दरिद्रता या कम आय से अपना जीवन व्यतीत करते थे व उनका रहन-सहन बहुत ही सादा था। वे स्वाभिमानी व स्वतन्त्र विचारधारा के होते थे और समाज के सभी वर्ग उनका आदर-सत्कार करते थे।

उल्माओं का एक दूसरा वर्ग उन पवित्र व्यक्तियों का था जो धर्मोपदेश दिया करते थे या समस्त जीवन ज्ञान प्राप्त करने में ही व्यतीत कर दिया करते थे। कभी-कभी उन्हें बड़ी विषम परिस्थितियों में भी कार्य करना पड़ता था। वे राजनीति में हस्तक्षेप करने, शासकों के दरबार में जाने व अमीरों से सम्पर्क बनाये रखने से घृणा करते थे। उनकी विनम्रता एवं विद्वता ही शासकों को आकर्षित करके उन्हें उनके द्वार तक पहुँचा दिया करती थी। यद्यपि बलबन राजत्व सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं में विश्वास करता था किन्तु फिर भी वह पवित्र ब्रह्म विज्ञानियों के घरों पर जाता था और वाक्पटु मुज़क्किरों के भाषणों को सुनकर सभा में आँसू बहाने में तनिक भी नहीं झिझकता था। वह मौलाना शरफुद्दीन वलवनजी, मौलाना सिराजुद्दीन सन्जरी और मौलाना नज्मुद्दीन दमिश्की का विशेष रूप से आदर करता था।[१७] बरनी के अनुसार मौलाना बुरहानुद्दीन बल्ख तथा मौलाना बुरहानुद्दीन बज़ाज भी शिक्षा दिया करते थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने तीन ऐसे विद्वानों, मेरठ के मौलाना शिहाबुद्दीन, मौलाना अहमद, मौलाना कैथली का उल्लेख किया है जो कि महान् सन्त भी थे। यह विद्वान् उस श्रेणी के विद्वानों में थे जिन्होंने कि अपना समय अध्ययन तथा अध्यापन के कार्यों में व्यतीत किया और उन्होंने न कभी सांसारिक प्रतिष्ठा और न ही धन प्राप्त करने के लिए चेष्टा की। इसी प्रकार से मौलाना तुर्क, मौलाना निजामुद्दीन अबुल मुवय्यद, शेख शिहाबुद्दीन खातिब भी १३वीं शताब्दी के महान् विद्वानों और उपदेशकों में से थे। वे राजनीतिक शक्ति एवं सम्पत्ति से कोसों दूर रहे। मौलाना नूर तुर्क के उपदेशों की सराहना शेख फरीदउद्दीन गजशंकर भी किया करते थे। वह अपने समकालीन ब्रह्म वैज्ञानिकों से उनकी लोलुपता व उनके सांसारिक कार्यों के कारण घृणा करता था और अपने भाषणों में उनकी कटु आलोचना किया करता था। वह बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करता था तथा एक दांग प्रतिदिन व्यय किया करता था जो कि उसका मुक्त दास उसे दिया करता था। रज़िया ने कुछ सोना उसके पास उपहार में भेजा किन्तु उसने अपनी छड़ी से उसे हटा दिया व सन्देशवाहक से कहा कि वह उसे उसकी दृष्टि के सामने से हटा ले जाए।[१८]

इस काल में कुछ उल्मा ऐसे भी थे जो कि राज्य की सेवा में थे। शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी ने एक बार बदायूं के काजी को बतलाया कि उल्माओं की महान्

इच्छा या तो एक **मुतवल्ली** या एक अध्यापक बनने की होती है। यदि वे इससे अधिक आकांक्षा रखते हैं तो किसी शहर के काज़ी का पद चाहते हैं। उनकी महान् अभिलाषा **सद्र-ए-जहाँ** के पद को प्राप्त करने की होती है। इसके आगे उनकी किसी पद की आकांक्षा करने की हिम्मत न होती थी। वास्तव में केवल विद्वान ही निम्नलिखित पदों पर नियुक्त किये जा सकते थे—**सद्र-ए-जहाँ, शेख-उल-इस्लाम,** काज़ी, **मुफ्ती, मुहतासिब, इमाम, खातिब,** राज्य द्वारा चलाये जाने वाले किसी मदरसे में अध्यापक का पद। दिल्ली सल्तनत में न्याय विभाग में **काज़ी-ए-मुमालिक** का पद सुल्तान के पद के बाद ही होता था और वही न्याय-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता था। बहुधा उसी की संस्तुति पर ही सुल्तान राज्य के विभिन्न भागों में काज़ियों की नियुक्तियाँ करता था। कभी-कभी सद्र-ए-जहाँ व **काज़ी-ए-मुमालिक** के पद एक ही व्यक्ति को प्रदान कर दिये जाते थे। इसी प्रकार से कज़ा, खिलाबत, इमामत और हिस्बाह के पद भी एक ही व्यक्ति को दे दिये जाते थे। यद्यपि इनमें से कोई भी पद वंशानुगत नहीं हुआ करता था किन्तु फिर भी कुछ ऐसे परिवार थे जिनके सदस्यों को बराबर यह पद प्राप्त होते रहे और उन्हीं में से **काज़ी, खातिब** और **मुफ्तियों** की नियुक्तियाँ होती रहीं। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासन-काल के १४वें राजकीय वर्ष में **शेख-उल-इस्लाम,** काज़ी करावक, **अमीर-ए-हाजिब** की मृत्यु हो जाने पर यह पद उनके पुत्रों को प्रदान कर दिये गए।[१९]

इस काल में राज्य के सभी धार्मिक शेख-उल-इस्लाम के हाथों में हुआ करते थे। वह उन सभी फकीरों व सन्तों की देखभाल किया करता था जिन्हें कि राज्य की ओर से प्रश्रय मिला हुआ था। १३वीं शताब्दी के महान् शेख-उल-इस्लाम में सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गाज़ी, सैय्यद जमालउद्दीन विस्तामी, मौलाना नज्मुतुद्दीन बुग़रा, सैय्यद कुतुबुद्दीन, शेख रफीउद्दीन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गजनवी शेख शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी का उत्तराधिकारी था। दिल्ली के लोग उसके प्रति श्रद्धालु थे और वे उन्हें मीर-ए-दिल्ली कहकर सम्बोधित करते थे। इल्तुतमिश ने उसे शेख-उल-इस्लाम नियुक्त किया। वह दरबार में आकर इल्तुतमिश के सम्मुख उपदेश दिया करता था। बरनी ने **तारीख-ए-फिरोज़शाही** में उसके दो उपदेशों का विवरण दिया है जिनमें उसने इल्तुतमिश से इस्लामी राज्य स्थापित करने का अनुरोध किया। इन उपदेशों से उसके रूढ़िवादी विचारों की झलक मिलती है।[२०]

क्या यह उपदेश सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गज़नवी द्वारा वास्तव में दिये गये थे अथवा बरनी ने उसके मुंह में शब्द रखकर उसके द्वारा अपनी रूढ़िवादी विचारधारा पाठकों के सम्मुख रख दी थी, कह सकना कठिन है। उसके सम्बन्ध में इतना तो अवश्य कहा गया है कि वह विचारों में स्वतन्त्र एवं निर्भीक था।[२१] इसी भाँति शेख जमालुद्दीन विस्तामी, जिसे इल्तुतमिश ने **शेख-उल-इस्लाम** नियुक्त किया, की दिल्ली

के धार्मिक समुदायों में बड़ी ख्याति थी। वह अपने विनम्र स्वभाव और पवित्रता के लिए सुप्रसिद्ध था। एक बार शेख निजामुद्दीन औलिया ने उसके बारे में कहा कि उसे परम्पराओं व रहस्यवादियों के तौर-तरीके का अच्छा ज्ञान है। उसने सदैव अपने पद की प्रतिष्ठा को बनाये रक्खा और लोगों की सेवा में लगा रहा। किन्तु सभी शेख-उल-इस्लाम एक प्रकार के न थे। नज्मुद्दीन शुग़रा बहुत ही घमण्डी, झूठा और शैतान था। उसने शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी को सुल्तान की दृष्टि में अपमानित करने का प्रयास किया। सैय्यद कुतुबुद्दीन बहरामशाह के शासन-काल में शेख-उल-इस्लाम था। वह दुराचारी था। इस प्रकार के शेख-उल-इस्लामों की भर्त्सना सूफ़ी सन्त व सर्व-साधारण खुलेआम किया करते थे।

उलमा-ए-दुनियाँ की श्रेणी में आने वालों में क़ाज़ियों का भी प्रमुख स्थान था। उनकी नियुक्तियाँ प्रत्येक शहर व कस्बों में होती थीं, जहाँ वे दीवानी के मुकदमों को सुनते व उन पर निर्णय दिया करते थे। प्रो० निज़ामी ने १३वीं शताब्दी के काजियों की लम्बी सूची दी है। दिल्ली में नियुक्त होने वाले काज़ियों का दृष्टिकोण पूर्णतः राजनीतिक हुआ करता था और वे राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की स्पर्धा में लगे रहते थे। बलबन ने उनके प्रति अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए कहा कि "हमारे तीन काज़ी हैं, उनमें से एक ईश्वर से डरता है मुझसे नहीं, दूसरा ही मुझसे डरता है ईश्वर से नहीं और तीसरा न मुझसे डरता है और न ईश्वर से।....फरव्र नकीला मुझसे डरता है किन्तु ईश्वर से नहीं, **काज़ी-ए-लश्कर** ईश्वर से डरता है मुझसे नहीं तथा मिनहाज न मुझसे डरता है और न ईश्वर से।" बलबन **काज़ी-ए-लश्कर** का बड़ा आदर करता था तथा उसकी सभी संस्तुतियाँ स्वीकार कर लिया करता था। ऐसे बहुत से परिवार थे जिनके परिवार के सदस्यों को निरन्तर काज़ी का पद प्राप्त होता रहा।

साधारणतः विद्वानों की ही नियुक्ति **खातिब व इमाम** के पदों पर हुआ करती थी क्योंकि मुसलमानों के विचार में इन पदों पर अयोग्य या कम योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि उन्हें जुमा की नमाज़ पढ़नी होती थी, मुहर्रम के महीने में तज़कीरें देनी पड़ती थी और उपदेश देने पड़ते, इसीलिए उनका पढ़ा-लिखा व विद्वान् होना अनिवार्य था। मुहम्मद तुग़लक़ उलमाओं का बड़ा आदर करता था। शिहाबुद्दीन के अनुसार शरीयत में उसकी निष्ठा होने के कारण वह उलमाओं का बड़ा सम्मान करता था। वह उनकी प्रतिष्ठा को बनाये रखने का सदैव प्रयास किया करता था। उलमा सदैव अध्ययन व शिक्षा देने में व्यस्त रहते थे। मुहम्मद तुग़लक उन्हें सदैव अपने साथ रखता था। **मसालिक-उल-अबसार** से ज्ञात होता है कि उसके समय में कुछ उलमा धन के लिए बड़े लालची थे। एक बार सेना के अग्रिम दल द्वारा विजय करने की सूचना पाकर मुहम्मद तुग़लक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपने उलमाओं से कहा कि वे उसके राजकोष में जाकर जितना धन चाहें ले लें तथा जो उलमा दुर्बल हों वे अपना प्रतिनिधि भेजकर वहाँ से धन बटोर लें। उच्चकोटि के उलमा राजकोष के बाहर रहे

शेष सभी कोषागार में घुस गये और उनमें से प्रत्येक दो-दो बोरे जिनमें से प्रत्येक बोरे में १०,००० धीरम थे, लेकर बाहर निकले। उनमें से एक उलमा इतना लालची था कि वह दो बोरियाँ अपने बगल में दबाये और तीसरी बोरी सिर पर रक्खे हुए बाहर निकला। सुल्तान उसको देखकर हँस पड़ा। उसने अन्य उलमाओं से पूछा कि वे कोषागार में क्यों नहीं गये। उन्होंने उत्तर दिया कि जो गये थे उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी। तदुपरान्त सुल्तान ने प्रत्येक को एक हजार दीनार उपहार में दिये।[२२]

कुछ बहुत बड़े विद्वान सुल्तानों द्वारा स्थापित मदरसों में नियुक्त किये जाते थे। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में अनेक नये मदरसों की स्थापना हुई। उदाहरणार्थ, मुइज्जी व नासिरिया मदरसे, जो कि १३वीं शताब्दी में उच्च शिक्षा के महान केन्द्र थे। इन मदरसों में प्रकाण्ड विद्वानों की नियुक्तियाँ की गई, जिन्हें कि प्रशासन की ओर से अत्यधिक धन मिलता था और जो शान-शौकत से जीवन व्यतीत किया करते थे। इस प्रकार से मदरसे व मकतब मध्य युग की शिक्षा संस्थाएँ उत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ विद्वानों से भरी हुई थीं।

उपरोक्त विवरण से कई बातें सामने आती हैं। इस युग में उलमा या तो रूढ़िवादी या उदार थे या चरित्रहीन। समकालीन सूफी सन्त उनके व्यवहार से प्रसन्न नहीं थे। बिहार का सुप्रसिद्ध सूफी सन्त शरफुद्दीन यहिया मनेरी खुल्लमखुल्ला उलमा-ए-दुनियाँ के लिए कहा करता था कि वे लुटेरे हैं, डाकू हैं जो कि सुल्तानों के दरबार में नाचते रहते हैं और जो शैतान के प्रतिनिधि हैं। वे अपने आदर्शों के अनुरूप कभी भी नहीं रहे। अमीर-खुसरो के अनुसार वे विदूषकों की भाँति सुल्तान व मलिकों को घेरे रहते हैं और शरीयत पर अपना मत प्रकट करते हैं। वे अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए पगड़ी बाँधे रहते हैं। यह पगड़ियाँ उन्हें नसीब (अच्छे कपड़े का वस्त्र) व खाज (साधारण किस्म का रेशमी वस्त्र) राजकोष से धन दिलाने में समर्थ होती थी। वे अपनी विद्वता का झूठा प्रदर्शन करके दरबार की अनुकम्पा प्राप्त किया करते थे। इनमें से अनेक उलमा रूढ़िवादी, मक्कार, झूठे व असहिष्णु थे। अहमद बिहारी व शैख आज काक्वी, बिहार के दो सन्त, दिल्ली के मुल्लाओं के आक्रोश का शिकार बने। उनके गलत वध पर हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी ने अपना आक्रोश व्यक्त किया। उच्च के एक धर्मान्ध सूफी सैय्यद सद्रुद्दीन ने एक फतवा उलमा से प्राप्त कर फिरोजशाह के एक विश्वस्त हिन्दू दरोगा-मेहबान को मौत के घाट उतरवा दिया। मसूद बक नामक कवि एवं सूफी साहित्यकार ने जब उलमाओं के फतवा जारी करने की खुल्लम-खुल्ला भर्त्सना की तो उन धर्मान्धों ने उसके टुकड़े-टुकड़े करवा दिये। राज्य की सेवा में रत उलमा सदैव सुल्तानों के हितों की सुरक्षा करने में ही प्रयत्नशील रहते थे। चाहे प्रशासन जितना भी निरंकुश व अत्याचारी क्यों न हो, वे सर्वसाधारण को उसके विरुद्ध विद्रोह करने की अनुमति नहीं देते थे। इस काल में उलमावर्ग की स्थिति कभी भी समान नहीं रही।

जबकि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी व मुहम्मद तुगलक के समय वे प्रभावहीन थे और राजनीति में उन्हें हस्तक्षेप करने का कोई भी अवसर न दिया गया। बलबन, फिरोज़-शाह तुगलक तथा सिकन्दर लोदी के समय राजनीतिक व धार्मिक मामलों में उनका बोलबाला था। वास्तव में उल्मा के व्यक्तिगत गुणों पर ही उसका प्रभाव निर्भर करता था। यदि उसका चरित्र उत्कृष्ट हुआ तो उसका आदर मुस्लिम समाज में होता था और उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था, अन्यथा नहीं। यह सत्य है कि अनेक उल्मा भ्रष्ट तथा अयोग्य थे, किन्तु उनमें से कुछ निर्भीक एवं स्वतन्त्र विचारधारा वाले भी थे। ऐसे उल्मा इस्लाम का सही ढंग से विश्लेषण करते थे, चाहे उसका कोई भी दुष्परिणाम क्यों न हो। मुहम्मद तुग़लक जब मुहम्मद साहब के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और आदिल की पदवी ग्रहण की तो शिहाबुद्दीन ने आपत्ति उठाई। मुहम्मद तुगलक उससे इतना रुष्ट हुआ कि उसने उसे मरवा डाला। जब सिकन्दर लोदी ने कुरुक्षेत्र का मन्दिर व कुण्ड तुड़वा देना चाहा तो उसने उल्मा से विचार-विमर्श किया। अजोधन के मियाँ अब्दुल्लाह ने हिन्दुओं का पक्ष लिया व घोषणा की कि यह उनके प्राचीन अधिकारों के विरुद्ध है। इस पर सिकन्दर लोदी ने उसे मृत्यु-दण्ड की धमकी दी, परन्तु बाद में उसे फतवा के सम्मुख झुकना पड़ा।[२३] संक्षेप में उल्मावर्ग में सभी प्रकार के उल्मा थे।

मुसलमान समाज में विशिष्टाधिकारी वर्ग में उल्माओं के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण वर्ग था जिसमें कि सूफीसन्त, दरवेश, धार्मिक एवं पवित्र व्यक्ति थे। वे सल्त-नत में जगह-जगह फैले हुए थे। उनका भी समाज में अत्यधिक प्रभाव था और वे सर्वसाधारण के सम्पर्क में बराबर रहे। सामान्य जनता की इन सूफ़ी सन्तों के प्रति निष्ठा थी जो कि उनकी उपासना के बराबर थी। गरीब-अमीर, धनवान, बड़े-छोटे, स्त्री-पुरुष सभी उनके पास जाते थे, उनसे ज्ञान प्राप्त करते थे और उनका आशीर्वाद लेकर पुर्नजीवन को सफल बनाते थे।

१२वीं शताब्दी से ही यहाँ विभिन्न सूफी सम्प्रदायों की स्थापना प्रारम्भ हुई। यहाँ चिश्ती सम्प्रदाय की स्थापना शैख मुइनुद्दीन सीज़ी ने की। शैख मुइनुद्दीन का जन्म ११४१ में सिविस्तान में हुआ था। उसके पिता सैय्यद गयासुद्दीन बहुत ही पवित्र व्यक्ति थे और जब मुइनुद्दीन की आयु कम थी तो उनका देहान्त हो गया। मुइनुद्दीन को एक उधान व चक्की विरासत में प्राप्त हुई। मुइनुद्दीन की भेंट शैख इब्राहिम कन्दूज़ी नामक सूफ़ी सन्त से हुई। उसने उसका स्वागत-सत्कार किया और उससे आशीर्वाद प्राप्त किया। तदुपरान्त जब क़राखीता व गज़ तुर्कों ने सिविस्तान पर आक्रमण करके उसे विध्वंश कर दिया तो मुइनुद्दीन ने अपनी सम्पत्ति बेचकर जो कुछ धन प्राप्त किया उसे दान में दे दिया और स्वयं सन्यास ग्रहण कर लिया। उसने समरकन्द व बुखारा का भ्रमण किया और वहाँ के महान् विद्वानों से धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। ईराक़ जाते समय मार्ग में वह निशापुर के समीप हरवन में ख्वाजा उसमान

से मिला। उसके आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होने पर वह उसके शिष्यों में सम्मिलित हो गया। लगभग बीस वर्ष तक वह उसकी यात्राओं में उसके साथ रहा। उसके बाद उसने स्वयं यात्राएँ प्रारम्भ की और इन यात्राओं के दौरान वह महान् एवं सुप्रसिद्ध सन्तों व विद्वानों जैसे कि शैख अब्दुल कादिर गीलानी, शैख नज्मुद्दीन कुबरा, शैख नजीबउद्दीन, अब्दुल कादिर सोहरावर्दी आदि से मिला और उनके जीवन आदर्शों व विचारधाराओं से बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने उस युग के महान आध्यात्मिक केन्द्रों समरकन्द, बुखारा, निशापुर, तबरेज, औश, इस्फाहान, बल्ख, गजनी आदि शहरों का भ्रमण किया और मुस्लिम धार्मिक जीवन की प्रमुख प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त की। उसकी आध्यात्मिक शक्ति से अनेक लोग इतने प्रभावित हुए कि वे उसके शिष्य बन गये। उसने सब्जावार तथा बल्ख में अपने खलीफा प्रतिनिधि नियुक्त किये। मुसलमान देशों का भ्रमण करने के बाद उसने हिन्दुस्तान के लिए प्रस्थान किया। कुछ समय तक लाहौर में ठहरकर वह अजमेर पहुँचे और उन्होंने वहीं रहना प्रारम्भ कर दिया। अजमेर इस समय चौहानों की राजधानी व धार्मिक स्थान था। अतएव वहाँ दूर-दूर से लोग आते थे। शैख मुइनुद्दीन चीशी ने यहाँ चिश्ती सम्प्रदाय की स्थापना की।[२४] उत्तरी भारत में इस सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार करने वालों में राजपूताना में शैख हामिदउद्दीन सूफी[२५] और दिल्ली में शैख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी थे।[२६] शैख हामिदउद्दीन सूफी का जन्म १२७६ ई० में दिल्ली में हुआ था। उसका पिता शैख मुहम्मद अल सूफी मुहम्मद साहब के साथी सैय्यद बिन जैब के वंशज थे। शैख हामिदउद्दीन सूफी का प्रारम्भिक जीवन भोग-विलास में व्यतीत हुआ। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के शिष्य बन जाने पर उनके जीवन में परिवर्तन आया और उन्होंने सब कुछ त्याग कर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। सूफी मत के प्रति उनकी निष्ठा को देखकर शैख मुइनुद्दीन चिश्ती ने उन्हें सुल्तान-ए-तारिकीन (दरवेशों का सुल्तान) की पदवी दी। शैख हामिदउद्दीन ने राजपूताना में नागौर के समीप सुवाल नामक गाँव में रहना पसन्द किया।

शैख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का जन्म १२३५ ई० में हुआ था। वे औश के निवासी थे, जो कि हल्लाजी रहस्यवादियों का बड़ा केन्द्र था। औश में अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद वे बगदाद गये जहाँ उन्होंने शैख अब्दुर कादिर गीलानी, शैख शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी, काज़ी हामिदउद्दीन तथा अन्य अनेक सन्तों व विद्वानों से भेंट की और ज्ञान प्राप्त किया। अबुल लैस समरकन्दी की मस्जिद में उनकी भेंट शैख मुइनुद्दीन चिश्ती से हुई और वे उनके शिष्य हो गये। जिन दिनों शैख मुइनुद्दीन चिश्ती ने भारत की ओर प्रस्थान किया, शैख कुतुबुद्दीन अनेक मुसलमान देशों का भ्रमण करने में लगे रहे। अपने पीर शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के अजमेर पहुँचने के कई वर्ष बाद वह हिन्दुस्तान आये। मुल्तान में कुछ समय तक ठहरने के बाद वे दिल्ली पहुँचे और वहीं बस गये। उनकी मृत्यु १५ नवम्बर १२३५ ई० में हुई।[२७]

शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के दो प्रमुख खलीफा (उत्तराधिकारी) थे। शेख बद्रुद्दीन गज़नवी ने अपना जीवन दिल्ली में व्यतीत किया[२८] और शेख फरीद ने हाँसी व अजोधन में।[२९] शेख बद्रुद्दीन गजनवी के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसके विपरीत शेख फरीदउद्दीन गजशंकर (११७५-१२६५) का जन्म मुल्तान के समीप कहटवाल में एक काज़ी के घर में हुआ था। बाल्यावस्था से ही उनकी खोज रहस्यवाद में थी। मुल्तान के एक मस्जिद से संलग्न एक मदरसे में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और यहीं उनकी भेंट शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से हुई। शेख बख्तियार काकी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। उन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की, चिल्ला-ए-माकूस (आध्यात्मिक योग) किया। आध्यात्मिक ज्ञान, चिश्ती सम्प्रदाय की विचारधारा को बढ़ाने में और उसके प्रति निष्ठावान बने रहने में उन्होंने अद्वितीय ख्याति प्राप्त की। वे कुछ समय तक हाँसी में रहे और बाद में अजोधन में स्थायी रूप से बस गये। उन्होंने अनेक लोगों को शिक्षा दी व अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों ने अपने स्वतन्त्र खानकाहों की स्थापना की और चिश्ती सम्प्रदाय के कार्य को बढ़ाने में मदद की।[३०] उसके खलीफाओं (उत्तराधिकारियों) में शेख जमालुद्दीन हाँसवी, शेख नज्बुद्दीन मुतवक्किल, शेख बद्रुउद्दीन इसहाक़, शेख अली साबिर, शेख आरिफ, शेख निज़ामुद्दीन औलिया आदि थे।[३१]

चिश्ती सम्प्रदाय के इन सभी प्रमुख सन्तों का जीवन बहुत ही सीधा-सादा था। वे मानववाद, भ्रातृत्व, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम एकता, समन्वयवाद, सहिष्णुता, उदारता तथा नम्रता में विश्वास रखते थे। वे जाति-पाँति, छुआ-छूत, भेद-भाव, बाह्य आडम्बर के सर्वथा विरुद्ध थे। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती ने प्रेमी, प्रेमिका व प्रेम को एक ही में देखा। उनके विचार में संसार का सार एक ही में है। उनकी एकेश्वरवादी विचारधारा उपनिषद की विचारधारा के सन्निकट थी। उनके विचार में ईश्वर के प्रति सबसे बड़ी निष्ठा मुसीबत में पड़े हुए लोगों के दुःख को दूर करना, निःसहायक की आवश्यकताओं को पूरा करना और भूखे को खाना देना है। उनके अनुसार मनुष्य में नदी की भाँति उदारता, सूर्य की भाँति स्नेह और धरती की भाँति अतिथेय होना चाहिए। वे सदैव शासकों व सम्पत्ति धन, लोभ, माया-मोह से दूर रहते थे और बडी सादगी से जीवन व्यतीत करते थे। उनका अपना कोई मकान न था। वे गरीबी में रहते थे और उसी में उनका जीवन व्यतीत हुआ।[३२] उन्हीं का अनुकरण उनके शिष्य शेख हमीदउद्दीन नागौरी ने किया। शेख हमीदउद्दीन नागौरी कच्चे मकान में रहते थे और एक बीघा भूमि पर खेती करते थे, जो कि उनके व उनके पत्नी के जीवन-निर्वाह करने के लिए उपयुक्त थी। वे इस भूमि का आधा भाग एक फसल के लिए व दूसरा दूसरी फसल के लिए प्रयोग किया करते थे। वे एक भारतीय किसान की भाँति एक ही कपड़ा जो कि उनके निचले शरीर व ऊपरी भाग को ढक लिया करता था पहनते थे। उनके घर में एक गाय थी जो कि वे स्वयं दुहा करते थे। उनकी पत्नी अन्य किसानों की स्त्रियों की भाँति खाना पकाती थी और सूत कातती थी। अन्य किसानों की भाँति

शेख हामिदउद्दीन भी शाकाहारी थे व मांस खाना बुरा समझते थे और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि उसकी मृत्यु के बाद लोगों में आमिष भोजन न वितरित किया जाये। उनकी दरिद्रता को देख कर नागौर के मुक्ता ने उन्हें भूमि व धन देना चाहा किन्तु उन्होंने यह लेना अस्वीकार कर दिया और यह कह दिया कि उससे बड़े सन्तों ने कभी प्रशासन द्वारा दिया गया उपहार स्वीकार नहीं किया। तत्पश्चात् उस मुक्ता ने इसकी सूचना सुल्तान को दी। सुल्तान ने ५०० चाँदी के तन्के एक फरमान के साथ उसके लिये भेजे और उसे एक गाँव भी दिया किन्तु जब मुक्ता उसके सम्मुख इन उपहारों की सूचना उसे देने के लिए उपस्थित हुआ तो वह तुरन्त अपने घर में गया और उसने अपने पत्नी से इन उपहारों व सांसारिक आशा के प्रति उसकी प्रतिक्रिया मालूम करनी चाही। उस समय उसकी पत्नी के सिर पर फटा हुआ दुपट्टा था और उसके शरीर पर केवल एक लंगोटी थी, उसकी पत्नी ने उसकी बात सुनते ही कहा कि, "हे ख्वाज़ा! क्या तुम वर्षों की साधना तपस्या को इस उपहार को स्वीकार करके अपने को लज्जित करना चाहते हो। चिन्ता न करो। मैंने दो सेर सूत कात कर रखा है यह हमारे लिए एक दुपट्टा तथा तुम्हारे लिए एक लँगोटी के लिए पर्याप्त होगा।" यह सुनकर शेख हमीदउद्दीन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने मुक्ता को सूचना दी कि उसे यह उपहार नहीं चाहिए। शेख हमीदउद्दीन स्वभाव में बहुत ही नम्र और उदार थे। वे हिन्दुओं की आध्यात्मिक शक्ति एवं उनके धार्मिक ज्ञान के प्रशंसक भी थे। इसी कारण वे नागौर में बहुत ही लोकप्रिय हुए।[३३]

शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी जब दिल्ली पहुँचे तो सुल्तान इल्तुतमिश ने उनका भव्य स्वागत किया किन्तु उन्होंने सुल्तान के साथ रहने से मना कर दिया। सुल्तान इल्तुतमिश सप्ताह में दो बार उनके खानकाह पर जाया करता था। उन्होंने सुल्तान को परामर्श दिया कि वह दरिद्रों, दरवेशों, सन्तों, निःसहाय व्यक्तियों की भलाई करने की ओर ध्यान दे। सुल्तान इल्तुतमिश ने उन्हें शेख-उल-इस्लाम का पद देना चाहा किन्तु उन्होंने उसे अस्वीकृत कर दिया। यद्यपि शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी सुल्तान व नौकरशाही से पृथक रहा किन्तु उसने सदैव सुल्तान को उसके कार्यों में नैतिक समर्थन दिया। उनका कोई निजी घर नहीं था।[३४]

शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का शिष्य शेख बद्रुद्दीन गज़नवी मलिक निजामुद्दीन खरीतादार द्वारा दिल्ली में बनवाये हुए खानकाह में रहता था। मलिक निजामुद्दीन को जब किसी अभियोग पर बन्दीगृह में डाल दिया गया तो शेख बद्रुद्दीन को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। वे दिल्ली में अपनी पत्नी, बच्चों, नौकरों के साथ, कुल मिलाकर ८ व्यक्तियों के साथ रहते थे। जब उन्हें तंगी में रहना पड़ा तो उन्होंने एक बक्काल से जो कि उनके निकट रहता था, ३०० धीरम ऋण में लिए। उनके पीर ने उन्हें ५०० धीरम तक ऋण लेने की अनुमति दी थी किन्तु उन्होंने अपने बक्काल मित्र से ३०० धीरम तक ही उधार देने के लिए कहा। बाद में

अतिरिक्त ऋण लेने के बजाए शेख ने भूखों मरना ही पसन्द किया। कभी-कभी जो कुछ भी फुतूह उन्हें मिलता था वह परिवार के लिए पर्याप्त न होता था और इस प्रकार परिवार को कई दिनों तक भूखे रहना पड़ता था। उसके जीवन-काल के अन्त तक परिस्थितियाँ इस प्रकार की हो गई कि भिक्षा के द्वार भी उसके लिए बन्द हो गये।[५]

शेख फरीदउद्दीन मसूद गजशंकर ने अपने लिए कच्चा घर बनवाया वह भी उस समय जबकि उनके जीवन-काल के अन्त में उनका परिवार बहुत ही बड़ा हो गया। जब उनके शिष्य ने उनके लिए पक्का मकान बना देने के लिए कहा तो उन्होंने उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। परिस्थितियों ने उन्हें इतना विवश कर दिया कि उन्हें अपने शिष्यों को भिक्षापात्र लेकर खाना एकत्र करने की अनुमति देनी पड़ी। इससे पूर्व किसी भी चिश्ती सन्त ने इस रीति का अनुसरण नहीं किया। यहाँ तक कि घरेलू खर्च के लिए ऋण लेना भी पाप समझा जाता था। शेख फरीद ने एक बार कहा कि 'अपनी निम्न इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए दरवेशों के लिए ऋण लेने से अच्छा मर जाना ठीक है, ऋण व सन्यास एक दूसरे से परे हैं और वे एक साथ नहीं चल सकते हैं।' शेख फरीदउद्दीन मसूद गजशंकर चुपचाप सांसारिक यातनाओं व भूख को सहन करते रहे और उन्होंने कभी किसी से कुछ उधार नहीं लिया। एक समय वह था जब कि उन्हें फुतूह मिलता था किन्तु फिर भी घर में अकाल पड़ा रहता था। उनके भाई शेख नजीबउद्दीन मुतवक्किल का भी यही हाल था। वे भी ऋण लेने के पक्ष में न थे और न ही भीख माँग कर जीवन निर्वाह करने में विश्वास किया करते थे। एक बार ईद के दिन कुछ कलन्दर उन्हें बधाई देने के लिए आए। नजीबउद्दीन के पास उनका सत्कार करने के लिए कुछ भी नहीं था। अपने घर के कुछ बर्तन बेच कर ही वे अपने अतिथियों के लिए कुछ खाना खरीद सके थे। उन्होंने अपनी पत्नी का दामन देखा, वह इतना फटा हुआ था और उसमें इतने पैबन्द लगे हुए थे कि उसे बेच कर कुछ भी नहीं मिल सकता था। जब उन्हें अपने अतिथियों के लिए कुछ भी नहीं मिला तो उन्होंने केवल ठण्डा पानी ही देकर उनका सत्कार किया। जब उनकी दरिद्रता का हाल दिल्ली की एक पवित्र महिला बीबी फातिमा को ज्ञात हुआ तो उसने उनकी आर्थिक सहायता की। इस प्रकार शेख फरीदउद्दीन गजशंकर और उनके भाई शेख नजीबउद्दीन मुतवक्किल तथा उनके परिवारों ने सदैव अपना जीवन दरिद्रता व आर्थिक संकट के मध्य व्यतीत किया।[६६]

दिल्ली के सुप्रसिद्ध महान् सूफी सन्त शेख निजामुद्दीन औलिया का भी यही हाल था। उन्होंने भी अपना प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त दयनीय दशा में व्यतीत किया। ग्यासुद्दीन बलबन के शासन-काल में दो मन खरबूजे दो जीतल में बिका करते थे किन्तु सम्पूर्ण मौसम समाप्त होने पर भी उन्हें खरबूजे की एक फाँक भी नसीब नहीं होती थी। एक बार उन्हें एक दिन खाने को कुछ भी नहीं मिला। उस समय १ जीतल में २ सेर रोटी मिलती थी किन्तु गरीबी के कारण वे बाजार से कुछ भी नहीं खरीद

सकते थे। उनके साथ उनकी माँ व बहन भी इसी प्रकार का दयनीय जीवन व्यतीत करती थीं। यद्यपि कभी-कभी उनके पास आने वाले लोग शक्कर व अच्छे वस्त्र के टुकड़े भेंट में लाया करते थे और उन्हें दिया करते थे किन्तु उन्हें बेच कर उन्होंने कभी भी भोजन नहीं खरीदा। एक अवसर पर उन्हें तीन दिन तक भूखा रहना पड़ा। चौथे दिन कोई व्यक्ति उन्हें खिचड़ी लाकर दे गया। जब कभी उनके घर में कुछ भी भोजन करने को नहीं रहता था तो उनकी माँ कहती थी कि "आज हम ईश्वर के अतिथि हैं।"[३७]

वैष्णव सन्तों की भाँति सूफी सन्त भी अपने शरीर को शुद्ध करके अपनी आत्मा को शुद्ध बनाने में विश्वास करते थे। वे अपनी इच्छाओं को कम करने व अपने इन्द्रियों को वश में रखने के हेतु व्रत और उपवास रखते थे। व्रत एवं उपवास के द्वारा वे काम और भोग की इच्छा को भी दबाना आवश्यक समझते थे। शेख फरीदउद्दीन गजशंकर एक गिलास शर्वत, कुछ मुनक्के, ज्वार की रोटी का एक टुकड़ा घी से चुपड़ा हुआ, २४ घण्टे में एक बार लिया करते थे। इसी प्रकार शेख निज़ामुद्दीन औलिया रोटी का आधा टुकड़ा या साग-सब्जी के साथ आधी रोटी इफ्तार या व्रत तोड़ते समय लिया करते थे और रात्रि के भोजन में बहुत कम खाना खाते थे। एक दिन अब्दुररहीम ने उनके लिए सहरी बनाई तो उन्होंने कहा कि वे सहरी के समय भी बहुत कम खाते हैं क्योंकि उससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जावेगा और वे बीमार हो जावेंगे। इस पर शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने आँखों में आँसू भरे हुए उत्तर दिया कि कुछ गरीब लोग बिना रात्रि का भोजन किये हुए मस्जिदों के किनारे या दूकानों के सामने सो रहे हैं। किस प्रकार से यह भोजन उनके गले के नीचे उतरेगा।"[३८]

इन सूफी सन्तों के पास वास्तव में न खाने से लिये कुछ होता था और न पहनने के लिए वस्त्र होते थे। उन्हें वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं होती थी। जाड़े के तीन महीनों में वे अपने पेट में घुटनों को दबाकर कम्बल को ओढ़कर आग के किनारे सो रहते थे और प्रातः होते ही उसी कम्बल का प्रयोग बिछाने के लिए करते थे। शैख नौ महीने बिना कपड़ों के ही गुज़ारा कर लेते थे। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती दोताही पहनते थे। शेख फरीदउद्दीन गजशंकर को फटे हुए पैवन्द लगे हुए कपड़े पहनने में ही आनन्द आता था। जब शेख निज़ामुद्दीन औलिया दिल्ली से अजोधन पहुँचे तो उनके वस्त्र इतने मैले-कुचैले थे कि शेख फरीद को जमातखाने की एक पवित्र महिला बीबी रानी ने उन्हें एक चादर लपेटने के लिए दी और उनके कपड़े धोए और सिले व पैवन्द लगाये। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने कभी भी बिस्तर का प्रयोग नहीं किया। शेख फरीदउद्दीन गजशंकर के पास केवल एक कम्बल ही था, जिसे दिन में वे बिछाकर उस पर बैठा करते थे। यह कम्बल भी उनकी चारपाई के हिसाब से छोटा था। जब शेख उसे ओढ़ते थे उससे उनका पूरा

शरीर न ढक पाता था। उनके पास कोई तकिया न था, तकिये के स्थान पर वे अपना आसा ही सिर के नीचे रख लिया करते थे।[३९]

केवल शेख निज़ामुद्दीन औलिया को छोड़कर चिश्ती सम्प्रदाय के लगभग सभी सूफी सन्तों ने वैष्णव सन्तों की भाँति वैवाहिक जीवन व्यतीत किया। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती ने वृद्धावस्था में विवाह किया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनका वैवाहिक जीवन उनकी आध्यात्मिक शक्ति को क्षीण कर रहा है। उनकी दो पत्नियाँ थीं, वीवी उम्मतउल्लाह और असमतउल्लाह। वीवी उम्मतउल्लाह एक हिन्दू राजा की पुत्री थी और दूसरी पत्नी सैय्यद वजीहउद्दीन मशहदी की पुत्री थी। उनके तीन पुत्र थे—शेख आवु सईद, शेख फरुद्दीन और शेख हुसामुद्दीन—और एक पुत्री वीवी जमाल थी।[४०] इसी प्रकार से शेख कुतुवुद्दीन वख्तियार ने भी वड़ी देर में विवाह किया। उनके दो विवाह हुए। पहली पत्नी को उन्होंने शादी के कुछ दिनों वाद तलाक दे दिया क्योंकि उसकी उपस्थिति से उनकी नितदिन की प्रार्थना में वाधा उपस्थित होती थी। उनके दो जुड़वा पुत्र थे। एक की मृत्यु वाल्यावस्था में हो गई। शेख अपनी साधना में लीन हुआ। जव उन्होंने अपने घर में स्त्रियों के रोने-पीटने की आवाज़ सुनी तो उन्होंने लोगों से पूछा कि क्या हुआ। जव उन्हें मालूम हुआ कि उनके पुत्र की मृत्यु हो गई है तो उन्होंने दुःखित स्वर में कहा कि "यदि मुझे उसकी वीमारी के वारे में ज्ञात होता तो मैं ईश्वर से उसके स्वस्थ होने के वारे में दुआ माँगता।"[४१] शेख फरीदउद्दीन गजशंकर के भी अनेक पत्नियाँ थीं और उनका परिवार वहुत ही वड़ा था। शेख उनके साथ समान व्यवहार किया करता था। किन्तु वृद्धावस्था में इतने वड़े परिवार का पालन-पोषण करना उनके लिए समस्या वन गई। कभी-कभी सम्पूर्ण परिवार को भूखे रहना पड़ता था। कभी-कभी उसकी नौकरानी उसे सूचना देती कि उसका अमुक पुत्र या पत्नी दो दिनों से भूखे हैं तो वह उसकी वातों पर कोई ध्यान नहीं देता था। एक दिन उसकी पत्नी ने उससे कहा कि उसका पुत्र भूख से तड़प कर मरने वाला है तो उसने सिर उठाकर कहा कि इसमें गरीव मसूद क्या कर सकता है। यदि उसके भाग्य में यही लिखा है तो वह मर ही जावेगा, तुम उसके पैर में रस्सी वाँध दो और उसे वाहर फेंक कर चली आओ।[४२] प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि केवल हमीदुद्दीन नागौरी को छोड़कर किसी भी चिश्ती सूफी सन्त ने अपनी सन्तति की शिक्षा व उसके पालन-पोषण को ध्यान नहीं दिया। वे सदैव अपने चिन्तन-मनन में ही व्यस्त रहते थे और लोगों की समस्याओं को दूर करने की चेष्टा किया करते थे। उन्हें न अपने वच्चों के भूखे रहने और न ही अपने परिवार की दयनीय स्थिति का वोध था। उन्होंने कभी भी अपने पुत्रों को सूफी रहस्यवाद में दीक्षित नहीं किया जिससे उनके सम्प्रदाय की विचारधारा का विकास हो सकता। भारत के प्रारंभिक चिश्ती सन्तों के पुत्रों में कोई भी पुत्र आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपने पिता की ज्योति को जीवित न रख सका। शेख कुतुवुद्दीन वख्तियार काकी का पुत्र निकम्मा था, शेख फरीदउद्दीन गजशंकर का पुत्र शरावी था और शेख नजी-

वुद्दीन का एक पौत्र लफंगा था। लगभग सभी सूफी सन्तों का पारिवारिक वातावरण इस प्रकार था कि उसमें उनके पुत्रों व पौत्रों का पालन-पोषण भली-भाँति होना असम्भव था।[४३]

चिश्ती सम्प्रदाय के सूफ़ी सन्तों के जीवन से बिल्कुल भिन्न जीवन सोहरावर्दी सम्प्रदाय के सन्तों का था। अजाम को जब गज़ तुर्कों व मंगोलों ने वर्बाद कर दिया तो शेख शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी के कुछ शिष्यों ने भारत में शरण ली। शेख शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी के अनेक खलीफ़ा काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी, सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गज़नवी, शेख वहाउद्दीन ज़करिया आदि अनेक सोहरावर्दी सन्त इस समय भारत में मौजूद थे। इन सन्तों में से भारत में सोहरावर्दी सम्प्रदाय को स्थापित करने और उसे सशक्त बनाने का श्रेय शेख वहाउद्दीन ज़करिया को था। लेकिन शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी भी उससे पीछे न था। उसने हाँसी, बदायूँ, दिल्ली में अपने सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार किया और बंगाल मे खानक़ाह की स्थापना की जो कि बंगाल में सोहरावर्दी सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र बन गया। क़ाज़ी हामिदउद्दीन नागौरी का पुत्र एक महान् विद्वान् था और उनकी कृतियों को शिक्षित वर्ग में सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था, किन्तु उसमें संगठित करने की प्रतिभा न थी। उसने केवल दिल्ली के एक कसाई, बदायूँ के एक रस्सी बनानेवाले और नेहरवाला के शेख अहमद को ही अपना शिष्य बनाया।[४४] शेख नुरुद्दीन मुबारक गज़नवी, मौलाना मजदउद्दीन हाजी तथा शेख जियाउद्दीन रूमी, शासकों और नौकरशाही के निकट रहे जिससे कि उन्हें सोहरावर्दी सम्प्रदाय को बढ़ाने में सहायता मिली। किन्तु इन सभी सन्तों से शेख वहाउद्दीन ज़करिया बिल्कुल ही भिन्न था। उसका जन्म मुल्तान के समीप कोट अरोर में ११८२-८३ ई० में हुआ था। उसने कुरान व हदीस की शिक्षा प्राप्त करके मुसलमान देशों खुरासान, बुखारा, मदीना, मक्का, फिलिस्तीन का भ्रमण किया और तत्पश्चात् शेख शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी का न केवल शिष्य हो गया वरन् उसके आदेशानुसार उसने मुल्तान आकर एक खानक़ाह की स्थापना की और सोहरावर्दी सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उसकी मृत्यु २१ दिसम्बर १२६२ ई० को मुल्तान में हुई। शेख वहाउद्दीन ज़करिया धन एकत्र करने में विश्वास करता था तथा यदा-कदा राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप किया करता था। उसके सात पुत्र थे और अनेक शिष्य मुल्तान व सिंध में फैले हुए थे। उसका पुत्र शेख सद्रुद्दीन आरिफ मुल्तान में उसका उत्तराधिकारी (खलीफा) और सज्जादानशीन बना। उसका शिष्य सैय्यद जलालुद्दीन सुर्ख बुखारी ने उच्च में सोहरावर्दी सिलसिले की स्थापना की। अगली दो पीढ़ियों तक इन्हीं दो सन्तों के वंशज मुल्तान व उच्च में सोहरावर्दी शाखा की देख-भाल करते रहे।[४५]

शेख वहाउद्दीन ज़करिया के पुत्र शेख सद्रुद्दीन आरिफ को विरासत में अपने

पिता से ७ लाख तन्के प्राप्त हुए। किन्तु वह धन गरीबों में बांट दिया। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र शेख रुकुनद्दीन अबुल फतह ने सोहरावर्दी सम्प्रदाय के इतिहास में वही स्थान प्राप्त किया जो कि चिश्ती सम्प्रदाय के इतिहास में शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने प्राप्त किया था।[४६] उच्च शाखा के सोहरावर्दी सिलसिले के प्रधान सैय्यद जलालुद्दीन बुखारी के तीन पुत्र थे—सैय्यद अहमद कबीर, सैय्यद बहाउद्दीन और सैय्यद मुहम्मद। सैय्यद अहमद कबीर के ज्येष्ठ पुत्र सैय्यद जलालुद्दीन मखदूम जहाँनियाना (१३०८-१३८३) के संरक्षण में उच्च की सोहरावर्दी शाखा ने सिंध के राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन में बड़ी ख्याति प्राप्त की।[४७]

सोहरावर्दी सम्प्रदाय के सन्त अपने पुत्रों के पालन-पोषण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया करते थे और अपने परिवार को भली-भाँति रखते थे। शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने अपने जीवन-काल में करोड़ों तन्के की सम्पत्ति जुटाई। उसने अपने पुत्रों के लिए शिक्षक नियुक्त किये जिन्हें वह अत्यधिक वेतन दिया करता था। सोहरावर्दी सन्त अमीरों व शासकों से उपहार लेते थे और शान-शौकत से जीवन व्यतीत करते थे। वे गरीबी व दरिद्रता के मध्य जीवन व्यतीत करने में विश्वास नहीं रखते थे।[४८]

चिश्ती व सोहरावर्दी सम्प्रदायों के खानकाहों के जीवन पर दृष्टिपात करने पर भी उन सम्प्रदायों के शिष्यों के जीवन की झलक हमें मिलती है। चिश्ती सम्प्रदाय के खानकाहों या जमातखानों में रहस्यवाद का ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों, सरकारी अधिकारियों तथा व्यापारियों की संख्या देखने को अधिक मिलती थी। यह लोग वहाँ स्थायी रूप से निवास करते थे। उनके अतिरिक्त वहाँ हर प्रकार के लोग, विद्वान, राजनीतिज्ञ, सैनिक, हिन्दू योगी व कलन्दर भी आया करते थे और वे अपनी परेशानियाँ व समस्याएँ सूफी सन्तों के सम्मुख रखते थे। दिल्ली निवासी मौलाना बद्रुद्दीन इसहाक़ ने राजधानी में बड़े-बड़े विद्वानों से शिक्षा प्राप्त कर ख्याति प्राप्त की किन्तु अध्ययन करते समय जब वह किसी प्रश्न का उत्तर इन विद्वानों से प्राप्त न कर सका तो उसने अपनी किताबें और सामान बाँधा और उसने बुखारा की ओर प्रस्थान किया। जब वह अजोधन पहुँचा तो वहाँ उसके मित्र ने उसे रोक लिया और वह उसे शेख फरीदउद्दीन गजशंकर के पास ले गया। मौलाना बदरुद्दीन इसहाक़ शेख फरीद से इतना प्रभावित हुआ कि वहीं रुक गया और उसके जमातखाने में ही रहने लगा। वह इतना भावुक था कि कभी-कभी अपनी भावुकता को जब वह नियन्त्रित न कर पाता था तो उसकी आँखों से आँसू टपकने लगते थे। एक दिन खानकाह के किसी निवासी की पत्नी ने उससे कहा कि "ए भाई यदि तुम थोड़ी देर के लिए रोना बन्द कर दो तो मैं तुम्हारी आँखों में सुरमा लगा दूं। इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरे आँसुओं पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है।" अन्य शब्दों में मौलाना बदरुद्दीन इसहाक़ अपना अधिकांश समय पढ़ने, चिन्तन, मनन और अध्ययन में व्यतीत किया करता

था।[४९] सैय्यद महमूद, जो क़िरमान का एक समृद्धिशाली व्यापारी था, ने सन्यास लेकर अजोधन में शेख फरीद की खानकाह में रहना प्रारम्भ किया। वह जमातखाने में हर प्रकार का कार्य किया करता था और उसकी पत्नी वीवी रानी अन्य सदस्यों की सेवा किया करती थी।[५०] चिश्ती सम्प्रदाय के खानकाहों के निवासियों का जीवन बहुत ही कष्टप्रद हुआ करता था, जो कि अध्यात्मवाद के मार्ग पर चलकर खलीफा बनना चाहते थे। उन्हें अपना अधिकांश समय अध्ययन, चिन्तन, मनन, पीर की सेवा तथा खानकाहों में खाने-पीने के प्रवन्ध, नवागन्तुकों की देखभाल करने में व्यतीत करना पड़ता था। उनके प्रशिक्षण का काल बहुत ही लम्बा और कठिन हुआ करता था। उन्हें वहाँ संयम से सांसारिक माया-मोह के वन्धनों से दूर रहना पड़ता था तथा मन, कर्म, वचन को सूफी सन्त के निर्देशन में उसी के अनुरूप ढालना पड़ता था। जमातख़ाने के छप्पर के नीचे सभी विद्यार्थी एवं ज्ञान की खोज में आए हुए लोग अथवा आध्यात्मवाद के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति एक साथ ही रहा करते थे और मिल-जुल कर जो भी उन्हें उपलब्ध होता था खा-पी लेतें थे। वास्तव में यहाँ के लोगों का जीवन दरिद्रता व कष्ट से भरा हुआ होता था, किन्तु फिर भी ज्ञान की पिपासा को शान्त करने व आध्यात्मवाद के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने के लिए अनेक लोग ऐसा ही जीवन व्यतीत करने में सुख का अनुभव करते थे।

इसके विलकुल ही विपरीत सोहरावर्दी सम्प्रदाय के खानकाहों अथवा जमातखानों में रहने वालों का जीवन था। जैसा कि पहले वताया जा चुका है कि सोहरावर्दी सम्प्रदाय के सन्त न तो शासकों से और न ही राज्य के कर्मचारियों से और न ही धन से दूर रहते थे। वे प्रशासन से मान-सम्मान प्राप्त करते थे और समाज के सभी वर्गों से धन व उपहार स्वीकार करते थे। इस कारण इस सम्प्रदाय के खानकाहों व जमातखानों में कभी भी चिश्ती सम्प्रदाय के खानकाहों की भाँति गरीवी व दरिद्रता नहीं दिखाई देती थी। उनके खानकाहों में धन वरावर आता रहता था। सोहरावर्दी सन्त चिश्ती सन्तों की भाँति फ़ुतूह को तत्काल वितरित न करके उसे संचित करते रहते थे। शेख वहाउद्दीन ज़करिया के खजाने में सोने व चाँदी के तन्कों की कमी न थी। एक वार उसके वक्स में से ५,००० सोने के तन्के चोरी हो गये किन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ा।[५१] इस धन से वह प्रशासन की भी सहायता करता था। मुल्तान के वली ने एक वार उससे कुछ अनाज उधार लिया। जव वह अनाज गोदाम से निकाला गया तो उसके साथ कई घड़ों में चाँदी के तन्के मिले। उसके साधन किसी अक्तादार से कम न थे।[५२] उसके पौत्र शेख रुकुनुद्दीन ने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक से जागीर में १०० गाँव प्राप्त किये।[५३] सोहरावर्दी सम्प्रदाय की खानकाहें सर्वसाधारण के लिए न होकर धनी, राज्य के कर्मचारियों व अभिजात वर्ग के लिए ही थीं। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासन-काल में जव एक कव्वाल शेख वहाउद्दीन ज़करिया के खानकाह में गया तो उसने देखा कि उसकी दासियाँ भी हर समय ईश्वर का गुणगान करती रहती हैं।[५४] चिश्ती सम्प्रदाय का कोई भी सूफ़ी सन्त न तो धनी होता था

और न ही उसके पास दासियाँ होती थीं। इसके अतिरिक्त चिश्ती सम्प्रदाय के खानकाहों की तुलना में सोहरावर्दी सम्प्रदाय के खानकाह बहुत बड़े नहीं होते थे वरन् उनमें अनाज के भण्डार व सोने-चाँदी के सिक्कों का खजाना भी होता था। चिश्ती सन्तों की भाँति सोहरावर्दी सम्प्रदाय के सन्त केवल थोड़ा ही समय लोगों से भेंट करने में व्यतीत किया करते थे और वह भी केवल कुछ गिने-चुने व्यक्तियों से ही वे मिलते थे। सोहरावर्दी सन्तों के धनी होने के कारण उनके शिष्यों का जीवन भी बहुत ही सरल होता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्व मध्यकालीन भारत के प्रमुख दो सूफ़ी सम्प्रदायों के सन्तों व उनकी खानकाहों या जमातखानों में किस प्रकार का जीवन था। दोनों ही सम्प्रदाय समाज के विभिन्न वर्गों को अपने उपदेशों, कर्म, वचन, सादगी व आदर्शों से प्रभावित करते रहे और शासक तथा शासित वर्ग के मध्य तारतम्य स्थापित करते रहे जिससे कि वे एक-दूसरे के ऊपर निर्भर रहें। वे समाज का मार्ग-निर्देशन करते रहे। उन्होंने देश में उपयुक्त सामाजिक-राजनीतिक वातावरण स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

6

मुसलमान समाज (मध्यवर्ग एवं सर्वसाधारण)

मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि

भारतवर्ष की सम्पन्नता, जलवायु, धन व समृद्धि की जानकारी पुरातनकाल से अरब तथा फारस के देशवासियों को ही नहीं वरन् संसार के अन्य भागों के लोगों को भी थी। चिरकाल से यहाँ विदेशी अप्रवासी पर्यटक एवं व्यापारी आते रहे, किन्तु इस देश में मुसलमानों का आगमन कुछ विशेष ढंग का था। पूर्व मध्यकालीन भारत में मुस्लिम समाज के मध्य-वर्ग एवं निम्न-वर्ग की संरचना को समझने के लिए भारत में मुसलमान जनसंख्या की वृद्धि तथा उसके मूल कारणों को जानना नितान्त आवश्यक है। सातवीं शताब्दी में मुसलमानों ने पहली बार भारत के द्वार खटखटाने प्रारम्भ किये। अरब में इस्लाम के अभ्युदय के साथ ही मुसलमान प्रवासियों के भारत में आने की चेष्टा, मुसलमानों द्वारा भारत पर आक्रमण करने का प्रयास, मुसलमानों द्वारा भारतीयों का धर्म-परिवर्तन करने तथा भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करने की प्रक्रियाएँ प्रारम्भ होती हैं। अब्दुर-रहमान ने ६६४ ई० के प्रारम्भ में काबुल पर जो कि भारत का एक भाग था, पर आक्रमण करके वहाँ के कई हज़ार व्यक्तियों को इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर विवश किया।[1] उसके बाद व्यापारियों के रूप में मुसलमान सिन्ध, गुजरात तथा मालाबार तट पर पहुँचे और वहाँ बस गये।[2] तत्पश्चात् ७१२ ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया और उसने अलोर, निरून, देवल एवं मुल्तान विजित किये। वहाँ उसने मस्जिदें बनवाईं, मुसलमान गवर्नरों को नियुक्त किया और इस्लाम धर्म का प्रचार किया।[3] उसने देवल में स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाया और वहाँ ४००० मुसलमानों को शहर की रक्षा के लिए नियुक्त किये।[4] उसने मुल्तान में ६००० व्यक्तियों को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया।[5] अलबिलादूरी के विवरण से ज्ञात होता है कि उसने स्वन्दरी, बरमन्द, क़िराज् तथा अलोर में अनेक हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन किया।[6] उसने तत्पश्चात् हज्जाज़ को सूचना दी कि उसने सिंध में अनेक व्यक्तियों का धर्म परिवर्तन कर उन्हें मुसलमान बना लिया है। तदुपरान्त ७१७ ई० में खलीफा उमर ने भारतीय नरेशों को लिखा कि वे हिन्द व सिंध के लोगों को मुसलमान बन जाने के लिए कहें। इस प्रकार उसकी अपील पर अनेक व्यक्ति मुसलमान हो गये और उन्होंने अरबवासियों की

तरह के नाम रख लिये।[७] सिंध में मुहम्मद बिन कासिम लगभग तीन वर्ष (७१२-७१५ ई०) तक रहा। उसके जाने के बाद नव-मुसलमान पुनः अपने धर्म में वापस लौट गये और वे इस प्रकार पुनः हिन्दू अवश्य हो गये किन्तु ऐसे व्यक्तियों को दोनों ही समाज में उपयुक्त स्थान न मिला होगा। खलीफा हाशिम (७२४-४३ ई०) के काल में जब तिमून सिंध का गवर्नर था उस समय अनेक सिंधी इस्लाम धर्म से हिन्दू धर्म में वापस निकल चुके थे।[८] केवल मुल्तान में नवमुसलमान रह गये थे। वहाँ मुसलमानों की जनसंख्या में बराबर वृद्धि होती रही। इन्हीं वर्षों में ओमन से ६३६ ई० में भारतीय तटों को लूटने के लिए दल भेजे गये। मुसलमानों ने थाना (बम्बई) से लेकर गुजरात में भड़ौच तथा सिंध में देवल तक को लूटा।[९] आठवीं शताब्दी में अरबों ने भड़ौच तथा काठियावाड़ के तटीय शहरों पर आक्रमण किये और वहाँ अपने पैर जमा लिए।[१०] इन प्रवासियों में अनेक मुसलमान व्यापारी, सैनिक तथा सन्त थे। इब्नहौकल (९६८ ई०) ने लिखा है कि खम्भात से लेकर सैमूर तक का प्रदेश बलहारा का है, किन्तु यहाँ के शहरों में मुसलमान निवास करते हैं।[११] ९१६ ई० में मसूदी ने भारत का भ्रमण किया। उसे सैफ ओमन, बगदाद, बसरा के लोग चौल (सैमूर) में मिले।[१२] उसने फमहल, सिंध, सैमूर (चौल) तथा खम्भात में जामा मस्जिदें देखी।[१३] इससे मालूम होता है कि ९१६ ई० से ९६८ के मध्य गुजरात से लेकर चौल तक अनेक मुसलमान प्रवासी भारत में आकर बस चुके थे और शनैः शनैः उनकी संख्या बढ़ती रही। इसी भाँति मालाबार तट पर भी मुसलमान सर्वप्रथम व्यापारी के रूप में तदुपरान्त प्रवासी के रूप में पहुँचे और वहाँ बस गये। यह सत्य है कि ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक तटीय प्रदेशों में उनकी जनसंख्या कम थी और उनकी बस्तियाँ छोटी थीं, किन्तु अब तक वे भारतीय जनता का एक अंग बन चुके थे।

जब सुल्तान महमूद गज़नी ने १००० ई० में भारत पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया तो उस समय मुल्तान व सिंध में अधिक संख्या में मुसलमान थे। इसी वर्ष उसने पहला आक्रमण किया और उत्तर-पश्चिम के कुछ सीमान्त प्रदेश अधिकृत कर लिए और वहाँ उसने हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया।[१३] तदुपरान्त उसने १००३ ई० में वैहिन्द (पेशावर) पर आक्रमण कर जयपाल, उसके १५ सरदारों तथा सम्बन्धियों को बन्दी बना लिया और उनमें से कुछ को मुसलमान बना लिया।[१४] भीरा में केवल उन्हीं लोगों को मुक्त कर दिया गया जो कि मुसलमान बन गये थे, शेष को मौत के घाट उतार दिया गया। भीरा में अत्यधिक हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन किया गया।[१५] मुल्तान में भी अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया।[१६] काश्मीर की घाटी पर १००५ ई० में आक्रमण करते समय उसने अनेक काफ़िरों को मुसलमान बनाया।[१७] जब उसने मथुरा, बरन, कन्नौज पर आक्रमण किये तो वहाँ भी उसने लोगों को मुसलमान बनाया। उत्वी के अनुसार कन्नौज के दुर्ग को विध्वंस होने के उपरान्त लोगों ने या तो इस्लाम धर्म स्वीकार किया या उसके विरुद्ध हथियार उठा

लिए।[१८] वरन में लगभग १०,००० हिन्दू मुसलमान बनाये गये। तदुपरान्त उसने १०२३ ई० में कीरत, नूर, लोहकोट तथा लाहौर पर आक्रमण किया और वहाँ उसने हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर बाध्य किया।[१९] इस प्रकार से ११वीं शताब्दी के प्रथम तीस वर्षों में मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि हुई। इसी काल में कन्नौज, बनारस तथा बहराइच में मुसलमानों की बस्तियों की भी स्थापना हुई।[२०] इस तथ्य की पुष्टि १६वीं शताब्दी के लामा इतिहासकार तारानाथ ने की है। उसने लिखा है कि अन्तर्वेदी तथा गंगा-यमुना-दोआब में तुर्कों की अनेक बस्तियाँ थीं।[२१] उसने यह भी लिखा है कि १२०३ ई० में ओदन्तपुरा तथा विक्रमशिला पर तुर्कों के आक्रमण होने से पूर्व लवसेन तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय मगध में तुर्कों की संख्या बढ़ गई थी। इसी काल में गुजरात तथा काश्मीर में भी मुसलमानों की संख्या बढ़ी।[२२] इस प्रकार से ११वीं शताब्दी के अन्त तक गुजरात, सिंध, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा काश्मीर के अतिरिक्त पंजाब, मालाबार तट, कोंकण में भी उनकी संख्या अपेक्षा से कहीं अधिक थी।[२३]

हिन्दुओं को बन्दी बनाकर उन्हें मुसलमान बनाना

१२वीं शताब्दी के अन्त में जब मुहम्मद गौरी ने आक्रमण किया उस समय देश के विभिन्न भागों में काबुल से लेकर बंगाल तक तथा दक्षिण में कोंकण तथा मालाबार तट पर अनेक स्थानों में मुसलमानों बस चुके थे। मुहम्मद गौरी ने ११९०-११९१ ई० में जब भटिण्डा विजित किया तो उसने क़ाजी जियाउद्दीन को १२००० अश्वारोहियों के साथ वहाँ नियुक्त किया।[२४] तत्पश्चात् पृथ्वीराज को तराइन के द्वितीय युद्ध में पराजित करने के बाद उसके ५०,००० सैनिक भारत में ही बने रहे।[२५] कालान्तर में उसके सेनानायक ऐबक ने मुहम्मक बिन बख्तियार खिल्जी को पूर्व को ओर रवाना किया और स्वयं उसने कोल विजित कर लिया। ऐबक ने कोल में अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया।[२६] इसी प्रकार ११९५ में जब उसने गुजरात के राजा भीम पर आक्रमण कर २०,००० व्यक्तियों को बन्दी बनाया[२७] और १२०२ ई० में कालिंजर पर आक्रमण करके ५०,००० व्यक्तियों को बन्दी बनाया तो उसने उन्हें दास बनाकर उनको मुसलमान बना लिया।[२८] इसके बाद मुहम्मद गौरी ने खोखरों के विद्रोह को दबाने के उपरान्त पंजाब के ४००० खोखरों तथा तीरहियों को मुसलमान बनाया।[२९] लगभग इसी काल में मुहम्मद बिन बख्तियार खिल्जी पूर्व की ओर बढ़ा और उसने बनारस से लेकर बंगाल तक आतंक फैलाकर अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इन नव-मुसलमानों में से नालन्दा, विक्रमशिला तथा ओदन्तपुरी के बौद्ध थे। मुहम्मद बख्तियार खिल्जी ने हिमालय की तराई में बसे हुए लोगों का भी धर्म-परिवर्तन किया[३०]। दूसरी ओर पश्चिम से ऐबक ने अजमेर, ब्याना तथा ग्वालियर पर आक्रमण करके वहाँ के लोगों को बन्दी बनाकर उनका धर्म परिवर्तन किया।[३१] प्रो० के० एस० लाल के अनुसार ११९३ ई० से १२१० ई० के मध्य मुसलमानों की संख्या, अप्रवासियों

तथा धर्म परिवर्तित लोगों को मिलाकर दो लाख इक्यावन हजार दो सौ थी। उनके अनुसार भारत की कुल जनसंख्या १८० लाख थी अतएव उसमें से २.१ प्रतिशत मुसलमान थे।[३२]

विदेशों से मुसलमानों का आगमन

१२०६ ई० में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। उसके बाद भी मुसलमान अप्रवासियों का मुस्लिम संसार के विभिन्न भागों से भारतवर्ष में आकर बसना निरन्तर जारी रहा। इससे पूर्व अनेक योद्धाओं एवं आक्रमणकारियों के साथ खिताई करा, खिताई, किपचक, गरजी तथा इल्बारी तुर्क भारत में आए।[33] ऐबक की सेना में १२०६ ई० से लेकर १२१० ई० के मध्य तुर्क, गौरी, खुरासानी तथा खिल्जी थे।[३४] उसके बाद मध्य एशिया, अफ्रीका व अफगानिस्तान से राजनीतिक शरणार्थी, सैनिक अप्रवासी, व्यापारी, सन्त, विद्वान, गायक, जादूगर इत्यादि अधिकाधिक संख्या में भारत आए क्योंकि मध्य-एशिया में मंगोलों ने अपने आक्रमणों के द्वारा वहाँ वीभत्स दृश्य प्रस्तुत कर दिया था। उनके आक्रमणों से भयभीत होकर वे स्वदेश छोड़कर यहाँ आए।[३५] मिनहाज के अनुसार इस काल में अनेक ईरानी भारत आए और यहीं बस गये।[३६] ऐबक की मृत्योपरान्त जब मलिक नासिरुद्दीन कुबाचा सिंध में था, तो मंगोल उत्पात के कारण खुरासान, गौर व गजनी के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उसकी सेवा में पहुँचे। उसने उनका आदर सत्कार किया।[७]

इल्तुतमिश के शासनकाल से पूर्व कभी भी इतनी संख्या में राजनीतिक शरणार्थी या अप्रवासी भारत नहीं आए थे। इल्तुतमिश के शासन-काल के प्रारम्भ में अमीर रुहानी,[३८] काज़ी हमीदउद्दीन नागौरी,[९] फख्र उल मुल्क एसामी,[४०] नुरुद्दीन मुहम्मद ऊफी[४१] के अतिरिक्त हजारों हब्शी तथा अन्य जातियों के मुसलमान दिल्ली आए और उन्होंने वहीं शरण ली। चंगेज खाँ की सेनाओं से अपनी जान बचाकर जलालुद्दीन मंगोबरनी अपने १०,००० सैनिकों व अनुयाइयों को लेकर भारत में १२२१ ई० में पहुँचा।[४२] यद्यपि १२२४ ई० में स्वदेश वापस लौट गया किन्तु उसके अनेक समर्थक पंजाब में ही रुक गये और वे वहीं बस गये। तदुपरान्त मंगोलों के भयावह आक्रमणों से आतंकित होकर ईराक, खुरासान तथा मुवारुन्नहर के २५ राजकुमारों ने दिल्ली में शरण ली।[४३] इल्तुतमिश के दरबार में गरदेजी, ख्वरिज़म, तुर्किस्तानी, गौर, खिल्जी, सरवानी, मलिक व अमीर थे। एसामी ने लिखा है कि "जब सुल्तान इल्तुतमिश, जो कि संसार में धर्म का प्रकाश था, ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया, तो वह शहर चमक उठा। उसमें अरब से अनेक उत्तम वंश के सैय्यद आए, अनेक व्यापारी खुरासान से आए, अनेक चित्रकार चीन से आए, अनेक उल्मा बुखारा से आए तथा अनेक धार्मिक व्यक्ति संसार के अन्य भागों से आए। इसी प्रकार से हर प्रकार के शिल्पकार प्रत्येक देश से यहाँ आए। हर प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ विभिन्न शहरों व जातियों की यहाँ आईं। अनेक सर्राफ, आभूषण विक्रेता तथा मोती विक्रेता, यूनानी विचारधारा के

दार्शनिक एवं हकीम तथा विद्वान सभी देशों से यहाँ आए। सभी इस शहर में मोमबत्ती की रोशनी के चारों ओर छोटे-मोटे कीड़े की भाँति एकत्र हो गये। दिल्ली सात देशों का वन गया।"[४४] बलबन के दरबार में मुसलमान देशों के १५ राजकुमार थे। बलबन के शासनकाल में तुर्किस्तान, मुवारून्नहर, खुरासान, ईराक, अज़रबैजान, फ़ारस, रूम से अनेक शरणार्थी राजकुमार दिल्ली आए। उनके साथ अधिक संख्या में उनके साथी भी थे। बलबन ने दिल्ली में उन्हें १५ मुहल्लों में पृथक-पृथक बसाया।[४५] इन व्यक्तियों में गायक, विद्वान्, शैख़, मशाहिक, क़ुरान पढ़ने वाले इत्यादि थे। बलबन ने अफगानिस्तान से आए हुए अफगानों को गोपालगिरि, कम्पिल, पटियाली, भोजपुर तथा जलाली में नियुक्त किया।[४६] उसकी सेना में सीस्तानी, अरबी, ग़ौरी, समरकन्दी सैनिक थे। इसी काल में उत्तर पश्चिम से या तिब्बत के मार्ग से मंगोल भारत में आते रहे।[४७] जो मंगोल बड़ी सेना के साथ यहाँ आए वे बलबन की सेना में भर्ती हो गए। उन्होंने वहाँ के कुछ अमीरों से सम्बन्ध भी स्थापित किए।[४८] १२९१ ई० में मंगोल आक्रमणकारी अलगू ४००० मंगोलों को उनके परिवार के साथ यहाँ आया और उसने भारत को अपना घर बना लिया।[४९] उनकी बस्ती मुग़लपुरा कहलाने लगी। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय अनेक मंगोल बन्दियों ने इस्लाम ग्रहण किया और भारत में आकर बस गए। ज़ियाउद्दीन बरनी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासन काल में खुरासान, ईराक़ मुवारून्नहर, ख्वारिज़्म, सीस्तान, हरात तथा दमिश्क से अनेक मुसलमान सुल्तान की कृपा अर्जित करने के लिए आये। क्योंकि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक भारतीयों की तुलना में विदेशी मुसलमानों को राजकीय सेवा में प्राथमिकता देता था, अतएव अप्रवासियों को भारत में आने का प्रोत्साहन मिला।[५०] इन अप्रवासियों के अतिरिक्त यहाँ अधिक संख्या में व्यापारी बराबर आते रहे। उनमें से अनेक तो यहीं स्थायी रूप से बस गए या अपने प्रतिनिधियों को छोड़ गए। यह व्यापारी या तो उत्तम-पश्चिम में स्थित दर्रों से सिंध, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश या समुद्र मार्ग से गुजरात, सिंध, कोंकण या मालाबार तट या बंगाल पहुँचते थे। अरब व्यापारियों की एक बस्ती चिटगाँव (बंगाल) में थी। इस काल में खुरासानी व्यापारियों का व्यापार उत्तरी भारत में फैला हुआ था। दक्षिण में समुद्रतटीय शहरों में जैसे कि कालीकट, कोचीन एवं क्यूलोन में मुसलमान व्यापारियों की पुरानी बस्तियाँ थीं। दक्षिण के राज्यों में भी मुसलमान बस गए थे। अब्दुल्लाह के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय अनेक शैख ईरान, बुखारा से आए और आगरा में रहने लगे।[५१] संक्षेप में १२०६ ई० से १४०० ई० तक अप्रवासी राजकुमारों, राजनीतिक शरणार्थियों तथा व्यापारियों के कारण मुसलमानों की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई।

१३वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में राजनीतिक शक्ति समी, खिताई, क़रा खिताई, किपचक, महर, गर्जी, ख्वारिज्मी, इल्वारी, तुर्की, खिल्जियों व अफ़गानों के हाथों में थी। वे लोग मध्य एशिया, अरब, ईरान तथा अफ़गानिस्तान से आए थे। इन जातियों में अफ़गानों का वास्तविक प्रवसन १३वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ। वे

इल्वारी सुल्तानों के समय अत्यधिक संख्या में भारत आए। बलबन ने उन्हें अपनी सेना में भर्ती किया, जागीरें प्रदान कीं, दुर्गों में नियुक्त किया तथा उन्हें अपनी बस्तियाँ बसाने के लिए प्रोत्साहन दिया। खिल्जी, तुगलक तथा सैय्यद शासकों के अन्तर्गत उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और वे शनैः शनैः उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में लोहानी, नियाज़ी, लोदी, सूर तथा अन्य अफ़गान कबायली जातियों के प्रवसन के कारण उनकी अनेक बस्तियाँ स्थापित हो गयीं। सुल्तान बहलोल लोदी ने प्रथम अफगान साम्राज्य की स्थापना की। उसने अफगानिस्तान की अनेक अफगान कबायली जातियों विशेषकर रोह के अफगानों को इस देश में आने के लिए निमंत्रित किया। तारीखे शेरशाही के रचयिता अब्बास खान सरवानी के कथनानुसार उसके निमंत्रण पर अनेक अफगान टिड्डियों के झुण्ड की भाँति हिन्दुस्तान आए। सुल्तान बहलोल ने उन्हें अक्ताएँ प्रदान कीं व उनको सम्मान प्रदान किया।[५२] इस प्रकार वे भी स्थायी रूप से यहाँ बस गए।

लगभग इन्हीं २०० वर्षों में दिल्ली सल्तनत के शासक व अमीर न केवल नये प्रदेशों को विजित करने वरन् अधिक से अधिक दास उपलब्ध करने के लिए अभियान पर जाते रहे। इन आक्रमणों के समय वे स्त्रियों व बच्चों को भी बन्दी बना लिया करते थे। वे उनको बलपूर्वक मुसलमान बना लिया करते थे। इब्न असीर के अनुसार ऐबक ने अनेक प्रदेशों पर आक्रमण किये। वह वहाँ से लूट के माल के साथ बन्दियों को भी लाता था।[५३] उसी के अनुसार उसने बनारस में केवल स्त्रियों व बच्चों को छोड़कर सभी को मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार यह दास प्रत्येक तुर्क के घर पर दिखाई पड़ने लगे। जहाँ किसी भी सैनिक या साधारण मुसलमान के घर में एक भी दास नहीं होता था अब उनके पास अनेक दास रहने लगे।[५४] १२३१ ई० में इल्तुतमिश ने ग्वालियर पर आक्रमण करके वहाँ से अनेक दास प्राप्त किये।[५५] मिनहाज उस सिराज ने अवध में इल्तुतमिश के अभियानों का विवरण देते हुए लिखा है कि चन्देल वंश के त्रैलोक्यवर्मन के विरुद्ध युद्ध करते समय उसने अनेक स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाया।[५६] इस भाँति बलबन ने १२५३ ई० में रणथम्भौर के विरुद्ध युद्ध करते समय अनेक लोगों को बन्दी बनाया।[५७] १२५८ ई० में सिवालिक की पहाड़ियों में युद्ध करते हुए उसने अनेक स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाया।[५८] बलबन ने दो बार कम्पिल, पटियाली तथा भोजपुर पर आक्रमण किया और दोनों ही अभियानों में उसने अनेक स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाया। इसी भाँति कटेहर में उसने पुरुषों का कत्ले-आम करवाया और उनकी स्त्रियों व ८ वर्ष तक के बच्चों को बन्दी बनवाया।[५९] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासन-काल में युद्धों के समय काफिरों को बन्दी बनाना अभियानों का मुख्य उद्देश्य था। उसके पास इस प्रकार से ५०,००० दास हो गये, जिनमें से अधिकांश लड़के ही थे।[६०] मुहम्मद बिन-तुग़लक के समय बन्दी बनाकर बन्दियों को दास बनाने की प्रक्रिया में गतिशीलता उत्पन्न हुई। मुहम्मद तुग़लक ने अभियानों के दौरान तो युद्ध में प्राप्त बन्दियों को दास तो

बनाया ही, दोआब में दुर्भिक्ष पड़ने तथा कृषकों द्वारा भूराजस्व का भुगतान न कर सकने के कारण उन्हें भी वन्दी बनाकर दास बना लिया गया। गरीब निःसहाय कृषकों ने भूख के कारण अपने परिवारों को बेचा। प्रतिदिन हज़ारों वन्दी कम मूल्य पर बिकते हुए देखे जाते थे।[६१] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक स्वयं दोनों ईदों के अवसर पर दासियों का विवाह मुसलमानों से करवाता था। इसका विवरण इब्नबतूता ने दिया है।[६२] उसने लिखा है कि दोनों ईदों के अवसर दरबार में सर्वप्रथम हिन्दू राजाओं की पुत्रियाँ जो कि उस वर्ष युद्ध में वन्दी बनाई गयीं थीं, उन्हें सुल्तान अपने भाइयों, सम्बन्धियों, मलिकों के पुत्रों आदि को प्रदान करता था। दूसरे दिन पुनः इसी प्रकार से दासियाँ गाती हुई लाई जाती थीं, सुल्तान उन्हें अमीरो को भेंट में दे दिया करता था। चौथे व पाँचवें शेष दिन दास व दासियाँ मुक्त कर दिये जाते थे। छठें दिन, दास-दासियों का विवाह सम्पन्न कराया जाता था। इब्नबतूता आगे लिखता है कि वजीर ने उसके पास १० ग़ैर मुसलमान दासियाँ उपहार में भेजी उनमें से उसने एक लाने वाले को तथा ३ अपने साथियों को दे दी और शेष अपने पास रख लीं। इस देश में लूट द्वारा प्राप्त दासियाँ बड़ी सस्ती होती थीं। वे गन्दी और असभ्य होती थीं। सीखी दिखाई लौंडियाँ भी यहाँ सस्ती मिलती थीं। अतः वन्दी लौंडियों को मोल लेने को किसी को आवश्यकता नहीं होती थी।[६३] फिरोजशाह तुगलक ने भी युद्धों में हज़ारों स्त्रियों व बच्चों को वन्दी बनाया। बशीर सुल्तानी मूल रूप से उसका धर्म-परिवर्तित दास था। उसने ४००० दासों को खरीदा।[६४] बाद में उनको मुक्त कर दिया गया और उनका विवाह कर दिया गया जिसके एक ही पीढ़ी में हजारों मुसलमान सन्ततियाँ उत्पन्न हुई होंगी। फिरोज़शाह तुग़लक के पास १८,००००० दास थे।[६५] खान जहाँ मक़बूल भी मूलतः धर्म-परिवर्तित दास था, जो कि आगे चलकर वज़ीर के पद पर नियुक्त हुआ। उसके हरम में २००० स्त्रियाँ थीं जिनकी सेवा करने के लिए उसके पास कई हज़ार दास होंगे।[६६]

इस काल में केवल युद्धों के दौरान ही दास नहीं बनाये जाते थे वरन् सल्तनत के सुल्तान व अमीर भी प्रशासन तन्त्र का प्रयोग मुसलमान बनाने के लिए किया करते थे। वे विदेशी मुसलमानों, विद्वानों, शेख, मशहिकों, प्रशासकों, सैनिकों, कलाकारों, दार्शनिकों इत्यादि को प्रश्रय दिया करते थे, जिससे विदेशी मुसलमानों को भारत में अप्रवास करने के लिए प्रोत्साहन मिलता था। वे मस्जिदों, खानकाहों तथा मदरसों के निर्माण के लिए धन दिया करते थे, जिससे विदेशी मुसलमान वहाँ रहें, इस्लाम का प्रचार करें, शिक्षा के विकास में योगदान दें तथा ऐसा वातावरण उत्पन्न करें जिससे हिन्दू समाज का दलित एवं निम्न वर्ग उनके प्रभाव में आकर मुसलमान बन जाए। प्रशासन की ओर से विदेशों से आये हुए सैय्यदों तथा अन्य लोगों को **मदद ए-माश** में भूमि ऐसे प्रदेश में प्रदान की जाती थी जहाँ कि मुसलमानों का कोई चिह्न तक न होता था। इस प्रकार के **मदद-ए-माश** प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी जब नये इलाकों में जाकर बसते थे तो वे अपने लिए वहाँ मस्जिद, कुआँ, निवास-स्थान निर्मित

करवाते थे और मुसलमानों व निःसहाय हिन्दुओं को भूमि का प्रलोभन देकर अपनी ओर आकृष्ट करते थे। वे भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के कार्य में लगे रहते थे। प्रशासन तन्त्र स्वयं हिन्दुओं को मुसलमान बनाने पर दबाव डालता था क्योंकि वह जानता था कि जब तक मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती तब तक प्रशासन को हिन्दू विरोध का सामना करना पड़ेगा। दूसरे प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के लिए ही नहीं वरन् अन्य कार्यों के लिए भी मुसलमानों की सेवा की बराबर आवश्यकता बढ़ती ही जा रही थी। चूंकि आवश्यकता की पूर्ति विदेशी मुसलमानों के आगमन से नहीं हो सकती थी अतः प्रशासन तन्त्र को मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने का कार्य करना पड़ा। इब्नबतूता ने लिखा है कि सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी (१३१६-१३२०) हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया करता था। वह उनके मुसलमान बनने पर उन्हें एक खिलअत तथा स्वर्ण का आभूषण दिया करता था।[६७] फिरोज़शाह तुग़लक के समय राजतन्त्र स्वयं धर्म-परिवर्तन करने की संस्था बन गई। अफीफ ने लिखा है कि आमिलों को धर्म परिवर्तन कराने का आदेश दे दिया गया।[६८] फिरोज़शाह तुग़लक ने स्वयं फ़ुतूहात-ए-फिरोज़शाही में लिखा है कि उसने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए जज़िया लागू कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप देश के प्रत्येक भाग से हज़ारों धर्म-परिवर्तित मुसलमान दिल्ली पहुँचने लगे। उसने ब्राह्मणों को जो अब तक जजिया से मुक्त थे, जजिया देने के लिए बाध्य किया क्योंकि वे ही मुख्य रूप से हिन्दुओं को मुसलमान बनाने बाधक थे।[६९]

आर्थिक प्रलोभन देकर हिन्दुओं को मुसलमान बनाना

आर्थिक प्रलोभनों में आकर या अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा करने या नये व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए भी हिन्दू समाज को निःसहाय, दलित, गरीब, अछूत लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और वे मुसलमान बन गये। कहीं-कहीं व्यवसाय एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के कारण भी हिन्दुओं को मुसलमान बनना पड़ा। मुसलमान धुनियाँ व जुलाहों के सम्पर्क में रहने के कारण दर्ज़ियों को मुसलमान बनना पड़ा। मुसलमानों से पका हुआ भोजन ग्रहण करने पर भिखारियों को मुसलमान बनना पड़ा। कसाइयों का व्यवसाय ही ऐसा था कि वे मुसलमानों के सम्पर्क में रहे और धीरे-धीरे वे भी मुसलमान हो गये। इसी प्रकार व्यवसायों में कुशलता की वृद्धि एवं उनके विकास के कारण निम्नवर्ग के हिन्दुओं ने जब उनमें प्रवेश किया तो उनकी नई जाति हो गई और उनमें से अनेक मुसलमान हो गये। मुस्लिम समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म-परिवर्तित नानवाइयों, कसाइयों, रंगरेजों, जुलाहों, बावर्चियों हलवाइयों, धोबियों, हज्जामों या नाइयों इत्यादि ने की। नव-स्थापित शहरों के अतिरिक्त राजधानी, विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के केन्द्रों में वहाँ के मुसलमानों की आबादी बराबर बढ़ती रही। वहाँ एक नवीन श्रमिक शिल्पकार वर्ग उत्पन्न हुआ जो प्रमुखतः मुसलमान था या जिसमें मुसलमान प्रवेश कर चुके थे।[७०] शहरी क्रान्ति ने इस वर्ग

को सशक्त बनाया। दूसरी ओर 'ग्रामीण क्रान्ति' ने इस युग में गाँवों की व्यवस्था में मुसलमान अमीन, आमिल तथा भू-राजस्व विभाग से सम्बन्धित अनेक अधिकारियों को प्रवेश दिलाया। इस प्रकार से शहरों व गाँवों में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ती रही। पहले दो सौ वर्षों में (१२००-१४०० ई०) प्रो० के० एस० लाल के अनुसार भारत की जनसंख्या १७० लाख हो गई थी, उसमें १.८ प्रतिशत मुसलमान थे।[७१]

राज्य की ओर से धर्म परिवर्तन का कार्य

अगले दो सौ वर्षों (१४००-१६०० ई०) कुछ राजनीतिक उथल-पुथल रही। १३९८ ई० में अमीर तैमूर का भारत पर भयावह आक्रमण हुआ। पंजाब से लेकर दिल्ली तक हिन्दुओं व मुसलमाओं को उसके आक्रमण की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। हजारों लोग मारे गये, हजारों परिवार नष्ट हो गये, हजारों मील भूमि वीरान हो गई, सैकड़ों शहर व गाँव उजड़ गये। किन्तु जैसे ही यह आँधी निकल गई, तुग़लक वंश का पतन हुआ। एक ओर तो दिल्ली में सैय्यदों व लोदियों की प्रभुसत्ता स्थापित हुई तो दूसरी ओर बंगाल, मालवा, गुजरात, जौनपुर तथा दक्षिण में खानदेश तथा बहमनी राज्यों की स्थापना हुई। इन दो सौ वर्षों में विदेशों से मुसलमानों का भारतवर्ष में अप्रभावी होकर आना ज्यों का त्यों बना रहा। हर तरह से यही प्रयास होता रहा कि मुसलमानों की जनसंख्या बराबर बढ़ती रहे। सिंध के सुमराओं, सोढ़ा तथा कलहोराओं ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब बाबर ने शाहबेग अरग़ून को कन्धार से भगा दिया तो शाहबेग सिंध पहुँचा। उसने वहाँ से जाम फिरोज को निकाल दिया तथा उसके पुत्र शाह हुसैन ने १५२८ ई० में मुल्तान अधिकृत कर लिया। अब तक सिंध में मुसलमानों की संख्या अत्यधिक बढ़ चुकी थी।[७२] काश्मीर में सिकन्दर बुतशिकन (१३८४-१४१७ ई०) ने पहले से ही धर्म परिवर्तन करना शुरू कर दिया था। अनेक काश्मीर ब्राह्मणों को विवश होकर इस्लाम स्वीकार करना पड़ा।[७३] बंगाल में अप्रवासी मुसलमानों की संख्या में वृद्धि का मुख्य कारण व्यापार था। व्यापार के सम्बन्ध में अनेक मुसलमान यहाँ आये और बस गये। रुकुनुद्दीन बारबक शाह (१४६०-७४ ई०) ने अपनी रक्षा के लिए हब्शियों का आयात किया और लगभग ८००० हब्शियों को अपनी सेवा में नियुक्त किया। बंगाल में मिस्र, अरब, तुर्की भारत के अन्य भागों से मुसलमान अधिक संख्या में आये और वहाँ के विभिन्न शहरों में स्थायी रूप से बस गये। वहाँ कोई शहर ऐसा नहीं रह गया जहाँ कि मुगल, पठान, सैय्यद, मुल्ला, क़ाज़ी आदि न हों।[७४] गुजरात राज्य की स्थापना १३९६ ई० में हुई। वहाँ के मुसलमान शासकों ने इस्लाम का प्रचार किया। उन्होंने अनेक हिन्दुओं को युद्धों में बन्दी बनाकर उनका धर्म परिवर्तन किया। इसके अतिरिक्त व्यापार के सम्बन्ध में अनेक मुसलमान गुजरात में आकर बसे। यहाँ के बन्दरगाहों में तुर्क, मेमलूक, अरब, ईरानी, खुरासानियों, तुर्कमान व हब्शियों की आबादी थी। खम्भात, रतनपुर, रान्देर तथा सूरत में विदेशी व भारतीय

मुसलमानों की संख्या अच्छी खासी थी।[७५] इसी प्रकार मालवा के शासकों ने (१४६१ से १५६२ ई०) के मध्य के खेरला, उड़ीसा, गगरौन पर अपने आक्रमणों के दौरान अनेक लोगों को बन्दी बनाया और उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया। सुल्तान महमूद खिलजी ने १४५४ ई० में हाड़ा राजपूतों पर चढ़ाई की और उनकी स्त्रियों व बच्चों को माण्डू लाकर उन्हें दास के रूप में रखा। उसने १४६८ ई० में चन्देरी के समीप कराहरा नामक शहर को जला डाला और वहाँ से ७००० बन्दियों को वह माण्डू लाया। मालवा के शासकों का अन्तःपुर बहुत ही बड़ा था जिसमें कि अनेक स्त्रियाँ थीं। सुल्तान ग्यासुद्दीन (१४६८-१५००) के हरम में राजपूत शासकों व जमींदारों की सुन्दर लड़कियों की भरमार थी।[७६] उसके हरम की स्त्रियों की संख्या १००० से १०,००० तक थी।[७७] दक्षिण भारत में खानदेश तथा बहमनी राज्यों की स्थापना से मुसलमान तत्वों को प्रश्रय मिला। वहाँ मुस्लिम संसार के विभिन्न भागों से तथा उत्तरी भारत से अनेक मुसलमान पहुँचे और वे वहीं बस गये। खानदेश राज्य में मुसलमानों की संख्या अच्छी थी। बहमनी शासक सुल्तान अलाउद्दीन बहमनी (१३४७-१३५८) ने उत्तरी कर्नाटक के हिन्दू सरदारों के विरुद्ध अभियान में हिन्दू मन्दिरों से १००० नर्तकियाँ व गायिकाएँ प्राप्त कीं।[७८] सुल्तान ताजुद्दीन फिरोज (१३८७-१४२२) ने विजयनगर के साथ युद्ध करते समय १४०६ ई० में ७०,००० युवकों व बच्चों को बन्दी बनाया। जब विजयनगर के शासक बुक्का ने उससे सन्धि की तो उसने उसको २०,००० लड़के व लड़कियाँ, जो कि गायन व नृत्य में प्रवीण थे उपहार में प्रदान किये।[७९] सुल्तान फिरोज के हरम में ८०० स्त्रियाँ विभिन्न देशों की थी।[८०] उसके उत्तराधिकारी अहमद बली (१४२२-३६) ने विजयनगर पर आक्रमण के समय स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाया और उन्हें बाद में मुसलमान बना लिया।[८१] सुल्तान अलाउद्दीन (१४३६-३८) के हरम में भी १००० स्त्रियाँ थीं। बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य के मध्य लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक संघर्ष चलता रहा और इस मध्य बहमनी शासक विजयनगर साम्राज्य से हिन्दुओं को बन्दी बनाकर अपने राज्य में लाकर उनका धर्म परिवर्तन करते रहे। इसके अतिरिक्त विदेशों से भी मुसलमान बहमनी राज्य में आते रहे। विदेशी मुसलमानों की संख्या दिन प्रतिदिन वहाँ बढ़ती रही। उन्हें सुल्तानों का प्रश्रय प्राप्त था। इन विदेशी मुसलमानों में अरब, अफगान, हब्शी, मिस्र निवासी, ईरानी एवं तुर्क इत्यादि थे।[८२] मालाबार तट पर व्यापार में वृद्धि होने के कारण मुसलमान जनसंख्या में वृद्धि हुई। सम्पूर्ण मालाबार तट खुरासानी, अरब, ईरानी, गुजराती तथा दक्खिनी मुसलमानों से भरा हुआ था। वहाँ स्थानीय हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया पहले से ही चल रही थी।[८३] प्रो० के० एस० लाल के अनुसार १६०० ई० के लगभग भारत की कुल जनसंख्या १४० लाख थी, उसमें से १.५ लाख मुसलमान थे, अतः मुसलमान कुल जनसंख्या का १/८ या १/१० थे।[८४]

मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि के मुख्य कारण

प्रो० लाल ने मुसलमानों की जनसंख्या की वृद्धि मे दिल्ली तथा प्रादेशिक शासकों तथा प्रशासन तन्त्र की धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहन देने के कार्य की विवेचना के साथ भारत में मुसलमान देशों से अप्रवासियों के आने की चर्चा विशेष रूप से की है। किन्तु इस काल में कई अन्य कारणों से मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ी। सर्वप्रथम शासकों तथा उनके सेनानायकों ने स्त्रियों व बच्चों को अधिक से अधिक संख्या में बन्दी बनाया क्योंकि उनका धर्म परिवर्तन करना सरल था तथा उन स्त्रियों से मुसलमान सन्तति की उत्पन्न होने की उन्हें पूर्ण आशा थी। दूसरे मुसलमानों में बहुविवाह प्रथा थी। साधारण से साधारण मुसलमान यहाँ तक मुसलमान सूफी सन्त भी एक से अधिक विवाह किया करते थे या स्त्रियाँ रखते थे। इस कारण भी मुसलमान जनसंख्या में वृद्धि हुई। तीसरे, प्रशासन की ओर से विविध प्रकार के प्रलोभन जैसे कि इस्लाम ग्रहण करने पर अभियोगी को मुक्त कर देना, भू-राजस्व से मुक्त कर देना, ऋण से मुक्त कर देना, इत्यादि से भी हिन्दू मुसलमान बने। इस्लाम भारतवर्ष में हिन्दू समाज के दलित वर्गों के लिए समानता, मातृत्व, बन्धुत्व का सन्देश लेकर आया। सदियों से उत्पीड़ित एवं शोषित दलित वर्ग के सम्मुख बन्धनों एवं बँधुवा मजदूरी से मुक्त होने व स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का एक ही विकल्प था वह यह कि वह इस्लाम धर्म ग्रहण कर ले। इस प्रकार से दुर्ग के बाहर रहने वाले हजारों निःसहाय एवं असुरक्षित हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर जीवनयापन के नवीन स्रोत ढूंढ़ निकालने तथा अपने व अपने पारिवारिक जीवन को सुरक्षित करने की चेष्टा की। उन्हें यह आशा थी कि वे अब जीवन में मुक्त रूप से उन्नति कर सकेंगे। हिन्दू समाज के निम्न वर्ग को इस्लाम की ओर उन्मुख तथा प्रेरित कराने में सूफियों के विभिन्न सम्प्रदायों का विशेष योगदान था।

सूफी सन्तों द्वारा धर्म परिवर्तन का कार्य

पूर्व मध्यकालीन भारत में धार्मिक क्षेत्र में सूफी रहस्यवाद ने प्रवेश किया। यद्यपि सूफी रहस्यवाद का मुख्य लक्ष्य भारत में धार्मिक सहिष्णुता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, बन्धुत्व व एकेश्वरवाद तथा निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार करना तथा दीन-दुखियों की सहायता करना व उनके कष्टों को दूर करना था। किन्तु उनका महत्वपूर्ण लक्ष्य भारत में इस्लाम का प्रचार करना व हिन्दुओं को इस्लाम की ओर प्रेरित करना भी था। इसी उद्देश्यों को लेकर विभिन्न सूफी सम्प्रदायों के सन्त भारत में आए और उन्होंने विभिन्न स्थानों में अपने खानकाहों व जमातखानों की स्थापना की। अबुल फ़जल के अनुसार भारत में १४ सूफी सम्प्रदाय थे—हबीबिया सम्प्रदाय

की स्थापना शैख हवीब अजामी, तैफूरिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख बायज़ीद तैफूरी विसतामी, करखिया सम्प्रदाय की स्थापना ख्वाजा मारूफ करखी, सकातिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख अबुल हसन सक़ाती, जुनैदिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख जुनैद बग़दादी, गज़रूनियाँ सम्प्रदाय की स्थापना शैख आवु इस्हाक़, तूसिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख अलाउद्दीन तूसी, फिरदौसिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख नज्मुद्दीन कुवरा, सोहरावर्दिया सम्प्रदाय की स्थापना शेख नजीवुद्दीन अब्दुल कादिर सोहरावर्दिया, जौदिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख अब्दुल वाहब, एज़िया सम्प्रदाय की स्थापना शैख फजेल, आधमिया सम्प्रदाय की स्थापना शैख इब्राहीम आधम, हुवैरिया सम्प्रदाय की स्थापना ख्वाजा आवु इसहाक ने की थी। इस काल में केवल चिश्तिया और सोहरावर्दी सम्प्रदायों की ही भूमिका महत्वपूर्ण रही। मुल्तान से लेकर वंगाल तक, पानीपत से लेकर देवगिरि तक खानक़ाह व जमातखाने ही दिखाई पड़ने लगे। चौदहवीं शताब्दी में दमिश्क में शिहाबुद्दीन-अल-उमरी को एक पर्यटक ने बताया कि केवव दिल्ली व उसके समीप लगभग २००० खानक़ाहें हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के सूफी सन्तों ने भारत में अपने-अपने कार्यक्षेत्र (विलायतें) निर्धारित कर ली थीं, जहाँ कि वे या उनके शिष्य (खलीफा) शहरों व कस्त्रों में उनके सम्प्रदाय को विचारधारा का प्रचार करते थे। चिश्ती सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र अजमेर, नारनौल, सुवाल, नागौर, राजपूताना में मंडल, पंजाव में अजोधन तथा झाँसी तथा उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त विहार, वंगाल, आसाम व दक्षिण में थे। इन केन्द्रों में दूर-दूर से लोग शिक्षा ग्रहण करने व अध्यात्मवाद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। सोहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र मुल्तान, उच्च, दिल्ली तथा अवध थे। दोनों ही सम्प्रदायों के सूफी सन्तों व उनके उत्तराधिकारों एवं शिष्यों ने अनेक हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया।

भारत में तुर्की सत्ता की स्थापना से पूर्व चिश्ती सम्प्रदाय की स्थापना शेख मुइनुद्दीन सीजी ने की। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती अजमेर में वसे। उनके शिष्यों में प्रथम शेख हमीदउद्दीन नागौरी ने सुवाल नामक गाँव में तथा शेख कुतुबुद्दीन वख्तियार काकी ने दिल्ली में चिश्ती सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार किया। इन तीनों चिश्ती सन्तों ने अपने सादे जीवन, उत्तम आदर्श जनभाषा के प्रयोग एवं चमत्कारों से अनेक हिन्दुओं को अपनी ओर आकृष्ट किया और उन्हें इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। शेख कुतुबुद्दीन वख्तियार काकी के दो शिष्यों वद्रउद्दीन गज़नवी तथा शेख फरीदउद्दीन मसूद गजशंकर ने हाँसी व अजोधन को चिश्ती सम्प्रदाय का केन्द्र बनाकर पंजाव में धर्म परिवर्तन का कार्य जारी रक्खा। शेख फरीदउद्दीन मसूद गजशंकर ने आठ शिष्य वनाये थे। शेख जमालुद्दीन हाँसवी, शेख नजीबुद्दीन मुतक्किल, शेख कवुद्दीन इसहाक़, शेख अली साबिर, शेख आरिफ़, मौलाना फख्तुउद्दीन साफाहानी, शेख निजामुद्दीन औलिया आदि थे और उन्हें सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार करने और

हिन्दुओं को सूफी रहस्यवाद के माध्यम से इस्लाम में सम्मिलित करने का अधिकार दिया।

गज्ज़ तथा मंगोल आक्रमणों ने जब अजायकों को नष्ट कर दिया तो शिहाबुद्दीन सोहरावर्दी के अनेक शिष्य भागकर भारत आए। उनमें से शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी, काज़ी हमीदउद्दीन नागौरी, सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गजनवी, शेख बहाउद्दीन जकारिया आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारत में सोहरावर्दी सम्प्रदाय की स्थापना शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने की। शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी एक धूमकेतु की भाँति भारत के धार्मिक क्षितिज पर आया, हाँसी व बदायूँ में कुछ समय ठहरने के उपरान्त बंगाल में विलीन हो गया। उसने बंगाल में खानकाह की स्थापना की और वहाँ अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। काज़ी हामिदउद्दीन नागौरी में संगठन की इतनी क्षमता न थी, अतएव दिल्ली के एक कसाई, बदायूँ के एक रस्सी बटने वाले तथा नेहरवाला के शेख अहमद को ही अपना शिष्य बना सका। शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने मुल्तान में रहकर अपने सम्प्रदाय के कार्य को अधिक आगे बढ़ाया। उसके शिष्य सैय्यद जलालुद्दीन सुर्खनुरबारी ने उच्च में सोहरावर्दी सम्प्रदाय का केन्द्र स्थापित किया। दो पीढ़ियों तक मुल्तान व उच्च खानकाहों के सोहरावर्दी सूफी सन्तों के परिवारों ने सोहरावर्दी सम्प्रदाय को अनेक ऐसे सन्त दिये जिन्होंने कि सम्प्रदाय की विचारधारा का ही प्रचार नहीं किया वरन् अनेक लोगों को अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित किया।

इसी काल में सूफी सन्तों ने अपने खानकाहों की स्थापना की। यह खानकाहें देश के विभिन्न भागों में स्थापित की गईं। मिनहाज़, आईन-उल-मुल्तानी, इब्नबतूता, हसन सीज़ों, शिहाबुद्दीन अलउमरी ने तथा अफीफ इत्यादि ने इन खानकाहों का उल्लेख किया है। मुहम्मद तुग़लक के समय में दिल्ली में २००० खानकाहें थीं। फिरोज़शाह ने वहाँ १२० अन्य खानकाहें स्थापित कीं। इन खानकाहों में शेख बद्रउद्दीन खानकाह, शेख निजामुद्दीन औलिया की खानकाह, सैय्यद जालुद्दीन की खानकाह, आबूबक्र तूसी की खानकाह दिल्ली में प्रसिद्ध थी। शेख जलालुद्दीन ने लखनौती, शेख बहाउद्दीन ज़करिया ने मुल्तान, शेख गेरूदराज ने गुलबर्गा, शेख यहिया मनेरी ने मनेर में खानकाहें स्थापित कीं। इस प्रकार समस्त भारत में हज़ारों खानकाहें थीं। खानकाहों से लेकर सूफी दायरों व दरगाहों की स्थापना के विस्तृत इतिहास के साथ हिन्दुओं द्वारा इस्लाम ग्रहण करने का एक लम्बा इतिहास है। चूंकि इन खानकाहों, दायरों व दरगाहों को सुल्तानों व अमीरों से धन तथा सर्वसाधारण से दान मिलने के कारण भूखे, दरिद्र, निःसहाय हिन्दू उन्हीं पर आश्रित रहने लगे और कालान्तर में उन्होंने स्वेच्छा से इस्लाम धर्म ग्रहण कर मुसलमान बनना स्वीकार किया।

भारतवर्ष के सूफी सम्प्रदायों की खानकाहों व जमातखानों ने मुसलमानों की जनसंख्या को बढ़ाने में विशेष योगदान दिया। इसी प्रकार से विभिन्न सम्प्रदायों के

कलन्दरों, शेख मशहिकों ने भी अधिक से अधिक हिन्दुओं को अपने मतों व सम्प्रदायों में सम्मिलित किया। वास्तव में खानकाहों में आयोजित 'सभा' दरगाहों पर आयोजित 'उर्स' और निरन्तर मुफ्त में भोजन देने वाले लंगर, सूफी सन्तों के चमत्कारों के परिणामस्वरूप ही मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होती रही। दिन-प्रतिदिन मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने के कारण मुसलमान समाज में विदेशी मुसलमानों, उच्च वंशीय सैय्यदों, संभ्रान्त परिवारों के सदस्यों अथवा उच्च वर्गों की तुलना में धर्म परिवर्तन मुसलमानों की संख्या कहीं अधिक हो गई। विदेशी मुसलमानों का अधिक संख्या में भारत को अप्रवासित होना तथा धर्म-परिर्वातित मुसलमानों या भारतीय मुसलमानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि ने कई समस्याएँ उत्पन्न कीं। प्रशासन, समाज व धर्म के सम्मुख यह नई चुनौतियों के समान थी। मुसलमान समाज के अन्दर ही अन्तर्द्वन्द्व व संघर्ष उत्पन्न हो गया। जिसके कारण वर्ग-भेद उत्पन्न हो गया। दिल्ली के सुल्तानों को उल्माओं की ओर से उतना ही डर था जितना कि अमीरों तथा सूफी सन्तों व कलन्दरों से, क्योंकि अमीरों की तुलना में उल्मा व सूफी सन्त अत्यधिक प्रभावशाली थे। उनका प्रभाव सर्वसाधारण पर अत्यधिक था।

मुसलमानों का विभिन्न वर्गों में विभाजन

सुल्तान यह जानते थे कि अमीरों की बढ़ती हुई शक्ति, राजतन्त्र विविध भाँति कम कर सकता है, उल्माओं को सन्तुष्ट कर उन्हें अपने पक्ष में कर सकता है तथा सूफी सम्प्रदायों के महान् सन्तों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करके उनकी शुभकामनाएँ प्राप्त कर सकता है। किन्तु मुसलमान जनता या **आवाम खल्क** को विभाजित एवं संघर्षरत रखने के लिए उनके पास केवल एक ही उपाय था, वह यह कि उसमें वर्ग-विभेद की भावना उत्पन्न की जाय। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में इल्वारी तुर्क सर्वश्रेष्ठ माने गये। बलबन ने रक्त की शुद्धता का सिद्धान्त अपनाया और भारतीय मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप भारतीय मुसलमानों को केन्द्रीय व्यवस्था में बलबन के राज्यकाल तक उपयुक्त स्थान न मिल सका। बलबन की मृत्योपरान्त धीरे-धीरे भारतीय मुसलमानों का उत्कर्ष हुआ। प्रशासन के दोनों स्तरों, उच्च एवं निम्न विभागों में भारतीय मुसलमानों को उनकी शिक्षा के कारण प्रवेश मिलना प्रारम्भ हुआ। ज़ियाउद्दीन बरनी भारतीय मुसलमानों के लिए समानता का सिद्धान्त लागू करने के विरुद्ध था, वह लिखता है कि मानव को जीवित रहने के लिये प्रत्येक वस्तु चाहिए अतएव ईश्वर ने उनके मन में विविध कलाओं के प्रति जागरुकता उत्पन्न की। कुछ व्यक्तियों में साहित्यिक प्रतिभा, कुछ में लिखने की कला, घुड़सवारी करने तथा अन्य में बुनाई, लोहारी तथा बढ़ईगिरी की कलाएँ उत्पन्न थीं। इस प्रकार से सभी अच्छी व बुरी कलाएँ लेखन-कला तथा घुड़सवारी से लेकर बाल काटने तथा चमड़ा पकाने की कला तक मानव की प्रवृत्ति के अनुसार ईश्वर ने उत्पन्न कीं। जिनमें योग्यता थी और जिनका स्वभाव उत्तम था, उन्हें उत्तम कलाओं का

प्रदर्शन करने तथा जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क कमीनेपन से भरे हुए थे या उनका स्वभाव निम्न कोटि का था, उन्हें निम्न कार्यों को करने के लिए रखा गया। इस प्रकार बरनी ने मुसलमान समाज को उच्च व निम्न वर्ग में बाँट कर रख दिया। वह उच्च वर्ग में संभ्रान्त, स्वतन्त्र, पवित्र, धार्मिक, उच्च वंशावली तथा शुद्ध रक्त रखने वाले व्यक्तियों को रखता था और कहता था कि वे ही मुख्य सेनानायक व उच्च पदों पर नियुक्त किये जाने के अधिकारी हैं। इसके विपरीत निम्न वर्गों में जन्म लेने वाले लोभी, स्वार्थी, झूठे, अन्याय करने वाले व्यक्ति जो कि निम्न बाज़ारी लोग, निकम्मे, स्वार्थी और गन्दे कहे जाते हैं, वे निम्न कार्यों के लिए उपयुक्त थे।

उसने इस प्रकार से मुसलमानों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करते हुए लिखा है कि उसमें ऊँच-नीच परिवारों में उत्पन्न व्यक्ति, विद्वान, अनपढ़, बुद्धिमान, बेवकूफ, कलाकार स्वतन्त्र जन्मे तथा दास, आबिद, सौदागर, दर्वेश, लिपिक, सैनिक, बाज़ारी, कृषक, व्यावसायिक तथा बेरोज़गारी सभी थे। उसने फतवा-ए-जहाँदारी में विद्वानों, सूफियों, हकीमों, ज्योतिषियों, मज़दूरों, दूकानदारों, सौदागरों, काफिला वालों, दरबारियों, संगीतज्ञों, नर्तकियों, विदूषकों, सराय के प्रबन्धकों, नटों, कलाकारों, पहलवानों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार से उसने व्यवसाय के आधार पर मुस्लिम समाज में अनेक वर्ग एवं श्रेणियाँ बताई। यहिया ने तारीख-ए-मुबारकशाही में दिल्ली की जनता के सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि उसमें अमीर, मलिक, गणमान्य व्यक्ति, उल्मा, सादात्, मशाइक, भिखारी, शिल्पकार, साहूकार, कृषक इत्यादि थे। इस प्रकार से समकालीन इतिहासकारों की कृतियों से ज्ञात होता है कि १५वीं शताब्दी के अन्त तक मुस्लिम समाज में अनेक वर्ग तथा उपवर्ग मुख्यतः सम्पत्ति, व्यवसाय, शिक्षा, आय, कुलीन व निम्न वंश में उत्पत्ति के आधार पर स्थापित हो गये थे। इस प्रकार के वर्ग-भेद के कारण भी उसमें जातियाँ उत्पन्न हुई।

मुस्लिम समाज का मध्य वर्ग

इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों के मुसलमान समाज के सम्भ्रान्त एवं गणमान्य व्यक्तियों में अजलफ तथा अशरफ का सिद्धान्त प्रतिपादित करके उमरावर्ग तथा धार्मिक वर्ग के नीचे शेष जनता को सर्वसाधारण की कोटि में रख दिया। इस सर्वसाधारण में मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग थे। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में प्रशासन का स्वरूप मुख्यतः सैनिक ही रहा। उसे सुदृढ़ बनाने तथा संगठित करने की आवश्यकता ने दिल्ली के सुल्तानों को बाध्य कर दिया कि वे दीवानी एवं न्याय-व्यवस्था की ओर ध्यान दें। भू-राजस्व तथा न्याय दोनों ही साम्राज्य के आधार-स्तम्भ थे। ऐबक ने एक ओर उच्च सरकारी पदाधिकारी जैसे कि अमीर-ए-शिकार या अमीर-ए-दाद इत्यादि पदों की स्थापना की तो दूसरी ओर घरेलू कर्मचारियों के लिए कुछ पदों जैसे कि सरजानदार (अंगरक्षक) इत्यादि की स्थापना की। इल्तुतमिश के शासनकाल से राजतन्त्र का प्रारूप सामने आने लगा। उसने भी विदेशों

से आने वाले अप्रवासी मुसलमानों तथा दासों को अनेक नवीन पद स्थापित करके उन पर नियुक्त किया। उच्च पदों पर अमीरों तथा साधारण व्यक्तियों की निम्न पदों पर नियुक्तियाँ की गईं। जो व्यक्ति दवीर, **मुशरिफ-ए-मुमालिक, साकी-ए-खास, चश्नगीर, खजीनेदार,** मिशअलदार, तश्तदार, **शराबदार,** बहलादार, जमादार, शाहना-ए-आखूर शहनाए बहर, शहनए पील, फर्राश, सरजामदार, नायब, चश्नीगीर, रवासादार, ख्वाजासरा, कोतवाल इत्यादि के पदों में शम्सीकाल में नियुक्त हुए वे मुस्लिम समाज के मध्य वर्ग के थे जिनमें से अनेक ने कालान्तर में उन्नति करके उमरावर्ग में प्रवेश किया। जो उन्नति नहीं कर सके वे मध्य वर्ग के सदस्य बने रहे। सैनिक व दीवानी विभागों में कार्य करने वाले द्वितीय श्रेणी के अधिकांश कर्मचारी मध्य वर्ग के ही थे। सुल्तान बलवन के समय प्रशासन में कुछ नवीन पद देखने को मिलते हैं जैसे, **ख्वाजा, बरीद, नायब-अर्ज-ममालिक, नवीसिन्दे** (मुन्शी), सहबुल दृश्मान, **नायब चाउश,** नकीब इत्यादि। इन पदों पर भी समाज के जिस वर्ग के सदस्यों की नियुक्तियाँ हुई वे कुलीन वर्ग के न थे। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में जब नवीन आर्थिक सुधार लागू किये गये तो दीवानी व सैनिक विभागों में अनेक नवीन पदों की स्थापना हुई। अन्ततोगत्वा केन्द्रीय प्रशासन के विभागों **दीवान-ए-वजारत, दीवान-ए-अर्ज, दीवान-ए-इन्शा, दीवान-ए-रियासत, दीवान-ए-रसालत** तथा न्याय विभाग, **दीवान-ए-कोही** तथा **दीवान-ए-बन्दगान** में विभागाध्यक्षों के नीचे कार्य करने वालों का एक पृथक समूह बन गया। इन विभागों में कार्य करने वाले वे व्यक्ति थे, जो कि उमरा-वर्ग में नहीं थे और न ही वे समाज के निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। अतएव साधारण वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का समुदाय मध्य वर्ग बन गया।

इसी काल में अनेक मुसलमानों का मुख्य व्यवसाय व्यापार रहा। इन मुसलमान व्यापारियों ने भी मुस्लिम समाज के मध्य वर्ग का सृजन किया। उनकी विभिन्न श्रेणियाँ भी इसी में आ गई। इसके अतिरिक्त विविध शिक्षा व धर्म के प्रसार के साथ-साथ मदरसों व मस्जिदों में शिक्षा देने वाले धर्मशास्त्री, शिक्षक, उपदेशक, दार्शनिक, साहित्यकार, लेखक तथा इतिहासकार आदि भी मध्यवर्ग के सदस्य कहे जाने लगे। इसी भाँति जैसे-जैसे नगरीकरण में प्रगति हुई, नए शहरों की स्थापना हुई, वैसे-वैसे सामान्य आय अर्जित करने वाले लोगों का उत्कर्ष हुआ तो मुसलमान समाज में मध्य वर्ग की संरचना हुई। इस प्रकार से धीरे-धीरे मुस्लिम समाज में मध्यवर्ग का अभ्युदय भारतवर्ष में हुआ।

मुस्लिम समाज के मध्यवर्ग के सदस्यों की आय निर्धारित न थी। समकालीन इतिहासकार ने उनके वेतन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। शिक्षक, विद्वान, कवि, काज़ी, मुफ्ती इत्यादि मुख्यतः अनुदानों, वृत्तियों, वजीफों या पेन्शन पर ही निर्भर रहते थे। जो विद्वान तथा कवि दरबार से संलग्न थे या किसी अमीर की सेवा में थे, उन्हें समय-समय पर इनाम, वृत्तियाँ या नक़द धन इत्यादि मिलता रहता था। सुल्तान

नासिरुद्दीन महमूद के समय मिनहाज को एक गाँव इनाम में दिया गया। उसे सद्रेजहाँ की पदवी तथा खिलअत दी गई।[८५] १२५० ई० में उसे ४० गुलाम तथा १०० खच्चरों का लदा हुआ सामान खुरासान अपनी बहन के पास भेजने के लिए राज्य की ओर से मिला।[८६] अलाउद्दीन खिल्जी ने सुप्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो को १००० तन्का उपहार में दिया। इसी प्रकार से हकीम तथा ज्योतिषियों को भी उनकी सेवाओं के लिए नकद धन या इनाम मिलता रहता था। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के समय एक शिकदार को २०,००० से ४०,००० तन्के, **दबीर** (सचिव) को अधिक राजस्व की आयवाला बन्दरगाह, लिपिक को १०,००० तन्का वार्षिक वेतन या वेतन के अतिरिक्त कई गाँव मिलते थे। कुछ लिपिकों के पास ५० गाँव तक थे।[८७] दरबार को दो या दो से अधिक गाँव या २०,००० से ४०,००० तन्का प्रतिवर्ष वेतन के रूप में और उसके अतिरिक्त परिधान, खिलअत तथा अन्य वस्तुएँ मिलती थीं।[८८] मुहतासिब को वेतन में एक गाँव जिसका राजस्व ८००० तन्का प्रतिवर्ष होता था, मिलता था। सैनिकों की आय के दो स्रोत थे। सर्वप्रथम युद्ध में प्राप्त लूट के माल में से उन्हें हिस्सा जिसे खम्स कहते थे, मिलता था, दूसरे उन्हें वेतन मिलता था। अपने चाचा सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी का वध करने के उपरान्त जब वह कड़ा से दिल्ली की ओर रवाना हुआ तो मलिकों, अमीरों के साथ जो सैनिक आए थे उसने उनमें से प्रत्येक सैनिक को तीन-तीन हज़ार तन्के नकद इनाम में दिये।[८९] अलाउद्दीन खिल्जी के समय एक घोड़ा रखने पर २३४ तन्का और दो घोड़े रखने पर दूसरे घोड़े परविरिश व रखवाली के लिए ७८ तन्का अतिरिक्त वेतन के रूप में मिलता था।[९०] अलाउद्दीन खिल्जी ने उन्हें मिलने वाले सभी प्रकार के अनुदानों, जैसे कि इनाम, अद्रता इत्यादि बन्द कर दिये और उन्हें वेतन देना प्रारम्भ किया। कभी-कभी संकटकालीन स्थिति में उन्हें अग्रिम वेतन भी दे दिया जाता था। जैसे कि जब मंगोल आक्रमणकारी कुवक ने आक्रमण किया तो अलाउद्दीन खिल्जी ने अपने सैनिकों को एक वर्ष का अग्रिम वेतन दे दिया।[९१] सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिल्जी ने सिंहासनारोहण के उपरान्त उनका वेतन बढ़ा दिया और उन्हें ६ मास का अग्रिम वेतन दे दिया।[९२] शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार एक सैनिक का वेतन १००० से १०,००० तन्का तक था।[९३]

मुसलमान जनता

मध्यम वर्ग के नीचे शिल्पकार, खव्वाज (रोटी पकाने वाले), हलवाई, नानबाई, कस्साब (कसाई), ज़रगर (सुनार), लुहार, दरजी, टोपी बनाने वाले, मोजा बनाने वाले, तीर कमान बनाने वाले, कुम्हार, धुनियाँ, रंगरेज, जुलाहे, हज्जाम (नाई), शीरा बनाने वाले, धोबी, श्रमिक या छोटे-मोटे व्यवसायों में लगे हुए लोग थे जैसे कि पत्थर काटने वाले, बढ़ई, स्वर्णकार, जिल्दसाज़ इत्यादि। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के राज्यकाल का विवरण देते हुए बरनी ने लिखा है कि शेख निजामुद्दीन औलिया के

प्रभाव के कारण उसके शिष्यों में रहस्यवाद के पुस्तकों का अध्ययन करने की रुचि उत्पन्न हुई। शेख़ हमीदउद्दीन नागौरी व अमीर हसन के ग्रन्थों की बड़ी माँग उत्पन्न हो गई। दिल्ली में पुस्तक विक्रेताओं का बाज़ार गर्म हो गया। वह यह भी लिखता है कि किसी व्यक्ति के सिर पर ऐसी पगड़ी दृष्टिगोचर न होती थी जिसमें मिसवाक तथा कंघी न लगी हो। सूफी मत के मानने वालों के कारण लोटे व चमड़ों के तश्तों का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया। इससे ज्ञात होता है कि पगड़ी, कंघी, लोटे व मिसवाक तथा चमड़े के तश्त बनाने के नये व्यवसाय इस काल में विकसित हुए। दरगाहों में व चादर तथा सुगन्धित इत्र व धूप बत्ती, कलावा व तावीज की आवश्यकताओं ने अनेक भारतीय मुसलमानों को नवीन व्यवसाय प्रदान किये। मुसलमान समाज के उच्च वर्ग की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए यह वर्ग था। भारतीय मुसलमानों ने इन व्यवसायों को अपनाकर जीवनयापन करना प्रारम्भ किया। ज्यों-ज्यों अमुक व्यवसाय में व्यावसायिक योग्यता और उत्पादन की नवीन तकनीक का विकास हुआ वैसे-वैसे मुसलमानों की बढ़ती जनसंख्या इन व्यवसायों में खपती चली गई। उत्तरी भारत के विभिन्न स्थानों पर **खानकाहें, जमातखाने** व दरगाहों के कारण उपरोक्त सभी व्यवसायों को प्रोत्साहन मिला। शहरीकरण के कारण भी उन्हें उन्नति करने का अवसर मिल गया। उनके लिये सभी प्रकार के व्यवसायों के द्वार जो कि तुर्कों के आगमन से पूर्व उनके लिए बन्द थे, खुल गये। इस काल में हज़ारों की संख्या में बनाये गये दास या तो विदेशों को निर्यात किये जाते रहे, या उन्हें विभिन्न शाही कारखानों में कार्य करने के हेतु या सेना में या घरेलू कार्यों के लिए हरम या अमीर के घरों में रक्खा गया। सुल्तान फिरोज़ तुग़लक ने इन दासों का प्रयोग भली-भाँति किया। कालान्तर में वे विभिन्न व्यवसायों में खप गये। जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण कर १५२६ ई० में पानीपत का युद्ध जीतकर मुगल साम्राज्य की स्थापना की, उसे यहाँ दास-दासियों का कोई बाज़ार दिखाई न दिया। इसके विपरीत उसे पत्थर काटने वाले तथा शिल्पकार, कारीगर ही हजारों संख्या में दिखाई पड़े, जिनका विवरण उसने अपनी आत्मकथा **बाबरनामा** में दिया है।

मुस्लिम समाज का निम्न वर्ग

भारतीय मुसलमानों का एक विशाल समूह ऐसा भी था जिसे कि अन्य वर्गों ने स्वीकार न किया। इस वर्ग में गरीब, निःसहाय, दरिद्र, भूमिहीन, बेरोज़गार, मुसलमान थे। उनकी संख्या हज़ारों में रही होगी। उन्होंने अपना धर्म परिवर्तन किसी आशा में किया था, किन्तु उन्हें जीवनयापन के साधन उपलब्ध न हुए। पुनः धर्म परिवर्तन करने की उन्हें अनुमति थी। यदि उन्हें ऐसा करने भी दिया जाता तो हिन्दू समाज उन्हें स्वीकार न करता। यह विशाल जनसमुदाय शहरों में केन्द्रित था। प्रशासन व सूफ़ी सन्तों के सम्मुख यह समस्या रही कि उनका पेट किस प्रकार भर कर

उन्हें शान्त रखे। इस समस्या का आभास हमें समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों व सूफी साहित्य से मिलता है। ऐबक ने उनकी उदर शान्ति के लिए उन्हें मुक्तहस्त से दान दिया। इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान इल्तुतमिश रात्रि में भेष बदलकर महल से बाहर दिल्ली की गलियों में घूमा करता था, केवल यह मालूम करने के लिए कि कोई भूख से तड़प तो नहीं रहा है। वह दीन-दुखियों की सहायता करने के लिए तत्पर रहता था। शेख निज़ामउद्दीन औलिया को मालूम था कि दिल्ली में हज़ारों गरीब लोग बिना भोजन किए हुए मस्जिदों तथा दूकानों के सामने सोते थे और उसे उनकी चिन्ता थी। बरनी की तारीख-ए-फिरोजशाही से ज्ञात होता है कि सुल्तान मुइज़ुद्दीन कैकुबाद के समय भी गरीबों व मुहताजों की समस्या थी इसीलिए वह यह लिखता है कि सुल्तान को तभी सुल्तान कहा जा सकता है जब तक कि उसके शासनकाल में एक भी व्यक्ति भूखा व नंगा न सोये। सीदी मौला, जो कि बलबन के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में दिल्ली आया, को इन दुःखियों पर दया आयी। उसने दिल्ली में विशाल खानकाह बनवाई। वह कीमिया अथवा औषधि से सोना बनाना जानता था। अतः उसने सोना बनाकर अथवा अमीरों से असीमित धन प्राप्त करके गरीबों को मुफ्त भोजन देना प्रारम्भ किया। उसकी खानक़ाह में प्रतिदिन हजारों मन मैदा, ५०० जानवरों का मांस, २००-३०० मन शक्कर, १००-२०० मन मिश्री का खर्च था। उसकी खानकाह में लोगों की भीड़ जमा रहती थी। सीदी मौला ने प्रतिष्ठित व्यक्तियों व अमीरों से मेलजोल बढ़ाया। उसने मलिकों व अमीरों पर दस-दस हज़ार से लेकर पचास-पचास हज़ार तन्के तक व्यय किये। परिणामस्वरूप, सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी का ज्येष्ठ पुत्र खानेखानाँ, काज़ी जलाल काशानी, कोतवाल बिरंजतन और हातिया पायक उसके भक्त हो गये। यदि यह लोग उसके साथ मिलकर सुल्तान जलालुद्दीन खिल्जी का वध करने के लिए षड़यन्त्र न रचते तो जनकल्याण उसी भाँति होता रहता। सुल्तान ने उसे मरवा डाला। उसका वध होते ही अकाल पड़ गया। दिल्ली में अनाज का भाव एक जीतल प्रति सेर हो गया। धनी लोगों के भिक्षा देने पर ही भिखारियों व दरिद्रों की जान बची। वास्तव में खानकाहों में स्थापित करने वाले महान् सूफ़ी सन्त अमीरों तथा समृद्धिशाली लोगों से अपने लिए धन न लेकर हज़ारों व लाखों दरिद्रों व गरीबों का पोषण करते थे। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में दिल्ली शहर के कोतवाल तिर्मीज़ी को शहर के इसी वर्ग को नियन्त्रित रखने के लिए सीरी के मैदान में छप्पर डलवाकर उन पर निगरानी रखनी पड़ती थी। यही दशा सीरी के दुर्ग के कोतवाल अलाउद्दीन अय्याज़ की थी, दोनों ही कोतवाल शहर में उपस्थित ग़रीबों पर अत्याचार करते थे। जिस समय सुल्तान अलाउद्दीन रणथम्भौर अभियान में व्यस्त था, भूतपूर्व मलिक उल उमरा फखरूद्दीन कोतवाल के मौला हाजी ने इन्हीं गरीबों का नेतृत्व किया। उसने उनकी सहायता से कोतवाल तिर्मीज़ी को मार डाला। अलाउद्दीन अय्याज को जब उसके विद्रोह की सूचना मिली तो उसने हिसारे नव के द्वार बन्द करवा दिये और वह उसमें से बाहर न निकला।

मौला हाजी तदुपरान्त कुश्क-ए-लाल पहुँचा। वहाँ वह गद्दी पर बैठा। उसने सभी वन्दियों को मुक्त कर दिया। राजकोष से सोने के तन्कों की थैलियाँ निकलवाई और उन्हें गरीवों तथा अपने समर्थकों में वाँट दिया। किन्तु जैसे ही अलाउद्दीन को उसके विद्रोह की सूचना मिली उसने उलुग खाँ को दिल्ली भेजकर विद्रोह का ही दमन नहीं किया वरन् मौला हाजी को मौत के घाट उतार दिया। सीदी मौला व मौला हाजी के विद्रोह का मुख्य कारण हजारों वेरोजगार भारतीय मुसलमानों की समस्याएँ थीं। इन भारतीय मुसलमानों के सम्मुख रोजी व रोटी का प्रश्न था। ऐसे गरीव व निःसहाय दरिद्र एवं वेरोजगार मुसलमान जिनके पास शहरों में जीविका उपार्जन के कोई साधन न थे, केवल अमीरों व समृद्धिशाली व्यक्तियों के दान पर निर्भर थे।

मुसलमान समाज के निम्न वर्ग की स्थिति तथा उसका शोषण

इससे पूर्व कि वेरोजगार, गरीब व दरिद्र भारतीय मुसलमानों का प्रशासन के प्रति आक्रोश, गम्भीर रूप धारण न करें सुल्तान अलाउद्दीन ने एक ओर तो अमीरों के पास संचित धन निकलवाने की चेष्टा की, दूसरी ओर अनाज के भाव निर्धारित किये, तीसरी ओर अन्य शहरों में विशेषकर दिल्ली में अनाज के भण्डार स्थापित कर जनसाधारण की आर्थिक समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया ताकि गरीवी और भुखमरी न वढ़े। किन्तु दासों का वाजार में इतनी वड़ी संख्या में क्रय-विक्रय होना इस वात का द्योतक है कि उनकी नव आर्थिक नीति भी मुसलमान समाज के निम्न वर्ग की समस्याओं का निराकरण नहीं कर पाई। दिल्ली में इस समय हजारों नव-मुसलमान थे जिनके पास जीविका के कोई साधन न थे। उन्होंने सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की दमनकारी नीति से उत्पीड़ित होकर उसे मार डालना चाहा, किन्तु वे सफल न हुए। सुल्तान ने वीस-तीस हज़ार नव-मुसलमानों, जिन्हें कि सूचना तक न थी कि उन्हें मौत के घाट उतार दिया जावेगा, मरवा डाला। उन्होंने उनकी स्त्रियों व बच्चों को भी नहीं छोड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि नव-मुसलमानों को कत्ले-ए-आम करवा देने के उपरान्त अलाउद्दीन ने मुसलमान समाज के इस वर्ग से ही लोगों को सेना में भर्ती किया और लगभग ७० हजार व्यक्तियों को अलाई कारखानों में कार्य करने के लिए रक्खा। वरनी ने स्पष्ट लिखा है कि इतने कम वेतन में इतनी वड़ी सेना किसी अन्य राज्यकाल में भर्ती नहीं हुई। मुसलमान समाज की निम्न वर्ग की स्थिति में सुधार होने का एक अन्य कारण अलाई राज्य में वड़ी संख्या में शेख, मशाहिकों, सूफ़ी सन्तों द्वारा उनका ध्यान आध्यात्मवाद की ओर आकृष्ट कर उनके मानसिक तनाव को दूर करना था। इस सन्दर्भ में शेख निजामुद्दीन औलिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वरनी के अनुसार उसने दरिद्रों, फकीरों, जाहिल लोगों, देहाती व शहरी लोगों, स्वतन्त्र तथा दासों को अपना शिष्य वनाया। उसके खानक़ाह के द्वार पर सदैव भीड़ लगी रहती थी। शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार मुहम्मद तुग़लक प्रतिदिन २ लाख तन्का जो कि सीरिया व मिस्र के ४ लाख धीरम के वरावर होता था, दान में दिया

करता था। कभी-कभी वह दान में प्रतिदिन ५ लाख तन्के तक भी दे दिया करता था। प्रतिमाह वह नये चाँद दिखाई देने के दिन २ लाख तन्का दान में दिया करता था। ४०,००० दरिद्र व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन के हिसाब से उसने वृत्ति निर्धारित कर दी थी। प्रत्येक को ½ तन्का १½ सेर चावल या रोटी मिलती थी।[४] यदि कोई भी अपंगु व्यक्ति भीख माँगते हुए दिखाई देता तो राज्य उसकी वृत्ति निर्धारित कर देता था। साम्राज्य के सभी बड़े-बड़े शहरों में खानकाहों में मुसलमान समाज के निम्न वर्ग का पोषण होता था। वास्तव में मुसलमान समाज की सभी धार्मिक संस्था से खानकाहें व जमातखाने तथा मस्जिदों से असंख्य गरीब लोगों को पोषण करती रही, फिर भी समाज का यह वर्ग यथावत दरिद्र बना रहा। शोषण के उस युग में सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसे वर्ग का अन्य वर्गों के दान एवं कृपा पर आश्रित रहना स्वाभाविक ही था। यद्यपि बरनी के अनुसार सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक यह चाहता था कि भिखारी लोग भिक्षा माँगना त्याग दें और वे कोई न कोई धन्धा करने लगें और वे भिक्षा माँगने के अपमान, दरिद्रता व अनादर तथा निर्धनता से मुक्त हो जायें। किन्तु सुल्तान की कोई भी ऐसी योजना न थी जिसमें हज़ारों भिखारियों को व्यवसाय मिलता। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने यद्यपि अपने सिंहासनारोहण के उपरान्त अत्यधिक दान देकर इस वर्ग को सन्तुष्ट रखा किन्तु दोआब में कई वर्षों तक भीषण दुर्भिक्ष पड़े रहने के कारण अनेक परिवार नष्ट हो गये और हज़ारों की संख्या में लोग भिखारी हो गये। अनाज का भाव १६-१७ जीतल प्रति मन हो जाने से उनकी संख्या अधिक बढ़ गई। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक की लोकहितकारी योजनाएँ जैसे कि सिंचाई के कृत्रिम साधनों का विकास, नवीन शहरों का निर्माण, उद्यानों का लगाया जाना, मदरसों व मस्जिदों का निर्माण, शाही कारखानों की व्यापक व्यवस्था, दासों की सेना व विभिन्न कारखानों में भर्ती इत्यादि से समाज का निम्न वर्ग लाभान्वित हुआ। इस समय अनाज का भाव इतना कम था कि कम मजदूरी में ही लोग जीवन-निर्वाह कर लिया करते थे। जो लोग आने-जाने वाले लोगों को दिल्ली से फिरोज़ाबाद गाड़ियों में ले जाते थे उन्हें ४ जीतल (३ पैसे), खच्चरों पर ले जाने के लिए ६ जीतल (५ पैसे), घोड़े पर ले जाने के लिए १५ जीतल (८ पैसे) तथा पालकी में ले जाने के लिए २५ जीतल (१८ पैसे) मज़दूरी में मिलते थे। इसी प्रकार दासों को भी बहुत कम वेतन मिलता था। उसके मृत्योपरान्त इस वर्ग की स्थिति पूर्ववतः हो गई।

मुसलमान समाज में एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व दासों तथा घरेलू नौकरों का था। उनकी संख्या अत्यधिक थी। सल्तनत काल में मुस्लिम समाज के अभिजात वर्ग या उच्च परिवारों में उनकी चहल-पहल रहती थी। प्रत्येक अमीर या सम्भ्रान्त व्यक्ति अधिक से अधिक संख्या में अपनी आय, सामाजिक स्तर, आर्थिक क्षमता तथा अपने प्रतिष्ठान की आवश्यकतानुसार दासों व घरेलू नौकरों, दासियों तथा बन्दियों को रखता था। इन दासों व घरेलू नौकरों का अपना ही इतिहास है।

दास

सल्तनत काल से पूर्व हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में दासों के लिए यथास्थान था। भारतवर्ष में दास की संस्था ऋग्वैदिक काल से चली आई। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में ५ प्रकार के दासों, मनु ने ७ प्रकार के दासों, नारद और विजनेश्वर ने १५ प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार १५ प्रकार के दास (१) ग्रहजात, (२) कृतं, (३) लब्ध, (४) दयादूपगत, (५) अन्नकाल मृत, (६) अहित, (७) रणदास, (८) युद्ध प्राप्त, (९) पनेजित, (१०) उपागत, (११) प्रराज्यवासित, (१२) क्रत, (१३), भक्तदास, (१४) बट्टाब्रहत, (१५) आत्म-विक्रेता थे। प्रो० यादव के अनुसार नारद स्मृति की रचना के समय से यही १५ प्रकार के दासों का उल्लेख ग्रन्थों में होता रहा।[९५] नारद-स्मृति में दासों के मुक्त करने से सम्वन्धित संस्कार का भी उल्लेख है। १२वीं शताब्दी में दास प्रथा के विरुद्ध लोगों की भावना थी, जैसा कि वृहस्पति से ज्ञात होता है। प्रोफेसर लल्लन जी गोपाल के अनुसार पूर्व मध्यकाल में दासों की स्थिति में पतन होने लगा था।[९६] इस समय मान्यताओं में गिरावट आ रही थी अतएव दासों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ उनकी दशा भी खराब होती जा रही थी। इस काल में दासों की संख्या में वृद्धि होने का मुख्य कारण सामन्तों के मध्य पारस्परिक युद्धों का वढ़ना था। पुरानी परम्परा के अनुसार पराजित किये हुए सामन्तों के प्रदेश व जिस प्रदेश पर आक्रमण किया जाता था, में लोगों को दास वना लिया जाता था। जब कभी सामन्त निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण करते थे तो उनकी इच्छा उस प्रदेश को विजित करने या लूटने की नहीं थी वरन् वहाँ से दासों को प्राप्त करने की होती थी। लेख पद्धति के प्रपत्रों से ज्ञात होता है कि पुरुषों व लड़कियों को बन्दी वनाकर लाया जाता था और उन्हें दास वनाकर वेच दिया जाता था। सामन्तों के मध्य निरन्तर संघर्ष व उनके द्वारा निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण के दौरान तो दास प्राप्त किये ही जाते थे, किन्तु इसके अतिरिक्त इस काल में लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब हो गई थी कि ऋणी होने के कारण वे अपने को दास के रूप में वेचने लगे। अकाल के समय भी जीवित रहने के लिए लोग दास बन जाते थे। प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भी कभी-कभी स्थिति ऐसी हो जाती थी कि लोगों के सम्मुख दास वनने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहता था। सामन्तों द्वारा लूटमार करने के कारण भी जब लोगों की दशा खराव हो जाती थी तो वे दास वन जाते थे। इसी प्रकार से १२वीं शताब्दी में मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणों के कारण जव यहाँ के निम्न वर्गों में दरिद्रता आई और उनकी आय के स्रोत सूखने व निःसहाय हो गए तो उन्होंने दास होना स्वीकार किया। इस प्रकार से कई कारणों से दासों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। लेख पद्धति के एक प्रपत्र में विवरण मिलता है कि मुसलमानों के आक्रमण के समय किस प्रकार लूट व अकाल के कारण एक गांव उजाड़ हो गया और जव एक लड़की भीख माँग कर भी अपना पेट न भर सकी तो उसने लोगों से अनुरोध किया कि वे उसे दासी के रूप में स्वीकार कर लें।[९७]

१२वीं शताब्दी में इस देश में दासों का व्यापार भी होता था। गाँवों में डकैत लोगों को पकड़ कर उन्हें दास के रूप में बेच दिया करते थे। जंगली जातियाँ इस प्रकार का कार्य किया करती थीं। **उपमितिभव प्रपंच कथा** में एक बहुत ही रोचक विवरण है कि किस प्रकार डकैत एक व्यक्ति का पालन-पोषण करते हैं ताकि वे ऊँचे मूल्य पर उसे बेच सकें। इस काल में यह दास ईरान को निर्यात किये जाते थे और उनके एवज़ में अन्य वस्तुएँ लाई जाती थीं। **प्रबोध चिन्तामणि** के अनुसार वीरधवल के मन्त्री तेजपाल ने समुद्री डाकुओं द्वारा लोगों के अपहरण किये जाने को बन्द कर दिया। इससे ज्ञात होता है कि गुजरात में दासों का निर्यात होता था। **लेख-पद्धति** से भी दासों के निर्यात की पुष्टि होती है। राजतरंगिनी के अनुसार काश्मीर को वज्र-दित्त ने अनेक पुरुषों को दासों के रूप में म्लेच्छों के हाथों बेचा। उपरोक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि दासों का क्रय-विक्रय एवं व्यापार एक परम्परा बन गई थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दासों के सम्बन्ध में कुछ नियम रखे गये कि वे शव, मूत्र, मैला नहीं उठायेंगे और उन्हें जूठा भोजन नहीं कराया जायगा, उन्हें कोई गाली नहीं देगा और न ही किसी प्रकार का नुकसान पहुँचायेगा। कोई भी व्यक्ति जब नंगा नहा रहा हो तो वह अपने पास अपनी दासी को यदि खड़े रक्खेगा तो उसे दण्ड के रूप में उसका मूल्य अदा करना होगा। लेकिन १२वीं शताब्दी में नियमों का उल्लंघन होने लगा। **लेखपद्धति** के अनुसार एक दासी से मैला फेंकने को कहा गया। इसी ग्रन्थ के अनुसार एक दास से आशा की जाती थी कि वह दिन-रात, वर्षा में, गर्मी में, सर्दी में बिना भूख या प्यास की चिन्ता किये हुए निष्ठापूर्वक कठिन परिश्रम करेगा। इस समय उन्हें पीटा जाता था और तरह-तरह से उत्पीड़ित किया जाता था। **त्रिषष्टि-कालकपुरुष** चरित्र के अनुसार उन्हें खच्चरों की तरह पीटा जाता था तथा उन्हें भारी बोझ उठाना पड़ता था तथा प्यास सहन करनी पड़ती थी। **लेख-पद्धति** में दासियों के स्वामियों को यह अधिकार दिया गया कि यदि कोई दासी भाग जाती है, चोरी करती है या उसके बारे में अफवाहें फैलती हैं तो उसे वे पीट सकते हैं, उसके बाल पकड़ कर उसे घसीट सकते हैं, उसे बाँध सकते हैं और उसे पुनः दासी के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। यदि वह दासी उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करती है तो वह डण्डे से उसे मार सकता है; लातों से पीट सकता है और बिना किसी अभियोग के भय से उसका वध भी कर सकता है। इस काल में दासियों की दशा इतनी खराब थी कि कभी-कभी अपने जीवन से तंग आकर वे आत्महत्या भी कर लिया करती थीं। दास-दासियों की किसी अन्य प्रकार से मुक्ति न थी। जीवन-पर्यन्त उन्हें अपने स्वामी की सेवा में रहना पड़ता था। ऐसा कोई प्राविधान नहीं था कि वे अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर सकें। उन्हें भोजन व वस्त्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता था। वास्तव में किसी दास-दासी की दशा उसके स्वामी पर ही निर्भर रहती थी। परिवार के सदस्य के रूप में और उसी परिवार में निरन्तर रहने के कारण व परिवार के सदस्यों के सेवा के कारण उनका एक दूसरे के प्रति लगाव होना स्वाभाविक

ही था। उनकी कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठा, स्वामिभक्ति, सद्व्यवहार उनके स्वामियों को इसके लिए बाध्य कर देता था कि वे उनके प्रति अच्छा व्यवहार करें और उनके सुख व सुविधा का भी ध्यान रक्खें। दास-दासियों के कोई भी अधिकार न होते थे और न ही उनकी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति ही होती थी, यदि होती भी थी तो वह सम्पूर्ण सम्पत्ति स्वामी की समझी जाती थी।

१२वीं शताब्दी में दास-दासियों व नौकरों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। उन सभी को घर बाहर विविध प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। दासों को प्रसाधक व रसोइये, द्वारपाल, अंगरक्षक, सेवक तथा अन्य रूप में कार्य करना पड़ता था। दासियों को गोबर से घर लीपना, मसाला पीसना, सब्जी काटना, पानी लाना, लकड़ी जंगल से लाना, मैला उठाना, गाय, बकरी व भैंस दुहना, दही मथना, धान कूटना, खलिहान में अनाज निकालना, खेत पर कार्य करना, चारा लाना, निराई व गुड़ाई का कार्य करना, घास छीलना आदि अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। कभी-कभी उन्हें हल चलाना, अपने स्वामी के हाथ-पैर धुलाना, नाली साफ करना, तालाब साफ करना, गऊओं को चराने के लिए भी ले जाना पड़ता था। यह सभी कार्य गृहस्थी के कार्य थे, जो कि उनके लिए अनिवार्य थे। इस काल में दासियों को रखैल के रूप में रखने की परम्परा थी। बहुधा लोग अपनी काम-पिपासा की शान्ति के लिए उन्हें अपने पास रखते थे। ऐसी दासियों के लिए गृहस्थी का काम करना आवश्यक नहीं था। जो दासियाँ भोग-विलास के लिए रक्खी जाती थीं वे अत्यन्त सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, सुडौल, लावर्णा, आकर्षक, सर्वगुण-सम्पन्न हुआ करती थीं।[६८]

१२वीं शताब्दी के अन्त में तुर्कों के भयावह आक्रमणों के कारण राजपूत शासकों के सिंहासन हिलने लगे और शनैः-शनैः उनका प्रभुत्व एवं प्रभाव समाप्त होने लगा तो दास-दासियों की दशा में कुछ परिवर्तन हुआ। तुर्कों ने बड़ी संख्या में युद्धों के दौरान लोगों को बन्दी बनाकर दास बनाना प्रारम्भ किया। जिसके कारण दास-दासियों की संख्या में न केवल वृद्धि हुई वरन् उनका मूल्य कम हो गया। गौरियों द्वारा भारतवर्ष की विजय व दिल्ली स्थापना के साथ दास-प्रथा ने एक नवीन मान स्थापित किया और उसका आर्थिक महत्व बढ़ा। जिस प्रकार से ११वीं व १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दास बनाए जाते रहे उसी प्रकार से १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १३वीं शताब्दी व १४वीं शताब्दी में समकालीन ग्रंथों के अनुसार दास बनाने की कई विधियाँ थीं। उदाहरणार्थ (१) विजयों के लिए अभियान संचालित करते समय दास बनाना। यद्यपि उत्तरी भारत पर बारम्बार आक्रमण करने के समय मुहम्मद गौरी ने दास नहीं बनाए किन्तु उसके सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक इस कार्य में पीछे नहीं रहा। ११६५ ई० में गुजरात पर आक्रमण करते समय उसने २०,००० बन्दी बनाए और उन्हें दास के रूप में रक्खा। कालिंजर पर आक्रमण करते समय उसने ५०,००० दास अधिकृत किए।[६६] इल्तुतमिश ने ग्वालियर अभियान में १२३२-

३४ ई० में अनेक दास प्राप्त किये किन्तु उसने उन्हें छोड़ दिया।[१००] १२९९ ई० में जब अलाउद्दीन खिल्जी ने गुजरात पर चढ़ाई की तो उसे अनेक दासों में मलिक काफ़ूर हज़ारदीनारी तथा करन बघेला की पत्नी कमलादेवी मिली।[१०१] उसने मलिक काफ़ूर को दक्षिण पर आक्रमण करने के लिये जाते समय आदेश दिये थे कि लूट की सम्पत्ति के साथ वह दासों को भी अपने साथ लाये।[१०२] यद्यपि दिल्ली के सुल्तानों की कोई ऐसी नीति नहीं थी कि वे अभियानों व युद्धों के समय बन्दियों को दास बनाए किन्तु फिर भी यदा-कदा ऐसा किया करते थे। (२) दासों को बनाने का एक दूसरा ढंग निकटवर्ती प्रदेशों पर छापे मार कर लोगों को बन्दी बनाना था। दिल्ली सल्तनत की सीमा में ऐसे अनेक विद्रोही प्रदेश थे जिन पर कि अमीर निरन्तर छापा मारते रहते थे और लोगों को बन्दी बनाते रहते थे। उदाहरणार्थ, मलिक नुसरतउद्दीन तयासी ने कई बार कन्नौज, मथुरा, कालिंजर पर १२३१-३३ ई० में आक्रमण किए और अधिक संख्या में वहाँ से दास प्राप्त किए।[१०३] इल्तुतमिश के दुर्बल उत्तराधिकारियों के समय अनेक प्रदेशों में हिन्दुओं ने विद्रोह किए, परिणामस्वरूप प्रशासन को उनके विरुद्ध सेनाएँ भेजनी पड़ी। तुर्की सरदारों ने न केवल उन विद्रोहों का दमन किया, वरन् उनके गाँव उजाड़ दिये और अनेक लोगों को वन्दी बना लिया और वे दास बना कर उन्हें राजधानी ले आए।[१०४] बलबन ने सिवालिक, दोआब, रणथम्भौर एवं मेवात पर आक्रमण करते समय अनेक वन्दी बनाए।[१०५] गद्दी पर बैठने के बाद उसने मेवात प्रदेश के लुटेरों को कुचला और वहाँ से अनेक दास प्राप्त किये। उसके बाद उसने दोआब के मुक्ताओं को आदेश दिये कि वे विद्रोहियों को दबाएँ और उसकी स्त्रियों व बच्चों को वन्दी बना लें।[१०६] उसने १२६४ ई० में स्वयं दोआब तथा कटेहर के अनेक गाँवों पर छापे मारे और इतने दास प्राप्त किये कि दिल्ली में दासों का मूल्य कम हो गया।[१०७] **फवायद-उल-फौद** में शैख निज़ामुद्दीन (१३०७-१३२२) की बातों का उल्लेख करते हुए अमीर हसन सीज़ी ने लिखा है कि कटेहर की एक बूढ़ी औरत को दो बार वन्दी बनाकर दासी के रूप में ले जाया गया।[१०८] शेख निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य नसीरुद्दीन ने बताया कि किस प्रकार अजोधन (पंजाब) के एक गाँव पर वहाँ के मुक्ती ने आक्रमण करके वहाँ के लोगों को वन्दी बनाकर दास बनाया।[१०९] इब्नबतूता के अनुसार अभियानों के समय अनेक दरिद्र स्त्रियाँ पकड़ ली जाती थीं जिसका मूल्य उनके असभ्य होने के कारण कम होता था।[११०] बरनी के अनुसार उसने जिस प्रकार कटेहरियों को दण्ड दिया उससे कटेहर में शान्ति स्थापित हो गई और जलालुद्दीन के शासनकाल तक उन्होंने पुनः सिर नहीं उठाया। अलाउद्दीन के कठोर शासन ने गाँवों के विद्रोहियों को इतना हतोत्साहित कर दिया कि उन पर छापा मारने की आवश्यकता न पड़ी। (३) इस काल में मंगोल आक्रमण के समय भी दास प्राप्त हुए। *मंगोल अपनी स्त्रियों व बच्चों को साथ लेकर चलते थे।* जब वे दिल्ली के सेनानायकों द्वारा पराजित होते थे तो उनको उनकी स्त्रियों व बच्चों को वन्दी बनाकर दिल्ली पहुँचा दिया जाता था जहाँ कि वे बाजार में बेच दिये जाते थे।

१३०६ ई० में अलप खाँ तथा मलिक तुग़लक ने, जो कि गुजरात तथा दीपालपुर के मुक्ता थे, ने मिलकर मंगोल सेना को पराजित किया और उनके १८००० सैनिकों के अतिरिक्त ३००० स्त्रियों को बन्दी बनाया। एक वर्ष पश्चात् सिवालिक क्षेत्र में फिर बड़ी संख्या में मंगोल बन्दी बनाए गये व दिल्ली के बाज़ार में बेचे गये।[११] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में, इब्नबतूता व शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार दासों का मूल्य गिर गया और वे सस्ते दामों पर मिलने लगे। इस काल में बहुत ही मसावात (गाँवों) पर दास प्राप्त करने के लिए आक्रमण हुए। अलापुर के हब्शी गवर्नर बद्र ने अपनी अक़्ता में विद्रोही प्रदेशों पर बराबर आक्रमण किया और दास प्राप्त किये।[११२] फिरोजशाह तुगलक के समय भी इसी प्रकार के छापे मारे जाते रहे। कटेहर के राय खरकू के विरुद्ध एक अभियान में फ़िरोजशाह तुग़लक को २३,००० बन्दी प्राप्त हुए किन्तु राय द्वारा अधीनस्था स्वीकार किये जाने पर उसने उन्हें छोड़ दिया। अफीफ के अनुसार फिरोजशाह कभी भी युद्ध में बन्दी बनाने के पक्ष में न था। उसने अपने अधिकारियों को आदेश दिए कि वे गोरखपुर व खरोसा के प्रदेश पर आक्रमण न करें क्योंकि वहाँ के हिन्दू शासक उसके प्रति निष्ठावान हैं।[११३] दूसरी ओर उसने मुक्तियों को आदेश दिये कि वे मसावतों पर छापे मार कर दास प्राप्त करें। इस प्रकार समय-समय पर मसावतों पर छापे मारकर दास प्राप्त किये जाते थे।[११४] (४) इस काल में खुले बाज़ार में दास-दासियाँ उपलब्ध थे क्योंकि उनका व्यापार होता था। दिल्ली के सुल्तानों ने दासों के व्यापारियों को प्रश्रय प्रदान किया था और उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की थी ताकि वे उन्हें दास लाकर देते रहें। यह व्यापारी या तो हिन्दू या मुसलमान होते थे और वे संसार के विभिन्न भागों से दास लाकर सुल्तानों को दिया करते थे। इल्तुतमिश व उसके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में तुर्कान-ए-चहलगानी ने राजनीति में अनूठी भूमिका निभाई। उसके सदस्य इल्तुतमिश द्वारा विभिन्न व्यापारियों से भारतवर्ष में विभिन्न स्थानों पर क्रय किए गये थे।[११५] अन्य शासनकाल में भी दासों के व्यापारी बराबर विदेशों से दास लाकर यहाँ बेचते रहे।[११६] मुहम्मद तुग़लक के वज़ीर खान-ए-जहाँ मकबूल को २००० रखैलें थीं, जो रूम व चीन से लाई गई थीं।[११७] भारतीय व्यापारी भी दासों का आयात व निर्यात किया करते थे। फवायद-उल-फौद के अनुसार बिहार का एक सन्त दासों को ग़जनी भेजा करता था और वह वहाँ अत्यधिक लाभ उपार्जित करता था। दिल्ली के सुल्तान न केवल घूमने वाले व्यापारियों से दास खरीदा करते थे वरन् अपने प्रतिनिधियों को विदेश भेजकर वहाँ से दास मँगाते थे। इल्तुतमिश ने एक व्यापारी को समरकन्द, बुखारा और तिरमिज़ भेजा और वह अपने साथ १०० दास लेकर आया।[११८] इसी प्रकार आबुवक्र हब्शी संसार के विभिन्न भागों से उसके लिए दास लेकर आया।[११९] यद्यपि यह ज्ञात नहीं है कि अलाउद्दीन के पास ५०,००० दास कहाँ से आये, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने भी अपने प्रतिनिधि व्यापारियों के द्वारा उन्हें मँगाया होगा। फिरोज़शाह तुग़लक के पास पूर्व सुल्तानों की तुलना में कहीं अधिक दास थे।

उसने १,८०००० दास एकत्र किये।[१२०] उसने इनमें से अनेक दासों को खरीदा था। अलाउद्दीन के समय दिल्ली दासों का मुख्य बाजार था। लेकिन उससे पूर्व इस प्रकार के बाजार देश के विभिन्न भागों में बरन, बदायूं, मण्डौर तथा अन्य स्थानों जैसे कि देवगिरि, सिंध, गुजरात, बंगाल, लाहौर, बीदर आदि स्थानों में भी थे। इस प्रकार से देश के विभिन्न बाजारों से भी दास उपलब्ध किये जाते थे। (५) इस काल में दास या दासों को उपहार में देने की परम्परा थी। जब भी विभिन्न प्रदेशों के मुक्ती दरबार में उपस्थित होते थे वे अपने साथ ख़िदमती या दास सुल्तान के लिए लेकर आते थे। उनसे यह आशा की जाती थी कि वे प्रतिवर्ष अपनी इक्ता से खिदमती को दरबार में भेजते रहेंगे। इसी प्रकार विदेशी तथा अन्य लोग भी दासों को उपहार में सुल्तान को प्रदान करते थे। उदाहरणार्थ, १३३३ ई० में जब इब्नबतूता मुहम्मद तुग़लक के दरबार में उपस्थित हुआ तो वह अनेक दासों को उपहार में देने के लिए अपने साथ लाया।[१२१] जब तुर्किस्तान का महान् व्यापारी ताजुद्दीन अल क़ौलानी दरबार में उपस्थित हुआ तो उसने भी अनेक दास सुल्तान को भेंट में दिये।[१२२] फिरोजशाह तुग़लक के समय विभिन्न प्रदेशों के मुक्तियों के लिए अनिवार्य था कि वे खिदमती दरबार में भेजते रहें। अफ़ीफ के अनुसार इसी प्रकार से अपने राज्यकाल के ४० वर्षों में सुल्तान इसी प्रकार से दास एकत्र करता रहा। (६) कभी-कभी एक शासक दूसरे शासक के पास दास उपहार स्वरूप भेज कर दासों का आदान प्रदान कर लिया करते थे, जिससे भी दास प्राप्त होते थे। सुल्तान इल्तुतमिश को अब्बासी खलीफा ने अन्य उपहारों के साथ दास भी भेजे।[१२३] मुहम्मद तुग़लक ने अब्बासी खलीफा को काबूले खलीफी नामक दास उपहार में भेजा।[१२४] कभी-कभी सुल्तान व अमीर भी दासों का आदान-प्रदान आपस ही में करते थे। १२४८ ई० में सुल्तान ने १० दास उपहार में मिनहाज-उस-सिराज को दिये। मिनहाज ने उन्हें अपनी बहन के पास खुरासान भेज दिया।[१२५] मुहम्मद तुग़लक ने अपने विदेशी अमीरों को उपहार में दास दिया करता था जिन्हें वे खुरासान भेज दिया करते थे।[१२६] (७) विरासत में दास मिलने के कारण भी उनकी संख्या बढ़ती जाती थी। अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् दास उसके उत्तराधिकारी की सम्पत्ति हो जाते थे। उदाहरणार्थ सुल्तान इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् तुरकान-ए-चहिलगानी उसके उत्तराधिकारियों की सम्पत्ति हो गये। अलाउद्दीन खिल्जी को विरासत में अपने चाचा जलालुद्दीन खिल्जी से दास प्राप्त हुए।[१२७] उसके पुत्र शिहाबुद्दीन व कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी ने उसके ५०,००० दास विरासत में प्राप्त किये। खुसरो खाँ ने शाही दास अपने अधिकार ले लिये। इसी प्रकार से मुहम्मद तुग़लक के २०,००० दास विरासत में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक को प्राप्त हुए। बशीर सुल्तानी नामक दास को सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने विरासत में अपने पिता रजब से प्राप्त किया था। इसी प्रकार से अमीर पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में दास प्राप्त करते थे। मलिक किशली खाँ, मलिक क़िराबेग, शाहीन, शाहना और मलिक इसहाक ने अपने पिता की सम्पत्ति के साथ दास भी विरासत में प्राप्त

किये।[128] अमीरों की मृत्यु के पश्चात्, जव्ती (राजसत्) के नियम के अनुसार उसकी सम्पूर्ण चल व अचल सम्पत्ति जिसमें दास भी होते थे, शासक के अधिकार में आ जाती थी। इल्तुतमिश ने बंगाल के विद्रोही मुक्ता की सम्पत्ति व दास अपने अधिकार में ले लिये।[129] बंगाल के मुक्ता तुग़रिल बेग के विद्रोह को दवाने के पश्चात् बलवन ने उसके दास अपने अधिकार में ले लिये।[130] अलाउद्दीन खिल्जी ने जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के पुत्रों अलगु मुगल और अहमद चाप खिल्जी के दास छीन लिये।[131] तत्कालीन परम्परा के अनुसार फिरोजशाह तुग़लक को भी सुझाव दिया गया कि वह दिवंगत वशीर सुल्तानी की सम्पत्ति व दास अपने अधिकार में ले ले किन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया।[132] कभी-कभी जब अकाल पड़ जाता था या प्राकृतिक प्रकोप के कारण फसल खराब हो जाती थी और कृषक लगान का भुगतान नहीं कर पाता था तो ऐसे समय में उसे ऋण से मुक्त करने के लिए दास बना लिया जाता था अथवा जब वह किन्हीं कारणों से ऋण से मुक्त नहीं हो पाता था तो अपने स्त्री व बच्चों को दास के रूप में बेच दिया करता था। इस प्रकार से पूर्व मध्यकालीन भारत में दास विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध होते थे।[133]

१२वीं से लेकर १४वीं शताब्दी तक दासों की संख्या में बराबर वृद्धि होती रही। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय ५०,००० दास थे। यह संख्या फिरोजशाह तुग़लक के समय १८०,००० पहुँच गई जिसमें से १२,००० शिल्पकार, ४०,००० परिचर तथा उसके दरबार के सैनिक थे। इस काल में अमीरों के पास भी अधिक दास हो गये। केवल अभिजात वर्ग के पास ही दास नहीं होते थे वरन् साधारण से साधारण व्यक्तियों की सेवा में भी दास हुआ करते थे। दिल्ली का एक सूफी सन्त नूर तुर्क (१२३६ ई०) अपने दास, जो एक धुनियाँ था, की आय पर ही निर्भर रहता था। शेख निजामुद्दीन औलिया, जो कि अपनी माँ के साथ वदायूं में रहा करते थे और जो कि वहुत ही गरीव थे, के पास भी एक दासी नौकरानी थी।

अलाउद्दीन खिल्जी ने अपने शासनकाल में दासों की संख्या में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए उनको तीन श्रेणियों उत्तम, मध्यम व निम्न में विभाजित कर उनके मूल्य निर्धारित कर दिये। वरनी के अनुसार एक क़री कनीज़ (साधारण कार्य करने वाली दासी) का मूल्य ५ तन्के से १२ तन्के के वीच में निश्चित किया गया। किनारी कनीज़े (रूपवान दासी) का मूल्य २० से ३० तन्के तक निर्धारित किया गया। दास का भाव १०० से लेकर २०० तन्के तक निश्चित किया। रूपवान दासों का भाव २० से ३० तन्के तक था तथा साधारण कार्य करने वाले दासों का मूल्य १० से १५ तन्के तक था। अनुभवहीन गुलाम बच्चों का मूल्य ७-८ तन्का तक था।[134] यदि वाजार में ऐसा कोई दास आ जाता जिसका मूल्य हज़ार दो हज़ार तन्के होता तो गुप्तचरों के कारण किसी की हिम्मत न होती कि उसे कोई खरीद सकता। देवगिरि में १३१८ ई० में एक दासी का मूल्य ५ तन्का था।[135] अलाउद्दीन खिल्जी के समय में दासों के मूल्यों की तुलना

खच्चर या दूध देने वाली भैंस, जिनका मूल्य १०-२५ तन्का क्रमशः था से किया जाए, तो ज्ञात होता है कि दासों का मूल्य बहुत ही कम था। मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में दासों का मूल्य बहुत ही कम रहा। दिल्ली में उस समय ८ तन्के में एक दासी या नौकरानी या १५ तन्के में रखैल मिलती थी और राजधानी के बाहर उनके मूल्य और भी कम थे।[१३६] जिस समय बरनी ने **तारीख-ए-फिरोजशाही** की रचना की (१३५८) उस समय वह खेद प्रकट करता है कि दासों के मूल्य अत्यधिक बढ़ गये थे। ऐसा केवल सभी वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने के कारण था। दिल्ली सल्तनत की सैनिक शक्ति के ह्रास के कारण दासों का बाजारों में कम आने के कारण था। **इन्शा-ए-महरू** में १०० दासों का मूल्य २०,००० तन्के दिया हुआ है। आईन-उल-मुल्क द्वारा मलिक उल उमरा बहाउद्दीन को भेजे गये पत्र में उसने लिखा कि १०० दासों का मूल्य उसे २०,००० तन्का प्राप्त हुआ। इससे ज्ञात होता है कि मुल्तान में एक दास का मूल्य २०० तन्का था।[१३७]

चूँकि भारतवर्ष में दासों की बहुतायत थी और विभिन्न स्रोतों में दास उपलब्ध किये जाते थे अतएव आन्तरिक बाजारों में दासों की खपत के अतिरिक्त जो दास शेष रहते थे उन्हें विदेशों को निर्यात कर दिया जाता था। इस्लामी देशों में इस समय दासों की अत्यधिक माँग थी। फिरोज़ तुग़लक ने दासों का निर्यात बन्द कर दिया क्योंकि उसे स्वयं अपने लिए दासों की आवश्यकता थी। जब तैमूर ने भारतवर्ष पर १३९८-१३९९ ई० में आक्रमण किया तो उसकी सेना ने १,००००० हिन्दू दासों को पकड़ा। दुर्भाग्य-वश उन सभी को इसलिए मार दिया गया ताकि वे विद्रोह न कर सकें। दिल्ली अधिकृत करने के पश्चात् दास के रूप में उन्हें अपने अमीरों में बाँट दिया। इन लोगों में हज़ारों शिल्पकार तथा विभिन्न व्यवसायों के लोग भी थे जिन्हें वह अपने साथ-साथ समरकन्द ले गया। इस प्रकार इस काल में दासों का निर्यात भी होता था।

शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के पास २०,००० तुर्क दास थे। उसने लिखा है कि अलबज्ज़ी का कथन है कि १०,००० **ख्वाजासरा** (हिजड़े), १००० **सरजानदार**, १००० **बशमकदार** (सुल्तानों के जूतों की देख-रेख करने वाले या निम्न वर्ग के कर्मचारी), २,००००० **रिकबिया** (रक्षक) अस्त्र-शस्त्र धारण करके सुल्तान के साथ उसकी सवारी के आगे-आगे चलते थे। उसके अनुसार मुहम्मद तुगलक अपने दासों में से प्रत्येक को १००० से ५००० तन्के तथा भोजन वस्त्र और उनके जानवरों के लिए चारा देता था। दासों के पास कोई भूमि नहीं होती थी। उन्हें नकद वेतन खजाने से मिलता था। प्रत्येक दास को प्रतिमाह २ मन गेहूँ तथा चावल भोजन हेतु मिलता था और ३ सेर मांस उसकी आवश्यकताओं सहित दिया जाता था। प्रतिमास चाँदी के दस तन्के तथा प्रतिवर्ष उन्हें ४ जोड़े वस्त्र प्रदान किया जाता था।[१३८] उसके काल में देहली में एक कनीज़ (दासी) का मूल्य ८ तन्के से अधिक नहीं था और जो सेवा तथा रखैल स्त्रियाँ बनाने योग्य थीं उनका मूल्य १५

तन्के था। शिहाबुद्दीन अलउमरी के अनुसार दिल्ली के बाहर उनका मूल्य और भी कम था।[१३९] इसी लेखक को अबुल फ़ैज़ल उमर ने बताया कि चंचल स्वभाव का एक वयस्क दास ४ दिरहम में मिल जाता था। अबुल फैजल ने ही उसे बताया कि इतने कम दाम लगने के बावजूद भी हिन्दुस्तानी कनीज़ें ऐसी मिल जाती थीं जिनका मूल्य २० हज़ार तन्के या इससे अधिक भी होता था। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी ने जब इब्नुताज अल हाफिज़ अल मुल्तानी से पूछा कि हिन्दुस्तान में इतना सस्ता होने के बावजूद भी कनीज़ों का इतना मूल्य क्यों हो जाता है तो उसने बताया कि उनका मूल्य उनके व्यवहार-कुशलता, गुणों, उत्तम शिष्टाचार पर निर्भर करता है। जो कनीज़े पढ़-लिख सकती हैं या जिन्हें कुरान कण्ठस्थ है, या पद्योचारण एवं कथाएँ कह सकती हैं, गान विद्या में पारंगत होती हैं, सारंगी बजाती हैं, शतरंज या चौपड़ इत्यादि खेलना जानती हैं, उनका मूल्य अधिक होता है। यहाँ की दासियाँ अपने गुणों पर गर्व करती थीं, उनमें से एक कहती थी कि मैं अपने स्वामी के हृदय को ३ दिन में जीत लूंगी। दूसरी कहती थी कि मैं उसका हृदय एक दिन में मोह लूंगी और तीसरी कहती थी कि मैं एक घन्टे में उसके हृदय पर अधिकार जमा लूंगी। सौन्दर्य की दृष्टि से हिन्दुस्तानी युवतियाँ तुर्की या किपचाक स्त्रियों से कहीं अधिक बढ़ कर होती थीं। उत्तम नस्ल व विभिन्न योग्यताओं से सम्पन्न होने के कारण भी वे प्रसिद्ध होती थीं। उनमें से अधिकांश सुनहरे रंग की होती थीं। कुछ लाल मिश्रित चमकदार श्वेत रंग की होती थीं। यद्यपि यहाँ तुर्की, किपचाक, रूमी तथा अन्य राष्ट्रों की युवतियाँ बहुत ही बड़ी संख्या में मिलती थीं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति हिन्दुस्तानी युवतियों को ही पसन्द करता था।[१४०]

जब फिरोजशाह तुग़लक ने अपने शासनकाल में दासों को एकत्र करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया तो उसने समस्त **इक्ताओं** के **मुक्ताओं** तथा पदाधिकारियों को आदेश दिये कि जिस स्थान पर वे विजय प्राप्त करें वहाँ से वे दास चुन लिया करें। जो दरबार में भेजने के काबिल हों उन्हें दरबार में भेज दिया करें। इस प्रकार जब **मुक्ते** दरबार में आते तो प्रत्येक अपने साधन के अनुसार सुल्तान की रुचि के अनुसार चुने हुए रूपवान तथा गुणवान दासों को सुन्दर वस्त्र पहनाकर, उनके सिरों पर रूमाल तथा टोपी, पैरों में लाल जूते पहनाकर, कशीदे की छोटी पेटी उनकी कमर में बाँध कर उन्हें राजसिंहासन के सन्मुख उपहार के रूप में भेंट करने लगे। इस प्रकार इस समय यह प्रथा चल पड़ी कि मुक्तें दरबार में उपस्थित होते तो वे अपने साथ दास अवश्य लाया करते थे। फलतः **मुक्तों** को विश्वास हो गया कि सुल्तान दासों को एकत्र करने का आकांक्षी है अतः वे अपनी **इक्ताओं** में अन्य कार्यों की अपेक्षा दासों को एकत्र करने के कार्य को महत्व देने लगे। कुछ ही समय में उसकी राजधानी में असंख्य दास एकत्र हो गये। दास उसके लिए समस्या बन गये। उसने उनमें से कुछ को मुल्तान, दीपालपुर, हिसार फिरोजा, समाना, गुजरात तथा शेष को अन्य स्थानों मे

निवास करने के लिए भेज दिया। इन सभी दासों का प्रबन्ध विभिन्न इक्ताओं में कर दिया गया। उसने कुछ दासों को सेना में भर्ती कर लिया तथा उन्हें जीविका उपार्जित करने के लिए ग्राम दे दिए। अन्य दास जो शहर दिल्ली में थे उनमें से प्रत्येक दास का उसने वेतन निर्धारित कर दिया। उसने १००, ५०, ४०, ३०, २० तन्के क्रमशः उसको वेतन देना प्रारम्भ किया। किसी भी दास को १० तन्के से कम वेतन नहीं मिलता था, उन्हें या तो प्रतिमास या छठें मास या चौथे मास वेतन मिलता था। जो दास पढ़े-लिखे थे फिरोजशाह तुग़लक ने उन्हें कुरान पढ़ने, कण्ठस्थ करने या धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने में लगा दिया। उनमें से कुछ दास हज करने के लिए भेज दिये गये। जिन दासों की शिल्पकला में रुचि थी उन्हें शिल्पकारों को सौंप दिया गया ताकि वे उस कला को सीखें। इस प्रकार १२,००० दास प्रत्येक प्रकार के शिल्पकार हो गये। लगभग ४०,००० दास सुल्तान की सवारी के समय महल में तैनात किये गये।

सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने इन दासों की व्यवस्था करने के लिए अर्ज-ए-बन्दगान का विभाग खोला। इस विभाग में उसने विभिन्न श्रेणी के दासों के लिए एक मजमुमादार, दीवान, चाऊश-ए-गौरी तथा नायब चाउश-ए-गौरी-ए-दीवान की नियुक्तियाँ कीं। यह अधिकारी दीवान-ए-विजारत विभाग के अधिकारियों से पूर्णतः पृथक रहते थे।

जब सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक किसी ओर प्रस्थान करता था तो धनुषधारी दास, युद्ध करने वाले दास (बन्दगाने आर्वद, वाहुली) शिकार खेलने वाले दास भैंसों पर सवार होकर पृथक-पृथक टोलियों में उसके आगे-आगे चला करते थे। कुछ बन्दगान-ए-हज़ारा अथवा हज़ारा जाति के दास तुर्की व अरबी घोड़ों पर सवार होकर अपने परिजनों के साथ हज़ारों की संख्या में सुल्तान के पीछे-पीछे चला करते थे। इस प्रकार सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने उसका प्रयोग अंगरक्षकों के रूप में किया। इसके अतिरिक्त सुल्तान फ़िरोजशाह तुग़लक ने अनेक दासों को विभिन्न शाही कारखानों, उदाहरणार्थ आबदार, शराबदार, जामादार, मतबखी (शाही रसोई का प्रबन्ध करने वाला विभाग), इत्रदार (इत्र का प्रबन्ध करने वाला विभाग), तश्तदार (हाथ धुलाने का प्रबन्ध करने वाला विभाग), छत्रदार (शाही छत्रों का प्रबन्ध करने वाला विभाग), शमादार (शाही रोशनी का प्रबन्ध करने वाला विभाग), पर्दादार (सम्भवतः अन्तःपुर की देख-रेख करने वाला विभाग), जानदार, सिलहदार, शिकदार, यूजिवान (शिकारी चीतों का प्रबन्ध करने वाला विभाग), सिपहगोश्तदार (चीते के समान एक पशु जिससे शिकार खेलने में सहायता प्राप्त होती थी), पीलवान (महावत), संतूरबन्दान (चौपायों का प्रबन्ध करने वाला), खासादार, दारूदार (औषधि का प्रबन्ध करने वाला), संगतराश (पत्थर काटने वाला), सक्का (भिश्ती) इत्यादि को महल के भीतर व बाहर आलमखाने (वह स्थान जहाँ शाही पताकाएँ रक्खी जाती थीं) तथा महल में नौबत-खाने के पास या पहरे पर या चौकी पर या किताबखाने में कुरान पढ़ने के लिए तथा अलमखाना, घड़ियालखाना, दीवान-ए-अर्ज, दीवान-ए-विजारत में नकीबों,

मुक्तों, परगनों तथा महल के प्रवन्धक के रूप में नियुक्त किया। अफीफ के अनुसार ऐसा कोई भी दास शेष न रहा जिसे किसी न किसी कार्य में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने लगा न दिया हो। सुल्तान ने मुक्तों, अमीरों व मलिकों को यह भी आदेश दिये कि वे दासों को शिष्टाचार सिखायें। अमीर व मलिक उन दासों का अपने पुत्रों के साथ-पालन-पोषण करते थे। वे उनके भोजन, वस्त्र की धुलाई, कला सिखाने, भोजन कराने का पूरा ध्यान रखते थे।[१४१] दासों के प्रशिक्षण, उनके पालन-पोषण पर विशेष ध्यान रखा जाता था ताकि वे अपने स्वामी के लिए लाभदायक, निष्ठावान एवं सेवायोग्य सिद्ध हों। दिल्ली के सुल्तान कुछ समय पश्चात् अपने दासों को दासता से मुक्त कर दिया करते थे। जव वे उनकी योग्यता, निष्ठा एवं सेवाओं से प्रसन्न हो जाते थे तो उन्हें उच्च पद पर नियुक्त कर दिया करते थे।

जहाँ तक इन दासों की दशा का प्रश्न है यद्यपि समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ इस विषय पर तनिक भी प्रकाश नहीं डालते हैं किन्तु फिर भी दासों के सम्बन्ध में सन्दर्भों से उनके वारे में कुछ न कुछ आभास मिल ही जाता है। पहली वात तो यह कि दासों की दशा समान न थी। दासों का वह वर्ग, जो कि शासकों की सेवा में रहता था और उनमें से अधिकांश धीरे-धीरे उन्नति करते हुए उच्च पदों पर पहुँच जाते थे, की दशा सदैव अच्छी रही। वे सदैव अपने स्वामी की कृपा पर निर्भर रहते थे और उनकी सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उनकी निष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता और साहस को देखकर ही उनकी उन्नति कर दी जाती थी। इसके विपरीत दासों का एक दूसरा वर्ग भी था जो कि घरेलू कार्यों के लिए उच्च वर्ग व मध्यम वर्ग के लोगों के परिवारों में रक्खे जाते थे। इन परिवारों में वे विभिन्न घरेलू कार्यों में लगाये जाते थे। उनका भरण-पोषण करना उनके स्वामी का उत्तरदायित्व होता था और उनका जीवन वहुत कुछ उनके व स्वामी के मध्य पारस्परिक सम्वन्धों पर निर्भर करता था। यह सत्य है कि दासों के कोई अधिकार नहीं होते थे। उनका जीवन उनके स्वामी के हाथों में था और वे पूर्णतः उसी पर निर्भर रहते थे, किन्तु उन पर अत्याचार करने का अधिकार उनके स्वामी को न था। साधारणतः स्वामी का व्यवहार दासों के प्रति अच्छा ही रहता था।

पूर्व मध्यकालीन भारत में दासों की आवश्यकता न केवल सुल्तानों, अमीरों, उच्च वर्ग के व्यक्तियों, मध्यवर्ग के परिवारों को ही होती थी वरन् साधारण से साधारण व्यक्ति और सूफी सन्त भी उन्हें अपनी सेवा में रखते थे। इस युग में वहुत ही वड़ी शहरी क्रान्ति हुई, जिसके अन्तर्गत अनेक नवीन शहरों की स्थापना हुई और पुराने तथा नये शहरों में पुराने उद्योगों में गतिशीलता आई। इन नये शहरों के निर्माण व मुसलमानों की आवश्यकताओं के अनुरूप पुराने शहरों के विकास के लिए जव श्रम की आवश्यकता पड़ी तो दास वनाने की क्रिया में गतिशीलता आई। सर्वप्रथम, उन निर्माण कार्यों में जहाँ की कुशल कारीगरों की आवश्यकता नहीं थी, वहाँ इन दासों

का प्रयोग किया और उन्हें अवसर दिया गया कि वे अपने को कुशल कारीगर बना लें। दूसरे शहरीकरण के साथ-साथ जैसे-जैसे नवीन शासकवर्ग की नवीन आवश्यकताएँ उत्पन्न हुई तथा अनेक नये उद्योगों की उत्पत्ति हुई तथा प्राचीन उद्योगों में कुशल कारीगरी की आवश्यकता प्रतीत हुई, तो उसके लिए जब भारतीय मुक्त जाति श्रम नहीं मिला तो इन्हीं दासों का प्रयोग किया गया। ऐसे बहुत से नवीन उद्योग थे जिन्हें कि परम्परावादी एवं रूढ़िवादी हिन्दू कारीगर अपनाने के लिए तैयार न थे। ऐसी स्थिति में दासों को ही नये व्यवसायों उदाहरणार्थ, रुई धुनने, सूत कातने, कपड़ा रंगने, कागज बनाने आदि के उद्योगों में लगाया गया। इस प्रकार जो दास हिन्दू समाज के निम्न वर्ग में से थे, उनको जीवन में उन्नति करने का अवसर मिला। उन्होंने अमीरों के घरों में तथा उच्च घरानों में नौकरी करके मुसलमानों की संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान प्राप्त किया, फारसी भाषा सीखी और धीरे-धीरे उन्नति की। ईमादउद्दीन रेहान सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद का घरेलू नौकर व दास था। किन्तु धीरे-धीरे उसने उन्नति की और उसने राज्य में उच्च पद प्राप्त किया। इन दासों ने या तो स्वयं इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया क्योंकि हिन्दू समाज से वे पूर्णतः पृथक हो गये थे, या उनके वंशजों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया और नवीन व्यवसाय जो कि अपने जीवनकाल में हिन्दू रहकर कभी भी नहीं अपना सकते थे, अपना लिए। नूर तुर्क का दास धुनियाँ हो गया। दासियाँ सूत कातने लगीं। इस प्रकार से इन्हीं दासों ने अपने को समय के साथ सामंजित करके कुशल श्रम व दास श्रम की माँग की पूर्ति कर दी। दासों का १४वीं शताब्दी में अन्य व्यवसायों में प्रवेश करना और उनकी सन्ततियों का दासत्व से मुक्त हो जाने के कारण आन्तरिक बाज़ारों में दासों का क्रय व विक्रय होना बन्द हो गया। १५वीं शताब्दी का कोई इतिहासकार दासों के बाज़ारों में दासों के क्रय-विक्रय का उल्लेख नहीं करता है, जिससे प्रतीत होता है कि दास बनाये जाने की प्रथा कम हो गई और दासों को विभिन्न कुशल व अकुशल कारीगरी के कार्यों में लगाकर उन्हें मुक्त श्रमिकों के साथ समंजित कर दिया गया। यही कारण है कि बाबर ने भारतवर्ष का विवरण देते समय केवल शिल्पकारों व कारीगरों की सुसंगठित अनुवांशिक जातियों के बारे में लिखा है किन्तु दास-प्रथा का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार से परिवर्ती योरूपीय पर्यटकों ने दास प्रथा का तो उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने दिल्ली में १४वीं शताब्दी की भाँति दास बाज़ारों का विवरण नहीं दिया है। इससे ज्ञात होता है कि पूर्वमध्यकाल में दासों को श्रमिकों के साथ समंजित कर लिया गया था।

७

हिन्दू समाज

पूर्व सल्तनत काल की भाँति सल्तनत काल में हिन्दू समाज ज्यों का त्यों जातियों व उपजातियों में विभाजित रहा। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् से ही इस समाज के आन्तरिक ढाँचे में कुछ परिवर्तन होने लगे। जैसे-जैसे तुर्कों का प्रभाव एवं प्रभुत्व बढ़ता गया व क्षत्रियों की पराजय व उनके राज्य समाप्त होने लगे वैसे-वैसे हिन्दू समाज की पुरानी मान्यताएँ, परम्पराएँ ही नहीं वर्णव्यवस्था जो कि समाज का मुख्य आधार थी, भी नष्ट होने लगी। क्षत्रियों, जो कि हिन्दुस्तान के शासक थे और नौकरशाही व शासक वर्ग में जिनका प्रमुख स्थान था, के पतन के उपरान्त ब्राह्मणों की स्थिति, उनके सामाजिक एवं वैधानिक अधिकारों एवं उनके सामाजिक प्रभाव में गहन परिवर्तन हुआ। क्षत्रियों के मध्य उनके प्रभाव के समाप्त होते ही हिन्दू समाज के कुछ वर्गों में उनका प्रभाव पहले की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गया और उन्होंने जाति नियमों तथा खान-पान पर प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें जटिल बना दिया। उन्होंने ऐसे विधि-विधान व कर्मकाण्ड की रचना की जिससे अशिक्षित हिन्दू समाज का विशाल वर्ग उन पर भवसागर पार करने के लिए और परलोक में सुख से बैठने की लिए आश्रित हो जाय। उन्होंने छुआछूत को अत्यन्त जटिल बना दिया। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह और अन्तर्जातीय गतिशीलता पर प्रतिबन्ध लगा दिये ताकि हिन्दू समाज के बाह्य ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन न आ सके। उन्होंने बाह्य आडम्बर व संस्कारों व जाति-पाँति के जिन नियमों को, अपने हितों की रक्षा करने के लिए, जिस प्रकार तत्कालीन हिन्दू समाज पर आरोपित किया उसके विरुद्ध समाज के निम्न वर्ग में तीव्र प्रतिक्रिया हुई, क्योंकि बदलती हुई राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में पुरानी व्यवस्था के कारण न केवल मध्यम वर्ग वरन् निम्न वर्ग का विशेष रूप से दम घुट रहा था। यह वर्ग जाति-पाँति के बन्धनों से मुक्त होकर नया जीवन व्यतीत करना चाहता था। उसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि निम्न जातियों ने अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को ऊँचा करने के लिए एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशों में जाकर बसना प्रारम्भ किया और उन्होंने नवीन व्यवसाय अपना कर अपनी निम्नता के चिन्हों को मिटाना प्रारम्भ किया। दूसरे, उन्हीं में से इस काल में धार्मिक व सामाजिक सुधारक उत्पन्न हुए

जिन्होंने भक्ति आन्दोलन के द्वारा ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया।

यह कहना बहुत ही कठिन है कि इस काल में कितनी जातियाँ व उपजातियाँ, ब्राह्मणों व क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के अतिरिक्त अन्य नवीन जातियों में थी। क्योंकि कोई व्यक्ति अपने गोत्र के बाहर खान-पान व विवाह नहीं करना चाहता था। निकोलो कौन्टी के अनुसार पूर्व मध्यकाल में ८४ जातियाँ थीं। अन्य स्रोतों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य व्यवसायिक वर्गों के अतिरिक्त इस काल में ३६ जातियाँ थीं। व्यवसायिक वर्गों में मदिरा बनाने वाले कल्लाल, स्वर्णकार, जुलाहे, पान बेचने वाले, लोहार, गड़रिये, दूध बेचने वाले, बढ़ई, धातुकार, भाट, अहीर, कुम्हार, काछी, माली, तेली, नाई, नट, गायक, विरवक, नर्तक, रंगरेज, छपाई करने वाले तथा अनेक विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोग थे, जिनकी गणना करना सुलभ नहीं। इस काल में विभिन्न उद्योगों में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण तथा श्रम की गतिशीलता तथा कुशल कारीगरी में विकास के परिणामस्वरूप व्यवसायिक जातियों में भी उपजातियाँ, वर्ग, उपवर्ग उत्पन्न होते गये। एक प्रदेश व स्थान में निरन्तर निवास करने के कारण कालान्तर में एक ही समुदाय के व्यक्तियों की एक जाति बन गई, दूसरे स्थान व प्रदेश में किसी व्यवसाय में कुशलता एवं प्रवीणता के आधार पर जाति बन गई, तीसरे प्रदेश या स्थान में हिन्दू व मुसलमानों में पारस्परिक सम्बन्धों के कारण नवीन जातियाँ व उपजातियाँ बन गईं। अन्तर्जातीय विवाह, स्थानीय रीति-रिवाज़ों तथा अन्य कारणों से भी नवीन जातियाँ व उपजातियाँ बनती रहीं। विशिष्ट एवं विशेष अधिकारों से युक्त उत्तम जातियों के नीचे जनसमुदाय का एक विशाल वर्ग जिसमें करोड़ों अछूत आते थे उनमें भी धीरे-धीरे नवीन जातियाँ व उपजातियाँ व्यवसाय के आधार पर उत्पन्न हुईं। इस प्रकार वे भी जाति के आधार पर विभाजित हो गये। इस्लाम उनके लिए भ्रातृत्व, समानता व एकता का सन्देश लेकर आया कि सभी मानव समान हैं और उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं। धर्म व समाज में सभी बराबर हैं। इससे आकर्षित होकर अधिकार-विहीन निम्नवर्ग के हज़ारों-लाखों हिन्दुओं ने अपना समाज छोड़ दिया और इन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर भारतीय मुसलमान के रूप में नया जीवन प्रारम्भ किया। कुछ भारतीय मुसलमानों को उन्नति करते देखकर अन्य को प्रेरणा मिली और उन्होंने भी इस्लाम को स्वीकार करना श्रेयष्कर समझा। हालांकि बाद में उन्हें निराशा हुई होगी। धर्म-परिवर्तन की इस नवीन प्रक्रिया ने हिन्दू समाज को चुनौती दी। कुछ समय तक तो हिन्दू समाज के पास अपने ही समाज के निम्न वर्गों को देने के लिए कुछ भी नहीं था। किन्तु शीघ्र ही भक्ति आन्दोलन ने धर्म परिवर्तन की इस प्रक्रिया को रोक दिया।

एकेश्वरवाद व निर्गुण ब्रह्म की उपासना, वाह्य आडम्बरों व मूर्ति पूजा पर प्रहार, संस्कृत के स्थान पर प्रादेशिक या जन-भाषाओं में सन्तों की वाणियों ने जाति-

पाँति के बन्धनों को ढीला तो कर दिया वरन् समाज के दूसरे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ब्राह्मण वर्ग के महत्व एवं प्रभाव को पहले से अधिक कम कर दिया। अनेक ब्राह्मणों ने अपने पूर्वजों का व्यवसाय छोड़ दिया। जो ज्ञानी थे उन्होंने ज्योतिषशास्त्र व आयुर्वेद अथवा अध्ययन व अध्यापन का व्यवसाय अपना लिया तथा शेष ने कृषि, वाणिज्य व व्यापार को अपना व्यवसाय बना लिया। इस प्रकार से हिन्दू समाज के वाह्य ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं आया किन्तु आन्तरिक ढाँचा आन्तरिक एवं वाह्य दबाव के कारण निरन्तर बदलता रहा।

अभिजात वर्ग

मुस्लिम समाज की भाँति हम हिन्दू समाज को अभिजात वर्ग, पुरोहित वर्ग, सर्वसाधारण में विभाजित कर सकते हैं। अभिजात वर्ग में हिन्दू शासक, अमीर तथा समाज के उच्च परिवारों के सदस्य थे। हिन्दू अभिजात वर्ग एक संगठित इकाई के रूप में कभी भी नहीं रहा। इस काल में उसमें कई वर्ग एवं उपवर्ग थे, जैसे कि स्वायत्त शासक, विभिन्न श्रेणियों के छोटे-मोटे अमीर तथा हिन्दू अमीरों की कई श्रेणियाँ थीं। समकालीन एवं परिवर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों में स्वायत्त शासकों के लिए कई पर्यायवाची शब्दों जैसे कि राजा, राना, राय, रावल, रावत, ज़मींदार आदि का प्रयोग किया गया है। यह स्वायत्त राज्य जो कई प्रकार के थे : प्रथम वे हिन्दू स्वायत्त राज्य जो कि तुर्कों के उत्तरी भारत पर आक्रमण होने से पूर्व थे; द्वितीय वे स्वायत्त राज्य, जो कि हिन्दू राज्यों के विध्वंस होने के तत्काल बाद स्थापित हुए तथा तृतीय वे राज्य जिनकी स्थापना १४वीं शताब्दी में हुई। कश्मीर से लेकर सिंध, मालवा व गुजरात तक राजस्थान तथा गंगा-जमुना के मैदान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड व बघेलखण्ड, बिहार, बंगाल व उड़ीसा के प्रदेश में कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं था जहाँ कि स्वतन्त्र राज्य न थे। पुराने स्वायत्त राज्यों के संस्थापक स्थानीय सरदार थे। किन्तु १३वीं शताब्दी के उपरान्त जिन स्वायत्त राज्यों की स्थापना हुई उनमें से अधिकांश किसी दूसरे प्रदेश से प्रवासित होकर आए थे। स्वायत्त राज्य की स्थापना करने से पूर्व अधिकांश राज्यों के संस्थापकों का कोई विशेष सामाजिक स्तर न था, किन्तु उन राज्यों की स्थापना के बाद एकाएक उनका हिन्दू समाज में उच्च स्थान हो गया। इनमें से अनेक शासकों के पूर्वजों के सम्बन्ध में कोई जानकारी ही नहीं मिलती है। किन्तु जो भी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उससे स्वायत्त राज्यों की संख्या का पता चलता है और उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सल्तनतकालीन हिन्दू समाज में स्वायत्त शासकों का महत्वपूर्ण स्थान था। उनमें से अनेक शासक समाज के निम्न स्तर से ऊपर उठे थे। चम्बा का एक राज्य ६०० ई० में स्थापित हुआ। वह इस काल में ज्यों का त्यों रहा। तब से वहाँ सूर्यवंशी राजपूतों का शासन रहा।[१] नगरकोट का राज्य भी प्राचीन राज्य था। यही स्थिति मऊ के राज्य की थी। कटोच का राज्य भी प्राचीन था। ११७० ई० में लगभग कटोच राज-

परिवार के एक सदस्य ने जसवाल के राज्य की स्थापना की।[२] बलौरा व मदरौवा के राज्यों की स्थापना ११वीं शताब्दी में हुई और वे यथावत इस काल में बने रहे। काश्मीर का पुराना राज्य १३३९ ई० तक हिन्दू शासकों के अन्तर्गत बना रहा। काश्मीर की घाटी में जिस किश्तावार के राज्य की स्थापना ६०० ई० के लगभग हुई थी वह सल्तनत काल में ज्यों का त्यों बना रहा। जम्मू राज्य की स्थापना १२वीं शताब्दी में हुई। जम्मू राज्य के शासक भनुजदेव के वंशज मानकदेव ने मानकोट के राज्य की स्थापना की। मानकदेव के भाई करनदेव ने जसरोटा राज्य स्थापित किया।[3] १२वीं शताब्दी से लेकर १४वीं शताब्दी के मध्य जब कि तुर्कों के आक्रमणों के कारण उत्तरी भारत के शक्तिशाली राज्य नष्ट हो गये तो शनैः शनैः बड़े राज्यों के स्थान पर छोटे-छोटे स्वायत्त राज्य स्थापित हुए। पंजाब में काँगड़ा के कटोच राजपरिवार के एक सदस्य ने भीभँर का राज्य (१४०० ई०) स्थापित किया।[४] उसके भाई ने करली व भोटी का राज्य लगभग उसी समय स्थापित किया।[५] १४वीं शताब्दी के मध्य में जब जसरोटा के राज्य का विभाजन कालादेव के पुत्रों के मध्य हुआ तो लखनपुर के राज्य की स्थापना हुई।[६] लखनपुर राज्य के एक शासक के पौत्र ने १४०० ई० के लगभग सुम्वा राज्य की स्थापना की।[७] कटोच के राजकुमार हरीसिंह ने १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुलेर राज्य की स्थापना की।[८] कांगड़ा के कटोच परिवार के सदस्यों ने ही सीवा तथा दहपाल राज्यों की स्थापना १५वीं शताब्दी में की।[९] इसी काल में कहलूर राज्य की स्थापना हुई। इस प्रकार १४वीं तथा १५वीं शताब्दी में पंजाब में अनेक हिन्दू राज्यों की स्थापना हुई।

पंजाब से बिल्कुल भिन्न स्थिति उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों की थी। पंजाब में स्वायत्त राज्यों के संस्थापक मुख्यतः राजपरिवारों के सदस्य थे। किन्तु अन्य प्रदेशों में प्रवासित जातियों के सदस्यों ने ही स्वायत्त राज्यों की स्थापना की। सिन्ध में परमारों के एक कबीले सोधों ने सोधो राज्य की स्थापना की। इस प्रकार भाटियों ने भी वहाँ छोटे-छोटे प्रदेश अपने अधिकार में लिए और राज्यों की स्थापना की। जाट पीछे नहीं रहे। गुजरात में सामाजिक उथल-पुथल की गति तीव्र रही। बड़े कच्छ व छोटे कच्छ में जारेजा, परगना चौबीसी में परमारों, सोरठ के उत्तर-पश्चिम में बघेलों, कठियावाड़ में काठियों, सोरठ के पश्चिमी समुद्री तट पर पोरबन्दर से लेकर दक्षिण में सोमनाथ तक गहलौतों व गुहेलों, झालावार में झाला राजपूतों, बगलना व ईदर में राठौरों, राजपीपला में गुहेलों, नन्दोद व चम्पानेर के मध्य तक गुजरात के दक्षिण पूर्व में चौहानों तथा गुजरात के अनेक भागों में या तो प्रवासित जातियों अन्यथा स्थानीय निम्न जातियों के सरदारों ने स्वायत्त राज्यों की स्थापना की। राजस्थान में भी कुछ राज्य बहुत ही पुराने और शेष की स्थापना १३वीं शताब्दी से लेकर १४वीं शताब्दी के अन्त या मध्य में हुई। तीन लाख पचास हजार वर्ग मील के इस प्रदेश में ८वीं शताब्दी में गहलोत सरदार बापा रावल ने मेवाड़ राज्य, सामन्त सिंह ने बगड, खेमसिंह गहलोत ने प्रतापगढ़, सिंह ने मारवाड़, राववीका ने बीकानेर (१४६५), महरावलदेव

राजभाटी ने जैसलनेर, लुम्वा ने सिरोही, देवासिंह ने हड़ौती (१२४१) ई०) तथा कछवाहों ने ग्वालियर, देवकुण्डा, नरवर, विजयपाल ने करौली, कोमलदेव तँवर ने धोलपुर तथा अन्य राजपूत जातियों ने अनेक प्रदेशों में अपने-अपने राज्यों की स्थापना की। इसी काल में पूर्वी मालवा में गढ़कटंगा तथा पश्चिमी मालवा में धँधेरा राज्य की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश में कुमायूँ, लखनूर, हतकन्त, इटावा, अवेसर, गोण्डा, गवारिच, गोरखपुर, वहराइच, मध्य प्रदेश में भाटा, महोबा, रथ, विहार में चम्पारन, कल्यानपुर, रोहतास, गिधौर, खड़गपुर, कोबरा, कूचविहार और उसके समीप की पहाड़ियों, बंगाल व उड़ीसा के विभिन्न भागों में, तुर्की आक्रमणों के झंझावात के निकल जाने के वाद अनेक हिन्दू स्वायत्त राज्यों की स्थापना हिन्दू शासक वर्ग के उत्कर्ष एवं उद्‌भव का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह सभी स्वायत्त हिन्दू शासक अपने राज्य के आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थे। उनके पास बड़ी-वड़ी सेनाएँ थीं तथा वड़े-वड़े दुर्ग थे। उनकी आय का साधन भू-राजस्व, स्थानीय कर अथवा उपकर आदि थे। जब कभी उन पर केन्द्रीय सत्ता का दवाव पड़ता तो वे वार्षिक कर या पेशकश देकर उसे सन्तुष्ट कर दिया करते थे, अन्यथा उनका किसी प्रकार से परोक्ष सम्बन्ध दिल्ली के सुल्तानों से न था। भूमि का सबसे वड़ा भाग उन्हीं के हाथों में होने के कारण हिन्दू समाज में उनकी स्थिति बहुत ही अच्छी थी।

स्वायत्त शासकों के बाद अभिजात वर्ग में छोटे-मोटे हिन्दू सरदारों तथा स्थानीय हिन्दू अधिकारियों का स्थान था। पूर्व मध्यकाल में ऐसे वहुत से प्रदेश व स्थान थे जिन पर दिल्ली के सुल्तानों का प्रभुत्व देर में स्थापित हुआ। चन्देलवंश के शासकों, राजा परमादीदेव (११६५-१२०२), राजा त्रैलोक्य वरमन (१२०३-१२५०) तथा राजा वीरवर्मन (१२५४-१२८६) तक मध्य भारत पर शासन करते रहे। इटावा के निकट बाबा की कुटी से प्राप्त एक शिलालेख (११ जनवरी १२५० ई०) के अनुसार इटावा के चौहान शासक राजा चन्द्र के वंशज महाराजा अमरसिंह इटावा पर शासन करता रहा। उसके वाद १४वीं शताब्दी के एक अन्य शिलालेख के अनुसार इटावा पर राय सुरोधरन का शासन था। इस शासक का नाम १३७७ से १४२१ ई० के मध्य मिलता है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इटावा पर हिन्दू शासकों का राज्य अधिक समय तक बना रहा।[६] बस्ती जिले की बांसी तहसील में चिल्लिया स्टेशन के समीप स्थित सरीयत नामक गाँव से प्राप्त एक ताम्रपत्र (सम्वत १४१७/२५ मार्च १३६०) से ज्ञात होता है कि यहाँ श्रीनेत राजपूतों का शासन था। इस समय यहाँ महाराजा जयसिंह शासन कर रहा था। उसने अपने सम्बन्धी धर्मसिंह को अपने राज्य का कुछ भाग सौंप दिया था, जिसमें से उसने अपने सेनापति सुवसा तथा अजनपदा फोगू से परामर्श लेकर संकल्प में वदाहरदिया नामक गाँव सम्धजीत त्रिपाठी को दे दिया। इस प्रकार ताम्रपत्र से महाराजा जयसिंह तथा धर्मसिंह राय के स्वायत्त होने का प्रमाण मिलता है।[१०]

हिन्दू अभिजात वर्ग जमींदार

हिन्दू अभिजात वर्ग में हिन्दू ज़मींदारों का विशेष स्थान था। १५वीं शताब्दी में केन्द्रीय शक्ति के विघटन होते ही यकायक समस्त उत्तरी भारत में हिन्दू जमींदारों का उत्थान हुआ। गुजरात में जिस समय १४०७ ई० में वहाँ के गवर्नर जाफर खाँ ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की तो वहाँ अनेक राजपूत व गैर राजपूत जातियाँ जैसे अहीर, कोली, काठी, खानत, परमार, चौदस्या, वघेल, वजा, गिरनार तथा सोरठ ब्राह्मण ज़मींदार थे। जधवा राजपूत ज़मींदार पोरबन्दर, वघेल ज़मींदार मलिया, लथिया और सर्वव्यास जमींदार कसोड, वघेल ज़मींदार ड्यू, कोली व काठी ज़मींदार भावा नगर, काठी ज़मींदार गोन्दल, गरसिया राजपूत कपॉवत, चौहान, जेतवल राजपूत ज़मींदार ईदर में, सोलंकी व सोनगरा ज़मींदार वागा में थे। इस प्रकार सम्पूर्ण गुजरात में राजपूतों व गैर राजपूतों की अनेक ज़मींदारियाँ थीं और उनका समकालीन समाज में विशेष प्रभाव और उच्च स्थान था।

हिन्दू जमींदार व अक्तादार

इसी काल में सल्तनत की सीमाओं में तैमूर के आक्रमण के वाद हिन्दू ज़मींदारों का उत्थान हुआ। कटेहर में राय हरसिंह[११], पटियाली में राय साविर[१२], ग्वालियर में वरसिंह[१३] और उसका पुत्र वैरम देव, समाना के समीप राय हेनु जुलजैन भाटी इत्यादि शक्तिशाली हिन्दू ज़मींदार थे। सैयद शासक मुवारकशाह के समय सिधारनगंगू और सिद्धपाल का दरवार में उद्भव हुआ। उन्होंने सुल्तान का वध करा दिया।[१४] सुल्तान मुहम्मद शाह सैय्यद ने उन्हें व्याना, अमरोहा, नरनौल, कुहराम तथा दोआव के कुछ परगने अक्ता में दिये।[१५]

हिन्दू अभिजात वर्ग

ताजुल माआसीर के रचयिता हसन निज़ामी ने लिखा है कि तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् गोविन्दराय के उत्तराधिकारी ने मुहम्मद गौरी की अधीनता स्वीकार कर ली। उसके वाद जिन राय व मुकद्दमों ने उसकी अधीनता स्वीकार की उन्हें उनके राज्यों में इस शर्त पर रहने दिया गया कि वे मालगुज़ारी का भुगतान करेंगे और मरासीम-ए-खिदमती अथवा अधीनस्थता से सम्बन्धित कर देते रहेंगे। इससे ज्ञात होता है कि तराइन के द्वितीय युद्ध के वाद कुछ समय तक हिन्दू शासक वर्ग की स्थिति पूर्ववत: वनी रही। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि राजपूतों की प्रतिष्ठा को गहरी ठेस चौहानों द्वारा तराइन के युद्ध में पराजित होने के कारण पहुँची थी। किन्तु उनका पतन धीरे-धीरे हुआ। रायपिथौरा को अजमेर में कुछ समय तक के लिए वने रहने दिया गया। जव उसने मुहम्मद गौरी के विरुद्ध षडयन्त्र रचना प्रारम्भ किया तो उसे मौत के घाट उतार दिया गया। उसके पुत्र को उसका स्थान दिया गया। किन्तु चौहानों ने उसे वहाँ से भगा दिया। अजमेर व उसके समीपवर्ती प्रदेश में चौहानों

का नेतृत्व हरिराय ने किया किन्तु ऐबक ने उसे अजमेर से भगाकर रायपिथौरा के पुत्र को पुनः अजमेर सौंप दिया। ११९३ ई० में जब मुहम्मद गौरी ने ऐबक को गज़नी बुला लिया तो हरिराय ने फिर रायपिथौरा के पुत्र को अजमेर से बाहर निकाल दिया। किन्तु ऐबक ने वापस लौटकर उनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाहियाँ कीं। हरिराय ने आत्महत्या कर ली और झाटराय ने अजमेर में शरण ली। तदुपरान्त ऐबक ने रायपिथौरा के पुत्र को रणथम्भौर दे दिया। इस प्रकार तुर्कों के दबाव के कारण हिन्दू शासक व उमरावर्ग अपनी अन्तिम साँसें लेने लगा। इस समय मेरठ, कोल, बरन, दौर राजपूतों के अन्तर्गत थे, किन्तु ऐबक ने मेरठ व बरन को विजित कर उनको नष्ट कर दिया। ११९४ ई० में उसने कोल को विजित करके वहाँ भी दौर राजपूतों की शक्ति समाप्त कर दी। उसके पश्चात् जब मुहम्मद गौरी ने गहदावलों को चन्दवार के युद्ध में पराजित कर बनारस व असनी अधिकृत कर लिए तो गहदा-वलों की शक्ति क्षीण हो गई। ११९५-९६ में मुहम्मद गौरी ने ब्याना के जदौनभट्टी राजपूतों को समाप्त किया व ब्याना, थानकर व विजय मन्दिरगढ़ अधिकृत कर लिया। उसके बाद उसने ग्वालियर के परिहार वंश के शासक सल्लखनपाल को अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार से धीरे-धीरे राजपूत शासकों का स्वतन्त्र शासकों के रूप में अस्तित्व समाप्त होता रहा। यद्यपि ऐबक ने गुजरात के चालुक्य शासक राजा भीम द्वितीय को पराजित किया किन्तु १२४० ई० तक चालुक्यों का प्रभाव गुजरात पर बना रहा। ऐबक ने १२०२ ई० को बुन्देलखण्ड के चन्देल वंश पर भी आक्रमण किया। चन्देल शासक ने कालिंजर, महोबा व खजुराहो को अधिकृत करके चन्देलों की शक्ति क्षीण कर दी। इसी समय मुहम्मद बख्तियार खिल्जी ने बिहार में राजपूतों की शक्ति नष्ट कर बंगाल के शासक राय लखमनिया के हाथों से बंगाल ले लिया। जब एक-एक कर हिन्दू राज्य तुर्कों के साम्राज्यवाद का शिकार हो गये तो शासक वर्ग में शासकों के वर्ग की स्थिति बदल गई। किन्तु फिर भी प्राप्त शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वे किसी स्थिति में अवश्य रहे। १२०६ में चन्देल शासक ने कालिंजर वापस ले लिया। परमार्दीदेव के उत्तराधिकारी त्रैलोक्यवर्मन के शिलालेख से यह मालूम होता है कि उसने तुर्कों का दक्षिण की ओर बढ़ना रोक दिया।[१४] गंगा के मैदान में अनेक राजपूत सरदार अब भी तुर्कों के विरुद्ध सक्रिय थे। गहदावला शासन अब भी था क्योंकि गहदावला शासक हरिश्चन्द्र ने फर्रूखाबाद व बदायूँ में रहना प्रारम्भ कर दिया था। परिहारों ने ग्वालियर अधिकृत कर लिया था। इल्तुतमिश के शासनकाल में ग्वालियर में मंगल देव[१५], उज्जैन में विक्रमाजीत[१६], अवध में बरतू[१७] स्वतन्त्र शासकों के रूप में उपस्थित थे। गहदावला शासकों, गोविन्द चन्द्र व जय चन्द्र के नाम सदेत अदेत शिलालेख (१२७६ वि०स०/१२१९-२९ ई०) में मिलते हैं। अजयगढ़ शिलालेख (१३४५ वि०स०/१२८८) में चन्देल शासक भोजवर्मन का नाम मिलता है। उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेशों से प्राप्त शिलालेख इस बात के गवाह हैं कि यद्यपि हिन्दू राज्य नष्ट हो गये किन्तु उनके

शासकों का नाम कुछ समय तक चलता रहा। इल्तुतमिश के समय राजपूताना में राजपूत शासकों की प्रतिष्ठा यथावत् बनी रही। बुन्देलखण्ड में मलिक तायसी ने यद्यपि कालिजर के समापवर्ती प्रदेश को लूटा, किन्तु ईदर के राजा जहार का सन्दर्भ हिन्दू शासक वर्ग की स्थिति का आभास देता है। रज़िया के समय चौहानों ने उत्तरी पूर्व राजपूताना अधिकृत कर राजपूत शासक वर्ग की प्रतिष्ठा बनाये रखी। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के समय में दोआब में कन्नौज के समीप दुल्की नामक हिन्दू सरदार ने तलसिन्दाह का दुर्ग बनाया और जमुना से लेकर कालिजर तक का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। बलबन उसके विरुद्ध बढ़ा तो वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ।[१८] १२५३ में रणथम्भौर के शासक बहारदेव ने उलुग़ खान से युद्ध किया किन्तु वह पराजित हो गया।[१९] बलबन के समय दोआब व कटेहर में अनेक हिन्दू राय व राजा थे। मुसलमान इतिहासकारों ने उन्हें डकैतों की संज्ञा प्रदान की है. किन्तु वास्तव में वे हिन्दू शासक वर्ग के थे व अपनी खोई सत्ता तथा अपने खोये हुए प्रदेशों को प्राप्त करना चाहते थे। बलबन ने इस प्रदेशों में सैनिक चौकियाँ स्थापित की तथा यह प्रदेश अक्तादारों को प्रदान करके उनकी बढ़ती शक्ति पर अंकुश लगा दिया। बलबन के समय से धीरे-धीरे ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों को स्थापित करने से की गई कि हिन्दू शासक वर्ग प्रभावशाली न रह जाय। बड़े-बड़े राजपूत शासकों के उत्तराधिकारियों की स्थिति सामान्य सामन्तों की भाँति हो गई। यह सोचना बिलकुल ही गलत होगा कि सल्तनत के प्रादुर्भाव से हिन्दू-अभिजात वर्ग भी नष्ट हो गया। यदि किसी कारणवश मुसलमान इतिहासकार इनके नामों का उल्लेख नहीं करते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि हिन्दू समाज का यह प्रभावशाली वर्ग बिल्कुल ही लुप्त हो गया। मिनहज उस सिराज ने शम्सी काल के इतिहास को लिखते समय गंगा-यमुना के दोआब में दलाकी व मल्लकी नामक राना[२०], रणथम्भौर व मेवात के प्रदेश के राजा नाहरदेव[२१], मालवा तथा कालिजर के मध्य प्रदेश के राजा जाहिर अजारी[२२], बसनकोट व तिहुत की सीमा के हिन्दू राजाओं[२३], सिरमौर की पहाड़ियों के महाराजा रतनपाल व नसीरी का उल्लेख किया है।[२४] बरनी ने परोक्ष ढंग से हिन्दू शासक वर्ग की शक्ति का बलबन के समय में उल्लेख करते समय लिखा है कि "कटेहर में असंख्य विद्रोही पैदा हो गये हैं, जो कि प्रजा के ग्रामों को विध्वंस कर रहे हैं, जिन्होंने बदायूं और अमरोहे की विलायत में गड़बड़ी पैदा कर रक्खी है, और जो खुल्लम-खुल्ला उपद्रव करते रहते हैं। वे इस प्रकार शक्तिशाली बन गये हैं कि बदायूं और अमरोहे की अक्तों की चिन्ता नहीं करते, उनकी शक्ति और प्रभाव के कारण आसपास के वली भी उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते।"[२५] बरनी ने लिखा है कि जब बलबन तुग़रिलबेग के विद्रोह को दबाने के लिए सुनार गाँव पहुँचा तो वहाँ के राजा दिनौजराय ने इससे भेंट की और उसे आश्वासन दिया कि वह उक्त विद्रोह को दबाने में उसकी मदद करेगा। जब बलबन विद्रोह दबाकर दिल्ली वापस लौट रहा था तो मार्ग में अनेक राय, चौधरी व मुकद्दम ने उसकी

सेवा में उपहार, तोहफे तथा कर पेश किए। बलबन ने उन्हें खिलअतें प्रदान की और उनका आदर-सत्कार किया।[२६]

ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के गद्दी पर बैठने से पूर्व तक हिन्दू अभिजात वर्ग की स्थिति सामान्य थी। वे बलपूर्वक अपने अधिकारों व विशेष अधिकारों का प्रयोग करते रहे और भली-भाँति जीवन व्यतीत करते रहे। जिन रायों व राजाओं ने प्रशासन के विरुद्ध हथियार उठाए उनके प्रति सुल्तानों का दृष्टिकोण कठोर रहा और उन्होंने उन्हें दबाने की पूर्ण चेष्टा की। चूंकि हिन्दू अभिजात वर्ग की आय का मुख्य स्रोत भूमि ही थी अतएव सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने, इस आशंका से कि उनमें विद्रोहात्मक प्रवृत्ति अब भी शेष है, भू-राजस्व सम्बन्धी नियम कठोर कर दिए ताकि उनके पास धन संचित न हो सके। यद्यपि इन भू-राजस्व सम्बन्धी नियमों का अन्यत्र उल्लेख किया गया है, बरनी का एक ही कथन हिन्दू अभिजात वर्ग की स्थिति को स्पष्ट कर देता है। उसने लिखा है कि "समस्त शहर के निकट, देहातों, कस्बों, विलायतों, दोआबों के बीच के सभी स्थानों में ब्याना से झायन, पालम से दीपालपुर तथा लाहौर से समाने व सुनाम की सभी विलायतों, रैवाड़ी से नागौर, कड़े से कानूदी और अमरोहे से अफगानपुर, बदायूं, खरक, कोल और समस्त कटेहर में खिराज वसूल करने के नियम से नाप कराई और प्रति बिस्वा के अनुसार कर वसूल किया गया। सभी गाँवों से **करही** तथा **चराई** वसूल होने लगी। इस कार्य को इतने सुव्यवस्थित ढंग से किया गया कि चौधरियों, खूतों और मुकद्दमों में विरोध, विद्रोह, घोड़े पर सवार होना, हथियार रखना, अच्छे वस्त्र पहनना तथा पान खाना बन्द हो गया। खिराज अदा करने के विषय में सभी एक आदर्श का पालन करते थे। वे इतने आज्ञाकारी हो गए कि **दीवान** का एक सरहंग (चपरासी) कस्बे के बोसियों, खूतों, मुकद्दमों तथा चौधरियों को एक रस्सी में बाँध कर खिराज अदा करने के लिए मारता-पीटता था। हिन्दुओं के लिए सिर उठाना सम्भव न था। हिन्दुओं के घरों में सोने-चाँदी, तन्के और जीतल तथा धन-सम्पत्ति का, जिसके कारण लोग षड्यन्त्र और विद्रोह करते हैं, चिन्ह भी न रह गया था। दरिद्रता के कारण खूतों तथा मुकद्दमों की स्त्रियाँ मुसलमानों के घर जाकर काम करने लगीं और मजदूरी पाने लगीं।"[२७] वास्तव में यह कथन हिन्दू अभिजात वर्ग के एक उपवर्ग के लिए ही है, किन्तु दूसरी ओर उसने देवगिरि के शासक रामदेव को छत्र प्रदान किया व उसे रायरायाँ की पदवी से सम्मानित किया।[२८] अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के बाद हिन्दू अमीर अपनी पुरानी स्थिति पर लौट आए। खिराज की दर कम हो जाने से वे धनधान्य सम्पन्न तथा मालदार हो गये। उन्होंने बारीक वस्त्र धारण करना तथा घोड़े पर चढ़ना प्रारम्भ किया।[२९] खुसरो खाँ के समय में तो हिन्दुओं की बन आई। उसने अपने मामा रणधौल को राय खाँ की पदवी प्रदान की।[३०]

मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में हिन्दू अमीरों की संख्या में पूर्व की

तुलना में वृद्धि हुई। मुहम्मद तुगलक ने अनेक हिन्दुओं को प्रशासन में स्थान दिया। चुनार शिलालेख में सुल्तान के हिन्दू वजीर सर्कराज का नाम उल्लिखित है। दक्षिण में धरा नामक हिन्दू नायब वजीर के पद पर था। सेहवान में रतन को गवर्नर नियुक्त किया गया। गुलबर्गा में भी रतनराय को गवर्नर नियुक्त किया गया और उसे कोहिर की अक्ता प्रदान की गई। उसने लद्धामाली को उच्च पद व अक्ता प्रदान की।[३१] उसने किशन बाज़ारान इन्द्ररी को अवध का गवर्नर नियुक्त किया।[३२] फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में गोरखपुर तथा खरोसा के राय का उल्लेख बरनी की तारीख-ए-फिरोजशाही में मिलता है।[३३] जब सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक लखनौती पर आक्रमण करने जा रहा था तो गोरखपुर का राय मार्ग में उससे मिला और उसने उपहार में उसे हाथी भेंट किए। सुल्तान ने उसे छत्र, ताज, रत्नजड़ित कवा तथा ज़ीन सहित घोड़े प्रदान किये। इसी समय गोरखपुर के राय के राज्य में जो मुकद्दम, राजा तथा अन्य व्यक्ति थे, उन्हें भी खिलअतें प्रदान की गईं। खरोसा के राय ने भी सुल्तान को उपहार दिए और अपने राज्य के मुकद्दमों के हाथ खिलअतें प्राप्त की।[३४] यहिया के अनुसार उदयसिंह ने उसे २० लाख तन्के व २ हाथी पेशकश में दिए।[३५] जाजनगर के राय वीर भानदेव ने उसके पास ३३ हाथी, बहुमूल्य वस्तुएँ भेजकर उसकी अधीनता स्वीकार की।[३६]

अतः इन सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि उस काल में हिन्दू अभिजात वर्ग की दशा बहुत ही अच्छी थी।

उत्तरोत्तर तुगलक काल में कटेहर में राय हरसिंह[३७], ग्वालियर के शासक हरसिंह व उसके पुत्र वीरमदेव[३८], इटावा के राय साबिर, राय जालबहार[३९], मुल्तान के राय कमील मीन, राय दाउद कमाल, राय हिनूज्वाल जी भट्टी[४०], सरहिन्द के जसरथ[४१], जम्मू के राय भीलन[४२], मलिक कर्मचन्द[४३], सिद्धपाल, सिधारन[४४], बहलोल के शासनकाल में इटावा के राय दादू, बक्सर की विलायत के राय त्रिलोक चन्द, धौलपुर के राय विनायकदेव[४५] तथा राय जगरसेन कछवाहा[४६] के नाम मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह जमींदार बहुत ही शक्तिशाली व प्रभावशाली थे। सल्तनत के विघटन के उपरान्त जब मालवा, गुजरात, कालपी, जौनपुर आदि के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई तो वहाँ के शासकों ने हिन्दू अभिजात वर्ग को प्रश्रय दिया व शासन में उनकी सहायता की। इस प्रकार से प्रशासन में मुसलमानों की प्रधानता के बावजूद भी हिन्दू अभिजात वर्ग की, यदि शहरों में नहीं तो कस्बों व गाँवों में अनूठी स्थिति बनी रही। उनकी यह स्थिति दो बातों पर निर्भर करती थी। प्रथम कि वे शासक के प्रति निष्ठावान है या नहीं; दूसरे कि उनकी व्यक्तिगत स्थिति कैसी है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकांश हिन्दू अमीर शासक के प्रति निष्ठावान बने रहे और उसकी कृपा अर्जित करते रहे। उनकी संख्या हजारों में रही होगी। यही कारण है कि समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में केवल विद्रोही राय व रानाओं, जो कि अत्यधिक शक्तिशाली थे, के नामों का उल्लेख मिलता है॥

हिन्दू ज्योतिषी

इस काल में हिन्दू ज्योतिषियों का भी समाज में उच्च स्थान था। उन्हें तत्कालीन शासकों का प्रश्रय प्राप्त था। अलाई राज्यकाल के सम्बन्ध में बरनी ने लिखा है कि वे राशि चक्र बनाने में बड़े दक्ष थे। उन्हें दिल्ली के अनेक प्रतिष्ठित तथा गणमान्य व्यक्तियों का प्रश्रय प्राप्त था। कोई भी मुहल्ला ज्योतिषियों से रिक्त न था। सुल्तान, मलिक, अमीर, प्रतिष्ठित व्यक्ति आदि ज्योतिषियों को बहुत सा इनाम तथा धन, सम्पत्ति आदि दिया करते थे। यह ज्योतिषी ४००-४०० और ५००-५०० पत्रा देखकर प्रतिदिन २००-३०० कुण्डलियाँ मन्त्रियों, अमीरों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बना देते थे और उनसे इनाम प्राप्त करते थे। शहर के लोग बिना ज्योतिषियों से पूर्व परामर्श लिए हुए कोई भी शुभ कार्य नहीं करते थे।[४७] बरनी ने हिन्दू ज्योतिपियों का नाम न देकर वनियानयानं शब्द का प्रयोग किया, जो कि ज्योतिष विद्या में दक्ष थे। उन्होंने अलाउद्दीन खिल्जी की स्त्रियों से अधिक धन प्राप्त किया और वे बहुत ही धनी हो गए। भविष्य बताने वाले ज्योतिषियों में रम्माल कोल का नाम प्रमुख था।[४८]

हिन्दू शिल्पकार

हिन्दू समाज का एक अन्य वर्ग शिल्पकारों, बढ़इयों तथा वास्तुकारों का था। १३वीं शताब्दी में कुतुबमीनार में लगाये गये नागरी भाषा के एक शिलालेख में लक्ष्मण तथा सहादरा के पुत्र हरिमन्न गोवरी का नाम मिलता है। दोनों ही शिल्पकार या सूत्रधार थे।[४९] उसी मीनार में एक अन्य शिलालेख, जो कि १३६८ ई० का है, में नाना, सालहा, लोला और लक्ष्मण नामक शिल्पकारों के नाम उल्लिखित हैं जिन्होंने कि उस मीनार की मरम्मत उस वर्ष की। फिरोजशाह तुगलक के काल में अगले वर्ष पुनः मीनार की मरम्मत की गई और उसी वर्ष के एक शिलालेख में पुनः नाना, सालहा और देवपाल के पुत्र छछ का सूत्रधारों के रूप में तथा धर्मावनानी नामक बढ़ई का नाम दिया हुआ है। इसी मीनार में लगे हुए एक अन्य शिलालेख में पत्थर काटने वाले का नाम हीरा का पुत्र सिरख दिया हुआ है। जौनपुर में अटाला मस्जिद में १३७६ ई० के एक शिलालेख में वैदहवा के पुत्र पतमन नामक शिल्पकार का नाम मिलता है। अनेक शिल्पकारों में पतमन नामक हिन्दू भी वह शिल्पकार था जिसने मस्जिद के निर्माण में योगदान दिया। इसी प्रकार से लाल दरवाजा मस्जिद में वसादरू के पुत्र कमाऊ शिल्पी का नाम दिया हुआ है। १४०५ ई० में अजमेर में आढ़ाई दिन झोपड़ा नामक मस्जिद की मरम्मत बूँदी के सूत्रधार करमा ने की। मुसलमान शासकों ने मस्जिद बनवाने में तो हिन्दू शिल्पकारों की सहायता भी ली किन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि इन मस्जिदों में जो शिलालेख नागरी लिपि या संस्कृत में है उनमें हिन्दू देवी-देवताओं का भी स्तुतिगान है। मध्यप्रदेश में दमोह जिले में स्थित बालीगढ़ में १३२८ ई० के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि वहाँ के स्थानीय शासक इसहाक़ के पुत्र जलाल ने गोमठ व बावली बनवाई और एक उद्यान लगवाया।

गोमठ व बावली का निर्माण शिल्पकारों के वंश के मोजुक, कामदेव और हाला ने किया। गुजरात के शासक सुल्तान महमूद बगेड़ा के शासनकाल में अहमदाबाद के समीप १४५८ ई० में एक महिला ने दादा हरीर का कुआँ बनवाया। उस महिला का नाम बाई हरीर था जो कि सुल्तान के हरम की अध्यक्षा थी। इस कुएँ में एक शिलालेख संस्कृत में है जिसमें लिखा हुआ है कि यह कुआँ मलिक विहमन्द के निर्देशन में गजाधर वैश्य, वीर तथा उसके साथियों, जो कि शिल्पकार थे, ने बनाया। १२६१ ई० में अजयगढ़ के दुर्ग में राय नाम के शिल्पकार ने कुएँ और एक मण्डप का निर्माण किया। १५०६ ई० में मनुविजय नामक शिल्पी ने कालिंजर के दुर्ग की मरम्मत की। इसी प्रकार से तेहरा रावत नामक गाँव जो कि आगरा के निकट है, से प्राप्त एक शिलालेख में सिरमा नामक शिल्पकार, जिसने कि एक सती स्तम्भ खड़ा किया था, के नाम का उल्लेख मिलता है। यह शिलालेख १३६६ ई० का है। देवगढ़ के दुर्ग से प्राप्त १४३६ ई० के शिलालेख से मालूम होता है कि जैतसी के पुत्र करमचन्द्र तथा जिन के पुत्र सन्धौम ससा ने शान्तिनाथ के मन्दिर का मण्डप बनवाया। संक्षेप में, इस काल में उत्तरी भारत के अनेक भागों में शिल्पकार फैले हुए थे और वे हिन्दू समाज का महत्वपूर्ण अंग थे।

इस काल में विभिन्न व्यवसायों में कुशलता के विकास के कारण अनेक नवीन जातियों की उत्पत्ति हुई। श्रम के विभाजन का प्रभाव तत्कालीन समाज पर निरन्तर पड़ता रहा। कुल्लम भट्ट, जो कि उत्तरी बंगाल का निवासी था, ने ११५० से १३०० ई० के मध्य कर्मानुसार अथवा व्यावसायिक कुशलता के आधार पर जाति विभेद का उल्लेख किया है। उसके अनुसार धिगवन चमड़े का सामान बनाता था तथा करवार खाल को काटता था। इसी प्रकार से प्राचीन भारत में सूत की कताई व बुनाई अथवा कपड़े का उत्पादन तन्त्रव्य अथवा तन्तुव्य या कुविन्दका नामक जाति के लोग किया करते थे। इस काल में क्या धुनिया इस समुदाय में सम्मिलित थे, कहना कठिन है। किन्तु १२०० ई० में पूर्व के शब्दकोषों से ज्ञात होता है कि धुनियों की अभी तक पृथक जाति नहीं थी। हेमचन्द्र ने **अभिधान चिन्तामणि** में धुनाई के लिए पिजनाम, विहानम इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु इससे पूर्व उसने और न ही शब्दकोष के किसी रचयिता ने कपास की धुनाई के लिये किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया। अतएव हेमचन्द्र के बाद तथा ज्योतेश्रवर से पूर्व किसी वर्ग के व्यक्तियों ने धुनाई में दक्षता प्राप्त की और उन्होंने अपनी जाति बना ली। ज्योतिप्रवर ने **वर्णरत्नकार** में धुनियों को मण्डा जाति का बताया है। इसी प्रकार से १३वीं शताब्दी से पूर्व कपड़े की बुनाई की विभिन्न प्रक्रियाओं में कुशलता एवं योग्यता के कारण इस उद्योग में लगे हुए लोगों की अनेक जातियाँ व उपजातियाँ बन गई। इन उपजातियों में जोला, सरथ या सबक, को १२वीं या १३वीं शताब्दी से पूर्व कोई नहीं जानता था, किन्तु बाद में बुनकरों की यह जातियाँ प्रसिद्ध हो गईं। प्राचीन भारत में बुनकर रंगरेज नहीं थे। मुकन्दराम चक्रवर्ती का **कविकंकन चन्दी** से मालूम होता है कि अनु-

वांछित व्यवसायों की सूची में बंगाल में अनेक रंगरेज १६वीं शताब्दी तक उत्पन्न हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक हिन्दू मुसलमान बन गये और उन्होंने कपड़े रंगने का व्यवसाय ग्रहण कर लिया। कपड़ा रँगाई का व्यवसाय विशेष व्यवसाय बन गया, जिसके कारण एक नवीन जाति रंगरेजों की बन गई।

१३वीं शताब्दी से पूर्व मोज़ा नहीं पहना जाता था। किन्तु जैसे ही मोज़े पहनने का प्रचलन बढ़ा वैसे ही वस्त्र उद्योग में एक नया उद्योग प्रारम्भ हो गया। उसके बनाने वालों की एक पृथक जाति बन गई। इसी भाँति गुड़ बनाने वालों की भी एक पृथक जाति बन गई। उन्हें बृहदधर्म पुराण में मोदक कहा गया है। मुकुन्दराम चक्रवर्ती (१५७८–१६०६) ने मोदक की दो जातियाँ बताई हैं—(१) मोदक (२) सयुली। मोदक गन्ने के रस से शक्कर बनाते थे तथा सियुली ताड़ के रस से चीनी बनाते थे। इसी प्रकार से कागज निर्माताओं की भी एक पृथक जाति बनी। संक्षेप में, अनेक नवीन व्यवसायों की उत्पत्ति के कारण एवं व्यवसाय में विशेषज्ञता के कारण भारतीय समाज में अनेक नवीन जातियों का उद्‌भव हुआ।

हिन्दू सैनिक एवं अधिकारी

इस काल में प्रारम्भ ही से हिन्दू सैनिक मुसलमानों की सेना में थे। फख्र मुद्दब्बिर के अनुसार ऐबक की सेना में **हश्म-ए-हिन्दुस्तान** अर्थात् हिन्दुओं की एक सेना थी[५०], जिसमें राणा ठाकुर थे। मध्य प्रदेश में स्थित बातीगढ़ से प्राप्त एक शिला-लेख के अनुसार १३२८ में दिल्ली के शासक की ओर से छेदीदेश में त्रिजलाल ख्वाजा नामक मुसलमान अधिकारी के अन्तर्गत खारापारा सैनिक अर्थात् हिन्दू सैनिक तथा हिन्दू अधिकारी थे।[५१] एसामी के अनुसार १२४० ई० में जब रजिया व अलतूनिया की सेना भटिण्डा से दिल्ली की ओर रवाना हुई तो उनकी संयुक्त सेना में टोडर, चितई, खोखर तथा भीरा के अनेक स्थानीय हिन्दू सैनिक थे।[५२] बलबन के समय केन्द्रीय व प्रान्तीय सेना में अनेक हिन्दू थे।[५३] एसामी के अनुसार राजकुमार मुहम्मद की सेना में मंगली नामक हिन्दू अधिकारी था। बरनी ने जलालुद्दीन फिरोज़-शाह खिल्जी के शासनकाल में मलिक छज्जू के विद्रोह के सन्दर्भ में लिखा है कि उसकी सेना में हिन्दू सैनिक, रावत तथा पायक थे।[५४] मलिक छज्जू के विद्रोह के दमन के बाद जब अलाउद्दीन खिल्जी की कड़ा में नियुक्ति हुई तो यही रावत व पायक उसकी सेना से आ गए। जब अलाउद्दीन खिल्जी अपने चाचा सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी का वध कर चुका तो वह कड़ा से दिल्ली की ओर बढ़ा। उसने मार्ग में ५०,००० सवार ६०,००० प्यादे अपनी सेना में भर्ती किए, जिनमें से शत-प्रतिशत हिन्दू ही रहे होंगे। १३०० ई० में जब अकत खाँ ने विद्रोह किया तो मानक नामक पायक ने ही उसकी जान बचाई। एसामी के अनुसार जब मलिक नायब को कबक नामक मंगोल नेता का सामना करने के लिए भेजा गया तो उसकी सेना में हिन्दू सैनिक थे। अमीर खुसरो ने पंचम नामक हिन्दू अधिकारी का उल्लेख किया

है।[४५] एसामी के अनुसार पंचम को मलिक झीतम के साथ गुजरात पर दूसरी बार आक्रमण करने के लिये भेजा गया।[४६] वरनी के अनुसार अलाउद्दीन खिल्जी के एक अधिकारी का नाम मलिक नायव था; एसामी ने उसका नाम मलिक नानक लिखा है, जो कि अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान का एक हिन्दू दास था। इन तीनों ही लेखकों के अनुसार वह उच्च अधिकारी था जिसे कि आखूरवक-ए-मैसरा के रूप में अलीवेग व तरतक नामक मंगोल आक्रमणकारियों के विरुद्ध भेजा गया था। उसने उन्हें अमरोहा में पराजित किया। वहाँ से लौटने पर सुल्तान ने उसे सम्मानित किया।[५७] कुतुबुद्दीन मुवारकशाह खिल्जी व खुसरो खाँ के शासनकाल में अनेक हिन्दू अधिकारियों व सैनिकों की नियुक्तियाँ हुईं। खुसरो खाँ के प्रभाव के कारण गुजरात के वरवारियों की अत्यधिक संख्या में दिल्ली की सेना में भर्ती हुई। उसका मामा रन्धावल सेना का सेनापति था। अमीर खुसरो के अनुसार खुसरो खाँ की सेना में अनेक वरवारी अधि- थे तथा वे बरवारी राय और राना लगभग १०,००० सैनिकों को लेकर आए थे। उन अधिकारियों के नाम अहरदेव, अवरदेव और अमरदेव आदि थे। इसी काल में ग़ाजी मलिक के पास अनेक हिन्दू खोखर सैनिक तथा हिन्दू अधिकारी जैसे कि गुलवन्द खोखर तथा सहज राय थे।[५८]

एसामी ने मुहम्मद तुग़लक के हिन्दू अधिकारियों में, लाला वहादुर तथा लाला खरंग के नाम दिये है।[५९] उसके अनुसार दौलतावाद के **मुक्ती** कुतुबखाँ की सेना में खण्डेराय नामक एक अधिकारी था। वरनी ने **फतवाए-जहाँगीरी** में लिखा है कि मुहम्मद तुग़लक ने विशेषकर हिन्दुओं को प्रश्रय दिया था। वह लिखता है कि "मूर्ति-पूजक और मशरिक़ जिन्हें कि खिराजी और जिम्मी कहा जाता था, को वहुमूल्य वस्त्र, पाँच घोड़े, पताकाएँ प्रदान किये गये और उन्हें राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया गया।[६०] फिरोज़शाह तुगलक के शासनकाल में राय, राणाओं व मुकद्दमों ने उसके साथ अनेक अभियानों में भाग लिया।

इस काल में हिन्दुओं की उच्च पदों पर यदा-कदा नियुक्तियाँ निरन्तर होती रहीं। इल्तुतमिश ने मलिक हिन्दुखान जो कि मिहिर जाति का था, को अपना खंजीन (कोषाध्यक्ष) नियुक्त किया।[६१] उसी शासक ने जलाल खोजा नामक हिन्दू को मुक्ती नियुक्त किया। वलवन ने विरजंत को कोतवाल के पद व हथिया को पायक नियुक्त किया। उसने अपने पुत्र मुहम्मद का विवाह मुल्तान के इक्तादार राय कालू की पुत्री से किया। जब मुहम्मद मंगोलों से युद्ध करता हुआ मारा गया तो राय कालू ने मगोलों को धन देकर उसका शव प्राप्त किया।[६२] यहिया के अनुसार सुल्तान कैकुवाद के अन्तर्गत रजनी पायक एक अमीर था। जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी ने अपने शासन-काल के प्रारम्भ में मण्डहार नामक हिन्दू को पुरस्कृत किया। उसने उसे प्रतिवर्ष एक लाख जीतल वेतन दिया और उसे मलिक इख्तियार-उद्दीन ख़ुर्रम की सेना में भर्ती किया। अलाउद्दीन खिल्जी ने जब प्रशासन का पुर्नगठन किया और अमीरों को

इक्ताएँ प्रदान की तो मलिक आखूरवक नामक हिन्दू को उसने समाना व सुनाम की अक्ताएँ प्रदान की।[६३] थक्कर फेरू उसका विश्वस्त अधिकारी था। एज़ाज-ए-खुसरवी के अनुसार मानिकपुर के एक हिन्दू अधिकारी ने मुक्ती के साथ मिलकर भू-राजस्व हड़प लिया व हिसाव-किताव में घोटाला कर दिया। खुसरो खाँ ने अपने मामा रन्धा-वल को राय रायंन की पदवी दी और उसे किसी उच्च पद पर भी नियुक्त किया। ग्यासुद्दीन तुगलक ने गुलचन्द खोखर को अमीर की पदवी दी और उसे कोई महत्व-पूर्ण पद दिया। इसी प्रकार उसने मलिक भट्ट को खज़ीन नियुक्त किया और अमीर की श्रेणी में सम्मिलित किया।[६४] इसके अतिरिक्त मुहम्मद तुग़लक ने हिन्दुओं के लिए राजकीय सेवा के द्वार खोल दिये। उसके शासनकाल में ६ हिन्दुओं की नियुक्ति मुक्ती या मुतसर्रिफ जैसे उच्च पदों पर हुई। अजमेर से प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार नानक सुल्तानी (१३३२-३३ ई०) में अजमेर का मुक्ता था। इब्नवतूता के अनुसार वह राजकार्य में प्रवीण था। जब वह सुल्तान से पास अपने अमीरों के साथ गया तो सुल्तान ने न केवल उसकी प्रशंसा की वरन् उसे आज़म-ए-सिंध की उपाधि दी व उसे सेहवान की अक्ता व नक्कारे व पताकाएँ प्रदान किये। १३४४-४५ ई० में मुहम्मद तुग़लक ने निम्न वंश के लोगों की नियुक्ति करने की नीति अपनाई। उसने क़िशन वाज़ारान इन्दरी को अवध का मुक्ती, धरा को देवगिरि का नायव वज़ीर और इमाद उल मुल्क का नायव तथा नत्थूसोधाल को खास हाजिव नियुक्त किया। इसी प्रकार लोधा वाग़वान व पीरा माली को इक्ताएँ प्रदान की गई। बरनी के अनुसार दो मुतसर्रिफ, गुलबर्गा का मीरन और करनाल का हिन्दू मेहता, हिन्दू थे। इब्नवतूता के अनुसार दौलतावाद के एक हिन्दू ठेकेदार ने १७ करोड़ तन्का भूराजस्व एकत्र करने का वायदा किया, किन्तु जब वह अपना वायदा पूरा न कर सका तो उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के समय गूजरशाह नामक हिन्दू शाही टकसाल का दारोगा था। उसे १३७०-७१ ई० में पदच्युत किया गया।[६५] मदनसूरी का शिष्य महेन्द्र सूरी फिरोज़शाह के दरबार का ज्योतिषी था। उसने फिरोज़शाह के प्रश्रय में रह कर यन्त्र-राज नामक ग्रन्थ की रचना की। विहारशरीफ में १३६०-६५ ई० का एक शिलालेख मिला है जिसमें हाजिव-ए-हिन्दुस्तान-ए-मुमालिक नामक पद का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि फिरोज़शाह ने सल्तनत के हिन्दुओं की देख-रेख करने के लिए किसी हिन्दू अधिकारी को नियुक्त कर दिया था।[६६] निःसन्देह उस काल में आमिल व पटवारियां के पद से लेकर इक्तादारों, मुक्तियों, सेनानायकों के पदों पर हिन्दुओं की नियुक्तियाँ होती रहीं। सम्पूर्ण भूराजस्व विभाग हिन्दू लिपिकों से भरा हुआ था।

हिन्दू व्यापारी

हिन्दुओं में व्यापारी वर्ग की तीन प्रमुख श्रेणियाँ थीं—(१) सर्राफ व साहूकार (२) थोक व्यापारी (३) बंजारे या घूमनेवाले व्यापारी। पूर्व मध्यकाल में यह विभिन्न

वर्ग पूर्वतः व्यापार व वाणिज्य से सम्बद्ध रहे। पूर्व सल्तनत काल की अपेक्षा सल्तनत काल में कई कारणों से उनकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ और वे पहले की तुलना में अधिक धनी हो गए। निरन्तर संघर्ष व शान्ति काल, दोनों में ही व्यापारियों को धन कमाने का सुअवसर मिलता रहा। बलबनी अमीर शम्सी अमीरों की तुलना में अत्यधिक अपव्ययी और विलासी थे। वे शान-शौकत में अपना जीवन व्यतीत करते थे और बहुधा ऋणी रहते थे। दिल्ली के मुल्तानी साहूकार उन्हें अधिक ब्याज पर ऋण दिया करते थे और उनसे उपहार व अक्ताओं से इनाम भी प्राप्त कर लिया करते थे।[६७] सुल्तान जलालुद्दीन खिल्जी के शासनकाल के अमीर मलिक नुसर सुबाह के सम्बन्ध में लिखते हुए बरनी ने यह बताया है कि तक़ाजा करने वाले और ऋणदाता उसके द्वार पर सर्वदा उपस्थित रहते थे।[६८] वे विदेशियों को भी अग्रिम ऋण दिया करते थे ताकि वे यहाँ सुल्तान को देने के लिए उपहार आदि क्रय कर सकें। इब्नबतूता ने लिखा है कि सिंध व हिन्द के व्यापारी विदेशियों के भारतवर्ष में आगमन पर हज़ार दीनार प्रत्येक विदेशी को जो कि सुल्तान से भेंट करने के लिए आकांक्षा रखता था उधार दिया करते थे।[६९] वे उन्हें वे सब वस्तुएँ दिया करते थे जिसकी आवश्यकता उन्हें हुआ करती थी। वे उसके व्यक्तिगत प्रयोग के लिए उन्हें जानवर व अन्य सामान भी खरीद कर दिया करते थे। इस प्रकार वे न केवल उनकी आर्थिक सहायता किया करते थे वरन् उनकी सेवा भी किया करते थे। जब सुल्तान उन्हें उपहार दे दिया करता था तो वे अपना ऋण चुका दिया करते थे। इस प्रकार यह व्यापारी अत्यधिक लाभ कमा लिया करते थे। कभी-कभी यह ऋणदाता सुल्तान को भी ऋण देकर उसे उसकी वित्तीय कठिनाइयों से मुक्त कर दिया करते थे। अफीफ ने लिखा है कि जब मुहम्मद तुग़लक की मृत्योपरान्त सुल्तान फिरोज़शाह गद्दी पर बैठा और उसने थट्टा से दिल्ली की ओर प्रयाण किया तो सिरसौती पहुँचने पर उसने वहाँ के कुछ सर्राफों व बक्कालों से कई लाख तन्के उपहार में लिये। उसने उनसे कहा कि उनका यह उपहार ऋण है जो कि वह उन्हें शीघ्र ही अदा कर देगा। उसने इसी समय मलिक एमाद-उल-मुल्क बशीर को आदेश दिया कि दिल्ली पहुँचने पर उनका ऋण अदा कर दिया जाय।[७०]

ऋण लेने वालों को एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे और वह ऋणदाता उसे अपने पास रख लिया करते थे।[७१] अमीरों के अतिरिक्त सूफी सन्त भी हिन्दू साहूकारों से ऋण लिया करते थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने एक बार २० जीतल ऋण में लिये। जब वह उस धनराशि को एक बार ही में नहीं अदा कर पाया तो उसने कई किश्तों में उसका भुगतान करने का वायदा किया। कुछ सूफी सन्त ऋण लेना बहुत ही बुरा मानते थे। बाबा फरीद का कहना था कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए एक दरवेश के लिए ऋण लेने से अच्छा भूखे मर जाना ही उचित है। किन्तु खानकाहों में आने वाले यात्रियों, शिष्यों, नव-आगन्तुकों तथा अनेक प्रकार के व्यक्तियों की सेवा के लिए बहुधा सूफी सन्तों के लिए अनिवार्य हो जाता था कि वे ऋण लें। कुछ ऐसे भी सन्त थे जिनके लिए फ़ुतूह और नज़र निर्वाह करने के लिए पर्याप्त न

होती थी। अपने दयनीय जीवन से मुक्ति पाने के लिए वे कभी-कभी ऋण ले लिया करते थे। विहार के महान् फिरदौसी सूफी सन्त हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी के खानकाह के समीप एक हिन्दू दूकानदार रहता था जो कि खानकाह को अनाज उधार पर दिया करता था। वह उक्त सन्त से कभी तत्काल भुगतान करने के लिए नहीं कहता था। जब एक हज़ार तन्के से अधिक उधार हो गया तो हज़ारत शरफुद्दीन यहिया मनेरी ने उस फुतूह, जो कि उसे प्राप्त हुई थी, में से अपना उधार अदा कर दिया।

इस काल में मुल्तानी अपने व्यवसाय में दक्ष हो गये थे। वरनी के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के उपरान्त मुल्तानी व्यापारियों ने वस्तुओं को लाभ पर वेचा। अच्छी परिस्थितियों में वे दूकानदारों की भाँति समृद्धशाली व धनी हो जाते थे। वरनी के ग्रन्थ से यह पता चलता है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में वे वाज़ारों के मालिक हो गये। वे जैसे चाहते थे वस्तुओं को खरीदते थे व उन्हें वेचते थे। व्यापारियों, दूकानदारों में कोई स्पर्धा के अभाव में उन्होंने लाखों व करोड़ों की सम्पत्ति जुटा ली। इस प्रकार से इस काल में हिन्दू समाज का यह वर्ग अत्यन्त समृद्धशाली था।

यह व्यापारी विभिन्न वस्तुओं का व्यापार किया करते थे। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में घोड़ों, वस्त्रों, अनाज, दास-दासियों तथा अन्य चीजों के व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। यह व्यापारी सेना के साथ भी चलते थे। सेना के साथ चलने के लिए उन्हें शहर के कोतवाल से आज्ञा लेनी पड़ती थी। यह आज्ञा प्राप्त करने के लिए उन्हें उसे उपहार देने पड़ते थे।

इस काल में उत्पन्न होने वाले नवीन वर्गों में दलालों का हिन्दू समाज में विशेष स्थान था। फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में इस वर्ग के अभ्युदय की सूचना अफीफ की कृति **तारीख-ए-फिरोज़शाही** में मिलती है। अफीफ के अनुसार प्रत्येक मलिक, खान, अमीर को उसके श्रेणी के अनुसार वजह व ग़ैर वजह शासन की ओर से दी जाने लगी, जब उन्हें यह सूचना प्राप्त होती कि उन्हें अमुक स्थान पर वजह प्राप्त हुई है तो वहुत से आदमी उनकी वजह उनकी रज़ामन्दी से मोल लेते थे। वे उन्हें १/३ धन नगर में ही दे दिया करते थे और स्वयं उस वजह की आय का १/२ भाग रख लेते थे व शेष आय वजहदार को दे दिया करते थे। इस प्रकार मोल लेने वाले व्यक्ति इस सौदे से वड़ा लाभ उठाते थे। वहुत से लोग सैनिकों की वजह मोल लेकर धनी हो गये और उन्होंने दलाली को अपना व्यवसाय वना लिया। इस प्रकार से इस काल में एक नवीन वर्ग का अभ्युदय हुआ।[१२]

शताब्दियों से भारतीय समाज कृषि पर आधारित रहा, जिसके कारण हिन्दू समाज ग्रामीण समुदाय से विशेष रूप से सम्बद्ध ही नहीं रहा वरन् उसका संगठन उसी

पर आधारित रहा । हिन्दू समाज में व्याप्त जाति-प्रथा ने निर्धारित कर दिया था कौन लोग कृषक हो सकते हैं । जाति-प्रथा ने अनुवांशिक निम्न श्रेणी के श्रमिक की उत्पत्ति कृषि के कार्य के लिए की और कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ग्रामीण शिल्पकारों तथा सेवकों की व्यवस्था थी । इस प्रकार जाति-प्रथा ने भारतीय ग्रामीण समाज को एक ऐसा आधार प्रदान किया जिस पर मध्यकालीन ग्रामीण समाज टिका रहा। मध्यकाल में शनैः-शनैः ज्यों-ज्यों अधिकाधिक भू-राजस्व को उपलब्ध करने के हेतु प्रशासन ने व्यवस्था की त्यों-त्यों कई कारणों से इस ग्रामीण समाज में एक नवीन उपवर्ग उत्पन्न हुए । वर्गों एवं उपवर्गों की उत्पत्ति के कारण ग्रामीण समाज के संगठन में निरन्तर परिवर्तन होते रहे । इस काल में ग्रामीण क्षेत्रों में राय, रावत, राना, ठाकुर, चौधरी, मुकद्दम, खूत इत्यादि तो पूर्वतः बने ही रहे, किन्तु उनके साथ-साथ हिन्दू ज़मीदारों, आमिल तथा स्थानीय अधिकारियों का एक अन्य वर्ग भी, जिसका उत्पादन एवं भू-राजस्व में अधिकार था, भी उत्पन्न हुआ । इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों भू-राजस्व का भुगतान नक़द रूप में करने पर प्रशासन ने बल दिया त्यों-त्यों गाँवों में साहूकार व महाजनों का प्रवेश हुआ और वे ग्रामीण समाज का अंग बन गये । इस प्रकार से ग्रामीण समाज में क्रमानुसार अधिकारों तथा स्तर के अनुसार कई वर्ग तथा उपवर्ग दृष्टिगोचर होने लगे । सामान्यतः इन वर्गों तथा उपवर्गों को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम श्रेणी में, स्वायत्त तथा मध्यस्थ तथा प्राथमिक ज़मींदार, चौधरी, मुकद्दम तथा स्थानीय अधिकारी थे । द्वितीय वर्ग में साधारण कृषक, भूमिहीन कृषक, श्रमिक तथा शिल्पकार इत्यादि थे ।

हिन्दू अभिजात वर्ग की विपन्नता व उनकी जीवन-शैली

मिनहाज के अनुसार जिस समय मुहम्मद बख्तियार ने नादिया पर आक्रमण किया उस समय वहाँ का राय लखमनिया सोने व चाँदी के थाल में भोजन कर रहा था ।[७३] जिस समय १२४८ ई० में उलुग़खान ने दलाकी-ओ-मलाकी के ऊपर आक्रमण किया उसकी धन सम्पत्ति की कोई सीमा न थी ।[७४] अमीर खुसरो ने क़िरानुस्सादैन में लिखा है कि हिन्दू राय कैकुबाद को जज़िया, हाथी, घोड़े इत्यादि भेजा करते थे ।[७५] बरनी ने स्वीकार किया है कि यहाँ राजाओं व महाराजाओं के पास असीमित धन, सम्पत्ति, हाथी, घोड़े इत्यादि थे ।[७६] अलाउमुल्क ने अलाउद्दीन खिल्जी को सुझाव दिया कि वह उन्हें अपने अधीन कर ले, उन्हें उनके प्रदेश उनके पास रहने दे और उन्हें इस बात पर राज़ी कर ले कि वे उसके पास प्रतिवर्ष हाथी, घोड़े धन भेजते रहेंगे ।[७७] इन सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि हिन्दू अभिजात वर्ग धनी था । वह मुसलमान अभिजाति वर्ग की भाँति शान व शौकत से जीवन व्यतीत किया करता था । राय महर के ८४ रानियाँ थीं और एक-एक रानी के ८१-८१ चेरियाँ थीं । उनका भोजन अलग-अलग बनता था और वे पृथक-पृथक भवनों में रहती थीं । वे रानियाँ अगरु, चन्दन, पुष्प, सज्जित ताम्बूल का सेवन करती थीं । वे हिंडोलों में झूलती थीं । राजा महर के

पास अत्यधिक हाथी, घोड़े, द्रव्य, अन्न, धन, रेशम के वस्त्र इत्यादि थे। इस विवरण से ज्ञात होता है कि फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में हिन्दू राय बड़े ठाट-वाट से अपना जीवन व्यतीत करते थे।

हिन्दू समाज के अन्य विभिन्न वर्गों की जीवन-शैली का विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है। कुलीन वर्ग के अतिरिक्त हिन्दू वैष्णव, शैव, अन्य मतों के सन्तों तथा विभिन्न सम्प्रदायों के सन्तों को समाज आदर व सम्मान की दृष्टि से देखता था और उनके प्रति श्रद्धा रखता था। सन्तों का यह वर्ग बहुत ही सशक्त, संगठित, प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण था, क्योंकि अपनी पवित्रता, तर्क-शक्ति, ज्ञान, सादे जीवन व रहन-सहन द्वारा वह समाज के विभिन्न वर्गों को न केवल रहस्यवाद एवं आध्यात्मवाद की ओर आकर्षित करता रहा वरन् उन्हें एकता, भ्रातृत्व, प्रेम, समन्वयता का पाठ भी पढ़ाता था और उन्हें सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता रहा।

यद्यपि मुसलमानों के भारत में आगमन से पूर्व ही भक्ति की विचारधारा का किसी न किसी रूप में विकास हो रहा था किन्तु इस्लाम के सम्पर्क में आने के वाद हिन्दू मनीषियों, विचारकों तथा विद्वानों का झुकाव एकेश्वरवाद, भक्ति, ज्ञान एवं साधना की ओर हुआ। इस नवीन जागृति को भक्ति आन्दोलन की संज्ञा प्रदान की गई है। भक्ति आन्दोलन के मुख्य प्रवर्तकों का जीवन वहुत ही सादा, उनके आदर्श वहुत ही ऊँचे व विचार समयानुकूल थे। ११वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विभिन्न मतों के प्रवर्तकों की जीवन-शैली का विस्तृत विवरण न तो उनकी रचनाओं में ही मिलता है और न ही अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में या समकालीन साहित्य में। किन्तु कुछ विखरे हुए सन्दर्भों को समेट कर उनकी जीवन-शैली का एक व्यापक चित्र तो प्रस्तुत किया ही जा सकता है। ११वीं-१२वीं शताब्दी में शैव तथा योगी लम्बे-लम्बे वाल तथा जटा धारण करते थे, धूनी रमाते थे, नशीले पदार्थ खाया करते थे, मटमैले पीले वस्त्र पहनते थे, अपनी साधना द्वारा हवा में ऊपर उठ जाते थे और रूद्रव्रत रहा करते थे।[५८] गुरु गोरखनाथ जिनका समय ८वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक वताया जाता है, उनके शिष्य तथा अनुयायी हठयोगी थे। सन्त जयदेव सेनवंशी राजा लक्ष्मणसेन (११७८-१२०५ ई०) के दरवारी कवि थे। उनके पिता का नाम भोजदेव व माँ का नाम रामा देवी था। वे गाँव के वाहर एक कुटिया में रहा करते थे। जव वे धन कमा कर वृन्दावन तथा जयपुर से वंगाल लौट रहे थे तो मार्ग में उन पर डाकुओं ने आक्रमण कर दिया, उनका धन छीन लिया और उनके हाथ-पैर काट डाले, किन्तु फिर भी वे सदा सुखी रहे।[५९] महान वैष्णव सन्त कवीर ने पारिवारिक जीवन व्यतीत किया। उन्होंने कई विवाह किये तथा उनकी एक पत्नी का नाम लोई था। उनके एक पद से ज्ञात होता है कि इनकी दो विवाहिता स्त्रियों में से पहली कुजाति या कुलक्षनी होने के कारण उन्हें पसन्द न थी, किन्तु दूसरी सुजाति थी और उससे उनके कई सन्तानें उत्पन्न हुई। कवीर का परिवार यद्यपि वड़ा नहीं था। किन्तु

उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उनका व्यवसाय कपड़ा बुनना था। वृद्धावस्था में उन्होंने अपने व्यवसाय को छोड़ दिया, किन्तु पहले भी उन्हें अपने व्यवसाय में रुचि नहीं थी। उनके माता-पिता ही बच्चों का पालन-पोषण करते रहे। उनके मरने के बाद जब कबीर पर परिवार का भार पड़ा तो उनके बाल-बच्चे भूखों मरने तक की स्थिति में पहुँच गये। उनकी सन्तान की दुर्दशा के कारण उनकी माता व पत्नी को बड़ी चिन्ता रहती थी और इसी कारण वे उन्हें बुरा-भला कहती थीं। जब इनके द्वार पर कोई साधु-सन्त आ जाता था तो वे जल-भुन जाती थीं और उनकी पत्नी कहने लगती थी कि "लड़के-लड़कियों को तो खाना नहीं मिल पाता किन्तु ये मुण्डिया व बैरागी-सन्यासी आदि नित्य-प्रति सिर पर सवार रहते हैं। एक-दो घर में रहते हैं दूसरे मार्ग में आते-जाते दीख पड़ते हैं। हमें तो सोने के लिए चटाई मिलती है और इनके लिए खाट व चारपाई दी जाती है। ये सिर घुटाकर कमर में पोथी बाँध कर आया करते हैं और रोटी खाया करते हैं किन्तु हम लोगों को चना चबाकर ही रह जाना पड़ता है। ये मुण्डिया मेरे पति के साथ नाता जोड़कर उसे भी मुण्डिया बनाये हुए हैं और इन सब ने हमें डुबा देने की ठान ली है।[८०] कबीर अपनी आध्यात्मिक साधनाओं और चिन्तनों में अधिक समय दिया करते थे। उन्होंने कभी भी अपने कुटुम्ब के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। उनका कहना था कि यदि भगवान टेक रख ले तो अपने बाप से भी कुछ नहीं माँगना चाहिए। माँगना वस्तुतः मरने के समान है।[८१] अपने छोटे से परिवार के लिए आवश्यक सामग्री के विषय में भी कबीर का अपना निजी आदर्श था। उनका कहना था कि "हे भगवान भूखे आपकी भक्ति नहीं हो सकती और मुझे किसी का लेना-देना नहीं है। यदि तुम तुझे स्वयं कुछ नहीं देते, तो मैं तुमसे माँग कर लेना चाहता हूँ। मैं दो सेर चून व आटा माँगता हूँ और साथ ही साथ पाव भर घी तथा नमक भी चाहता हूँ, आधा सेर मुझे दाल भी चाहिए जिससे कि एक आदमी का दोनों समय के लिए भोजन का प्रबन्ध हो जाए। फिर मैं सोने के लिए चारपाई भी माँगता हूँ जिस पर कि एक तकिया हो, रूई का मेरा गद्दा भी हो और ओढ़ने के लिए मुझे एक खीधा या सिली हुई ओढ़नी भी चाहिए। मैंने अभी तक किसी से भी माँगने की चेष्टा नहीं की है।" उससे ज्ञात होता है कि उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही सीमित थीं। उन्हें सादा जीवन पसन्द था और वे आडम्बरों से दूर भागते थे।

कबीर के समकालीन अनेक अन्य सन्त थे। उनमें से सन्त कमाल भी एक थे जो कि साम्प्रदायिक भावना से पूर्णतः मुक्त थे। उन्होंने विवाह नहीं किया और सदैव सादा जीवन व्यतीत किया।[८२] स्वामी रामानन्द का जन्म गया में हुआ और ये किसी गुफा में जीवन व्यतीत किया करते थे। केवल ब्रह्म वेला में वे उसके बाहर निकलते थे। उनके शिष्यों में कबीर, सेन, पीपाजी, रविदास तथा धन्ना थे। कबीर जुलाहा थे, सेन नाई थे जो कि बांधोगढ़ नरेश के सेवक थे और जो कि उनके तेल मर्दन करते

थे। पीपा जी का जन्म राजस्थान में राजघराने में हुआ था। वे गजरौनगढ़ की गद्दी पर बैठे। उनके १२ रानियाँ थीं। किन्तु रामानन्द के सम्पर्क में आने के बाद वे साधु के वेश में रहने लगे। सन्त रविदास का जन्म एक चमार परिवार में हुआ था और वे अपने पूर्वजों का व्यवसाय करते रहे। अपने पैत्रिक व्यवसाय से जो कुछ भी उन्हें मिलता रहा उससे वे अपने परिवार का भरण-पोषण करते रहे। वे बहुधा अपने हाथ से जूते बनाकर साधु-सन्तों को पहना दिया करते थे। जब उनके पिता ने उन्हें अपने परिवार से पृथक कर दिया तो वे अपने घर के पीछे छप्पर डाल कर वहीं रहने लगे।[८३] धन्ना जाति से जाट थे और उनका पैतिक व्यवसाय कृषि था। वे गृहस्थ जीवन से कभी विरक्त न रहे। उन्होंने स्वरचित एक पद में कहा है कि "हे भगवान मैं तेरी आरती करता हूँ। तू अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करता है। अतएव मैं भी तुझसे अपने लिए कुछ माँग रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तू मुझे आटा, दाल और घी दे जिसे खाकर मेरा चित्त प्रसन्न रहा करे। मेरी यह भी इच्छा है कि तेरी कृपा से मुझे पहनने के लिए जूता और कपड़ा भी मिल जाय, मेरे खेत में अच्छा अन्न पैदा हुआ करे और मेरे घर में अच्छी लगहर दूध देने वाली गाय, भैंस तथा एक तेज चलने वाली घोड़ी भी रहा करे। मैं इन सबके साथ अपने घर में रहने वाली एक सुन्दरी स्त्री भी चाहता हूँ।" ऐसा प्रतीत होता है कि एक साधारण कृषक होते हुए भी धन्ना जाट के पास जीवन-निर्वाह करने के लिए कुछ भी नहीं था।

कबीर के शिष्यों में कमाल, कमाली, पद्मनाभ, रामकृपाल नीर-क्षीर, ग्यानी, धर्मदास, हरिदास आदि थे। कमाल जब अपने मत का प्रचार करने के लिए काशी से ग्वालियर गये तो वहाँ किसी महाजन ने उन्हें बहुत द्रव्य देना चाहा किन्तु उन्होंने अपनी विरक्ति के नियमानुसार उसमें से एक पैसा भी लेना स्वीकार न किया। वे बचपन में ढीली-ढाली लँगोटी पहना करते थे जो कि कभी-कभी नीचे की ओर खिसक आती थी। वे जीवन भर अविवाहित रहे। कबीर के सभी शिष्य सधुक्कड़ी जीवन व्यतीत किया करते थे।

इस युग के महान सन्तों में गुरुनानक देव जी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका जन्म १५ अप्रैल १४६९ ई० को राई मोई के तलवण्डी नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम कालूचन्द था जो कि उसी गाँव के पटवारी थे और खेती-वारी किया करते थे। उनकी माँ का नाम तृप्ता था। नानक जी गृहस्थ जीवन में रहे। उनका विवाह सुलक्ष्नी से हुआ और इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, श्री चन्द और लक्ष्मी चन्द। उनका मन कभी घरेलू जीवन में नहीं लगता था। अतएव बहुधा इनकी पत्नी अपने बच्चों के साथ मायके में ही रहा करती थी। वे अपने सिर पर मुसलमान कलन्दरों की टोपी या पगड़ी धारण करते थे। अपने ललाट पर हिन्दुओं की तरह केसर का तिलक लगाते थे और गले में हड्डियों के मानकों की एक माला डाल लेते थे। उनके शरीर पर एक लाल या नारंगी रंग की बंडी रहती थी, जिस पर वे

सफेद चादर डाले रहते थे। उनका अधिकांश समय ईश्वर का भजन, चिन्तन, मनन करने में ही व्यतीत होता था। वे एक साधू की भाँति सादा जीवन व्यतीत करते थे।

सूफी सन्तों की भाँति पूर्व मध्यकालीन हिन्दू सन्तों ने अपने घर में बैठकर साधना, चिन्तन, मनन के मध्य लोगों को उपदेश देना पसन्द किया। भ्रमण करने के बाद उनमें से कुछ स्थायी रूप से अपने घर ही में रहने लगे और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। उनका समय योग, ध्यान, साधना में अधिक व्यतीत होता था। अतएव वे अपने परिवारों की ओर से बराबर विमुख रहे। उनमें से कुछ ही सन्त ऐसे हुए जिनकी सन्ततियों ने उनका मार्ग अपनाया, परन्तु उनके शिष्यों ने भी ज्ञान की ज्योति को जलाये रखा। उनकी जीवन-शैली सूफी सन्तों से मिलती-जुलती अवश्य थी किन्तु अपवाद के रूप में कुछ सन्तों को छोड़ कर लगभग अन्य सभी अपने व्यवसाय में लगे रहे और अपनी जीविका स्वयं अर्जित करते रहे। वे न तो भीख माँगने में विश्वास रखते थे और न ही किसी धर्म समुदाय पर आश्रित रहना चाहते थे। यह बात कबीर व उनके शिष्यों के सम्बन्ध में चरितार्थ होती है। लेकिन शेष सन्तों की आय का स्रोत क्या था, वह कहना कठिन है। कबीर भीख माँगना पाप समझते थे और यही आदर्श अपने शिष्यों के सम्मुख रखा।

८

हिन्दू-मुस्लिम समाज के प्रमुख धार्मिक उत्सव, त्योहार, मनोरंजन के साधन

मुहर्रम

पूर्व मध्यकाल में मुस्लिम समाज पूर्णतः इस्लाम से प्रभावित था। विदेशों से आने वाले मुसलमानों ने यहाँ वे ही त्योहार मनाने प्रारम्भ किये जो कि अरब या फारस में इस्लाम के प्रादुर्भाव के बाद मनाए जाते थे। इस्लामी पंचांग के अनुसार वर्ष का प्रथम महीना मुहर्रम होता है। यह महीना जिस प्रकार कि आज महत्वपूर्ण समझा जाता है उसी प्रकार से सल्तनत काल में मुसलमानों के लिए महत्वपूर्ण था। मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का प्रश्न उठा। मुसलमानों का आध्यात्मिक नेता होने के कारण उनका उत्तराधिकारी होने का प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि इस्लाम के अनुसार मुहम्मद साहब ही उनके अन्तिम पैगम्बर थे। उनके बाद कोई भी व्यक्ति पैगम्बर नहीं हो सकता था। क़ुरान दैवी अनुभूतियों को अन्तिम शब्द मानता था। उसके सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के सम्बन्ध में कोई भी विवाद क़ुरान को ही देखकर तय किया जा सकता था। मुहम्मद साहब के कोई पुत्र न था और न ही उन्होंने अपने अनुयाइयों में से किसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। उनके केवल एक ही पुत्री थी जिसका नाम फातिमा था तथा जिसका विवाह अली से हुआ था। अली व फातिमा से दो पुत्र हसन व हुसैन उत्पन्न हुए। मुहम्मद साहब की मृत्योपरान्त उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर मुसलमानों के दो गुट हो गये। प्रथम गुट का कहना था कि उत्तराधिकार मुहम्मद साहब के परिवार में ही होना चाहिये, किन्तु दूसरा गुट इसे मानने को तैय्यार न था। अन्त में दूसरे गुट ने आबुवक्र को खलीफा चुन लिया। आबुवक्र, उमर तथा उस्मान के समय उत्तराधिकार का प्रश्न न उठा किन्तु जब अली को मुसलमानों ने चौथा खलीफा चुन लिया तो दोनों गुटों में पुनः झगड़ा शुरू हो गया। उमर व उस्मान की भाँति अली का वध कर दिया गया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हसन बना किन्तु उसे भी विष देकर मार डाला गया। उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर दोनों गुटों के मध्य संघर्ष ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। दीर्घकालीन संघर्ष के उपरान्त जब दोनों गुटों में कर्बला के मैदान में युद्ध हुआ तो हसन का भाई हुसैन मारा गया। इसके बाद अली के समर्थक शिया तथा

उनके विरोधी सुन्नी कहलाने लगे। शिया अली, हसन व ,हुसैन को ही मुहम्मद साहब का वास्तविक उत्तराधिकारी मानने लगे और उनके समय जो खलीफा हुए उन्हें अस्वीकार कर दिया। दूसरी ओर सुन्नियों ने उनका विरोध किया और आबुबक्र, उमर तथा उस्मान को ही वास्तविक खलीफा माना। जबकि सभी मुसलमान कर्बला के युद्ध में शहीद हुए लोगों की याद में शोक मनाते हैं, शिया हुसैन के उस युद्ध में मारे जाने को निन्दनीय कार्य समझते हुए, उसकी याद में मुहर्रम के दिनों में खुल्लम-खुल्ला शोक मनाते हैं।

चूँकि हुसैन मुहर्रम मास के दसवें दिन शहीद हुए थे अतएव उस मास के प्रथम दस दिनों तक शिया मुसलमान व्रत, उपवास रखते थे, कुरान का पाठ करते थे, शोक मनाते थे और हज़रत इमाम हुसैन के बलिदान की याद किया करते थे। मिन-हाज उस-सिराज के अनुसार मुहर्रम मास के प्रथम दस दिनों में प्रतिदिन तज़कीर की जाती थी।[1] बिहार का सुप्रसिद्ध सन्त शरफुद्दीन यहिया मनेरी आशुरा के दिन मजलिस का आयोजन किया करता था और इस अवसर पर अनेक लोग उसके यहाँ एकत्र हुआ करते थे। इसी प्रकार से किछोचा के हज़रत अशरफ जहाँगीर सिमनानी भी दस दिन तक शोक मनाते थे। लोग अशुरा के दिन व्रत रखते थे और अपनी आँखों में सुरमा लगाते थे। कुछ लोग मुहर्रम दूसरी तरह से मनाते थे। वे अपने सिर पर धूल डालते थे और शोक सम्बन्धी वस्त्र धारण करते थे। इब्नबतूता मुहर्रम के दसवें दिन १०० मन आटा और उतना ही गोश्त ग़रीबों में बाँटा करता था।[2] इस दिन हजरत इमाम हुसैन की आत्मा की शान्ति के लिए कुछ लोग ग़रीबों में भोजन बाँटा करते थे।

मुहर्रम के बाद मुसलमानों के त्योहार में रबी-उल-अव्वल के मास में मुहम्मद साहब का जन्म दिवस मनाया जाता था। उनका जन्म १२ रबी-उल-अव्वल को हुआ था। इस त्योहार को बारह वफात या ईद-उल-मिलाद भी कहते हैं। इस दिन लोग ग़रीबों, दरिद्र व्यक्तियों व दीन-दुखियों को भोजन दिया करते थे।

रबी-उल-अव्वल के बाद शाबान के मास में १४ तारीख को शब-ए-बारात का त्योहार मनाया जाता था। मुसलमानों में यह विश्वास था कि ईश्वर ने इस रात्रि में सभी मुसलमानों का आने वाला भविष्य निर्धारित करता है। अतएव शब-ए-बारात की रात्रि में लोग जगते रहते थे और पूजा-पाठ में लगे रहते थे। वे एक क्षण के लिए इस रात्रि में सोते नहीं थे और उन्हें आशा रहती थी कि ईश्वर उनकी ओर ध्यान अवश्य देगा। इस रात्रि को आतिशबाज़ी छुड़ाई जाती थी। अमीर खुसरो के अनुसार दिल्ली में बच्चे आतिशबाजी छुड़ाया करते थे और सम्पूर्ण रात्रि में चारों ओर जग-मगाहट ही जगमगाहट दिखाई पड़ती थी। प्रत्येक मुसलमान मस्जिद में जाकर एक दिया अवश्य जलाता था। जिससे सम्पूर्ण रात्रि प्रकाशमय हो जाती थी और कहीं भी अन्धकार नहीं दिखाई देता था। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक शब-ए-बारात का

त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाया करता था। अफीफ लिखता है कि जब शाबान का महीना आ जाता था तो सुल्तान शब-ए-बारात के तमाशे का आयोजन करने का आदेश दिया करता था। शाबान की १५ तारीख को रात्रि से सुल्तान कुश्के फ़िरोज़ाबाद में फुलझड़ियाँ व हवाइयाँ छुड़ाता था। जब शब-ए-बारात निकट आ जाती थी तो १३, १४, १५ तारीख को १७ में अत्यधिक आतिशबाज़ी छुड़ाई जाती थी। फिरोज़ाबाद के कुश्क-ए-जलूस में शब-ए-बारात की आतिशबाजी छुड़ाने के लिए चार मोर्चे निश्चित किए जाते थे। एक मोर्चा खास, द्वितीय मलिक नायब बारबक, तृतीय मोर्चा मलिक अली के और चौथा मोर्चा मलिक मुहम्मद हाजी के पुत्र मलिक याकूब के सुपुर्द होता था। प्रत्येक मोर्चे पर ३०-३० गधे के बोझ के बराबर ढोल तथा बाजे रखे होते थे। इन तीनों रात्रियों में कुश्के नज़ूल में इतनी मशालें तथा दीपक जलाये जाते थे कि उसके चारों ओर के मैदान दिन के समान लगते थे। चारों मोर्चों पर नौकाएँ बाँधी जाती थीं और उन नौकाओं में मशालें जलाई जाती थीं और तीन रात्रियों को सभी मोर्चों पर ढोल बजाये जाते थे और आतिशबाज़ी छुड़ाई जाती थी। इस अवसर पर दिल्ली के आस-पास के हिन्दू-मुसलमान आम व खास, छोटे-बड़े उपस्थित होकर तमाशा देखते थे। इस त्योहार पर मिट्टी के खिलौने तैयार किए जाते थे और वे सुल्तान के सम्मुख लगाये जाते थे। सुल्तान सभी को इनाम दिया करता था।[3]

ईद-उल-फितर

रमज़ान के महीने के अन्त में मुसलमानों का सबसे बड़ा त्योहार ईद-उल-फितर होता था। यह त्योहार बहुत ही लोकप्रिय व महत्वपूर्ण था। मिनहाज के अनुसार रमज़ान के महीने में प्रतिदिन तज़कीरें हुआ करती थीं, व्रत और उपवास का महीना समाप्त होते ही हर्ष एवं उल्लास से भरा हुआ ईद का त्योहार आता था। इब्नबतूता ने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक द्वारा ईद का त्योहार मनाए जाने का रोचक विवरण दिया है।[४] सुल्तान फिरोज़शाह जिस प्रकार ईद का त्योहार मनाता था उसका विवरण अफीफ ने दिया है।[५] इस दिवस पर चारों ओर खुशियाँ मनाई जाती थी और ढोल पीटे जाते थे। हर एक मुसलमान अपने घर से दूसरे के घर रोटी व हलवा भेजते थे, और वे अच्छे नए वस्त्र पहनते थे तथा इत्र लगाकर एक-दूसरे से मिलते थे। ईद की नमाज को मस्जिद में पढ़ने के बाद जश्न मनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ होता था। एक दूसरे को उपहार देना, सन्तों के दर्शन करना व मजलिसें आयोजित करना, कवि गोष्ठियाँ करना, इस त्योहार का महत्वपूर्ण अंग था।

वर्ष के अन्तिम माह जिलहज्जा के दसवें दिन मुसलमान ईद-उज-जुहा का पुनीत त्योहार मानते थे। मुसलमानों के अनुसार ईश्वर ने इब्राहिम की इस्लाम के प्रति निष्ठा की परीक्षा लेने के लिए उससे कहा कि तुम मक्का के समीप मीना नामक स्थान में ईश्वर के लिए अपने पुत्र की बलि दो। इब्राहिम जिसे ईश्वर में पूर्ण विश्वास

था, ने नि:संकोच अपने पुत्र की बलि देना स्वीकार किया। उसने अपनी आँखों में पट्टी बाँधी और पुत्र की बलि दे दी। किन्तु जैसे ही उसने अपनी आँखों से पट्टी खोली उसने अपने पुत्र को सामने खड़ा हुआ देखा और एक दुम्बे को उसके स्थान पर कटा हुआ पाया। इस त्योहार पर ऊँट या भेड़ या बकरे की बलि दी जाती थी और उसके बाद जश्न मनाया जाता था।

ईरानी पंचांग के अनुसार नौरोज़ का प्रथम दिन होता था अतएव नववर्ष के आगमन पर यह त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाया जाता था।[६]

उर्स

उपरोक्त त्योहारों के अतिरिक्त मुसलमान सूफी सन्तों की दरगाहों, मज़ारों तथा मकबरों पर जाकर उनकी बरसी या उर्स मनाया करते थे। सल्तनत काल में अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के दरगाह पर रजब मास के प्रथम छः दिन में प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता था। इसी भाँति बहराइच में सैय्यद सालार मसूद ग़ाजी के दरगाह पर, मकनपुर में जिन्दाशाह मदार की दरगाह पर, जमादी-उल-अव्वल मास के ७वें दिन, दिल्ली के शेख निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर प्रतिवर्ष, अन्य सुप्रसिद्ध सूफी सन्तों की दरगाहों पर प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता था। ऐसे अवसरों पर इन दरगाहों पर हजारों हिन्दू-मुसलमान एकत्र होते थे। उर्स के दिनों में सन्त की स्मृति में कव्वालियाँ, उसकी प्रशंसा में तज़कीरे तथा कवि-गोष्ठियाँ आदि हुआ करती थीं।

यदि इस काल में मुसलमान अपने त्योहारों को धूम-धाम से मनाते थे तो हिन्दुओं को भी अपने त्योहारों को मनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। हिन्दू त्योहारों में सर्वप्रमुख वसन्त पंचमी, होली, दीपावली, शिवरात्रि के अतिरिक्त अन्य स्थानीय त्योहार भी मनाये जाते थे।

प्रत्येक जाति व समाज, समुदाय वर्ग का व्यक्ति अपने जीवन में सुख व सुविधा तो चाहता ही है वरन् अपने जीवन का आनन्द भी उठाना चाहता है। संघर्षशील जीवन, विषाद और दुख से मुक्त होकर वह कुछ क्षण अपना मनोरंजन करना चाहता है ताकि उसके मस्तिष्क को कुछ शान्ति मिले। प्राचीन काल की भाँति पूर्व मध्यकाल में भी मनोरंजन के अनेक साधन थे और इनका उपयोग करके लोग आनन्द उठाते थे। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों व विदेशी पर्यटकों की डायरियों में मनोरंजन के इन साधनों का यदा-कदा उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत विवरण उसी पर आधारित है। इस काल में बाहरी खेल में चौग़ान या पोलो का खेल समाज के अभिजात वर्ग में बहुत ही प्रचलित था। यह खेल घोड़े पर सवार होकर एक लम्बी लाठी और गेंद के साथ खेला जाता था। कुतुबुद्दीन ऐबक चौगान खेलने का बहुत ही शौकीन था। चौगान खेलते समय ही वह घोड़े से गिर पड़ा और उसे इतनी चोट लगी कि वह बच न सका।[७] अफगान भी चौगान खेलने के बड़े शौकीन थे। क्योंकि उससे शारी-

रिक व्यायाम होता था। जब बहलोल लोदी सात वर्ष का था तो वह गेंद खेला करता था किन्तु उसका पुत्र सिकन्दर लोदी चौगान खेलना पसन्द करता था।[८]

समकालीन ग्रन्थों में पहलवानी करने या कुश्ती लड़ने का भी उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में भी यह क्रीड़ा लोकप्रिय थी। बलबन ने अपने शासनकाल में साठ-साठ, सत्तर-सत्तर हजार जीतल वेतन पर सीस्तानी पहलवानों को नियुक्त किया था। यह पहलवान अपने कन्धों पर नंगी तलवार रखे हुए घोड़े पर सवार होकर उसके साथ-साथ चलते थे और दरबार में उपस्थित रहते थे[९]। अफीफ के अनुसार सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ईद के त्योहार पर पहलवानों को बुलाता था और गाना सुनने के बाद वह पहलवानों का मल्ल युद्ध देखा करता था।[१०]

इस काल में सबसे लोकप्रिय खेल घुड़सवारी, तीरन्दाजी, चिड़ियों और जानवरों का शिकार खेलना आदि थे। इन खेलों में सुल्तान व अमीर दोनों ही भाग लिया करते थे और आनन्द लेते थे। इन खेलों से लाभ यह था कि उनके घोड़े व सैनिक चुस्त, चौकस, दक्ष और स्वस्थ रहते थे। दूसरे इन खेलों से अनेक कर्मचारियों की जीविका चलती थी। दिल्ली के सुल्तान के अन्तर्गत **अमीर-ए-शिकार** ही आखेट की सम्पूर्ण व्यवस्था किया करता था। बलबन जब खान के पद पर था तो वह आखेट पर यदा-कदा जाया करता था। जब वह सुल्तान बना तो उसकी रुचि आखेट में बराबर बनी रही। शिकार में उसकी रुचि होने के कारण उसे जाड़े के दिन बहुत ही प्रिय थे। वह सदैव शीतकाल की प्रतीक्षा किया करता था। उसने आदेश दे दिया था कि दिल्ली शहर के आस-पास दस-बीस कोस तक के शिकारगाहों और मैदानों की रक्षा की जाय और वहाँ किसी अन्य व्यक्ति को शिकार न खेलने दिया जाय। उसके समय में बड़े-बड़े शिकारगाहों को सम्मान प्राप्त था। उसके **शिकारखाने** में अनेक दक्ष शिकार खेलने वाले थे। उसने अनेक संख्या में शिकार खेलने का प्रबन्ध करने वाले और चिड़ीमार नौकर रख छोड़े थे। वह जाड़े के दिनों में रात के अन्तिम पहर में कुश्क से लाल के बाहर निकलता था और प्रतिदिन रैवाड़ी या उसके आस-पास तक जाता था और शिकार खेल कर रात के तीसरे पहर दिल्ली वापस लौटता था।[११] आखेट के समय उसके साथ एक हजार पुराने सवार जो कि उसके साथ उसकी खानी के समय से थे और एक हजार प्राचीन दास जिनमें कि पायक व धनुर्धारी भी सम्मिलित थे, रहते थे। वह इन सभी को पका तथा बिना पका भोजन दिया करता था। बरनी ने लिखा है कि उसका भाई किशली खान जो बारबक के पद पर था और जिसे कोल की अक्ता प्राप्त हुई थे, के समान कोई भी अमीर बाण फेंकने, गेंद खेलने और शिकार खेलने में न था। उसकी इन क्रीड़ाओं में दक्षता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी।[१२]

अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ **एजाज-ए-खुसरवी** के एक खण्ड जिसका शीर्षक **नामा-ए-मीर शिकार** है, में आखेट के सम्बन्ध में रोचक सूचनाएँ दी हैं। मुख्य **शिकरेदार** को **मीर शिकार** या **शिकारबक** कहते थे। आखेट खेलने के लिये अनेक स्थान जैसे

कि शिकारिस्तान और शिकारगाह, जहाँ की पक्षी व पशु हुआ करते थे। शिकार का प्रबन्ध करने के लिए तबलबाज़ (नगाड़ा पीटने वाले) **कल्ब-ए-मुअल्लम** (शिकारी कुत्ते) **युजबान** (तेंदुआ और तेंदुई रखने वाले) होते थे। इन पशुओं और पक्षियों को शिकार के लिए हाँकने के लिए विभिन्न प्रशिक्षित पक्षी और पशु हुआ करते थे। आखेट खेलने पर जाने वाले दल के साथ सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ होती थीं। शिकार में भाग लेने वाले सभी लोगों व अमीरों के पास अपने-अपने तम्बू होते थे। सुल्तान के लिए अलग से दूसरे रंग का तम्बू होता था। इन तम्बुओं को ढोने के लिए मज़दूर किराये पर लाये जाते थे। कहार बावर्चीखाने के बर्तन और उसका सामान ढोने के लिए होते थे। उनके अतिरिक्त अनेक फर्राश भी होते थे जिनका मुख्य कार्य तम्बुओं में कालीन, बिछौना, उसमें उठने-बैठने, सोने का प्रबन्ध करना, ऊँटों पर सामान लादना होता था। इसके अतिरिक्त अनेक मशालची भी होते थे जो कि रात्रि में मशाल लिए मार्गदर्शन करते थे। शिकार के समय खाने-पीने की भी व्यवस्था होती थी। प्रत्येक खान व अमीर अपने साथ पानी रखता था। कुछ ऊँटों पर अथवा घोड़ों पर पानी ले जाते थे। शेष कहारों को पानी ले चलने के लिए रख लेते थे।[१२]

जब कि अन्य सुल्तान जाड़े के चार महीनों में पक्षियों का शिकार बाजों की मदद से करते थे, फिरोज़शाह तुग़लक वर्ष भर जंगली जानवरों, शेर, चीतों, पक्षियों का शिकार किया करता था। बरनी ने फिरोज़शाह की शिकार में रुचि के सम्बन्ध में लिखा है कि "शाही पताकाओं ने अनेक बार हाँसी तथा सिरसौती की ओर शिकार के लिए प्रस्थान किया। प्रथम बार वे पर्वत की ओर गई। ईश्वर प्रशंसनीय है। यदि मैं उसके शिकारों के वैभव तथा उनके बार-बार आयोजित होने के विस्तृत विवरण में से थोड़ा बहुत भी लिखूँ तो मुझे "शिकार नामाये फिरोज़शाह" की रचना करनी पड़ेगी और दो बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखने पड़ेंगे। जिस प्रकार से हमने संसार के रक्षक सुल्तान फिरोज़शाह को शिकार के विषय में घोर प्रयत्न करते देखा है, उस प्रकार किसी भी सुल्तान को नहीं देखा है। यद्यपि सुल्तान शम्सुद्दीन (इल्तुतमिश) की शिकार में अत्यधिक रुचि के विषय में पुस्तकों में लिखा है और उस विषय में सुल्तान ग्यासुद्दीन बलबन की श्रेष्ठता की बड़ी प्रशंसा की जाती है और इसके विषय में मैंने अपने दादा से भी सुना था और यद्यपि मैंने स्वयं अपनी आँखों से सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की शिकार की रुचि तथा प्रेम देखा है किन्तु यह बादशाह पक्षियों का शिकार करते थे और केवल शीत ऋतु में चार मास तक बाज उड़ाया करते थे। जो व्यक्ति सिंह तथा जंगली जानवरों और पक्षियों का शिकार करता है और साल के बारह मास में कभी भी बिना शिकार के नहीं रह सकता वह संसार का रक्षक सुल्तान फिरोज़शाह है। थोड़े से ही ऐसे अवसर रहें होंगे कि जब वह शिकार खेलने उन स्थानों पर गया तो उसने जंगल में न तो कोई चीता छोड़ा और न कोई भेड़िया, नीलगाय, हिरन या बारहसिंगा, न मुझे कोई पक्षी ही हवा में उड़ता अथवा जल के निकट उतरता हुआ दिखाई पड़ा। अत्यधिक पशुओं का शिकार करने के कारण फिरोज़शाह की सेना व शिकार के शिविर

में इतना मांस आता था कि कसाइयों को वहुत ही कम समय तक भेड़ अथवा गाय की हत्या करने की आवश्यकता न तब पड़ती थी और न अब पड़ती है।"[१४] अफीफ के अनुसार "फिरोज़शाह समय-समय पर हर चीज़ का शिकार खेलता था। वह सर्वदा शिकार हेतु घोड़ा दौड़ाने का प्रयत्न किया करता था। वह सर्वदा शिकार उड़ाने तथा शिकार पकड़ने में तल्लीन रहता था। जब सुल्तान किसी स्थान पर बैठता था तो शिकरें को सिखाने के लिए उन पक्षियों को छोड़ा जाता था जिनके थोड़े से पंख इस कार्य हेतु काट दिये जाते थे। यदि वह घोड़े पर सवार होकर कहीं जाता तो भी वह शिकार के पीछे शिकरे उड़ाता हुआ जाता था। यदि कोई पशु उसके सन्मुख आता तो उसके पीछे वह चीता और सियाहगोश छुड़वा देता था। जब वह शिकार खेलने के लिए निकलता तो १२००० वहेलिये उसके साथ चलते थे। वहेलिये वे लोग होते हैं जो कि मृग पकड़ने के लिए चौपायों पर जाल लेकर चलते हैं। जिस स्थान पर मृग पकड़ते हैं वहाँ वे जाल वाले अपना जाल फैला देते हैं। मृग जाल में फँस जाता है।" अफीफ ने वहेलियों द्वारा सिंह के शिकार करने का तरीका भी बताया है और अन्त में वह यह लिखता है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने लोहे के बड़े-बड़े दो देग (खाना पकाने के बर्तन) तैयार करवा लिये थे जिनमें १०-१० भेड़ें पकाई जा सकती थीं। उन दो देगों को १२० कंहार उठा कर सुल्तान के साथ शिकार के समय चलते थे। जिस पड़ाव पर सुल्तान उतरता था और शिकार करता था वहाँ इन्हीं देगों में उनका मांस पकाया जाता था और समस्त लोगों में बाँटा जाता था।"[१५]

उस समय अमीरों व सुल्तानों में शतरंज का खेल भी बहुत ही लोकप्रिय था। हसन निज़ामी ने उसका उल्लेख अपने ग्रंथ में कई बार किया है।[१६] अमीर खुसरो ने **एजाज़-ए-खुसरवी** में शतरंज के बारे में विशेष रूप से विवरण किया है।[१७] बरनी के अनुसार सुल्तान मुईज़ुद्दीन कैकुबाद के शासनकाल में सुन्दर युवतियों को शतरंज व चौसर खेलना सिखाया जाता था ताकि वे सुल्तान का मनोरंजन कर सकें।[१८] अमीर खुसरो के अनुसार शतरंज का खेल हिन्दुस्तान के निवासियों से बढ़ कर कोई भी नहीं खेल सकता।[१९] शतरंज अफगानों का प्रिय खेल था।[२०]

कभी-कभी अपने मनोरंजन के लिये लोग निकटवर्ती मकानों में भी चले जाते थे, जहाँ वे विश्राम करते थे और प्रकृति की छटा को देखकर अपने मन का बोझ हल्का कर लिया करते थे। इसीलिए शहरों तथा गाँव के समीप उद्यान लगवाए जाते थे। हज़रत नसीरुद्दीन चिराग़ दोपहर में बाग़ में ही सोया करते थे। वहाँ का रमणीय वातावरण उनके विचारों को अत्यधिक प्रभावित किया करता था। वे वहाँ चिन्तन और मनन भी किया करते थे। कभी-कभी वे वहाँ क़लम व दवात लेकर भी जाते थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया को भी उद्यानों का शान्त वातावरण पसन्द था। मौलाना फखरुद्दीन अपने मित्रों के साथ उद्यानों, अनाज के खेतों, पहाड़ियों तथा जंगलों में घूमने के लिये जाते थे।[२१] इन्हीं उद्यानों में कभी-कभी सूफी सन्त अपनी मजलिसें भी

आयोजित कर लिया करते थे। विहार के हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी ख्वाजा महमूद एवाज के वाग़ में न केवल लोगों को प्रश्नों का उत्तर ही दिया करते थे वरन् मजलिसों का आयोजन भी किया करते थे जिसमें कि कव्वाल कव्वालियाँ गाते थे और सभा का आयोजन होता था।[२२] कभी-कभी लोग किसी हौज़ के समीप बैठ कर भी आनन्द ले लेते थे। दिल्ली में हौज़-ए-खास के किनारे अनेक गायक रहते थे। उस स्थान को तारावाद कहते थे। वहाँ उनका एक वाज़ार था जो कि संसार में सबसे वड़ा था। वहाँ गाने वाली स्त्रियाँ भी रहती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि संध्या समय लोग अपना मनोरंजन करने के लिए वहाँ विशेष रूप से जाया करते थे।[२३] हज़रत निजा-मुद्दीन औलिया हौज-ए-कुतलक खान के पास जाकर क़ुरान को कण्ठस्थ किया करते थे। विशेष अवसरों पर जैसे कि सफर मास के अन्तिम बुधवार को उद्यानों, हौज़ों तथा पिकनिक के स्थानों पर इतनी अधिक भीड़ हो जाती थी कि लोगों को कहीं भी बैठने का स्थान न मिल पाता था। उस दिन सभी जगहों पर गान व नृत्य हुआ करता था।

इस काल में यहाँ नट का तमाशा एवं जादू दोनों ही मनोरंजन के विशेष साधन थे। वरनी ने सुल्तान मुइज्जुद्दीन कैकुवाद के शासनकाल में जिस गदागाज़ी वच्चे का उल्लेख किया है वह एक नट था। जब सुल्तान अवध से दिल्ली वापस आ रहा था तो मार्ग में उसने सुल्तान को अपना चमत्कार दिखाया जिससे सभी लोग प्रभावित हुए।[२४] यह नट आकाश में गेंद फेंकते थे, तलवार निगल जाते थे, अपनी नाक में चाकू घुसेड़ लेते थे, रस्सी पर चलते थे और रस्सी पर चलकर लड़के-लड़कियाँ तरह-तरह के खेल दिखाते थे, नाचते व गाते थे और इस प्रकार लोगों का मनोरंजन भी करते थे। नुहसिपहर में अमीर खुसरो ने लिखा है कि हिन्दुस्तान के निवासियों को जादू का विशेष ज्ञान था। लोग जादू से मुर्दे जीवित कर लेते थे। वे साँप के काटे हुए मनुष्य को छः छः महीने के उपरान्त भी जिन्दा कर लेते थे। वे पूर्व की ओर वहने वाली नदियों पर विजली के समान तेजी से उड़ सकते थे। क़ामरूप के वड़े-वड़े जादूगर मनुष्य को जानवर वना देते थे।[२५] अमीर खुसरो ने खजाइनुल फ़ुतूह मे यह भी लिखा है कि इस काल में जादूगरों को कठोर दण्ड दिये जाते थे। उन्हें ज़मीन में गर्दन तक गड़वा दिया जाता था और लोग उन पर पत्थर फेंका करते थे। यहाँ जादूगर का तात्पर्य सामान्य जादूगर से न होकर मुसलमानों को दूसरे मतों में गुमराह कर ले जाने वाले व्यक्तियों से है। कुछ भी हो जादूगर भी नटों की भाँति तमाशा दिखाकर लोगों का मनोरंजन किया करते थे। खिज्र खाँ के विवाह पर तलवार चलाने वाले, तलवार का कर्तव दिखाने वाले लोग एकत्र किये गये। उनमें से कुछ ऐसे थे जो कि वाल को वीच से दो टुकड़े कर सकते थे। नट भी अपने तमाशे दिखाने में लग गये, वाजीगर गेंद को आसमान की ओर उछालते थे, तलवार को पानी की तरह निगल जाते थे और नाक से चाकू चढ़ा लेते थे।[२६]

इसके अतिरिक्त दिल्ली के सुल्तान स्वयं विशेष अवसरों पर ऐसे उत्सवों का

आयोजन किया करते थे कि न केवल उन अवसरों पर दरवार की सजावट होती थी वरन् सम्पूर्ण शहर दुल्हन की भाँति सजा दिया जाता था। हिन्दू-मुस्लिम समाज का प्रत्येक वर्ग उन उत्सवों में भाग लेकर हर्ष और उल्लास का अनुभव किया करता था। ऐसे अवसरों पर दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों के लोग दिल्ली आया करते थे और उन उत्सवों को देखा करते थे। मिनहाज-उस-सिराज के अनुसार १८ फरवरी १२२९ ई० को खलीफा के राजदूत राजधानी पहुँचे तो शहर सजाया गया। सुल्तान इल्तुतमिश ने खलीफा द्वारा भेजा मानपत्र व खिलअतें व उपहार स्वीकार किये और इस समारोह को वड़े आनन्द मंगल के साथ मनाया। उसने इस अवसर पर अपने अनेक अमीरों को खिलअतें देकर सम्मानित किया।[२७] इसी प्रकार से जब सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में जब मिस्र के राजदूत उसके लिए मानपत्र लेकर आये तो वह स्वयं शेख, मशाहिकों व गणमान्य व्यक्तियों को लेकर उनका स्वागत करने के लिए राजधानी के बाहर गया। इस अवसर पर शहर सजाया गया व खुशियाँ मनाई गई।[२८] इब्नवतूता के अनुसार जब शेख सईद खलीफा के पास से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के लिए मानपत्र लेकर आया तो उसका भव्य स्वागत किया गया। सम्पूर्ण शहर को सजाया गया। वहाँ मण्डप वनाये गये और हर एक मण्डप में ४ मंजिलें वनाई गई और प्रत्येक मंजिल में स्त्री, पुरुष तथा नर्तकियों को रखा गया। सभी मण्डपों को ऊपर से नीचे तक अन्दर व बाहर से कढ़े हुए रेशमी कपड़ों से सुसज्जित किया गया। इन मण्डपों के मध्य भैंसे की खाल के वने हुए तीन वड़े-वड़े वर्तन, जिनमें शरवत भरा हुआ था और जिसमें गुलाब जल मिला हुआ था, रक्खे गये। जो कोई चाहता था उसमें से शरबत लेकर पी लेता था। किसी को शरवत पीने की मनाही न थी। शरवत पीने के वाद उसे १५ पान की गिलोरियाँ दी जाती थी जिसमें कि सुपाड़ी व चूना लगा होता था।[२९] जब सुल्तान फिरोज़शाह ने खलीफा द्वारा भेजी हुई खिलअत प्राप्त की तो उसने भी वड़े जोर-शोर से जश्न मनाया।[३०]

इसी प्रकार से सुल्तान के गद्दी पर बैठने पर भी वड़े उत्सव मनाये जाते थे जिनसे समाज के सभी वर्गों का मनोरंजन होता था। ऐसे अवसर केवल राजधानी तक ही केन्द्रित थे और उनमें वहीं रहने वाले लोगों को ही विशेष लाभ पहुँचता था। जब कभी सुल्तान आखेट खेलकर अन्यथा अभियान से या अन्य किसी कार्य से निवृत्त होकर राजधानी वापस लौटता उस समय भी उसका स्वागत होता था और उसके आदेशानुसार उत्सव मनाये जाते थे। जब मुइज़ुद्दीन क़ैकुवाद अवध में अपने पिता बुग़रा खान से मिलकर दिल्ली वापस लौटा तो उसके आगमन की प्रसन्नता में दिल्ली को सजाया गया। पुरानी व नई नर्तकियाँ व गायक वहाँ एकत्र हो गये। अनेक मण्डप स्थापित किये गये जहाँ कि मुफ्त में मदिरा दी गई। यह उत्सव कई दिनों तक मनाये गये।[३१] जब सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक लखनौती अभियान से दिल्ली वापस आ रहा था तो उसके पुत्र जूना खान ने तुग़लकावाद से ३-४ कोस पर अफगानपुर के समीप एक छोटा-सा महल वनवाया, जहाँ उसने उसके स्वागत का प्रवन्ध किया। राजधानी तुग़लकावाद में

मण्डप सजाये गये और बाजे बजाये गए तथा खुशियाँ मनाई जाने लगी। किन्तु सुल्तान के अफगानपुर पहुँचने पर स्वागत के पश्चात् वह दुर्घटना-ग्रस्त हो गया।[३२] इसी प्रकार से जब फिरोजशाह तुग़लक बंगाल अभियान से वापस लौटा तो दिल्ली में २१ दिन तक खुशियाँ मनाई गई।[३३] जाजनगर अभियान से जब वह वापस राजधानी लौटा तो पुनः उसी प्रकार शहर में कुब्बे सजाये गये और राज्य के समस्त कस्बों में सभी व्यक्तियों ने आनन्द मनाया।[३४] थट्टा अभियान के बाद दिल्ली पहुँचने पर पुनः २१ दिनों तक खुशियाँ मनाई गई।[३५]

सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद के शासनकाल के बाद जब जलालुद्दीन खिल्जी शासक बना तो उसने किलोखड़ी का राजभवन पूर्ण करवाया, उसे उपवन से और बेलबूटों से सजाया और अपने सिंहासनारोहण की खुशियाँ मनाई। उसके वध के बाद जब कड़ा मानिकपुर से प्रस्थान करके अलाउद्दीन दिल्ली पहुँचा और वहाँ गद्दी पर बैठा तो इस समय दिल्ली सजाई गयी। शहर में अनेक स्थानों में मण्डप सजाये गये, शराब, शरबत व पान वितरित किये गये। प्रत्येक घर में महफिलों का आयोजन हुआ। मलिकों, अमीरों तथा गणमान्य व्यक्तियों ने प्रीतिभोज देना-लेना आरम्भ किया और कई दिनों तक इस अवसर के उपलक्ष में खुशियाँ मनाई जाती रही।[३६] सुल्तान अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में जब उसके पुत्रों खिज्र खाँ आदि का विवाह हुआ तो उसकी पत्नी ने उस सम्बन्ध में समारोह व दावतें कीं। स्वयं गद्दी पर बैठने पर सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी ने समस्त अलाई कैदियों को तो उन लोगों को जिन्हें देश निकाला मिल चुका था और जिनकी संख्या १७-१८००० थी उन्हें मुक्त कर दिया। सैनिकों को ६ मास का वेतन पुरस्कार में दिया गया और मन्त्रियों तथा अमीरों के वेतन में वृद्धि कर दी गई। इस प्रकार से उसके सिंहासनारोहण पर भी खुशियाँ मनाई गई।[३७] अपने पिता की मृत्यु के बाद जब सुल्तान मुहम्मद तुग़लक गद्दी पर बैठा तो तुग़लकाबाद शहर के मण्डप सजाये गये, खुशियों के बाजे बजाये गये और बाजार व गलियाँ रंग-बिरंगे फूलदार वस्त्रों से सुसज्जित की गई। सुल्तान ने आदेश दिया कि उसके राजधानी में प्रवेश करने पर गलियों व मुहल्लों में सोना लुटाया जायें और सोने-चाँदी के तन्के मट्ठियों में भर-भरकर फेंके जायें और दर्शकों के पल्लू में डाले जायें। बरनी ने लिखा है कि जिस समय वह बदायूँ द्वार पर उतरा और उसने राजभवन में प्रवेश किया तो अमीर हाथी के हौदों में बैठे और उन्होंने सोने व चाँदी के तन्कों के भरे हुए थाल से मुट्ठियाँ भर-भर के गलियों व बाजारों में फेंकना प्रारम्भ किया और कभी-कभी वे कोठों की ओर भी धन फेंक देते थे। इस प्रकार सोने व चाँदी के तन्कों की वर्षा होने लगी। लोगों ने अपनी पगड़ियों व मुट्ठियों में तन्के भर लिये। प्रत्येक घर में सुल्तान के सिंहासनारोहण पर ढोलक व बाजे बजने लगे। स्त्री व पुरुष नाना प्रकार के स्वरों में गाना गाने लगे।[३८] सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक थट्टा में असाधारण परिस्थितियों में गद्दी पर बैठा था अतएव दिल्ली में प्रवेश करने के बाद उसने अपना सिंहासनारोहण बड़े धूम-धाम से मनाया। उसके

दिल्ली पहुँचने पर प्रसन्नता में खुशी के ढोल बजाये गये और समस्त नगर को आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सजाया गया। चारों ओर कुब्वे बाँधे गये और २१ दिन तक जश्न होता रहा। किसी को भोजन, शरबत, पान से न रोका गया। लोग चारों ओर से कुब्वे देखने के लिए आते थे। जो कोई भी उन्हें देखने आता था उसे सुल्तान के आदेशानुसार स्वादिष्ट भोजन प्रदान किया जाता था। कुब्वों के नीचे गण गायक गाना गाते थे और नर्तकियाँ नृत्य करती थीं। यह परम्परा दिल्ली सल्तनत में जहाँ तक सम्भव हो सका बराबर बनी रही।

दिल्ली के सुल्तानों व अमीरों के घरों में शाही विवाह के अवसरों पर कई दिन तक उत्सव मनाये जाते थे, जो कि न केवल परिवार केसदस्यों वरन् अतिथियों, कर्मचारियों, आश्रयदाताओं तथा अन्य व्यक्तियों का भी मनोरंजन किया करते थे। ऐसे अवसरों पर संगीत, नृत्य, प्रीतिभोज, मनोरंजन का विशेष आयोजन हुआ करता था। अलाउद्दीन के शासनकाल में खिज्र खाँ के विवाह पर शाही महल को चारों ओर से सजाया गया और ऊँचे-ऊँचे कुब्वे बनाये गये। उन्हें रेशमी पर्दों से सजाया गया। समस्त गलियों व बाज़ारों को भी सजाया गया। दीवारों पर नाना प्रकार के चित्र बनाये गये और खेमे और शामियाने लगाये गये। प्रत्येक स्थान पर फर्श बिछाये गये। किसी स्थान पर भूमि दिखाई न देती थी। ढोल व बाजे बजते थे। नट और बाजीगर अपने तमाशे दिखाने लगे।[४०] इब्नबतूता ने जिस प्रकार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की बहन का अमीर सैफुद्दीन के साथ विवाह का विवरण दिया है उससे भी ज्ञात होता है कि विवाह के अवसर पर बड़ी धूम-धाम हुआ करती थी।[४१]

इस युग में मनोरंजन के लोकप्रिय साधन संगीत व नृत्य थे। यद्यपि इस्लाम में स्वर संगीत और नृत्य दोनों ही निषेध थे किन्तु रूढ़िवादी, परम्परागत, दकियानूसी और कट्टर मुसलमानों के विरोध के बावजूद भी मुस्लिम समाज का तीन चौथाई भाग इन कलाओं में रुचि लेता रहा, उन्हें प्रोत्साहन देता रहा और उनसे मनोरंजन प्राप्त करता रहा। संगीत व नृत्य दोनों ही मानव की प्रमुख आवश्यकतायें थीं। कोई भी त्योहार व जश्न या उत्सव, संस्कार बिना संगीत व नृत्य के सम्भव न था। सुल्तान से लेकर सूफी तक समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों में उसका अत्यधिक प्रचलन था। स्त्री के गर्भाधान से लेकर वृद्ध के परलोक सिधारने तक कोई भी ऐसा शुभ अवसर नहीं होता था जब कि संगीत व नृत्य का आयोजन न होता हो। अमीर खुसरो ने नुहसिपेहर में भारतीय संगीत की बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि उसकी समानता संसार के किसी भाग के संगीत से नहीं हो सकती है। यहाँ का संगीत अग्नि के समान थी जो कि हृदय तथा प्राण की अग्नि को भड़का देती थी। संसार के विभिन्न भागों से लोगों ने आकर यहाँ संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न किया किन्तु वर्षों के प्रयास पर भी उन्हें यहाँ के किसी ताल स्वर का ज्ञान न हो सका।[४२] जब कभी

सुल्तान इल्तुतमिश राजकार्य से थक जाता था तो वह संगीत गोष्ठी बुला लेता था जिसमें कि अमीर भी भाग लिया करते थे।[४३] यहिया ने तारीख-ए-मुबारकशाही में लिखा है कि जब बलबन रोग से स्वस्थ हुआ तो खुशी में नगाड़े बजाये गये और उत्सव हुए।[४४] नौरोज़ के त्योहार पर संगीत का आयोजन होता था और उसके बाद संगीतज्ञों व गायकों को पुरस्कृत किया जाता था। बरनी ने लिखा है कि मलिक अलाउद्दीन किशली खान ने ख्वाजा शम्समुईन तथा मलिक कुतुबुद्दीन ग़ोरी की कविताएँ और गज़लें बलबन के दरबार के गायकों को दे दी। उन गायकों ने उन गज़लों को कठस्थ कर लिया। नौरोज़ के दिनों में दरबार में वे गज़लें गायी जाती थीं और उन्हें पुरस्कार दिये जाते थे। मलिक अलाउद्दीन किशली खान स्वयं गायकों को दस हज़ार तन्के तक इनाम दिया करता था।[४५] इस काल में संगीत व कविता को सम्बद्ध कर दिए जाने से दोनों में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। बिना कविता के संगीत या गायन सम्भव न था और बिना गायन के कविता का पाठ करना सम्भव न था। कवि अपनी रचनाओं को गाकर सुनाने में रुचि लेने लगे, जिससे की श्रोता आत्म-विभोर हो जाने लगे। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में कवित्तों को गाकर सुनाने की एक नवीन परम्परा चल पड़ी। भरे दरबार में या सुल्तान व अमीरों की मदिरापान की महफिलों में या विशिष्ट त्योहार पर संगीत के साथ काव्य-पाठ होने लगा या कविताओं को लोग गाकर सुनाने लगे। सुन्दर हाव-भाव दिखाने वाली साक़ियों के मध्य मदिरा के प्याले छलकने लगे और उनके साथ वाद्य यंत्रों की झन्कार, नूपुरों की खन-खन व लय के स्वर के साथ गायन सम्पूर्ण वातावरण को मोहक बनाने लगी। संगीत, नृत्य एवं मदिरा की इस प्रकार की गोष्ठियों का विवरण यदा-कदा ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है।

बलबन का उत्तराधिकारी सुल्तान मुइज़ुद्दीन क़ैकुबाद संगीत व कविता का प्रेमी था। बरनी ने लिखा है कि उसके शासनकाल में प्रत्येक दीवार की छाया से कोई न कोई रमणी दृष्टिगोचर होने लगी और प्रत्येक कोठे से कोई न कोई सुन्दरी अपनी छवि प्रदर्शित करने लगी। प्रत्येक गली में सुमधुर स्वर वाले और गज़ल गायक प्रसन्न हो गए। हर मुहल्ले में गाने-बजाने की आवाज़ें आने लगीं।[४६] सुल्तान की महफिल में मधुर तानें सुनाने वाली सुन्दरियाँ बराबर उपस्थित रहती थीं। उनकी छवि और उनके स्वर को सुनकर लोग बेहोश हो जाते थे। चंग व रबाव की आवाज़ें, कमाँचे के स्वर, मिसकल और बाँसुरी की आवाज़ एवं तम्बूरों के बजने से चिड़ियाँ भी हवा से उतर आती थी।[४७] बरनी ने जलाली राज्यकाल में सुल्तान की महफिलों के आयोजन का विवरण दिया है। बरनी के अनुसार सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी को कला से बड़ा प्रेम था। वह कलाकारों को आश्रय देता था। वह कविता भी कर सकता था और दुबैती भी लिख सकता था। उसकी महफिलों की शोभा अमीर खुसरो, मलिक सादुद्दीन मन्तकी, सुन्दर-सुन्दर साकी, युवतियाँ और रमणियाँ, गायक आदि थे। उसके नम्र स्वभाव के कारण मदिरापान की महफिलों में आतंक समाप्त हो चुका था। उसने अपने मित्रों को अनुमति दे दी थी कि वे अपने घरों से दरबारी कपड़े

और मोज़े उतार कर **बारानी** पहनकर महफिलों में आया करें ताकि वे निश्चिन्त होकर बैठ सकें। उसकी महफिलों में उसके साथी बिना किसी भय के एक-दूसरे से बातचीत और हँसी-मजाक कर सकते थे। वह इन महफिलों में चौसर और शतरंज भी खेला करता था। अन्य महफिलों में मदिरापान होता था। इस समय लोग मीठी-मीठी बातें करते थे, चुटकुले सुनाते थे और कविताएँ पढ़ते थे। इन्हीं महफिलों में गज़लें भी पढ़ी जाती थीं। ताजुउद्दीन एराक़ी, अमीर खुसरो, मुईद जार्जमी, मुईद दीवाना, सद्र अली, अरसलान कुलाही, इख्यितार बाग़, ताज खतीब, अमीर खासा, हमीद राजा सुल्तान कविता पढ़ने व गज़लें सुनाने में अद्वितीय थे। प्रत्येक दिन अमीर खुसरो महफिलों में नई-नई गज़लें सुनाता था। इस महफिलों के साक़ी हैबत खान, निज़ाम और यल्दौज थे, जो कि अपने कृत्रिम भाव और चंचल स्वभाव से मदिरा देते थे। सुल्तान के गायकों में मुहम्मद सना चंगी ढोल बजाता था और फुतुहा और नुसरत खातून गाना गाती थी। दुख्तर खासा, नुसरत बीबी, मेहर अफ़रोज़ जैसी सुन्दर युवतियाँ नाज़-अन्दाज़ दिखाती थीं और नृत्य किया करती थीं।[४८] अमीर खुसरो ने **मिफताउल फुतूह** में लिखा हुआ है कि सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी झायन अभियान के बाद जब दिल्ली लौटा तो उसने शहर सजवाया, उसके बाद संगीत तथा मनोरंजन का आयोजन हुआ।[४९]

यद्यपि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी राजकीय मामलों में बहुत ही कठोर था किन्तु उसके दरबार में अनेक निपुण एवं कुशल संगीतज्ञ थे। उसके शासनकाल के प्रथम दस वर्षों में सुप्रसिद्ध गायक मौलाना मसूद मुकरी के पुत्र मौलाना लतीफ तथा मौलाना हमीदुद्दीन थे और अन्तिम दस वर्षों में मौलाना लतीफ के पुत्र अल्तफ तथा मुहम्मद थे। गज़ले गाने वालों में महमूद बिन सक्का ईसूनिशिया, मुहम्मद मुकरी और ईसा खुदादी मिज़मारी सुप्रसिद्ध थे। इस समय खत्तात्त, कातिब, मुहक्किक, नबीरू, शतरंजबाज़, कव्वाल, गायक, चंग, रबाब, कमान्चा, मिस्कल तथा नौबत बजाने वाले अनेक व्यक्ति उपस्थित रहते थे।[५०] निःसन्देह सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी महफिलों में इन कलाकारों के करतबों को देखकर अपना मनोरंजन करता होगा। अमीर खुसरो ने **देवलरानी व खिज्र खाँ** में खिज्र खाँ देवलरानी के साथ विवाह के अवसर पर गायकों को उपस्थित होने का उल्लेख किया है। उसके अनुसार गायकों की मधुर तान लोगों को उन्मुक्त कर दिया करते थे। चंग तथा दफ बजते थे। चंग का सुर ऊँचा तथा बर्बत का सुर नीचा होता था। कद्दू के जो तम्बूरे बनाये गये थे उन कद्दुओं ने लोगों को मस्त कर दिया था। ताँबे का राजा, जो कि ताल कहलाता था, वह सुन्दरियों की उँगलियों में रहता था। हिन्दी तुम्बक बजाता था। हिन्दुस्तानी सुन्दरियाँ गाने में मस्त रहती थीं। वे देवगिरि तथा अन्य रेशमी वस्त्र धारण किए हुए रहती थीं। वे हाथों में ताल के लिए प्याला लिए हुए रहती थीं। वे मदिरा से नहीं वरन् अपने संगीत से लोगों को मस्त करती थीं। संगीत के मधुर स्वर पर नर्तकियाँ नृत्य करती थीं। इस विवरण से ज्ञात होता है कि अलाई काल में भी विविध अवसरों पर संगीत ही लोगों

का मनोरंजन किया करता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के उत्तराधिकारी सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के शासनकाल में मदिरा व संगीत नृत्य का जोर था। अमीर खुसरो ने नुहसिपेहर में सुल्तान के पुत्र उत्पन्न होने पर एक जश्न का उल्लेख किया है जिसमें सुन्दर भारतीय और ईरानी नर्तकियों ने अपनी उत्तम कला का प्रदर्शन किया।

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और अन्य कट्टर पंथियों की भाँति वह संगीत को अधार्मिक समझता था। यहाँ तक कि सूफियों की समा के भी वह विरुद्ध था। लेकिन मुहम्मद तुग़लक के गद्दी पर बैठते ही स्थिति बदल गई। सुल्तान मुहम्मद तुगलक को संगीत से प्रेम था और वह उसे मनोरंजन का साधन समझता था। शिहाबुद्दीन उल उमरी के अनुसार उसके दरबार में १२०० संगीतज्ञ थे।[५२] इब्नबतूता के अनुसार ईद के त्योहार पर दरबार में संगीतज्ञ एवं नर्तक अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे।[५३] अफीफ ने लिखा है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के समय ईद के त्योहार पर दरबार में गायक व नर्तकियाँ आते थे। समस्त गायक केसरिया वस्त्र धारण किए हुए लाल पगड़ी पहने हुए होते थे। नर्तकियाँ जड़ाऊ बहुमूल्य वस्त्र धारण किए प्रत्येक ४०-४० हज़ार तन्कों के वस्त्र पहन कर आती थीं। जब कव्वाल वाद्य हाथ में ले लेते थे तो नर्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ कर देती थीं।[५४]

इस प्रकार से इस युग में संगीत व नृत्य की महफिलें सुल्तानों व अमीरों के लिए मनोरंजन का एक साधन थी। कभी-कभी अमीर अपनी यात्राओं के साथ भी गायकों-वादकों को साथ लेकर चला करते थे, जो कि उनका बराबर मनोरंजन करते रहते थे।[५५]

संगीत के अतिरिक्त मनोरंजन के अन्य साधनों में उर्स पर मुसलमान सन्तों के दरगाहों पर जाकर वहाँ कव्वालियाँ सुनना और मेले-ठेलों के मध्य आये हुए कलाकारों का प्रदर्शन देखता था। ऐसे अनेक अवसर होते थे जबकि मेले व बाज़ार लगते थे। उन अवसरों पर लोगों को आनन्द उठाने का अवसर मिलता था। संक्षेप में घर और बाहर दोनों स्थानों में समाज का प्रत्येक वर्ग अपने-अपने लिए किसी न किसी प्रकार का मनोरंजन करने के लिए सक्षम था।

९

खान-पान, वेश-भूषा तथा रहन-सहन

पूर्व मध्यकालीन समाज का स्तर उस काल के लोगों के खान-पान, वेश-भूषा तथा रहन-सहन, नैतिक आचरण, जीवन का उपभोग करने के लिए समुचित सुविधाओं की उपलब्धियों, यातायात के साधनों, उनके आचार-विचार में परिवर्तनों, उनके जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा, रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं, शिक्षा एवं साहित्य, सभ्यता के स्तर को देख कर ही आँका जा सकता है। प्रत्येक देश के निवासियों की सभ्यता एवं संस्कृति वहाँ की जलवायु, प्राकृतिक साधनों, भूमि की उर्वरता, भौगोलिक स्थिति व विभिन्न प्रदेशों के मध्य पारंस्परिक सम्बन्धों व वाह्य देशों के साथ सम्बन्धों पर निर्भर करती है। यह सभी वातें भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के रहने वाले वहुभाषी, अनेकों देवी-देवताओं के उपासकों, विभिन्न वेष-भूषा धारण करने वाले, वहुजातीय तथा विभिन्न संस्कारों, रीति-रिवाजों का पालन करने वाले, हिन्दू-मुस्लिम समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों के हजारों व लाखों लोगों पर लागू होती थी। यहाँ प्रत्येक प्रदेश में विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जिसके कारण भारतीय समाज व संस्कृति निरन्तर वहुरंगी, परिवर्तनशील तथा गतिशील रही। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की महान् विशेषता विविधता में एकता है।

जलवायु एवं उत्पादन की दृष्टि से इस देश का प्रत्येक प्रदेश एक-दूसरे से भिन्न है। इस देश के विभिन्न प्रदेशों में होने वाले कृषि उत्पादन की विविध वस्तुओं का विवरण पृथक-पृथक अध्याय में दिया गया है। आलोच्यकाल में उन सभी खाद्यान्नों का उत्पादन होता था जिनका उत्पादन आज भी उन प्रदेशों में होता है। आलू, मिर्च और तम्बाकू पैदा करने की विधियाँ विदेशों से आई थीं, किन्तु अन्य खाद्यान्न फल, फूल, सब्जियों में से केवल कुछ ही को छोड़ कर शेष देशी थी। खाने-पीने की अनेक वस्तुएँ ऐसी थीं जो कि यहाँ दूरस्थ या निकटवर्ती देशों से आती रहती थी। अतएव खान-पान के सम्बन्ध में यह देश अत्यन्त धनी था। खाने-पीने की कुछ वस्तुएँ इस देश के सभी प्रदेशों में समान थी, किन्तु विविध प्रकार के व्यंजनों के वनाने की विधियों में प्रादेशिक, क्षेत्रीय एवं स्थानीय असमानताएँ थीं। इस देश में प्रत्येक वर्ग के खान-पान में अन्तर था। किन्तु फिर भी सभी प्रदेशों में खाद्यान्नों में चावल, दालें, जौ, चना, ज्वार, वाजरा, गेहूँ, सब्जियों में विभिन्न प्रकार की मौसमी सब्जियाँ

व फल स्थानीय हाट या बाजारों में बराबर उपलब्ध रहते थे। यहाँ मांस, मछली, घी, दूध, दही, तेल आदि अत्यधिक मात्रा में सदैव उपलब्ध रहता था। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा विदेशी पर्यटकों के द्वारा दिए गए विवरणों में विभिन्न प्रदेशों में होने वाले कृषि उत्पादन का विवरण सांकेतिक रूप से मिलता है और उसी से उस प्रदेश के खाद्यान्न का अनुमान लगाया जा सकता है। नवीं शताब्दी के सुलेमान नामक अरब यात्री के अनुसार सभी भारतीय चावल खाते थे और गेहूँ का प्रयोग असामान्य था। किन्तु १३वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी के अन्त तक समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में यदा-कदा गेहूँ के आटे या मैदा की बनी हुई रोटियों या टिकियों का उल्लेख मिलता है। वास्तव में चावल या गेहूँ का प्रयोग क्षेत्रीय उत्पादन पर निर्भर करता था। जहाँ चावल की पैदावार अधिक होती थी वहाँ के निवासियों का मुख्य भोजन चावल होता था। जहाँ चावल कम पैदा होता था वहाँ लोग गेहूँ या मोटे अनाज पर ही निर्भर रहते थे। मोटे अनाज में ज्वार, बाजरा, चना, मटर का प्रयोग रोटी बनाने में ही किया जाता था। इब्नबतूता ने सिविस्तान में लोगों को ज्वार तथा मटर की रोटी खाते हुए देखा।[1] उसी यात्री के अनुसार दौलताबाद के समीप नन्दुरबार में चिकित्सक, ज्योतिषी, मराठे, ब्राह्मण तथा क्षत्री रहते थे। वे चावल, सब्जी व सरसों के तेल का प्रयोग करते थे। वे मांस नहीं खाते थे और मदिरापान करना पाप समझते थे। इस प्रकार से खानपान के सम्बन्ध में अनेक क्षेत्रीय असमानताएँ देखने को मिलती हैं। अन्य साधनों की तुलना में यद्यपि अधिक लोग गेहूँ का प्रयोग करते थे किन्तु वह महँगा था।[2] धार्मिक साहित्य में जौ का प्रयोग करने के सन्दर्भ मिलते हैं। इस काल में २१ प्रकार का चावल होता था।[3] महुँआ के अनुसार चावल की फसल बंगाल में वर्ष में दो बार होती थी। उसके अनुसार यहाँ गेहूँ, सोयाबीन, विभिन्न प्रकार की दालें, बाजरा, अदरख, सरसों, प्याज, बैगन तथा अनेक प्रकार की सब्जियाँ भी पैदा होती थीं।[4] गेहूँ की रोटी व पूरी लोग दाल, मांस तथा सब्जियों के साथ खाते थे। चपातियाँ, तन्दूर व चूल्हे में पकाई जाती थी।[5] अन्य व्यंजनों मे मट्ठा, खजूर, मांस तथा मांस का सूप (आश), पराठा, हलवा, हरीसा प्रचलित थे।[6] कहीं-कहीं लोग खिचड़ी व सत्तू खाते थे।[7]

भोजन दो प्रकार का होता था, शाकाहारी तथा मांसाहारी। भारतीय समाज में अधिकांश लोग शाकाहारी थे। हिन्दू, मुस्लिम सन्त, पुरोहित, पण्डित, ब्राह्मण, जैन व बौद्ध या वैष्णव मत के मानने वाले तथा अधिकांश हिन्दू व मुसलमान शाकाहारी थे। शाकाहारी भोजन में विभिन्न प्रकार की मौसमी सब्जियाँ, जैसे सीताफल, कद्दू, लौकी, अरवी, तुरई, गाजर, बैगनी, बैगन तथा सफेद बैगन इत्यादि का विशेष स्थान था। त्रिमुलभट्ट ने बैगनी, बैगन तथा सफेद बैगन का उल्लेख किया है। उसने द्रव्ययोगतरंगनी में चावल की किस्मों में दो किस्मों रक्तशाली, भट्टशाली, विही चावल की तीन किस्मों सष्टिका, महासाष्टिका तथा कृश्मा विही का उल्लेख करते हुए लिखा है कि चावल की यह किस्में बड़ी लोकप्रिय थीं। चावल को कई प्रकार से पका कर

खाने के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि चावल का सबसे लोकप्रिय व्यंजन दालों की सूखी गोली को मसालों तथा केसर के साथ पकाकर तैयार किया जाता था। चावल को गन्ने के रस या मट्ठे के साथ भी पकाया जाता था। इस काल में चावल को भून कर भी खाया जाता था। उसके अनुसार इस काल में लोग हरे चने तथा जौ को भी भून कर खाते थे। वे दालों का भी प्रयोग विविध भाँति किया करते थे। कभी-कभी वे दाल में इमली या मूली मिलाकर उसे स्वादिष्ट बना लिया करते थे। वे दाल के पानी से पेय भी तैयार करते थे। इसी प्रकार से वे गेहूँ व चना के आटे में मसाले डालकर उसकी रोटियाँ बना कर खाना भी पसन्द करते थे। कभी-कभी वे इन रोटियों की चपाती बनाकर उसमें चीनी भर कर इन रोटियों को घी में तल कर मीठी पूड़ी के रूप में भी खाते थे। वे बेसन की पूड़ी में पिसी हुई दाल व मसाले भर कर उसे खाते थे। दाल भरी हुई पूड़ी को वे कचंवली (कचौड़ी) कहते थे। इस काल में जौ तथा चने का सत्तू भी खाया जाता था। किन्तु उसका प्रयोग अधिकतर ग्रीष्म ऋतु में ही होता था। वे माश की दाल से बनी हुई वाटियाँ राजिका नामक घोल में डालकर या माश व मूंग की वाटियाँ घी में तल कर खाते थे। माश की दाल की वाटियाँ मसाले के साथ मिलाकर खाने का भी इस काल में प्रचलन था। उस काल में पान के पत्तों को बेसन में लपेट कर उन्हें तेल में पकौड़ी के रूप में तल कर भी खाने का प्रचलन था। पकौड़ियों को पत्रवटी कहते थे। कभी-कभी बेसन का चीला बनाकर उसके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें तेल में तलकर भी व्यंजन तैयार किया जाता था। इन टुकड़ों को मसाले के साथ पकाने के व्यंजन को खण्डिता कहते थे।[८]

एजाज़-ए-खुसरवी में अमीर खुसरो ने जुकरत (दही), पनीर, फलूदा (या फालिदा), लो जीना (एक प्रकार की मिठाई) जो कि बादाम डालकर बनाई जाती थी तथा जलेबी-ए-नबत (जलेबी) का उल्लेख किया है।[९] अल्कशन्दी ने ६५ प्रकार की मिठाइयों का उल्लेख किया है।[१०] मुख्य मिठाइयों में रेवड़ी, समोसा व हलुआ थे। समकालीन साहित्य में हलवा साबुनी और हलवा गाजर का भी उल्लेख मिलता है। त्रिमुलभट्ट ने १३ प्रकार की मिठाइयों का भी उल्लेख किया है। इन मिठाइयों में फेनिया, नवनीत फेनिया, माश फेनिया, विभिन्न प्रकार के लड्डू, लप्सी, भैमी, जलेबिया, मोठ विशेष रूप से उल्लिखित हैं।[११]

मिथिला में सिरसा (दूध से तैयार की हुई मिठाइयाँ), भुनगमा, खिरनी, मट्ठा के तैयार किए हुए व्यंजन का उल्लेख मिलता है।[१२] इस काल में लोग कई प्रकार का दलिया भी खाते थे। एक प्रकार के दलिए को सिरका मिलाकर बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त शाकाहारी भोजन में चावल की खिचड़ी, तहरी का भी उल्लेख मिलता है। सूफी सन्तों का भोजन बहुत सादा होता था। पेलू व धेला, भात (चावल), खिचड़ी, नान, ज़ुक़रत (दही) खाते थे।

इस काल में गाय, भैंस, बकरी का दूध लोग पिया करते थे। दूध से बने हुए अन्य पदार्थ जैसे कि मक्खन, दही, छाछ, खीर, खोये के बने हुए लड्डू, दही से बनाए हुए श्रीखरन भी खाया जाता था। पेय पदार्थों में शुद्ध जल के अतिरिक्त दही की लस्सी तथा शीतल पेय में अंगूर तथा अन्य फलों के शरबत का सेवन किया करते थे। इन शरबतों में वे मसाले व सुगन्धित पदार्थ मिलाकर उन्हें खुशबूदार व स्वादिष्ट बना दिया करते थे।

पृथ्वीराजरासो में चन्दवरदाई ने घृतपकवा (घी में पकाए जाने वाले व्यंजनों तथा दुग्ध पकवा), दूध में पकाए जाने वाले व्यंजनों, पकवानों, विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ, फल, छः प्रकार के व्यंजनों, अचारों, मट्ठा या फेरे हुए दही, खीर, रबड़ी इत्यादि का विवरण दिया है।[१३] हिन्दू शासकों व सामन्तों के भोजन में विभिन्न प्रकार का भात, पूड़ियाँ, रोटियाँ, घी, मक्खन, दूध के बने हुए व्यंजन, दही, पकवान, मिठाइयाँ, शक्कर, फल, साग-सब्जियाँ, खीर, रबड़ी, खिचड़ी, अनेक प्रकार के ५६ व्यंजन होते थे। मुल्ला दाउद ने **चन्दायन** में खिओरा नामक लड्डू, कसार, वड़ा, मुंगौरा, खण्डुई, मिकौरा, पकौड़ी, लप्सी, हलवा, खिरसा इत्यादि का उल्लेख किया है।[१४] कवि नारायणदेव द्वारा रचित मानस मंगल से ज्ञात होता है कि लखेन्द्र नामक धनी व्यापारी की माँ ने बंगाल में प्रचलित व्यंजनों में से बथुआ का साग, कलार, कच्छू का साग, लाल मिर्च, सोंठ इत्यादि मसालों को डालकर बनाये थे। उसने विभिन्न प्रकार की दालें जैसे कि मूंग, बूट, अरहर, केसरी की पकाई थी। उसने पाँच प्रकार के पेठे तथा विविध प्रकार से चाव भी पकाये थे।[१५] विजयगुप्त के **मानस मंगल** में भी भात, १६ प्रकार के शाकाहारी व्यंजनों, मसूर की दाल, सागों में बथुआ, गीभा, कुम्हरा, सब्जियों में कटहल, बैंगन, लौकी, दूध से पकाये हुए पिस्तक, पयास तथा पेठा का भी उल्लेख मिलता है।[१६] गुजराती कवि लावन्यसमय के विमल **प्रबन्ध** में खाजा, लड्डू, चावल, दाल, पापड़, वड़ी, पकवान, दही, मट्ठा, खीर, छाछ इत्यादि का विवरण मिलता है।[१७]

शाकाहारी भोजन में मिर्च, अदरख, नींबू, आम इत्यादि फलों के अचार खाने का भी प्रचलन था।[१८] समाज के सभी वर्ग अचार के शौकीन न थे। इब्नबतूता ने आम में नमक डालकर अचार बनाने के सम्बन्ध में लिखा है।[१९] फिरोज़शाही कवि मुतहर ने अपने दीवान में फिरोज़शाही मदरसे में विद्यार्थियों को परोसे जाने वाले व्यंजनों के सम्बन्ध में खट्टे फलों के आचार का उल्लेख किया है।[२०]

इस काल में फलों में अनार, अंगूर, सेब, तरबूज़, सन्तरे, अंजीर, आम, खिरनी, जामुन, खजूर खाने का भी प्रचलन था। अमीर खुसरो ने अंगूर, मवाज़ (सूखे किशमिश), खजूर, बादाम आदि मेवों का उल्लेख किया है।[२१] फलों का प्रयोग केवल अभिजात वर्ग या मध्यम वर्ग तक सीमित था। इब्नबतूता ने आम का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसका वृक्ष नारंगी के वृक्ष के समान होता है। किन्तु वह

इससे भी बड़ा होता है और उसमें पत्ते भी बड़े होते हैं। उसका फल आलबुखारा से भी बड़ा होता है। पकाने से पूर्व वह हरा रहता है। पके हुए आम का रंग पीला होता है और उसे सेब के समान चाकू से काट कर खाया जाता है। कुछ लोग उसे चूस कर खाते हैं। यह फल मीठा होता है किन्तु उसमें थोड़ी सी खटास भी होती है। उसकी गुठली बड़ी होती है।[२२] इब्नबतूता ने कटहल, जामुन, महुआ, कसेरू, अनार आदि फलों का भी उल्लेख किया है और लिखा है कि हिन्दुस्तान में मीठी नारंगी बड़ी मीठी होती है। अलकश्कन्दी ने **सुभउल-अशा** में भारत में पैदा होने वाले फलों में अंजीर, अंगूर, अनार, केले इत्यादि फलों का उल्लेख किया है। इसके अनुसार यहाँ अत्यधिक नारियल पैदा होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ खरबूजा, लौकी, तरबूज़ इत्यादि भी पैदा होता है। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बाबर ने भारतवर्ष में पैदा होने वाले फलों में आम, केला, इमली, महुआ, खिरनी, जामुन, अमरख, कटहल, बड़हल, करौंदा, पालीआला, गूलर, आमला, खुरमा, नारियल, ताड़, नारंगी, नींबू, तुरंज, सन्तरा, गलगल, जानबीरी, सदाफल, अमृतफल, अमलवेद आदि फलों का उल्लेख किया है।[२३] निःसन्देह इन फलों का उपयोग इस काल में लोग करते थे।

समकालीन साहित्य में मांसाहारी भोजन के सम्बन्ध में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। समुद्रतटीय प्रदेशों में मछली बहुतायत में उपलब्ध थी और इस कारण वहाँ के लोग मछली खाते थे। शहरों व गाँवों में जहाँ नदियाँ, पोखर, ताल से मछली प्राप्त होती थी वहाँ समाज में ऐसा वर्ग था जो कि मछली खाता था। विद्यापति ने जौनपुर में मछली बाजार का उल्लेख किया है।[२४] जायसी ने पद्मावत में पाहिनी, रोहे, सिधारी, सौरी, झींगाँ, सिंगी तथा मादुर मछलियों का उल्लेख किया है, जिससे मालूम होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार की मछलियाँ खाने के लिए उपलब्ध थीं। मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में इब्नबतूता ने सिविस्तान में लोगों को मछली तथा सन्कूर खाते हुए देखा। सन्कूर गिरगिट के समान होता था। वहाँ के लोग उसे बालू से खोदकर निकालते थे। वे उसका पेट चीरकर उसकी आँतें निकाल कर उसमें केसर व हल्दी भर कर उसे भून कर खाते थे।[२५] इसी विदेशी यात्री के अनुसार मुहम्मद तुग़लक द्वारा निजी एवं सार्वजनिक प्रीतिभोज में प्याज व अदरख डालकर पकाया गया मांस, समोसा जिसमें पकाया हुआ कीमा, बादाम, अखरोट तथा मसाला मिला हुआ होता था तथा भुना हुआ मुर्गा आमिष व्यंजन के रूप में दिया जाता था।[२६] मांसाहारी भोजन गाय व बकरे का गोश्त, मुर्गे का मांस खाने का अत्यधिक प्रचलन था। जायसी के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के भोजन के लिए बकरे, भेड़, काली बतख, हिरन, साँभर, कुरंग, हरे कबूतर इत्यादि पशु-पक्षियों को एकत्र किया गया।[२७] नारायणदेव द्वारा रचित **मानस मंगल** से ज्ञात होता है कि लखेन्द्र नामक धनी व्यापारी की माँ रामा ने बंगाल में रोहू मछली, हलसा मछली, बकरे का मांस तथा

बतख का मांस व्यंजन में तैयार किया।[२८] विजयगुप्त के **मानस-मंगल** में रोहू, कटाल, माहुर, मागुर, खरसूच, चिगारी नामक मछलियों, चीवल नामक पक्षी, बकरे के मांस का उल्लेख मिलता है।[२९] इब्नबतूता के अनुसार दक्षिण में चावल के साथ तली हुई मछलियाँ खाने की परम्परा थी।[३०]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में जब प्रसिद्ध कवि मुतहर दिल्ली गया तो उसने वहाँ फिरोज़शाही मदरसे में भोजन किया। उस भोजन में विद्यार्थियों व शिक्षकों के लिए तीतर, कबूतर के चूजे, चकोर, कुलंग, मछली, मुर्ग तथा मोटे ताजे बकरी के बच्चे, बादाम मिला हुआ सुगन्धित अनारदाना जिस पर केसर, चन्दन, कस्तूरी छिड़की हुई थी, सम्मिलित था।[१]

त्रिमुलभट्ट ने अपनी कृति **बृहद्योगतरंगनी** में मांसाहारी भोजन के सम्बन्ध में जंगली जानवरों तथा पक्षियों का मांस, पानी के समीप या पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इस काल में भेड़, बकरी, भैंसे, हिरन, ऊँट, पक्षियों में कबूतर, सारस, हरियल इत्यादि तथा मछलियों में गव्द तथा राजभगा का मांस खाया जाता था। मांस को कई प्रकार से पकाया जाता था। या तो उसे उबाल कर लोग खाते थे या उसे भूनकर या तल कर खाते थे। उस समय शुष्क, रसेदार मुसल्लम, भूने हुए तन्दूरी या मसाला डाल कर पकाये गये मांस खाने का प्रचलन था। त्रिमुलभट्ट के अनुसार एक प्याला गोश्त के लिए एक प्याला तेल या घी तथा १/२ प्याला नमक आवश्यक था। मछली बनाने के लिए मछली के वजन से २५% अधिक मसालों की आवश्यकता होती थी। उस समय लोग मसाले मिलाकर मांस को सुखाकर भी रख लिया करते थे। मुसलमानों के सम्पर्क में आने के कारण हिन्दुओं में मांसाहारी भोजन करने का प्रचलन बढ़ा और उनके परिवारों में भी विविध प्रकार के आमिष व्यंजन तैयार होने लगा।

विभिन्न प्रकार के शाकाहारी व मांसाहारी व्यंजनों के पकाने में नमक, तेल, चीनी, प्याज, लहसुन, अदरख, विभिन्न मसालों, सिरके का प्रयोग किया जाता था। इनका प्रयोग अमुक व्यक्तियों की रुचि एवं स्वाद पर तो निर्भर करता ही था वरन् व्यंजन बनाने की विधि पर भी निर्भर करता था। पाकशालाओं का प्रबन्ध या तो गृहणियाँ या रसोइये या बावर्ची किया करते थे। स्त्रियों के निर्देशन में भण्डारी या रसोइये व्यंजन तैयार किया करते थे। पाकशाला में अनुभवी रसोइयों की ही नियुक्ति की जाती थी। राजा सोमेश्वर ने मन्नोल्लास में रसोइयों की योग्यता की चर्चा करते हुए लिखा है कि उनका व्यवसाय वंशानुगत होना चाहिए, उनके बाल व नाखून बड़े नहीं होना चाहिए, किन्तु उनके दाँत बड़े होना चाहिए। उन्हें चावल, रसेदार भोजन, मांस, साग-सब्जी, पकवान, मिठाई पकाने में दक्ष होना चाहिए। उन्हें विभिन्न प्रकार के फलों, पेय पदार्थों, मसालों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए तथा विभिन्न प्रकार की खीर बनाने या दूध से व्यंजन तैयार करने का ज्ञान होना चाहिए।

पान

इस काल में पान खाने का रिवाज़ था। यह रिवाज़ समाज के सभी वर्गों व जातियों में प्रचलित था। अमीर खुसरो ने **एज़ाज-ए-खुसरवी** में पान की विशेषताओं की चर्चा कई पृष्ठों में की है और उसने ४८ किस्म के पान बताये हैं। इब्नबतूता ने भी पान के गुणों की प्रशंसा की है। अतिथि को पान देना या भोजन उपरान्त अतिथियों को पान देना एक सामाजिक औपचारिकता समझी जाती थी। बलबन का **रवात-ए-अर्ज** ईमाद-उल-मुल्क पान खाने का शौकीन ही नहीं था वरन् जो भी उसके कार्यालय में उससे भेंट करने के लिए आता था उसे वह पान देकर उसका आदर-सत्कार किया करता था। उसके कार्यालय में ५०-६० दास पान लगाने के लिए निरन्तर उपस्थित रहते थे और वे बराबर पान लगाकर लोगों को देते रहते थे। धार्मिक तथा अन्य उत्सवों पर भी पान बाँटने का प्रचलन था।[३२] सूफी साहित्य मे भी यदा-कदा पान का प्रयोग करने से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते हैं। उस काल में मशाहिख भी पान खाते थे। बाबा फरीद गजशंकर, उसका मुख्य शिष्य शेख निज़ामुद्दीन औलिया और हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी तथा अनेक अन्य सन्त पान खाने के बड़े शौकीन थे। अमीर खुर्द ने अपने चाचा की विशेष रुचियों का विवरण देते हुए लिखा है कि वह बहुत पान खाता था, उस समय भी जबकि उसका भाव १० तन्के का एक पान हो गया था।[३३] अमीर खुसरो पान को फल समझता था और उसके विचार में पान से बढ़कर कोई भी अन्य फल न था। पान के पत्ते में चूना लगाकर व सुपाड़ी डालकर खाने के बारे में इब्नबतूता तथा अमीर खुसरो दोनों ने लिखा है।[३४]

पेय पदार्थ

पानी मनुष्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन। शुद्ध जल का प्रयोग करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक था। दिल्ली के सुल्तानों ने राजधानी दिल्ली में शुद्ध पेय जल की व्यवस्था थी। इल्तुतमिश ने पीने के पानी के लिए हौज़ शम्सी का निर्माण किया।[३५] इब्नबतूता ने इसी हौज का उल्लेख किया है और लिखा है कि दिल्ली के निवासी पीने के लिए इसी हौज़ से पानी लेते थे।[३६] अलाउद्दीन खिल्जी ने इससे बड़ा हौज हौज़-ए-खास़ बनवाया।[३७] इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक गंगा-जल पीता था, इसलिए दौलताबाद तक वह जल उसके लिए भेजा जाता था।[३८] ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी के बर्तनों में पानी ठंडा किया जाता था। इस काल में बर्फ दुर्लभ वस्तु थी। यहाँ तक कि सुल्तानों को भी बर्फ नहीं मिलती थी। शर्बत का प्रयोग सर्वत्र था। त्योहारों तथा अन्य अवसरों पर तथा विजयोत्सव पर सुल्तान की ओर से सभी व्यक्तियों को शर्बत व मिठाई दी जाती थी। इब्नबतूना ने अनेक पेय पदार्थों में फुक्का का उल्लेख किया।[३९] फिरोज़शाही कवि मुतहर ने अपने **दीवान** में अतर के शर्बत, मिश्री व गुलाब जल, कस्तूरी तथा शहद मिले हुए शर्बत का उल्लेख किया है।[४०]

मदिरा

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व भी यहाँ लोगों में मदिरापान का चलन था। एक केवल राजपूत अभिजात वर्ग वरन् भारतीय समाज के अन्य वर्ग भी मदिरापान किया करते थे। मित्रों की गोष्ठियों में बैठकर मदिरापान करना एक आम रिवाज़ था। यद्यपि मदिरापान करना मुसलमानों के लिए वर्जित था किन्तु फिर भी स्वतन्त्र रूप से पीते थे। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद राजधानी में अमीरों व सुल्तानों में यह दृश्य आमतौर पर दिखाई पड़ने लगा। कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश मदिरापान का आनन्द लिया करते थे। जब बलबन खान के पद पर था तो वह भी अपने मित्रों की गोष्ठियों में मदिरापान किया करता था।[४१] सुल्तान कैकुबाद, कुतुबुद्दीन, मुबारकशाह खिल्जी, खुसरो खाँ तथा फिरोजशाह तुग़लक भी मदिरापान किया करते थे। इसमें से प्रथम दो पियक्कड़ थे। फिरोजशाह तुगलक छिपकर पिया करता था तथा अन्य नियन्त्रण रखकर मदिरापान किया करते थे। इस काल के मुसलमान अमीर अपने मलिक या अनुकरण करने में पीछे नहीं रहते थे। वे भी मदिरा गोष्ठियों का आयोजन अपने घरों में किया करते थे।[४१] मुसलमानों में मदिरापान करना एक आम बात थी। हिन्दू समाज में कुछ ही वर्गों में मदिरापान का प्रचलन था। ब्राह्मणों तथा वैश्यों और वैष्णवों में मदिरापान निषेध था। राजपूतों में इसका प्रचलन रहा। निम्न वर्ग के लोग भी मदिरापान करते थे। लेकिन हिन्दू समाज में मदिरापान न करने पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध भी न था। दोनों ही समाजों में मादक वस्तुओं, भाँग तथा अफीम खाने वाले तथा ताड़ी पीने वाले लोग थे। त्रिमुलभट्ट ने पेय पदार्थों मे दही की लस्सी, फ़लों के शर्बत, अंगूर, जौ, चावल या गन्नों के रस से बनी हुई शराब का उल्लेख किया है।[४२]

हिन्दुओं के बारे में अलबरूनी ने लिखा है कि वे भोजन करने से पूर्व मदिरापान करते थे और उसके पश्चात् भोजन करते थे। दिल्ली के सुल्तानों को मदिरापान कराने के लिए शराबदार तथा साक़ी होते थे। शराब पिलाने के लिए सुन्दर दासियाँ नियुक्त की जाती थी।

सुल्तान तथा अमीरों का भोजन

सर्वसाधारण की तुलना में सुल्तान, अमीर तथा सम्भ्रान्त परिवारों के लोग विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठ व्यंजन खाते थे। सुल्तानों के निजी भोजनालय होते थे, जहाँ कि चश्नगीर की देखरेख में सैकड़ों प्रकार के व्यंजन तैयार किये जाते थे। नियमानुसार सुल्तान बहुत ही सरल प्रकार से भोजन किया करते थे। बहुधा वे अपने अमीरों व दरबारियों के साथ एक ही दस्तरखान पर भोजन किया करते थे। शाही भोजन में बिरंज (चावल), सुर्ख बिरयानी, (पुलाव), समोसा, मुर्ग-कबाब (भुना हुआ मुर्ग), बच-ए-मुर्ग (मुर्गा), हलवा तथा मछली हुआ करते थे। प्रीतिभोज के सम्बन्ध में इब्नबतूता ने लिखा है कि सुल्तान के महल में दो प्रकार का भोजन होता था—सुल्तानं

का विशेष भोजन तथा सर्वसाधरण का भोजन।[२४] विशेष भोजन सुल्तान के विशेष कमरे में परोसा जाता था। जो लोग उस समय उपस्थित होते थे वे सभी लोग उस भोजन में सम्मिलित होते थे। उस समय खास-खास अमीर, सुल्तान का चचेरा भाई, **अमीर हाजिब**, एमाद्दउल मुल्क सरतेज तथा **अमीर-ए-मजलिस** उसके साथ भोजन किया करते थे। यदि सुल्तान कभी किसी श्रेष्ठ परदेसी को सम्मानित करना चाहता था तो उसे भी वह इस अवसर पर बुला लिया करता था। कभी-कभी उपस्थित सज्जनों को सम्मानित करने के लिए वह स्वयं अपने हाथ से रकाबी में भोजन रख कर उसे उन्हें देता था। सम्मानित किये जाने वाला व्यक्ति उस रकाबी को अपने वायें हाथ में लेकर सुल्तान का अभिनन्दन दाहिने हाथ से भूमि छूकर किया करता था। कभी-कभी सुल्तान अनुपस्थित अमीर का सम्मान करने के विचार से उसके लिए भोजन भिजवा दिया करता था। तत्पश्चात् वह उपस्थित लोगों के साथ भोजन किया करता था। इब्नवतूता के अनुसार कभी-कभी भोजन के समय उपस्थित व्यक्तियों की संख्या २० तक होती थी। भोजन पाकशाला से लाया जाता था। भोजन की रकावियों के आगे-आगे **नकीब** होते थे, जो कि विसमिल्लाह, विस-मिल्लाह का नारा लगाते हुए सुल्तान के पास भोजन परोसने वालों के साथ भोजन लेकर आते थे। सबसे आगे मुख्य **नकीब** हाथ में सोने की गदा लिए हुए और उसके पश्चात् **नायब नकीब** चाँदी की गदा लिए सुल्तान के महल की ओर बढ़ते थे। जब वे महल के चौथे द्वार में प्रवेश करते थे तो उपस्थित सज्जन उनकी आवाज़ सुनकर खड़े हो जाते थे। केवल सुल्तान अपने स्थान पर बैठा रहता था। तत्पश्चात् भोजन दस्तरखान पर सजा दिया जाता था और सब **नकीब** पंक्ति में खड़े हो जाते थे। उनका मुखिया आगे बढ़ कर सुल्तान की प्रशंसा करता था, उसका अभिवादन करता था और उसके बाद सभी **नकीब** उसका अभिवादन करते थे। उसके पश्चात् सभी उपस्थित सज्जन सुल्तान का अभिवादन करते थे। तत्पश्चात् सभी सज्जन अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते थे। विभिन्न व्यंजनों की सूची सुल्तान के समक्ष पेश की जाती थी। उसके बाद सुल्तान भोजन परोसने का आदेश देता था। भोजन में चपातियाँ, भुना माँस, मीठे समोसे, चावल, मुर्गे होते थे। शरवत व जल पिलाने वाले सोने व चाँदी के बर्तनों में पेय पदार्थ देते थे। भोजन के पूर्व लोग शर्वत पीते थे। जब लोग शर्वत पी चुकते थे तो **हाजिब** विसमिल्लाह कहता था। उसके बाद लोग भोजन करना प्रारम्भ करते थे। सभी लोगों को भोजन पृथक-पृथक परोसा जाता था। भोजन समाप्त करने पर कलई के प्यालों में लोग फुक्का पीते थे। तत्पश्चात् **हाजिब** पुनः विसमिल्लाह कहता था। फिर पान तथा मसाले थाल में लाये जाते थे। प्रत्येक व्यक्ति को कुटे हुए मसाले का एक चम्मच तथा पान के १५ वीड़े लाल रेशम के धागे में बाँध कर दिये जाते थे। इसके बाद **हाजिब** पुनः विसमिल्लाह कहता था। सबके खड़े होने पर मुख्य **नकीब** उनका अभिवादन करता था। अभिवादन करने के बाद सब लोग वहाँ से चले जाते थे।[२५] शिहाबुद्दीन अलउमरी ने लिखा है कि शेख मुबारक ने उसे बताया कि खान, मलिक, अमीर व

स्पालह् सेना के गणमान्य व्यक्तियों में २०००० व्यक्ति शाही दस्तरखान पर प्रतिदिन भोजन करते थे। दो सौ फक़ीह् सुल्तान के साथ दस्तरखान पर बैठकर भोजन करते थे और उस समय वे उससे विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे। शेख आवुबक्र विन खल्लाल अलविज्जी ने जब शाही वावर्ची से वावर्चीखाने में जिवह् किये जाने वाले पशुओं की संख्या पूछी तो उसने वताया कि प्रतिदिन २५० गायें, २०० वकरें, मोटे-ताज़े घोड़ों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के पक्षी जिवह् किये जाते थे।[४६]

तिरमीज़ के काज़ी किवामद्दीन खुदावन्द ज़ादा के सम्मान में दिये गये एक शाही भोज का उल्लेख करते हुए इब्नवतूता ने लिखा है कि सुल्तान ने खाना पकाने के लिए मुल्तान से २० व्यक्तियों को भेजा था। भोजन में पतली-पतली चपातियाँ, भेड़ का भुना हुआ मांस, घी में तली हुई पूड़ियाँ, पूड़ियों में भरा हुआ हलवा, साबुनी, मीठी रोटी, समोसे, पुलाव, भुने हुए मुर्ग, कहरिया नामक हलवा, मिश्री व गुलाव का शरवत, फुक्का, पान-सुपाड़ी इत्यादि वस्तुएँ थीं।[४७] अमीरों का भोजन उतना ही श्रेष्ठ होता था जितना कि सुल्तान का होता था। वे अपनी रुचि के अनुसार स्वयं भोजन करते थे वरन् अनेकों व्यंजनों का प्रवन्ध अन्य व्यक्तियों के लिए भी किया करते थे। वलवन का **रवात-ए-अर्ज़** एमाद-उल-मुल्क प्रतिदिन दोपहर में अपने कार्यालय के कर्मचारियों को वड़े-वड़े थालों में विविध प्रकार के व्यंजन भोज में देता था। उन व्यंजनों में उत्तम मैदा से वनी हुई नान-ए-मैदा, वकरी का मांस (गोश-ए-गोस्पन्द) मुर्गा विरयानी, फुक्का, शरवत, ताम्वूल या पान होते थे।[४८] अमीर खुसरो के अनुसार अमीरों के भोजन में शरवत ए-लवगीर, नान-ए-तुजुक (हल्की रोटी), नान-ए-तनूरी (तन्दूर से सिंकी हुई रोटी), समोसा, मांस, चिड़ियों का मांस, हलवा साबुनी व शक्कर इत्यादि वस्तुएँ होती थीं। वे पान खाने व मदिरापान करने के शौकीन थे।

शिहावुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि जो अमीर मदिरापान करते थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक उनसे घृणा करता था। वह लिखता है कि अमीर अधिकतर पान खाना पसन्द करते थे। जव वे किसी के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते थे तो उसे पान देते थे।[४९]

वेष-भूषा

इस देश में भौगोलिक एवं प्रादेशिक, क्षेत्रीय तथा स्थानीय असमानताएँ होने के कारण लोगों की वेपभूषा समान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रत्येक प्रदेश में भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न वेषभूषा हुआ करती थी। उनका पहनावा वहाँ की परम्पराओं एवं जलवायु के अनुकूल होता था। चूँकि उस काल में अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती थी। अतः ग्रामवासियों की वेपभूपा वहाँ की जलवायु के अनुकूल होती थी। हिमालय की पहाड़ी प्रदेशों में ठण्ड अधिक पड़ने के कारण कृपक या तो ऊनी चादर से पूर्ण शरीर को ढके रहते थे या सिर पर पगड़ी वांधे रहते थे या वे टोपी पहने रहते थे। उनका शरीर एक लम्वे लवादे से ढका हुआ होता था। वे

शरीर के निचले भाग को ढँकने के लिए पायजामा भी पहनते थे। जिन गरीब लोगों को ऊनी वस्त्र उपलब्ध नहीं थे वे अपने घुटनों को पेट तक सिकोड़ कर जाड़े की रात व्यतीत कर लेते थे। किन्तु मैदानी प्रदेशों में जहाँ कि वर्ष में केवल २-३ माह तक ही जाड़ा पड़ता था या उन प्रदेशों में जहाँ जाड़ा पड़ता ही नहीं था, जैसे कि समुद्रतटीय प्रदेश, वहाँ स्त्री-पुरुप केवल एक ही धोती से अपने शरीर के ऊपरी व निचले भाग को ढँक लिया करते थे। यह वेप-भूपा केवल समाज के साधारण व निम्न वर्ग के लोगों की ही थी। वावर ने साधारण लोगों की वेप-भूषा के सम्वन्ध में लिखा है कि वे लोग एक ऐसा वस्त्र पहनते हैं जो कि उनकी नाभि के नीचे घुटनों तक लटकता था। उसे लंगोटी कहते थे। इस लंगोटे का दूसरा सिरा दोनों जाँघों के बीच से होकर पीछे जाकर कमर के पास खोंस दिया जाता था। स्त्रियाँ कमर के चारों ओर एक कपड़ा (लुंग) लपेटती थीं जो कि उनके सिर को भी ढँक लेता था। वावर के द्वारा लंगोटे व साड़ी का विवरण सही है।[५०] श्रमिक लंगोटी भी बाँधते थे। उनकी स्त्रियों के पास अधिक वस्त्र तन ढकने के लिए नहीं होते थे अतएव उनके लिए धोती ही पर्याप्त थी।

शासक वर्ग के लिए अनेक प्रकार के वस्त्र उपलब्ध थे। हसन निज़ामी ने दीन-ए-हफ्त रंग (सतरंगी ज़री के वस्त्र), विसात-ए ज़ुमर्दी (लाल रंग के वस्त्र), जामा-ए-उन्नावी (उन्नावी रंग के वस्त्र), लिवास-ए-पिरिनियात (चीनी रेशम का छपा हुआ वस्त्र), जाम-ए-जरफ़त (ज़री के काम के वस्त्र), जामा-ए-सन्जाव (घर का लिवास), लिवास-ए-वहमान (अत्यन्त उत्तम किस्म का कढ़ा हुआ या उस पर फूल वने हुए लिवास), सफतान-ए-कवा (कुर्त्ता), कदाए-ए-फिस्तूकी (कुर्त्ता), तेलासन इत्यादि वस्त्रों का उल्लेख किया है।[५१] वरनी ने भी अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है, जैसे कि तवरेज़ी, शुस्तरी, चीनी, देहली, खज़ मीरन, देवगिरि।[५२] अमीर खुसरो ने भी कई अन्य प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है, जैसे कि, कताने, रूमी, कताने-ए-विहारी, जामा-ए-देवगिरि, यक्ताएँ-अवध, मवाज़-ए-मारवारी, रूपक-ए-विहार, जामा-ए-दराजविलायती, चम्वरतली, नरमाए लतीफ, शक्काएँ-नारंगी, अतलस, वहरमन आदि।[५३]

इस काल में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही अपनी वेशभूषा के लिए वहुत ही सजग थे। वे अपनी आय, सामाजिक स्तर, जलवायु के अनुसार ही परिधान धारण करते थे। उनकी वेषभूषा पर वर्ग के अनुसार विचार करना ही आवश्यक होगा। चूँकि उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की वेपभूषा में वडी असमानताएँ देखने को मिलती हैं सुल्तान आकर्षक तथा सुन्दर वस्त्र पहनते थे। व्यक्तिगत जीवन में वे अमीरों की भाँति सुविधाजनक परिधान ही धारण करते थे। इन परिधानों की किस्म और वनावट समय-समय पर वदलती रहती थी। शाही परिधान को खिलअत-ए-पादशाही कहते थे।[५४] सुल्तान व अमीरों के परिधानों में मुख्यतः कुलाह (टोपी) तथा पिरहन (कुर्त्ता)

या ढीलाढाला वस्त्र जरदोज़ी का कुर्त्ता, जो कि घुटनों के नीचे तक लटकता था तथा पायजामा होते थे। सुल्तान राजकीय अवसरों पर हीरे व मानिक से जड़ी हुई ज़री की जड़ाऊ, कढ़ाईदार चौकोर टोपी पहनते थे। वे मौसम से अनुसार मलमल या ऊनी कपड़े का बना हुआ चुस्त कुर्त्ता या कावह् पहनते थे। कभी-कभी दे बंगा या तातारी लवादा, कवा तथा लम्बा लवादा भी पहनते थे, जो कि शरीर के मध्य में पेटी द्वारा कसा रहता था।[५५] जाड़े में वे दफलाँ या ढीला-ढाला लवादा जिसमें रूई भरी होती थी या अन्य प्रकार की वस्तुएँ भरी होती थीं पहनते थे।[५६] मलमल या अन्य कपड़े का बना हुआ जांघिया पहनने का प्रचलन भी उनमें था। सुल्तान व अमीरों की रुचि एक पृथक निजी परिधान अथवा जामाए-रवाब पहनने की थी। वे रात्रि में सोने से पहले जामाए-रवाब पहना करते थे। वे पैर में मोज़े तथा कफ़श्दोज़ द्वारा बनाए हुए उत्तम प्रकार के जूते अथवा कफश भी पहनते थे। साधारणतः सुल्तान, खान, मलिक तथा अन्य सैनिक अधिकारी तातारी लवादे, ख्वारिज़्म की बनी हुई इस्लामी कवा जो कि शरीर में कमर के पास कस दी जाती थी, छोटी पगड़ी जो कि पाँच या छः हाथ से लम्बी नहीं होती थी, पहनते थे। उनमें से कुछ बाँहदार कवा जो कि ज़री से कढी होती थी या जिनकी आस्तीन पर ज़री की कढ़ाई रहती थी, पहनते थे। वे कमर में चाँदी व सोने की पेटी बाँधते थे। इस काल में उच्च वर्ग में चौकोर पगड़ी जिसमे हीरे, लाल तथा बहुमूल्य रत्न जड़े होते थे, पहनने का प्रचलन था। उनमें सूती कपड़े पहनने का रिवाज़ न था।

मुसलमान अमीर सुल्तान से वेश-भूषा के विषय में पीछे नहीं थे। वे अपने परिधानों पर अत्यधिक धन व्यय करते थे। यद्यपि इस्लाम में रेशम का वस्त्र धारण करना वर्जित था, किन्तु फिर भी वे रेशम के वस्त्र धारण करते थे। वे चित्र बने हुए, रेशम व ज़री के बने हुए लवादे जिसे कि जामा-ए-मुसव्विर कहते थे, पहनने के शौकीन थे। अमीर खुसरो ने रेशम के कढ़े हुए सुन्दर एवं महीन लवादों जिन्हें कि अमीर पहनते थे, का उल्लेख किया है। कभी-कभी वे ग्रीष्म ऋतु में ठण्डक व खुशबू के लिए खस की बनी हुई टोपी भी धारण करते थे। दिल्ली के फिरोज़शाही मदरसे के सुप्रसिद्ध विद्वानों के सम्बन्ध में मुतहर ने लिखा है कि वे सीरिया का बना हुआ जुब्बा (कमीज़) तथा मिस्र का बना हुआ दस्तार पहनते थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के काल में हिन्दुस्तानियों की पोशाक की विशेषता यह थी कि वे श्वेत कपड़े तथा जूख नामक कपड़े के बने हुए वस्त्र पहनते थे। आलिम व फखीर ऊनी वस्त्र धारण किया करते थे। सुल्तान, खान, मलिक तथा सैनिक तथा अन्य लोग तातारी, कवाए, तकलाबात, ख्वारिज़्मी कवाएँ, जो शरीर के मध्य बाँधी जाती थी, पहनते थे। उनकी पगड़ी ५ या ६ हाथ से अधिक बड़ी नहीं होती थी तथा वह मलमल की बनी होती थी। लोगों की तातारी कबा पर सोने की कशीदाकारी होती थी। इनसे कुछ किमखाब जो बाहुओं पर कढ़ी होती थीं, पहनते थे। अन्य लोग कन्धों के बीच के भाग के मुगलों की भाँति कढ़वाते थे। इनके सिर का वस्त्र आकार में वर्गाकार होता था जो जवाहरात से सुसज्जित होता

था और अधिकांशतः उसमें मणि तथा हीरे जड़े होते थे। वे लोग सोने व चाँदी की पेटियाँ अपनी कमर में बाँधते थे और जूते तथा चप्पलें पहनते थे। वज़ीरों तथा क़ातिबों (सचिवों) की पोशाक सैनिकों की भाँति होती थी, परन्तु यह लोग पेटियाँ नहीं बाँधते थे। अन्य लोग सूफियों की भाँति अपने साफे के सिरे को अपने सामने लटका रहने देते थे। काज़ी व मलिक लोग फ़रजिया पहनते थे।'[७]

फिरोज़शाह तुग़लक के काल में प्रतिष्ठित व्यक्ति कुलाहे युज़ुक पहनते थे। उस समय समस्त खान, मलिक, अमीर, प्रतिष्ठित लोग नरमीना (एक प्रकार का कपड़ा) के वस्त्र धारण करते थे। बुज़ुर्ग लोग कबा पहनना अच्छा न समझते थे। उस समय मोज़ा तथा मुएवन्द पहनने का रिवाज़ था।[५८] अफीफ ने मलिक दादवक के सन्दर्भ में पीराहन तथा यकत्ता नामक परिधानों का उल्लेख किया है।[५९]

इस युग में उल्मा, शेख, मशाहिख तथा सन्तों की वेश-भूषा समाज के अन्य लोगों से भिन्न थी। उल्मा दस्तार, कुलाह और शुआव अपने सिर पर पहनते थे और जामा, अवा, कबा और जुव्वा अपने शरीर को ढँकने के लिए पहनते थे। मशाहिख, सूफी सन्त व दरवेश भी यही वस्त्र पहनते थे। सूफी सन्त खुलकान व खिरका, अनेक पैवन्द लगे हुए फटे-पुराने कपड़े पहना करते थे। इसके अतिरिक्त वे लुंगी, मिर्ज़ाई (बाँहदार जैकेट) और तकिया (पगड़ी के नीचे एक पट्टिका) भी पहनते थे। इसके अतिरिक्त वे दोता (जाड़े में दोतही), कमीज़ें और बारानी (लम्बा कोट) भी पहनते थे। इन वस्त्रों से उनकी पहचान हो जाती थी। अधिकांश सूफी सन्त फटे, पुराने, चीथड़ कपड़े ही पहनते थे और उन्हीं में उन्हें शान्ति मिलती थी। इसके अतिरिक्त वे जुव्वा (घुटने तक का लबादा), तहवन्द (बनियायिन) तथा दस्तार (पगड़ी) तथा साधारण कुलाह (टोपी) भी पहनते थे। अमीर खुसरो के अनुसार सूफी सन्तों ने चार प्रकार की टोपियाँ, चौकोर टोपियाँ, एक तुर्की, दो तुर्की, सतुर्की और चार तुर्की टोपियाँ लोकप्रिय थीं। कभी-कभी जाड़ों में वे चमड़े के वस्त्र पहन लिया करते थे।

उस समय पैर में कुछ पहनने का कोई रिवाज था या नहीं, यह भली-भाँति स्पष्ट नहीं है। वरनी ने लिखा है कि सुल्तान बलबन अपने नौकरों-चाकरों को बिना मोजा पहने हुए अपने पास नहीं आने देता था।[६०] अमीर खुसरो ने भी मोज़े का उल्लेख किया है, जिससे पता चलता है कि उस समय जूते पहनने के साथ मोजों का भी प्रयोग होता था। जूतों के अतिरिक्त लोग कफश (ऊँची एड़ी की चप्पलें, जिनके तले में लोहे की कीलें जड़ी होती थीं और नालैन जिसमें लकड़ी का तला लगा हुआ होता था) पहनते थे। जूतों व कफश का प्रयोग धनी लोग किया करते थे। उल्मा व मशाहिख नालैन का प्रयोग करते थे। उस समय भेड़ की खाल पर सोने के तार से कढ़ाई किये हुए जूतों को पहनने का भी प्रचलन था।[६१]

हिन्दुओं की वेषभूषा

मुसलमानों की वेष-भूषा का प्रभाव हिन्दुओं पर भी पड़ा। प्रारम्भ में हिन्दू उनकी वेष-भूषा से घृणा करते थे, किन्तु शनैः-शनैः उन्होंने उनका अनुकरण किया। यदि हिन्दू अमीर अपने माथे पर तिलक न लगाते या कानों में कुण्डल न पहनते तो हिन्दुओं व मुसलमान अमीर में भेद करना कठिन था। मुसलमानों की भाँति वे भी कबा धारण करने लगे। सभी हिन्दुओं की एक समान वेष-भूषा न थी। उनकी वेषभूषा में बगा, महीन धोती, चादर, उत्तरी या चरन थी। अलबरूनी के अनुसार हिन्दुओं के पैजामें में इतनी अधिक रूई भरी होती थी कि उससे कई अन्य परिधान बन सकते थे। वे इतने बड़े होते थे कि उनमें से पैर नहीं दिखायी देते थे। वे आगे से खुले नहीं होते थे। उन्हें पीछे से नारे से बाँधा जाता था। धनी हिन्दू जाड़े में अपने कन्धों पर बहुमूल्य शाल डाले रहते थे। समृद्धशाली हिन्दू काश्मीर की बनी हुई कुछ आकर्षक एवं अनेक रंगों के कपड़े की बनी हुई पोशाक धारण करते थे। कभी-कभी वे चौड़ा रूमाल कमरबन्द के रूप में कमर में बाँधते थे। गुजरात के ब्राह्मणों के सम्बन्ध में बारबोसा ने लिखा है कि वे कमर के ऊपर निर्वस्त्र रहते हैं और नीचे सूत के कपड़े पहनते हैं। कन्धे पर उनके तीन तार का जनेऊ पड़ा रहता है जिससे वे ब्राह्मण समझे जाते हैं। सामान्य हिन्दुओं में पगड़ी या टोपी पहनने का प्रचलन था। हिन्दू बड़े-बड़े बाल रखना पसन्द करते थे। अत्यधिक गरमी के कारण वे लोग अत्यधिक वस्त्र पहनना पसन्द नहीं करते थे। हिन्दुओं में मोज़े पहनने का रिवाज़ नहीं था वे पाँव में खड़ाऊँ पहनते थे। कहीं-कहीं हिन्दू सुन्दर बने हुए जूते पहनते थे। उच्च वर्ग के हिन्दुओं के घर मे खड़ाऊँ पहनने का रिवाज था। इस प्रकार से धनी एवं समृद्धशाली हिन्दू उत्तम प्रकार के वस्त्र धारण करते थे, जो कि उनकी प्रतिष्ठा एवं सम्मान का प्रतीक होते थे। हिन्दू अभिजात वर्ग के सदस्य, मुसलमान अमीर की भाँति बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। अन्तर केवल इतना था कि कुलाह के स्थान पर वे पगड़ी बाँधते थे और पैजामे के स्थान पर वे ज़री की किनारीदार धोती पहनते थे।[६२]

अभिजात वर्ग की तुलना में साधारण हिन्दुओं की वेष-भूषा सरल व सादी तथा मामूली हुआ करती थी। वे कम से कम वस्त्र पहनते थे। ग्रीष्म ऋतु में वे या तो केवल एक लँगोटी या सूती धोती पहनते थे, जो कि उनके शरीर के कमर से निचले भाग को ढँक दिया करती थी। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि यहाँ किसान और निम्नवर्ग के लोग नंगे रहते थे। वे लँगोट नामक वस्त्र बाँधते हैं जो कि उनकी तोंदी के दो अँगुल नीचे बँधा रहता था। उसी में वे एक अन्य कपड़ा जो कि सामने से होता हुआ उनकी जाँघों के बीच से होकर पीछे की ओर बँधा रहता था।[६] अब्दुर्रज्ज़ाक के अनुसार इस देश के काले लोग लगभग नंगे रहते हैं। वे लँगोट नामक चीर को बाँधते हैं जो कि उनकी कमर से घुटनों तक के भाग को ढक देता है।[६४] मार्कोपोलो ने सर्वसाधारण की वेषभूषा का विवरण देते हुए

लिखा है कि अधिकांश लोग यहाँ विभिन्न प्रकार की खालें जैसे कि वकरी की खाल, भैंसे की खाल, लोमड़ी की खाल तथा अन्य पशुओं की खाल से अपना शरीर ढकते थे।[६५] वारवोसा के अनुसार वंगाल में सफेद कमीज जो कि जाँघ तक लम्वी होती थी तथा पैजामा पहनते थे और तीन-चार परत की पगड़ी वाँधते थे। वे लोग रेशम तथा जरी के धागों से सिले हुए जूते और चप्पलें भी पहनते थे।[६६] लवन्यस्वामी के अनुसार गुजरात में निम्नवर्गों में फेटाँ नामक पगड़ी वाँधने का रिवाज था। इस प्रकार से विभिन्न प्रदेशों की जलवायु एवं परम्पराओं के अनुसार यहाँ के लोगों की वेष-भूषा थी।

इस काल में एक औसत मुसलमान पैजामा (इज़ार) या लुंगी, साधारण कमीज़ या कुर्ता तथा मुंड़े हुए सिर पर टोपी पहनता था। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिल्जी के समय के सैनिकों के वस्त्रों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे नरमीना (नरम रेशमी वस्त्र), पशमीना (ऊनी वस्त्र), चरमोना (चमड़े के वस्त्र), अहमीना (लोहे के वने हुए वस्त्र) तथा रूइना (काँसे) के वने हुए वस्त्र पहनते थे।[६७]

स्त्रियों की वेषभूषा

अफीफ के अनुसार गायिकाएँ तथा नर्तकियाँ दस्तार या पगड़ी वाँधती थीं। उनके परिधान सोने व चाँदी की ज़री से कढ़े होते थे। इन परिधानों का मूल्य ४०,००० तन्के तक होता था। सामान्य स्त्रियाँ इस प्रकार से साड़ी वाँधती थीं जो कि उनके शरीर के निचले और ऊपरी भाग को ढँक लिया करती थी। हिन्दू स्त्रियाँ कमर के ऊपर के भाग को ढँकने के लिए अंगियाँ पहनती थीं, जिसे कंचुकी, कंचुली, चोली इत्यादि कहते थे। जिस प्रकार साड़ी की अनेक किस्में महीन, रंगीन, छपी हुई होती थीं, उसी भाँति अँगिया या व्लाउज जो कि उनके वक्षस्थल को ढँकती थी, अनेक प्रकार की होती थी। अँगिया दो प्रकार की होती थी, प्रथम वह जो कि केवल वक्षस्थल को ही ढँकती थी तथा दूसरी वह जो कि कमर तक के वदन को ढँकती थी। दूसरे प्रकार की अँगिया का प्रयोग युवतियाँ अथवा विवाहित स्त्रियाँ अपने उरोजों को कसकर वाँधकर रखने के लिए करती थीं। पहली प्रकार की अँगिया का प्रयोग गरीव व अमीर दोनों घराने की स्त्रियों में होता था, जिससे उनका शरीर का कन्धे से लेकर कमर तक का भाग ढँका रहता था। राजपूत स्त्रियाँ आगे से खुली हुई कंचुकी पहनती थीं। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ऐसी कंचुकी पहनती थीं जो कि पारदर्शी होती थी और जिनसे उनका वदन साफ दिखाई पड़ता था। वारवोसा के अनुसार गुजरात की महिलाएँ चुस्त वाँहदार और पीछे से खुली हुई कंचुकी पहनती थीं। इस काल में लहँगा और घाघरा पहनने का भी रिवाज़ कुछ प्रदेशों में था। घाघरा मुसलमान स्त्रियों में लोकप्रिय था। उच्च वर्ग की महिलाएँ जव घर से वाहर निकलती थीं तो वे ओढ़नी की चुनरी द्वारा अपने शरीर के ऊपरी भाग को ढँक लिया करती थीं। जाड़ों में स्त्रियाँ शाल भी ओढ़ती थीं। शाल का प्रयोग केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित था। दक्षिण में स्त्रियाँ

सिले हुए कपड़े न पहन कर केवल साड़ी से ही अपना तन ढँके रहती थीं। साड़ी का एक भाग कमर के नीचे का भाग ढँक लेता था तथा दूसरा भाग वक्षस्थल व सिर को ढँके रहता था। गुजरात की स्त्रियाँ रेशमी कपड़े के बने हुए एड़ी तक के पायजामें तथा तंग बाँहदार वण्डी पहनती थीं, जो कि बाँहों पर खुली रहती थी। मुसलमान स्त्रियाँ पैराहन (ढीली-ढाली कमीज़), मकना (सिर से पैर तक ढँकने वाला वस्त्र), शलवार, पैजामा, लम्बी बाँहदार कमीज़ पहनती थीं। अमीर खुसरो ने स्त्रियों के वस्त्रों में पैचा-ए-सलवार, खस्तक-ए-इज़ार, निकन्दा (रूई भरा हुआ परिधान), दोताई (साड़ी), बारानी, कुलाह, दस्तार का उल्लेख किया है।[६८] मुल्ला दाऊद की कृति **चंदायन** में मुँगिया साड़ी का स्त्रियों के परिधान के सम्बन्ध में उल्लेख है। समकालीन चित्रों में स्त्रियों द्वारा ओढ़नी, जो कि पारदर्शक मलमल की होती थी, वक्षों के ढँकने के लिए चोली और किनारे व कटे बार्डर सहित या सम्पूर्ण कढ़े हुए घाघरों जो कि कमर से पैर तक ढकता था, प्रदर्शित किया गया, देखने को मिलता है। एक चित्र में मैना व चन्दा के सिर पर ओढ़नी, बदन पर कसी हुई चोली जो कि आगे से वक्ष और कन्धों को ढँकती थी और पीछे से पीठ को खुला रहने देती थी, और एक पतली-सी डोरी से चोली के दो किनारों को बाँध देती है तथा छपे हुए घाघरा पहने हुए दिखाया गया है। एक चित्र में दो स्त्रियों को चोली और घाघरा पहने हुए बिना ओढ़नी के दिखाया गया है। एक अन्य चित्र में दो स्त्रियों को कढ़े हुए घाघरों, ओढ़नियों और आधी बाँह की कसी हुई चोली पहने हुए परिधान में दिखाया गया है।[६९] मुल्ला दाऊद ने ग्वालिन की पोशाक के सम्बन्ध में लिखा है कि वे सिन्दूर रंग की साड़ी, मेफिया और कुसियास, जोगिया तथा चौकड़िय चीर सारती पहनती हैं। मंडिला व चुनरी ओढ़ती है। चंदा गुजराती साड़ी पहनती है तथा डोरिया और चन्द्रपट्टक नामक कपड़े का प्रयोग करती है।[७०]

बंगाल में स्त्रियाँ कंचुली पहनती थीं, जिसे कि वे बहुत ही उत्तम परिधान समझती थीं। कंचुली दो प्रकार की हुआ करती थी। छोटी जो कि केवल वक्षस्थलों को ढँकती थी और लम्बी कंचुली जो कि कमर तक आती थी।[७१] यह कंचुली पीठ पर दो धागों वे बँधी रहती थी। वे साड़ी के नीचे कच्छा भी पहनती थीं। सिन्ध व पंजाब में सलवार, कमीज़ और ओढ़नी तथा साड़ी व चोली, घाघरा व ओढ़नी तथा चोली पहनने का प्रचलन था। उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, मालवा, दक्षिण भारत में साड़ी या धोती व चोली पहनने का रिवाज़ था। साड़ी बाँधने का ढंग व चोली की बनावट व नाम में विविधता थी।

स्त्रियों में चप्पल या जूतियाँ पहनने का प्रचलन था। उच्च परिवारों की स्त्रियाँ ही पैर में जूतियाँ व चप्पलें पहनती थीं। गुजरात में स्त्रियाँ चमड़े की बनी हुई जूतियाँ पहनती थीं। इन जूतियों में रेशम व जरी का काम होता था।

इस काल में पर्दा प्रथा होने के कारण हिन्दू स्त्रियाँ घूँघट डाले रहती थीं तथा मुसलमान स्त्रियाँ बुरके का प्रयोग करती थीं।

पुरुषों के सौन्दर्य प्रसाधन

पूर्व सल्तनत काल की भाँति इस काल में आकर्षक दिखाई पड़ने के लिए पुरुष विविध सौन्दर्य प्रसाधनों तथा आभूषणों का प्रयोग करते थे। हर पुरुष चाहे वह किसी भी आयु का क्यों न हो अपने को युवा दिखाना चाहता था। अमीर खुसरो ने वालों को काला करने के लिए वसमा व खिज़ाव के प्रयोग किये गये जाने का उल्लेख किया है। इब्नवतूता के अनुसार पुरुष अपने वालों को स्वच्छ एवं मुलायम रखने के लिए उन्हें धोते थे और उनमें सुगन्धित तेल लगाते थे। दिनचर्या प्रारम्भ करने से पूर्व वे स्नान करते थे। प्रतिदिन स्नान करना हिन्दुओं में धर्मानुसार अनिवार्य था। वारवोसा के अनुसार गुजरात में हिन्दू दिन में दो वार स्नान करते थे, चूँकि वे यह समझते थे कि स्नान करके उन्होंने अपने पाप को धो दिया है। अलवरुनी ने लिखा है कि स्नान करने से पूर्व वे अपने हाथ-पैर को धोते हैं इसके पश्चात् सम्पूर्ण शरीर को स्नान कराते हैं। वे अपनी पत्नियों के साथ सम्भोग करने से पूर्व भी स्नान करते हैं। अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि हिन्दू स्नान करने के पश्चात् सफेद चन्दन, केसर तथा इत्रों को मिला कर अपने शरीर पर लगाते थे। वे मृदंग, कस्तूरी, अगरजह, गोरचन, अगर, चन्दन, कपूर, केसर, कुमकुम इत्यादि व सुगन्धित इत्रों का भी प्रयोग करते थे। कवीर तथा नानक की रचनाओं से सावुन के प्रयोग किये जाने की जानकारी मिलती है। स्नान करने से पूर्व पुरुष अन्य अनेक वस्तुओं जैसे कि अमलोकी, तिल, सुगन्धित तेल, गीली हल्दी, चावल, पानी के सम्मिश्रण इत्यादि का भी प्रयोग किया करते थे। इन पदार्थों को शरीर पर मलने के उपरान्त ही वे स्नान किया करते थे। पुरुषों द्वारा काजल व सुरमा लगाने के सन्दर्भ भी ऐतिहासिक स्रोतों एवं समकालीन साहित्य में मिलते हैं। उससे नेत्रों की ज्योति वढ़ती थी। हिन्दू माथे पर तिलक लगाते थे। अपने दाँतों को लाल करने तथा मुँह की वदवू को दूर करने के लिए हिन्दू व मुसलमान पान खाते थे। अमीर खुसरो के अनुसार इस काल में पान खाने का अधिक रिवाज़ था। समृद्धिशाली हिन्दू अथवा समाज के उच्च वर्ग के हिन्दू वहुमूल्य आभूषणों में वाजूवन्द, मेखला, नूपुर, मुद्रिका या अँगूठी, गले में हार और कानों में कुण्डल पहनते थे। हिन्दू राजा व राजकुमार सोने का जड़ाऊ मुकुट धारण करते थे। इसके अतिरिक्त वे सुन्दर तलवारें, कटारें इत्यादि भी कमर में वाँधते थे जिससे कि उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाते थे। मुसलमानों में अधिक आभूषण धारण करने का रिवाज़ न था। समृद्धशाली मुसलमान तथा उच्च वर्ग के अमीर केवल उँगलियों में मणिक अथवा किसी वहुमूल्य रत्न की अँगूठी या वाँह में रत्नों से जड़ा हुआ वाजूवन्द पहन लिया करते थे।

स्त्रियों के सौन्दर्य प्रसाधन

इस काल में पूर्वकाल की भाँति स्त्रियाँ विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करती थीं तथा विविध धातुओं के वने हुए आभूषण धारण करती थीं। पुरुषों की तुलना

में वे अपने शृङ्गार में अत्यधिक रुचि लिया करती थीं। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय नारियाँ सोलह प्रकार के शृङ्गार से भली-भाँति परिचित थीं। मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत में उन सोलह शृङ्गारों का विवरण दिया है। उदाहरणार्थ मंजन, स्नान, वस्त्र, पत्रावली रचना, सिन्दूर, तिलक, कुण्डल, अंजन, होठों पर लाली लगाना, फूलों का इत्र लगाना, गाल पर काला तिल बनाना, गले में हार पहनना, कन्चुकी पहनना, कमर में करधनी धारण करना, पैरों में पायल पहनना। जायसी से पूर्व भी स्त्रियों में सोलह शृङ्गार करने की परम्परा प्रचलित थी।

विद्यापति की कीर्तिलता में मिथिला की वेश्याओं द्वारा प्रयुक्त सौन्दर्य प्रसाधनों का विवरण मिलता है। वे अपने माथे पर तिलक या बिन्दी, मुख, वक्ष तथा शरीर के अन्य भागों पर चन्दन, गोरचन, कस्तूरी से अलंकारी करती थीं। कुतुबन की मृगावती के अनुसार वे १२ प्रकार के आभूषण एक बहुमूल्य रत्न धारण करती थीं, अपने शरीर पर अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुमकुम, केसर, सुगन्धित तेल लगाती थीं व पान खाती थीं। स्त्रियाँ अपने बालों को काढ़ने व सजाने पर विशेष ध्यान दिया करती थीं। वे अपने बालों को विशेष ढंग से सजाकर उनमें फूल अथवा आभूषण लगाती थीं। युवतियाँ अपने बालों का जूड़ा बनाती थीं या उन्हें विविध प्रकार से बाँधती थीं। विवाहित स्त्रियाँ माँग में सिन्दूर लगाती थीं। सिन्दूर को सिंधौरा में रखने की परम्परा थी। वे आँखों में अंजन या काजल लगाती थी व काले रंग के कृत्रिम भौंह बनाती थीं तथा पान का सेवन करती थीं। इस काल में पैरों में महावर या आलता लगाने की भी परम्परा थी। अमीर खुसरो के अनुसार स्त्रियाँ अपने मुख पर गज़ा या सफेदा लगाती थीं जिससे उनके मुख पर निखार आ जाता था।[५२] वे सुर्मा भी लगाकर अपनी दृष्टि पैनी व सूक्ष्म ही नहीं करती थीं वरन् उससे अपनी भौहों को सुन्दर बनाती थीं। हसन निजामी ने सुरमा-ए-चश्म, बहरमन तथा गुलगुला का उल्लेख सौन्दर्य प्रसाधनों के सन्दर्भ में किया है। स्त्रियाँ चन्दन तथा केसर के मिश्रण का प्रयोग न केवल माथे को सुसज्जित करने के लिए ही करती थीं अपितु वक्ष पर ठण्डक के लिए भी करती थीं। मुल्ला दाउद के अनुसार अपनी कामाग्नि की ज्वाला की वृद्धि करने के लिए अपने वक्षों पर चन्दन का लेप करती थीं।[५३] संभ्रान्त परिवारों या उच्च वर्ग की स्त्रियाँ नहाने से पूर्व अपने शरीर पर उबटम तथा सुगन्धित तेल लगवाती थीं। जिससे उनका शरीर कोमल एवं आकर्षक बना रहता था।

विवाहित हिन्दू स्त्रियों के लिए आभूषण धारण करना केवल सुहाग का प्रतीक ही नहीं था वरन् उससे उनके सौन्दर्य में भी वृद्धि होती थी। बाल्यावस्था में उनके कान व नाक छिदवा दिये जाते थे। युवावस्था में प्रवेश करने से पूर्व ही वे सिर से लेकर पैर तक आभूषण पहन कर अपना शृङ्गार करती थी। इन आभूषणों में शीश फूल, माँग टीका, बिन्दी, कुण्डल, करनफूल, बाली, बाला, तगड़ी, झुमका, झुमकी, नथ, नथफूल, नथनी, हार, हँसुली, कण्ठी, कण्ठमाला, बाजूबन्द, कंगन, चूड़ियाँ, अँगूठियाँ,

मुन्दरियाँ, मेखला या करधनी, किंकनी, पाजेब, पायल, नूपुर, घुँघरू, विछिया, इत्यादि थे। लगभग यह सभी आभूषण मुसलमान स्त्रियाँ भी धारण किया करती थी। मुल्ला दाउद ने चन्दायन में कुण्डल, गले के हार, दसों उँगलियों में अँगूठियों, कलाइयों में कंगन, पैरों में जूड़े, नुपुर, पायल, पैजनियाँ, चमड़े की जूतियों का उल्लेख किया है।[७४] इस काल में आभूषणों द्वारा शरीर को अलंकृत करने की परम्परा थी। उच्च व मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ ही अधिक से अधिक आभूषण ग्रहण करने के लिए सक्षम थीं। आभूषणों की वनावट और उसकी सजावट में भी अनेक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती थीं। इस देश में स्वर्णकारों की कोई कमी न थी। इस काल में विदेशी स्वर्णकारों के आगमन से आभूषण निर्माण कला को और नवीन दिशा प्राप्त हुई। स्वर्णकार अपनी कुशल कारीगरी व सूक्ष्मता के लिए सर्वप्रसिद्ध थे। वे वहुमूल्य, सूक्ष्म व कलात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम प्रकार के आभूषण बनाने की क्षमता रखते थे तथा अपनी कला में प्रवीण थे। अहमद यादगार के अनुसार, एक स्वर्णकार ने हामिद खान के सम्मुख पाँच, तीन, दो लाख तन्के के मूल्य के माँग-टीके विक्री के लिए प्रस्तुत किये।[७५] अतः वहुमूल्य से वहुमूल्य आभूषण उपलब्ध रहते थे।

निवास-गृह

दिल्ली के सुल्तान विशाल, सुखदायी एवं आनन्ददायक महलों में रहते थे, जिनका निर्माण उस युग के कुशल शिल्पकार, वढ़ई, आराकश, राज, कारीगर किया करते थे। उनके महलों में अनेक कक्ष, वड़े-वड़े हाल, दालान, छोटे-छोटे कमरे वड़ी संख्या में विभिन्न कार्यों के लिए जैसे कि हरम की स्त्रियों के रहने के लिए, मुख्य बैठक के लिए, ड्राइंग रूम के लिए, स्नान करने के लिए, कपड़े पहनने के लिए इत्यादि होते थे। दिल्ली के अधिकांश सुल्तानों ने रहने के लिए वड़े-वड़े महलों का निर्माण कराया। अलकलशन्दी ने **सुवह-उल-अशा** में लिखा है कि दिल्ली सम्पूर्ण भारतवर्ष की राजधानी तथा सुल्तान का निवास-स्थान वन गया है। वहाँ महल तथा विशेष हवेलियाँ हैं। जहाँ कि वह और उसका परिवार रहता है तथा जहाँ उसके नौकर-नौकरानियाँ एवं दासों के घर हैं। कोई भी खान तथा अमीर उसके साथ नहीं रहता है और उनमें से कोई भी, सिवाय इसके कि वह कार्य के लिए नहीं आया है, वहाँ नहीं ठहर सकता है और कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने घरों को लौट जाता है। इब्नवतूता ने शाही महलों का विवरण दिया है। उसने लिखा है कि दिल्ली के सुल्तान का महल दारे-सरा कहलाता है। इसमें अनेक द्वार हैं। प्रथम द्वार पर पहरेदार रहते हैं। वहाँ शहनाई, तुरही तथा सिंघा वजाने वाले भी बैठे रहते हैं। जब कभी वड़ा अमीर वहाँ आता है तो शहनाई व तुरही वजने लगती है यह संकेत करने के लिए कि अमुक गणमान्य व्यक्ति आया है। दूसरे व तीसरे द्वार पर भी यही होता है। प्रथम द्वार के वाहर जल्लाद दण्ड देने के लिए बैठे रहते हैं। वहाँ चबूतरे पर अभियोगियों को मौत के घाट उतारा जाता है। जब सुल्तान किसी की हत्या करने का

आदेश देता है तो महल के द्वार के सन्मुख उसकी हत्या कर दी जाती है और वहाँ उसका शव तीन दिन तक पड़ा रहने दिया जाता है। प्रथम व द्वितीय द्वार के मध्य में दोनों ओर लम्बे-लम्बे दालान हैं तथा चबूतरे बने हैं। वहाँ नौबत बजाने वाले बैठे रहते हैं। दूसरे व तीसरे द्वार के मध्य एक बड़ा चबूतरा है जहाँ कि नक़ी-उल-नुकबा बैठा रहता है जिसके हाथ में सोने की गदा होती है, जो कि सोने की जड़ाऊ टोपी पहने रहता है जिस पर मोर पंख लगे रहते हैं। अन्य नकीब भी उसी के सन्मुख वहीं खड़े रहते हैं। उनके सिर की टोपी में सुनहरी झालर लगी रहती है और उनकी कमर में सुनहरी पेटियाँ बँधी रहती हैं। उनके हाथ में सोने व चाँदी की मूठ वाले कोड़े होते हैं। दूसरे द्वार के पास एक बड़ा भारी कमरा है जहाँ कि साधारण लोग बैठते हैं। तृतीय द्वार पर चबूतरे पर द्वार का सचिव आने वाले व्यक्तियों के नाम नोट करता रहता है और रात्रि को सुल्तान को वहाँ उन लोगों के नाम पढ़ कर सुनाता है। तृतीय द्वार से होकर लोग एक बड़े कक्ष में प्रवेश करते हैं, जिसका नाम हज़ार सितून (हजार खम्भे वाला) था। इस कक्ष की छत लकड़ी की है जिसमें कि सुन्दर पच्चीकारी तथा चित्रकारी है। यहीं सुल्तान अपना दरबार करता है।[७६]

हिन्दू अभिजात वर्ग के महल

इस काल में हिन्दू राजाओं और सामन्तों के भी बड़े-बड़े महल व हवेलियाँ निवास-स्थान के लिए हुआ करती थीं। उनका निर्माण कुशल कारीगर, शिल्पकार इत्यादि किया करते थे। उन राजाओं के महल सात मंजिला तक होते थे। उनके द्वार चन्दन की लकड़ी के होते थे तथा महल के अन्दर व बाहर उद्यान, झरने, वाटिकायें होती थीं, महल में रंगशाला तथा स्त्रियों के निवास के लिए रनिवास होते थे। अमीर खुसरो ने **खजाइनुल फ़ुतूह** में लिखा है कि झायन के राय का महल बहुत ही सजा हुआ था। उसकी कारीगरी देखकर जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी चकित रह गया। महल की चूने की दीवारें आइने के समान थी और महल में चन्दन की लकड़ी लगी हुई थी।[७७] मुल्ला दाउद ने **चन्दायन** में राय महर की हवेली का विवरण देते हुए लिखा है कि उसमें सात चौखड़िया बनी हुई थी जिस पर सोने का पानी किए हुए कलश रखे हुए थे। महल में सोने के खम्भे थे जिसमें माणिक जड़े हुए थे। महल के बाहरी द्वार पर दोनों ओर शेर की मूर्तियाँ रखना मध्यकालीन महलों की विशेषता थी। बाबर ने अपनी आत्मकथा **बाबरनामा** में ग्वालियर के शासक राजा मानसिंह तथा विक्रमाजीत के विशाल भवनों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि समस्त राजाओं के भवनों की तुलना में मानसिंह के भवन बड़े ही उत्तम एवं भव्य हैं। महल के उत्तर में अन्य दिशाओं की अपेक्षा अत्यधिक कारीगरी की गई है। यह भाग लगभग ४-५ गज ऊँचा है और तराशे हुए पत्थर का बना है। उसके ऊपर सफेद पलस्तर है। कहीं-कहीं पर इसमें चार-चार मंजिलें हैं। नीचे की दो मंजिलों में अँधेरा रहता है। उसने यह भी लिखा है कि मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य के भवन, दुर्ग अधिकतर केन्द्रीय स्थान

पर हैं। पुत्र के भवन पिता के भवन का मुकाबला नहीं कर सकते। उसने एक बहुत बड़े महल का निर्माण करवाया।[७] इसी भाँति अन्य हिन्दू राजाओं ने अपने रहने के लिए बड़े-बड़े महल दुर्ग के अन्दर बनवाये थे।

सामान्य जनता के निवास-स्थान बहुत ही छोटे व सादे होते थे। शहर में उनके मकान ईंटे व पत्थर के बने होते थे, जिनकी ऊँचाई अधिक नहीं होती थी। अलकलकशन्दी ने सुबह-उल-अशा में गुजरात व खम्भात के मकानों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे ईंटें तथा संगमरकर के बने होते थे और उनके समीप उद्यान नहीं होते। वास्तव में शहर में बने मकान एक विशेष प्रकार के होते थे। वहाँ धनी, व्यापारी, समृद्धशाली व्यक्तियों के मकान हवादार व बड़े होते थे। किन्तु समाज के निम्न वर्ग के लोग घास-फूस की झोपड़ियों में रहा करते थे। सूफी सन्त झोपड़ी में रहा करते थे जो घास-फूस की बनी होती थी तथा जिसका छप्पर लकड़ी के लट्ठे पर टिका रहता था।

अफीफ के अनुसार सुल्तान के महल में विभिन्न रंगों से चित्र बनाये जाते थे और उनकी दीवारें कलाकृतियों से सजी रहती थीं। चूंकि भाव को चित्रित करना शरा के विरुद्ध था अतएव फिरोजशाह तुग़लक ने अपने शयन-कक्ष की दीवारों पर बेलबूटे बनवाये।

उच्च वर्ग की हवेलियाँ बहुत ही सजी हुई होती थीं। उनमें कालीन, गलोचे, रेशम के पर्दे, नरम गद्दे, बड़े-बड़े तकिये और चटाइयाँ व बिछौने लगे हुए होते थे। अन्दर से पूर्ण रूप से वे सुसज्जित हुआ करती थीं। उनके सुख व विलास की सभी वस्तुयें वहाँ उपलब्ध हुआ करती थीं। शिहाबुद्दीन अलउमरी के अनुसार यह हवेलियाँ या मकान पत्थर व ईंटों के बने होते थे और उनके फर्श पर सफेद पत्थर या संगमरमर लगा हुआ होता था। कोई भी मकान दो मन्जिलों से ऊँचा नहीं होता था और अधिकांश यह मकान केवल एक ही मंजिल के हुआ करते थे।[७६] बड़े-बड़े व्यापारियों के मकान दो मंजिलों के हुआ करते थे। उनमें से निचली मंजिल में निवास-स्थान होता था।[७७] बड़े-बड़े शहरों में लोग मकान किराये पर लेकर रहते थे। उदाहरणार्थ, अमीर खुसरो का पिता जब पटियाली से दिल्ली आया तो उसने दिल्ली में एक मकान किराये पर लिया। इसी प्रकार शेख निज़ामुद्दीन औलिया भी दिल्ली में किराये के मकान में रहता था।

इस काल में सुल्तानों के महलों व बड़े-बड़े अमीरों के घरों में सुन्दर फर्नीचर, मेज़, कुर्सियाँ, मसनद, तख्त आदि हुआ करते थे। इब्नबतूता के घर में बिछौने, कालीन, दरियाँ और चारपाइयाँ थीं। सजे हुए कालीनों तथा कढ़े हुए पर्दों का उल्लेख किया।

सुल्तान नक्काशी किए हुए पीतल, चाँदी, सोने के बर्तनों का प्रयोग किया करते थे। उन्हीं में वे भोजन करते व जल पिया करते थे।[८१] चूंकि इतने बहुमूल्य

पात्रों का प्रयोग करना शरा के विरुद्ध था, सुल्तान फिरोज़शाह ने पत्थर व मिट्टी के वर्तनों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। खाना पकाने के बर्तन आज की भाँति हुआ करते थे। अन्तर केवल इतना है कि उस काल में ताम्बे, पीतल व लोहे के वर्तनों का अधिक प्रयोग होता था और उनका आकार परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार हुआ करता था। बड़े-बड़े अमीरों के रसोई घर में पानी रखने, खाना पकाने व खाना परोसने के बड़े-बड़े वर्तन हुआ करते थे, साधारण परिवारों में उनकी संख्या कम और निम्न परिवारों में मिट्टी के वर्तनों में ही खाना पकाया व खाया जाता था।

इस काल में लोग चादर, चटाई, वर्तन, चारपाई, विछौनों का प्रयोग करते थे। यहाँ वड़ी चारपाइयाँ हल्की होती थीं। उन्हें कोई भी व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान ले जा सकता था। यात्रा में प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ चारपाई ले जाता था। उसे उसके सेवक सिर पर रख कर ले जाते थे। यह चारपाइयाँ सूत अथवा रेशम या रस्सियों से बुनी जाती थीं। चारपाई पर विछाने के लिए दो गद्दे, दो तकिये, एक लिहाफ ओढ़ने के लिए भी होता था। वहुधा यह वस्त्र अमीरों के लिए रेशम के वने होते थे। गद्दों व लिहाफ पर सूती कपड़े का गिलाफ चढ़ा दिया जाता था। जव वह मैला हो जाता था तो उसे धो डालते थे। इस प्रकार गद्दे व लिहाफ सुरक्षित रहते थे।[८२]

संस्कार

सभ्य समाज के रहने-सहने के ढंग होते हैं, उसके नैतिक आचरण व्यवहार के स्तर होते हैं, उसकी परम्पराएँ, रीति एवं रिवाज़ होते हैं। इन सभी वातों को देखकर समाज के जीवन-स्तर और उनमें व्याप्त नैतिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दू-मुस्लिम समाज एक ही शरीर के दो अंग थे। उनके वहुत से रीति-रिवाज़, संस्कार, नैतिक आचरण के मानक एक ही समान थे। स्त्री के गर्भ धारण करते ही विविध प्रकार के संस्कारों का पालन होना प्रारम्भ हो जाता था। सात मास का गर्भ होने पर उसके माँ-वाप के परिवार वाले उसके लिए सुन्दर वस्त्र, आभूपण, फल, मेवा मिष्ठान, फूल आदि उसके ससुराल में भेजते थे ताकि उसकी सतमासा की रस्म पूरी की जा सके। गर्भवती स्त्री को यह वस्त्र, आभूपण पहना के उसकी गोद फल व मेवा से भर दी जाती थी और नाइन व वारिन को उनके नेग-चार दे दिये जाते थे। उसके वाद वड़ी-वूढ़ी स्त्रियाँ सगुन निकाला करती थीं कि पुत्र होगा या पुत्री। नवजात शिशु के आगमन की प्रतीक्षा में बड़ी तैयारियाँ की जाती थीं। शिशु के उत्पन्न होने पर वड़ी खुशियाँ मनाई जाती थीं। हिन्दू परिवारों में पण्डित से उसकी जन्म-कुण्डली वनवाई जाती थी और उसके जन्म से परिवार का भविष्य कैसा होगा, मालूम किया जाता था। हिन्दुओं के प्रभाव में आकर मुसलमानों ने भी ज्योतिपियों से जन्म-कुण्डलियाँ वनवानी प्रारम्भ कर दी। शिशु के पैदा होते ही जवकि हिन्दू परिवारों में जच्चा-वच्चा की ओर परिवार के सदस्यों का ध्यान आकृष्ट रहता था। मुसलमानों

में शिशु के कान में आज़ान पढ़ी जाती थी। जब नवजात शिशु छः दिन का हो जाता था तो उसे व उसकी माँ को स्नान कराया जाता था व अच्छे वस्त्र पहनाये जाते थे। हिन्दू परिवारों में नवजात शिशु की बुआ या परिवार के अन्य सदस्य उसके लिए कपड़े, खिलौने, धागे की बनी हुई काली करधनी और काले धागों के बने हुए कंगन लाती थी और उसे पहनाती थी। उसके बाद छठी की पूजा होती थी। घर में स्त्रियों में गाना-बजाना हुआ करता था। इसी प्रकार मुसलमान परिवारों में भी नवजात शिशु व उसकी माँ को स्नान करके स्वच्छ व अच्छे कपड़े पहना दिये जाते थे व गाना-बजाना होता था। उसी दिन नवजात शिशु का मुण्डन संस्कार किया जाता था, जिसे कि अक़ीका कहते हैं। इस संस्कार के बाद प्रीतिभोज होता था व खुशियाँ मनाई जाती थी। छठी के बाद हिन्दू परिवारों में शिशु के जन्म के दस दिन बाद पुनः शिशु व उसकी माँ को स्नान करा के स्वच्छ वस्त्र पहना कर प्रसूति-गृह से बाहर ले आते थे। इस अवसर पर भी दाई व नाईन को नेग-चार दिये जाते थे। जब नवजात शिशु १० दिन का हो जाता था तो हिन्दू परिवारों में उसका नामकरण संस्कार होता था। इस दिन शुभ मुहूर्त में हवन होता था, तदुपरान्त परिवार का सबसे प्रौढ़ व्यक्ति नवजात शिशु को उसकी जन्म-राशि के अनुसार पुरोहित के सुझाव के अनुसार नाम-करण करता था। यह संस्कार मुसलमान परिवारों में या तो नवजात शिशु के जन्म दिन पर ही हो जाता था या अन्य किसी दिन। हिन्दू परिवारों में नाम-संस्कार के बाद अन्नप्राशन संस्कार होता था। इस दिन नवजात शिशु को परिवार का सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति पूजा व हवन के बाद अपने हाथों से खीर खिलाता था। यह संस्कार भी बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। नवजात शिशु यदि उसका जन्म मुसलमान परिवार में हुआ तो ४ वर्ष ४ माह ४ दिन की आयु होने पर उसे प्रथम अक्षर का बोध कराया जाता था। इस अवसर पर कोई मुल्ला या मौलवी उसका हाथ पकड़ कर तख्ती पर उससे अल्लाह या बिसमिल्लाह लिखवा दिया करता था। इस संस्कार को तख्ती या बिसमिल्लाह ख्वानी कहते हैं। इस दिन से नवजात शिशु की औपचारिक ढंग से शिक्षा प्रारम्भ हो जाती थी। यह संस्कार हिन्दू परिवारों में नवजात शिशु के ४ वर्ष या ५ वर्ष पर किया जाता था। घर का पुरोहित या पण्डित उसी प्रकार शिशु का हाथ पकड़ कर उससे ॐ या ईश्वर का अन्य कोई नाम तख्ती पर लिखवा दिया करते थे। इस प्रकार हिन्दू शिशु की विधिवत् शिक्षा इसी समय से प्रारम्भ हो जाती थी। मुसलमान परिवारों में बिसमिल्लाह ख्वानी के बाद नवजात शिशु का यदि वह पुत्र हुआ तो उसका खतना कराया जाना एक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता था। शरा के नियमों के अनुसार प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य था कि बचपन में ही उसका खतना कराया जाय। इस अवसर पर बच्चे को अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाये जाते थे, उसे मिठाइयाँ दी जाती थी, घर में खुशियाँ मनाई जाती थी और इन्हीं खुशियों के मध्य बच्चे का खतना संस्कार कर दिया जाता था। हिन्दुओं में इस प्रकार का कोई संस्कार न था। उनमें अक्षर-बोध संस्कार के उपरान्त

उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार ही होता था। यह संस्कार भी समाज के उच्च वर्गों तथा जातियों में ही होता था। इस संस्कार के अन्तर्गत वालक का मुण्डन करवा कर उसे अच्छे वस्त्र पहनाये जाते थे व परिवार तथा सम्वन्धियों के मध्य उत्सव मनाया जाता था। उससे पूजा-पाठ, हवन आदि करवा कर मन्त्रों के उच्चारण के मध्य उसे यज्ञोपवीत पहना दिया जाता था ताकि युवावस्था में प्रवेश करते ही वह मन, वचन, कर्म और आचरण से शुद्ध रहे और विद्यार्जन में रत रहे।

उपनयन या यज्ञोपवीत के दोनों संस्कार मुसलमानों में नहीं होते थे और न ही मुस्लिम समाज में ऐसी कोई वर्ण-व्यवस्था ही थी जिसके अन्तर्गत इस प्रकार के संस्कारों का प्राविधान होता। मुसलमान परिवारों में खतना के वाद महत्वपूर्ण संस्कार विवाह ही होता था। विवाह पिता-माता अथवा परिवार के सदस्य ही तय किया करते थे। लड़की सयानी होने पर माता-पिता दोनों को ही उसके विवाह की चिन्ता होती थी। कविजन नारायणदास ने छिताई वार्ता में छिताई के विवाह के सन्दर्भ में लिखा है कि जिसके कुँवारी कन्या होती है उसे नींद नहीं आती है और चिन्ता वनी रहती है। छिताई का विवाह पुरोहित की सहायता से ही तय हुआ।[८३] मुल्ला दाऊद ने चंदायन में लिखा कि चांदा का विवाह ब्राह्मण व नाई के माध्यम से ही तय हुआ।[८४] इसमें लड़के या लड़की से परामर्श लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। विवाह तय होने पर शुभ मुहूर्त में वहुत ही सादे ढंग से विवाह तय होने की रस्में प्रारम्भ होती थीं। लड़की के घर से फल, मेवा, मिष्ठान, वस्त्र, आभूषण इत्यादि लड़के के घर भेजे जाते थे और उसी दिन दोनों के घरों में उत्सव के मध्य लड़के व लड़की के हाथों व पैरों में मेंहदी लगाई जाती थी तथा उपस्थित अतिथियों का आदर सत्कार किया जाता था। 'हेनावन्दी' अथवा मेंहदी लगाने के रस्म के बाद शुभ मुहूर्त में विवाह करने के लिए लड़का अपने माथे पर सेहरा वँधवा कर अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों आदि के साथ वारात लेकर वधू के घर जाता था, जहाँ कि वारातियों का वधूपक्ष की ओर से भव्य स्वागत होता था और उसके वाद काज़ी वर की ओर के 'निकाह' पढ़कर वधू की स्वीकृति के लिए उसके पास जाता था और स्वीकृति मिलने पर विवाह सम्पूर्ण होने की घोषणा करता था। तदुपरान्त उपस्थित लोगों में छुहारे, खजूर, चीनी व मिश्री वाँटी जाती थी और वारातियों को प्रीतिभोज दिया जाता था। मुसलमानों में विवाह की रस्म वहुत ही सादी तो हुआ करती थी किन्तु उनमें भी हिन्दुओं की देखा-देखी दहेज की प्रथा प्रारम्भ हो गई। दहेज प्रथा के कारण साधारण मुसलमानों के लिए अपनी पुत्रियों का विवाह करना कठिन हो गया। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने अपने शासनकाल में अविवाहित लड़कियों के लिए दहेज के लिए राजकोप से धन देना प्रारम्भ किया। इससे मालूम पड़ता है कि १४वीं शताव्दी में मुसलमानों में दहेज की प्रथा विकट रूप

धारण कर चुकी थी। जिसके कारण शादी के लिए आसानी से लड़कों का मिलना बन्द हो गया।

हिन्दू परिवारों में यज्ञोपवीत के बाद विवाह संस्कार होता था। माता-पिता तथा परिवार के सदस्य ही विवाह तय कर दिया करते थे और पुरोहितों अथवा पण्डित द्वारा बताए गये शुभ मुहूर्त में विवाह कार्य प्रारम्भ हो जाता था। वर-वधू के घरों में पूजा-पाठ, तेल, खम्भ आदि अनेक रस्मों को पूरा करने का उत्तरदायित्व स्त्रियों व पण्डितों पर ही होता था। यह सभी रस्में विधि व विधान के साथ वैदिक नियमानुसार पूरी की जाती थी ताकि भूत-पिशाच, चुड़ैल, अपग्रह व अपशकुन से वर-वधू के परिवार मुक्त हो जाँय। पण्डितों के द्वारा बताए गए शुभ मुहूर्त में वर अपसे परिवार के लोगों, सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ वधू के घर को जाता था, जहाँ कि उसकी बारात का स्वागत वधू पक्ष के लोग करते थे। तदुपरान्त, वधू के पक्ष की ओर के पण्डित वर का पूजन, द्वारचार इत्यादि कराते थे और रात्रि में शुभ मुहूर्त में वैदिक नियमानुसार पूजा-पाठ, हवन के साथ वर-वधू से जीवन-पर्यन्त साथ रहने का आश्वासन लेकर अग्नि के सात फेरे लगवा कर उन्हें विवाह के सूत्र में बँधवा कर तथा आशीर्वाद देकर विवाह के सम्पूर्ण संस्कार पूर्ण किये जाते थे। वधू पक्ष अपनी स्थिति के अनुसार कन्यादान करता था और दहेज देता था। तत्पश्चात् वधू को लेकर वर तथा उसके परिवार के सभी लोग घर वापस लौट जाते थे जहाँ पुनः उत्सव मनाये जाते थे और खुशियाँ मनाई जाती थी। विवाहोपरान्त वर-वधू दोनों ही सांसारिक जीवन बिताते थे।

कवि नारायणदास ने छिताई वार्ता में छिताई व सौंरसी के विवाह के सम्बन्ध में लिखा है कि बारात की अगवानी की गई, मण्डप के नीचे बारात को बिठाया गया और वहाँ पर्दे के पीछे से स्त्रियों ने बारातियों को गालियाँ गा गाकर सुनाई।[८४] उसके पश्चात् षट्रस व्यंजनों के साथ भोजन हुआ। तदनन्तर विवाह तथा अन्य मंगल कार्य हुए। विवाह की रात्रि सभी स्त्रियाँ जागती रहीं। बारात विदा करते समय राजा रामचन्द्र देव ने हर बाराती को उपहार में पाँच-पाँच फिरोजे और लाल दिए, रत्न तथा चुन्नियाँ भी दी।

युवावस्था से वृद्धावस्था तक का लम्बा मार्ग तय करने के बाद जब आत्मा शरीर को छोड़ देती थी तो उसके परिवार के सदस्य उसके अन्तिम संस्कार की तैयारी करते थे। मुसलमानों में पार्थिव शरीर को दफना दिया जाता था और हिन्दुओं में चिता पर जला दिया जाता था। शरीर के पाँच तत्व युक्त प्रकृति के पाँच तत्वों में विलीन हो जाते थे। हिन्दुओं में शोक सन्तप्त परिवार १३ दिनों तक शोक मनाया करता था, जबकि मुसलमान ४० दिनों तक शोक मनाया करते थे। इन दिनों दोनों के यहाँ धार्मिक ग्रन्थों का पाठ दिवंगत आत्मा की शान्ति एवं शोक-सन्तप्त परिवार की शान्ति व धैर्य के लिए किया जाता था। इब्नबतूता के अनुसार किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के तीन दिन पश्चात् उसके परिवार के सदस्य उसकी कब्र पर जाते थे। कब्र के

चारों ओर कालीन पर रेशम के कपड़े विछाये जाते थे। कब्र पर फूल विछाये जाते थे और उस पर नारंगी व नींबू की डालियाँ लगाई जाती थीं और उन डालियों में फूल लगा दिये जाते थे। कब्र पर मेवा भी चढ़ा दी जाती थी। तत्पश्चात् वहाँ क़ुरान का पाठ होता था और उसके बाद उपस्थित व्यक्तियों को पान दिया जाता था और उन पर गुलाव जल छिड़का जाता था।[८६] **तारीख-ए-दाउदी** के रचयिता अब्दुल्लाह के अनुसार दिल्ली के अफ़गानों में यह परम्परा थी कि सियूम के दिन दिवंगत व्यक्ति के परिवार के लोग उपस्थित जनों को शरवत, पान तथा मिश्री दें। किन्तु वहलोल लोदी ने यह प्रथा बन्द कर दी और कहा कि वे केवल गुलाव व गुलावजल ही लोगों को भेंट करें।[८७] यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम परिवारों में मरणोपरान्त संस्कारों को पूर्ण करने की विधियों में बड़ा अन्तर था फिर भी दोनों का लक्ष्य एक ही था कि दिवंगत आत्मा को परलोक में शान्ति प्राप्त हो। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम समाज में मिलते-जुलते संस्कार थे, जिनका विधि-विधान से पालन हुआ करता था।

इस काल में शोक मनाने की विभिन्न विधियाँ थीं। अपने परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर मुसलमान परिवार के सदस्य अपने वस्त्रों को फाड़ डालते थे और काले वस्त्र पहनते थे। जब मुहम्मद ग़ौरी की मृत्यु का समाचार ऐवक को मिला तो उसने अपनी टोपी उतार ली और एक लवादा पहन लिया। अन्य लोगों ने अपने वस्त्र फाड़ डाले।[८८] शाहजादा मुहम्मद की मृत्यु की सूचना मिलते ही वलवन ने अपने कपड़े फाड़ डाले और अपने सिर पर धूल डाली।[८९] खान-ए-शहीद को हताहत देख कर उसकी सेना के लोगों ने अपने सिर पर धूल डाल ली।[९०] यहिया के अनुसार वलवन ने तीन दिन तक अन्त्येष्टि संस्कार मनाया।[९१] जब वलवन की मृत्यु हुई और उसका शव कुश्क-ए-लाल से वाहर ले जाया गया तो उस समय अनेक मलिकों व राज्याधिकारियों ने अपने सिर पर धूल डाली, अपने वस्त्र फाड़ डाले और वे नंगे पाँव शव के साथ-साथ कब्रिस्तान तक गये और कई महीनों तक भूमि पर सोये।[९२] अमीर खुर्द के अनुसार जब शेख निज़ामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई तो उसके परम शिष्य अमीर खुसरो ने अपना मुँह काला कर लिया और अपने कपड़े फाड़ डाले।[९३] इब्नवतूता के अनुसार हिन्दुस्तान में मुसलमानों में यह प्रथा थी कि जब उनके परिवार में किसी की मृत्यु हो जाय तो वे अपनी कमीज़ का कालर फाड़ दें।[९४]

मुसलमानों में दिवंगत व्यक्ति के परिवार द्वारा गरीबों को भोजन देने की भी परम्परा उस समय थी। यही नहीं कब्र पर मकवरा वनाना, वहाँ क़ुरान पढ़ने वालों की नियुक्ति करना, मकवरे की देखभाल करने के लिए व्यक्तियों को रखना आदि कुछ अन्य परम्पराएँ इस समय विद्यमान थीं।

एक सभ्य, सौम्य, प्रगतिशील तथा संगठित समाज के लिए आवश्यक था कि उसमें आचरण-व्यवहार के कुछ नियम हों। इस काल में हिन्दू-मुस्लिम समाज में अपनी मान-मर्यादा व अपना-अपना शिष्टाचार था। दोनों ही समाज अतिथि के आदर-

सत्कार पर बल दिया करते थे। हिन्दू समाज में अतिथि का आगमन ईश्वर के आगमन के समान समझा जाता था। मुस्लिम समाज में अतिथि को प्रधानता दी जाती थी। दोनों ही समाज में प्रारम्भ से ही बालक को शिष्टाचार सिखलाया जाता था कि वह किस प्रकार अन्य लोगों के साथ उठें-बैठें, बातचीत करें और उसके साथ सद्व्यवहार करें। अतिथि के आगमन पर खड़े होकर उसका सत्कार करना, उसके पास जाकर उसका अभिवादन करना या उसके अभिवादन को स्वीकार करना, उसे अपने हृदय से लगाना या उसका हाथ पकड़ कर अपने साथ लाकर आसन पर बिठाना और उसे पूरा सम्मान देना सभ्य समाज के सदस्य के लिए अनिवार्य था। कुलीन परिवारों में ही नहीं, साधारण से साधारण परिवारों में अतिथि-सत्कार का महत्व था। यदि अतिथि कोई गणमान्य व्यक्ति हुआ तो सुल्तान उससे हाथ मिलाता था तथा उसे अपने गले से लगाता था। इसी प्रसार से प्रीतिभोज या भोजन के समय भी कुछ औपचारिकताएँ थीं जिन्हें कि पूर्ण करना अनिवार्य था। यदि किसी अतिथि को भोजन के लिए आमंत्रित किया गया हो तो अतिथेय के लिए अनिवार्य था कि वह अतिथि के हाथ धुलाए या उसमें उसकी सहायता करे। पहिले अतिथेय अपने हाथ धोता था उसके बाद अतिथि के हाथ धुलाता था। तदुपरान्त भोजन परोसा जाता था। उस समय भी अतिथि का विशेष ध्यान रखा जाता था। भोजन समाप्त होने के पश्चात् अतिथि को पान देना, उसे उपहारों से सम्मानित करके विदा देना भी अतिथेय का पुनीत कर्तव्य था। भोजन करते समय मुँह से खाने की आवाज़ निकलना, उँगलियों को चाटना, जोर-जोर से बातचीत करना, जल्दी-जल्दी खाना बुरा समझा जाता था। सूफी सन्तों के खानक़ाहों में यह परम्परा थी कि किसी भी आगन्तुक को बिना कुछ खिलाये, शरबत या पानी पिलाये न जाने दिया जाता था। उस समय यह विचारधारा थी कि यदि कोई आगन्तुक बिना खाए-पिये जाता था तो यह समझा जाता था कि वह किसी मृत व्यक्ति के घर से लौटा है।

मध्यवर्गीय तथा निम्न वर्ग के परिवारों में व्याप्त शिष्टाचार का कोई भी विवरण समकालीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है। मध्यमवर्गीय हिन्दू-मुस्लिम परिवारों में, जो कि सुल्तान व अमीरों के जीवन से प्रभावित थे, भी खान-पान के मामलों में उसी प्रकार के शिष्टाचार का पालन होता होगा। हिन्दू समाज में, केवल विशेष अवसरों को, जैसे विवाह, संस्कार अथवा तीज-त्योहार, जब कि परिवार के सभी सदस्य एक साथ पंगत में बैठ कर भोजन किया करते थे, छोड़कर परिवार के सदस्य प्रायः अलग-अलग बैठ कर खाना खाते थे। इसके विपरीत मुसलमान परिवारों में सभी एक साथ भोजन किया करते थे।

इस समय कुलीन वर्गों तथा मध्यवर्गीय परिवारों में एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव प्रकट करने की परम्परा थी। जिस प्रकार सुल्तान का सम्मान किया जाय, उसके प्रति आदर प्रदर्शित किया जाय और उसे किस प्रकार से उपहार दिये जाँय, इनके

सम्बन्ध में निर्धारित नियम व परम्पराएँ थीं। वलवन के समय दरवार के नियम बने और दरबार में शिष्टाचार पर विशेष बल दिया गया। उसने ईरानी दरवार की परम्पराएँ यहाँ लागू की। ईरान में शासक का अभिवादन ज़मीन तक झुक कर सलाम करने व ज़मीन को छूने (जमीनबोसी) तथा सुल्तान के पाँवों को चूमने (पयवोस) की रीति थी। वलवन ने पयवोस पर वल दिया। उसके समय में लोग सिंहासन के सन्मुख नत-मस्तक होकर अभिवादन करते थे। इस काल में खान, अमीर, गणमान्य व्यक्ति सभी महल में आकर सुल्तान का अभिवादन करते थे। समकालीन परम्पराओं के अनुसार अमीर सुल्तान को समय-समय पर भेंट दिया करते थे। सुल्तान न केवल अमीरों से वरन् राजकुमारों से भी उपहार प्राप्त किया करता था। ऐसे अनेक अवसर होते थे जब कि सुल्तान उपहार प्राप्त किया करता था या उपहार दिया करता था। सुल्तान अमीरों से उनके पद के अनुसार उपहार प्राप्त करता था और उन्हें उनके पदा-नुसार उपहार भी दिया करता था। किसी अभियान पर से जव सुल्तान वापस आता था तो राजधानी में विशेष दरवार का आयोजन किया जाता था। जव कभी वह शिकार खेलकर आता अथवा त्योहारों पर भी ऐसे दरबार का आयोजन होता था। इन अवसरों पर अमीर सुल्तान को उपहार दिया करते थे और स्वयं भी सुल्तान से उपहार प्राप्त करते थे।[९५] सुल्तान को दिये जाने वाले उपहारों में हाथी, घोड़े, दास, ऊँट, शस्त्र, वहुमूल्य वस्तुएँ आदि हुआ करती थीं। अमीरों को खिलअतें अथवा वस्त्र आदि उपहार दिये जाते थे। इस प्रकार दरवार में उपहार देने की परम्परा दरवारी शिष्टाचार का एक अंग था। दरबार में कोई भी व्यक्ति एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर सकता था और यदि करता था तो अपने मुँह पर रूमाल रख कर, वह वहुत धीरे से कान के पास मुँह ले जाकर कहता था, ताकि अन्य कोई व्यक्ति न सुन सके या दरवार की कार्यवाही में बाधा न पड़े। दरबार में यदि किसी व्यक्ति को अपने अभियोग के लिये माफी माँगनी होती थी तो वह सिर झुकाकर और अपनी गर्दन में चारों ओर पगड़ी लपेट कर उपस्थित होता था और माफी माँगता था।[९६] किसी के सिर से पगड़ी उतार लेना या उतरवा देना उस व्यक्ति का अपमान समझा जाता था। अफीफ ने लिखा है कि सुल्तान फिरोज़-शाह ने मलिक नायब वरवक को अनेक अक्ताएँ व राज कार्य सौंप रक्खे थे। मलिक नायव वरवक ने अपनी ओर से उन अक्ताओं व परगनों में मुक्ता नियुक्त कर दिये थे। जब कोई मुक्ता अपनी अक्ता से उसके पास आता तो वह अपने पदाधिकारियों को आदेश देता कि वे उससे हिसाव-किताव ले। जव उनके जिम्मे धन निकलता तो मलिक नायव अपने अधिकारियों को आदेश देता कि उस दुष्ट के सिर से पगड़ी उतार ली जाय।[९७]

अन्धविश्वास

इस काल में लोगों के आचरण तथा व्यवहार को सामान्य और उत्तम वनाए रखने के लिए इस वात पर वल दिया गया कि वे धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करें, उलमा

व सन्तों का उपदेश सुनें, ईश्वर से डरें और सद्मार्ग पर चलें। हिन्दू-मुस्लिम समाज में इसी कार्य हेतु एक सुनिश्चित वर्ग था जिसका कर्त्तव्य था कि वह समाज के नैतिक मूल्यों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने में लगा रहे। किन्तु फिर भी मध्य-कालीन समाज अन्धविश्वास तथा भ्रष्टाचार का शिकार निरन्तर बना रहा और उसमें अनेक बुराइयाँ पनपती रहीं। यह सही है कि इस काल में धर्म अफीम की भाँति था और वह सभी पर पूरी तरह से हावी था। किन्तु अनेक धर्मों, मतों, सूफी सम्प्रदायों ने अनेक अन्धविश्वासों में विश्वास करके लोगों की तर्क और चिन्तन-शक्ति न केवल कम कर दी वरन् आध्यात्मिकता की ओर से उन्हें विमुख कर दिया। हिन्दू तो पहले से ही अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों में विश्वास करते थे और सदैव शकुन व अपशकुन देखकर ही कार्य किया करते थे, किन्तु मुसलमान भी अन्धविश्वास से अपने को दूर नहीं रख सके। हिन्दुओं में कोई भी काम बिना ज्योतिषी या पण्डित से परामर्श लिए हुए नहीं करते थे। इसी प्रकार से मुसलमान भी बिना कुरान से शुभ मुहूर्त निकाले हुए कोई शुभ कार्य नहीं करते थे। उदाहरणार्थ, शेख बदरुद्दीन ग़जनवी ने लाहौर पहुँच कर ख्वाजा बख्तियार काकी का शिष्य हो गया। वह हमेशा कुरान से पूर्व सूचनाएँ निकाला करता था।[९८] सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक भी शकुन विचार में विश्वास करता था और क़ुरान की कुछ अंशों से सूचनाएँ निकालता था। वह इन पूर्व सूचनाओं से मालूम किया करता था कि कौन से व्यक्ति खिलअतें और अक्ता पाने के अधिकारी हैं[९९] हिन्दुओं में मछली को देखना, स्त्री के सिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा देखना, ग्वालिन द्वारा दही बेचने की पुकार को सुनना, माली द्वारा फूल लाना, साँप के सिर पर कौए का बैठना, दाहिनी ओर से जंगल से एक हिरन का भागना, बाईं ओर से एक तीतर या चकोर का बुलाना या गधे का चिल्लाना शुभ शकुन समझा जाता था। छींक से भी हिन्दू शकुन व अपशकुन निकालते। यात्रा पर जाते समय वे पहले ही शकुन का विचार कर लेते थे।

यदि साँप द्वारा काटा हुआ व्यक्ति उस पानी को जिस पर क़ुरान की एक अमुक पंक्ति पढ़ दी गई हो, पी लेता था तो उसे शुभ माना जाता था। यात्रा पर जाते समय अथवा वहू के घर में प्रवेश करते समय किसी का छींकना अपशकुन समझा जाता था। कविजन नारायणदास ने छिताई वार्ता में लिखा है कि जिस समय छिताई ने वहू के रूप में अपने पति के घर में पैर रखा उसी समय छींक हुई और उसे अपशकुन माना गया।[१००] लोग घर में प्याज व लहसुन को भूनना अपशकुन मानते थे। घर में रात को झाड़ू लगाना अपशकुन समझा जाता था। घर की देहरी पर बैठना भी अपशकुन का प्रतीक था। कंघी के दो टुकड़े होना घर में आने वाली दरिद्रता का बोध कराती थी। एक ही कंघी का दो व्यक्तियों द्वारा प्रयोग करना उनमें बँटवारा करने का पूर्वा-भास करती थी। कुछ लोग रात्रि में दही खाना अपशकुन समझते थे। इसी प्रकार से कुछ दिन किसी कार्य के लिए अच्छे व बुरे समझे जाते थे। सोमवार तथा शनिवार

को पूर्व की ओर यात्रा करना, परीवा के दिन घर से यात्रा के लिए प्रस्थान करना, दिशा शूल में यात्रा करना आदि बुरा माना जाता था। मंगल, बुद्धवार, वृहस्पतिवार और शुक्रवार के दिन शुभ माने जाते थे। मंगल व शनिवार के दिन नया कपड़ा पहनना अशुभ माना जाता था। एक बार कुछ लोगों ने शेख निजामुद्दीन औलिया से पूछा कि लोग बुधवार को शुभ दिन क्यों मानते हैं तो उन्होंने मुस्करा कर उत्तर दिया कि उसी दिन अधिकांश सन्तों का जन्म हुआ है।[१०१] इस काल में अन्धविश्वास की कोई सीमा न थी। यदि कोई शिशु खराब ग्रहों में उत्पन्न होता था तो उसका पाप ग्रहों से छुटकारा दिलाने के लिए ग्रह शान्ति करवाई जाती थी अन्यथा उस शिशु को किसी अन्य व्यक्ति को पालन-पोषण करने के लिए दे दिया करते थे। कभी-कभी पाप ग्रहों से अपनी सन्तति को दूर रखने के लिए लोग उसका नाम भी उसी प्रकार रख दिया करते थे।[१०२] हिन्दुओं में यदि कोई शिशु मूल में उत्पन्न होता था तो मूल शान्ति करवाया जाता था। पिता अपने वच्चे को उस समय तक नहीं देखता था जब तक कि मूल शान्ति न कर दिया गया हो।

पूर्व मध्यकालीन समाज को प्राचीनकाल से एक और वुराई विरासत में प्राप्त हुई थी। पूर्वकाल की अपेक्षा इस काल में लोगों की आस्था और उनका विश्वास ज्योतिषशास्त्र में अत्यधिक वढ़ गया था।[१०३]

इस काल में लोग भूत-प्रेत, चुड़ैल, जादू-टोना, झाड़-फूंक आदि में भी विश्वास किया करते थे। इब्नबतूता ने एक ऐसी स्त्री, जो झाड़-फूँक करती थी (कफ़तार) के सम्बन्ध में लिखा है जिसे कि जीवित जला दिया गया। उसकी राख को अनेक स्त्री-पुरुष ले गए और वे उस राख को एक वर्ष तक अपने शरीर पर रगड़ते रहे ताकि भूत-प्रेत का उन पर कोई प्रभाव न हो।[१०४] विहार का प्रसिद्ध सूफी सन्त हज़रत शरफुद्दीन यहिया मनेरी भी जादू-टोने में विश्वास करते थे। उन्हें किसी ने वताया कि चोरी का पता लगाने के लिए वधवा (टोंटीदार पानी के लोटे) को घुमाया जाता है, क़ुरान की सुरा-ए-यासीन को अनाज के दाने पर इस विश्वास में पढ़ा जाता है कि वह दाना जो अभियोगी होगा उसके गले में फँस जावेगा। उन्होंने स्वयं एक वार वताया कि उन्होंने एक वछड़े को भूमि पर गिरते हुए व मरते हुए देखा। पड़ोस की कुछ स्त्रियों के अनुसार वह वछड़ा एक ग्वालिन के जादू-टोना टुटका के कारण मरा। हामिद कलन्दर के अनुसार एक वार जव वावा फरीद गजशंकर रोगग्रस्त हुए तो उनका रोग मालूम न किया जा सका। उनके पुत्र वदरुद्दीन सुलेमान ने स्वप्न में देखा कि कोई व्यक्ति उससे कह रहा है कि उसका पिता जादू-टोने का शिकार हुआ है और यह जादू-टोना अजोधन के निवासी शिहाव के पुत्र ने किया है। अतः वह शिहाव की कब्र के पास जाकर कुरान पढ़े। वदरुद्दीन सुलेमान ने ऐसा ही किया तदुपरान्त जव उसने कब्र के पास की मिट्टी खोदी तो उसे आटे का वना हुआ आदमी का पुतला जिसके गले में घोड़े का वाल वँधा हुआ था मिला और उस पुतले में सुइयाँ

लगी हुई थीं। जैसे ही उसने उस पुतले में से एक-एक सुइयाँ निकालनी प्रारम्भ की बाबा फरीद स्वस्थ होने लगे। अन्त में उसने उस पुतले को जब तोड़कर पानी में फेंक दिया तो बाबा फरीद पूरी तरह से ठीक हो गए। इसी प्रकार शेख निज़ामुद्दीन औलिया भी जादू-टोने के कारण दो मास बीमार रहे। अन्त में झाड़-फूंक करने वाले ने उन्हें ठीक कर दिया और उसी में उन्हें बताया कि यह टोना-टुटका किसने किया था।[१०५]

हिन्दुओं को प्राचीन काल में सन्तों व औघड़ों की चमत्कार-शक्ति में विश्वास था। यही स्थिति इस काल में भी रही। वे पूर्वतः साधु-सन्तों के चमत्कारों में विश्वास करते रहे और उनकी कृपा पर आश्रित रहे। उत्तरी भारत में सूफी सम्प्रदायों की विचारधारा के विकास का प्रमुख कारण सूफी सन्तों द्वारा चमत्कार का प्रदर्शन था। चिश्ती सम्प्रदाय के लगभग सभी सन्त योगी चमत्कार करने में प्रवीण थे। उनके चमत्कार से रोगी ठीक हो जाते थे। लोगों की विपदाएँ दूर हो जाती थीं और स्त्रियों को पुत्र प्राप्त करने की मनोकामना पूरी हो जाती थी। जो भी कोई इन सन्तों के पास जाता उसकी हार्दिक इच्छा पूर्ण हो जाया करती थी। अनेक लोग इन सूफी सन्तों से आशीर्वाद और उनसे भभूति प्राप्त करने के लिए जाते थे। कुछ सन्त तो भूत-प्रेत से श्रद्धा करने के लिए तावीज़ भी बनाकर दिया करते थे। इन तावीजों में दुखदर्द दूर करने, स्त्रियों के ठीक तरह से बच्चा होने, बच्चे को टोना-टुटका से दूर रखने की शक्ति होती थी। इसीलिए गर्भवती स्त्रियाँ अच्छी तरह से बच्चा पैदा करने के लिए तावीज़ पहन लिया करती थीं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ एवं पुरुष तथा धार्मिक व्यक्ति सूफी सन्तों के पास तावीज प्राप्त करने के लिए जाते थे। अपने पीर के आग्रह पर शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने तावीज़ देना प्रारम्भ किया और जब उससे पूछा गया कि वे तावीज़ क्यों देते थे तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसमें बड़ी शक्ति होती है। शेख निज़ामुद्दीन औलिया अपने पीर के गिरे हुए बाल सुरक्षित रखते थे और और उन्हीं की आज्ञा से कुछ लोगों के रोग ठीक किया करते थे। सूफी सन्तों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यावसायिक लोग थे जो कि तावीज़ बनाकर दिया करते थे।[१०६]

इस काल में यह विश्वास किया जाता था कि प्रेत आत्माएँ भटकती हैं और वे कभी-कभी व्यक्तियों को सताती हैं। लोग यह भी विश्वास करते थे कि बच्चों को किसी की बुरी नज़र भी लग सकती है। अमीर हसन सीजी के अनुसार एक बच्चा नज़र लगने से जब रोगग्रस्त हो गया तो शेख निज़ामुद्दीन औलिया की कृपा से ठीक हुआ।[१०७] बच्चों को कुदृष्टि से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल का टीका लगा दिया जाता था। उन्हें काले धागे की माला पहना दी जाती थी या उनके हाथ में काला धागा बाँध दिया जाता था। उनके सिरहाने चाकू या लोहे की बनी हुई काजल की डिब्बी रख दी जाती थी या उनके खटोले में शेर का नाखून बाँध

दिया जाता था। इस काल में लोगों का विश्वास पीर की मजारों पर जाकर मनौती मानने में भी था। वड़े-वड़े पीरों या सन्तों की दरगाहों के वन जाने से अन्धविश्वास की मात्रा वढ़ी। हिन्दू-मुस्लिम समाज के विभिन्न स्त्रियाँ व पुरुष अपने दुःख दूर करने या मनौती मानने के लिए इन दरगाहों पर जाते थे और मनौती पूरी होने पर वहाँ चादर, फूल, फल, धन चढ़ाते थे। इस सम्बन्ध में भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। जव शेख निजामुद्दीन औलिया की माँ बीमार पड़ी तो उन्होंने उससे कहा कि वह किसी सन्त की दरगाह में जाकर उसके स्वस्थ होने के लिए फातिहा पढ़े।[१०८] जव सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी रोगग्रस्त शैया पर पड़ा हुआ था तो उसके पुत्र खिज्रखान ने इन्द्रपत में जाकर मकवरों व कब्रों के दर्शन किये तथा अपने पिता के स्वस्थ होने के वारे में दुआ माँगी।[१०९] इसी प्रकार से अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए लोग मकवरों व दरगाहों व कब्रों के दर्शनार्थ जाया करते थे और वहाँ फातिहा पढ़ते थे।[११०]

उपरोक्त अन्धविश्वासों के अतिरिक्त इस काल में लोगों के मन में यह भावना उपार्जित हुई कि प्रकृति का प्रकोप केवल ईश्वर के आक्रोश के कारण होते है। अकाल के समय इसीलिए ईश्वर की प्रार्थना की जाती थी। वर्षा के लिए मुसलमान नमाज़-ए-इश्तिका पढ़ा करते थे। एक वार दिल्ली में जव भीषण अकाल पड़ा तो लोग शेख निज़ामुद्दीन अब्दुल मुवय्यद के पास गए और उनकी प्रार्थना के प्रभाव के वर्षा हुई।[१११]

इन अन्धविश्वासों ने भारतीय समाज को रूढ़िवादी, पलायनवादी, निराश, दु:सहाय, साधु-सन्तों पर आश्रित वना दिया था। न केवल समाज का शिक्षित वर्ग वरन् अन्य वर्ग भी उसके शिकार हो चुके थे। इस काल की सामाजिक वुराइयों की ओर जव हम ध्यान देते हैं तो एक ओर तो मदिरापान, जुआ, व्यभिचार व विलासमय जीवन दृष्टिगोचर होता है तो दूसरी ओर वेश्यागमन, गुदाभोग, दुराचार की झलक हमें यदा-कदा मिलती है। यद्यपि प्रत्येक काल में तथा प्रत्येक देश में कुछ न कुछ सामाजिक वुराइयाँ तो रहती ही हैं किन्तु उनका अधिक या कम होना राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इतिहासकार वरनी जिसने कि वलवन से लेकर सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के राज्यकाल के प्रारम्भिक सात वर्षों को देखा, की पैनी दृष्टि ऐतिहासिक घटनाओं के मध्य यदा-कदा इन सामाजिक वुराइयों पर टिक जाती थी। वह वेश्यागमन, कलवरियों, जुआड़ियों तथा रण्डियों की भर्त्सना करता है और **फतवाए जहाँदारी** में सुझाव देता है कि हिजड़ों को स्त्रियों की भाँति न तो सुसज्जित करने देना चाहिए और न ही उन्हें उनकी भाँति रोने-चिल्लाने देना चाहिए।[११२] सुल्तान कैकुवाद के शासनकाल में, वलवन के शासन-काल के २० वर्षों में जिस प्रकार लोगों का संयमित जीवन था, वह समाप्त हो गया। यथा राजा तथा प्रजा की कहावत चरितार्थ हो गई। वरनी लिखता है कि सुल्तान कैकुवाद के गद्दी पर वैठते ही अनुशासन एवं नैतिकता के सभी पाठ ताक पर रख दिये

गये, लोग विलास तथा सुख-भोग में मस्त हो गये। सुल्तान काम-वासनाओं को राज्य व्यवस्था तथा शासन प्रवन्ध से वढ़ कर समझने लगा। वलवन के राज्यकाल के ६० वर्षों में जो कठोरता, भय, आतंक तथा ऐश्वर्य लोगों के हृदय में वैठ गया था वह उनके हृदय से निकल गया और सभी कार्यों में विघ्न पड़ने लगा। जहाँ अनुभवी वृद्ध और अति कुशल वादशाह के शासन व्यवस्था के वैभव ज्ञान, दण्ड, सज़ा, वन्दीगृह में डाल दिये जाने की आशंका और अन्य कष्ट पहुँचाने के भय से खान और मन्त्रियों के हृदय में भोग-विलास, इन्द्रिय परायणता, मदिरापान और व्यभिचार का ध्यान भी न होता था और पदाधिकारियों तथा शासन के सहायकों की जवान पर भोग-विलास, इन्द्रिय परायणता, परिहास, विदूषकों, गायकों के नाम भी न आते थे, अव वहाँ यह वात भी न रही।" वही इतिहासकार आगे लिखता है कि "आनन्द मनाने वाले, महफिल करने वाले, विलासप्रिय, चुटकुलेवाज, विदूषक जो कि वलवन के काल में हताश व निराश हो चुके थे और संसार के एक कोने में पड़े हुए थे और जिनको पूछने वाला भी कोई न था, अव अपने-अपने कार्य में पुनः भाग गये। प्रत्येक दीवार के पीछे से कोई न कोई रमणी दृष्टिगोचर होने लगी और प्रत्येक कोठे से कोई न कोई सुन्दरी अपनी छवि प्रदर्शित करने लगी। प्रत्येक गली में मधुर स्वर वाले और गज़ल गाने वाले उत्पन्न हो गये। हर मुहल्ले में गाने-वजाने की आवाजें आने लगी। योगियों तथा विलासप्रियों के दिन फिर गये, गायक एवं सुन्दरियों के भाग्य का सितारा चमक उठा और रमणियों तथा सुन्दरियों का भाग्य चाँद की तरह चमकने लगा। इस काल में मदिरा का भाव दस गुना वढ़ गया। मदिरा तथा नशीली वस्तुएँ वेचने वालों की थैलियाँ सोने व चाँदी के तन्कों से भर गई। वरनी के अनुसार इस काल में सुल्तान कैकुवाद व अमीरों की विलासी प्रवृत्ति को देखकर वहुत से निम्न वर्ग के लोगों ने अपनी पुत्रियों को इश्कवाज़ी करना, घुड़सवारी करना, गेंद खेलना, भाला चलाना, अपने अंग-प्रत्यंग द्वारा हाव-भाव दिखाना और किस प्रकार लोगों को आकर्षित किया जाता है, यह सभी कुछ सिखलाने लगे ताकि वे उन्हें सुल्तान व अमीरों के सन्मुख प्रस्तुत कर धन कमा सकें। रमणियों को अनेक कलाएँ सिखाई जाने लगी। उन्हें फारसी में वात करना तथा गाना सिखाया गया। अद्वितीय दासियों की पुत्रियों का शृङ्गार इस प्रकार किया जाता था कि लोग उन पर मोहित होकर आसक्त हो जाँय। अपने पिता वुगराखान से अवध में भेंट करने के वाद जव सुल्तान कैकुवाद राजधानी दिल्ली को लौट रहा था तो वह एक अल्प आयु के वच्चे के हाव-भाव को देखकर इतना मुग्ध हो गया कि उसे अपने पद व प्रतिष्ठा का भी ध्यान न रहा।[११३] सुल्तान कुतुवुद्दीन मुवारकशाह खिल्जी के समय भोग-विलास व व्यभिचार में पुनः वृद्धि हुई। वह अपनी स्त्रियों के साथ मदिरापान करने व भोग-विलास में ग्रस्त रहता था।[११४] वरनी ने उसके सम्वन्ध में लिखा है कि वह स्त्रियों के वस्त्र तथा आभूषण धारण करके मजमें में आता था। वह अपनी स्त्रियों से तथा व्यभिचारी विदूषकों से मलिक आईन उल मुल्क मुल्तानी तथा मलिक क़िरावेग को वुरी-वुरी गालियाँ दिलवाता था। उसने

तोवा नामक गुजराती मसखरे को दरबार में सम्मान प्रदान किया। वह भाँड़ मलिकों की माँ-बेटियों को दरबार में गालियाँ दिया करता था। कभी-कभी दरबार में वह नंगा होकर आता था और मलिकों के वस्त्र पर मल-मूल कर देता था[११५] और उन्हें बुरी-बुरी गालियाँ देता था। सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी खुसरो खाँ पर आसक्त था और उसके साथ गुदाभोग किया करता था।[११६] इस काल में व्यभिचारिता इतनी बढ़ गई थी कि सुन्दर दास, दासियों, ख्वाजासरायों (हिंजड़ों) का दाम ५-५ सौ और हजार-हजार तथा २-२ हजार तन्के हो गया।[११७] सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के वध के बाद फिर कभी इतना बुरा समय न आया। उसके शासनकाल में लोगों का चारित्रिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।

दिल्ली के सुल्तान तो अपने हरम में विलासी जीवन व्यतीत किया ही करते थे, उनके अमीर भी इस मामले में पीछे न रहे। इस काल में अनेक युवतियाँ जो कि रखैल बनने के लिए उपयुक्त थीं, सुलभतः उपलब्ध थीं। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के मन्त्री खान-ए-जहाँ के हरम में रोम और चीन की २,००० सुन्दर युवतियाँ थीं। इस प्रकार से सभी अमीर अनेक संख्या में सुन्दर दासियों को अपनी काम-पिपासा को शान्त करने के लिए रखा करते थे। मुसलमानों में बहुविवाह की प्रथा और विशाल हरम रखने की परम्परा में यदि बुराई नहीं, तो अच्छाई भी नहीं थी। उससे न केवल उनके सम्पूर्ण परिवार पर प्रभाव पड़ता था वरन् उनके स्वस्थ और स्वच्छ जीवन पर भी प्रभाव पड़ता था। इन्शाए-महरू में आईन-उल-मुल्क महरू के एक पत्र से ज्ञात होता है कि मुल्तान में कुछ लोग बिना दूसरे व्यक्तियों द्वारा तलाक की गई स्त्रियों से विवाह कर लिया करते थे।[११८] पूर्व प्राचीन काल में कापालिकों की भाँति पूर्वमध्यकाल में मुसलमानों में दो ऐसे मतों, मुलहिदा तथा इब्भितिया मतों का विकास हुआ जिसके अन्तर्गत एक निर्धारित रात्रि में सभी पुरुष-स्त्रियों, पुत्र-पुत्रियों, भाई-बहनें एक साथ एकत्र हुआ करते थे, मदिरापान करते थे और बिना भेदभाव के संभोग किया करते थे।[११९]

इस काल में प्राचीन काल की अपेक्षा वेश्यावृत्ति बढ़ी। उसके कई कारण थे। १३वीं शताब्दी से पूर्व की शताब्दियों में गज़नवी व ग़ौरियों के निरन्तर आक्रमणों के कारण अनेक समृद्धशाली परिवार उजड़ गये और निःसहाय स्त्रियों को अपना पेट भरने के लिए वेश्या का पेशा अपनाना पड़ा। इस समय विदेशी सैनिकों में, जो कि भारतवर्ष में अकेले आए थे, उनकी बड़ी माँग थी। वे अपनी वासना को शान्त करने के लिये कोई भी मूल्य दे सकते थे। इसके अतिरिक्त उमरावर्ग तथा मध्यवर्ग में पहले की अपेक्षा अब अत्यधिक धन होने के कारण, विलासी प्रवृत्ति भी दस गुना बढ़ गई थी। मादक वस्तुओं का सेवन करने से वासना बढ़ी और उससे वेश्यावृत्ति। इस समय वेश्यागमन हिन्दू व मुसलमानों दोनों में ही व्याप्त था, क्योंकि वह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता था। सैय्यद नुरुद्दीन मुबारक गज़नवी ने सुल्तान इल्तुतमिश के

शासनकाल में इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि रण्डियाँ नहीं होतीं तो अनेक बदमाश अपनी वासना की तृप्ति करने के लिए अन्य लोगों के हरम पर हाथ डालते। अतएव, जो वेश्याएँ पैसा लेती हैं और वे अपने पापी कर्मों को छोड़ना चाहती हैं तो वे खुल्लमखुल्ला नहीं वरन् गुप्त रूप से अपना व्यवसाय करती रहें। यदि यह वेश्याएँ अपने ही घरों में धन्धा करती हैं और सार्वजनिक स्थानों में नहीं जाती हैं तो उनके व्यवसाय को बन्द नहीं करना चाहिए।[१२०] इस प्रकार से समाज के एक ऐसे वर्ग को देखते हुए जो कि कामातुर रहता था, शेख नुरुद्दीन मुबारक गज़नवी ने वेश्यागमन की अनुमति प्रदान की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में जैसे-जैसे शहरीकरण का विस्तार हुआ, वैसे-वैसे प्रत्येक शहर में एक मुहल्ले में वेश्याओं ने अपना घर दूसरों की सेवा करने के लिए बना लिया। काम भी मनुष्य की एक आवश्यकता उस काल में थी और आज भी है। अतएव चकलाघरों का होना भी नितान्त आवश्यक हो गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने जब ४,७५००० सैनिकों को दिल्ली में भर्ती किया तो उनके नैतिक आचरण को बनाये रखने के लिए उसने यह आवश्यक समझा कि वेश्यागमन पर कुछ प्रतिबन्ध लगाया जाय। अमीर खुसरो ने **खजाइनुल फुतूह** में लिखा है कि अलाई काल में स्थिति यह थी कि इब्राहतियों में माताएँ अपने पुत्रों, भांजियाँ मामाओं के साथ अपना मुँह काला करती थीं और पिता अपनी पुत्री के साथ विवाह कर लेता था, भाई तथा बहिनों के बीच में भी इसी प्रकार के सम्बन्ध हुआ करते थे।[१२१] अलाउद्दीन खिल्जी ने वेश्याओं को विवाह करने पर बाध्य कर दिया, किन्तु यह पग केवल अल्पकालीन सिद्ध हुआ। १५वीं शताब्दी में विद्यापति ने जौनपुर में वेश्याओं को देखा। वे वेश्याएँ जिनके कोई पति न था, वे भी माँग में सिन्दूर लगाती थीं। वे अपने शरीर को अलंकृत करती थीं, अपने मुख पर सुन्दरता के लिए विन्दु बनाती थीं तथा विभिन्न रंगों से अपने होठों को रँगती थीं। वे बहुमूल्य वस्त्र पहनती थीं और अपने बालों को सँवारती थीं। वे पुरुषों की ओर मुस्करा कर देखती थीं। बालों में फूल लगाती थीं। उनमें से कुछ अधेड़ थीं, कुछ जवान और अन्य हँसी-मजाक करने वाली थीं।[१२२] इस प्रकार इस काल में वेश्यागमन शहरों में बराबर बना रहा।

हिन्दू-मुस्लिम समाज में, धार्मिक नियमों एवं उत्कृष्ट सामाजिक परम्पराओं के बावजूद भी ऐसे अनेक लोग थे जो कि उन नियमों का पालन न कर भोग-विलास, मदिरापान व वेश्यागमन में लिप्त रहा करते थे। ऐसे व्यक्तियों की गिनती बहुत ही कम थी; क्योंकि उसके लिए धन की आवश्यकता होती थी। इस काल में धन कुछ ही वर्गों के हाथों में सीमित था। कभी-कभी बड़े-बड़े धार्मिक, शिक्षित व पवित्र व्यक्ति भी चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार हो जाते थे। मौलाना शम्स असदी एक खूबसूरत दासी पर इतना आसक्त हो गया कि उसने नमाज़ पढ़ना बन्द कर दिया। वह एक महान विद्वान् और शिक्षाविद् था किन्तु कामुक था। अमीर खुसरो के अनुसार मुअज्जिन भी मदिरापान किया करते थे, यहाँ तक कि काज़ी भी नमाज़ नहीं पढ़ते थे और

मदिरापान किया करते थे। रशीद ने जो उदाहरण ऐसे व्यक्तियों के दिए हैं वे केवल अपवाद के रूप में ही लिए जा सकते हैं। सभी सुल्तानों, अमीरों, खानों, मलिकों, राज्य के अधिकारियों, धार्मिक व्यक्तियों तथा अन्य लोगों का चरित्र एक समान न था और न ही सभी में चारित्रिक दुर्बलताएँ ही थीं। यदि समाज में यह बुराइयाँ न हो व पाप करने वाले न हों तो धार्मिक उपदेश देने वालों की उसे क्यों आवश्यकता पड़े और यह समाज स्वर्ग न हो जाय। एक मनुष्य का पाप दूसरे को पुण्य के मार्ग पर ले जाता है। यह एक ऐसा क्रम है जो कि चलता ही रहता है।

भारतवर्ष में हर युग में भ्रष्टाचार था तथा मध्यकाल कोई अपवाद नहीं था। इस युग में भी लोगों में घमण्ड, धन की लोलुपता, राज्य की ओर से अत्याचार और निम्न वर्ग का शोषण करने की भावना विद्यमान थी। बलबन के शासनकाल में मलिक क़िरावेग का पिता मलिक बक़बक था, जो कि ४००० सवारों का मालिक तथा बदायूँ का अक्तादार था, ने मदिरा के नशे में अपने फर्राश को इतने कोड़े लगाये कि वह मर गया।[२३] इसी प्रकार मलिक क़ीराँ अलाई के पिता हैबत खाँ ने, जो कि अवध की अक्ता का स्वामी था, ने नशे में एक आदमी को मार डाला।[१२४] जब अमीन खाँ विद्रोही तुग़रिल बेग की सेना से पराजित होकर अवध वापस आया तो उसे बलबन ने फाँसी दे दी।[१२५] तुग़रिल बेग के विद्रोह को दबाने के पश्चात् बलबन ने उसके पुत्रों, सम्बन्धियों, पदाधिकारियों, दासों आदि की हत्या करवा दी।[१२६] मुहम्मद तुग़लक भी पदाधिकारियों व अमीरों को कठोर दण्ड दिया करता था। इस काल में समाज के अन्य वर्गों में भी भ्रष्टाचार व्याप्त था। अमीर व राज्य के कर्मचारी घूस लिया करते थे। बरनी ने **दीवान-ए-अर्ज़** में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। बलबन के शासनकाल में **रवाते अर्ज़** एमाद-उल-मुल्क अपने कर्मचारियों से कहा करता था कि वे किसी भी मलिक या अमीर से रिश्वत न लिया करें; क्योंकि वे उसका दुगुना-तिगुना प्रशासन से वसूल कर लेंगे।[१२७] बरनी ने अन्यत्र लिखा है कि शम्सी काल के बूढ़े अक्तादार बलबन के शासनकाल तक **दीवान-ए-अर्ज़** के मुन्शियों को घूस दे कर घर में ही बैठे रहते थे।[१२८] यह अक्तादार नायब अर्ज़-ए-ममालिक और उसके कार्यालय के कर्मचारियों के लिए शराब, बकरे, भेड़े, चिड़ियाँ, कबूतर, तेल, अनाज अपने घरों में भिजवाते रहते थे और स्वयं घर पर बैठे रहते थे। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल के प्रारम्भ तक शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की झलक बरनी की **तारीख-ए-फिरोज़शाही** में मिलती है। अलाउद्दीन खिल्जी ने काजी मुगीसउद्दीन से पूछा कि जो क़ारकून रिश्वत लेते हैं, हिसाब-किताब में घोटाला करते हैं या लगान वसूल करके उसमें से धन गबन कर लेते हैं तो उनके सम्बन्ध में शरा में क्या आज्ञा है? इससे ज्ञात होता है कि उस समय **कारकून, मुतसर्रिफ** और **आमिल** तथा **दीवान-ए-बज़ारत** के अन्य अधिकारी बेइमान व घूसखोर थे।[१२९] फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में शाही अधिकारी शशगानी मुद्रा बनाते समय एक दाना चाँदी उसमें कम दिया करते थे।[१३०] इसी काल में काज़ी सद्र-उल-

मुल्क महोवा का मुक्ता था। उसके पुत्र के पास एक वेश्या थी। उसे प्रसन्न करने के लिए नित्य ५ सेर मोती चूने के स्थान पर खाने की आवश्यकता होती थी। काज़ी के पुत्र के आदमी उस वेश्या को उतना मोती चूने के स्थान पर खिला देते थे। बाद में उस काज़ी के हिसाब की जाँच करने पर ५० लाख तन्का उसके नाम पर बकाया निकला।[131] सुल्तान के राज्यकाल में मुक्ते पहले मलिक शम्सुद्दीन आबुरिज़ा के घर पर जाते थे और उसे घूस दिया करते थे। उसके बाद वे दरबार में सुल्तान के सम्मुख उपस्थित होते थे। अफीफ लिखता है कि मलिक गयासुद्दीन आबु रिज़ा अक्ताओं के समस्त मुक्तों, परगनों के आमिलों तथा कारखानों के मुतसर्रिफों से घूस लेकर ही उनकी प्रशंसा किया करता था। वह अनावश्यक आमिलों से उलझता था और बिना घूस लिये उन्हें नहीं छोड़ता था।[132] फिरोज़शाह के राज्य का कुल जमा लगभग ६ करोड़ तन्का प्रतिवर्ष थी। जब उसके अर्ज़-ए-ममालिक इमादुद्दीन बशीर की मृत्यु हुई तो वह लगभग ११ करोड़ तन्का अर्थात् राज्य की दो वर्ष की आय छोड़कर गया।[133] बलबन व फिरोज़शाह के शासनकाल के अमीरों की जीवन-शैली और उनके पास सम्पत्ति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि न केवल उमरावर्ग ही वरन् छोटे-मोटे अधिकारी भी घूस लेकर और गरीब लोगों से धन लूट खसोट कर अपनी थैलियाँ भरते थे। अधिकारियों के भ्रष्टाचार ने लोगों का जीवन कष्टप्रद बना दिया था। कभी-कभी तो उन्हें बिना मज़दूरी के उनके लिये कार्य करना पड़ता था और जब वे काम करने से मना कर देते थे तो उन्हें बन्दीगृह में डाल दिया जाता था।

इस काल में व्यापारियों में भी भ्रष्टाचार व्याप्त था। वे बेईमान, नफाखोर व धोखेबाज़ लोगों को कई तरह से सताया करते थे। वे काँच के टुकड़ों को हीरा बताकर उन्हें हीरों के दाम पर बेचा करते थे।[134] कुछ व्यापारी सामान को कुछ और दिखाते थे और उससे घटिया किस्म का माल दिया करते थे। अनाज के व्यापारी लोगों को कम तौल कर दिया करते थे और उसमें मिलावट कर दिया करते थे। कभी-कभी यह व्यापारी अपने माल की मात्रा कम बतला कर उस पर कम चुंगी दिया करते थे। वे यदा-कदा नकली संकट उत्पन्न करके अपने माल को अधिक भाव पर बेचा करते थे तथा उसकी जमाखोरी और चोर-बाजारी करके भी लाभ कमाने में पीछे नहीं रहते थे। गुजरात के व्यापारी ईमानदार होते थे, किन्तु लाहौर के व्यापारी अपने माल के लिए दुगुना दाम माँगते थे और फिर उसे माँगे हुए दाम के आधे पर बेच दिया करते थे। वे सौदेबाज़ी करने में निपुण थे। इस काल में भी दवाइयों, तेल, नमक, चने, इत्र, शोरा आदि वस्तुओं मे मिलावट की बड़ी गुंजाइश थी और व्यापारी इन वस्तुओं में मिलावट करने में पीछे नहीं रहते थे। अमीर खुसरो के अनुसार ग्वाला दूध में पानी डालकर मिलावट करता था, दरज़ी कपड़ा सिलने का दाम तो ले ही लेता था किन्तु उस कपड़े में से एक इज़ारबन्द या चोली बनाने का कपड़ा अवश्य चुरा लिया करता था। स्वर्णकार भी तरह-तरह से बेईमानी करते थे तथा सर्राफ भी बेईमान थे। इस प्रकार से व्यापार-विनिमय, लेन-देन, दूकानदारी तथा अन्य प्रकार

की आर्थिक क्रियाओं में सच्चाई व ईमानदारी की तुलना में बेईमानी बहुत थी। क्या ऐसे शिष्ट तथा सभ्य समाज की भी कल्पना की जा सकती है जिनमें कि इस प्रकार के तत्व न हों ? यथार्थ में शोषणरहित समाज सत्य नहीं केवल कल्पना ही है।

किन्तु यदि एक ओर सल्तनतकालीन समाज में इस प्रकार की बुराइयाँ थीं तो दूसरी ओर कुछ सामाजिक कुप्रथाएँ जैसे कि बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज आदि, जो कि हिन्दू-मुस्लिम समाज के लिये घातक सिद्ध हो रही थी। यद्यपि सती-प्रथा मुसलमानों में न थी, किन्तु मुस्लिम समाज अन्य कुप्रथाओं से ग्रसित था। पर्दा प्रथा दोनों ही समाज की स्त्रियों के लिये अभिशाप था। जिस प्रकार से हिन्दू समाज में पति की मृत्यु के बाद पत्नी को बलपूर्वक चिता पर बैठा कर जला दिया जाता था, इसका विशद विवरण इब्नबतूता ने दिया है।[१३५] यद्यपि विधवा विवाह मुस्लिम समाज में प्रचलित था और मुसलमान विधवा स्त्रियाँ पुनः विवाह कर सकती थीं किन्तु यह अधिकार हिन्दू विधवा स्त्रियों को न था। इस काल में स्त्रियों की दशा कैसी थी, उसका विवरण एक पृथक अध्याय में दिया गया है, किन्तु उपरोक्त कुप्रथाओं के कारण हिन्दू-मुस्लिम समाज में विकट स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

इन दोषों के बावजूद भी मध्ययुगीन समाज में बहुजन हिताय तथा बहुजन सुखाय की भावना थी। अपवाद के रूप में कुछ सुल्तानों को छोड़कर अधिकांश सुल्तान समाज के लिये अधिक से अधिक लोकोपयोगी कार्य करके लोकहित राज्य की स्थापना करना चाहते थे। वे समय-समय पर गरीबों, साधु-सन्तों को दान दिया करते थे, उन्हें भोजन दिया करते थे, धार्मिक व्यक्तियों को इनाम, वज़ीफे, अनुदान में भूमि आदि दिया करते थे और न्याय करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। उनका अनुसरण उनके अमीर भी किया करते थे ताकि समाज का कोई व्यक्ति भूखा, नंगा और गरीब न रहे। बड़े-बड़े शहरों में राज्य की ओर से लंगरखानों में मुफ्त में भोजन मिलता था। सूफी सन्तों के खानकाहों में लंगर की व्यवस्था होती थी। इस प्रकार संघर्ष और शोषण, राजनीतिक अस्थिरता एवं कूटनीति तथा षड्यन्त्रों, वाह्य आक्रमणों व आन्तरिक विद्रोहों के मध्य हिन्दू-मुस्लिम समाज बिखरने के स्थान पर दिन-प्रतिदिन सशक्त होता गया। उसमें हर चुनौती का सामना करने की असीमित क्षमता बनी रही।

———

१०

स्त्रियों की दशा

समाज में स्त्रियों का स्थान

हिन्दू-मुस्लिम समाज में स्त्रियों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था। वे माँ, बहन, पत्नी के रूप में पूज्य थीं। प्राचीन विधिशास्त्री मनु ने यद्यपि स्त्रियों को आश्रित स्तर प्रदान किया किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्हें हीन स्तर प्रदान किया जाय। उसके अनुसार किसी कन्या, युवती एवं वृद्धा को घर में स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ भी नहीं करना चाहिए। बचपन में उसे अपने पिता पर, युवावस्था में पति पर, पति की मृत्यु होने पर पुत्रों पर आश्रित होना चाहिए और उसे कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए। उन्हें कभी भी अपने पिता, पति एवं पुत्रों से पृथक नहीं होना चाहिए, चूँकि ऐसा करके वह अपने तथा अपने पति के परिवार में घृणा का पात्र बन जायँगी। शैशवावस्था में उनके पिता, युवावस्था में पति, तथा वृद्धावस्था में पुत्र उनकी रक्षा करते हैं। अतएव वे स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं हैं। मनु ने यह भी लिखा है कि वह पिता निन्दा के योग्य है जो कि अपनी पुत्री का विवाह यथासमय पर नहीं करता, वह पति निन्दा के योग्य है जो अपनी पत्नी के साथ मौसमानुसार सम्भोग नहीं करता और वे पुत्र निन्दनीय हैं जो कि पिता की मृत्यु के पश्चात् अपनी माँ की रक्षा नहीं करते। स्त्रियों की प्रत्येक दशा में रक्षा होनी चाहिए। अन्यथा वे पति एवं पिता दोनों के परिवारों के लिए कष्टदायक सिद्ध होंगी। जो अपनी पत्नी की रक्षा करता है वह अपनी सन्तति, परिवार, अपनी रक्षा करता है और सद्गति को प्राप्त होता है। मनु के अनुसार स्त्रियों का सम्मान पिता, भाई, पति, देवर जो कि अपना हित चाहते हों, द्वारा होना चाहिए।[1] जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ ईश्वर प्रसन्न होते हैं, जहाँ उनका सम्मान नहीं होता वहाँ पूजा-पाठ, यज्ञ इत्यादि से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।[2] जहाँ उनकी दशा दयनीय होती है, परिवार नष्ट हो जाता है और उस परिवार में कभी भी समृद्धि नहीं आती है।[3] अतएव स्त्रियों का विभिन्न पर्वों, त्योहारों में आभूषणों, वस्त्रों या उत्तम भोजन से स्वागत एवं सम्मान होना चाहिए।[4] उस परिवार में जहाँ पति पत्नी से प्रसन्न है और पत्नी पति से प्रसन्न है वहाँ प्रसन्नता बराबर बनी रहेगी।[5] इस प्रकार से पूर्व मुसलमान काल में भारत में स्त्रियों को अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्मान उपलब्ध था। वे यज्ञों, दरबार से सम्बन्धित रस्मों,

मेलों तथा युद्धों में भाग लेती थीं। उन्हें साहित्य एवं कलाओं का अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।[६] यही कारण है कि मुसलमानों द्वारा भारत विजित किये जाने से २०० वर्षों पूर्व भारतीय समाज में इन्दुलेखा, मंसूला, मोरिका, विजिका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री तथा लक्ष्मी नामक कवित्रियाँ हुईं।[७] इसके अतिरिक्त अनेक महिलाएँ, दक्ष चित्रकार, नृत्यांगनाएँ, गायिकाएँ आदि हुईं। वे सभी महिलाएँ उच्च परिवारों की थीं।[८]

मुसलमानों द्वारा उत्तरी भारत की विजय के उपरान्त हिन्दू स्त्रियों की स्थिति में गहन परिवर्तन हुआ। प्रत्येक शहर के पतनोपरान्त युद्ध के समय, शान्ति के समय, यदा-कदा उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती थी। उनकी रक्षा हेतु पुरुष प्रधान समाज को उनकी स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना पड़ा।

मुसलमान समाज में भी उन्हें इसी प्रकार का सम्मान प्राप्त था। मुहम्मद साहब ने क़ुरान में स्त्रियों को सम्मान व स्थान देने के लिए आश्वासन दिया। उन्होंने कहा कि उनसे उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना या अपने पास रखना गैर-कानूनी है। उनके साथ सद्व्यवहार करना चाहिए आदि। मुहम्मद साहब ने उनके अधिकारों को भी सुस्पष्ट किया ताकि उनका समाज में सम्मानित स्थान बना रहे। वास्तव में हिन्दू-मुस्लिम समाज में स्त्रियों के प्रति अवधारणा समान थी।

पर्दा प्रथा

मुसलमानों के भारत में आगमन से पूर्व हिन्दू समाज में स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा व्याप्त थी। मुसलमान अपने साथ पर्दा-प्रथा लेकर आये। इस प्रकार से दोनों ही समाज में स्त्रियों के लिए पर्दा प्रथा थी। अन्तर केवल यह था कि हिन्दू स्त्रियाँ साड़ी या धोती, चादर अथवा चुनरी से अपना मुँह ढँके रहती थी और सभी पर-पुरुषों की दृष्टि से दूर रहती थी। मुस्लिम समाज में स्त्रियों के लिए बुर्का एक पृथक परिधान के रूप में पहनना अनिवार्य था। अमीर खुसरो के अनुसार एक सौम्य स्त्री वह होती है जो कि पर्दा करती है और बुर्का पहनती है। जो स्त्रियाँ गली, कूँचों में विना पर्दे के घूमती हैं वह स्त्री स्त्री नहीं है वरन् चुड़ैल हैं। उन्हें अपने घरों में पर्दा करना चाहिए।[९] यद्यपि सुल्तान इल्तुतमिश की पुत्री रजिया ने सिंहासनारोहण के उपरान्त पर्दा का परित्याग किया, किन्तु हिन्दू-मुसलमान समाज बराबर उस पर बल देता रहा। समकालीन हिन्दी साहित्य में 'घूँघट' के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि हिन्दू स्त्रियों के लिए भी पर्दा अनिवार्य था।[१०] वे विना पर्दा के कहीं भी यात्रा नहीं कर सकती थीं। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में अनेक मुसलमान स्त्रियाँ पर्दे में दरगाहों पर जाया करती थीं। जब गुण्डे व बदमाशों ने उन्हें सताना प्रारम्भ किया तो उसने उसने उनके लिए दरगाहों पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।[११] सिकन्दर लोदी ने भी मुसलमान स्त्रियों के लिए दरगाहों व मकबरों पर जाने का निषेध कर दिया।[१२] किन्तु फिर भी डोली, पालकी तथा चौडोल जो कि पूर्णतः ढँके होते थे, उनमें मुसलमान

स्त्रियाँ बाहर निकलती रहीं। यही स्थिति हिंन्दू स्त्रियों की थी। तत्कालीन परिस्थितियों में पर्दा प्रथा अनिवार्य था। उसी से स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा होती थी।

विवाह की आयु

विवाह शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक आवश्यकता थी। अतएव कन्या के बचपन में ही माता-पिता एवं उसके परिवार के सदस्यों को उसके विवाह की चिन्ता हो जाती थी। हिन्दुओं में कन्या के विवाह के लिए कोई आयु निर्धारित नहीं थी। मनु के अनुसार वर-वधू की आयु में अधिक अन्तर होना चाहिए। यदि वर की आयु ३० वर्ष हो तो उसे १२ वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए, यदि वर की आयु २४ वर्ष की हो तो उसे ८ वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए। हिन्दू समाज के सभी वर्गों व जातियों में अल्पायु में विवाह होने का प्राविधान था। ढाला मारू दोहा में एक मारवाड़ी कन्या का १$\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु में ३ वर्ष की आयु के बालक से विवाह होने का उल्लेख है। छिताई वार्ता में कविजन नारायणदास ने छिताई के विवाह के सम्बन्ध में लिखा है कि जब कन्या सयानी हो गई हो तो गृहजनों को नींद क्योंकर आये। घर में कन्या या ऋण के कारण पीड़ा होती है और माता-पिता को चिंता हो जाती है। छिताई के उरोज उभरने पर उसके माता-पिता ने उसके विवाह के बारे में बात चलानी प्रारम्भ की। अतएव छिताई की १२-१३ वर्ष की आयु में विवाह सम्पन्न हुआ होगा। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लककालीन कवि मुल्ला दाउद के चन्दायन से मालूम होता है कि जब राय महर की कन्या चार वर्ष की हो गई तो उसने ब्राह्मण व नाई को बुलाया और उन्हें सुपाड़ी व मोतियों का हार देकर सहदेव महर के घर विवाह की बातचीत करने के लिए भेजा।[१४] मुसलमान परिवारों में भी विवाह की आयु निर्धारित न थी। नौ या दस वर्ष की आयु में कन्या का विवाह १६-१७ वर्ष की आयु के लड़के से कर दिया जाता था। अमीर खुसरो के अनुसार खिज्र खाँ व देवलरानी का विवाह उस समय हुआ था जब उनकी आयु १०-८ वर्ष की थी।[१५] अफीफ के अनुसार फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में लोग अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह अल्पायु में ही कर दिया करते थे।[१६]

विवाह के प्रकार

मनु के अनुसार प्राचीन काल में अनेक प्रकार के विवाह, ब्रह्म, देव, अर्श, प्रजापति, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच प्रचलित थे। प्रथम छः प्रकार के विवाह क्षत्रियों तथा राक्षस विवाह को छोड़ कर अन्य प्रकार के विवाह वैश्य व शूद्रों के लिए परिमित थे। मिर्ज़ा मुहसिन ने दबिस्तान-ए-मज़ाहिब में औदह, असुर, गान्धर्व, छई विवाह, आश्चर्य विवाह का उल्लेख किया है। औदह प्रकार के विवाह में कन्या का पिता वर की खोज करता है और वर मिल जाने पर उसे कुछ धन देकर अपनी कन्या का विवाह उससे कर देता है। असुर विवाह में वर-पक्ष कन्या को बलपूर्वक उसके पिता से छीन ले जाता है। गन्धर्व विवाह कन्या तथा लड़के की पारस्परिक सम्मति

से होता था। इस प्रकार के विवाह में न तो समाज की स्वीकृति और न ही विवाह सम्वन्धी संस्कारों की आवश्यकता पड़ती थी। ऐसा विवाह वहुधा दो व्यक्तियों के प्रेम के कारण चोरी-छुपे होता था। छई विवाह भी तलवार के बल पर होता था। यक्ष विवाह वधू के परिवार की ओर से किये गये जादू-टोने के द्वारा होता था। हिन्दुओं में विवाह सम्वन्धी कुछ नियम और औपचारिकताएँ भी थीं, जिन्हें संस्कार कहते थे। चूँकि उनमें विवाह वहुत कम आयु में होता था अतः माता-पिता लड़के-लड़की का विवाह तय कर लिया करते थे। वर-वधू की जन्मकुण्डली देख कर ज्योतिषी वताते थे कि जोड़ी सम्पन्न रहेगी या नहीं या उनका जीवन सुखमय होगा अन्यथा नहीं। जन्म-कुण्डली मिलने पर सगाई होती थी। कन्या का पिता वर-पक्ष को सुपाड़ी व उपहार देता था और इस प्रकार सगाई की जाती थी। विवाह के विषय में कन्या तथा लड़के की राय मालूम करना और उनसे स्वीकृत लेना माता-पिता के लिए आवश्यक नहीं था। विवाह तय करते समय वर-वधू के परिवार के सदस्य इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि वर-कन्या एक ही कुल या परिवार के न हो, अपितु माँ व पिता की ओर से एक ही परिवार के वंशज न हों। वहन, भतीजी, मौसी, वुआ और उनकी पुत्रियों से विवाह करना हिन्दुओं में वर्जित था। यदि वर-वधू में इस कोटि में विवाह हो रहा हो तो इस बात का ध्यान रखा जाता था कि उनके परिवार से कम से कम पाँच पीढ़ियों का अन्तर हो। किन्तु इस प्रकार के विवाहों को लोग पसन्द नहीं करते थे।

विवाह वड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। कविजन नारायनदास ने छिताई और समर सिंह के विवाह के सम्वन्ध में लिखा है कि सगाई तय होने के वाद छिताई के पिता ने मन्त्री को वुलाकर आदेश दिया कि वह कन्या छिताई के लिए आभूषण तैयार करवाये, पाट, पटोरे और हाथी, घोड़े एकत्र करे, पोस्ता और पोस्ती के पेय से वरातियों के लिए पेय तैयार करवाये।[१७] कुल की रीति के अनुसार वारात आने पर वधू पक्ष ने उसकी अगवानी की। मण्डप के नीचे वारात वैठाई गई।[१८] वहाँ पर्दे के पीछे से वधू-पक्ष की ओर से स्त्रियों ने वरातियों को गाकर गालियाँ दीं। तदन्तर वारातियों को षट्‌रस व्यंजन परोसा गया। उसके वाद छिताई का विवाह हुआ।[१९] वधू के पिता राजाराम चन्द्रदेव ने वारातियों को पाँच-पाँच फिरोजे और लाल, सोना, रत्न, चुन्नियाँ, बहुमूल्य वस्त्र उपहार में देकर विदा किया।[२०] नारायणदास ने छिताई वार्ता में छिताई को दिये जाने वाले दहेज के सम्वन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है, उसने वर-पक्ष को केवल ४०० हाथी देने की वात लिखी है। सम्भवतः यह हाथी दहेज में दिये गये होंगे। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लककालीन कवि मुल्ला दाउद ने राजा महर की पुत्री चाँदा के विवाह का रोचक विवरण दिया है। वारात के द्वार पर आने पर वधू ने २०० वैलों के वोझ के वरावर लावण्य-पूर्ण लड्डू, खस्ता, पापड़ तथा अन्य पकवान जैसे मलाई के लड्डू, गोझे और भोजन उनके लिए वनवाये। वधू के पिता ने वारातियों को चीर (सूती वस्त्र) तथा पटोर (रेशमी वस्त्र) के वने हुए जामें पहनाये और उनकी साज-सज्जा पर सौ लाख टन्के

व्यय किये। तत्पश्चात् ८०-९० हाथियों, पालकियों और ७००-८०० घोड़ों पर राजा व राणा सवार होकर भाटों, कलावन्तों, भरहा बजाने वालों तथा तुरही बजाने वालों के साथ बारात ने वधू के निवास-स्थान की ओर प्रस्थान किया। राय महर ने बारात के स्वागत हेतु पहले से पटशालिका या शामियाना लगवा दिया था। उस पटशालिका को विविध भाँति से सजाया गया था और चारों ओर दीपक जलाये गये थे। प्रीतिभोज के उपरान्त बारातियों में पान के बीड़े घुमाये गये। उसके बाद चाँदा का विवाह बावन के साथ सम्पन्न हुआ। मुल्ला दाउद के अनुसार राय महर ने चाँदा को दहेज में तीस गाँव, इकसठ भैंसों पर लदा हुआ द्रव्य, पचास घोड़े, जिनमें से प्रत्येक घोड़े पर एक लाख टंका लदा हुआ था, १००० सेवक व सेविकाएँ, गाय, भैंस, विविध प्रकार के कपड़े, जिनमें हीरे व मोती लगे हुए थे, ओढ़ना, बिछौना, चावल, आटा, खाँड़, घी, नमक, तेल, मसाले टाँडा पर लदवाकर उसके साथ भिजवाया।[२१] इस विवरण में अतिशयोक्ति हो सकती है। किन्तु दहेज में कौन-कौन सी वस्तुएँ दी जाती थीं उसका अनुमान इस विवरण से लगता है। विदेशी पर्यटक बारबोसा ने भी गुजरात में हिन्दुओं के विवाह का रोचक विवरण दिया है।[२२] इस प्रकार से हिन्दुओं में विवाह बड़ी धूमधाम से होता था।

मुसलमान समाज में भी विवाह के सम्बन्ध में कुछ कठोर नियम थे। मुसलमानों में एक ही माँ का दूध पीने वाले लड़के व लड़कियों का विवाह निषेध माना गया है। इसमें भाई-बहन में विवाह करना वर्जित है। हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों में एक ही कुल व घरानों में विवाह हो जाता था। लड़के-लड़कियों का विवाह माता-पिता व परिवार के सदस्य ही तय करते थे। विवाह तय करते समय वे यह ध्यान रखते थे कि लड़का-लड़की एक ही माँ से न जन्मे हों या उनके मध्य रक्त द्वारा कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो। विवाह तय करते समय वे ज्योतिषियों की सहायता लेते थे। हिन्दू समाज में कन्या पक्ष की ओर से वर की ढुँढ़ाई होती थी किन्तु मुसलमान समाज में वर-पक्ष ही वधू की खोज करता था। सगाई के उपरान्त अगली रस्में, हेना बन्दी, निक़ाह इत्यादि की होती थीं। विवाह शुभ मुहूर्त में होता था।

विवाह के दिन वधू का निवास-स्थान पूर्ण रूप से सुसज्जित किया जाता था और विवाह की रस्में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न की जाती थीं।[२३] ग्यासुद्दीन के शासन-काल में आबोहर के शासक रानामल भट्टी ने अपनी पुत्री का विवाह रजब से करते समय दहेज में आभूषण के साथ एमाद-उल-मुल्क नामक दास को भी दिया।[२४] चूंकि मुसलमानों में भी दहेज प्रथा प्रारम्भ हो चुकी थी अतएव गरीब मुसलमानों की लड़कियों को दहेज देने के लिए सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने दीवान-ए-खैरात विभाग की स्थापना की और उसने एलान करवाया कि जिस किसी व्यक्ति की कन्या विवाह-योग्य हो गई है और उसके पास उसका विवाह करने के लिए साधन न हो तो वह इस विभाग में आवेदन-पत्र प्रेषित करे। सैय्यद अमीर खास मीरान के अन्तर्गत इस विभाग

के अधिकारी आवेदक के आवेदन की छानवोन करके आवेदक की आर्थिक स्थिति मालूम करके उसे दी जाने वाली आर्थिक सहायता निर्धारित करते थे। आवेदकों की तीन श्रेणियाँ बनाई गई, प्रथम को ५० टंका, द्वितीय को ३० टंका तथा तृतीय को ५० टंका सहायता के रूप में दिये जाते थे। साम्राज्य के प्रत्येक भाग से गरीब मुसलमान व विधवाएँ अपनी पुत्रियों के नाम 'दीवान' में पंजीकृत कराने के लिए आती थी और इस प्रकार से हजारों कन्याओं का विवाह राज्य की सहायता से होता था।[२५]

हिन्दू और मुसलमान दोनों में कन्याओं के विवाह की समस्या थी। सयानी कन्या को घर में रखना और फिर उसके लिए सुयोग्य वर ढूंढ़ कर उसके हाथ पीले करना पिता का सामाजिक उत्तरदायित्व अवश्य था, किन्तु यह उत्तरदायित्व स्वयं में वहुत वड़ा उत्तरदायित्व था। कन्या का जन्म स्वयं अभिशाप समझा जाता था। अपनी पुत्री के जन्म पर क्षोभ प्रकट करते हुए अमीर खुसरो ने लैला-मजनू में लिखा है कि 'काश तुम पैदा न होती, यदि पैदा होती तो एक पुत्र होती।' किन्तु भाग्य को कौन बदल सकता है। शेख फरीद का एक शिष्य शेख निज़ामुद्दीन औलिया के पास पहुँचा और उसने प्रार्थना की कि 'आप मेरे लिए कुछ करें, मेरी कई पुत्रियाँ हैं। शेख ने उससे वापस जाने तथा धैर्य रखने के लिए कहा। इस पर उसने उत्तर दिया कि यदि आपके कोई अविवाहित पुत्री होती तो आपको मेरी मुसीवत का पता चलता। शेख ने पूछा कि तुम मुझसे क्या चाहते हो ? उसने उत्तर दिया कि आप मेरी पुत्री के लिए कोई वर वताएँ। शेख ने जाफर खाँ के एक पौत्र के बारे में उसे बताया।'[२६] उससे मालूम होता है कि इस काल में आम मुसलमान के सन्मुख कन्या का विवाह समस्या थी। विवाह के साथ दहेज ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया था।

तलाक़

हिन्दू-मुस्लिम समाज में पत्नी को तलाक़ देने का भी प्राविधान था। मनु ने उन परिस्थितियों का विवरण दिया है जिनमें पति पत्नी को तलाक दे सकता था। यदि पत्नी पति से घृणा करती है तो वह पति एक वर्ष तक उसके साथ रह सकता है। उसके बाद वह उसे उसकी सम्पत्ति से वंचित कर उसे तलाक दे सकता है। यदि कोई पत्नी अपने पति जो कि व्यसनी व शराबी हो या रोगग्रस्त हो, के प्रति असम्मान प्रकट करती हो तो पति उसे तीन माह के पश्चात् उसके आभूषण इत्यादि लेकर उसे तलाक़ दे सकता था। यदि पति पागल हो या निम्न जाति का हो या नपुंसक हो या बीमार हो, तो पत्नी उसे तलाक दे सकती थी। यदि पत्नी स्वयं मदिरापान करती हो, उसका व्यवहार ठीक न हो, वह बीमार हो, शैतान हो, अपव्ययी हो तो पति को दूसरा विवाह करने का अधिकार था। यदि किसी स्त्री को उसके पति ने छोड़ दिया हो या वह विधवा हो गई हो तो उसे स्वेच्छा से दूसरा विवाह करने का अधिकार था। यदि वह स्त्री पति को छोड़ने के बाद कुवाँरी रही हो और उसके पास पुनः रहना चाहती हो तो वह दुवारा उससे विवाह कर उसके साथ रह सकती थी। कौटिल्य के

अनुसार यदि कोई स्त्री अपने पति से घृणा करती हो और अन्य किसी व्यक्ति से प्रेम करती हो तो वह सात बार रजस्वला होने के उपरान्त अपने पति को अपने आभूषण तथा अन्य वस्तुएँ वापस करके उसे अन्य स्त्री के साथ रहने की अनुमति देकर उसे छोड़ सकती थी। यदि पति अपनी पत्नी से घृणा करता है तो उसे अपनी पत्नी को मायके में वापस भेजने और उसे त्यागने का पूर्ण अधिकार था। यदि स्त्री अपने पति से घृणा करती हो तो बिना पति की अनुमति के वह उसे छोड़ नहीं सकती थी। यदि पति-पत्नी को एक-दूसरे से भय हो तो वे एक-दूसरे को छोड़ सकते थे। असुर, गन्धर्व, क्षत्र, पैशाच प्रकार के विवाहों में विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं थी। किन्तु हिन्दू-मुस्लिम समाज के उच्च वर्गों में तलाक का अधिकार स्त्रियों को था।

बहु-विवाह

इस काल में बहु-विवाह का भी प्रचलन था। समाज के उच्च वर्गों में एक से अधिक विवाह करने का प्रचलन था। साधारणतया लोग एक ही विवाह करते थे। किन्तु जिनके पास असीमित धन-सम्पत्ति होती थी वे विलासिता हेतु अनेक विवाह कर लिया करते थे। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार कोई भी हिन्दू एक से अधिक विवाह कर सकता था। कुछ हिन्दुओं का विचार था कि वे जाति के अनुसार जैसे कि ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो तथा शूद्र एक विवाह ही कर सकते थे। बारबोसा के अनुसार गुजरात में ब्राह्मण केवल एक विवाह ही करते थे।[२७] निकोलो कोन्टी के अनुसार मध्य भारत में भी केवल एक विवाह करने का प्रचलन था। यद्यपि देश के अन्य भागों में बहु-विवाह होते थे।[२८] हिन्दुओं में बहु-विवाह के प्रचलन की पुष्टि हिन्दी साहित्य से होती है। कुतुबन की मृगावती के अनुसार कुँवर ने दो विवाह किये और उसकी दो पत्नियाँ मृगावती तथा रुक्मणी थी।[२९] मुल्ला दाऊद के चाँदनायन के अनुसार राय महर के ८४ रानियाँ थीं।[३०] मुसलमानों में बहुपत्नियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हिन्दू-मुसलमानों में अभिजातीय विवाह भी प्रचलित थे। उत्तरी भारत में बहु-पति रखने का अधिकार स्त्रियों में केवल पहाड़ों में ही था। अन्यत्र बहु-पति रखना समाज में बुरा समझा जाता था।

विधवा विवाह एवं सती प्रथा

यद्यपि हिन्दुओं में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था किन्तु मुसलमानों में विधवा विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। १२५५-५६ ई० में सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की विधवा माँ-मलिकए-जहाँ ने कुतुलुगखाँ से विवाह किया।[31] अफगान विधवाओं को घर से बाहर नहीं निकलने देते थे।[32] हिन्दू स्त्रियाँ पति की मृत्यु के उपरान्त सती हो जाती थीं। अलबरुनी से लेकर इब्नबतूता ने सतीप्रथा का उल्लेख किया है। अलबरुनी के अनुसार यदि किसी पत्नी के पति की मृत्यु हो जाती है तो वह किसी अन्य व्यक्ति से

पुनः विवाह नहीं कर सकती थी। उसे दो बातों में से एक को चुनना पड़ता था या तो जीवन भर विधवा के रूप में रहना पड़ता था या सती होना पड़ता था। वह सती होना ही पसन्द करती थी। क्योंकि जब तक वह विधवा के रूप में जीवन व्यतीत करती रहती उसके सास दुर्व्यवहार होता रहता था। जहाँ तक हिन्दू शासकों की स्त्रियों का प्रश्न था वे सती हो जाती थीं चाहे वे सती होना चाहती हों या अन्यथा नहीं, ताकि वे अपने आदर्श की मान-मर्यादा के विरुद्ध कुछ करने से रोकी जा सकें। हिन्दू वृद्धा एवं गर्भवती स्त्रियों को सती नहीं होने देते थे, क्योंकि उनकी रक्षा उनके पुत्र किया करते थे।[३३] हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति के साथ ही चिता में सती होना अधिक पसन्द करती थीं। अमीर खुसरो ने नुहसिपेहर में लिखा है कि हिन्दू स्त्री अपने पति के लिए अपने आप को आग में जला देती थी।[३४] इब्नबतूता ने सती के विषय में विस्तृत विवरण दिया है। उसके अनुसार विधवा को जलाने के लिए सर्वप्रथम सुल्तान से आज्ञा लेनी पड़ती थी। सुल्तान की आज्ञा मिलने के उपरान्त उस विधवा को बहुमूल्य आभूषण पहनाये जाते थे, उसका पूर्ण ढंग से श्रृङ्गार किया जाता था, तदुपरान्त उसे चिता के पास ले जाया जाता था। चिता में उसे बैठाने से पूर्व उस विधवा के तन पर से आभूषण उतार कर दान में दे दिये जाते थे और उसे एक मोटी साड़ी स्नान कराने के बाद पहना दी जाती थी। इसी समय कई लोग एक स्थान पर चिता तैय्यार करके उसमें आग प्रज्वलित करने में लगे रहते थे। अग्नि के प्रज्वलित होते ही चारों ओर लोग बड़े बाँस लेकर चिता के चारों ओर खड़े हो जाते थे और नक्कारे आदि बजाने लगते थे। तत्पश्चात् विधवा उस आग में कूद पड़ती थी। उपस्थित लोग आग में लकड़ियाँ फेंककर अग्नि को तीव्र करते रहते थे और उस समय तक वहाँ उपस्थित रहते थे जब तक कि उसका पार्थिव शरीर राख न जाय हो।[३५] मुहम्मद तुगलक को छोड़कर किसी भी सुल्तान ने इस प्रथा को हतोत्साहित एवं बन्द करने की चेष्टा नहीं की।

जौहर

इस काल में हिन्दू स्त्रियों द्वारा जौहर करने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह प्रथा राजपूत घरानों में ही थी। पति को युद्ध में हताहत होने की सूचना पाते ही सभी पत्नियाँ जौहर कर लेती थीं या मृत्यु के भय से राजपूत स्वयं रणक्षेत्र में उतरने से पूर्व अपनी स्त्रियों को जौहर करने पर मजबूर कर देते थे, ताकि उनके सतीत्व की रक्षा हो सके। जब सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया तो चौहान शासक ने आग जलवाकर अपनी स्त्रियों को उसमें डलवा दिया।[३६] सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के शासनकाल में जब कम्पिल के राय पर आक्रमण हुआ तो उसकी स्त्रियों ने जौहर किया।[३७] इब्नबतूता के अनुसार प्रत्येक स्त्री स्नान करके चन्दन मलकर आती थी और राय के सम्मुख भूमि का चुम्बन करती थी और अपने को अग्नि में डाल देती थी।[३८] तैमूर ने भटनेर पर आक्रमण किया तो वहाँ

की मुसलमान स्त्रियों ने जौहर किया।[३८] सती प्रजा की भाँति जौहर प्रथा भी वीभत्स तथा क्रूर थी।

स्त्रियों की दशा

पूर्व मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की दशा के सम्बन्ध में अनेकों धारणाएँ और भ्रान्तियाँ हैं। इन मिथ्यापूर्ण धारणाओं एवं भ्रान्तियों का मुख्य कारण, प्राचीन काल में भारतीय स्त्रियों की दशा तथा आधुनिक युग में स्त्रियों की स्थिति का मध्ययुगीन स्त्रियों की तुलना करते समय काल एवं परिस्थितियों का ध्यान न रखना है। तुर्कों के भारत में आगमन से पूर्व ही स्त्रियों की दशा वदलने लगी थी। क्योंकि शनैः-शनैः पर्दा प्रथा, वालविवाह, दहेजप्रथा इत्यादि पुरुष प्रधान समाज ने लागू कर उन्हें पूर्णतः पुरुष पर आश्रित कर दिया। कालान्तर में तुर्कों के भयावह आक्रमणों तथा आन्तरिक एवं वाह्य असुरक्षा ने जव-जव सम्पूर्ण समाज को असुरक्षित कर दिया तो वे अनेकों प्रकार के सामाजिक वन्धनों तथा मर्यादाओं से जकड़ दी गई। पूर्णतः उनके सतीत्व की रक्षा करने पर विशेष वल देने से उनकी स्वतन्त्रता कम होती चली गयी। इस युग में पुरुष प्रधान समाज में तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनकी सुरक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप अपनी शारीरिक निर्वलता, अपने सतीत्व की रक्षा, परिवार के प्रति पत्नी, माँ, वहन, वेटी के रूप में अपने दायित्वों के कारण उन्हें पुरुष वर्ग पर आश्रित रहना पड़ा। इसका तात्पर्य यह नहीं कि पुरुष प्रधान समाज उनका शोषण करता रहा या उनके प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा। परिवार की शान्ति, सुख, समृद्धि के लिए सदैव की भाँति उन्हें आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा। प्रायः पूर्व काल की भाँति इस काल में भी स्त्रियों की दशा सामान्य रही।

उच्च परिवारों की स्त्रियाँ

पुरुष समाज की भाँति स्त्री समाज को भी कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। अर्थात् (१) उच्च वर्ग या सम्भ्रान्त परिवारों की स्त्रियाँ, (२) मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ तथा (३) निम्न वर्ग की स्त्रियाँ। प्रत्येक वर्ग की स्त्रियों की दशा और उनकी पारिवारिक भूमिका एक-दूसरे से भिन्न थी क्योंकि दोनों ही वातें परिवार की आर्थिक स्थिति एवं परम्पराओं पर निर्भर करती थी। जहाँ एक हिन्दू-मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग या सम्भ्रान्त परिवारों की स्त्रियों का प्रश्न है आक्रमणों एवं विद्रोहों तथा सामाजिक असुरक्षा के भय के कारण हिन्दू शासकों, अमीरों, मुसलमान शासकों, अमीरों को अपनी स्त्रियों को अपनी हवेलियों, महलों तथा अन्तःपुर की चहारदीवारियों के अन्दर ही वन्द रखना पड़ा ताकि वहाँ वे सुरक्षित रहकर उन्मुक्त रूप से अपना जीवन व्यतीत कर सकें। मुसलमान सुल्तान व अमीरों के हरम तथा हिन्दू शासकों व सामन्तों के

अन्तःपुर में उन्हें अपना जीवन व्यतीत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वे अपने भाग्य से निरन्तर सन्तुष्ट रहीं या उन्हें उससे सन्तुष्ट रहना पड़ता था; क्योंकि उनके सन्मुख अन्य कोई विकल्प न था। जीवनयापन करने के सभी साधन उन्हें उपलब्ध कराये जाते थे। वहाँ उनके पद, प्रतिष्ठा एवं स्तर के अनुसार उनका सम्मान होता रहता था। यह सत्य है कि हरम या अन्तःपुर के नियमों के कारण उन्हें हरम या अन्तःपुर के शासक की विना पूर्व अनुमति के वाहर कहीं जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी किन्तु माँ, पत्नी, वहन, पुत्री के रूप में भूमिका निभाने के लिए भी उन पर कभी प्रतिवन्ध नहीं रहा।

इस काल में सुल्तान के परिवार की मुसलमान महिलाओं की तुलना में राजघरानों की हिन्दू महिलाओं की स्थिति अत्यधिक सन्तोपजनक थी। हिन्दू शासकों की पत्नियों, रखैलों इत्यादि को उनके हताहत होने या मृत्यु पर जौहर या सती होने का पूर्ण अधिकार था। अपने सतीत्व की रक्षा करने के हेतु व जौहर की रस्म निभाने या पति के साथ सती होना अत्यधिक पसन्द करती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें विभिन्न त्योहारों एवं पर्वों पर दान आदि भी देने की पूर्ण अनुमति थी।

मध्य वर्ग की स्त्रियाँ

हिन्दू-मुसलमान समाज के द्वितीय वर्ग में मध्यम वर्ग की महिलाओं का स्थान था। इस काल में अधिकांश स्त्रियाँ घरेलू कार्यों में व्यस्त रहकर परिवार के प्रति उत्तरदायित्व निभाने में ही अपना धर्म समझती थीं। पत्नी के रूप में अपने पति की सेवा करना, अपनी सन्ततियों का पालन-पोपण करना, परिवार के अन्य सदस्यों की सेवा करना व गृहस्थी के सभी कार्यों में हाथ वँटाना ही उनका मुख्य कार्य था। वाल्यावस्था से ही उन्हें उनके माता-पिता उन्हें इस प्रकार की शिक्षा दिया करते थे। कुशल गृहिणी के रूप में कर्तव्य का पालन करना ही उनके जीवन का लक्ष्य एवं आदर्श था। संयुक्त परिवार व्यवस्था होने के कारण वे अन्य सभी परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर दुख-सुख वाँट लिया करती थीं। वाह्य संसार से पूर्णतः अनभिज्ञ ही रहती थीं। क्योंकि उनके लिए घर के अन्दर के संसार का ही अत्यधिक महत्व था। गृहलक्ष्मी, अर्धाङ्गिनी, माँ या वहन के रूप में परिवार में उनका अति उत्तम स्थान था। परिवार का कोई भी संस्कार शिशु के जन्म से लेकर पुत्र-पुत्री से विवाह तक उनके विना पूर्ण नहीं होता था। पर्दा प्रथा के कारण यद्यपि वे स्वतन्त्र ढंग से वाहर नहीं निकल सकती थीं किन्तु पर्दे में वे कहीं भी आ जा सकती थीं। इस काल में मध्यम वर्ग के परिवारों में स्त्रियों के शिक्षा देने का प्रचलन अधिक न था। वे घर में ही रहकर विभिन्न कलाओं को सीख लिया करती थीं। जिन स्त्रियों की रुचि साहित्य एवं धर्म में होती थी वे स्त्रियाँ स्वतः पढ़ लिख कर अपनी जिज्ञासा पूर्ण कर लेती थीं। सामान्यतः स्त्रियों की रुचि शिक्षा एवं साहित्य में अधिक न होकर घरेलू कार्यों में अधिक हुआ करती थी।

फ़ुतूहात फिरोज़शाही में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने लिखा है कि शुभ अवसरों पर स्त्रियाँ टोलियाँ बनाकर पालकी, गरदून, चौपायों, डोले व घोड़ों पर सवार होकर अत्यधिक संख्या में नगर के बाहर मजारों पर जाती थीं।[१०] इससे मालूम होता है कि इस काल में स्त्रियाँ कहीं भी पर्दे में आ-जा सकती थीं। विद्यापति ने कीर्तिलता में लिखा है कि जौनपुर के बाजार में इतनी भीड़ होती थी कि कभी-कभी वहाँ से निकलने वाली स्त्रियों की चूड़ियाँ टूट जाती थीं। इससे भी मालूम होता है कि इस काल में मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ घर से बाहर निकलती थीं।

निम्न वर्ग की स्त्रियाँ

हिन्दू-मुस्लिम समाज के निम्न वर्ग की स्त्रियाँ न केवल अपने घरों में कार्य करती थीं वरन् शहरों में वे शासकों व अमीरों, सामन्तों, गणमान्य व्यक्तियों आदि के घरों में भी काम किया करती थीं। ऐसे घरों में कार्य करने वाली नौकरानियों का पृथक वर्ग था, जिसमें कि दासियाँ, वादियाँ, लौंडियाँ इत्यादि थीं। उस काल में शासकों, अमीरों, सामन्तों इत्यादि के बड़े-बड़े प्रतिष्ठान होने से कारण नौकरानियों की माँग की पूर्ति दासियों ने ही की। दरिद्र, निःसहाय एवं निर्बल परिवार अपनी लड़कियों को घरेलू कार्यों एवं विविध कलाओं में प्रशिक्षित करके उन्हें दासियों के रूप में बेच दिया करते थे। यह दासियाँ शासकों, अमीरों, सामन्तों इत्यादि के घरों में कार्य करती थीं। उन्हें मासिक वेतन, समय-समय पर उपहार, खाना, कपड़े इत्यादि मिला करते थे, जिससे कि उनके परिवारों का पोषण होता रहता था। शहर में कार्य करने वाली स्त्रियों का दूसरा वर्ग भंगिनों, डोमिनों तथा उसी वर्ग की अन्य स्त्रियों का था। जो कि मैला, मरे हुए जानवर, कूड़ा इत्यादि ढोती थीं। स्त्रियों का एक अन्य वर्ग भी था जिसमें कि नाइनें, मालिनें, धोबिनें, कुम्हारिन, दाइयाँ, धायें इत्यादि थीं जोकि शहर में विभिन्न परिवारों की अपने व्यवसाय के अनुसार सेवा किया करती थीं। वे मध्यम वर्ग के परिवारों में भी कार्य किया करती थीं। इस प्रकार वे अपनी जीविका स्वयं उपार्जित करने के लिए समर्थ थीं।

समकालीन ऐतिहासिक स्रोत ग्रामीण समाज की कोई भी प्रस्तुत नहीं करते हैं। उस समय का ग्रामीण समाज लगभग ऐसा ही था जैसा कि आज के अविकसित गाँवों में है। वहाँ स्त्रियों की भूमिका न केवल घर तक ही सीमित थी वरन् घर के बाहर वे पर्दे में रहते हुए भी अन्य प्रकार के कार्यों जैसे कि हल चलाने, खेत बोने, फसल काटने, सिंचाई, गन्ने या तेल की पेराई, धान की कुटाई, कपास को चुनना, उसमें से बिनौला निकालने, रेशम के कीड़ों को पालने, सूत की कताई, डलिया बनाने, रस्सी बनाने, आटा पीसने इत्यादि को सम्पन्न किया करती थीं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गृहणियों का महत्वपूर्ण योगदान था। निःसन्देह ग्रामीण महिलाएँ शहर की स्त्रियों की भाँति पुरुषों पर पूर्णतः आश्रित थीं। पर्दा प्रथा तथा समाज के अन्य बन्धनों के कारण वे मुक्त न थीं किन्तु निर्धारित सीमा-रेखा जो कि उनकी प्रकृति, स्वभाव, शरीर संरचना,

काल, परिस्थितियों, प्रचलित परम्पराओं के अनुकूल थी, के अन्दर रह कर वे सहज प्रकार से जीवन व्यतीत किया करती थीं। शेख हमीदउद्दीन नागौरी, जो कि नागौर के एक छोटे से गाँव में रहते थे, की पत्नी खाना बनाती थी और सूत कातती थी।[४१]

संक्षेप में पूर्व मध्यकालीन भारत में हिन्दू-मुसलमान समाज में स्त्रियों की दशा सामान्य थी। उनके सम्बन्ध में यह कहना कि मध्यकाल में स्त्रियाँ बुद्धिहीन थीं, पुरुषों के लिए विलास तथा व्यसन का साधन मात्र थीं, उनकी असीमित सहिष्णुता, कार्य-परायणता, दायित्व-बोध, परिवार को पोषित करने की शक्ति को नकारना है तथा उनके आत्मिक एवं आन्तरिक गुणों की उपेक्षा करना है।

११

मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली

ज्ञान प्राप्त करने की अद्भुत शक्ति और असीम लालसा मानव में होती है और वह प्रत्येक उपलब्ध स्रोत से ज्ञान प्राप्त करके अपनी क्षुधा को बुझाना चाहता है। वह विविध विषयों का अध्ययन कर उसकी मीमांसा, अन्वेषण, विश्लेपण करने में ही आनन्द का अनुभव करता है। ज्ञान एक ऐसी क्षुधा है जिसका न आदि है और न अन्त। एक सभ्य और सुसंस्कृत समाज के लिए शिक्षा की परम आवश्यकता होती है और बिना उसके न तो किसी के व्यक्तित्व का विकास हो सकता है और न ही वह ज्ञान, तर्क एवं विश्लेपण द्वारा सत्य व असत्य में भेद कर सकता है। मुस्लिम समाज के शिक्षाविदों, धार्मिक वेत्ताओं, चिन्तकों, विचारकों सभी का ध्यान शिक्षा के विकास की ओर गया। सुल्तानों ने कतिपय इसे जनहित के लिए आवश्यक समझा, जिसके कारण मध्यकाल में शिक्षा एवं साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास हुआ। इस दृष्टि में भारतीय शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण था। वास्तव में इस्लाम इल्म या ज्ञान प्राप्त करने और उसके प्रसार पर अत्यधिक बल देता है। उसके अनुसार केवल क़ुरान, हदीस तथा अन्य विषयों का अध्ययन करके ही सत्य की खोज की जा सकती है। सल्तनत काल में शिक्षा प्रदत्त करने वाली अनेक संस्थाएँ थीं। शिक्षा के प्रसार में इन संस्थाओं की भूमिका का अवलोकन करने से पूर्व मुस्लिम शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ बातें जान लेना आवश्यक है। इस काल में शिक्षा का मुख्य आधार धर्म था। क्योंकि मस्जिदों से संलग्न मक़तब, मदरसे तथा सूफी सन्तों के खानक़ाह और दायरे ही शिक्षा प्रदत्त किया करते थे। इन सभी शिक्षा संस्थाओं में यद्यपि धर्मशास्त्र एवं कानून पर ही विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी किन्तु शिक्षा का दायरा बहुत ही व्यापक था, क्योंकि विद्यार्थी के लिए अन्य विषयों जैसे कि खगोलशास्त्र, भूगोल, इतिहास, गणित, दर्शन, ज्योतिषशास्त्र, अलंकारशास्त्र, विधि इत्यादि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य था।

मुसलमान शिशुओं की प्रारम्भिक शिक्षा बिस्मिल्लाह खानी या मक़तब संस्कार के साथ प्रारम्भ होती थी। जब शिशु चार वर्ष, चार माह तथा चार दिन का हो जाता था तब उसके माता-पिता बड़ी धूमधाम से उसका बिस्मिल्लाह खानी संस्कार

सम्पन्न करवाते थे। इस संस्कार को सम्पन्न कराने से पूर्व शिशु ज्योतिषियों से संस्कार करवाने के सम्बन्ध में शुभ मुहूर्त पूछ लिया करते थे। उसी शुभ मुहूर्त में शिक्षक वर्णमाला का प्रथम अक्षर 'आलिफ' शिशु के हाथों से लिखवाता था। अमीरों तथा बड़े-बड़े घरानों के लोगों के बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा के लिए किसी न किसी निजी शिक्षक या उस्ताद के सुपुर्द कर दिये जाते थे। इन शिशुओं की प्रारम्भिक शिक्षा वर्णमाला के ज्ञान, कुरान के पाठ, सुलेख तथा व्याकरण तथा इस्लाम के ज्ञान तक ही सीमित रहती थी। इसके पश्चात् उसे साहित्य, इतिहास तथा नीतिशास्त्र इत्यादि विषयों का अध्ययन करना पड़ता था। वह **पन्दनामा, आमदनामा, गुलिस्ताँ, अमी-उल-कवानीन, रूवकात अमान, उल्लाह हुसैनी, बहार दानिश** तथा **सिकन्दरनामा** का अध्ययन करता था। जो विद्यार्थी इसके बाद शिक्षा नहीं ग्रहण करते थे उन्हें मुन्शी की पदवी दी जाती थी और जो विद्या अध्ययन जारी रखते थे उन्हें उनकी शैक्षिक योग्यताओं के अनुसार मौलवी, मौलाना या फाजिल की उपाधियाँ दी जाती थीं। जो अरवी की शिक्षा प्राप्त करते थे उन्हें कुरान के अतिरिक्त पैगम्बर साहब की जीवनी पर ग्रन्थ, कुरान की टोकाओं, तसव्वुफ, दर्शन तथा अन्य विषयों का अध्ययन करना पड़ता था।

शिक्षा प्रणाली

भारतवर्ष में प्रवेश करने से पूर्व मुसलमानों ने अपने देशों में अपनी रुचि एवं बुद्धि, आवश्यकताओं एवं इस्लाम के आदर्शों के अनुरूप शिक्षा प्रणाली का विकास कर लिया था। लगभग सभी मुसलमान देशों में ११वीं शताब्दी तक विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का विकास हो चुका था। उच्च शिक्षा के लिए उन देशों में मदरसों की स्थापना की गई जहाँ कि अरवी व फारसी भाषा की शिक्षा, व्याकरण तथा धार्मिक विषयों पर विशेष रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा के ये केन्द्र धर्मान्धता के केन्द्र थे और उनकी व्यवस्था प्रशासन की ओर से होती थी। कहीं-कहीं मदरसों को राज्य की ओर से वित्तीय सहायता भी प्राप्त होती थी किन्तु अधिकांश मदरसे धार्मिक व्यक्तियों द्वारा समाज के कुछ वर्गों की सहायता से ही संचालित किए जाते थे। इन मदरसों का प्रमुख उद्देश्य इस्लाम के सिद्धान्तों पर आधारित मुसलमान समाज के विभिन्न समुदायों के मध्य इस्लाम द्वारा प्रतिपादित आदर्शों, नियमों तथा परम्पराओं का प्रचार करना और उन्हें अमल में लाना था। यह मदरसे ही राज्य को राजकीय कार्यों अथवा न्याय विभाग के लिए काज़ी व मुफ्ती तथा अन्य अधिकारी देते थे। इस युग में धर्मशास्त्र के अध्ययन पर विशेष वल था, लेकिन उसके साथ ही साथ दर्शन, राजनीति, इतिहास आदि विषयों का भी अध्ययन होता था। डॉ० युसुफ हुसैन के अनुसार इस काल में मुसलमान धर्मशास्त्र का अध्ययन करते थे और उसी पर अपने विचार प्रकट करते थे।[1] इसका मुख्य कारण था कि मुस्लिम समाज इस्लाम से पूर्णतः सम्बद्ध था। प्रत्येक मुसलमान के लिए दैनिक जीवन में इस्लामी नियमों का पालन करना अनिवार्य था। अतएव ऐसी स्थिति में शिक्षा में धर्मशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान होना नितान्त आवश्यक था।

मक़तब

इन मदरसों के अतिरिक्त उन्हीं मुसलमान देशों में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए मक़तब हुआ करते थे। ये मक़तव प्रत्येक मुहल्ले में या तो अध्यापक के घरों में या किसी अमीर के घर मे हुआ करते थे। यह मक़तव केवल निजी अथवा व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाएँ थीं, जिनकी राज्य की ओर से किसी प्रकार की वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं होती थी। बगदाद की भाँति फारस व मध्य एशिया के अनेक शहरों में इस प्रकार के हज़ारों मक़तव थे, जो कि अमुक अमीरों अथवा गण-मान्य व्यक्तियों द्वारा संचालित किये जाते थे। इस प्रकार से मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में दो प्रकार की शिक्षा संस्थाओं, मदरसों व मक़तबों का विकास हुआ।

मदरसे

गजनी के सुल्तान महमूद गज़नवी ने गज़नी में एक मदरसे की स्थापना की और उसे राज्य की ओर से वित्तीय सहायता दी। मध्य एशिया तथा फारस के अमुक भागों से यहाँ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। उसने अपने दरबार में अनेक कवियों एवं साहित्यकारों, जिनमें से अलवरुनी, फिरदौसी व दक़ीकी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, को प्रश्रय दिया था। गजनी के इस मदरसे से संलग्न एक धनी पुस्तकालय भी था, जहाँ विविध विषयों के ग्रन्थ थे। इस मदरसे का आचार्य सुप्रसिद्ध दार्शनिक उन्सूरी था। महमूद गज़नी के उत्तराधिकारी सुल्तान मसूद ने अपने पिता की परम्पराओं को बनाये रक्खा। उसने भी उदारतापूर्वक अनेक कवियों व साहित्य-कारों को प्रश्रय प्रदान किया। उसके शासनकाल में अलवरुनी ने अल कानूनल मसूदी नामक ग्रन्थ की रचना की। खगोलशास्त्र एवं भूगोल पर मध्ययुग की यह एक महान् एवं सर्वोत्तम कृति थी। उत्तरोत्तर गज़नवी शासकों ने अपनी राजधानी गज़नी से लाहौर स्थानान्तरित की, जिसके परिणामस्वरूप ११वीं शताब्दी में लाहौर मुस्लिम शिक्षा का केन्द्र बन गया। अगले सौ वर्षों से जैसे-जैसे मुसलमानों के विभिन्न कबीले व जातियाँ उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में बसने लगी वैसे-वैसे मुस्लिम शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र विशेष तौर पर बदायूँ व अजमेर में स्थापित हुए। मदरसों तथा मक़तबों के अतिरिक्त सूफी सन्तों के खानक़ाह भी इस्लाम शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बन गये। अजमेर में शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह शिक्षा का केन्द्र बना। कालान्तर में शेख निजामुद्दीन औलिया जो कि हदीस का प्रकाण्ड पंडित था तथा महान विद्वान था (१२३६-१३२५) की खानक़ाह शिक्षा का महान केन्द्र बन गई। धार्मिक एवं अधार्मिक ज्ञान की खोज में देश-विदेश से अनेक मुसलमान इन खानक़ाहों में पहुँचने लगे और विद्या उपार्जन करने लगे। जब ग़ौरियों ने उत्तरी भारत को अपने अधिकार में ले लिया तो दिल्ली में नव-स्थापित सल्तनत की राजधानी स्थापित की गई। १२०६ ई० के पश्चात् जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है कि मध्य एशिया व फारस के अनेक भागों से मंगोल आक्रमणों से भयभीत होकर जब मुसलमान दार्शनिक, साहित्यकार,

न्यायविद, कवि आदि दिल्ली पहुँचे तो दिल्ली मुस्लिम शिक्षा सूफी अध्यात्मवाद का केन्द्र बन गई। शिक्षा की जो प्रणाली अब तक मुसलमान देशों में विकसित हो चुकी थी, वही प्रणाली ज्यों की त्यों यहाँ भी लागू की गई। इसी प्रकार की शिक्षा प्रणाली देश के अन्य भागों में भी प्रचलित की गई। ताजुल-माआसीर के रचयिता हसन निज़ामी के अनुसार मुहम्मद ग़ौरी ने अजमेर में अनेक मदरसों की स्थापना की जो भारतवर्ष में अपने ही ढंग के थे।[२] लखनौती को विजित करने के उपरान्त मुहम्मद बिन बख्तियार खिल्जी ने वहाँ मदरसों व ख़ानक़ाहों की स्थापना की।[3] इल्तुतमिश ने मुहम्मद ग़ौरी के नाम पर दिल्ली में मदरसा-ए-मुइज्ज़ी की स्थापना की। इसी नाम का एक मदरसा बदायूँ में भी स्थापित किया गया। सुल्ताना रज़िया ने नासिरिया मदरसा की स्थापना की और उसने मिनहज उस सिराज को उसका आचार्य नियुक्त किया। इस मदरसे को चलाने के लिए अनुदान में भूमि दी गई।[४]

सिंहासन पर बैठने के उपरान्त बलबन ने विद्वानों को प्रश्रय दिया। यद्यपि वह शासक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा के बारे में सदैव सचेत रहता था, फिर भी जब कभी उसे अवसर मिलता वह विद्वानों से मिलता था व उनके साथ भोजन भी किया करता था।[५] भोजन के समय वह उनसे इस्लाम धर्म की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श किया करता था। विद्वान उससे वाद-विवाद किया करते थे। उसके दरबार में उल्मा-ए-आखिरत को बड़ा सम्मान प्राप्त था। शुक्रवार की नमाज के बाद वह मौलाना बुरहानुद्दीन बल्खी से मिलने जाता था। वह काज़ी शरफ़ुद्दीन बलबलजी, मौलाना सिराजउद्दीन संजरी तथा मौलाना नजमुद्दीन दमिश्की का बड़ा आदर करता था। अमीर खुसरो व अमीर हसन उसके दरबार की शोभा थे। उन्हें शाहजादा मुहम्मद ने प्रश्रय दिया था। शाहजादा मुहम्मद के अमीर **शाहनामा, दीवाने सनाई, दीवाने खाक़ानी** और शेख निज़ामी का **खम्सा** पढ़ते थे।[६] उपर्युक्त व्यक्तियों के छन्दों पर विद्वान उसके सन्मुख वाद-विवाद किया करते थे। जब सन्त शेख उस्मान मुल्तान पहुँचे तो उसने उनका स्वागत किया, उनके लिये खानक़ाह बनवाई और उन्हें कई ग्राम प्रदान किए किन्तु वे वहाँ न रुके। उसने प्रसिद्ध कवि शेख सादी को शीराज़ से भारतवर्ष बुलाया, किन्तु वे वृद्धावस्था के कारण न आ सके।

सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी कवियों व साहित्यकारों का सम्मान करता था। उसने अमीर खुसरो को एक हज़ार दो सौ तन्के वेतन पर दरबार में रक्खा और उसे शाही पुस्तकालय की देख-रेख करने के लिए नियुक्त किया। वह अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति में से अमीर खुसरो को घोड़े, वस्त्र और इनाम देता था।[७] इस युग के महान विद्वानों में मलिक कुतुबुद्दीन अलवी, मलिक ताजुद्दीन कुहरामी, मलिक मुईउद्दीन जाजर्मी, मलिक सादुद्दीन अमीर बहर, ख्वाजा जलालुद्दीन, मौलाना जलालुद्दीन भकखरी आदि थे।[८] सिंहासन पर बैठने के बाद अलाउद्दीन खिल्जी ने हौज़-ए-खास के समीप एक मदरसे की स्थापना की। उसके वजीर शमशुल मुल्क

महान विद्वान था। उसने अपना जीवन अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया था। उसने बदायूं में शेख निज़ामुद्दीन औलिया को शिक्षा प्रदान की थी। वज़ीर के पद पर रहकर भी वह विद्वानों का आदर करता रहा। बरनी ने लिखा है कि अलाई राजकाल में इतने बड़े-बड़े आलिम या विद्वान थे कि उस समय बुखारा, समरकन्द, मिस्र, ख्वारिज़म, दमिश्क, तबरेज़ व इस्फहान में भी न थे। वे विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनमें से अनेक विद्वानों की तुलना गज़ाली व राज़ी से की जा सकती है। बरनी ने ४० विद्वानों के नामों की सूची दी है। उसने स्वयं इनमें से अनेक विद्वानों से शिक्षा ग्रहण की। मौलाना शरफुद्दीन बूशखी के शिष्यों की संख्या अत्यधिक थी। शेख बहा-उद्दीन जकरिया का नाती मौलाना इल्मुद्दीन दिल्ली में शिक्षा दिया करता था। बरनी के अनुसार इस काल में बुखारा, समरकन्द, ख्वारिज़म तथा इराक़ से बड़ी मात्रा में पुस्तकें आती थीं, जिसका अध्ययन यह विद्वान किया करते थे। इस काल में कुरान का सही उच्चारण करके पढ़ने की शिक्षा मौलाना जमालुद्दीन शातिबी, मौलाना अला-उद्दीन मुक़री व हसनबसरी का भांजा ख्वाजा ज़की दिया करते थे। उनके समान ईराक़ व खुरासान में भी कोई व्यक्ति न था। दिल्ली में तज़कीर करने वालों की बड़ी संख्या थी, जिसके कारण वहाँ के शैक्षिक वातावरण में बराबर रौनक रही। मौलाना हमीद-उद्दीन हुसाम व मौलाना इमाद उन प्रसिद्ध विद्वानों में से थे जो कि प्रतिदिन तज़कीर किया करते थे। मौलाना ज़ियाउद्दीन सुन्नामी तफसीर व फिक़ह की विशेष जानकारी रखते थे। वे तज़कीर करते रहे व तफसीर का बयान करते रहे। उनकी सभाओं में २-३ हजार व्यक्ति उपस्थित रहते थे। इनके अतिरिक्त इस काल में मौलाना शिहा-बुद्दीन खलीली, मौलाना क़रीमुद्दीन, मौलाना जलाल हुसाम, मौला बद्र ुद्दीन पानी खोदी, ताजुद्दीन ईराक़ी, अमीर खुसरो, अमीर हसन, सद्र ुद्दीन आली, फखरूद्दीन क़वास, हमीदुद्दीन राजा, उबैद हकीम, शिहाब अन्सारी आदि अनेक नदीम, विद्वान तथा श्रेष्ठ कवि थे। इस काल के प्रमुख इतिहासकारों में अमीर अरसलान कुलाबी, ताजुद्दीन ईराक़ी का पुत्र कबीरूद्दीन आदि भी थे। बरनी के द्वारा दिये गये विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त अलाई काल में शिक्षा की अभूतपूर्व प्रगति हुई। शिक्षा का कोई ऐसा विषय नहीं था, जिसका ज्ञान लोगों ने प्राप्त न किया हो। वैद्यकी या हकीमी का ज्ञान रखने वालों में से मौलाना बद्र ुद्दीन थे। भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर मुसलमानों ने भारतीय ज्योतिष में भी रुचि ली। उन्होंने अपने पुत्रों व पौत्रों की जन्म-कुण्डलियाँ बनवाने के लिए पहले तो हिन्दू ज्योतिषियों को ढूंढ़ना प्रारम्भ किया फिर बाद में स्वयं इस शास्त्र का अध्ययन किया। बरनी के अनुसार दिल्ली में कोई भी मुहल्ला ऐसा न था जो कि ज्योतिषियों से रिक्त हो। बलबन जो कि रक्त की शुद्धता, कुलीन वंश व वंशानुगत पर अधिक बल दिया करता था, के समय से ही जन्म-कुण्डलियाँ बनवाने का धन्धा चल पड़ा। इसी प्रकार से अलाउद्दीन खिल्जी के समय शिक्षा व साहित्य की प्रगति हुई।[६]

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने १३४६ ई० में दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना

की और उसके निकट एक मस्जिद वनवायी। वह स्वयं एक महान विद्वान था किन्तु दुर्भाग्यवश वह राज्य के कार्यों में इतनी बुरी तरह से फँस गया कि शिक्षा के विकास की ओर वह तनिक भी ध्यान न दे सका। लेकिन फिर भी अव तक शिक्षा संस्थाओं और उनके पाठ्यक्रम का स्वरूप निर्धारित हो चुका था। लगभग सभी महत्वपूर्ण शहरों में मदरसों की स्थापना हो चुकी थी। इन मदरसों में कला एवं विज्ञान के सभी विषयों पर उच्चतर शिक्षा देने की व्यवस्था थी। यहाँ प्राथमिक व्याकरण, काव्य, काव्यशास्त्र, गणित, वीजगणित, रेखागणित, पैगम्बरों की जीवनियाँ, हदीस, तफसीर तथा फिक्र के अतिरिक्त सलनत में अन्य विषयों की पढ़ाई होती थी, इस सत्य का वोध कराती है कि इस समय शिक्षा धार्मिक विषयों तक ही सीमित थी। यह सत्य है कि धार्मिक शिक्षा पर अत्यधिक वल था, किन्तु अन्य विषय उपेक्षित नहीं थे।

फिरोजशाह तुग़लक ने गद्दी पर बैठते ही शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन दिया। वरनी ने लिखा है कि सिंहासनारोहण के उपरान्त विशेषकर प्रथम दो-तीन वर्षों में कोई भी दिन ऐसा व्यतीत नही होता था कि **दीवान-ए-रसालत** वाले बड़े स्नेह से सैय्यदों, शेखों, आमिलों, विद्यार्थियों, सूफियों आदि के प्रार्थना-पत्न राज़सिंहासन के सम्मुख प्रस्तुत न करते हों और सुल्तान उन्हें स्वीकार न करता हो।[१०] उसने शेखों, सैय्यदों, आमिलों को जो उन्हें भूमि प्रदान की गई थी और पिछले दस वर्षों से उनसे छीन कर **खालसा** में मिला ली गई थी वे उनकी सन्तानों को पुराने आदेश-पत्र के आधार पर उन्हें वापस कर दी। जिनके पास कुछ भी न था उन्हें नई भूमि इनाम में दी गई। दिल्ली के आमिलों, शेखों, मुफ्तियों, अध्यापकों, मुज़किरों (उपदेश देने वालों), विद्यार्थियों, हाफिजों, कुरान पढ़ने वालों, जिनकी संख्या हजारों व लाखों में थी, उन्हें वजीफे दिए गए। प्राचीन पाठशालाएँ जो उजड़ गई थीं व जो मदरसे वन्द हो चुके थे उन्हें उसने पुनः स्थापित किया गया। उनमें अध्यापक व मुज़किर नियुक्त किए और वहाँ शिक्षा प्रदान करने का कार्य पुनः प्रारम्भ हो गया। इन अध्यापकों की संख्या हजारों में थी और उन्हें ग्राम व इनाम देकर सम्मानित किया गया। जिनको १००-२०० तन्के वज़ीफा मिलता था और जिन्हें कि यह राशि मिलनी वन्द हो गई थी उनका नाम पंजिकाओं से निकाल दिया गया और उन्हें नये सिरे से ४००-५००-७०० तथा १००० तन्के तक वज़ीफा दिया गया। जिन विद्यार्थियों को पहले १०० तन्के भी न मिलते थे उन्हें १००-२०० तथा ३०० तन्के दिए जाने लगे। वरनी के अनुसार दिल्ली के विद्वान व विद्यार्थी छोटे से वड़े तक धनी व समृद्ध हो गए तथा वे दरिद्रता व निर्धनता से मुक्त हो गये। इससे पूर्व इनमें से अनेक के पास अच्छे वस्त्र व जूतियाँ पहनने को न थी, किन्तु सुल्तान फिरोज़शाह की अनुकम्पा से वे उत्तम वस्त्र धारण कर घोड़ों पर सवारी करने लगे। वे अपना समय धार्मिक शिक्षा तथा शरा के आदेशों की शिक्षा देने में ही व्यतीत करते थे। इसी प्रकार से उचित ढंग से कुरान पढ़ने को सिखाने वाले अध्यापकों व मुज़किरों, हाफिजों, सुलेख लिखने वालों, जो कि शिक्षाविद् समुदाय के अविच्छिन्न भाग थे व अपना जीवन निर्धनता व दरिद्रता में

व्यतीत कर रहे थे उन्हें भी १०००, ५००, ३००, २०० तन्के मिलने लगा ताकि वे रात-दिन इस्लाम का प्रचार कर सकें।[११]

कड़ा के कवि मुहतर ने अपने दीवान में लिखा है कि फिरोजशाह ने अनेक मदरसों की स्थापना की। उसने स्वयं दिल्ली में हौज-खास के पास फिरोज़शाही मदरसा देखकर उसका हृदयग्राही विवरण इन शब्दों में दिया है, "हौज़ की लीला देखने के उपरान्त जब हम उस शुभ भवन (मदरसे) में प्रविष्ट हुए तो हमें एक खुला हुआ विस्तृत समतल स्थान मिला। उसका प्रांगण हृदयग्राही था और उसकी विशालता जीवन-दान करती थी। सम्बुल, रैहान, गुलाव के लाल फूल खिले हुए थे और जहाँ तक दृष्टि जाती थी यह फूल सुव्यवस्थित ढंग से लगे हुए थे। अनार, नारंगी, नींबू, सेव, अंगूर इस प्रकार लगे हुए थे कि मानों आगे आने वर्ष के फल इसी वर्ष लग गये हों। प्रत्येक दिशा में बुलबुलें गा रही थीं। ऐसा ज्ञात होता था कि उनके पंजों में चंग तथा चोंच में बाँसुरी है। इस उद्यान में एक चबूतरा था जिसकी लम्बाई-चौड़ाई ४० हाथ थी। उसके ऊपर एक बहुत ही बड़ा गुम्बद था। भवन के कोठे तथा बुर्ज दुलहिन के मुख के समान सोने से सजे थे। द्वार तथा दीवार दर्पण के समान थे। उसकी दीवार का चूना तथा पत्थर कलई व संगमरमर के थे। उसके तख्ते तथा द्वार की लकड़ी चन्दन की थी। इसका बाहरी व भीतरी भाग शीराज़, यमन तथा दमिश्क के कालीनों से सजा हुआ था। जब हम उसमें प्रविष्ट हुए तो हमें उसके भीतर एक स्वर्ग मिला। विद्वान लोग फिरिश्तों के समान प्रत्येक दिशा में उपस्थित थे। उनमें अरबी के विद्वान तथा एराक़ी ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे। सभी शाम के लवादे व मिस्र की पगड़ियाँ पहने हुए थे। प्रत्येक अद्वितीय थे और हर प्रकार की कला को जानता था। प्रत्येक अपनी बुद्धि के कारण प्रसिद्ध था। वे सुन्दर व सुबोध भाषा में बुखारा तथा समरकन्द में और अलंकृत भाषा में हिज़ाज, यमन तथा नज़्द में प्रसिद्ध थे। उन लोगों के आचार्य जो कि सिर से लेकर पाँव तक बुद्धि व विद्वता से परिपूर्ण थे, जलालुद्दीन सूफी थे। वे कुरान के ७ नियमों को पढ़ सकते थे तथा १४ विधाएँ जानते थे। मुहम्मद साहब की हदीसों के पाँच प्रसिद्ध संग्रह का उन्हें ज्ञान था और वे चारों कर्मों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रखते थे। हमने उनका उत्तम व्याख्यान सुना और उनके व्याख्यान द्वारा तफसीर तथा हदीस के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। मदरसे में सभी स्थानों पर विद्यार्थी वाद-विवाद में लगे हुए थे। विवाद समाप्त हो जाने पर ख्वान सालार भोजन लाया। भोजन में तीतर, कबूतर के बच्चे, चकोर, कुलंग, मछली, मुर्ग तथा मोटे-ताजे बकरी के बच्चे, बादाम मिला हुआ तथा सुगन्धित व अनारदाना जिन पर केसर चन्दन व कस्तूरी छिड़की हुई थी, भुनी हुई टिकिया, जलेबी तथा गीली व सूखी बादाम की टिकिया ढेसे में थी। वे स्वर्ग की बहार की भाँति सजी हुई थीं। थाल पत्ते के समान व प्याले नरगिस के फूल के समान थे। थाल में सामने खट्टे फल तथा अचार भी थे। आबदार (जल का प्रबन्धक) थालों में नारंगी मिला हुआ अनार का शर्बत लिए हुए खड़े हुए थे। मिश्री तथा गुलाब मिला हुआ शर्बत

और कस्तूरी मिला हुआ शहद भी उपलब्ध था। पान की व्यवस्था करने वाले सोने व चाँदी के पान दानों में पान देने में व्यस्त थे। गुलाब के पत्रों के समान पानों के बीड़ों में काँटों से छेदकर तैयार किये गये थे। भोजन के उपरान्त उपस्थित लोगों ने सुल्तान व शाहज़ादों की समृद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना की।'[१२] बरनी ने इस मदरसे का विवरण इस प्रकार दिया है, 'उसके अनुसार इस मदरसे की अद्‌भुत इमारत अलाई हौज़ के किनारे बनी है।' अपने गुम्बदों की ऊँचाई, कला की सुन्दरता, प्रांगणों के अनुपात, बैठने के स्थान तथा प्रयोग में आने वाले कमरों का आकर्षण एवं हृदय-ग्राही खम्भों की पंक्तियों के कारण यह भवन संसार के प्रसिद्ध भवनों से बढ़ गया है। यह ऐसी विचित्र एवं अद्‌भुत इमारत निर्मित हुई है कि जो कोई भी मदरसे का स्थायी निवासी अथवा यात्री इसमें प्रविष्ट होता है तो वह सोचता है कि मानो वह स्वर्ग में पहुँच गया हो। वहाँ पहुँचते ही प्रविष्ट होने वाले के हृदय के दुख दूर हो जाते हैं। हृदयग्राही दृश्यों को देखकर थके हुए व्याकुल प्राणियों में जीवन तथा प्रफुल्लता उत्पन्न हो जाती है। पुराने दुख दर्शकों के हृदय से निकल जाते हैं। लोग भवन पर इतने मुग्ध से हो जाते हैं तथा मदरसे की हवा पर इतने आसन्न हो जाते हैं कि उन्हें अपने घरों की स्मृति नहीं रहती, वे अपनी आवश्यकता एवं अपने कार्य त्याग देते हैं और अपने पग मदरसे के बाहर नहीं रखते। शहर के निवासी मदरसे की हृदयग्राही वायु के कारण अपने निवास-स्थान त्याग कर मदरसे के निकट अपने-अपने भवन बनवा लेते हैं। जब तक १५-२० बार वे मदरसे में नहीं आते उन्हें सन्तोष नहीं होता। यात्री मदरसे की हवा के कारण यहीं टिक जाते हैं और अपनी यात्रा का उद्देश्य भूल जाते हैं। उनकी यही इच्छा होती है कि वे अपने जीवन का शेष भाग यहीं व्यतीत करें। जो यात्री संसार के विभिन्न भागों से यहाँ आते हैं वे मदरसे के अद्‌भुत भवन तथा वायु के आकर्षण को देखकर बड़ी-बड़ी शपथ खाकर यही कहते हैं, "हम संसार के विभिन्न भागों के चक्कर काट चुके हैं और अनेक नगर देख चुके हैं किन्तु ऐसी सुन्दरता तथा ऐसी हृदयग्राही वायु जैसी कि इस मदरसे की है हमने संसार के किसी भी भवन में नहीं पायी है। मदरसे फिरोज़शाही भवन की सुन्दरता, इमारतों के अनुपात तथा आकर्षक वायु के कारण विचित्र है। यह सिनमार द्वारा निर्मित कराये गये खुरनक तथा किसरा के महल से भी उत्तम है। क्योंकि मदरसए फिरोजशाही उत्कृष्ट कार्यों तथा उपकार की खान है अतः अनिवार्य एवं अन्य प्रार्थनाएँ यहाँ होती हैं। यहाँ पाँचों समय की सामूहिक नमाज़ पढ़ी जाती है। सूफी लोग चाश्त, इशराक़, फ़ैअज, जवाल आवानीन तथा तहज्जुद की नमाज़े यहाँ पढ़ते हैं। वे रात-दिन यहाँ जिक्र किया करते हैं तथा सुल्तान के लिए शुभकामना एवं उनकी प्रशंसा किया करते हैं। मौलाना जलालुद्दीन रूमी जो कि प्रकाण्ड विद्वान है सर्वदा लोगों के लाभ के लिए धार्मिक शिक्षा दिया करते हैं। विद्यार्थियों को सदैव पढ़ाया करते हैं, तफसीर, फिक़ह तथा हदीस पढ़ाते हैं। नित्य हाफिज़ आद्योपान्त कुरान पढ़ने में संलग्न रहते हैं।"[१३] फिरोज़शाह तुग़लक ने एक अन्य मदरसा सीरी में बनवाया। "उसकी ऊँचाई आकाश

तुल्य है। भवन-निर्माण की कला की सुन्दरता एवं वायु की शुद्धता को देखते हुए यह एक ऐसी इमारत है जिस पर संसार को सभी इमारतें ईर्ष्या करें। भवनों में किसी भी भवन से इसकी तुलना की जा सकती है। यह वहाँ का अद्भुत भवन है। यदि उसे महल कहा जाय तो भी उचित है, यदि खानकाह कहा जाय तो भी ठीक है और यदि इसे मदरसा कहा जाय तो भी ठीक है। यहाँ सैय्यद नज्मुद्दीन समरकन्दी शिक्षा प्रदान करते थे। उनके लिए सुल्तान ने ग्राम व इनाम प्रदान किये थे। यहाँ विद्यार्थियों को मदरसे की ओर से भोजन मिलता था।"[१४] सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने इसी प्रकार के मदरसे फिरोज़ाबाद तथा अपने राज्य के अन्य शहरों में भी स्थापित किये और उनके खर्च के लिए अनुदान में भूमि व वजीफे निर्धारित किये थे। सुबह-उल-अशा के रचयिता अलकलक़शन्दी के अनुसार इस काल में दिल्ली में हजारों मदरसे थे। इसमें से १००० मदरसे शाफियों के तथा अन्य हनफियों के थे।[१५] फुतूहात-ए-फिरोजशाही के अनुसार सुल्तान ने इन मदरसों की व्यवस्था के लिए भूमि अनुदान में दी व पुराने मदरसों की व्यवस्था के लिए भी समुचित प्रवन्ध किया। विद्यार्थियों के लिए विशेष तौर पर वजीफे निर्धारित किये गये तथा विद्वानों को अत्यधिक धन दिया गया ताकि वे धन की विना चिन्ता किये हुए अपने अध्ययन व अध्यापन कार्य में लगे रहें। सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल के मदरसों में विविध विषयों पर शिक्षा दी जाती थी, जैसे कि इल्म-ए-फिक (न्यायशास्त्र), इल्म-ए-क़ीरत (कुरान के अक्षरों का किस प्रकार सही ढंग से उच्चारण करना), वसूल-ए-फ़िक (न्याय के सिद्धान्त), उसूल-ए-कलाम (दर्शनशास्त्र या अलंकारशास्त्र), अहदीस (मुस्लिम परम्परा का ज्ञान), इल्म-ए-मानी या वयान (काव्यशास्त्र), नहव तथा सर्फ (व्याकरण), इल्म-ए-नज़र (वाद-विवाद), इल्म-ए-रियाज़ी (गणित), इल्म-ए-तवीवी (प्राकृतिक दर्शन), इल्म-ए-इलाही (धर्मशास्त्र), तहरीर (सुलेख) इत्यादि।

इस काल में उच्च शिक्षा में इतिहास भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित था। इसके अतिरिक्त शिक्षा के अन्य विषयों में इल्म-ए-तिव्व (चिकित्साशास्त्र) का भी महत्वपूर्ण स्थान था। दिल्ली के सुल्तानों ने इस विषय पर अधिक ध्यान दिया। अलाई राज्य-काल का इतिहास लिखते समय वरनी ने लिखा है कि इस काल में इतने उच्चकोटि के हकीम थे जो कि जालिनूस जैसे हकीमों से भी कहीं आगे थे तथा जो कि अन्य सुल्तानों के समय भी कभी नहीं देखे गये।[१६] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय के हकीमों में मौलाना वद्रुद्दीन दमिश्की के पास लोग चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करने के लिए जाते थे, क्योंकि वह केवल नाड़ी देखकर ही बीमारी की जड़ और उसका कारण समझ लेता था। यदि मनुष्य के मूत्र को किसी जानवर के मूत्र के साथ मिलाकर उसके सन्मुख रख दिया जाता था तो वह यह वता देता था कि मनुष्य के मूत्र में किसी पशु का मूत्र मिलाया गया है।[१७] नाड़ी की गति मालूम करने में वह केवल मौलाना हामिद मुर्तज़ा से पीछे था। वह इतनी अच्छी तरह में अपने विषय पर भाषण किया करता था कि कानूनची तया हकीमी पर अन्य विषयों के सम्बन्ध में

लोग उसे सुनकर स्तब्ध रह जाते थे।[१८] इस काल के अन्य हकीमों में मौलाना हसन मारी-कली के पुत्र मौलाना सद्रुद्दीन नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पिता एवं पुत्र दोनों इल्म-ए-तिब्ब में तथा रोग को पहचानने तथा रोगी को रोग से मुक्त करने में अत्यधिक दक्ष थे।[१६] उनके अतिरिक्त इस काल के सुप्रसिद्ध हकीमों में इल्मुद्दीन, मौलाना इज्जुदीन बदायुनी और बद्रुद्दीन दमिश्की के शिष्य थे।[२०] बरनी के अनुसार नागौरी ब्राह्मण तथा जयन्ती नामक हिन्दू हकीम दिल्ली में सुप्रसिद्ध हकीमों में से थे।[२१] महाचन्द के समान कोई भी हकीम वहाँ नहीं था। इन हिन्दुओं में अरबी व फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करके यूनानी व यमनी हकीमी विद्या दिल्ली में सीखी और वे अपने व्यवसाय में प्रवीण हो गये। इस समय इल्मुद्दीन कुहल तथा जजा नामक जर्राह या शल्य-चिकित्सक अद्वितीय थे।[२२] सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के समय भी इल्म-ए-तिब्ब में विशेष प्रगति हुई। *सीरत-ए-फिरोजशाही* में पक्षियों की चिकित्सा पर ग्रन्थों के कुछ अंश हैं तथा एक खण्ड का शीर्षक '*तिब्ब-ए-फिरोजशाही*' है, जिसमें २८ उपखण्ड चिकित्साशास्त्र पर है।[२३] मालवा के सुल्तान ग्यासुद्दीन ने चिकित्सा-शास्त्र पर एक संस्कृत ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कुसरत-उल-मुल्क शीर्षक के अन्तर्गत करवाया था।[२४] यह ग्रन्थ पशु-चिकित्सा पर है। इस काल में चिकित्सा विज्ञान के अनेक अन्य विषयों तथा शाखाओं जैसे कि शल्य-चिकित्सा, नेत्र चिकित्सा इत्यादि विषयों के अध्ययन का भी विकास हुआ। सुल्तान सिकन्दर लोदी को चिकित्साशास्त्र में इतनी अधिक रुचि थी कि उसने संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर तिब्ब-ए-सिकन्दरी नामक ग्रन्थ की रचना अपने वज़ीर मियाँ भुवा से १५१२ ई० में करवाई।[२५]

मदरसों में शिक्षक विद्यार्थियों पर पूरी तरह से ध्यान रखते थे। मेधावी छात्र सर्वप्रथम अपनी कक्षा में अमुक विषय पर निजी विचार प्रकट करते थे। उसके बाद उसका वाद-विवाद गुरु के साथ होता था जो कि अपने विचार प्रकट करते हुए वाद-विवाद को समाप्त कर दिया करता था। इस प्रकार के प्रशिक्षण को 'ईद्र' कहते थे। मदरसों में परीक्षा लेने का ढंग सरल था। वाद-विवाद के समय ही परीक्षार्थी के ज्ञान की परख कर ली जाती थी। यदि वह ठीक पाया गया तो उसे परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित कर दिया जाता था। तत्पश्चात् उल्माओं की सभा में उसे आज कल के दीक्षान्त समारोह की भाँति 'रहम-ए-दस्तरबन्दी' से सम्मानित किया जाता था। इस अवसर पर उसके सिर पर पगड़ी बाँधी जाती थी और उसे उल्मा के समुदाय में सम्मिलित कर लिया जाता था।[२६]

विद्यार्थियों को मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा के प्रथमदाता भोजन, कपड़ा, किताबों की व्यवस्था उनके लिए करते थे। शिक्षक शिक्षा के द्वार सभी लोगों के लिए खुले रहते थे। सभी साधन-सम्पन्न व्यक्तियों से आशा की जाती थी कि वे कम से कम व्यक्तियों को शिक्षा का भार वहन-वहन करेंगे। अपने ग्रन्थ सीरत-ए-फिरोज़शाही में सुल्तान फिरोज़शाह ने लिखा कि सभी को शिक्षा व ज्ञान प्राप्त करना

चाहिए और उन्हें अन्य मुसलमान भाइयों की शिक्षा का भी ध्यान रखना चाहिए। जो ज्ञान वे प्राप्त करें उसे सुलभतः भुलाये नहीं, उसे याद रखने के लिए वरावर वे अन्य व्यक्तियों के साथ वाद-विवाद करते रहें। जो व्यक्ति शिक्षा के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं को शिक्षा दी जानी चाहिए।

शिक्षा की दृष्टि से फिरोजशाह का शासनकाल वहुत ही महत्वपूर्ण था। क्योंकि इस काल में पहली वार व्यवसायिक शिक्षा देने के लिए योजना कार्यान्वित की गई। उसने राजकीय कारखानों में अनेक दासों को विभिन्न उद्योगों में शिक्षा दिलवाने का प्रवन्ध किया। लगभग १२००० दासों को विभिन्न कारखानों में व्यवसायिक शिक्षा मिलती थी।[२७]

फिरोजशाह तुग़लक की मृत्यु के बाद राजनीतिक अस्थिरता के कारण, तैमूर के आक्रमण के परिणामस्वरूप, आन्तरिक विद्रोही के कारण कुछ समय के लिए शिक्षा की प्रगति रुक गई। जव सुल्तान सिकन्दर लोदी, जो स्वयं एक महान कवि, विद्वान एवं साहित्यकार था, गद्दी पर बैठा तो एक वार फिर शैक्षिक वातावरण स्थापित हुआ। उसने हर प्रकार से शिक्षा व साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उसने अपने राज्य के विभिन्न भागों में मदरसों की स्थापना की और आगरा तथा अन्य स्थानों के मदरसों में विद्वान एवं विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड पण्डितों को आचार्य के पद पर नियुक्त किया। उसने देश-विदेश से योग्य एवं अनुभवी अध्यापकों को वुलाया और उन्हें विभिन्न मदरसों में नियुक्त किया। चूंकि अधिकांश अफगान अशिक्षित थे अतएव उन्हें शिक्षित करने के लिए तथा शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि करने के लिए उसने न केवल अफगानों वरन् अफगान सैनिक अधिकारियों के लिए भी शिक्षा अनिवार्य कर दी। शेख अब्दुल हक मुहद्दिस के अनुसार उसने अरव, फारस, मध्य एशिया में विद्वानों को वुलाया और उनके हाथों में शिक्षा संस्थानों को सौंपा। इस काल में अनेक विद्वान विदेशों से विना किसी निमंत्रण के भी आये और यहाँ स्थायी रूप से वस गये।[२८] सिकन्दर लोदी ने मथुरा व नरवर में भी मदरसों की स्थापना की, जो कि सभी लोगों के लिए चाहे वे किसी जाति व धर्म के हों, खुली हुई थी। उसने शेख हुसैन ताहिर को जो कि चलता-फिरता ज्ञान का भण्डार था, को प्रश्रय दिया। उसने मुल्तान से दो प्रसिद्ध विद्वानों शेख अब्दुल्लाह व शेख अजीज उल्लाह तुलावी को, जो कि भाई-भाई थे तथा विवेक विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित थे, को आमन्त्रित किया। उसने शेख अब्दुल्लाह को सम्भल के मदरसे का प्रधानाचार्य नियुक्त किया और शेख अब्दुल्लाह को आगरे में निवास करने की आज्ञा दी तथा उसे आगरे के मदरसे का प्रधानाचार्य नियुक्त किया। शेख अब्दुल्लाह ने ४० अच्छे शिष्य उत्पन्न किये जिनमें से मिया लाधन, जमाल खाँ, देहलवी ग्वालियर के मियाँ शेख और वदायूँ के मियाँ सैय्यद सुप्रसिद्ध थे।[२९] सिकन्दर लोदी स्वयं शेख अब्दुल्लाह के व्याख्यान सुनता था।

वह उसकी कक्षाओं में चुपके से जाकर बैठ जाता था। उसका भाषण ध्यानपूर्वक सुनता था और जब वह जाने लगता था तो उसका अभिवादन करता था।[३२] शेख अजीजुल्लाह के सुप्रसिद्ध शिष्यों में मियाँ हातिम सम्भली तथा शेख इल्लाह दिया जौनपुरी थे।

इस काल में विभिन्न मदरसों में शिक्षा की पद्धति एवं विषय समान थे। सभी मदरसों में एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जो कि धार्मिक होती थी। धार्मिक शिक्षा अथवा मनकूल पर विशेष बल दिया जाता था। बरनी के अनुसार मदरसा-ए-फिरोज़शाही में तफसीर, हदीस व फिकह की शिक्षा दी जाती थी। धार्मिक शिक्षा में शरे शम्सिया और शरे शाफियाँ भी अध्ययन में सम्मिलित थे। इन विषयों के अतिरिक्त विद्यार्थियों को व्याकरण साहित्य तस्सुउफ (सूफी मत) तर्कशास्त्र आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार से उच्च शिक्षा के केन्द्रों, मदरसों में विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। वे मुख्यत: धर्मशास्त्र तथा भाषा-विज्ञान की शिक्षा के केन्द्र थे। उस समय शिक्षा न तो अनिवार्य थी और न ही सब लोगों के लिए थी। शिक्षा का स्तर अत्यधिक ऊँचा था। जिन लोगों को ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा होती थी वे भी शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश करते थे। वहाँ उन्हें अनुशासन में कठिन जीवन व्यतीत करते हुए अध्ययन करना पड़ता था। विद्यार्थियों का सम्पूर्ण समय अध्ययन, चिन्तन, मनन में ही व्यतीत होता था। क्योंकि इस काल में छापाखाना न था। इसलिए कातिब या लिपिकों द्वारा किताबों की प्रतिलिपियाँ भी तैयार की जाती थीं। पुस्तकों के अभाव में विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों को कण्ठस्थ करना आवश्यक हो जाता था। वे बहुधा सभी ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर लिया करते थे। भाषा सीखने के लिए व्याकरण का अध्ययन अति आवश्यक था। दर्शनशास्त्र के अध्ययन में वाद-विवाद, विचार-विमर्श नितान्त आवश्यक था। अतएव लगभग सभी विषय ऐसे थे जिनमें परिश्रम करना पड़ता था।

इसी काल में हिन्दुओं तथा विशेषकर कायस्थों ने फारसी भाषा के साहित्य का अध्ययन किया। मुसलमानों की भाँति उन्होंने भी इनमें दक्षता प्राप्त कर ली और वे राजसेवा में भर्ती हो गये। अगली शताब्दियों में उन्होंने कवियों व साहित्यकारों के रूप में शिक्षा साहित्य के क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया।

१५वीं शताब्दी शिक्षा व साहित्य की दृष्टि से बहुत ही उत्तम था। १३९८ ई० में तैमूर का आक्रमण भारत पर हुआ, उसके पश्चात् दिल्ली से अनेक विद्वान साहित्यकार प्रादेशिक राज्यों में चले गये। इन स्वतन्त्र राज्यों के शासकों व अमीरों ने उन्हें प्रश्रय दिया और उन्हें सुख व सुविधा दी जिसके कारण उन राज्यों में शिक्षा व साहित्य का विकास हुआ। इन प्रान्तीय राज्यों के विभिन्न शहरों में हज़ारों मदरसे थे। उस समय जौनपुर जो कि शीराज़-ए-हिन्द कहलाता था, शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ देश-विदेश से लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। जौनपुर में बीबीराजी बेगम

का मदरसा सर्वप्रसिद्ध था। जिसमें अनेक महान विद्वानों ने शिक्षा ग्रहण की। शेरशाह ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा जौनपुर में ही प्राप्त की थी और यहीं उसने धार्मिक विषयों, इतिहास तथा दर्शन का अध्ययन किया था।[31] इसी प्रकार से बंगाल, विहार, गुजरात, मालवा, खानदेश तथा दक्षिण के स्वतन्त्र राज्यों में शिक्षा का विकास हुआ। सुल्तान महमूदशाह बहमनी शिक्षा एवं साहित्य का महान प्रश्रयदाता था। उसकी राजधानी में असंख्य विद्वान थे। उसने गुलवर्गा, वीदर, इलिचपुर, दौलतावाद, दभहौल, तथा जुन्नार में अनेक मदरसों की स्थापना की और उनकी व्यवस्था की। बहमनी वंश के महान् वज़ीर महमूद गाँवा ने वीदर में विशाल मदरसे की स्थापना की। उसने फारस के सुप्रसिद्ध विद्वान व कवि मौलाना अब्दुररहमान जामी को इस मदरसे में प्रधानाचार्य का पद स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया किन्तु उन्होंने वृद्धावस्था के कारण उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उसके बाद उसने शेख इब्राहीम मुल्तानी को इस मदरसे का आचार्य नियुक्त किया।[32]

इस्लामी शिक्षा के केन्द्र

इस काल में उत्तरी भारत में प्रमुख शिक्षा के केन्द्र निम्नलिखित थे—दिल्ली, आगरा, लाहौर, इलाहाबाद, अजमेर, पटना, अहमदाबाद आदि। इनमें से कुछ केन्द्र अमुक विषय के लिए सुप्रसिद्ध थे। पंजाब ज्योतिषशास्त्र तथा गणित तथा दिल्ली हदीस के लिए प्रसिद्ध था। विहार में शरफुद्दीन यहिया मनेरी, अहमद चिरमपोश, शेख बुध सूफी, मलिक-उल-उलेमा शंकुर के मदरसे मनेर में थे। काज़ी मिया उल्लास का मदरसा मुहल्ला मीरवार विहार शरीफ में, शम्सुहक का मदरसा पटना ज़िले में वाराह के समीप वाजिदपुर में, मुल्ला मन्सूर दानिशमन्द और मुल्ला अब्दुस सामी की मदरसा राजगीर में, अमीर अताउल्लाह जैनावी का मदरसा फुलवर शरीफ में था। इसी प्रकार से देश के अन्य भागों में मदरसे थे।[33]

पूर्व मध्यकाल में सूफी सन्तों की खानक़ाहें भी धार्मिक शिक्षा संस्थाओं के समान थीं तथा वे धार्मिक शिक्षा के महान केन्द्र थे। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में इन खानक़ाहों का जाल बिछा हुआ था। यह खानक़ाहें विभिन्न सूफी सम्प्रदायों, विशेषकर चिश्तिया व सोहरावर्दी सम्प्रदायों की थी, जहाँ कि हज़ारों की संख्या में लोग ज्ञान की पिपासा को बुझाने के लिए देश-विदेश से आते थे।

उपरोक्त धार्मिक शिक्षा संस्थानों में समाज का प्रत्येक वर्ग या तो ज्ञान की खोज में या अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का निदान करने के लिए पहुँचता था। सुल्तान इल्तुतमिश सप्ताह में दो बार दिल्ली में स्थित शेख कुतुबुद्दीन वख्तियार काकी की खानक़ाह में जाता था। शेख निज़ामुद्दीन औलिया क़ुरान, आरिफ तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए दो बार अजोधन में शेख फरीद की खानक़ाह में अध्ययन करने के लिए गया। दिल्ली के निवासी मौलाना बद्रुद्दीन इसहाक़ ने अपना वोरिया-विस्तर वाँधा और वह अपनी समस्याओं के निवारण हेतु बुखारा के लिए चल

पड़ा, किन्तु अजोधन पहुँचने पर उसके मित्र ने उसे रोक लिया और उसने बाबा फरीद से शिक्षा ग्रहण की। तुग़रिलबेग के नौकर हामिद ने नौकरी छोड़कर लखनौती से अजोधन के लिए प्रस्थान किया और बाबा फरीद के चरणों में शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जहाँ अनेक व्यक्तियों ने मदरसों व मकतबों में शिक्षा प्राप्त न कर खानक़ाहों में शिक्षा प्राप्त की।

हिन्दू शिक्षा

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के दौरान बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में जब हिन्दू मन्दिरों व बौद्ध विहारों व विश्वविद्यालयों पर तुर्की आक्रमणकारियों ने प्रहार किये तो शिक्षा को हानि पहुँची। अनेक शैक्षिक संस्थाएँ ध्वस्त हो गईं किन्तु तेरहवीं शताब्दी के लेकर १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक उत्तरी भारत में मन्दिरों व मठों में स्थित यह केन्द्र फिर से जीवित हो गये। धर्म व शिक्षा के महान केन्द्र तीर्थ-स्थानों में अधिक थे। शंकराचार्य ने ८वीं शताब्दी में बद्रीनाथ, द्वारकापुरी, जगन्नाथ व श्रीनगर में जिन मठों की स्थापना की थी, वे पूर्वत: ज्यों के त्यों बने रहे। वृन्दावन व मथुरा में अनेक मठ थे। प्रयाग व काशी न केवल धार्मिक स्थान वरन् शिक्षा के महान् केन्द्र थे। इस काल में जैन-मुनियों, शैव-मतावलम्बियों तथा वैष्णवों को जो धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी, उसके कारण उन्होंने अपने मठों, अखाड़ों व पंथ की स्थापना विभिन्न स्थानों में की, जहाँ कि शिक्षा प्रदान की जाती थी। मुसलमानों की भाँति हिन्दुओं को भी धार्मिक शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान रहा। उत्तरी भारत में शैव मठ केदारनाथ, काशी, गया तथा नासिक के पास श्रीसैला, बनारस का जंगमवाड़ी मठ सुप्रसिद्ध मठों में थे। पश्चिमी भारत में जैनियों के अनेक विहार थे। वैष्णव सन्तों ने देश के विभिन्न भागों में अपने पंथों की स्थापना कर ली थी। कबीर पंथ की अनेक शाखाएँ उत्तरी भारत में, दादू पंथ की अनेक शाखाएँ राजपूताना में, मलूक दास के पंथ की शाखाएँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुल्तान, पटना, कटक, दक्षिण, नेपाल व काबुल में थीं। दादू के समकालीन बीरभान ने साक मत की स्थापना नरनौल के समीप विजेसर में की और उसकी शाखाएँ दिल्ली, रोहतक, आगरा, फर्रुखाबाद, मिर्ज़ापुर व जयपुर में थी। इस प्रकार से हिन्दू धर्म व उसके विभिन्न मतों का प्रचार इन अखाड़ों, मठों व पंथों के माध्यम से होता रहा।

वास्तव में हिन्दू शिक्षा पाठशालाओं तथा प्राइमरी स्कूलों, टोल तथा व्यक्तिगत अध्यापकों के द्वारा दी जाती थी। पाठ्यक्रम दो प्रकार के थे प्राइमरी तथा उच्च शिक्षा। पाठशालाओं व टोल में, जहाँ तक शिक्षा की प्रकृति का प्रश्न है अधिक अन्तर न था। टोल में उच्च शिक्षा दी जाती थी और वे बहुधा उच्च शिक्षा के केन्द्र ही हुआ करते थे। एक विशाल छप्पर की बनी हुई झोपड़ी होती थी जिसके समीप अनेक झोपड़ियाँ विद्यार्थियों के रहने के लिए हुआ करती थीं। इसी छप्पर के नीचे अध्यापक व विद्यार्थी मिलते थे। टोल में विद्यार्थी ८ से १० वर्ष तक विद्याध्ययन करता था। अध्यापक

टोल में नहीं रहते थे। वे प्रतिदिन प्रातः वहाँ आते थे और दिनभर शिक्षण कार्य करने के उपरान्त संध्या को अपने घरों को वापस लौट जाते थे। अध्यापक विद्यार्थियों से किसी प्रकार की फीस नहीं लेते थे। इसके विपरीत वे विद्यार्थियों के भोजन व वस्त्रों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व ले लिया करते थे। अध्यापक स्वयं धन की व्यवस्था करता था, जो कि उसे अनुदान या दान में गणमान्य व्यक्तियों से मिल जाती थी। टोल में अधिक से अधिक २५ विद्यार्थी रहते थे। जो कि पूर्णतः अपने गुरू पर ही निर्भर रहते थे।

टोल के विपरीत पाठशालाएँ प्रारम्भिक शिक्षा के केन्द्र हुआ करते थे। वहाँ विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से ही आते थे।

हिन्दू बालक की शिक्षा प्रायः ५ या ६ वर्ष की आयु में ही प्रारम्भ होती थी इस सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित नियम नहीं था। उनकी शिक्षा का श्रीगणेश राम, कृष्ण, मुरारी, ओम, हरी, भूमि पर खड़िया द्वारा लिखवाकर प्रारम्भ होती थी। उसके पश्चात् उसे वर्णमाला का ज्ञान कराया जाता था। धीरे-धीरे उसे अन्य नियमों की भी शिक्षा दी जाती थी।

उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में संस्कृत साहित्य और भाषा, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, न्याय, दर्शन, पुराण, वेद, चिकित्साशास्त्र, इतिहास, भूगोल, खगोलशास्त्र, संगीत, भक्ति योग, अलंकार, कोष, तन्त्र, मल्लविद्या, सूत्र इत्यादि विषय थे।

हिन्दू शिक्षा संस्थाएँ

इस काल में हिन्दू शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बनारस, मिथिला, नदिया, काश्मीर, नालन्दा, विक्रमशिला, गुजरात इत्यादि थे। अमीर खुसरो के अनुसार संसार के विभिन्न भागों से विद्वान विद्या अध्ययन करने के लिए बनारस आते थे। किन्तु कभी भी हिन्दुओं ने ज्ञान की खोज के लिए विदेश जाना आवश्यक नहीं समझा। बनारस वेदान्त, संस्कृत, साहित्य तथा व्याकरण की शिक्षा का महान् केन्द्र था। मिथिला हिन्दू शिक्षा का दूसरा महान् केन्द्र था। यहाँ भारतवर्ष के विभिन्न भागों से लोग न्याय तथा तर्कशास्त्र पढ़ने के लिए आते थे। १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक न्याय के अध्ययन के लिए मिथिला सुप्रसिद्ध रहा। बंगाल में स्थित नवद्वीप या नदिया १५वीं शताब्दी में प्रकाश में आया। यहाँ एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालय के अतिरिक्त यहाँ अनेक शिक्षा संस्थाएँ थीं।

इस काल में शिक्षा का महत्व केवल उच्च वर्ग तथा मध्यवर्ग में ही था। दिल्ली के सुल्तानों में अधिकांश पढ़े-लिखे थे। दास वंश के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक ने निशापुर में शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ उसने अरबी व फारसी का अध्ययन किया। तत्पश्चात् तुर्किस्तान में काजी फखरुद्दीन कूफी से कुरान पढ़ना सीखा। इल्तुतमिश स्वयं एक महान् विद्वान् एवं शिक्षाविद् था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र महमूद को उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए दरबार व राजधानी से दूर लोनी नामक गाँव में

रक्खा। बरनी ने बलबन के पुत्र बुगरा खाँ (सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद) के सम्बन्ध में लिखा है कि जब वह अपने पुत्र सुल्तान कैकुबाद से भेंट करने के लिए गया तो उसे बलबन द्वारा पालन-पोषण किए जाने का ढंग याद आया। उसने अपने पुत्र कैकुबाद से कहा कि "जब मैं और मेरे बड़े भाई शब्द-बोध तथा लिखने की शिक्षा समाप्त कर चुके, तो हमारे गुरु ने सुल्तान बलबन को सुझाव दिया कि अब शाहजादों को सर्फ तथा नहो की शिक्षा प्रदान की जाय। उनके लिए अन्य गुरु नियुक्त किए जाँय। इस पर बलबन ने कहा कि शाहजादों को अब इतिहासवेत्ताओं को सुपुर्द किया जावे ताकि वे उन्हें **असदाबुस्सलातीन** तथा **मासीर-उस-सलातीन** पढ़ाएँ। इससे मालूम होता है कि राजकुमारों के लिए उस समय पाठ्यक्रम क्या था। बरनी द्वारा दिए गए विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि राजकुमारों को नमाज, रोजा, वजू और उनसे सम्बन्धित बातों की भी शिक्षा दी जाती थी।[३३] बलबन का पुत्र सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद भी शिक्षित था। वह अपने ही हाथों से कुरान की प्रतियाँ तैयार कर उन्हें बेचा करता था। इब्नबतूता के अनुसार काज़ी कमालुद्दीन ने उसके द्वारा तैयार की गई एक प्रति जो कि अत्यन्त सुन्दर सुलेख में थी, उसे दिखाई थी।[३४] बलबन का ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा मुहम्मद की साहित्य में प्रगाढ़ रुचि थी। उसने प्रख्यात कवियों की कृतियों से कवियों का एक संकलन तैयार किया था। इस संकलन में २०,००० कवित्त थे। वह साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन किया करता था जिसमें मुख्यत: कवि भाग लेते थे। उसके दरबार में सुप्रसिद्ध साहित्यकारों एवं कवियों का जमघट लगा रहता था। उसके सेवक कुशलतापूर्वक शाहनामा, दीवान-ए-सनानई, दीवान-ए-खाकानी एवं खम्सा पढ़ सकते थे। विद्वान् उसकी उपस्थिति में इन कृतियों पर वाद-विवाद किया करते थे। अमीर खुसरो व अमीर हसन को उसने प्रश्रय दे रक्खा था। अलाउद्दीन खिल्जी के कई पुत्र थे। अमीर खुसरो ने लिखा है कि जिस समय कुतुबुद्दीन मुबारकशाह की मृत्यु हुई उस समय उसके पाँच भाइयों में से फरीदखान कुरान की शिक्षा पूर्ण कर चुका था और आबुबक्र खाँ जिसकी आयु १४ वर्ष की थी, कुरान के अध्ययन में लगा हुआ था।[३५]

सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक की विद्वता एवं उसकी विभिन्न विषयों में रुचि एवं दक्षता को देखकर ज्ञात होता है कि उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। वह स्वयं एक महान् लेखक एवं कवि था। अपनी लेखनशैली के विषय में वह उस युग के साहित्यकारों एवं विद्वानों से कहीं आगे था। उसकी स्मरण-शक्ति पैनी थी। इतिहास की घटनाएँ उसे स्मरण थीं। वह **सिकन्दरनामा, तारीख-ए-मुहम्मदी** तथा **बूमी सलीमनामा** आदि ग्रंथों से परिचित था। सुलेख, भौतिकशास्त्र, तर्कशास्त्र, ज्योतिशास्त्र, गणित, चिकित्साशास्त्र, दर्शन, कुरान, हदीस, फिक तथा अन्य विषयों का वह प्रकाण्ड पण्डित था। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक की कृति **फुतूहात-ए-फिरोज़शाही** से ज्ञात होता है कि वह भी एक महान् साहित्यकार एवं विद्वान् था। अब तक शासकों के लिए विविध विद्याओं एवं विषयों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो चुका था।

लोदी वंश के संस्थापक वहलोल ने इस्लामी कानून का गहन अध्ययन किया था, जिसके कारण वह अपने न्याय के लिए सुप्रसिद्ध हुआ। उसका उत्तराधिकारी एवं पुत्र सिकन्दर लोदी गुलरुखी के नाम से कविताएँ लिखता था तथा कवियों से साथ वाद-विवाद में भाग लेता था। उसने सूफी शेख समाउद्दीन देहलवी से अरवी व्याकरण पर **निज़ाम-सर्फ** नामक ग्रन्थ का अध्ययन किया। वह अपने कवित्तों की रचना करके शेख जमाली को दिया करता था। उसने ८०००-९००० कवित्तों का एक दीवान लिखा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजघराने में तथा अमीरों के परिवारों में शिशुओं को प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा देने का प्रचलन था। यह शिक्षा उन्हें निजी शिक्षकों द्वारा दी जाती थी। राजकुमारों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए मदरसे, खान-काओं व दरगाहों में नहीं जाना पड़ता था। कवियों, इतिहासकारों, शेख मशाहिकों की संगत में वे स्वयं अनेक विषय सीख लिया करते थे।

जहाँ तक स्त्री-शिक्षा या राजकुमारियों की शिक्षा की व्यवस्था का प्रश्न है, इस काल में सर्वप्रथम तो स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रचलन नहीं था, दूसरे पर्दा-प्रथा के कारण उन्हें घर या महल के अन्दर ही शिक्षा दे दी जाती थी। यह शिक्षा या तो घर या महल में शिक्षित महिलाएँ दिया करती थीं या उसके लिए शिक्षिकाओं की व्यवस्था कर दी जाती थी। अन्यथा साधारण मुसलमान परिवारों की ८ या नौ वर्ष की आयु की लड़कियों को मकतब में शिक्षा देने की व्यवस्था थी। हिन्दू-मुसलमान परिवारों में स्त्रियों में शिक्षा का अभाव था।

सल्तनकाल से पूर्व हिन्दू राजघरानों में भी राजकुमारों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। १६वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी तक के मध्य उच्च हिन्दू परिवारों में शिक्षा की क्या स्थिति थी, यह कहना कठिन है। कुतुबन व मंझन तथा हिन्दी के अन्य कवियों की कृतियों से ज्ञात होता है कि पुरानी परम्पराएँ ही इस विषय में हिन्दू राजघरानों के राजकुमारों का मार्ग-निर्देशन करती रही। कुतुबन की मृगा-वती से ज्ञात होता है कि राजकुमारों को ६ भाषाओं, १४ निदानों, महाकाव्यों इत्यादि का अध्ययन करना पड़ता था।[३६] मंझन की मधुमालती के अनुसार राजकुमार मनोहर के पिता ने उसे एक पण्डित के पास पाँच वर्ष की आयु में विद्या प्राप्त करने के लिए भेजा था। उस पण्डित ने उसे वर्णमाला अक्षरों के अर्थ, योग, कोकशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, गीता इत्यादि विषयों का अध्ययन करवाया और उसे तलवार, खड्ग, कटार, धनुष आदि चलाना सिखाया।[३७] नव-स्थापित सल्तनत के अन्तर्गत हिन्दुओं को फारसी भाषा सीखने का सुअवसर मिला क्योंकि इस भाषा का प्रयोग राजकार्यों में होता था। गाँवों में पटसालों, टोल व मन्दिर के परिसर में शिक्षा दी जाती थी। वहाँ विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर वेद, उपनिषद, महाभारत का अध्ययन करते थे। इस काल का भक्ति साहित्य हिन्दुओं में शिक्षा के विकास का साक्षी है। शिक्षा ग्रहण करने का तात्पर्य केवल पाठशालाओं में जाकर ही शिक्षा ग्रहण करना नहीं था वरन् विविध प्रकार से अपने ज्ञान की वृद्धि करना था। सत्संग एवं संगत से भी ज्ञान प्राप्त होता था।

———

१२

सिंचाई के कृत्रिम साधन, कृषि एवं गैर-कृषि उत्पादन

इस काल में केवल कृषक ही गाँवों में खेती करते और वहीं रहते थे। प्रत्येक गाँव की औसत जनसंख्या २००-३०० व्यक्तियों के मध्य हुआ करती थी।[१] प्रत्येक कृषक अपनी खेती अलग-अलग करता था। उनके खेतों की नाप एक समान नहीं होती थी क्योंकि ग्रामीण समाज में कई अन्य भूमि-पति भी हुआ करते थे, उदाहरणार्थ, खूत या मुखिया, बलाहार या गाँव के निम्न लोग आदि। निःसन्देह खूत की भूमि अधिक हुआ करती थी। साधारण कृषकों के नीचे एक ऐसा निम्न वर्ग गाँव में रहता था जिसके पास भूमि नहीं होती थी। उनके पास या तो अन्य व्यवसाय थे या वे अन्य श्रेणियों के किसानों के खेतों में कार्य कर जीवन-निर्वाह किया करते थे। १३वीं से १५वीं शताब्दी तक का कृषक कृषि में हल, बैल व पुराने औज़ारों का ही प्रयोग किया करता रहा। आज भी अनेक गाँवों में उन्हीं का प्रयोग वे खेती करने में करते हैं, हालांकि कृषि के नए-नए यन्त्र व साधन आज पहले की अपेक्षा बहुत अधिक उपलब्ध है।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व की सदियों से सुल्तान महमूद गज़नी व मुहम्मद ग़ौरी के निरन्तर आक्रमणों तथा यहाँ के आर्थिक साधनों के नष्ट होने के कारण तथा जन व धन की हानि होने के कारण भारतीय शासक कृत्रिम सिंचाई के साधन की कोई योजना अपने हाथों में न ले सके। प्राचीन काल मे शासक का यह कर्तव्य था कि वह नहरें व कुएँ बनवाएँ ताकि उनका प्रयोग खेतों की सिंचाई के लिए किया जा सके। ११वीं व १२वीं शताब्दी में काश्मीर के शासक हर्ष (१०८६-११०१) ने पम्पा झील या पम्पसार का निर्माण कराया। गुजरात के चालुक्य शासक सिद्धराज जैसिंह ने अनहिलवाड़ा में सहस्त्र लिंग झील का निर्माण कराया। इसी प्रकार कर्ण नामक शासक ने कर्णसागर झील का निर्माण कराया। इस काल में तालाब बनाने की भी प्रथा थी। तालाबों का निर्माण सर्वसाधारण व सिंचाई के हेतु किया जाता था। हरी वर्मन के मन्त्री भट्ट भावदेव ने राधा में विष्णु मन्दिर के सामने एक तालाब खुदवाया। कामरूप के शासक जयपाल के शासनकाल में प्रहला नामक ब्राह्मण ने एक तालाब खुदवाया। विहार में राजा रुद्रदमन के एक परामर्शदाता गंगाधर ने ११३७ ई० के पूर्व एक तालाब गया में बनवाया। राजपूताना में आबु के परमार शासक पूर्णपाल की बहन लहिनी ने १०४२ ई० में सिरोही राज्य में

स्थित वसन्तगढ़ में तालाव वनवाए। चिरीहितला में परमार शासक उयदित्य के शासन काल में १०८६ ई० में जन्ना ने तालाव का निर्माण कराया। इस काल के शिलालेखों से तालाव वनवाए जाने के वारे में मालूम होता है। एक शिलालेख से मालूम होता है कि कालाचूरियों के राज्य में शेष आचार्यों तथा सामन्तों ने अनेक तालाव वनवाए। प्रबोध सिन्धु पहाड़ के समीप सिन्धु तालाव वनवाया गया। ११८२ ई० में भलमसिंह ने रीवां में १५०० टण्के में एक तालाव खुदवाया। इसी प्रकार से ब्रह्मदेव नामक कालाचूरि सामन्त ने ११६३ ई० में पुरुषोत्तम के मन्त्रियों ने ११४७-४८ ई० में, गंगाधर ने ११८१-८२ ई० में रायपुर व विलासपुर क्षेत्र के अनेक तालाव व कुएँ वनवाए। इसी प्रकार से इस काल में अनेक कुएँ व तालाव सिंचाई के लिए उत्तरी भारत में व्यक्तिगत लोगों ने वनवाए होंगे जिनका उल्लेख शिलालेखों व समकालीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

सिंचाई के कृत्रिम साधन दिल्ली के सुल्तानों व सल्तनतकालीन कृषकों को विरासत में प्राप्त हुए। पूर्वकाल की भाँति इस काल में भी खेतों की सिंचाई के मुख्य साधन नदियाँ, कुएँ, तालाब, जलाशय थे। भारतीय कृषक सिंचाई के कृत्रिम साधनों की अपेक्षा मौसमी वर्षा पर अधिक निर्भर रहते थे। उनकी दृष्टि आकाश के काले वादलों की ओर सदैव लगी रहती थी और वे अच्छी वर्षा की सदैव कामना करते थे।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर अन्त तक सिंचाई के कृत्रिम साधनों का विकास होता रहा। वंगाल को विजित करने के वाद खिल्जी विजेताओं ने नदियों के उस प्रदेश में अनेक वाँधों व तालावों का निर्माण किया जिससे कि एक वड़ा भू-भाग कृषि-योग्य हो गया। मिनहाज सिराज के अनुसार इन वाँधों के वनने से मनुष्यों व जानवरों का वर्षाऋतु में आना-जाना सम्भव हुआ और जो पानी छोटी-छोटी नहरों से वहता था उसे धान के खेतों की ओर मोड़ दिया गया।[२] इसी काल में हरयाना व राजस्थान की वलुई व वंजर भूमि की ओर भी दिल्ली के सुल्तानों व अमीरों का ध्यान गया। १२११ ई० के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि वद्रउद्दीन सन्कार ने पलवल में एक हौद (झील) का निर्माण वहाँ के लोगों व पशुओं के हितों के लिए किया।[3] शेख जैन की **तवकाते वाबुरी** से ज्ञात होता है कि इस काल में सियालकोट में कई कोलाव या तालाव वनाये गये, जिसका पानी वहाँ के लोग पसन्द करते थे।[४] सुल्तान इल्तुतमिश ने दिल्ली में ईदगाह के समीप और ग़जनी द्वार के वाहर एक सुन्दर झील का निर्माण किया। यह झील दो मील लम्बी व एक मील चौड़ी थी। यह झील दिल्ली के लोगों को पीने का पानी देती थी। इब्नवतूता के अनुसार गर्मी के दिनों में इस झील के किनारे सब्ज़ी व खरवूजे जैसे मौसमी फल हुआ करते।[५] इस झील में न केवल वर्षा का पानी एकत्र होता था वरन् जमुना से नहर द्वारा तथा सूरजकुण्ड से पानी लाया जाता था। फिरोज़शाह तुग़लक ने **फ़ुतूहात-ए-फिरोज़शाही** में इस

झील की मरम्मत तथा जमुना से उसमें पानी लाने का विवरण दिया है। इस झील को **हौज़-ए-सुल्तानी** कहते थे।[६] १२३२ ई० के एक शिलालेख से पता चलता है कि नागौर जिले के बारी खाटू नामक गाँव में अहमद खिल्जी के पुत्र मसूद ने एक झील बनवाई, जिससे कि वहाँ के किसानों को बहुत सुविधा हुई। लगभग उसी समय बदायूं में भी पानी का एक कुण्ड बनाया गया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी को भी सिंचाई के साधनों का विकास करने में रुचि थी, ताकि कृषि-उत्पादन में वृद्धि हो सके। बरनी के अनुसार अनेक इमारतों के साथ तालाबों का भी निर्माण किया गया। इसमें महत्वपूर्ण तालाब **हौज़-ए-खास** या हौज अलाई था। यह तालाब सिरी के बाहर बनाया गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी उसे **हौज़-ए-सुल्तानी** से अधिक सुन्दर बनाना चाहता था। बरनी ने सीरी में एक **बालाए-बन्द-ए-सीरी** या बड़े जलाशय का भी उल्लेख किया है जो कि सुल्तान अलाउद्दीन ने ही बनवाया था।[७]

सिंचाई की व्यवस्था के लिए तुगलक काल सबसे प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण था। इस काल में दिल्ली तथा अन्य प्रान्तों में झीलों, तालाबों, जलाशयों का निर्माण हुआ। सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक (१३२०-२४) ने दिल्ली में झील पर एक जलसेतु बनवाया जो कि उसके मक़बरे के चारों ओर था। इस जलसेतु से निकट की भूमि की सिंचाई हुआ करती थी।[८] बरनी ने लिखा है कि उसके पास बड़ी-बड़ी नहरें खुदवाने, कृषि को सुगम बनाने व बेकार भूमि को उर्वर बनाने के अतिरिक्त कोई कार्य न था। यदि वह थोड़े समय और जीवित रहता तो गंगा-जमुना के समान न जाने कितनी नहरें कोसों तक खुदवा देता।[९] किन्तु बरनी के इस कथन से अतिशयोक्ति है। किसी भी प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ में उसके द्वारा नहरें खुदवाने का उल्लेख नहीं मिलता है। मुहम्मद तुग़लक ने दिल्ली के समीप अपनी राजधानी आदिलाबाद तथा दक्षिण में दौलताबाद में झीलें व जलाशय बनवाए।[१०] इसी समय उसके अमीरों ने भी सिंचाई के साधनों का विकास किया। इस समय के कुछ शिलालेखों से ज्ञात होता है कि बिहार, गढ़मुक्तेश्वर (जिला ग़ाजियाबाद उ० प्र०), मंगलौर (जिला सहारनपुर, उ० प्र०), बारी खाट (जिला नागौर राजस्थान) के **वलियों** या मुक्ताओं ने जलाशयों का निर्माण कराया।[११] बारी खाटू वहाँ के मुक्ता मलिक फिरोज़ बिन मुहम्मद ने एक बड़ी झील का निर्माण कराया और उसका नाम फिरोज़ सागर रखा।[१२] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में जब दोआब में अकाल पड़ा तो उस समय उसने वहाँ कुँए खुदवाने के लिए आदेश दिए।[१३] इब्न-बतूता ने सागर, गुजरात में नन्दुरबार तथा खंभात मार्ग के मध्य में नदी से नहरों से पानी निकालते हुए देखा।[१४]

फिरोज़शाह तुगलक ने (१३५१-१३८८) ने अपने दीर्घकालीन शासनकाल में अनेक पुल, जलसेतु, झीलें, नहरें आदि बनवाइं। **सीरत-ए-फिरोज़शाही** में हौज़-ए-तुग़लकशाह, हौज़-ए-कुतुलुग़ खान, हौज़-ए-शाहज़ादा मुबारकखान तथा हौज़-ए-

शाहज़ादा फतहखान का उल्लेख है।[१५] हौज़-ए-शाहज़ादा मुबारकखान दिल्ली में बनवाया गया।[१६] इसके अतिरिक्त फिरोज़शाह ने एक बड़ा जलाशय वर्षा का पानी एकत्र करने के लिए दिल्ली में बनवाया।[१७] उसने हिसार फिरोज़ा में भी एक जलाशय बनवाया जिसमें बाद में उलुग़ खानी व राजीवह नहर से पानी लाया जाता था।[१८]

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व भी यहाँ पुराने जलाशय थे। इब्नबतूता ने ग्वालियर के दुर्ग में अनेक जलाशय व कुएँ देखे।[१९] बाबर ने कोह-ए-जूद में कालदा कहार झील को देखकर उसका रोचक विवरण दिया है।[२०] किन्तु सुल्तान फिरोज़-शाह ऐसा प्रथम शासक था जिसने बाँध बनाकर वर्षा का पानी एकत्र करने की योजना कार्यान्वित की। फिरिश्ता के अनुसार उसने ३० विशाल जलाशय उन प्रदेशों में बन-वाए जहाँ-जहाँ कि सिंचाई के लिए नहरें उपलब्ध न थीं।[२१] अफीफ के अनुसार उसने दिल्ली व उसके समीप (१) बाँध-ए-फतह खाँ, (२) बाँध-ए-मलजाह, (३) बाँध-ए-महीपालपुर, (४) बाँध-ए-शुक्रखान, (५) बाँध-ए-समूरा, (६) बाँध-ए-सिपानाह तथा (७) बाँध-ए- वज़ीराबाद का निर्माण करवाया।[२२]

दिल्ली सल्तनत के पतन के उपरान्त जब १४वीं शताब्दी के अन्त में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई तो वहाँ के शासकों ने भी सिंचाई के साधनों के विकास में रुचि ली। सुल्तान कुतुबुद्दीन के शासनकाल में गुजरात में कँकरिया झील का निर्माण हुआ।[२३] बाबर ने चन्देरी में अनेक झीलें या तालाब देखे।[२४] शिहाब हाकिम ने अपनी मसनवी अरबत-उल-बुथका की रचना जौनपुर से शासक सुल्तान इब्राहीम शाह शर्की (१४०१-१४४०) के राज्यकाल में की। उसने इस मसनवी में पानी महल के निर्माण का उल्लेख किया है। यह महल उसी की निगरानी में बनाया गया। उस महल में अनेक झरने व जलाशयों की व्यवस्था की गई। उस महल के द्वार उद्यानों में खुलते थे। उन झरनों व जलाशयों का पानी उद्यानों में पेड़ों को सींचने में प्रयोग किया जाता था।[२५] इसी प्रकार नागौर में स्थानीय शासकों व सूफी सन्तों ने बड़ी-बड़ी झीलें व जलाशय सिंचाई के लिए बनवाये। हुसैन चिश्ती नागौरी ने एक झील बनवाई जिसका नाम उसने मुस्तफा सागर रक्खा।[२६]

सल्तनत काल में सिंचाई की व्यवस्था में सबसे बड़ा विकास नदियों से बड़ी-बड़ी नहरें निकालने के क्षेत्र में हुआ। इस प्रकार की नहरों का निर्माण कार्य अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल से प्रारम्भ हुआ। अमीर खुशरो ने ग़ाजी मलिक द्वारा बनाई गई एक चौड़ी और गहरी नहर का उल्लेख किया है। यह नहर रावी से निकाली गई थी तथा रावी व झेलम के बीच की भूमि की सिंचाई किया करती थी।[२७] ग़ाजी मलिक ने मुल्तान व दीपालपुर में अनेकों अन्य नहरें बनवाई ताकि कृषि में उन्नति हो। बरनी न तो इन नहरों के स्रोत व उनकी संख्या का उल्लेख करता है और न ही यह बताता है कि उनके द्वारा किस प्रदेश की सिंचाई होती थी। आईन-उल-

मुल्क ने इन्शा-ए-महरू में एक निशान द्वारा कमल व ताज नामक अधिकारियों के आदेश दिए कि वे पुरानी नहरों की मरम्मत करवाये। इस निशान में तीन नहरों जू-ए-नसीरबाद, जू-ए-कुतुबाबाद तथा जू-ए-खिज्रबाद का उल्लेख है।[२८] इब्नबतूता के अनुसार शेख शिहाबुद्दीन अल खुरासानी के पास दिल्ली के समीप बड़ी भारी भूमि थी जिस पर कि वह खेती करता था। यहाँ वह जमुना से नहर द्वारा पानी लाया और उसने अपने खेतों की सिंचाई की।[२६] वास्तव में जितनी नहरों का निर्माण फिरोजशाह के समय हुआ उतना उससे पूर्व कभी भी नहीं हुआ। इस काल में पंजाब व दिल्ली तथा दोआब व दिल्ली के समीप नहरें बनाई गईं। बरनी के अनुसार उसके शासनकाल में १२० मील लम्बी नहरें जमुना व गंगा नदियों से निकाली गई, उनका पानी बंजर व रेगिस्तान की भूमि जहाँ कि कोई कुआँ न था, की सिंचाई करती थी। एक बड़ी नहर गंगा नदी से निकाली गई जो दिल्ली के समीप फिरोज तुगलक के शिकारगाह तक जाती थी। बाद में यह नहर बन्द हो गई। हिसार फिरोजा नामक शहर की स्थापना के बाद फिरोजशाह ने जमुना तथा सतलज नदियों से नहर निकाली। सतलज नहर का नाम उलुग़खानी था जो कि रूपड़ व सरहिन्द होकर बहती थी तथा जमुना नहर जिसका नाम राजीवाह था, से मिलती थी। राजीवाह नहर करनाल होकर बहती थी। हिसार फिरोजा में वे दोनों नहरें एक छोटी नहर द्वारा पानी पहुँचाती थी और उसके बाद झज्जर (रोहतक जिले) तक के प्रदेश की सिंचाई करती थी। घाघर नदी से भी एक नहर निकाली गई जो कि सिरसौती के दुर्ग के समीप से होती हुई हरनी खेरा तक की भूमि की सिंचाई करती थी। सबसे महत्वपूर्ण नहर थी जमुना नहर जिसका नाम जू-ए-फिरोजाबाद था। यह नहर फिरोज़ाबाद तक बहती थी। उसका स्रोत पहाड़ियों में था। इसके अतिरिक्त शिवालिक की पहाड़ियों में से भी एक नहर निकाली गई थी, जिसे कि सिरसौती व सलीमा नदियों से पानी मिलता था और जो सरहिन्द मन्सूरपुर समाना होकर जाती थी।[३०]

इन नहरों के अतिरिक्त इस काल में फिरोज़शाह तुग़लक ने अन्य नहरें भी बनवाई। उदाहरणार्थ गज़ना व अदक, जो कि इन क्षेत्रों की सिंचाई करती थी जहाँ पर्याप्त वर्षा नहीं होती थी। इस काल में रमला, नज़द, नक़ाखाना व बक नामक नहरें ऊपरी दोआब की भूमि की सिंचाई करती थी तथा होडा हद्दूर व हद नामक नहरें निचले दोआब की सिंचाई करती थी। १३६०-६१ में सरहिन्द, मन्सूरपुर तथा समाना को निरन्तर पानी देने के उद्देश्य से बखार के समीप से एक बाँध को तोड़कर सिरसौती नदी को सलीमा नदी से मिलाने का असफल प्रयास किया गया। उससे पूर्व सिरसौती समाना की ओर बहती थी। बाँध तोड़े जाने के प्रश्न पर लोग आपस में झगड़ा करने लगे और उन्होंने सिरसौती का मुँह दूसरी ओर मोड़ दिया। इस योजना को पूर्ण करने में सुल्तान ने ५०००० आदमी ८ मास तक कार्य करने में लगाये किन्तु लोगों के विरोध के कारण यह योजना असफल रही।[३१] यहिया के अनुसार फिरोजशाह ने सतलज नदी से झज्जर तक ४८ कुरोह लम्बी नहर बनवाई (१३५५ ई०) अगले वर्ष उसने मन्दाती

और सिरमौर की पहाड़ियों से फिरोज़ाबादी नहर निकलवायी और अन्य नहरों को जोड़ती हुई यह नहर हाँसी तक ले जाई गई। हाँसी से इस नहर को अरासन तक ले जाया गया। जहाँ कि हिसार फिरोज़ा का दुर्ग बनाया गया। एक अन्य नहर घग्घर से सिरसौती होती हुई हरनीखेरा तक बनाई गई। एक अन्य नहर बूधी नदी से निकाली गई और जमुना तक ले जाई गई और जहाँ से उसका पानी फिरोजाबाद के दुर्ग तक ले जाया गया। नहरों को बनवाने के अतिरिक्त सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने अनेकों कुएँ, जलाशय व बाँध बनवाये जिससे कि कृषि को प्रोत्साहन मिला। यह सिंचाई के कृत्रिम साधनों में इतनी रुचि लेता था कि वर्षा ऋतु में वह अधिकारियों को इस उद्देश्य से नियुक्त करता था कि वे इसे नदियों में बाढ़ आने के बारे में सूचना दे।[३२] इस प्रकार फिरोज तुग़लक के शासनकाल में सिंचाई की ओर न केवल विशेष ध्यान दिया गया वरन् उसके लिए विशेष प्रबन्ध भी किया गया।

फिरोज़शाह तुग़लक की सिंचाई सम्बन्धी योजना के बारे में बरनी ने लिखा है कि "सुल्तान फिरोज़शाह से शुभ राज्य काल में गंगा तथा जमुना नदी के समान लम्बी नहरें ५०-५०, ६०-६० कोस से खोदी गयीं। वे जंगलों व रेगिस्तानों के बीच से जहाँ पहले कोई हौज़ व कुआँ न था गुजरने लगी। अब इन स्थानों पर नावों की आवश्यकता पड़ने लगी। लोग नहरों की अधिकता तथा उनके चौड़े होने के कारण अब नावों में बैठ कर यात्रा करने लगे।"[३३] यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य है किन्तु विशाल पैमाने पर नहरों के निर्माण के सत्य को ठुकराया नहीं जा सकता है। अफीफ के अनुसार हिसार फिरोज़ा के निर्माण के बाद जब उस प्रदेश में नहरों का जाल बिछा दिया गया तो जो चाहता था वह अपने घर या उद्यान के निकट पक्का कुआँ खोद लेता था। केवल चार गज भूमि खोदने पर पानी निकल आता था।[३४]

फुतूहात-ए-फिरोज़शाही में सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने लिखा है कि उसके समय से पूर्व कुछ लोगों ने दिल्ली में हौज़शासी के ऊपर बाँध बनाकर उसको जल आने से रोक दिया था। उसने पुनः जल के स्रोत खुलवा कर उसमें पानी आने की व्यवस्था कर दी।[३५] इसी प्रकार **हौज़-ए-अलाई** में मिट्टी भर गई थी। जल न रहने के कारण लोग उसमें कृषि करने लगे थे और वहाँ कुएँ बनाकर उसका जल बेचने लगे थे। उसने उस तालाब को पुनः खुदवाया और उसमें साल भर जल भरे रहने की व्यवस्था की।[३६]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने इस प्रकार से सिंचाई के कृत्रिम साधनों की व्यवस्था की। उसने नवीन नहरों का निर्माण केवल दिल्ली के पश्चिमी प्रदेशों में ही किया। राजीबाह, उलुगखानी, बुची नदी से निकाली गई नहरें केवल दिल्ली के पश्चिम में पड़े हुए ऊसर व रेतीले प्रदेश को उर्वर बनाने तथा यहाँ की भूमि को खेती योग्य बनाने के ही उद्देश्य से बनाई गई। इसी प्रकार से अन्य नहरें भी इसी प्रदेश में इसी उद्देश्य से बनाई गई जिससे कि दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों को ही विशेष लाभ

पहुँचा। नि:सन्देह सिंचाई की इस उत्तम व्यवस्था से कृषि को प्रोत्साहन मिला। बरनी की तारीख-ए-फिरोजशाही से लिए गये निम्नलिखित उद्धरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उसने लिखा है कि "इस पुण्य कार्य द्वारा लोगों को प्यास तथा जल के अभाव से मुक्ति प्राप्त हो गई है और इनके द्वारा उत्तम प्रकार के अनाजों तथा गन्ने की खेती होने लगी है और उद्यान तथा अंगूर के बगीचे लगवाये हैं। सुल्तान फिरोजशाह के सुप्रबन्ध तथा उत्तम प्रयत्नों के फलस्वरूप उजाड़ जंगलों तथा उसमें लगे हुए रेगिस्तान में लम्बी-लम्बी नहरें पैदा हो गई हैं। जिस भूमि पर यात्री तथा मार्ग चलने वाले जल के अभाव तथा प्यास के भय से पाँव भी न रख सकते थे और मश्क तथा जल के भरे बर्तन लेकर चलते थे तथा बहुत से इस भूमि पर जल के न मिलने तथा प्यास के कारण मर जाते थे और उन लम्बे-लम्बे जंगलों तथा उजाड़ वनों में कोई हौज़ तालाब अथवा कुआँ न था और जहाँ सिंह तथा वन्य-पशु प्यास के कारण मर जाते थे, और पक्षी प्यास के कारण प्राण त्याग देते थे और इन पर्वतों में जहाँ जल की एक बूंद भी न मिलती थी जिससे पक्षी अपनी चोंच भिगो सकें और पशुओं को जीवित रखने के लिए जहाँ हरियाली का कोई साधन न था, वहाँ फरसंग के फरसंग खोद डाले गये हैं और जमुना के समान नदियाँ बहने लगी हैं।" बरनी आशा करता था कि "कुछ ही समय में उन नहरों के किनारे कितने हजार ग्राम बस जावेंगे। प्रजा के कृषि करने तथा जोतने बोने के कारण उन ग्रामों में न जाने कितने प्रकार के उत्तम अनाज तथा उत्तम वस्तुएँ उत्पन्न होने लगेंगी। इस समय जो कृषि वहाँ होती है तथा जो उद्यान वहाँ लगाये गये हैं उनसे बहुमूल्य वस्तुएँ पैदा होती हैं।" इसी इतिहासकार ने आगे लिखा है कि जल की कमी के कारण इन स्थानों में तिलौंदी या खानाबदोश हुआ करते थे। उन्हें जहाँ कहीं थोड़े से जल के बारे में पता चल जाता था तो वे अपने मवेशी व बैलगाड़ियाँ वहाँ ले जाते थे व बारह महीने अपनी स्त्री व बच्चों के साथ वहाँ निवास करते थे। फिरोजशाह द्वारा नहरें बनवाने के कारण वे स्थायी ढंग से अपने गाँव बसा लेंगे और कष्टमय जीवन व्यतीत करने से मुक्त हो जावेंगे।[३७] बरनी के इस विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नहरों के निर्माण के परिणामस्वरूप खानाबदोश जातियों या छप्परबन्द किसान स्थायी रूप से नहर के किनारे स्थित गाँवों में बस गये और खेती करने लगे। बरनी को आशा थी कि अब यही तिलौंदी मोठ व तिल के स्थान पर जो वे उस भूमि पर बोया करते थे और जिन्हें वे मैदानों में रखते थे, अब वे जल के कारण गन्ना, गेहूँ व चना बोने लगेंगे और अपने घरों में रखने लगेंगे। इन प्रदेशों में मवेशी भी नहरों के कारण हज़ार गुना बढ़ जावेंगे।" वह स्पष्ट रूप से यह लिखता है कि जिस मरुभूमि पर कांटेदार झाड़ियों के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उत्पन्न न होती थी और जिस भूमि पर केवल मीलों तक इन्द्रायन, बबूल तथा आंक के वृक्ष ही हुआ करते थे वहाँ नहरों के जल के कारण अत्यधिक कृषि, खेती, उद्यान तथा अंगूर की बेलें होने लगेंगी। वाटिकाएँ, उद्यान, गन्ने, गेहूँ दृष्टिगोचर होने लगेंगे। उन वाटिकाओं तथा उद्यानों में लाल गुलाब, हज़ारा, गेंदा, करना के फूल तथा सेवती उगने लगेंगे।

अनार, अंगूर, खरबूजा, मीठा नींबू, जन्हेरी, अन्जीर, नींबू, करना, भवानक, आम, वाकला तथा पोस्ता उत्पन्न होने लगेंगे। काला गन्ना तथा पौण्डा उद्यानों में बोया जाने लगेगा। खिरनी, जामुन, इमली, बड़हल, जटामाँसी, पीपल तथा गुल के वृक्ष लगाये जाने लगेंगे। थोड़े ही समय में इस भू-भाग में इतनी अधिक उत्तम वस्तुएँ उगने लगेंगी कि बाहुल्य के कारण वे बिकने के लिए दिल्ली जाने लगेंगी।[३८] बरनी ने अपनी कृत तारीख-ए-फिरोजशाही में फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल के प्रथम सात वर्षों तक ही विवरण दिया है अतएव उसने केवल कृषि के विस्तार की सम्भावनों का ही उल्लेख किया है। अगले वर्षों में निःसन्देह कृषि का विस्तार हरियाणा व पंजाब तथा दोआब में हुआ।

फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में कृषि में वृद्धि होने का एक अन्य कारण भी था। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने अपने शासनकाल में देवगिरि से वापस लौटने के बाद दिल्ली व उसके निकटवर्ती प्रदेशों को उजड़ा हुआ देखा। सम्भवतः वर्षा न होने के कारण अकाल से पीड़ित होकर वहाँ से किसान भाग गये थे। उसने तत्काल दो करोड़ टन्का किसानों को तकावी दी और उस प्रदेश को पुनः आबाद करने का कार्य प्रारम्भ किया।[३९] फिरोजशाह तुग़लक के सिंहासनारोहण के समय तक यह प्रदेश पुनः आबाद हो गया। उसने किवाउलमुल्क खान-ए-जहाँ के परामर्श पर कृषकों से तकावी के रूप में दिया गया धन वापस न लिया और उसे माफ कर दिया। इससे ज्ञात होता है कि पिछले दशक में इस प्रदेश को पुनः आबाद होने से कृषि में पुनः उन्नति हुई। फिरोज़शाह ने ख्वाजा हुसामुद्दीन जुनैद को नये सिरे से भू-राजस्व निर्धारण का कार्य सौंपा। उसने कस्बों में घूम-घूम कर अपने निरीक्षण के आधार पर लगान निर्धारित किया और राज्य की जमा ६ करोड़ ७५ लाख टण्का निर्धारित की। अफीफ के अनुसार फिरोज़शाह तुग़लक के राज्यकाल के अन्त तक जमा की धनराशि यही रही।[४०] इस प्रकार तकावी में छूट देने व लगान का सही ढंग से निर्धारण होने के कारण कृषकों को राहत मिली जो कि अवश्य ही कृषि के विस्तार में सहायक रही। इसके अतिरिक्त अफीफ ने यह भी लिखा है कि राज्य के कृषक कर देते-देते नष्ट हो गये थे, उनके पास केवल एक गाय छोड़ दी जाती थी और उनसे कर के रूप में सब कुछ ले लिया जाता था। सुल्तान फिरोज़ तुग़लक ने शरा के विरुद्ध सभी करों को हटा दिया और जो कर शरा के अनुकूल थे उनमें भी कमी कर दी।[४१] जिसके कारण प्रत्येक इक्ता परगने तथा कोस पर चार-चार ग्राम बस गये। इससे भी कृषि की वृद्धि होने का अनुमान होता है। हिसार फिरोज़ा के निर्माण करते समय उसने वहाँ अगणित वृक्ष तथा उद्यान लगवाये। अफीफ ने लिखा है कि इससे पूर्व वहाँ जल के अभाव में केवल खरीफ की फसलें ही होती थीं। किन्तु अब वहाँ रबी व खरीफ की फसलें भी होने लगीं।[४२] हिसार फिरोज़ा के निर्माण से पूर्व यह प्रदेश हाँसी की शिक़ में आता था किन्तु अब उसमें हाँसी, अमरोहा, फतेहाबाद, सिरसोती से सलोरा तथा खिज्राबाद तथा अन्य अक्ताएँ भी हिसार फिरोज़ा को एक बड़े प्रदेश का केन्द्र बना दिया गया।

इस प्रदेश में कृषकों की आबादी बढ़ने से कृषि का विस्तार हुआ। इसी प्रकार से कस्बा जिन्द, धातरथ (सिंध के उत्तर-पूर्व की ओर १० मील पर), शहर हाँसी, तुग़लकपुर, उर्फ समदम (सफीदून सिन्ध में उत्तर-पूर्व की ओर लगभग १५ मील पर) को इन नहरों से विशेष लाभ हुआ। इन कस्बों में कृषि का विस्तार हुआ। किन्तु दूसरी ओर जब फिरोजशाह तुग़लक ने फिरोजाबाद शहर की स्थापना यमुना तट पर स्थित काबीन ग्राम में की और इस नगर के १८ ग्रामों की परिधि में बसाया तो कृषि का क्षेत्र कुछ कम हो गया। इस नगर में इन्द्रप्रस्थ, सराय शेख मलिक यार पर्रां, सराय शेख आबूबक्र तूसी, कावी ग्राम, कतिहवाड़ा, लहरावत, अन्धावली सराय मलका, सुल्ताना रजिया के मकबरे की भूमि, बहारी, मेहरौला, सुल्तानपुर आदि इसमें सम्मिलित कर लिये गये। इस प्रकार १८ ग्रामों की परिधि से कृषकों को हटाना व वहाँ शहरी जनता को बसाना कृषि के लिए हानिकारक अवश्य सिद्ध हुआ होगा।[४३] इसी इतिहासकार ने अन्यत्र एक स्थान पर लिखा है कि फिरोजशाह तुग़लक के शासन-काल के ४० वर्षों में किसी ने अकाल का मुँह न देखा। वह लिखता है कि दोआब में सकरोदा पर्वत तथा खरला से कोल तथा एक भी गाँव बुरी दशा में न था और आबादी के बसने के कारण थोड़ी-सी भूमि भी बेकार न रही। उस समय दोआब में ५२ परगने आबाद हो गये। इसी प्रकार दोआब के अतिरिक्त प्रत्येक इक्ता व शिक़ में एक कोस में चार गाँव बस गये थे। इस काल में खेती के विस्तार का दूसरा प्रमाण यह है कि उसने देहली शहर के आस-पास १२०० उद्यान लगवाये। उसने सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा लगाये गये ३० उद्यानों की व्यवस्था की। उसने सलोरा में ८० उद्यान तथा चितूर में ४४ उद्यान लगवाये।[४४]

इन्शा-ए-महरु में आईन-उल-मुल्क के पत्रों से ज्ञात होता है कि उसने मुल्तान में किस प्रकार से कृषि का विस्तार किया। उसने सुल्तान फिरोजशाह को एक पत्र लिखा कि मुल्तान के निवासी नाना कारणों से छिन्न-भिन्न हो चुके हैं और मुल्तान में लेशमात्र रौनक नहीं रह गई है। किन्तु सुल्तान के राज्यकाल में मुल्तान नगर पुनः आबाद हुआ है और वहाँ के निवासी अपनी प्राचीन मिल्क की खोज में लौट आ रहे हैं[४५] (१३६१-१३६२)। उसने मौलाना शिहाबुद्दीन को अपने पत्र द्वारा बताया कि किस प्रकार उसने बसे बसाये ग्राम और उपज वाली भूमि अनुदान मे लोगों को प्रदान की है जिसके कारण कृषि दुगुनी हो गई।[४६] दूसरे इस समय दूर-दूर के स्थानों को चले गये लोग अब धीरे-धीरे पुनः मुल्तान को वापस लौट रहे हैं। यद्यपि उनकी संख्या बहुत ही कम थी, किन्तु फिर भी कृषि के सुधार होने की सम्भावनाएँ दीख पड़ने लगी। आईनउलमुल्क ने मौलाना शिहाबुद्दीन को यह भी लिखा कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय जबकि कपड़ा व अनाज सस्ता था इनाम व अदरात में भूमि का १/१० भाग भी निश्चित न था, किन्तु अब उससे कहीं अधिक है।

इसी प्रकार **इन्शा-ए-महरु** के अन्य पत्र से ज्ञात होता है कि बिहार में भी कृषि के विस्तार करने की चेष्टा इस काल में हुई। आइन-उल-मुल्क को इस प्रदेश

में भी कुछ भाग वजह में प्रदान किये गये हैं। उसने खाने अमीर जाफर खान को भेजे गये पत्र में लिखा था कि वह मलिक पुर, खेकड़ा, कज़रूत, जदला तथा अन्य स्थानों तथा कुछ कस्बों की आवादी तथा समृद्धि के हेतु चेष्टा कर रहा है।[४७]

दीवान-ए-मुहतर कड़ा जिसमें सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक की प्रशंसा की गई है, उसमें यह कहा गया है कि 'उस समय साम्राज्य में कहीं भी नाममात्र को भी ग्राम खराब नहीं पाये जाते थे। शुष्क जंगलों तथा विना तरी वाले वियावनों में भी अत्यधिक नहरों तथा झरनों को खुदवा कर ऐसा वना दिया गया है कि एक-एक कोस में दो नहरें वहती हैं।'[४८]

कुओं, तालाबों व वावलियों या नहरों से किसान विभिन्न प्रकार से पानी निकालते थे। प्राचीन काल में कुओं से अरहटें जिसमें कि एक चक्के के चारों ओर पानी के वर्तन लगे होते थे, से पानी वाहर निकालते थे। इस काल में इस अरहटों में कुछ परिवर्तन किये गये और चक्का या चरखी चलाने के लिए जानवरों का प्रयोग किया गया। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में (१५२६-३० ई०) वावर ने इस प्रक्रिया का रोचक विवरण देते हुए लिखा है कि लाहौर, दीपालपुर, सरहिन्द तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में रहट से सिंचाई होती है। दो रस्सियों को जो गोलाई में, कुएँ तक पहुँचाने के लिए ले लिया जाता था। दोनों रस्सियों के वीच-वीच में लकड़ियाँ वाँध दी जाती थी। जिन दो रस्सियों में लकड़ियाँ तथा घड़े बँधे रहते हैं उन्हें उस चरखी पर रख देते थे जो कुएँ पर रहती है। इस चरखी के धुरे से एक दूसरी चरखी जुड़ी रहती है और उसके निकट ही खड़े धुरे पर एक अन्य चरखी होती है। इस चरखी को वैल घुमाता है। उसके दाँत चरखी के दाँत से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार वह चरखी जिस पर घड़े होते हैं, घूमती है। जहाँ जल गिरता है वहाँ एक कठौता होता है और जल नालियों से होता हुआ प्रत्येक स्थान पर पहुँच जाता है।[४९] अरहट के प्रयोग के कारण इस प्रदेश में निःसन्देह कृषि में वृद्धि हुई होगी।

मौसमी वर्षा तथा सिंचाई के कृत्रिम साधनों एवं प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहते हुए इस काल के कृषकों ने कई फसलें पैदा करनी प्रारम्भ की।

इब्नवतूता ने लिखा है कि हिन्दुस्तान में दो फसलें होती थीं। जव ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती थी तो खरीफ की फसल वोई जाती थी और यह फसल ६० दिन के वाद काट ली जाती थी। खरीफ की फसल में कुज़रू (एक प्रकार का ज्वार), काल (दूसरी प्रकार का ज्वार), शामख (इसके वीज काल के वीज से छोटे होते हैं), माँश (मटर की एक किस्म), मूँग, लोविया, मोठ पैदा होता था। खरीफ की फसल के वाद रवी की फसल वोते है जिसमें गेहूँ, जौ, मसूर पैदा होती थी। यह सब उन्हीं खेतों में वोते थे जिनमें खरीफ के अनाज वोते थे। इब्नवतूता के अनुसार इस देश की भूमि वड़ी उत्तम व उपजाऊ थी। खाद्यानों की पैदावार अधिक होती थी। सिरसौती में वहुत अच्छा

व अधिक चावल होता था और उसे वहाँ से दिल्ली भेजा जाता था।[५०] इब्नबतूता के अनुसार कड़ा मानिकपुर व उसके निकटवर्ती क्षेत्र अत्यन्त समृद्धशाली थे। वहाँ गेहूँ, जौ, चावल और गन्ना अत्यधिक होता था।[५१] उसी यात्री के अनुसार मरह में उत्तम प्रकार का गेहूँ, जो कि दिल्ली ले जाया जाता था और वैसा कि अन्य किसी स्थान में नहीं पैदा होता था, उत्पन्न होता था।[५२] धार में गेहूँ व पान पैदा होता था। वहाँ से पान दिल्ली भेजा जाता था।[५३] दौलताबाद में वर्ष में दो बार अनार व अंगूर की पैदावार होती थी।[५४] सागर में केला, आम व गन्ना अधिक होता था। तिल व गन्ना भी खरीफ के साथ बोया जाता था।[५५] १३४७ ई० के लगभग थक्कर फेरू ने दिल्ली में रहते हुए लिखा कि इस समय २५ फसलें होती हैं और जिनकी औसत पैदावार एक मन प्रति बीघा है। इन फसलों में कोदरआ, मोठ, चौला दाल, सीसम, माश, कंगनी, चीनक, कूरी, कपास, ज्वार, सनई, गन्ना होता था। उसके अनुसार प्रति बीघा के अनुसार उत्पादन की दर इस प्रकार से थी--गेहूँ ४५ मन, दाल-चना इत्यादि ३५ मन, ज्वार ५५ मन, सरसों ४ मन, अरहर की दाल १४ मन, जीरा १० मन। फसलों की इस सूची में उसने नील का नाम नहीं लिया है। जबकि इस काल में नील की अच्छी फसल होती थी।[५६]

इब्नबतूता ने यहाँ के फलों का भी विवरण दिया है। उसके अनुसार यहाँ आम, कटहल, तेन्दू, जामुन, महुआ, कसेरू, अनार, नारंगी के पेड़ थे। यहाँ फल बहुतायत में उपलब्ध थे। उसके अनुसार यहाँ बेर बहुत ही बड़ा व मीठा होता था। यहाँ अंगूर बहुत कम पैदा होता था। केवल देहली के कुछ भागों में तथा अन्य कुछ प्रदेशों में ही पाया जाता था। हिन्दुस्तान में दो बार अनार के फल होते थे। मालद्वीप टापू में उसने अनार के पेड़ों को १२ महीनों फल देते हुए देखा। इब्नबतूता ने आम का अचार बनाने का उल्लेख करते समय अदरख व मिर्च के अचार का भी उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ अदरख व मिर्च की भी पैदावार होती थी। उसने लिखा है कि दिल्ली में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश द्वारा बनवाये गये हौज-ए-शम्सी नामक सरोवर के किनारे जब सूख जाते हैं तो वहाँ लोग गन्ना, ककड़ी, कचरी, तरबूज तथा खरबूजे बो दिया करते थे। यहाँ का खरबूजा यद्यपि छोटा किन्तु बहुत मीठा होता था। उसने गुजरात में नन्दुरबार तथा खम्भायत के मध्य सिजत सागर में आम, केले व गन्ने के उद्यान देखे। मालाबार में काली मिर्च के उत्पादन के सम्बन्ध में विवरण देते हुए उसने लिखा है कि उनकी झाड़ियाँ अंगूर के समान थी। काली मिर्च नारियल के पेड़ों के समीप बोई जाती थी और उनकी बेलें नारियल के पेड़ों पर चढ़ जाती थी। काली मिर्च छोटे-छोटे गुच्छों में लगती थी। जब उनका रंग हरा हो जाता था तो उन्हें चटाई पर डालकर सुखा लिया जाता था। उनको लगातार उलटने-पलटने में वे सूख जाती थीं, उनका रंग काला हो जाता था। तत्पश्चात् वे व्यापारियों को बेच दी जाती थी। उसने कालीकट में भी काली मिर्च का उत्पादन देखा। उसने मालाबार तट पर दालचीनी के वृक्ष भी देखे।[५७]

शिहाबुद्दीन अल-उमरी के मसालिक अबसार में लिखा है कि इस देश में कई प्रकार के अनाज, गेहूँ, चावल, मटर, जौ, मसूर, उर्द, लोबिया व तिल होते हैं, इसके अतिरिक्त यहाँ फलों में अंजीर, अंगूर, मीठे व खट्टे तथा अनार, केले, आड़ू, चकोतरे, नींबू, जंभीरी नींबू, नारंगी, अंगूर के वृक्ष, काले शहतूत, तरबूज, पीली व हरी ककड़ियाँ व खरबूजे पाये जाते हैं। अन्य फल की अपेक्षा यहाँ अंजीर व अंगूर कम होते हैं। यहाँ नाशपाती व सेव भी होते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ आम, महुआ, लाहा, नगजक तथा अन्य उत्तम फल जो मिस्र, शाम तथा ईराक में नहीं होते थे, यहाँ होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ स्वाद वाले फल होते हैं।[५८] यहाँ नारियल ताजा व तेलभरा होता है। भारतवर्ष में केला अधिक होता था। किन्तु दिल्ली व समीपवर्ती प्रदेश में उसके पेड़ नहीं लगाये जाते थे। यहाँ इमली भी पैदा होती है। शिहाबुद्दीन के अनुसार यहाँ गन्ना अधिक मात्रा में पाया जाता है। यहाँ काले गन्ने की एक फसल होती है, जो कि चूसने में तो अच्छी होती है किन्तु पिराई की दृष्टि से वह खराब होती है। ऐसा गन्ना अन्य कहीं नहीं पाया जाता। इस किस्म के गन्ने में बहुत बड़ी मात्रा में शक्कर तैयार होता है। उसने शेख मुबारक बिन मुहम्मद शाजन से सुना था कि इस देश में २१ प्रकार के चावल होते हैं।[५९] सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के समय की चर्चा करते हुए शिहाबुद्दीन-उल-उमरी ने साग-सब्जियों के बारे में लिखा है कि यहाँ शलजम, गाजर, लौकी, कद्दू, बैगन, अदरख भी लोग उगाते थे। साग को वे लोग गाजर की तरह ही पकाते हैं। यहाँ चुकन्दर, प्याज, सोया, पुदीना, सुगन्धित पौधे जैसे गुलाब, कँवल, बनफसा, चमेली, मेंहदी भी होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ इस काल में तिलहन भी होते थे।[६०]

शिहाबुद्दीन अल उमरी के ग्रन्थ मसालिक-उल-अबसार से ज्ञात होता है कि यहाँ समुद्रतटीय क्षेत्रों व देश के अन्य भागों में ताड़ी के पेड़ लगाये जाते थे तथा ताड़ी का प्रयोग मादक पेय के रूप में किया जाता था। उसके अनुसार जब कोई व्यक्ति दूसरे के प्रति निष्ठा प्रकट करता था तो वह ताड़ी (अलिपाक) का एक गिलास उसके हाथ में थमा देता था। इसे महान् सत्कार समझा जाता था।[६१]

इस काल में भाँग, अफीम तथा अन्य मादक वस्तुओं की खेती के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। शिहाबुद्दीन उल उमरी को शिबली नामक व्यक्ति ने बताया कि हिन्दुस्तानी लोगों की मदिरा तथा अन्य मादक पेय पदार्थों की ओर प्रवृत्ति नहीं थी और वे पान खाकर ही सन्तुष्ट रहते हैं। पान में ऐसे गुण हैं जो मदिरा में नहीं पाये जाते। यह श्वास को सुगन्धित करता है, पाचन-शक्ति को बढ़ाता है, आमाशय को अत्यन्त प्रफुल्लित करता है, बुद्धि को शक्ति प्रदान करता है तथा स्मरण-शक्ति को तेज बनाने के साथ-साथ असाधारण आनन्द प्रदान करता है।[६२] उसके अवयों में पान का पत्ता, सुपारी तथा चूना है। इससे ज्ञात होता है कि इस काल में पान के साथ-साथ सुपाड़ी की भी खेती होती थी। शिहाबुद्दीन अल उमरी ने सुना था

कि यहाँ केसर भी कुछ स्थानों में मिलता था। मुहम्मद बिन अब्दुर रहीम ने **तुहफतुल अलवान** में लिखा है कि यहाँ लौंग, जायफल, बालछड़, दालचीनी, इलायची, कबाब-चीनी, जाविती आदि की पैदावार होती थी।[६३]

फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में नहरों, तालाबों, जलाशयों व कुओं के बन जाने से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। बरनी ने **तारीख़-ए-फिरोज़शाही** में लिखा है कि नहरों से सिंचाई व्यवस्था होने के कारण रेगिस्तान में भी गन्ने व अंगूर पैदा होने लगे हैं।[६४] वह आशा करता है कि सिंचाई के इन साधनों के कारण गन्ने, गेहूँ, अंगूर, सेब, खरबूजे, मीठे नींबू, जम्हेरी, अनजीर, नींबू, करना, भवानक, आम, बाक़ला, पोस्ता, काले गन्ने तथा पौड़ा की उपज बढ़ जावेगी।[६५] अफीफ ने अपने ग्रन्थ तारीख-ए-फिरोज़शाही में लिखा है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक की रुचि उद्यान लगवाने में थी। उसने दिल्ली के समीप १२०० उद्यान लगवाए। उसने अलाउद्दीन खिल्जी द्वारा लगवाये गये ३० उद्यानों की व्यवस्था की और उन्हें पूरा करवाया। उसने एलोरा में ८० व चितूर में ४४ उद्यान लगवाए। प्रत्येक बाग़ में सात प्रकार के अंगूर, सफेद काले खजूर, सफेद रंग के अंगूर, चितुरी, आरखानी सेरी, आलूचे आदि होते थे। इन्हीं बाग़ों में तरह-तरह के मेवे भी होते थे।[६६]

गैर-कृषि उत्पादन

शिहाबुद्दीन-अल-उमरी ने **मसालिक-उल-अबसार** में लिखा है कि यहाँ मधु अत्यधिक प्राप्त होता है। मोम का प्रयोग करने की अनुमति केवल सुल्तान के महलों में ही थी। यहाँ पशु, पालतू जानवर जैसे भैंस, गाय, भेड़ व बकरियाँ अगणित थीं। यहाँ जानवर बहुत ही सस्ते और कम दाम में बिकते थे। मक्खन तथा विभिन्न प्रकार का दूध तो इतना होता था कि न तो कोई इनको पूछता था और न ही महत्व देता था।[६७] शिहाबुद्दीन अल उमरी के इस कथन में बड़ी सत्यता है। क्योंकि यहाँ चरागाहों की कमी नहीं थी। कोई भी ऐसा गाँव न था जहाँ चारागाह न हो और जहाँ के किसान पशुपालन न करते हों। जिस स्थान पर फिरोज़शाह तुग़लक ने हिसार शहर की स्थापना की, उसके सम्बन्ध में अफीफ ने लिखा है कि यहाँ दो गाँव थे, उनमें से एक में ५० खरक और दूसरे में ४० खरक थे और कोई गाँव बिना खरक (बाँस की बल्लियों से बनाया हुआ पशुओं के बाँधने का बाड़ा) के नहीं था।[६८] शहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार यहाँ पशु बहुतायत से उपलब्ध थे और कम दाम पर बिकते थे। यहाँ घी भी अधिक मात्रा में होता था जिसका व्यापार होता था। पंजाब में अजोधन जिले में पाक-पाटन में एक गाँव में ऐसा घी बेचने वाला था जो कि यह दावा करता था कि उसके पास इतना धन है कि वह ४०-५० दासियाँ खरीद सकता है।

सल्तनत काल के ऐतिहासिक ग्रन्थों व विदेशी पर्यटकों के विवरण से ज्ञात होता है कि यहाँ इस काल में पशुपालन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ग्रामीण जनता उस पर निर्भर करती थी। उसके लिए न केवल हल व बैल का ही महत्व था

वरन् गाय, भैंस, भेड़-बकरियों का भी उतना ही महत्व था। उससे उन्हें दूध, मक्खन, घी, ऊन मिलता था। यह सब जानवर बहुत ही सस्ते तथा कम दामों पर मिलते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में पशुपालन न केवल दूध, घी, मक्खन, ऊन के लिए ही नहीं वरन् मांस प्राप्त करने के लिए भी होता था। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार मुहम्मद बिन तुग़लक के समय गोमांस व बकरे के मांस का एक मूल्य था। एक मुल्तानी दिरहम में ६ सेर गो मांस व बकरे का मांस मिलता था। भेड़ का मांस एक मुल्तानी दिरहम में ४ सेर मिलता था। एक इस (बत्तख) २ हश्तग़नी दिरहम में तथा ४ पक्षी एक हश्तग़नी दिरहम में, मोटी भेड़ १-८ हश्तग़नी दिरहम में मिलती थी। एक उत्तम गाय २ तन्के की आती थी। कभी-कभी वह इससे भी सस्ती मिलती थी। भैंस भी इसी मूल्य में मिलती थी।[६९] शिहाबुद्दीन अल उमरी ने यह भी लिखा है कि यहाँ हिन्दुस्तानी गौ मांस तथा बकरे का मांस भी खाते थे। इस प्रकार ग़ैर कृषि उत्पादन में पशुपालन का अपना विशेष स्थान था।

फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल से पूर्व पंजाब में तिलौदी या खानाबदोश ही पशुपालन किया करते थे। उनके साथ-साथ मवेशी चलते थे। जब फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में नहरों का निर्माण हुआ तो यह तिलौदी स्थायी रूप से नहरों के किनारे गाँव में बस गये। बरनी लिखता है कि पानी के अभाव के कारण पशु-पालन करना कठिन था। किन्तु अब मवेशियों के हजार गुना बढ़ने की आशा हो गई है।[७०]

सम्भवत: १४वीं तथा १५वीं शताब्दी में यहाँ रेशम का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। यहाँ रेशम के कीड़ों को पालकर उससे शुद्ध रेशम निकाला जाने लगा। १४वीं शताब्दी के मध्य तक रेशम का उत्पादन यहाँ नहीं होता था। इब्नबतूता बंगाल के उत्पादनों में रेशम का उल्लेख नहीं करता है। किन्तु १४३२ ई० में चीनी नाविक महुआँ ने बंगाल का विवरण देते हुए लिखा है कि यहाँ मलबरी के पेड़, जंगली मलबरी के पेड़, रेशम के कीड़े व कृमि-कोष मिलते हैं। यद्यपि राजतरङ्गिणी (११५० ई०) तथा श्रीधर में (१५वीं शताब्दी), काश्मीर में रेशम वस्त्र उद्योग का उल्लेख मिलता है किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वहाँ रेशम उत्पादन होता था।[७१]

शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार यहाँ के समुद्रों में मोती, मैदानों में सोना, पहाड़ियों में माणिक व हीरे, घाटियों में आबनूस, लकड़ी और कपूर उत्पन्न होता था। यहाँ लोहे, पारा तथा सीसा की खानें थीं।[७२] उसके अनुसार कराचील की पहाड़ियों में सोने की बड़ी-बड़ी खानें थीं।[७३]

यहाँ कोह-ए-जूद में नमक की पहाड़ियाँ थीं और सम्भार की झील से नमक प्राप्त होता था। यहाँ इस्पात की खानें थीं जो कि बड़े उत्तम प्रकार का लोहा देती थी। लोहे या इस्पात की खानें ग्वालियर की पहाड़ियों से लेकर दक्षिण तक फैली हुई थी।

कच्छ की खाड़ी के लोहे से बनी हुई कोरिज की तलवारें बहुत ही प्रसिद्ध थीं। ११वीं तथा १२वीं शताब्दी के जान्जिया रिकार्डस् से ज्ञात होता है कि मध्यपूर्वी एशिया को दक्षिण लोहे निर्यात किया करता था। अतएव वहाँ लोहा होता था। राजस्थान की खानों से ताँबा प्राप्त होता था। भारतवर्ष में पूर्व मध्यकाल में सोने व चाँदी का उत्पादन बहुत ही सीमित था। थोड़ा बहुत सोना हिमालय से निकलने वाली नदियों से प्राप्त होता था। चाँदी की खानों के बारे में लोगों को जानकारी बहुत ही कम थी। बहुमूल्य पत्थरों में हीरे की खदान दक्षिण में होती थी। जहाँ कि उनकी बहुत-सी खानें थीं। १५वीं शताब्दी में गोण्डवाना में भी हीरे खानों से निकाले जाने लगे। मारकोपोलो ने दक्षिण में ट्यूटी कोरिन में मोती निकालने का उल्लेख किया है। ग़ैर कृषि उत्पादन की वस्तुओं की सूची में वस्त्र, कागज, चमड़ा आदि वस्तुएँ भी आती हैं। उनका उल्लेख उद्योग से सम्बन्धित अध्याय में किया गया है।

इस काल में समय-समय पर वर्षा न होने के कारण दुर्भिक्ष भी पड़ते रहे। दुर्भिक्ष के समय समाज के सभी वर्गों को कष्ट सहना पड़ता था। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी के शासनकाल में सीदी मौला के वध के उपरान्त वर्षा के न पड़ने से दिल्ली व उसके समीपवर्ती प्रदेश में भीषण अकाल पड़ जाने से अनाज का भाव एक जीतल प्रतिसेर तक पहुँच गया और लोग भूख के मारे जमुना में डूब कर मरने लगे।[७४] दूसरा वीभत्स अकाल सु० मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में दोआब में पड़ा। उस समय भी अनाज का मूल्य बढ़ गया था। यह दुर्भिक्ष कई वर्ष तक रहा। इस दुर्भिक्ष के कारण कई हज़ार मनुष्य मर गये और बहुतों के घर-बार नष्ट हो गये।[७५] विभिन्न प्रान्तों में अकाल पड़े। बरनी ने इन दुर्भिक्षों तथा महामारी का उल्लेख किया है।[७६]

इब्नबतूता ने लिखा है कि जब हिन्द व सिंध में अकाल पड़ा और अनाज का मूल्य बढ़ गया, जब एक मन गेहूँ ६ दीनार में बिकने लगा तो सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने आदेश दिया कि देहली के प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय गोदामों से ६ मास के लिए अनाज दे दिया जाय। प्रत्येक व्यक्ति को १½ रतल (१४ सेर) प्रतिदिन के हिसाब से अनाज देना निश्चित हुआ। इसमें छोटे-बड़े, स्वतन्त्र तथा दास किसी में कोई भेद-भाव नहीं किया जाता था। काज़ियों से प्रत्येक मुहल्ले की जनगणना की पंजिकाएँ तैयार कराई गई। वे प्रत्येक मनुष्य की उपस्थिति लिखते थे और छः महीने का अनाज दे दिया करते थे।[७७] जिस समय सुल्तान ने दिल्ली से माबार की ओर प्रस्थान किया तो उस समय फिर हिन्दुस्तान में अकाल पड़ा और एक मन अनाज का मूल्य ६० दिरहम हो गया। कुछ समय उपरान्त मूल्य इससे भी अधिक हो गया।[७८] इस अकाल का विवरण देते हुए इब्नबतूता ने लिखा है कि उसने दिल्ली के पास तीन स्त्रियों को मरे हुए घोड़े की खाल काट कर खाते हुए देखा। वह घोड़ा महीनों पहले मर चुका था। लोग उसका मांस पका-पका कर बाजार में बेचते थे। गाय व बैलों को

मारते समय जो रक्त निकलता था वे भी उसे पी जाते थे। इब्नबतूता ने व सिरसौती नगर के मध्य स्थित अमरोहा में कुछ खुरासानी विद्यार्थियों ने एक पुरुष को आदमी की टाँग भून कर खाते हुए देखा।[७९] फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में कड़ा में अकाल पड़ा लेकिन फिर भी अफीफ ने लिखा है कि उसके ४० वर्ष के राज्य में किसी ने अकाल का मुँह न देखा।[८०] यहिया के अनुसार तैमूर के आक्रमण के पश्चात् दिल्ली के आस-पास तथा उन सभी स्थानों में जहाँ से उसकी सेना गुजरी थी, अकाल व महामारी का प्रकोप हुआ।[८१]

दिल्ली के सुल्तानों की कृषि नीति

१२०६ ई० से १५२६ ई० तक जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण कृषि में निरन्तर वृद्धि होती रही। कृषि उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टा भी सतत् जारी रही। दिल्ली के सुल्तानों ने अपनी भी कृषि नीति लागू की। यह नीति दो चरणों में लागू की गई। प्रथम चरण में १३२५ तक जब कि कृषि-योग्य भूमि के क्षेत्र में वृद्धि की गई। दूसरे चरण में न केवल बन्जर भूमि को उर्वर तथा खेती-योग्य बनाने की चेष्टा की गई। वरन् फसलों को सुधारने का भी प्रयास किया गया। द्वितीय काल में कृषकों से कहा गया कि वे जिन्स आला या उत्तम फसलों, जैसे कि कपास, गन्ने, अफीम तथा नील की खेती करे।[८२] वास्तव में इस काल में चार प्रकार की भूमि को उर्वर बनाया गया।[८३] (१) कृषि-योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि (२) १३वीं शताब्दी के ऊपरी दोआब क्षेत्र के घने जंगलों वाले क्षेत्र (३) १४वीं शताब्दी तक जमुना-सतलज क्षेत्र के सूखे तथा सिंचाई के साधन-विहीन प्रदेश को जो कि अन्यथा खेती के लिए अत्यन्त उत्तम था (४) सिवालिक की पहाड़ियों या सिंध में भक्कर के निकटवर्ती क्षेत्र, जो कि दलदली निचला प्रदेश था। इन प्रदेशों में भूमि को उर्वर बनाने व उसे कृषि क्षेत्र में लाने के लिये प्रशासनिक तथा तकनीकी कार्य किये गये। जहाँ तक तकनीकी ढंग से भूमि को उर्वर बनाने का प्रश्न है, समकालीन स्रोत इस सम्बन्ध में मौन हैं। कृषि-योग्य भूमि जो कि बंजर पड़ी हुई थी उसे किसी बाह्य एजेन्सी से सहायता बिना लिए हुए, कृषि के लिए लाया गया। प्रशासन ने, जैसा कि बरनी ने लिखा है कि दिल्ली व ऊपरी दोआब व दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रों को बिना किसी तकनीकी सहायता के, जंगलों को साफ करके कृषि के अन्तर्गत लाया गया। दलदली क्षेत्रों से पानी निकालकर भूमि को भी कृषि-योग्य बनाया गया।

भूमि के उर्वर बनाने तथा बंजर भूमि को भी कृषि के अन्तर्गत लाने एवं कृषि के क्षेत्र की वृद्धि हेतु सुल्तान इल्तुतमिश ने **दीवान-ए-कोही** विभाग अमीर उल-उमरा मलिक इफ्तिखारउद्दीन के अन्तर्गत रक्खा।[८४] यह स्थिति सुल्तान जलालुद्दीन खिल्जी के समय तक रही। **दीवान-ए-कोही** के कार्य का पुनर्गठन सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के समय हुआ, ताकि एक इंच भूमि बिना खेती के न रहे। १२८५ के पूर्व तक

ग्रामीण क्षेत्रों में मफरूजियों का अधिकारी वर्ग सम्मिलित किया जाना, इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है कि वे दीवान-ए-कोही की सहायता कृषि क्षेत्र की वृद्धि करने में रत थे। बंजर या बेकार पड़ी हुई भूमि या खेती योग्य भूमि अन्यथा जिसका प्रयोग नहीं होता था, को कृषि के अन्तर्गत लाने के लिए ही सुल्तानों में ऐसी भूमि को शेख, मशाहिकों, धार्मिक व्यक्तियों, उल्मा, विद्वानों इत्यादि को मदद-ए-माश या आएमा में देना आरम्भ किया। सुल्तान बलबन (१२६६-८६), सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक (१३२०-२५) तथा फिरोज़शाह (१३५१-८४) ने भूमि की उर्वरता की वृद्धि सम्बन्धी योजना को भी कार्यान्वित किया। बलबन के समय से लेकर १४०० ई० तक यह कार्य बराबर चलता रहा। इस काल में बलबन ने दिल्ली के समीपवर्ती एवं पश्चिमी प्रदेशों, दोआब के क्षेत्र, जहाँ कि घने जंगल थे तथा लाहौर के समीपवर्ती प्रदेश जिन्हें कि मंगोलों ने बर्बाद कर दिया था, कृषि-योग्य बनाया। दिल्ली व उसके समीपवर्ती प्रदेशों के घने जंगल कटवाये गये। वहाँ से मेवातियों को भगाया गया, गोपालगिर में दुर्ग बनवाया गया तथा अफगानों के अन्तर्गत थाने स्थापित किये गये ताकि यहाँ के किसान सुरक्षित रह सकें। इसी भाँति दोआब में घने जंगल थे। वहाँ भी बलबन ने जंगल कटवाया, पटियाली, भोजपुर, जलाली, कम्पील में दुर्ग बनवाये और वहाँ अफगान सरदारों को रक्खा। इस प्रदेश में नई सड़कें बनवाई गईं। मेवातियों ने जिन्होंने जंगलों में शरण ले रखी थी तथा जो उत्पात मचाते रहते थे, भगा दिया गया तथा यहाँ की भूमि खेतों के प्रयोग में लाई गई। बलबन ने लाहौर व उसके समीपवर्ती प्रदेशों को पुनः कृषि-योग्य बनाने के लिए लाहौर के दुर्ग की मरम्मत कराई, लाहौर शहर के पुनः बसाया, वहाँ अधिकारियों की नियुक्तियाँ की तथा वहाँ की अधिक से अधिक भूमि पर खेती करवाई। इंशाए-ए-महरू से ज्ञात होता है कि आईन उल-मुल्क महरू ने मुल्तान, मान्किपुर, खेरा, कन्जरौत तथा जादलाद के प्रदेश में नहरें खुदवायीं और वहाँ की भूमि खेती-योग्य बनवाई जिसमें कृषि उत्पादन दुगुना हो गया और १३ गाँव बस गये।[८५] फिरोज़शाह तुग़लक ने कालपी, फिरोज़ाबाद, देहली के मध्य अनुर्वर भूमि को कृषि-योग्य बनाने के लिए चम्बल नदी से भीखन नहर निकालकर उसे फिरोज़ाबाद-देहली शहर में जमुना नदी से जुड़वा दिया, जिसके कारण यह क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत आ गया। अफीफ के अनुसार उसने केन्द्रीय दोआब में सिकन्दरा और रूरला की पहाड़ियों से लेकर थानों तक के समस्त प्रदेश में केन्द्रीय दोआब के ५२ परगनों, जो कि सूखे थे तथा शेष प्रदेश को भूमि की खेती योग्य बनाया, जिससे कोई भी गाँव बिना खेती के नहीं बचा।[८६] फिरोज़शाह ने समाना की शिक की भूमि जो कि सूखो थी वहाँ भूमि को उर्वर बनवाया, जिससे प्रत्येक करोह पर स्थित गाँव आबाद हो गया और वहाँ खेती होने लगी।[८७] हिसार फिरोज़ा की भूमि जो कि सूखी थी तथा जहाँ वर्ष में एक ही बार खेती होती थी, उसे उर्वर बनाने के प्रयास में फिरोज़शाह ने ज्यू-ए-उलुग़खानी नहर सतलज नदी से, ज्यू-ए-रजवाह नहर जमुना नदी से निकालकर वहाँ की भूमि को इतना उर्वर बनवा दिया

कि वहाँ हिसार तक ८० करोह के क्षेत्र में वर्ष में दो बार खेती होने लगी। इस प्रदेश में फूल-फल के उद्यान लगवाये और वहाँ ईख व पण्डुआ नामक गन्ने की अत्यधिक खेती होने लगी।[८८] १३वीं शताब्दी में शेख फखरुद्दीन को अजमेर में स्थित मौज़ा मण्डल अनुदान में प्राप्त हुआ। यहाँ की भूमि सूखी थी। शेख ने उसे उर्वर बनाया। इसी भाँति शेख हमीदउद्दीन नागौरी को मौज़ा सुवाली (नागौर में स्थित) अनुदान में मिला। उसने उसकी जुताई करके उसकी भूमि को उर्वर बनाया। इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने शेख शिहाबुद्दीन को दिल्ली से ६ मील की दूरी पर कुछ भूमि अनुदान में दी। शेख ने जमुना से एक नहर निकलवा कर उस भूमि की सिंचाई की, जिससे आगे चलकर सुल्तान ने अधिक धन कमाया।[८९]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस काल में कृषि के प्रसार के लिए सभी प्रकार के प्रयास होते रहे। दिल्ली के सुल्तानों के यह प्रयास दिल्ली से २०० मील की परिधि तक ही सीमित रहे, क्योंकि यह प्रदेश सामरिक एवं आर्थिक महत्व रखता था। प्रथम चरण में सुल्तानों ने जलाली, कम्पिल, पटिपाली या हिसार फिरोज़ा को भूमि को उर्वरक बनाने का केन्द्र बनाया। सिंचाई की व्यवस्था पूर्ण होने पर, हर घने जंगलों के कट जाने पर, इन्हीं प्रदेशों में किसानों को धीरे-धीरे दूसरे स्थानों से लाकर बसाया गया। २००-३०० किसान एक स्थान पर जब रहने लगे तो वह स्थान छोटा गाँव बन गया। इस प्रकार से इस प्रदेश में अनेक नये गाँव बस गये। इन गाँवों में विभिन्न जातियों के लोगों के बसाये जाने के कारण उनके द्वारा एकजुट होकर विद्रोह करने की सम्भावना भी कम हो गई। दुर्भाग्यवश इस काल के लिए इस प्रकार के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिससे यह कहा जा सके कि इतनी भूमि उर्वरक हो गई। किन्तु खेती-योग्य भूमि के क्षेत्र का प्रसार इन दो शताब्दियों में इतना अधिक हो गया था कि बाज़ारों में अनाज भर गया जिसके कारण १६वीं शताब्दी के प्रथम दशक में गेहूँ का मूल्य गिरकर एक दहलोली (१·६ जीतल) में १० मन मिलने लगा। माँग की तुलना में खाद्यान्नों का उत्पादन अधिक होने के कारण आर्थिक सन्तुलन बिगड़ गया। वस्तुओं के मूल्य अस्थिर हो गये और दुर्भिक्ष पड़ने लगे। क्योंकि कृषक गाँव छोड़कर भाग गये। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की बुरी योजनाओं के बुरे ढंग से कार्यान्वियन के कारण संकट और भी बढ़ गया।

१३

कृषक एवं भू-राजस्व व्यवस्था

कृषक

१३वीं शताब्दी से पूर्व की भाँति इस काल में खेती करने के लिए भूमि अत्य-धिक मात्रा में उपलब्ध थी। साधारण कृषकों को खेती करने का अधिकार तो था किन्तु ग्रामीण समाज में उससे उच्च श्रेणी के कुछ तत्व थे जिनका अधिकार न केवल उस पर वरन् उसकी खेती पर भी था। इस तथ्य की पुष्टि फिरोज़शाह तुग़लक के समय के एक पत्र से होती है। इस पत्र के अनुसार सुल्तान ने जियाउद्दीन नामक एक सैनिक को जज़िया व भूराजस्व वसूल करने का अधिकार एक गाँव में दिया, ताकि उससे उपलब्ध आय को वह अपने ऊपर तथा अपने सैनिक प्रतिष्ठान पर व्यय कर सके। जब उसने जज़िया व लगान वसूल करना प्रारम्भ किया तो कृषक उसका गाँव छोड़ कर भाग गये और वे थानेश्वर के उन गाँवों में जाकर बस गये जहाँ के मालिक थानेश्वर के काज़ी थे। जब ज़ियाउद्दीन को यह बात मालूम हुई तो उसने काज़ियों से कहा कि वह उसके किसानों को वापस भेज दे। इस पर काज़ियों ने कहा कि कृषक स्वतन्त्र है और उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें उनके गाँवों में नहीं भेजा जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि कोई भी व्यक्ति उन कृषकों पर अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। ज़ियाउद्दीन ने इस बात पर बल दिया कि शासक को कृषकों से जज़िया वसूल करने का अधिकार है और इस प्रकार कृषक उसकी उपेक्षा करके दूसरे गाँवों में जाकर नहीं बस सकते हैं और नए मालिकों की शरण में नहीं रह सकते हैं, जैसा कि इस मामले में कृषकों ने किया है। जहाँ तक भू-राजस्व अथवा खिराज का प्रश्न है कृषकों द्वारा उस भूमि को छोड़ दिए जाने से उस गाँव का राजस्व कम हो गया है। अतएव भू-राजस्व वसूल किये जाने के लिए यह आवश्यक है कि वे उसी गाँव में रहें और इस कारण दूसरे मालिकों को यह नहीं चाहिये कि वे उन्हें प्रलोभन देकर अपने गाँवों में बसाएँ। उन मालिकों का यह कर्तव्य है कि वे उन कृषकों को अपने मूल गाँवों में जाने के लिए बाध्य करें।[१] इस प्रकार से किसी भी कृषक को अपना गाँव छोड़ने का अधिकार न था। वे खेती करने के लिए बीज, हल, बैल तथा अन्य सामान रख सकते थे और अपनी उपज को भू-राजस्व भुगतान करने के लिए बेचने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र थे। किन्तु ग्रामीण समाज में उनके मध्य कुछ ऐसे उच्च श्रेणी के कृषक

थे जिन्हें कि खूत, मुकद्दम तथा मुखिया कहते थे। वे जज़िया, खिराज, गृहकर व चराई कर का भुगतान करने से मुक्त थे। उन्हें यह अधिकार था कि वे कृषकों पर अपने कर लगाएँ और उसे वसूल करें। इस प्रकार खूत व मुकद्दम कृषकों पर स्थानीय कर लगाते रहे और उन्हें वसूल कर वे धनी व समृद्धशाली हो गए। वरनी के अनुसार, "वे अच्छे अच्छे घोड़ों पर सवार होते हैं, उत्तम वस्त्र धारण करते हैं, ईरानी धनुष से वाण चलाते हैं, एक-दूसरे से युद्ध किया करते हैं और शिकार खेला करते हैं। वे खिराज़, जज़िया कर व चराई का एक जीतल भी स्वयं नहीं देते और वसूली का पारिश्रमिक अलग गाँवों से वसूल करते हैं। वे महफिलें करते हैं, शराब पीते हैं और बहुत से तो बुलाने पर भी दीवान में उपस्थित नहीं होते हैं। वे कर वसूलने वालों की चिन्ता नहीं करते।[2] सुल्तान अलाउद्दीन ने इन्हीं खूतों के लिए यह निषेध कर दिया कि वे किसी प्रकार का कर कृषकों पर न लगाए। उसने उन्हें वाध्य कर दिया कि वे अपने खेतों पर पूरा भू-राजस्व दें तथा इसके अतिरिक्त गृह कर व चराई भी दे। इस सम्वन्ध में सुल्तान के आदेश थे कि खूत तथा वलाहार खिराज अदा करने में नियम का पालन करें, खूतों को खूती वसूल करने का अधिकार नहीं, दूध देने वाले प्रत्येक जानवर, भैंस या वकरी पर उनसे चराई कर व गृहकर वसूल किया जाय।[3] परिणामस्वरूप सभी गाँवों से करही व चराई वसूल होने लगी, चौधरियों, खूतों मुकद्दमों का घोड़े पर सवार होना, हथियार लेकर चलना, अच्छे वस्त्र पहनना और पान खाना पूरी तरह से वन्द हो गया। वे खिराज अदा करने लगे। उनके घरों में सोने-चाँदी के तन्के, जीतल तथा धन का चिह्न भी न रह गया। दारिद्रता के कारण उनकी स्त्रियाँ मुसलमानों के घर जाकर काम करने लगीं और मजदूरी पाने लगीं।[4] खूतों व मुक़द्दमों आदि के प्रति अलाउद्दीन की कठोर नियमों की ओर सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक का ध्यान गया। उसने आदेश दिया कि मुक्ती व वली खिराज़ वसूल करते समय इस वात की पूछ-ताछ करते रहें कि खूत व मुकद्दम खिराज के अतिरिक्त कृपकों से अन्य कर तो वसूल नहीं कर रहे हैं। उसने यह भी आदेश दिया कि यदि वे कृपकों से खिराज़ के अतिरिक्त अन्य कर वसूल नहीं कर रहे तो उनसे उनको कृपि पर राजस्व व दूध देने वाले जानवरों पर चराई कर वसूल न किया जाय। वरनी इस वात को स्वीकार करता है कि खूत व मुकद्दम अपनी खूती और मुकद्दमी को हर दशा में अपने पारिश्रमिक के रूप में किसान से वसूल तो कर ही लेता है और यदि वे अन्य कृषकों की भाँति खिराज़ का भुगतान करें तो उन्हें कोई विशेष लाभ न होगा। इस प्रकार से सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक के उदार दृष्टिकोण के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। वास्तव में उनकी स्थिति अनूठी थी। वे साधारण कृषक तो थे ही किन्तु कभी-कभी अवसर मिलने पर जव वे धनी हो जाते थे तो ग्रामीण समाज में अभिजात वर्ग वन जाते थे अन्यथा उनकी स्थिति अन्य कृषकों या मजदूरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की भाँति ही वनी रहती थी।[5] सुल्तान फ़िरोज़शाह तुगलक के समय इस वर्ग पर आर्थिक दवाव विल्कुल ही लुप्त हो गया, चूंकि वरनी के अनुसार उनके घरों में घोड़ों, मवेशियों, अनाज तथा सामान के कारण विल्कुल जगह

नहीं रह गयी।[६] इसी प्रकार अफीफ ने भी लिखा है कि कृषकों के घरों में इतना अनाज, धन, घोड़े एवं सम्पत्ति एक हो गई कि उसका उल्लेख करना सम्भव नहीं। प्रत्येक के पास अत्यधिक सोना, चाँदी एवं सम्पत्ति हो गई। उनकी स्त्रियों में से कोई ऐसी स्त्री न थी जिसके पास आभूषण न हो। उनके घरों में सुन्दर बिछौने, अच्छे पलंग, अत्यधिक वस्तुएँ एवं धन-सम्पत्ति एकत्र हो गई। सभी के पास अच्छे वस्त्र थे।[७]

ग्रामीण समाज में खूत व मुकद्दम के ऊपर ग्रामीण अभिजात वर्ग था। इस वर्ग वे राणा, राय, ठाकुर आदि थे जिन्होंने की अपने हितों की सुरक्षा के लिए ग़ौरियों तथा दिल्ली के सुल्तानों के साथ निरन्तर संघर्ष किया। इन रायों के अन्तर्गत अश्वारोहियों के सरदारों को रावत कहते थे। उदाहरणार्थ एक प्रसंग में बरनी बलबन के मुँह में शब्द रखते हुए उससे कहलवाया है कि यद्यपि रायों व राजाओं के पास १००,००० पायक और धनुषधारी क्यों न हों, ने दिल्ली के ६०००-७००० अश्वारोहियों के सन्मुख नहीं टिक सकते हैं।[८] राजाओं से रावतों का दर्जा कम था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व उत्तरी भारत में राना, रानक और रावत सामन्तों में गिने जाते थे। अनेक शिलालेखों में उनका उल्लेख मिलता है। सल्तनत की स्थापना के बाद जब कोई सुल्तान या उसका मुक्ती किसी प्रदेश या दुर्ग को अधिकृत कर लिया करता था तो वह कुछ समय के लिए पुरानी राजनीतिक व्यवस्था का ही उपयोग किया करता था। वह इन रायों व रानकों ने आशा करता था कि वे पूर्णतः कृषकों से भूराजस्व वसूल करते रहेंगे और उसको करद देते रहेंगे। इस प्रकार से इन रायों व रानकों का भूमि व कृषकों पर प्रभुत्व पूर्णतः बना रहा। यहाँ तक कि जब दिल्ली सल्तनत पूर्णतः सुदृढ़ हो गई और कृषकों से भू-राजस्व वसूल करने की व्यवस्था कर दी गई और करद का स्थान कर ने ले लिया तो भी राय व रानक ज्यों के त्यों बने रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि १३वीं शताब्दी में कृषकों के दो स्वामी थे, प्रथम मुक्ती या गवर्नर दूसरे राय। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल की एक घटना से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। उसके शासनकाल में गाज़ी मलिक दीपालपुर का मुक्ती था और राजामल भट्टी पर आबूहर एक राय था। जब रानामल भट्टी ने अपनी पुत्री का विवाह गाज़ी मलिक के भाई रजब से करने से मना कर दिया तो गाज़ी मलिक को परामर्श दिया गया कि वह रानामल भट्टी से एक वर्ष का भू-राजस्व नगद में माँग करे। इस प्रकार गाज़ी मलिक स्वयं रानामल के पास गया और उसने एक वर्ष का भू-राजस्व नगद में माँगा। उसने इस प्रदेश के सभी मुकद्दमों व चौधरियों को बाँस के डण्डों से मारा और उन्हें उत्पीड़ित किया और नगदी में भू-राजस्व की माँग की। राना मल का सम्पूर्ण प्रदेश बर्बाद हो गया और अन्त में कृषकों की दयनीय दशा को देखकर गाज़ी मलिक की माँग से छुटकारा पाने के लिए उसे अपनी पुत्री का विवाह रजब से करना पड़ा।[९] उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रदेशों में राय ही कृषकों से भू-राजस्व एकत्र किया करते थे और यदि कोई राय, मुक्ती या गवर्नर की माँग को पूरा नहीं

करता था तो वह गाँव के मुखिया या चौधरी के द्वारा राजस्व एकत्र करवाकर उसे ले लिया करता था। संक्षेप में यद्यपि पुराना सामन्त वर्ग शक्तिहीन होता जा रहा था किन्तु उसके अवशेष अभी ग्रामीण जन समुदाय में थे। १४वीं शताब्दी में पुराने सामन्त वर्ग का स्थान नए विशिष्ट ग्रामीण समुदाय ने ले लिया। कारण यह कि गाँव में ऐसे मध्यस्थ व्यक्तियों का रहना अनिवार्य था, क्योंकि वे ही किसानों की फसल का अतिरिक्त भाग लगान के रूप में वसूल करने में प्रशासन की सहायता कर सकते थे। अतएव इस उच्च श्रेणी में पुराने ग्रामीण अभिजात वर्ग से कुछ तत्व लिए गए और कुछ नवीन तत्व बनाए गए। एक ओर तो पुराने रायों व रानकों को रहने दिया गया, तो दूसरी ओर चौधरियों की नियुक्तियाँ करके उन्हें नवीन ग्रामीण अभिजात वर्ग का महत्वपूर्ण तत्व बना दिया गया। १४वीं शताब्दी के मध्य में वह भू-राजस्व के मामलों को राजकीय अधिकारियों के समक्ष पेश करने वाले ग्रामीण अधिकारियों में सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली व्यक्ति समझा जाने लगा। इब्नबतूता के अनुसार सम्पूर्ण राज्य १००-१०० गाँवों की इकाइयों में विभाजित था। प्रत्येक सौ गाँव में हिन्दुओं का मुख्य सरदार एक **चौधरी** तथा कर वसूल करने वाला **मुतसर्रिफ** नामक अधिकारी होता था।[१०] उसने १००० गाँवों की ईकाई का भी उल्लेख किया है। लगभग इसी समय ऐसी इकाइयों के लिए परगना शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और उन परगनों से लगान वसूल करने वाले अधिकारी को चौधरी की संज्ञा प्रदान की गई। ग्रामीण स्तर पर इतने महत्वपूर्ण परिवर्तन शीघ्रताशीघ्र होने के कारण तथा नवीन भू-राजस्व प्रणाली लागू होने के कारण समस्त ग्रामीण समुदाय को खिराज या राजस्व देने वाले वर्ग और वसूल कराने वाले वर्ग में विभाजित करना स्वाभाविक हो गया। यद्यपि इस समय राजस्व देने वालों में **कृषकों** व **खूत, मुकद्दम, राना, राय, रावत** और **चौधरी** सम्मिलित थे किन्तु फिर भी कृषकों व अन्य उच्च वर्ग में आने वाले व्यक्तियों अर्थात् **खूत, मुकद्दम, राजा, राय, रावत, चौधरी** में अन्तर था। क्योंकि राजस्व वसूल करने का अधिकार उन्हें प्रशासन ने दिया था। इस दूसरे वर्ग के लिए १४वीं शताब्दी के मध्य के बाद से जमींदार शब्द का प्रयोग होने लगा। जब १३५३ ई० में फिरोजशाह तुग़लक बंगाल अभियान पर जा रहा था तो उससे अपने घोषणा-पत्र में **मुकद्दम, अफरोजी, मलिक** आदि को जमींदार वर्ग में ही रखा। इस प्रकार जमींदार शब्द ने उन सभी तत्वों को अपने में सन्निहित कर लिया जिन्हें कि ग्रामीण समाज में उच्च अधिकार प्राप्त थे। तैमूर के आक्रमण के उपरान्त जब दिल्ली सल्तनत का विघटन हुआ और स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई तो उन स्वतन्त्र राज्यों में ही नहीं वरन् दिल्ली सल्तनत की सिकुड़ी हुई सीमाओं में पंजाब में खोखरों, मेवात में खानाजादों, ग्वालियर, कटेहर व इटावा आदि के जमींदार अत्यधिक शक्तिशाली हो गए और उन्होंने अधिक से अधिक प्रदेश अपने नियन्त्रण में ले लिये। इस प्रकार जमींदारों का स्थानीय क्षेत्र व सल्तनत की सीमाओं में प्रभुत्व बढ़ता ही गया। इस कथन की संपुष्टि सुल्तान सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७) के शासनकाल के एक सर्वविदित तथ्य से होती है।

पूर्वी प्रदेश और बिहार में अपने पिता की जागीर के कार्यवाहक के रूप में फरीद ने इन्हीं जमींदारों की ओर संकेत करते हुए कहा कि दुष्ट लोग कभी भी अपने कोष में से धन नहीं देते हैं। जब कोई हाकिम उनसे धन लेकर उन्हें छोड़ देता है तो वे अपने कोष को भरने के लिये चोरी करते हैं और मार्ग में डाका डालते हैं। वे निःसहाय व दरिद्र कृषकों से जो उनके अन्तर्गत रहते हैं बलपूर्वक धन वसूल करते हैं। वे जितना दीवान को भुगतान नहीं करते हैं उसे कहीं अधिक अपने क्षेत्र से धन वसूल करते हैं।[११] इस प्रकार से सल्तनत काल के अन्त तक ज़मींदार व उनकी विभिन्न श्रेणियाँ ग्रामीण समुदाय में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करने लगीं।

कृषक की परिभाषा

कृषकों के बारे में अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। भारतीय कृषक के सन्दर्भ में इतिहासकारों ने कोई विशेष या सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी है। इरफान हबीब के अनुसार किसान से तात्पर्य उन लोगों से है जो अपने औज़ार तथा हथियार से श्रम का उपयोग कर स्वयं खेती करने का उत्तरदायित्व निर्वाह करते हों।[१२] कैथलीन गफ के अनुसार किसान का तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो आदिम साधनों से कृषि या सम्बन्धित उत्पादन करते हों तथा अपनी उपज का एक भाग उसके बराबर ज़मींदार अथवा राज्य के प्रतिनिधियों को सौंपते हों।[१३] मोरलैण्ड के अनुसार किसान से तात्पर्य उस वर्ग से है जिनका अपने लोभ के लिए, अपने परिवार वालों या मजदूरों की सहायता से खेत जोतता हो, चाहे उसकी भूमि पर स्वामित्व या स्थायित्व की शर्तें किसी प्रकार की क्यों न हो।[१] देनियल थार्नर के अनुसार किसान समाज का वह वर्ग है जो कि खेती करता है और उसकी स्थिति उस तरह की है कि वह बड़े भूमि मालिकों तथा भूमिहीनों के मध्य हैं।[१५]

किसानों की कई श्रेणियाँ होती थीं। प्रथम वे धनी किसान जो कि मजदूरों की सहायता से कृषि करते थे। द्वितीय, वे मध्यम किसान जो अपने परिवार के श्रम की सहायता से कृषि करते थे, तथा तृतीय वे किसान जिनके पास इतनी कम भूमि होती थी कि उन्हें कृषि के लिए अपने सम्पूर्ण परिवार के श्रम के सहयोग की आवश्यकता न पड़ती हो। अर्थशास्त्रियों ने किसानों के पाँच वर्गों—भू-मालिकों, धनी किसानों, मध्यम किसान, गरीब किसान या सर्वहारा वर्ग में बाँटा है। वास्तव में किसानों की श्रेणियाँ भूमि में जोत-सम्बन्धी अधिकारों पर ही आधारित थी। किसान के लिए आवश्यक था कि उसके अधिकार में कुछ भूमि हो; इस भूमि के स्वामित्व के लिए कुछ शर्तें हों, वह इस भूमि पर स्वयं या अपने परिवार वालों या श्रमिकों की सहायता से खेती करता हो तथा वह अपने खेत के उत्पादन का कुछ भाग या उसके समान कुछ भाग ज़मींदार या राज्य के प्रतिनिधियों को देता हो।

भूमि का वास्तविक स्वामी कौन ?

भू-राजस्व व्यवस्था के सम्बन्ध में सबसे पहला प्रश्न जो मस्तिष्क में उठता है

वह यह है कि भूमि का वास्तविक स्वामी कौन था ? इस प्रश्न पर १३वीं शताब्दी से पूर्व और उसके बाद भी तथा आधुनिक काल में भी भारतीय एवं विदेशी मनीषी बराबर विचार करते रहे और विभिन्न पहलुओं से इस प्रश्न पर विचार करने के बाद भी उनमें बराबर वैचारिक मतभेद बना रहा तथा वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। भूमि का वास्तविक अर्थ क्या है ? सामान्य भूमि जिस पर चल-अचल एवं सब कुछ है। राज्य की भूमि जिस पर शासन का स्वामित्व होता है तथा कृषकों की भूमि जिसको वह उर्वर बनाता है और जिस पर वह खेती करता है। अथवा वह भूमि जो कि शासक तथा कृषकों के मध्य कई वर्ग के व्यक्ति थे, की होती है। जिसका प्रयोग वे विविध ढंग से अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया करते हैं। कुछ विचारकों का मत था कि राज्य ही भूमि का मुख्य स्वामी है। भट्ट स्वामी ने अर्थ-शास्त्र में कहा कि शासक ही भूमि व जल का स्वामी है तथा अन्य सभी लोगों का इन दो पदार्थों को छोड़कर सभी अन्य पदार्थों पर अधिकार है। कात्यायन तथा कृत्यकल्पतरु में लक्ष्मीधर तथा कल्हण ने राजतरंगनी में भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। किन्तु जामिनी ने मीमांसा सूत्र में कहा है कि भूमि सभी की होती है। सब्रस्वामी ने मीमांसा दर्शन में राज्य की सम्पूर्ण भूमि व्यक्तिगत खेत के मध्य विभेद दर्शाते हुए कहा कि प्रथम प्रकार की भूमि पर एक व्यक्ति का स्वामित्व नहीं होता है। क्योंकि शासक फसल की रक्षा करता है अतएव वह उसके लिए पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी तो है किन्तु उसका भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं हो सकता। उसके विपरीत मीमांसा के दो टीकाकारों माधव तथा खण्डदेव ने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक सम्पत्ति में भेद तथा सार्वभौमिक शक्ति की कार्य प्रकृति पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने ही प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया कि भूमि पर राज्य का ही स्वामित्व होता है। चूंकि राज्य ही सीमा सम्बन्धी झगड़ों, भूमि के क्रय-विक्रय, उसे जब्त करने या व्यक्ति को उससे वंचित करने अथवा उसे गिरवी रखने से सम्बन्धित मामलों को तय किया करता है अतएव एक प्रकार से यदि देखा जाय तो भूमि का वास्तविक स्वामी राज्य ही होता है। जहाँ तक भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रश्न है मेधातिथि के अनुसार शासक ही भूमि का स्वामी होता है। जब वह शासक को ही भूमि का स्वामी बताता है तो उसका तात्पर्य केवल यह नहीं है कि वह केवल कृषि-योग्य भूमि का ही स्वामी है वरन् राज्य के सभी पदार्थों का स्वामी है। इस भूमि में गाँव, खेत, पेड़, तालाब आदि सभी कुछ आ जाते हैं, जिन पर कि उसका पूरा अधिकार था। किन्तु दूसरी ओर व्यक्तिगत भूमि के सम्बन्ध में भी साक्ष्य उपलब्ध है। कुछ ऐसी भी भूमि थी जिस पर कि व्यक्ति विशेष का पूर्ण अधिकार था। वे जिस प्रकार से चाहें उस प्रकार से उसका उपयोग कर सकते थे। वे उसका क्रय-विक्रय कर सकते थे, उसे दान दे सकते थे, उस पर स्वयं खेती कर सकते थे अथवा उसे गिरवी रख सकते थे। लेकिन फिर भी इस भूमि का स्वामी होते हुए भी वे पूर्णतः उसके स्वामी नहीं थे, क्योंकि वे राजाज्ञाओं के अन्तर्गत थे और उन्हें भूमि के मामलों में उनका पालन करना पड़ता था। इसी प्रकार से यद्यपि

कृषक भूमि के स्वामी थे किन्तु उनका भूमि पर स्वतन्त्र स्वामित्व न था।

इस प्रकार से भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में कई मत थे। वैधानिक दृष्टि से दोनों ही मत अपनी-अपनी जगह सही थे। भूमि का वास्तविक स्वामी शासक होता था, किन्तु वही भूमि जब विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में आ जाती थी और वह उनकी जीविका अर्जन का साधन बन जाती थी तो वे ही उसके स्वामी बन जाते थे। किन्तु राज्य को सम्पूर्ण अधिकार होता था कि वह उनसे किसी समय भूमि वापस ले। अन्य शब्दों में भूमि का स्वामित्व शासक के उपरान्त कई वर्गों के व्यक्तियों में बँटा हुआ था और वे अपने-अपने हितों के लिए भूमि पर स्वामित्व का दावा करते रहते थे। राज्य यह दावा करता था कि भूमि शासक की है, सामन्त अपने अधिकार का दावा करते थे। अमुक परिवार या व्यक्ति पैतिक आधार पर भूमि का स्वामित्व जताते थे और कृषक इस आधार पर कि वे उस पर खेती करते हैं और उस पर कर देते हैं अतएव भूमि पर उन्हीं का स्वामित्व है। १६वीं शताब्दी तक यह प्रश्न तय नहीं हो पाया कि भूमि का वास्तविक स्वामी कौन है।

दिल्ली के सुल्तानों ने अनेक परम्पराएँ पूर्ववर्ती हिन्दू शासकों से ग्रहण की। उदाहरणार्थ गाँव की भूमि पर शासक का पूर्ण अधिकार है और यदि वह चाहे तो वह भूमि वह किसी को अनुदान, वृत्ति आदि में दे सकता है। उस अनुदान में न केवल भूमि वरन् उस भूमि में पेड़, तालाब, कुएँ, खानें, खनिज पदार्थ आदि जो कुछ भी सम्मिलित होंगे, यदि शासक चाहे तो वह अपने अमीरों व अधिकारियों को वेतन के स्थान पर या उसके अतिरिक्त भूमि दे सकता है आदि-आदि। इनमें से कुछ परम्पराएँ सल्तनत काल में भी जारी रहीं। दिल्ली के सुल्तान एक ओर तो भूमि या गाँव मदद-ए-माश में उल्माओं, सन्तों, निःसहाय व्यक्तियों को या वक्फ में मस्जिदों, खानकाहों आदि को प्रदान करते रहे तो दूसरी ओर उन्हें अक्ता के रूप में अपने अमीरों को वेतन के स्थान में या वेतन के अतिरिक्त प्रदान करते रहे।

भू-राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत कई प्रकार की भू-व्यवस्था का प्रश्न संलग्न है—(१) मदद-ए-माश में या इनाम में दी गई हुई भूमि (२) अक्ता में दी गई भूमि (३) कृषि-योग्य भूमि जिस पर कि प्रशासन भू-राजस्व वसूल किया करता था (४) खालसा भूमि, जिसकी आय पर शासक का एकमात्र अधिकार होता था। दिल्ली के सुल्तानों की यह नीति थी कि वे भूमि से सम्बद्ध समाज के विभिन्न वर्गों के हितों की सुरक्षा का ध्यान रक्खें क्योंकि उसी पर राज्य में सुख, शान्ति, राज्य की आर्थिक समृद्धि और समाज के कुछ विशेष वर्गों अर्थात् भूमिपति वर्ग, कृषकों तथा अन्य की समृद्धि निर्भर करती थी। चारों प्रकार की भूमि की व्यवस्था का क्रमशः विकास करने में प्रशासन सदैव सजग रहा और उनकी व्यवस्था करने के लिए वह समय-समय पर नियम बनाता रहा।

मदद-ए-माश

मुग़ल काल की तुलना में दिल्ली सल्तनत के लगभग ३०० वर्षों से सम्बन्धित बहुत ही कम **मदद-ए-माश** प्रपत्र उपलब्ध हो सके हैं। दिल्ली के सुल्तान हिन्दू शासकों की भाँति धार्मिक व्यक्तियों, निःसहाय व्यक्तियों, उलमाओं या विद्वानों, धार्मिक अथवा लौकिक संस्थाओं को भूमि व गाँव अनुदान के रूप में दिया करते थे। वह इस कार्य को अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। यदा-कदा सुल्तान किसी व्यक्ति से प्रसन्न होने पर उसे इनाम में भी भूमि दे दिया करते थे। **मदद-ए-माश** या इनाम में प्राप्त भूमि धारकों से भू-राजस्व तथा अन्य कर नहीं लिए जाते थे और न ही उनसे भूमि वापस ली जाती थी। परिणामस्वरूप इस भूमि पर पहले **मदद-ए-माश** प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी तत्पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों का अधिकार रहता था और वे ही उससे प्राप्त भू-राजस्व का उपभोग किया करते थे।

खालसा भूमि

एक अन्य प्रकार की भूमि भी हुआ करती थी, जिसे कि **खालसा** भूमि कहते थे। इस प्रकार की भूमि दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश व दोआब में हुआ करती थी जो कि प्रत्यक्ष रूप में राजस्व विभाग के अन्तर्गत हुआ करती थी। खालसा भूमि का क्षेत्रफल कितना था यह कह सकना कठिन है। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल का इतिहास लिखते समय बरनी ने लिखा है कि कोल, बरन, मेरठ, अमरोहा, अफ़गानपुर, काबिर तथा दोआब के सभी प्रदेश एक गाँव के समान एक ही आज्ञा का पालन करने हेतु **खालसा** में रख दिये गये और सेना के वेतन के लिए सुरक्षित कर दिये गये। बरनी ने यह भी लिखा है कि समस्त कर दाँग से दिरहम तक राजकोष में लाया जाता था और वहाँ से सेना के वेतन तथा कारखानों को चलाने में खर्च किया जाता था। इससे यह ज्ञात होता है कि खालसा भूमि से भू-राजस्व वसूल करने के लिए पृथक **आमिल** नियुक्त किये जाते थे, जो कि केन्द्रीय प्रशासन के संरक्षण व निर्देशन में कार्य किया करते थे।[१६]

खालसा भूमि का क्षेत्र निश्चित नहीं था। वह सुल्तान की आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ता रहता था और वहाँ से अधिक से अधिक भू-राजस्व प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी। डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार इस प्रकार की भूमि में केन्द्रीय प्रशासन भू-राजस्व के विभिन्न मान निर्धारित किया करता था।[१७] बलबन के समय भारत पर मंगोलों के आक्रमण का दबाव बढ़ा। उन्होंने पंजाब के मध्य तक पहुँचकर दिल्ली सल्तनत की सीमाओं को पार कर दिल्ली की ओर बढ़ने का प्रयास किया। उनके आगे बढ़ने को रोकने के हेतु बलबन को एक सशक्त सेना स्थापित करनी पड़ी। परन्तु शीघ्र ही उसे आभास हुआ कि सल्तनत का अधिकांश भाग तो अक्ता-दारों के पास जागीर के रूप में है और केन्द्रीय प्रशासन की आय का मुख्य स्रोत केवल

अर्ध-स्वतंन्त्र हिन्दू शासकों से प्राप्त खिदमती व कृषकों से प्राप्त खिराज ही है और दोआब की तथा अन्य प्रदेशों की खालसा भूमि भी अक्तादारों में आवंटित है। उसे यह ज्ञात हुआ कि दोआब तथा अन्य प्रदेशों की खालसा भूमि से जो भूमि अक्तादारों को इल्तुतमिश के समय प्रदान हुई थी, उन अक्तादारों में या तो अनेक मर गये हैं या वृद्ध हो गये हैं अथवा वे अक्ताएँ या तो मूल अक्तादारों के वंशजों या विधवाओं या दासों के हाथों में हैं। बलबन ने ऐसी अक्ताओं को खालसा के अन्तर्गत लाने की चेष्टा की किन्तु वह सफल न हो सका।[१८] सुल्तान अलाउद्दीन मसूद (१२४१-१२४६) के पूर्व भटिण्डा व ग्वालियर खालसा में थे। किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी कोल, बरन, मेरठ, अमरोहा, अफगानपुर, काबिर तथा दोआब की भूमि को खालसा के अन्तर्गत ले आया। इसके कारण केन्द्रीय प्रशासन की भू-राजस्व से आय की राशि सुनिश्चित हो गई। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन खिल्जी ने आदेश दिया कि वे गाँव जो कि लोगों के पास मिल्क या इनाम या वक्फ में है खालसा में सम्मिलित कर लिए जायें।[१९] इसके कारण खालसा भूमि के क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हो गई और केन्द्रीय प्रशासन की आय में भी वृद्धि हो गई। बरनी के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने आदेश दिया कि खालसा में आने वाले गाँवों में से भू-राजस्व अनाज के रूप में वसूल किया जाय।[२०] इस सूचना के अतिरिक्त खालसा भूमि के प्रशासन एवं वहाँ से भू-राजस्व वसूल करने अथवा उस भूमि में कमी या वृद्धि के सम्बन्ध में अथवा किसी प्रकार की सूचना समकालीन एवं परिवर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होती है। मिनहाज-उस-सिराज के अनुसार खालसा क्षेत्र को केन्द्र की ओर से देखभाल करने वाले अधिकारी को शहाना, अमीर या मलिक कहते थे, जो कि भू-राजस्व एकत्र करने वाले विशेष अधिकारियों की मदद से भू-राजस्व कर सुल्तान के कोष में पहुँचाया करते थे।[२१]

पूर्व मध्यकाल में एक दूसरी प्रकार की भूमि वह थी जो कि सुल्तानों ने समय समय पर अपने अमीरों को वेतन के बजाय अक्ता के रूप में दी। ग्यारहवीं शताब्दी में निजाम-उल-मुल्क तूसी (१०१७-१०९२) ने सेल्जूक, ख्वारिज्म तथा तुर्की राज्यों में प्राप्त अनुभव के आधार पर अपने ग्रन्थ सियासतनामा में अक्ता के सम्बन्ध में विवरण देते हुए लिखा कि "अक्तादारों (मुक्ती) को अपने आवंटन में भू-राजस्व वसूल करना पड़ता था, वहाँ शान्ति व सुरक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता था और जनता के जान-माल की रक्षा करनी पड़ती थी।"[२२] अक्ता का अरबी में वास्तविक अर्थ भूमि सम्पत्ति के एक भाग से है जिसे कि राज्य की ओर से कोई व्यक्ति प्राप्त करता था। धीरे-धीरे इस शब्द का प्रयोग भू-राजस्व आवंटन के लिए होने लगा, जिस पर की राज्य का पूर्ण अधिकार होता था। अल-मावर्दी ने दो प्रकार की अक्ताओं का उल्लेख किया है—(१) अक्ताए-ए-तमलीक, (२) अक्ताएँ-ए-इस्तिग़ाल। प्रथम के अन्तर्गत अमीरों को प्रदान की जाने वाली भूमि आती थी और दूसरे के अन्तर्गत वजीफे तथा वृत्तियाँ एवं अनुदान में दी जाने वाली भूमि आती थी। यहाँ भू-राजस्व के सम्बन्ध में अक्ताएँ-ए-तमलीक पर

ही विचार करना आवश्यक है। मिनहाज ने ऐसे आवंटनों के लिए इलायात शब्द का भी प्रयोग किया है।[२३] इक्तादारों को इक्तादार, मुक्ती, अमीर और मलिक कहा जाता था।

यद्यपि भारतवर्ष में सामन्तों एवं अधिकारियों को आवंटन में भूमि देने की परम्परा बहुत ही प्राचीन थी। किन्तु पूर्व मध्यकाल में यह परम्परा मुहम्मद ग़ौरी ने प्रारम्भ की। उसने ११६१ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक को कोहराम व उच्च मलिक नासिरुद्दीन ऐतम को अक्ताओं में प्रदान किया।[२४] उसके बाद यह प्रथा यथावत बनी रही। चूँकि दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक काल में कोई प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित न हो सकी थी अतएव अक्ता प्रणाली के माध्यम से अधिकृत प्रदेशों पर प्रशासन करने का प्रयास किया गया। केन्द्रीय व्यवस्था के अभाव में अक्ता प्रणाली ही ऐसा विकल्प था जिससे कई लाभ थे : (१) सर्वप्रथम सुल्तान अथवा केन्द्रीय व्यवस्था दूरस्थ या निकटवर्ती प्रदेशों का प्रत्यक्ष ढंग से शासन करने के दायित्व से मुक्त रहा। (२) केन्द्र में धनाभाव के कारण अथवा राजस्व के स्रोत निर्धारित न हो सकने के कारण सुल्तान अमीरों, मलिकों तथा राजकीय अधिकारियों को वेतन देने में समर्थ न था। अतएव अक्ता प्रणाली को अपनाकर उन्हें वेतन के स्थान पर अक्ता व उसकी आय अथवा राजस्व उन्हें प्रदान करके व उन्हें निर्धारित एवं सुनिश्चित वेतन देने के दायित्व से मुक्त हो गया। सुल्तान इल्तुतमिश के सिंहासन पर बैठने पर अक्ता प्रणाली दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गया। अगले २६ वर्षों में इल्तुतमिश ने सुल्तान से लेकर लखनौती तक के समस्त प्रदेश को बड़े व छोटे क्षेत्रों में विभाजित कर दिया। इन क्षेत्रों को अक्ता की संज्ञा प्रदान की गई और उन्हें मुक्ता नामक अधिकारियों के अन्तर्गत रखा गया। इल्तुतमिश के समय से अक्ताएँ दो प्रकार की होने लगी : (१) प्रथम वे गाँव जिन्हें कि साधारणतः अक्ता ही कहा जाता था। उन्हें उन सैनिकों को उनके वेतन के बजाय दिया जाता था जिन्हें कि सुल्तान स्वयं अपनी सेवा में भर्ती किया करता था। ऐसी अक्ताएँ खालसा भूमि का एक भाग हुआ करती थीं। (२) दूसरी प्रकार की अक्ताएँ वे थीं जिनका क्षेत्रफल एक प्रान्त के समान होता था और जो खालसा भूमि के बाहर हुआ करती थी। प्रथम प्रकार की अक्ताओं के स्वामियों को, जो कि बहुधा साधारण सैनिक ही हुआ करते थे, किसी प्रकार का वित्तीय तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जाता था। इसके विपरीत, दूसरे प्रकार की अक्ताओं में जो कि मुक्तियों के अन्तर्गत हुआ करती थी या अमीरों को प्रदान की जाती थी, को राजस्व एवं प्रशासनिक दायित्व निभाना पड़ता था। उन्हें एक ओर तो मुतसर्रिफ, कारकून, आमिल, कोतवाल, मुकद्दम तथा चौधरियों की सहायता से भूराजस्व वसूल करना पड़ता था तो दूसरी ओर इसी भू-राजस्व में से सैनिकों को रखना पड़ता था।

अक्ता प्रदान करने की परम्परा बलबन (१२६६-८६) के अन्तर्गत भी चलती

रही। जब वह गद्दी पर बैठा तो उसे मालूम हुआ कि शम्सी अक्तादार बहुत ही वृद्ध हो चुके हैं; वे सेना के साथ न चलकर घर में बैठे रहते हैं। जो सेना के साथ चलने के उपयुक्त भी हैं वे दीवान-ए-अर्ज़ के मुन्शियों को घूस देकर घर में बैठे रहते हैं और जो गाँव उन्हें अक्ता में मिले हैं उन पर कोई कर भी नहीं देते हैं। बलबन ने दीवान-ए-अर्ज़ को आदेश दिए कि उनके कागज़ात उसके सन्मुख पेश किए जायें, उनके सम्बन्ध में पूछ-ताछ की जाय और उनके बारे में पुनः राजाज्ञा प्राप्त की जाय। अक्तादारों के सम्बन्ध में जाँच करने पर मालूम हुआ कि सुल्तान इल्तुतमिश के समय लगभग २००० सवारों को दिल्ली के आस-पास तथा दोआब के गाँव वेतन के बदले में दिए गए। उनमें से अनेक अक्तादारों की मृत्यु सुल्तान इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों के समय हो गई। उनमें से अनेक अक्तादारों के वंशजों ने उन गाँवों पर अपना अधिकार जमा लिया और दीवान-ए-अर्ज़ में घूस देकर अक्ताएँ अपने नाम पर लिखवा ली। जिन पिताओं के पुत्र अल्पवयस्क थे उनके गाँव उनके दासों ने अपने नाम लिखा लिए थे। ऐसे अक्तादार, उनके पुत्र तथा दास गाँवों को अपनी मिल्क और इनाम समझते थे। सुल्तान इल्तुतमिश व उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में इन अक्तादारों से दो से तीन सशस्त्र सवार सुल्तान की सेना के लिए दीवान-ए-अर्ज़ द्वारा माँगे जाते थे। यदि किसी कारणवश इनमें से कोई अक्तादार सवार भेजने में असमर्थ रहता तो उसकी अक्ता छीनी न जाती थी और न ही उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही ही की जाती थी। वे अपने घरों में बहाना बनाकर बैठे रहते थे तथा अपनी यथा-शक्ति शराब, बकरे, भेड़, चिड़िया, कबूतर, घी, तेल और अनाज अपने गाँवों से नायब अर्ज़ मालिक और उसके कार्यालय के कर्मचारियों के लिए भेजते रहते थे। बलबन ने जाँच के बाद अक्तादारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया—(१) वे अक्तादार जो पूर्णतः वृद्ध तथा निर्बल हो चुके थे और युद्ध करने के योग्य न थे। बलबन ने उनके लिए ४० से ५० तन्के वजीफे के रूप में निर्धारित कर दिये और उनके गाँव खालसा में सम्मिलित कर लिए। (२) वे अक्तादार जो जवान व स्वस्थ थे। बलबन ने उनका वेतन उनकी योग्यतानुसार निर्धारित किया और आदेश दिया कि उनके गाँव से प्राप्त राजस्व में से उन्हें वेतन दे दिया जाय और उनके गाँव जब्त कर लिए जायँ। (३) तीसरी श्रेणी में वे अनाथ बच्चे या विधवाएँ थीं, जिनके पास अक्ताएँ थीं और जो कि अपने पिता व पति के दासों के द्वारा घोड़े, अस्त्र-शस्त्र दीवान-ए-अर्ज़ मे भेज दिया करते थे। बलबन ने उनके लिए आदेश दिया कि अनाथों तथा विधवाओं के भोजन एवं वस्त्र का प्रबन्ध उनके गाँव की आय से कर दिया जाय; उनसे उनके गाँव ले लिए जायँ और उन गांवों का भू-राजस्व दीवान में जमा कर दिया जाय। किन्तु मलिक उल-उमरा-फखुद्दीन कोतवाल द्वारा उन अक्तादारों की ओर से मध्यस्थता करने के कारण बलबन को अपना आदेश वापस लेना पड़ा।[२५] इस प्रकार बलबन पूर्णतः अक्तादारी प्रथा का उन्मूलन न कर सका। पूर्व काल की भाँति यह अक्तादार अपनी-अपनी अक्ताओं में कृषकों से भू-राजस्व वसूल करके अपना खर्च चलाते रहे। बलबन के वंशजों ने अक्तादारों

को इस बात पर बाध्य किया कि वे अपनी अक्ताओं की आय में से अपना व्यय निकाल कर शेष रक़म **दीवान-ए-वज़ारत** को भेजें।[२६] बरनी ने स्पष्टतः लिखा है कि इस कार्यवाही से अत्यधिक धन राजकोष में जमा हो गया था। बलबन ने मुक्ती के साथ एक ख्वाजगी की नियुक्ति सम्भवतः इसी उद्देश्य से की थी कि ख्वाजगी अक्ता की आय व उसमें होने वाले व्यय की जानकारी रखे और व्यय के उपरान्त अतिरिक्त धन राजकोष को भेजता रहे।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय कुछ गहन परिवर्तन हुए। उसके शासन-काल में साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार हुआ और पुराने प्रदेशों में किसानों से पूरा लगान वसूल करने की व्यवस्था की गई। उसने अक्ता प्रथा को समाप्त न करके दूरस्थ प्रदेशों में अमीरों को अक्ताएँ प्रदान की क्योंकि वह जानता था कि उन प्रदेशों में केन्द्र का सीधा प्रशासन वहाँ लागू करने में समय लगेगा और उसमें परेशानियाँ होंगी। उसने दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों में अक्तादारी प्रथा समाप्त कर दी और वे प्रदेश **खालसा** में मिला लिए। इस विशाल भू-भाग में दोआब व रुहेलखण्ड आता था। उसने सैनिकों को वे अक्ता न देकर नकदी में वेतन देना प्रारम्भ किया और उनके लिए अक्तादारी प्रथा समाप्त कर दी। परिणामस्वरूप **खालसा** का राजस्व राजकोष में पहुँचने लगा और वहाँ से सैनिकों को वेतन मिलने लगा।

जिन प्रदेशों में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने अपने अमीरों को अक्ताएँ प्रदान की वहाँ के **मुक्तियों** व **वलियों** का यह उत्तरदायित्व था कि वे उन अक्ताओं में सभी करों को वसूल करें। यह **दीवान-ए-वज़ारत** विभाग का कार्य था कि वह प्रत्येक अक्ता से प्राप्त होने वाले भू-राजस्व का अनुमान लगाये। यह विभाग सदैव इस अवसर की खोज में रहता था कि किसी प्रकार से वह इस अनुमानित आय में वृद्धि कर दे। अक्ता से उपलब्ध राजस्व का कुछ भाग अक्तादार या **मुक्ती** या **वली** के सैनिकों के भरण-पोषण पर व्यय करता था और शेष धन **मुक्ता** या **वली** का समझा जाता था। इस धन को वे अपना वेतन समझते थे, जो कि वे अपने कार्यालय के अधिकारियों व परिवार पर व्यय करते थे। यह **मुक्ती** राजस्व से प्राप्त धनराशि के सही आँकड़ों को छुपा लिया करते थे और सदैव अपनी आमदनी को कम बताते थे ताकि उन्हें सुल्तान को कुछ न देना पड़े। इसके अतिरिक्त अपनी आमदनी को बढ़ाने के लिए वे सदैव सतर्क रहते थे कि कहीं उनकी अक्ताओं के अधिकारी कृषकों से पूरा लगान लेने में ढिलाई तो नहीं दिखा रहे हैं या वसूल किए गए उस राजस्व में धन का अपहरण तो नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार से एक ओर सुल्तान को प्रशासन को मुक्तियों की ओर से सचेत रहना पड़ता था कि कहीं वे अपनी आय को छुपा तो नहीं रहे हैं या वसूल किए गए राजस्व के धन का अपहरण तो नहीं कर रहे हैं। मुक्ती भी अपने अधिकारियों पर इन्हीं विषयों पर दृष्टि लगाये रखते थे। इस प्रकार दोनों ही स्तरों पर कठोर से कठोर दण्ड, बन्दीगृह में डाल देने, शरीर को कष्ट देने की व्यवस्था लेखा परीक्षण के समय की गई थी। बरनी के

अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय उसका मन्त्री शरफ गाँव के पटवारियों की वहियों को, धोखाधड़ी को समाप्त करने के लिए जाँच के लिए मँगाता था। वह राजस्व विभाग के अधिकारियों द्वारा धन का अपहरण करने पर उन्हें वर्षों तक वन्दी-गृह मे रखता था तथा विभिन्न प्रकार की यातनाएँ भी दिया करता था।[२७] जव शरफ कै मुक्तियों के हिसाव-किताव में कोई गड़बड़ी देखता था तो वह उसकी अक्ता के अनुमानित राजस्व में वृद्धि कर दिया करता था। अफीफ के अनुसार इस प्रकार शरफ कै ने सम्पूर्ण सल्तनत को बर्बाद करके रख दिया।[२८]

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने अक्ता प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। उसने दीवान-ए-वजारत विभाग को केवल यही आदेश दिये कि वे मुक्तों की अनुमानित आय प्रति वर्ष केवल १/१० या १/१२ तक की ही वृद्धि करें क्योंकि इस प्रकार की वृद्धि से मुक्ती कर का भार कृषकों पर डाल देंगे। अतएव जो मुक्ती अपनी अनुमानित आय के १/१० से १/२० भाग तक अधिक राजस्व कृषकों से वसूल करते हैं तो उनके प्रति किसी प्रकार की कठोरता प्रदर्शित न की जाय। उसने यह भी आदेश दिया कि कोई मुक्ती अपना अक्ता की आय में से अपने लिए उस भाग को न ले जो कि प्रशासन ने उसके सैनिकों की आय के लिए निर्धारित की है। इसी प्रकार से उसने मुक्तों को चेतावनी दी की यदि उनके अधिकारी अपने वेतन से ०·५% या १% अधिक कृषकों से वसूल कर ले तो वे उन्हें कठोर दण्ड कदापि न दे।[२९]

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक के पुत्र एवं उत्तराधिकारी मुहम्मद तुग़लक ने मुक्तियों पर प्रशासन का नियन्त्रण पहले से अधिक बढ़ा दिया। उसने राजस्व एकत्र करने व सैनिकों को रखने के कार्यों को पृथक कर दिया, क्योंकि वह अधिक से अधिक राजस्व राजकोष में लाना चाहता था। उसने जो अक्ताएँ ठेके पर भी दी उनके मुक्तियों पर सैनिक रखने का भार न डाला। उदाहरणार्थ, निजाम मई को कई लाख तन्के पर कड़ा की अक्ता, नुसरत खान नामक व्यापारी को एक करोड़ तन्के पर दी गई। अक्ता प्रदान करते समय उसने उन पर सैनिक उत्तरदायित्व न सौंपा। अमरोहा के अज़ीज खम्भार के अन्तर्गत १५०० गाँव थे। उनका अनुमानित राजस्व ६० लाख तन्का था, जिसका २०वाँ भाग उसे वेतन में मिलता था और शेष वह राजकोष में भेज देता था।[३०] इसी धन में से वह अधिक मात्रा में अनाज दिल्ली भेजा करता था। अज़ीज खम्भार के साथ-साथ अमरोहा में एक अमीर भी था जो कि सैनिकों का प्रवन्ध किया करता था। मुक्ता व अमीर के मध्य इस प्रकार के कार्य-विभाजन से मुक्ताओं को हानि होने लगी। क्योंकि अक्ताओं की अनुमानित आय जिसके विरुद्ध उनके वेतन को समंजित किया जाता था, सदैव वास्तविक आय से कम होती थी। इस प्रकार जब उन्हें अक्ता से कोई लाभ न होने लगा तो वे प्रशासन के विरुद्ध विद्रोह करने लगे।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक (१३५१-१३८८) ने आदेश दिया कि शीघ्र से शीघ्र राज्य की कुल जमा का अनुमान लगाया

जाय। चार वर्ष के अन्दर आँकड़े एकत्र किए गए और राजस्व की कुल जमा ६,७५०००,०००० या ६,८५००,००० तन्का निर्धारित हुई। उसके शासनकाल के अन्त तक इस आँकड़े में कोई भी परिवर्तन न किया गया।[31] जमा निर्धारित करने का तात्पर्य यह हुआ कि जो धन मुक्तियों को राजस्व के रूप में प्रतिवर्ष राजकोष में जमा करना है उस राशि में किसी प्रकार की वृद्धि करके उन्हें परेशान न किया जाय। उनके हिसाब व किताब का दरवार में परीक्षण करना भी सरल हो गया और वे भी सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।[32] सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने अपने बड़े-बड़े अमीरों के व्यक्तिगत वेतन में वृद्धि की। जबकि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के काल में अमीरों (खान) का व्यक्तिगत वेतन २००,००० तन्का था। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने अपने मलिकों तथा खानों के लिए ४००,०००; ६००,०००; ८००,००० तन्के तक वेतन निर्धारित किया। उस समय वज़ीर का वेतन १,३०००,००० तन्का था। इस वेतन के बदले में उन्हें उसी मूल्य के अक्ता व परगने मिलते थे।[33] इस प्रकार से सुल्तान फिरोज़शाह की नीति अक्ताओं में भूमि प्रदान करने की थी। अफीफ ने स्पष्टत: लिखा है कि ईश्वर से प्रेरणा प्राप्त करके उसने अपने राज्य का राजस्व अमीरों में बाँट दिया, यहाँ तक कि उसने सभी परगने और अक्ते उन्हीं के मध्य बाँट दिए।[34] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके शासनकाल में खालसा भूमि कम हो गई होगी, क्योंकि उसी में से सैनिकों को वेतन के वदले गाँव का राजस्व वजेह में दिया जाने लगा। जिन सैनिकों को वजेह नहीं प्रदान की जाती थी उन्हें राज-कोष से वेतन दिया जाता था या उन्हें वह वेतन किश्तों में कभी नकद, कभी पत्रों के रूप में दिया जाता था, जो कि वाद में अमीरों के हिसाब के समय उस रकम को मुजरा कर लिया जाता था। ऐसे उदाहरणों में सैनिकों को केवल अक्ताओं से आधा वेतन ही प्राप्त होता था। ऐसी स्थिति में वे अपने पत्र वेच दिया करते थे। खरीदने वाले व्यक्ति अक्तादार व सैनिक की अनुमति से उन्हें मोल ले लिया करते थे और वे सैनिकों को एक तिहाई नज़र में देते थे और जव वे अक्ताओं में पहुँचते थे तो उन्हें वहाँ उनके वेतन का आधा धन और मिल जाता था। इस प्रकार से उन पत्रों (इतज़क) को मोल लेने वाले बड़ा लाभ उठाते थे। अक्ताओं के सम्बन्ध में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने चिरकाल से चली आई हुई इस परम्परा को स्वीकार कर लिया कि वे सभी वंशानुगत हैं। उसने उन्हें वैधानिक घोषित करते हुए कहा कि यदि किसी सैनिक की मृत्यु हो जाए तो उसकी वजह उसके पुत्र को प्रदान कर दी जाय। यदि किसी के पुत्र न हो तो उसके दामाद को दे दी जाय। यदि दामाद न हो तो उसके दास को और यदि दास न हो तो उसके निकटतम सम्बन्धी को प्रदान कर दी जाय। यदि उसका कोई सम्बन्धी न हो तो उसकी वजह उसकी स्त्रियों को दे दी जाय।[35]

उत्तरोत्तर सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के काल में पहले की भाँति अक्ताओं पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रख सकना सम्भव न था। लगभग सभी अक्ताएँ

अक्तादारों या उनके वंशजों के ही हाथों में रही। सैय्यद काल में कुछ अक्तादारों को सैनिक उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ा और उन्हें अपनी अक्ताओं में सैनिक प्रशासन की सहायता के लिए भर्ती करने पड़े। शेष सभी अन्य विषयों में अक्ताओं का प्रारूप वही रहा। लोदी काल में अक्ताओं का पुनः संगठन हुआ। इस काल में अक्ता शब्द का प्रचलन कम हो गया। उसके स्थान पर **सरकार** शब्द का प्रयोग होने लगा। प्रत्येक **सरकार** की जमा निर्धारित की गई, जिसके अनुसार अमीरों के सैनिक एवं अन्य उत्तराधिकारियों का निर्धारण भी हुआ। यदि किसी अमीर की **सरकार** की राजस्व से आय अथवा जमा की राशि प्रशासन द्वारा निर्धारित जमा से अधिक होती थी, और यह अमीर शेष धन के लिए दावा करता था तो उसे वह रक़म नहीं दी जाती थी। कभी-कभी अमीर अपनी **सरकार** का कुछ भाग अपने मातहती व्यक्तियों को प्रदान कर दिया करता था। यह मातहती अपने सैनिकों को उसी ढंग से वेतन दिया करते थे, जिस प्रकार उनके स्वामी। लोदी काल में केन्द्रीय प्रशासन की दुर्बलता के बावजूद भी अक्ता प्रणाली के मुख्य तत्व उसी प्रकार से रहे जिस प्रकार से इससे पूर्व थे। मुग़लों ने अक्ता प्रणाली को अपनाकर उसे जागीर प्रणाली का रूप दिया।[२६]

अक्तादारों के अतिरिक्त भू-राजस्व का उपभोग करने वाला शहरी तथा ग्रामीण समाज में एक अन्य वर्ग भी था। इस वर्ग में वे धार्मिक व्यक्ति एवं विद्वान तथा अन्य व्यक्ति थे, जो कि शासक वर्ग पर आश्रित थे। उन्हें मिल्क, इनाम या इदरार, जिनका एक ही अर्थ है, में गाँव का राजस्व या उनका जीवन भर के लिए भूमि या उन्हें या उनके वंशजों के लिए भूमि दे दी जाती थी। उनके अतिरिक्त मदरसों, खानकाहों, मस्जिदों आदि की देख-रेख के लिए वक्फ में भी भूमि या किसी गाँव को राजस्व प्रदान कर दिया जाता था। सुल्तान इस प्रकार के अनुदान फरमान द्वारा देता था। इस फरमान के आधार पर अनुदान पाने वालों को भूमि न केवल खालसा वरन् अक्ता के क्षेत्र में फरमान द्वारा इंगित स्थान में प्रदान कर दी जाती थी। अनुदान पाने वालों को खेती के योग्य अथवा ऊसर भूमि भी प्रदान की जाती थी, किन्तु उन्हें बहुधा खेती योग्य भूमि ही प्रदान की जाती थी। हालांकि खेती योग्य भूमि प्रदान करने पर मुक्ती को प्राप्त होने वाले राजस्व की राशि में बड़ी कमी हो जाती थी क्योंकि अनुदान पाने वाले सभी करों से मुक्त थे। अनुदानों का न केवल हस्तान्तरण ही हो सकता था वरन् उनको रद्द भी किया जा सकता था। उन्हें हस्तानान्तरण करने व रद्द करने का अधिकार केवल सुल्तान को ही होता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी (१२९६-१३१६) ने उन सभी गाँवों को, जो कि इनाम, वक्फ, मिल्क में लोगों के पास थे, खालसा में मिला लिए जाने का आदेश दिया। परिणामस्वरूप सभी प्रकार के अनुदानों में दी गई भूमि खालसा में मिला ली गई। सुल्तान ग्यासउद्दीन तुग़लक (१३२०-१३२५) ने पूर्व शासकों द्वारा दी गयी अनुदानों की जाँच करवाई और उनमें से अनेक अनुदान वापस ले लिए।[२७] किन्तु सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक (१३५१-८७) ने

इन सभी लोगों के अनुदानों, जो कि यह प्रमाण दे सकते थे कि वे अनुदान उनके पूर्वजों या उनके प्रशासक से प्राप्त हुए थे, को वापस कर दिया। [८] आइन-उल-मुल्क के अनुसार सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के समय में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की तुलना में इस प्रकार के अनुदान दस गुना अधिक थे। अफीफ के अनुसार ३६ लाख तन्के राजस्व देने वाले प्रदेश अनुदान (इदरार) में उपरोक्त श्रेणियों के व्यक्तियों के हाथों में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के काल में थे। उसी इतिहासकार के अनुसार इस काल में राज्य की कुल जमा ६,७५०,०००० तन्का थी, अतएव कुल जमा का ५·३३% अनुदान (इदरार) में था।[३९]

सुल्तान के अतिरिक्त मुक्ती व अमीर भी अपनी अक्ताओं में इस प्रकार के अनुदान विद्वानों, धार्मिक व्यक्तियों, धार्मिक संस्थाओं आदि को समय-समय पर दिया करते थे। बलबन जब अमीर था (१२४६-४७) तो उसने ३०,००० जीतल राजस्व का एक गाँव सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज को अनुदान में प्रदान किया। अलाउद्दीन खिलजी के समय एक आमिल ने शेख निज़ामुद्दीन औलिया को कई बाग़ व खेती योग्य भूमि अनुदान में देना स्वीकार किया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भू-राजस्व का उपभोग करने वाले विद्वान् व धार्मिक व्यक्ति तथा धार्मिक संस्थाएँ भी थीं। निःसन्देह यद्यपि इन अनुदानों का क्षेत्र बहुत ही कम था, किन्तु एक ओर तो इन अनुदानों से एक वर्ग का पालन-पोषण होता था तो दूसरी ओर राज्य को निरन्तर खेती योग्य भूमि पर राजस्व की हानि होती थी। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इन अनुदानों ने केवल शहर वरन् ग्रामीण समाज में गतिशीलता प्रदान की और नवीन वर्गों व उपवर्गों को जन्म देने व उनकी उन्नति करने में सहायता की। इसमें से अनेक अनुदान पाने वाले धनी व समृद्धशाली बन गए। उन्होंने उन्हीं गाँव या समीपवर्ती गाँव में अतिरिक्त भूमि क्रय की और वे शनैः-शनैः भूमिपति बन गए। अन्य अनुदान प्राप्तकर्त्ताओं ने ब्याज पर ऋण देना प्रारम्भ किया और ऋण देने का व्यवसाय अपना लिया।

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश था। इसलिए दिल्ली सलतनत की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व भू-राजस्व प्रणाली का यद्यपि पूर्ण विकास हो चुका था किन्तु ग़ौरियों के निरन्तर आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप यह व्यवस्था पूर्णतः अस्त-व्यस्त हो गई। इस संक्रमण काल में ग्रामीण समुदाय का विशिष्ट अधिकारयुक्त वर्ग, अर्थात् राजा, रावत, राय आदि कृषकों से किस दर से भू-राजस्व एवं किस प्रकार उसके आंकन कर के वसूल किया करते थे, कह सकना कठिन है। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद पुरानी व्यवस्था तत्काल समाप्त नहीं हुई। नवीन शासक वर्ग की आवश्यकता के अनुसार वह कुछ सीमा तक ज्यों की त्यों चलती रही। विजित प्रदेशों में, नवीन शासक वर्ग पुराने प्रशासन के शासक वर्ग से करद के रूप में कुछ न कुछ धन प्राप्त करता रहा। किन्तु विद्रोही

प्रदेशों में इस प्रकार की व्यवस्था सम्भव नहीं थी। इस प्रकार का प्रदेश दोआब के मध्य से लेकर कटेहर तथा मध्य बिहार तक फैला हुआ था। इस प्रदेश से करद या धन प्राप्त करने के लिए दिल्ली के शासकों या उनके मुक्तियों व अक्तादारों ने बार-बार उस पर आक्रमण किए। उन्हें करद तो नहीं मिल सका किन्तु लूट में उन्हें मवेशी तथा दास अवश्य उपलब्ध होते रहे। ऐसी स्थिति में दिल्ली सल्तनत की वित्तीय स्थिति निरन्तर क्षीण बनी रही, जिसके कारण बलबन (१२६६-१२८६) के अमीर दिल्ली के व्यापारियों तथा ऋणदाताओं के बराबर ऋणी रहे। केन्द्रीय प्रशासन के पास इतना धन न था कि वह उनको समय पर वेतन दे सकता और अक्ताओं में उनकी स्थिति ऐसी न थी कि स्थानीय तत्वों से संघर्ष करके वे कृषकों से सीधे राजस्व वसूल कर सकते। अतएव उनके सम्मुख एक ही विकल्प था कि वे अपनी अक्ताओं को व्यापारियों व ऋणदाताओं के हवाले कर दे और उनसे अग्रिम धन लेकर अपने जीवन का निर्वाह करें व सैनिकों का पालन पोषण करें।

लेकिन समय के साथ-साथ जैसे-जैसे दिल्ली सल्तनत की स्थिति सुदृढ़ होती गई वैसे-वैसे प्रशासन कृषकों से राजस्व का पूरा धन वसूल करने के लिए व्यवस्था करने लगा। इस्लामी राज्य में भूमि को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया था— (१) उशरी, (२) खिराज। उशरी भूमि निम्नलिखित प्रकार की हुआ करती थी— (१) अरब की भूमि (२) ऐसी भूमि जो कि मुसलमानों के पास हो (३) वह भूमि जो विजय के बाद मुसलमानों में बाँट दी जाती हो, (४) ऊसर भूमि जिसको मुसलमान कृषियोग्य बना लिया करते थे। यहाँ पर गज़नवियों के समय इस्लामी देशों में कर वसूल करने की प्रणाली सर्वप्रथम पंजाब में लागू की गई। उसके बाद १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जैसा कि फखरुद्दीन मुबारकशाह के ग्रन्थ **तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारशाह** से ज्ञात होता है कि ऐबक के शासनकाल में खिराजी भूमि पर कुल पैदावार का १/५ और उसी भूमि पर किसी न किसी स्थान पर १/१० तथा किसी स्थान पर १/१० का आधा भाग निश्चित किया गया। जो भूमि मुसलमान विद्वानों व मुसलमान निर्धन व्यक्तियों को प्रदान की गई थी और जिनसे कुल उत्पादन १/५ भाग खिराजी भूमि के समान लिया जाता था। वहाँ अन्य कर लेना बन्द कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि १२०६ ई० से १२८६ ई० तक खिराजी भूमि जो कि हिन्दू-मुसलमान कृषकों के हाथों में थी, पर कुल उत्पादन का १/५ भाग भू-राजस्व के रूप में लिया जाता था। बलबन के शासनकाल के अन्त तक जहाँ तक सुल्तानों का कृषकों के प्रति दृष्टिकोण का प्रश्न है, बरनी के उन शब्दों, जो कि उसने बलबन के मुख में रखकर बुगरा खाँ को सम्बोधित करते हुए कहलवाये हैं, से पता चलता है। बंगाल में तुगरिल बेग के विद्रोह का दमन करने के उपरान्त बलबन ने अपने पुत्र बुगरा खाँ से कहा कि तुम "खिराज वसूल करने में मध्यम मार्ग ग्रहण करना। न तो इतना लगान लेना कि प्रजा दरिद्र हो जाय और न ही इतना कम लेना कि वह धन की अधिकता से विरोधी

बन जाय। यदि प्रजा के पास अत्यधिक धन हो जावेगा तो वह विरोधी बन जावेगी, क्योंकि धन की अधिकता से मनुष्य व्यर्थ के कार्य करने लगता है। इनके पास इतना धन ही होना चाहिए जिससे कि वे सुविधा-जनक जीवन व्यतीत कर सके। उससे अधिक उनके पास धन नहीं होना चाहिए।[४०] मोरलैण्ड के अनुसार बलबन ने कृषि प्रधान राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के मुख्य सिद्धान्त को समझ लिया, विशेषकर ऐसे समय में जब कि किसी व्यक्ति के लिए ऐसा वातावरण न था कि वह आगे बढ़ सके।[४१] उसका मुख्य उद्देश्य कृषकों को प्रसन्न रखना, कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन देना और उनसे उचित राजस्व प्राप्त करना था। उसके विचार में प्रशासन को चलाते समय शासक का यही ध्येय होना चाहिए।

बलबन के बाद सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी दूसरा ऐसा सुल्तान था जिसने कि भू-राजस्व व्यवस्था की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। सिंहासन पर बैठते ही उसने मुक्तहस्त से वह धन बाँटा जो कि उसने दक्षिण से प्राप्त किया था। उसे आशा थी की जो राज्य उसने प्राप्त किया है वह अपने ही सीमित आर्थिक साधनों पर खड़ा रहेगा, किन्तु उसके राज्यकाल के प्रारम्भ में होने वाले विद्रोहों ने यह स्पष्ट कर दिया कि राज्य को एक शक्तिशाली शासक, प्रशासन और अत्यधिक आर्थिक साधनों की आवश्यकता है, तभी वह अपने सिंहासन व राज्य को सुरक्षित रखने में समर्थ हो सकेगा व उसकी सीमाओं को बढ़ाने में सफल हो सकेगा। अतएव उसने सर्वप्रथम भू-राजस्व प्रशासन में सुधार करने का कार्य प्रारम्भ किया। मोरलैण्ड के अनुसार ग्रामीण व्यवस्था में जो परिवर्तन उसने किये वे परिवर्तन किसी आर्थिक या लोकहित उद्देश्य की भावना के कारण नहीं हुए वरन् उनके पीछे राजनीतिक एवं सैनिक कारण थे।[४२] वास्तव में मोरलैण्ड का कथन इस सन्दर्भ में केवल सही ही नहीं वरन् उन परिस्थितियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है जिनका सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी को सामना करना पड़ा। उस समय उसके लिए आन्तरिक एवं वाह्य चुनौतियाँ थीं। जलाली अमीर उससे घृणा करते थे, उसे न तो कट्टर धार्मिक वर्ग और न अमीरों का सहयोग प्राप्त था। मुसलमान अमीरों के विद्रोह व हिन्दुओं में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति उसके मार्ग में कंटक उत्पन्न कर रहे थे। उसके निजी समर्थकों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाएँ उसे प्रत्येक दिशा में आक्रमणात्मक नीति का अनुसरण करने के लिए प्रेरित कर रही थी। उत्तर-पश्चिम में मंगोलों का दबाव दिल्ली सल्तनत के लिए घातक सिद्ध हो रहा था। अतएव ऐसी स्थिति में प्रशासन को सुदृढ़ बनाने व उसकी विद्रोही तत्वों से रक्षा करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक था कि कुछ ठोस कदम उठाए जाँय। उसने ४,७५,००० सैनिकों की एक विशाल स्थायी सेना स्थापित की जिससे कि आन्तरिक विद्रोहों का दमन हो सके, नव विजित प्रदेशों को विजित किया जा सके और मंगोल आक्रमणों को विफल बनाया जा सके। उसने अपने प्रशासन को व्यापक आधार पर रखा और उसमें अनेक अधिकारियों की नियुक्तियाँ की। अतएव प्रशासन का व्यय बढ़ते ही उसका ध्यान आय के प्रमुख स्रोत की ओर जाना स्वाभाविक था।

उसने विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों को दी गई मिल्क, इनाम तथा वक्फ में दी गई भूमि छीन ली और उन्हें खालसा में मिला लिया। तदुपरान्त उसने कृषकों की विभिन्न श्रेणियों से ३ कर अर्थात् खिराज-ए-जज़िया, चराई तथा घरी (गृहकर) वसूल करने का आदेश दिया। उसने खूत व मुकद्दमों द्वारा कृषकों से खूती लेने पर प्रतिवन्ध लगा दिया और आदेश दिया कि कृषकों से भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कोई कर वसूल न किया जाय। उसने यह भी आदेश दिया कि खूत व मुकद्दमों से भी उपरोक्त तीन कर वसूल किए जायँ और उनकी भूमि भी आँकन के अन्तर्गत लाई जाय और उस पर पूरा भू-राजस्व वसूल किया जाय। इसी प्रकार उसने भू-राजस्व की दर कुल उत्पादन का १/२ भाग अर्थात् ५०% निर्धारित कर दिया। इस सम्वन्ध में उसका आदेश था कि बड़े या छोटे कृषक, सभी की भूमि नापी (मसाहत) जाय और प्रति विस्वा पर पैदावार का आधा भाग बिना किसी कमी के अदा करें। इसमें खूतों व बलाहारों किसी में कोई अन्तर न रक्खा गया। बरनी के अनुमार अलाउद्दीन खिल्जी ने **वा हुक्म मसाहत वा बफा-ए-विस्वा** के आधार पर भू-राजस्व एकत्र करने का आदेश दिया। बरनी का यह कथन तकनीकी शब्दों से भरा है और देखने में उसके गूढ़ अर्थ निकलते हैं किन्तु उसका तात्पर्य यह निकलता है कि प्रत्येक फसल में खेत को नापा जाय, प्रत्येक विस्वा को इकाई मानकर उसकी पैदावार का आँकन किया जाय और उसके बाद कुल वर्ग क्षेत्र को पैदावार से गुणा करने पर कुल पैदावार मालूम की जाय और उस कुल पैदावार का १/२ भाग प्रत्येक कृषक से बिना किसी भेद-भाव के भू-राजस्व के रूप में वसूल किया जाय।[४२]

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने भू-राजस्व की दर कुल पैदावार का १/२ भाग निर्धारित करने के उपरान्त यह आदेश दिया कि कृषकों से भू-राजस्व अनाज के रूप में लिया जाय। बरनी के अनुसार सुल्तान ने भू-राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों को आदेश दिया कि वे खिराज वसूल करने में इतनी कठोरता दिखाएँ कि कृषकों को अनाज खलिहान में ही बंजारों के हाथ विवश होकर बेचना पड़े। उसने यह भी लिखा है कि दोआब तथा उसके आस-पास के सौ कोस के प्रदेश में यह नियम लागू किया गया कि कारकून तथा अन्य अधिकारियों से यह लिखवा लिया जाता था कि वे कृषकों से अनाज खलिहान में ही दिलवा दिया करेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि भू-राजस्व अधिकारी भू-राजस्व नकद में माँगते थे अन्यथा कृषकों को अनाज बेचने पर बाध्य किया जाता। बरनी ने अन्यत्र स्पष्ट लिखा है कि खालसे के कस्बों तथा दोआब से खिराज नकद में न लेकर अनाज के रूप में वसूल किया जाता था और उस अनाज को दिल्ली शहर के खाद्यान्न भंडारों में पहुँचा दिया जाता था। एक अन्य स्थान पर बरनी ने पुनः लिखा है कि कोल, बरन, मेरठ, अमरोहा, अफगानपुर, काबीर अर्थात् दोआब के सभी प्रदेश खालसा में सम्मिलित कर लिए गए और सेना के वेतन के लिए सुरक्षित कर दिए गए।[४४] इससे ज्ञात होता है कि खालसा प्रदेश में भू-राजस्व नकद में वसूल किया जाता था। बरनी के कथन में विसंगतियाँ देखते हुए यह कहा जा

सकता है कि साधारणत: भू-राजस्व नकदी में भी वसूल किया जाता था, किन्तु खालसा प्रदेश के कुछ भागों से केवल अपने गल्ले को गोदामों को संकटकाल से निवटने के लिए तथा उन्हें भरने के लिए उसने भू-राजस्व को अनाज के रूप में वसूल करने के लिए प्रोत्साहन दिया।[४५] इस प्रकार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय भू-राजस्व नकद व अनाज दोनों ही रूप में लिया जाता था।

एक व्यवहारिक राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक होने के कारण सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने यह अनुभव किया होगा कि नवीन भू-राजस्व प्रणाली को सम्पूर्ण राज्य में लागू करना सम्भव नहीं होगा। अतएव उसने एक ऐसा क्षेत्र चुना जिसे कि वह दिल्ली से नियन्त्रित कर सकता था और जहाँ वह सुविधापूर्वक अपनी नवीन व्यवस्था को लागू कर सकता था। वरनी के अनुसार यह व्यवस्था थोड़े ही वर्षों में दिल्ली शहर के निकट के गाँवों, कस्वों, दोआव के मध्य सभी स्थानों में, व्याना से लेकर झायन तक, पालम से लेकर दीपालपुर तक, लाहौर से समाना और सुनाम तक, रेवाड़ी से नागौर तक, कड़े से कानूदी और अमरोहे से अफगनापुर तक, वदायूँ, खरक, कोल से लेकर कटेहर तक लागू हो गई।[४६] मोरलैंड के अनुसार सुदूर प्रांतों को छोड़कर यह व्यवस्था सम्पूर्ण राज्य में लागू की गई।[४७] किन्तु डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार उत्तर प्रदेश में सम्पूर्ण निचला दोआव, अवध, गोरखपुर, विहार, वंगाल, मालवा, पश्चिम पंजाव, गुजरात और सिंध में यह व्यवस्था लागू नहीं की गई। उनके अनुसार वंगाल पूर्णत: स्वतन्त्र था, मालवा व गुजरात पूर्णत: विजित नहीं किये जा सके थे, गोरखपुर व तराई प्रदेश पर केन्द्र का प्रभुत्व अभी तक स्थापित न हो सका था। यह कहना कठिन है कि अवध तथा उत्तर प्रदेश के मध्य एवं पूर्वी प्रदेश में यह व्यवस्था क्यों नहीं लागू की गई।[८]

अपने राजस्व सुधारों को लागू करने के लिए सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी को अपने राजस्व विभाग का पूर्ण संगठन करना पड़ा। इस विभाग में स्फूर्ति लाने के लिए उसने इस वात पर वल दिया कि दीवान के अधिकारी निष्ठापूर्वक व ईमानदारी से कार्य करें। इस विभाग का प्रमुख अधिकारी प्रारम्भ में वज़ीर ख्वाजा खातिर ही रहा किन्तु एक वर्ष उपरान्त उसने नुसरत खाँ जैसे सेनानायक को इस विभाग का कार्य सौंप दिया। थोड़े ही समय में नुसरत खाँ वहुत ही अलोकप्रिय हो गया और उसका स्थानान्तरण कड़ा को कर दिया गया। उसके वाद कुछ समय तक सैय्यद खान ने उस दिशा में कार्य किया, तदुपरान्त मलिक काफ़ूर ने वज़ीर व नाएव-ए-सुल्तान के पद पर रहकर उस विभाग की देख-रेख की। उसकी सहायता के लिए **नाएव-ए-वज़ीर** और **मुशरिफ़-ए-मुमालिक** नियुक्त किये गये। लगभग इसी समय **मुस्तौफी-ए-मुमालिक** अथवा हिसाव-किताव की देख-रेख करने वाले अधिकारी की भी नियुक्ति की गई। प्रशासन की अन्य इकाइयों अर्थात् **परगनों** में **मुतसर्रिफों** या **आमिलों**, **मुशरिफों**, **मुहस्सिलों**, **गुमाश्तों**, **सरहगों** और **नवीसन्दों** को नियुक्त किया गया।[४८] वरनी ने

लिखा है कि शरफ क़ई नायब वज़ीर ने मुशरिफों, आमिलों, दीवान-ए-वज़ारत के पदाधिकारियों, मुआक्तों तथा कर वसूल करने वालों से कर व सरकारी धन के बारे में इस प्रकार से पूछ-ताछ करनी प्रारम्भ की कि वे उसके कार्यालय को भू-राजस्व का पूरा हिसाब देने लगे। यदि किसी पटवारी की वही में एक भी जीतल भू-राजस्व वसूल करने वाले के जिम्मे निकलता था तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था और बन्दीगृह में डाल दिया जाता था। जो आमिल, नवीसन्दे (मुन्शी), मुतसर्रिफ तथा कारकून घूस लिया करते थे उन्हें पदच्युत कर दिया गया। जो भी कृषक अथवा ग्रामीण समाज के उच्च वर्ग के लोग खूत, मुकद्दम, चौधरी, दीवान के आदेशों का उल्लंघन करते थे या खिराज भुगतान करने में आना-कानी करते थे तो सरकारी सरहंग (चपरासी) रस्सी में बाँध कर मारा-पीटा करता था और उन्हें आज्ञाकारी बना देता था।[५०] मोरलैण्ड के अनुसार इतने विस्तृत प्रदेश में प्रशासन द्वारा कृषकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के कारण अनेक अधिकारियों की नियुक्तियाँ की गई, जिसमें भ्रष्टाचार व धन को जबरदस्ती वसूल किये जाने में वृद्धि और इसको रोकने के लिए सुल्तान अलाउद्दीन ने एक ओर तो इन कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी ताकि वे समृद्धशाली जीवन व्यतीत कर सकें और वे भ्रष्टाचार करने पर बाध्य न हो सकें। दूसरे उसने घूसखोरी तथा गबन को समाप्त करने के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की।[५१] यह देखने के लिए कि कितना भू-राजस्व एकत्र हुआ सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने आदेश दिये कि प्रत्येक पटवारी अपनी वही को जिसमें कि प्रत्येक भू-राजस्व वसूल करने वाले कर्मचारी को दिये गये धन का हिसाब लिखा रहता था इन कर्मचारियों के हिसाब से मिलाया जाय और यदि कर्मचारियों के हिसाब में तनिक भी गड़बड़ी पाई जाय तो उन्हें कठोर दण्ड देकर बन्दीगृह में डाल दिया जाय। बरनी ने लिखा है कि ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत कोई भी एक तन्के का गबन नहीं कर सका और न कोई किसी से घूस लेने का साहस कर सका। हजार व पाँच सौ तन्कों के गबन करने वाले मुतसर्रिफों तथा कर्मचारियों को कई वर्ष तक बन्दीगृह में रखकर उन्हें दरिद्र बना दिया गया। सुल्तान अलाउद्दीन के इन कठोर नियमों के कारण उस समय कोई भी राजकीय सेवा में भर्ती होना, मुतसर्रिफ के पद पर नियुक्त होना या भू-राजस्व वसूल करने वाला होना, बुखार से भी अधिक बुरा समझता था। राजस्व विभाग में मुंशी होना बुरा मानते थे। कोई भी व्यक्ति अपनी पुत्री का विवाह नवीसन्दों (मुन्शियों) से नहीं करता था क्योंकि उनकी आय निश्चित नहीं थी। मुतसर्रिफ का कार्य वे ही लोग स्वीकार करते थे जिन्हें कि अपने प्राणों से प्यार न था। अधिकतर अमिल तथा मुतसर्रिफ अपना जीवन बन्दीगृह में ही व्यतीत किया करते थे। इतनी व्यवस्था के बावजूद भी पूरा भू-राजस्व वसूल होना एक असम्भव बात थी। कृषकों पर कुछ न कुछ भू-राजस्व सदैव बकाया ही रह जाता था। उसका हिसाब-किताब रखने और उसे वसूल करने के लिए सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने वज़ारत विभाग में एक नई शाखा मुस्तकराज विभाग खोला जिसका कार्य बकाया रकम का हिसाब-किताब रखना और कृषकों से इस रकम को वसूल करना था।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की भू-राजस्व व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह था कि अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों का बोझ शक्तिहीन कृषकों पर न पड़े और खिराज के विपय में दोनों ही एक ही प्रकार के नियमों का पालन करें। कुछ इतिहासकारों ने अलाउद्दीन खिल्जी की भू-राजस्व नीति की सफलता पर सन्देह प्रकट किया है और कहा है कि वरनी का इस सम्बन्ध में अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण है। मोरलैण्ड के अनुसार वरनी के विवरण को यथावत स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि दिल्ली व उसके समीपवर्ती प्रदेशों में लगभग १२-१३ वर्षों तक मूल्य स्थिर रहे और इन वर्षों में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं प्रकट हुआ। वरनी का कहानी गढ़ने का कोई भी उद्देश्य नहीं था। सबसे महत्वपूर्ण वात तो यह है कि उसमें आर्थिक विषयों के विश्लेषण करने की क्षमता न थी। उसकी सफल भू-राजस्व-व्यवस्था के कारण वस्तुओं के भाव स्थिर रहे, दिल्ली व उसके निकटवर्ती प्रदेशों में अनाज की पूर्ति होती रही, विशाल सेना का भरण-पोषण होता रहा, मंगोल आक्रमणों को विफल वना दिया गया, अनविजित प्रदेशों को विजित किया गया, साम्राज्य की सीमाओं का पश्चिम व दक्षिण की ओर विस्तार हुआ, व्यापक प्रशासनिक ढाँचे की स्थापना हुई और कुछ समय के लिए कृपकों का ग्रामीण समुदाय के अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा शोषण रुक गया और केन्द्रीय राज-कोष में देश के विभिन्न भागों से कर व करद दोनों ही यथावत पहुँचने लगे जिसके कारण प्रशासन की वित्तीय कठिनाइयाँ दूर हो गयीं। किन्तु यह प्रश्न उठता है क्या वास्तव में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की नवीन भू-राजस्व व्यवस्था से कृपकों का शोषण वन्द हो गया? यह सत्य है कि नवीन नियमों के अन्तर्गत ग्रामीण समाज को अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों, खूत व मुकद्दमों को भी सभी कर देने पड़ते थे और कृपकों को ही केवल गाँव के सभी करों व उपकरों का भार नहीं ग्रहण करना पड़ता था, किन्तु जैसा कि इरफान हवीव ने कहा है कि इसका तात्पर्य यह हुआ कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने प्रत्येक कृपक से भू-राजस्व की माँग की तो क्या व्यवहारिक रूप से यह सम्भव था, इसमें सन्देह है। यदि मान भी लिया जाय कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने ऐसा किया तो और प्रत्येक कृपक अपनी पैदावार के आधे भाग के मूल्य को मुद्रा में भू-राजस्व का भुगतान करता रहा तो निःसन्देह उसके लिए लगान की दर वहुत ही अधिक एवं कष्टदायक रही होगी। इस प्रकार की व्यवस्था से केवल ग्रामीण समुदाय के अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा कृपकों का शोषण तो रुक गया होगा और राज्य को भू-राजस्व की पूरी रकम तो मिल गई होगी। किन्तु इसमें सन्देह है कि कृपकों के हितों की किसी प्रकार सुरक्षा हुई होगी। वास्तव में अलाउद्दीन खिल्जी की भू-राजस्व व्यवस्था का वास्तविक रूप अफीफ के इस कथन से सामने आता है जहाँ कि उसने कहा कि चाहे कृषकों को इतनी वुरी तरह से उत्पीड़ित किया जाता रहा, विशेप-कर उसने एक वर्ष का भू-राजस्व नकदी में अग्रिम धनराशि के रूप में माँग कर, किन्तु उस समय सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में कोई भी व्यक्ति इस अत्याचार के विरुद्ध उफ और शोर भी नहीं कर सकता था।[५२] कृषकों का शोपण

इससे पूर्व भी होता था, किन्तु इस काल में उनका शोषण ग्रामीण समुदाय के अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा न होकर प्रशासन के द्वारा होता रहा।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के भू-राजस्व व्यवस्था सम्बन्धी नियम उसी के साथ समाप्त हो गए। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी ने न तो कोई राजस्व नीति बनाई और न ही अपने पिता द्वारा लागू नियमों को बनाए रखने का प्रयास किया। फलतः वे सभी नियम बेकार हो गए। भू-राजस्व की दर कम हो गई। **बजारत** विभाग का कार्य ठप्प हो गया। पुनः लोगों को वृत्तियों के अनुदान में भूमि दी जाने लगी और राजधानी में सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी की भोग-विलासिता के कारण सम्पूर्ण प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया। अन्त में सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के कृपापात्र खुसरो खाँ ने उसका वध कर दिया और स्वयं वह गद्दी पर बैठ गया। शीघ्र ही दीपालपुर के मुक्ती गाज़ी मलिक ने अन्य मुक्तियों की सहायता से उसे पदच्युत कर दिया और स्वयं सिंहासनारूढ़ हो गया।

गाज़ी मलिक ज़ो कि ग्यासुद्दीन तुग़लक की उपाधि से गद्दी पर बैठा (१३२०-१३२५) ने अपने शासनकाल में तत्कालीन भू-राजस्व व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। उसके समय में भू-राजस्व की दर कितनी थी, यह कहना कठिन है। सम्भवतः वह कुल पैदावार का १/४ या १/५ भाग थी। उसने भूमि को नापने के स्थान पर बटाई प्रणाली पर विशेष बल दिया। उसने ग्रामीण समुदाय के अधिकारयुक्त व्यक्तियों को जिनको कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय कृषकों के स्तर पर ला दिया गया था, पुराने अधिकार देकर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। उसने **खूत** व **मुकद्दमों** को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किए। उसने अलाउद्दीन खिल्जी के समय प्रचलित नियम, कि **खूत** व **मुकद्दम** खिराज़ के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपकर (किस्मत) कृषकों से वसूल नहीं करेंगे, को ज्यों का त्यों रहने दिया, किन्तु उन्हें खिराज़ व मवेशियों पर दिये जाने वाले करों से मुक्त कर दिया। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि भू-राजस्व एकत्र करने के लिए उनसे कार्य लिया जाय और उन्हें इस प्रकार की छूट देकर उनके कार्यों के लिए उन्हें धन दिया जाय। उसने **मुक्तों** व **वलियों** को आदेश दिया कि वे इस बात की पूछताछ करते रहें कि **खूत** व **मुकद्दम** खिराज़ के अतिरिक्त कृषकों से कोई अन्य कर तो नहीं वसूल करते हैं।[५३] सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने **मुक्तों** व **वलियों** को यह भी आदेश दिया कि वे हिन्दू किसानों से इस प्रकार का व्यवहार करें कि वे लोग धन की अधिकता से अन्धे न हो जाँय और विद्रोही या षड़यन्त्रकारी न बन जाँय और न ही उनके साथ ऐसा व्यवहार ही किया जाय कि वे दरिद्रता के कारण कृषि करना छोड़ दें। जहाँ तक सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक की कृषि नीति का प्रश्न है ग्रामीण समुदाय के अधिकार, कुछ व्यक्तियों, **खूत**, **मुकद्दमों** व **चौधरियों** की आर्थिक स्थिति पहले की भाँति हो गई, किन्तु उन्हें कृषकों का शोषण न करने दिया गया।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने गद्दी पर बैठने के बाद भूमि की नाप के द्वारा भू-राजस्व आँकन की पद्धति को समाप्त करके बटाई प्रणाली लागू की। इस सम्बन्ध में बरनी ने लिखा है कि उसने अपने राज्य के प्रदेशों व पैदावार के आधार पर खिराज़ निश्चित किया तथा उसने नये-नये बढ़े हुए करों तथा पैदावार के होने व न होने, दोनों की ही दशा में बटाई के कुप्रभाव से उसने अपने प्रान्तों व कृषकों को बचा लिया।[५४] इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषकों का उत्तर-दायित्व बोये हुए खेत के ऊपर निर्भर करता था। यदि उसकी फसल खराब भी हो जाय तो सैद्धान्तिक रूप में उसे राज्य को पूरा लगान देना पड़ता था। किन्तु व्यवहार में यह सम्भव न था। चूँकि लगान की दर इतनी अधिक थी कि कृषक उसका भुगतान फसल खराब होने की स्थिति में कर ही नहीं सकता था। अतएव बरनी का कथन, कि बटाई प्रणाली को लागू करके सुल्तान ग्यासुद्दीन तुगलक ने फसल खराब होने पर कृषकों को बचा लिया, संदिग्ध प्रतीत होता है। फसल खराब होने पर सुल्तान द्वारा भू-राजस्व में छूट देने की बात बरनी नहीं लिखता है। अतः फसल खराब होने की स्थिति में भू-राजस्व का पूरा भार कृषकों पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने मुकद्दमों या प्रान्तीय शासकों की प्रतिष्ठा और उनके उच्चकोटि के व्यवहार पर विशेष बल दिया। जब वह सिंहासन पर बैठा तो उस समय मनमानी ढंग से भू-राजस्व को वसूल किया जा रहा था। **दीवान-ए-वज़ारत** अथवा भू-राजस्व विभाग में (साइयों) चुगलखोर (मुवफ्फिकरों) अधिक कर बढ़ा देने वाले मुक्ताओं तथा ठेके पर कर अदा करने वाले सदैव एकत्र रहते थे। ग्यासुद्दीन ने आदेश दिया कि इन लोगों को **दीवान-ए-वज़ारत** के निकट फटकने न दिया जाय। उसने अपने मुक्ताओं का चयन उमरावर्ग में से किया। उसने आदेश दिया कि **दीवान-ए-वज़ारत** को लेखा परीक्षण अधिकारी उनके साथ भली-भाँति व्यवहार करें। उसने **मुक्ताओं** से साफ कह दिया कि उनकी प्रतिष्ठा एवं पद दोनों ही उनके व्यवहार पर ही निर्भर करेगा। सुल्तान ने यह भी आदेश दिया कि **मुवफ्फिकरों** अथवा अत्यधिक कर बढ़ा देने वालों अथवा चुगलखोरों की सूचना पर **अक्ताओं** व **विलायतों** में १/१० अथवा १/११ से अधिक भू-राजस्व न बढ़ाया जाय। उसने आदेश दिया कि वे इस बात का प्रयत्न करते रहें कि प्रति वर्ष कृषि की उन्नति होती रहे। खिराज़ की दर में थोड़ी ही वृद्धि की जाय और ऐसा न करने दे कि खिराज़ की दर एकदम ऐसी बढ़ा दी जाय कि कृषि ही नष्ट हो जाय। सुल्तान ने आदेश दिया कि विलायतों में खिराज़ इस प्रकार से वसूल किया जाय कि कृषकों को कृषि के लिए प्रोत्साहन मिलता रहे। उसने **अक्तादारों** व **मुक्ताओं** की सुविधा के लिए उन्हें परामर्श दिया कि वे ऐसा कार्य न करें जिससे उन्हें अपमानित होना पड़े या उन्हें बराबर **दीवान** में आना पड़े। उसने उनके लिए आदेश दिया कि वे खिराज़ में से अपने लिए १/१० या १/११ अथवा १/१० या १/१५ अर्थात् १·२% या १% तक अपने वेतन के

अतिरिक्त पारिश्रमिक अथवा हुकूक के रूप में रख सकते है। इस प्रकार से सुल्तान ग्यासुद्दीन तुगलक ने अक्तादारों तथा मुक्ताओं के लिए खिराज़ में से आहरण की सीमा निर्धारित कर दी। यदि वे खिराज़ में से इससे अधिक धन अपने पास रखते थे तो उन्हें दण्ड दिया जाता था।

मोरलैण्ड के अनुसार प्रत्येक **विलायत** अथवा प्रान्त में एक अधिकारी **दीवान-ए-वज़ारत** विभाग की ओर से लेखा परीक्षण किया करता था। लेखा परीक्षण निरन्तर न होकर समय-समय पर हुआ करता था। उसके बाद उस अधिकारी को **दीवान-ए-वज़ारत** में लेखा परीक्षण तथा कर की वकाया रकम की जाँच-पड़ताल के लिए वापस बुला लिया जाता था। इस प्रकार लेखा परीक्षक कर की वकाया रकम को कठोरता-पूर्वक वसूल किया करते थे। बरनी के अनुसार सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक के समय यद्यपि **अक्तादारों** व **मुक्ताओं** से कर की वकाया रकम को वसूल करने का नियम था इसीलिए वह लिखता है कि "उन्हें वह अन्य आमिलों के समान **दीवान** में उपस्थित होने पर विवश न करता था और न ही अन्य आमिलों के समान उनसे कठोरता से तथा उन्हें अपमानित करके उनसे कर वसूल करने की अनुमति ही देता था।"[५५] किन्तु सुल्तान ग्यासुद्दीन के शासनकाल में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है जहाँ कि किसी अक्तादार या मुक्ता को कर की बकाया रक़म के अपहरण अथवा अत्यधिक आहरण के लिए दण्डित किया गया हो।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि ग्यासुद्दीन तुग़लक के शासनकाल में पैदावार की आंकन खेत को नाप कर बटाई के अनुसार की जाती थी। अतएव इसका तात्पर्य यह हुआ कि आंकन मौसम व पैदावार दोनों के ऊपर निर्भर करता होगा। ऐसी स्थिति में भू-राजस्व विभाग लगान की राशि में कोई भी परिवर्तन उस समय नहीं कर सकता था जब तक कि वह पैदावार में अन्य अधिकारियों को प्राप्त होने वाले हिस्से में कोई परिवर्तन न करें। इन छोटे-छोटे परिवर्तनों के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु मोरलैण्ड का कहना है कि जब मुक्ताओं को अतिरिक्त भू-राजस्व के रूप में निश्चित धनराशि का भुगतान करना पड़ता होगा तो भू-राजस्व विभाग तत्काल उस धनराशि को शीघ्र से शीघ्र बढ़ा दिया करता होगा। ऐसी स्थिति में मुक्ता किसी न किसी तरह कर का भार कृषकों पर डाल देता था, जिससे कि कृषि की प्रगति रुक जाती थी। इसी कारण सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने भू-राजस्व की दर में केवल १०% वृद्धि करने की अनुमति दी और मुक्ताओं को आदेश दिया कि वे इससे अधिक खिराज में से अपना हिस्सा न लें।

कुछ भी हो, सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक का मुख्य उद्देश्य कृषकों के शोषण को रोकना तथा ग्रामीण समुदाय के अधिकारयुक्त व्यक्तियों, **खूत**, **मुकद्दम**, **चौधरियों** तथा **अक्तादारों** और **मुक्ताओं** के हितों की रक्षा करना था। उसके विचार में कृषक कृषि को बनाए रक्खे और वे हर प्रकार के आर्थिक दबाव से मुक्त रहे। यह बातें एक

अच्छे प्रशासन पर निर्भर करती थी। इसके अतिरिक्त तत्कालीन विचारधारा भी यही थी कि सुल्तान द्वारा अत्यधिक खिराज वसूल कर लेने एवं खिराज में वृद्धि कर देने से विलायतें नष्ट हो जाती हैं और सर्वदा खराव रहती हैं। अत्याचारी **मुक्तों** तथा **आमिलों** के अत्याचार के कारण कृषि का विनाश हो जाता है।[५६] यही विचारधारा वलवन के समय भी थी। अतएव उसकी भू-राजस्व नीति का मुख्य केन्द्र-विन्दु कृषकों एवं राज्य के हितों की रक्षा करना था।

दुर्भाग्यवश उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी सुल्तान मुहम्मद तुग़लक को बदली हुई परिस्थितियों में अपने पिता की नीति से कुछ भिन्न नीति का अनुसरण करना पड़ा। उसके समय में जिस द्रुतगति से साम्राज्य की सीमा का विस्तार विभिन्न राज्यों के अधिनहन के साथ हुआ था, इससे पूर्व किसी काल में नहीं हुआ था। वरनी के अनुसार उसने गुजरात, मालवा, मरहट, तिलंग, कम्पील, द्वारसमुद्र, मावार, लखनौती, सतगाँव, सुनार गाँव और त्रिहुत को अपने साम्राज्य में मिला लिया। यह सभी प्रान्त दिल्ली सल्तनत के प्रशासन के अन्तर्गत आ गए। इतने विशाल साम्राज्य तो तत्कालीन परिस्थितियों में समान भू-राजस्व नीति का अनुसरण करना अथवा भू-राजस्व प्रणाली का लागू करना दुष्कर था। इस विशाल देश की भौगोलिक रीति-रिवाजों एवं परिपाटियों की विविधताओं तथा विभिन्न प्रदेशों में चिरकाल से चली आई भू-राजस्व के पुराने नियमों को देखते हुए, सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने अपने प्रशासन की सुविधा के हेतु भू-राजस्व नीतियें, मोरलैण्ड के अनुसार दो भागों (१) प्रान्तों में लागू की गई भू-राजस्व नीति (२) दोआव में लागू की गई भू-राजस्व नीति, में वाँटा। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रान्तों को भी दो भागों में विभाजित किया गया। वे प्रान्त जहाँ कि दोआव की भाँति भू-राजस्व प्रणाली लागू करके भू-राजस्व वसूल किया गया तथा वे प्रान्त जो कि ठेके पर उन उम्मीदवारों को दे दिए गये, जिन्होंने कि केन्द्र द्वारा उस प्रान्त की कुल जमा निर्धारित करके उनसे या तो उतना ही धन अग्रिम रूप में ले लिया या उन उम्मीदवारों ने वायदा किया कि वे केन्द्र द्वारा निर्धारित धनराशि को उक्त प्रान्तों से वसूल करके देंगे। पहली श्रेणी में आने वाले प्रान्तों के नाम यद्यपि वरनी ने नहीं दिए हैं किन्तु उसकी **तारीख-ए-फिरोजशाही** के निम्नलिखित उद्धरणों से उपरोक्त तथ्य की पुष्टि होती है। उसने लिखा है कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के सिंहासनारोहण के प्रारम्भिक कुछ वर्षों में देहली, गुजरात, मालवा, देवगिरि, तिलंग, कम्पील, द्वारसमुद्र, मावार, त्रिहुत, लखनौती, सतगाँव तथा सुनारगाँव का खिराज (भू-राजस्व) इस प्रकार सुव्यवस्थित हो गया कि उपरोक्त प्रदेशों तथा प्रान्तों का हिसाव-किताव दूरी के वावजूद देहली के **दीवान-ए-वज़ारत** में इस प्रकार जाँचा जाता था जिस प्रकार कि दोआव के कस्बों तथा ग्रामों का लेखा प्राप्त होने पर, जिस प्रकार दिल्ली के आस-पास की अक्ता के कारकूनों तथा **मुतसर्रिफों** से शेष धन, अक्ता से वचा हुआ शेष धन वसूल किया जाता था और कारकूनों से एक-एक दाँम दिरहम का हिसाब लिया जाता था, उसी प्रकार से विभिन्न प्रदेशों व प्रान्तों के **नायबों, वालियों,**

मुत्सर्रिफों, **कारकूनों** से हिसाब लिया जाता था और उनसे बकाया रकम वसूल की जाती थी। दूर के प्रदेशों तथा प्रान्तों के दूर होने के कारण उन्हें छोड़ नहीं दिया जाता था। जिस स्थान पर विजय प्राप्त होती थी वहाँ **वली, नायब** तथा आमिल नियुक्त कर दिए जाते थे और वहाँ दोआब के कस्बों तथा ग्रामों के समान **कारकूनों** तथा **मुत्सर्रिफों** से कठोरतापूर्वक धन वसूल किया जाता था।[५७] बरनी ने अन्यत्र लिखा है कि प्रतिदिन सुल्तान १००-२०० नए आदेश विभिन्न प्रदेशों व प्रान्तों के **वलियों**, **मुक्तों** तथा **मुत्सर्रिफों** को कार्यान्वित करने के लिए भेजा करता था।[५८] यद्यपि बरनी के कथन से पता चलता है कि दोआब जैसी भू-राजस्व प्रणाली सम्पूर्ण साम्राज्य में लागू कर दी गई थी। किन्तु यह उसके लिखने का ढंग था। वास्तव में ऐसे थोड़े ही प्रान्त रहे होंगे जहाँ कि उसने दोआब जैसी भू-राजस्व व्यवस्था स्थापित की हो। दूसरी श्रेणी के प्रान्तों के सम्बन्ध में दो उदाहरण मिलते हैं जहाँ कि उनसे उन प्रान्तों को भू-राजस्व वसूल करने के लिए ठेके पर दे दिया। बरनी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने निज़ाम मँई जो कि भंगड़ी, भंगी तथा खुराफाती था, को कड़े की अक्ता कई लाख तन्के पर ठेके में दे दी। वहाँ पहुँचकर निज़ाम मँई ने बहुत कुछ हाथ-पाँव मारे किन्तु जो धन उसने अदा करने के लिये लिखकर दिया था उसका दसवाँ भाग भी वह वहाँ के कृषकों से वसूल न कर सका। उसने कुछ दासों को एकत्र करके व पायकों को अपना मित्र बना कर विद्रोह कर दिया। किन्तु इससे पूर्व कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक उसके विद्रोह को दबाने के लिए दिल्ली से कोई सेना भेजता, अवध के आईन-उल-मुल्क व उसके भाइयों ने उस पर आक्रमण कर उसे मौत के घाट उतार दिया।[५९] एक दूसरा उदाहरण शिहाब सुल्तानी का है। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने उसे नुसरत खाँ की उपाधि दी और तीन करोड़ तन्के ठेके पर बीदर की अक्ता प्रदान की। नुसरत खाँ ने उसे यह धन अदा करने का वचन लिख कर दिया। किन्तु बीदर पहुँचने पर नुसरत खाँ ठेके की रकम का तीन चौथाई भाग भी जमा न कर सका। व्यवसाय में बक्काल होते हुए भी वह अपना वायदा पूरा नहीं कर सका। अन्ततोगत्वा उसने विद्रोह कर दिया। सुल्तान ने तत्काल देवगिर से कुतुलुग खान को उसका विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा। कुतुलुग खाँ ने बीदर पहुँच कर उसका विद्रोह दबा दिया और उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया।[६०] मोरलैण्ड के अनुसार जब सुल्तान मुहम्मद तुग़लक का केन्द्रीय प्रशासन छिन्न-भिन्न हो गया तो उसने केवल इन दो प्रान्तों को ठेके पर दिया, अन्यत्र जो व्यवस्था दोआब के कस्बों व गाँवों में थी वह चलती रही।

बरनी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने दोआब में खिराज की दर दस व बीस गुना बढ़ा दी। इस प्रकार की वृद्धि अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि बरनी ने **तारीख-ए-फिरोजशाही** में कई स्थानों पर इस प्रकार के शब्दों जैसे कि दस गुना, बीस गुना, सौगुना, चौगुना, हजारगुना का प्रयोग किया है।[६१] किन्तु निःसन्देह उसने कर की दर में वृद्धि अवश्य की। बरनी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने

कृषकों पर अतिरिक्त नवीन उपकर (अव्वाव) लगाये और इन अव्वावों को इतनी कठोरतापूर्वक वसूल किया गया कि निःसहायक कृषकों की कमर टूट गई।[६२] यहिया के अनुसार उसने तीन प्रमुख करों का कठोरतापूर्वक आंकन करवाया और उन्हें वसूल किया। उसके अनुसार सुल्तान ने निश्चित किया कि विलायतों (प्रान्तों) का खिराज दस गुना तथा वीस गुना लेना चाहिए। उसने घरी व चराई भी लागू की। इस कारण मवेशियों को दाग़ लगाया गया। कृषकों के घरों की गणना की गई। खेतों की नाप कराई गई। उसके अनुसार आदेश दिये गये कि खिराज का निर्धारण वस्तुओं के भाव को ध्यान में रखकर किया जाय। इसी कारण लोग अपने मवेशियों को छोड़कर आवादी से जंगलों में घुस गये।[६३] यहिया के इस कथन से ज्ञात होता है कि लगान का आँकन करते समय नाप किये गये खेत की वास्तविक पैदावार को ध्यान में रखकर एक मानक पैदावार को इसलिए ध्यान में रखा गया कि लगान का कुल आँकन अनाज के रूप में हो सके। जव इसी अनाज को नकदी में परिर्वातित किया जाता था तो वास्तविक मूल्य को ध्यान में रखकर राज्य की ओर से अनुमानित मूल्य को ध्यान में रक्खा जाता था। परिणामस्वरूप उससे लगान अत्यधिक बढ़ जाता था। क्योंकि राज्य के आदेशानुसार अनुमानित पैदावार व मूल्य वास्तव में अधिकांश स्थानों की अपेक्षा सम्भवतः अत्यधिक ऊँचे थे।[६४] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की इन कार्यवाहियों से जो परिणाम हुआ वह वरनी के शब्दों में इस प्रकार से है। वरनी ने लिखा है कि "धनी कृषक, जिनके पास धन सम्पत्ति थी, विद्रोही हो गये। विलायतें (प्रान्तों) का विनाश हो गया। कृषि पूर्णतया नष्ट हो गई। दूर-दूर की विलायतों (प्रान्तों) के कृषकों को, दोआव के कृषकों को विनाश के जव समाचार प्राप्त हुए तो उन्हें भी यह भय हुआ कि कहीं उनसे भी इसी प्रकार का व्यवहार न किया जाय जो दोआव वालों के साथ किया गया है। इस भय से उन्होंने विद्रोह कर दिया और वे जंगलों में घुस गये।"[६५] वहराम ऐवा का विद्रोह दवाने के वाद जव सुल्तान मुहम्मद तुग़लक मुल्तान से दिल्ली वापस लौटा तो दो वर्ष (१३३२-३४ ई०) तक वह दिल्ली में ही रहा। इन दो वर्षों में दोआव प्रदेश वकाया धन की अधिकता और अव्वाव (लगान के अतिरिक्त अन्य कर) की ज्यादती के कारण नष्ट हो गया था। हिन्दू अनाज के खलिहानों को जला डालते थे और अपने मवेशियों को घर से वाहर निकाल देते थे। सुल्तान ने शिकदारों और फौजदारों को उन लोगों का विनाश करने व ध्वस्त करने का आदेश दे दिया। कुछ खूत तथा मुकद्दम मार डाले गये, कुछ अन्धे कर दिये गये और शेष ने गुट वनाकर जंगलों में शरण ले ली। इस प्रकार दोआव नष्ट होता रहा। उन्हीं दिनों सुल्तान शिकार खेलने के लिए वरन (वुलन्द शहर) की ओर गया। उसने आदेश दिया कि वरन का समस्त प्रदेश विध्वंस तथा नष्ट कर दिया जाय और हिन्दुओं के कटे हुए सिरों को वरन के दुर्ग की अटारियों पर लटका दिया जाय।"[६६] उन्हीं दिनों सुल्तान ने कन्नौज व डलमऊ पर चढ़ाई की और उन्हें नष्ट कर दिया। जो कोई भी पकड़ जाता था उसकी हत्या कर दी जाती थी। वहुत से लोग भाग गये और जंगलों में घुस गये। किन्तु जंगलों को

भी घेर लिया गया। जो कोई भी जंगल में मिल जाता था। उसकी हत्या कर दी जाती थी। इस प्रकार से उसने कन्नौज से डलमऊ तक का प्रदेश विध्वंस कर डाला।[६७] बरनी के विवरण से मालूम होता है कि सम्पूर्ण दोआब ग्रामीण समुदाय के अधिकार युक्त खूत व मुकद्दम व्यापक रूप से विद्रोह करते रहे। इस विद्रोह को दबाने के बाद भी वह ज्यों का त्यों कई वर्षों तक चलता रहा। इब्नबतूता ने १३४२ ई० के लगभग कोल के समीपवर्ती प्रदेशों को विद्रोहियों के हाथों में देखा।[६८] इससे ज्ञात होता है कि यह विद्रोह गम्भीर था। बरनी के अनुसार इस विद्रोह के दूरगामी परिणाम हुए। दोआब में कृषि कम हो गई। वहाँ के कृषक बर्बाद हो गये। वहाँ से अनाज ले जाने वाले व्यापारियों की संख्या कम हो गई और पूर्वी दोआब की अक्ताओं से अनाज न पहुँचने के कारण दिल्ली के आस-पास एवं दोआब में घोर अकाल पड़ गया। अनाज का भाव बढ़ गया। कई वर्षों से वर्षा न होने के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया और यह दुर्भिक्ष कई वर्षों तक चलता रहा। कई हज़ार व्यक्ति इस अकाल से मर गये। प्रजा परेशान हो गई। अनेक व्यक्तियों के घर बार नष्ट हो गये।[६९]

दोआब में इस प्रकार की स्थिति भू-राजस्व की दर में वृद्धि तथा अन्य उपकरों अथवा अव्वाबों के कृषकों से वसूल करने के कारण हुई। बरनी के अनुसार अत्यधिक करों के दबाव के कारण कृषि चौपट हो गई और कृषि को नष्ट होने के कारण उत्पादन कम हो गया और प्रशासन को भू-राजस्व कम प्राप्त हुआ। वास्तव में सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने भू-राजस्व की दर उस समय बढ़ाई तथा गृह कर व मवेशी कर कठोरता-पूर्वक ऐसे समय में वसूल करना प्रारम्भ किया जब कि दोआब में अकाल पड़ा हुआ था। उसकी गलत नीति के कारण ही दोआब में बहुत ही गम्भीर विद्रोह हुआ। किन्तु अपनी गलत नीति का परिणाम देखते हुए उसने कृषि की उन्नति करने के लिए एक क्रमिक नीति अपनाकर अपने चरित्र में विरोधाभास का परिचय भी दिया।

बरनी ने लिखा है कि जब सुल्तान मुहम्मद तुग़लक रुग्णावस्था में देवगिर से दिल्ली लौट रहा था तो वह कुछ समय के लिए मालवा में भी रुका। उस समय वहाँ अकाल पड़ा हुआ था, डाक का प्रबन्ध नष्ट हो चुका था। मार्ग में सभी प्रान्तों एवं क़स्बों के लोग कष्ट में थे। वह किसी तरह से दिल्ली पहुँचा। वहाँ भी पहले जैसी रौनक का हज़ारवाँ भाग भी शेष न रहा। वहाँ भी घोर अकाल पड़ा हुआ था। यह सब देखकर सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने कृषि की व्यवस्था करने और कृषकों एवं प्रजा को पुनः आबाद करने का प्रयास किया। उसने कृषकों को सोन्धर अथवा ऋण दिया ताकि वे कुएँ खोद सकें व कृषि को प्रोत्साहन दे सकें।[७०] बरनी के अनुसार "स्वर्गद्वारी से लौटने के पश्चात् दिल्ली में अनेक वर्षों तक रहा और उसका ध्यान अन्य किसी समस्या की ओर न जाकर केवल कृषि की उन्नति करने तथा लोगों को आबाद करने में ही लगा रहा। वह कृषि की उन्नति के लिए नियम बनाया करता था। उस विषय में उसकी समझ में जो कुछ भी आता था वह लिख लेता था और उसे नियम या उसलूब

कहा जाता था। यदि उसके ज़सलूबों का पालन होता तो कृषि की आवश्यक उन्नति होती, खेती की प्रगति से संसार मालामाल हो जाता, खज़ाना भर जाता, सेना इतनी बड़ी संख्या में एकत्र हो जाती कि उसकी अधिकता से समस्त संसार पर विजय प्राप्त हो जाती।"

कृषि की उन्नति के लिए एक **दीवान** नियुक्त किया गया। इस **दीवान** का नाम **दीवान-ए-कोही** रक्खा गया। उसके लिए पदाधिकारी नियुक्त हुए। ३० कोस × ३० कोस वर्ग भूमि अधिकारियों को इस शर्त पर दी जाती थी कि उसमें एक बालिश्त भूमि भी बिना कृषि के नहीं रहेगी। जो एक बार बो दिया जाय उसमें परिवर्तन होता रहे। उदाहरणार्थ, जौ के स्थान पर गेहूँ बोया जाय, गेहूँ के स्थान पर गन्ना, गन्ने के स्थान पर अंगूर तथा हरी तरकारियाँ बोई जायँ। उस निर्धारित भूमि पर लगभग १०० शिकदार नियुक्त किये गये। लोभी, दरिद्र तथा मूर्ख लोगों ने तीन लाख बीघा ऊसर ज़मीन यह वचन देकर कृषि के लिए प्राप्त की कि ३ वर्ष के उपरान्त वे इस भूमि से ३ हज़ार सवार देंगे। वे इस विषय में अपना वचन लिख कर देते थे। इन लोभी तथा मूर्ख लोगों को, जो कि ऊसर भूमि पर कृषि करने के लिए तैयार हो जाते, थे जीन सहित घोड़े, सुनहरी कबाएँ, पेटियाँ तथा नकद धन भी मिलता था। जो कुछ सम्पत्ति, चाहे उन्हें इनाम के रूप में, चाहे दान के रूप में, चाहे सोन्धर के रूप में, जिसमें प्रत्येक तीन लाख तन्के पर पचास हज़ार तन्के नकद प्राप्त होते थे, उन्हें दी जाती थी। उसे वे अपनी कमाई हुई धन-सम्पत्ति समझ कर ले जाते थे और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर व्यय करते थे। चूंकि ऊसर भूमि पर जो कृषि-योग्य न थी किसी प्रकार की कृषि न हो सकती थी अतः वे दण्ड की प्रतीक्षा किया करते थे। दो वर्ष में लगभग ७० लाख तन्के उनको सोन्धर के रूप में प्रदान किये गये जिन्होंने ऊसर भूमि पर कृषि करने का दायित्व ले लिया था। तीन वर्ष के मध्य वे लोग उस भूमि का सौवें अथवा हज़ारवें भाग पर भी कृषि न कर सके, जिसके विषय में वे वचनबद्ध थे। यदि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक थट्टा के युद्ध से जीवित लौट आता तो उन लोगों में से जिन्होंने कृषि करने का दायित्व लिया था तथा सोन्धर लिया था, उनमें से किसी को भी जीवित न छोड़ता।[७१] इस प्रकार से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की कृषि को विस्तार करने से सम्बन्धित यह योजना भी विफल सिद्ध हुई।

बरनी के अनुसार तीन वर्ष में सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने ७० लाख तन्के सोंधर के रूप में कृषकों को दिये या उन लोगों को दिये जिन्होंने कि ऊसर भूमि पर खेती करने और वर्ष भर विभिन्न प्रकार की फसलें निरन्तर उगाने का वायदा किया था। अफ़ीफ के अनुसार उसने ३ करोड़ तन्का सोन्धर में लोगों को दिया था जो कि फिरोज़-शाह तुग़लक के गद्दी पर बैठने के बाद उनसे वापस न लेकर उसे माफ कर दिया।[७२] बरनी द्वारा दिये गये विवरण से प्रतीत होता है कि इस काल में दोआब व दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण न केवल गाँव व कस्बों की खेती नष्ट हो,

गई वरन् सम्पूर्ण क्षेत्र निर्जन हो गया। किन्तु सुल्तान मुहम्मद तुग़लक व प्रशासन की गलतियों को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कृषकों के इस प्रकार भाग जाने के लिए प्रशासन ही उत्तरदायी था। दूसरे प्रशासन में **दीवान-ए-कोही** की नियुक्ति करके सुल्तान ने कृषि में कई फसलें प्रति वर्ष उगाने का जो नवीन प्रयोग जारी किया, उससे विदित होता है कि वास्तव में सुल्तान कृषि के विस्तार करने में बड़ी आस्था रखता था और प्रत्येक मूल्य पर उसे बढ़ाना चाहता था, किन्तु प्रशासनिक कमजोरियों के कारण उसे इस प्रयोग में तनिक भी सफलता न मिल सकी। किन्तु इस समय से वर्ष में कई बार खेत में तरह-तरह की फसलें उगाने का उसका प्रयोग तत्कालीन ग्रामीण नीति का महत्वपूर्ण अंग बन गया। इसी प्रयोग को उसके उत्तराधिकारी सुल्तान फिरोज़ तुग़लक ने आगे बढ़ाया।

संक्षेप में सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने ठेके पर प्रान्त देकर तथा दोआब में खूत व **मुकद्दमों** पर भू-राजस्व व अन्य अब्वाबों (उपकरों) का दबाव डाल कर केन्द्रीय कोष को जिस प्रकार भरने की चेष्टा की उसके परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए। यह बात स्पष्ट हो गई कि कोई भी प्रशासन इस प्रकार से मनमानी ढंग से कृषकों का शोषण कुछ ही सीमा तक कर सकता है और उससे अधिक करने पर उसे हर प्रकार के जोखिम को उठाना पड़ सकता है। निःसन्देह सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की भू-राजस्व नीति निष्फल हुई। किन्तु उसमें कई महत्वपूर्ण तत्व थे, प्रथम दुर्भिक्ष के समय ग्रामीण जनता को सोन्धर अथवा तकावी या राज्य की ओर से ऋण दिया जाना, दूसरे, राज्य द्वारा कृषि के विस्तार में रुचि लेना, तीसरे खेती में बारम्बार वर्ष भर में नई फसलें क्रमानुसार उगाने का प्रयोग करना तथा अधिक से अधिक कृषि उत्पादन की ओर ध्यान देना। प्रशासन यह चाहता था कि कृषक कम मूल्यों वाले अनाज को न उगाकर अधिक मूल्यों वाली फसलें जैसे कि गन्ना व गेहूँ की फसलें उगाये, जिससे कि राज्य को भू-राजस्व से लाभ हो। इस वृहत कार्यक्रम को लागू करने के लिए **दीवान-ए-वजारत** विभाग का तो विस्तार हुआ ही किन्तु उसके साथ-साथ दीवान-ए-कोही नामक अधिकारी की भी नियुक्ति का होना इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि प्रशासन ने प्रथम बार मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में अन्य विषयों से अधिक कृषि को प्राथमिकता दी।

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु से न केवल उसे ही वरन् दोआब व उसके समीपवर्ती प्रदेशों की जनता को उससे छुटकारा मिल गया। उसके द्वारा ग्रामीण उपकर या अब्वाब तथा गृहकर व चराई कर वसूल करने में ही उसे अलोकप्रिय बना दिया था। यही उपकर विभिन्न परिस्थितियों में जब सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में कठोरतापूर्वक वसूल किये गये तो उस समय शान्तिपूर्वक ग्रामीण जनता ने इन करों का भुगतान किया। कारण यह कि प्रकृति एवं परिस्थितियाँ सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के अनुकूल थी। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु से पश्चात् जब

उनका उत्तराधिकारी सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक गद्दी पर बैठा, उस समय भी दोआब व उसके समीपवर्ती प्रदेशों में वीभत्स दुर्भिक्ष था, केन्द्रीय राजकोष रिक्त था, ग्रामीण जनता करों के भार से दबी हुई थी और प्रशासन व कृषक समाज के मध्य तनाव बना हुआ था। इस परिपेक्ष्य में सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक को भू-राजस्व एवं राजस्व के सम्बन्ध में नई नीति अपनानी पड़ी। सुल्तान की नीति दो भागों में विभाजित की जा सकती है: (१) प्रान्तों में भू-राजस्व व्यवस्था (२) दोआब व दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश की भू-राजस्व व्यवस्था।

जहाँ तक कि प्रान्तों की भू-राजस्व व्यवस्था का प्रश्न था, सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने भी प्रान्तों को दो श्रेणियों (१) दूरस्थ प्रान्त (२) दिल्ली के निकटवर्ती प्रान्त, में विभाजित किया। भू-राजस्व व्यवस्था जो कि पूर्वकाल में अस्त-व्यस्त हो गई थी, को पुन: स्थापित करने के उद्देश्य से सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने अपने विश्वासपात्र, सदाचारी व परोपकारी व्यक्तियों को मुक्ते और वलियों के पदों पर विभिन्न प्रान्तों में नियुक्त किया। उनको नियुक्त करते समय उसने ठेकेदारी प्रथा की ओर ध्यान न दिया और न ही मुक्तों व वलियों की नियुक्ति के लिए उसे आधार बनाया।[७३] सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक की भाँति उसने मुकाते जागीरों (भूमि के लिए ठेके पर कर अदा करने वालों), मुहज्जिबों (भूमि के बदले में सेना भर्ती करने वालों), तथा तौफीरों (दीवान के कर को अधिक बढ़ा देने वालों) को प्रान्तों के दीवान के पास फटकने न दिया। उसने मुक्ताओं व वलियों व कृषकों के हितों को ध्यान में रखते हुए लेखा-परीक्षण तथा बकाया करों की वसूली से सम्बन्धित नियमों को ढीला कर दिया। उस समय जब मुक्ते अपने प्रान्तों से दरबार में आते थे तो अपने साधनों के अनुसार, सुल्तान की रुचि के अनुसार बहुमूल्य उपहार जिनमें दास, दासी, घोड़े, हाथी, वस्त्र, सोने-चाँदी के बर्तन, ऊँट चौपाये आदि होते थे, लेकर उपस्थित होते थे। इससे पूर्व भूतपूर्व सुल्तानों के समय भी यह प्रथा थी किन्तु उस उपहार का मूल्यांकन न किया जाता था और न ही अक्ता के प्रान्त को उपलब्ध भू-राजस्व में उसका मुजरा ही किया जाता था। फिरोजशाह तुग़लक को आभास हुआ ये मुक्ता व वली कृषकों का शोषण करके ही धन एकत्र करते हैं और उस धन से बहुमूल्य उपहार जुटाकर उसके समक्ष दरबार में प्रस्तुत करते हैं अतएव उसने आदेश दिया कि वे जो उपहार दरबार में लायें उसका मूल्यांकन किया जाय और उनके प्रांतों के भू-राजस्व में से उतना धन कम कर दिया जाय।[७४] इस प्रकार से मुक्तों को प्रेरित किया गया कि वे कर दाताओं के प्रति नम्रता-पूर्वक व्यवहार करें। परिणामस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में आर्थिक समृद्धि पुन: वापस लौट आयी। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के उपरोक्त नियम को देखकर बरनी ने लिखा कि विलायतें (प्रान्त) पुन: आबाद हो गईं। कोसों तक खेती होने लगी। जंगलों, मरुभूमि तथा वियाबानों में खेती होने लगी।[७५] इसी प्रकार अफीफ भी इस बात का साक्षी था कि सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में आबादी में इतनी वृद्धि हुई कि दोआब में सकरोदा के पर्वत तथा खरला से कोल तक एक ग्राम भी बुरी दशा में न

रह गया और वहाँ थोड़ी-सी भूमि भी बेकार न रही। उस समय दोआब में ५२ परगने आबाद हो गये। इसी प्रकार से दोआब के अतिरिक्त प्रत्येक अक्ता व शिक में एक कोस में चार गाँव बस गये।[७६] यदि सुल्तान रूहेलखण्ड में बदायूं व आँवले का प्रदेश अपने शिकारगाह के लिए सुरक्षित न करता तो वहाँ भी कृषि का विस्तार होता व आबादी में वृद्धि होती।[७७] जब कभी सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक किसी मुक्ता को अपने प्रान्त में अपने कर्तव्य से विमुख होते हुए देखता था तो पदच्युत कर देता था या उसे अन्य किसी प्रान्त में भेज दिया करता था। अफीफ के अनुसार उसने मलिक शम्सुद्दीन को समाने की अक्ता से पदच्युत किया और उसे गुजरात की अक्ता की नयाबत प्रदान की किन्तु वहाँ भी वह अपने पद पर अधिक समय नहीं रह सका और उसे पदच्युत कर दिया गया।[७८]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने न केवल प्रान्तों में वरन् दोआब व दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश के कृषकों के प्रति एक सामान्य नीति अपनाई। उसने पूर्व शासन-काल में कृषकों पर प्रशासन द्वारा लगाई हुई भू-राजस्व की नई दर को समाप्त कर दिया व गृहकर व चराई कर के अतिरिक्त अन्य उपकारों (अब्वाओं) का भी उन्मूलन कर दिया। बरनी के अनुसार सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने हिन्द व सिन्ध के प्रदेशों के लिए आदेश दिया कि खिराज-ए-जज़िया को पैदावार के आधार पर वसूल किया जाय। उसने बटाई, अत्यधिक वसूली, काल्पनिक हिसाब-किताब को प्रजा के मध्य से पूर्णतया उठा लिया।[७९] अफीफ के अनुसार भू-राजस्व की दर कुल पैदावार का ४% कर दिया (एक तन्के में २ जीतल)।[८०] उसने यह भी लिखा है कि इससे पूर्व प्रत्येक कृषक केवल एक ही गाय रख सकता था, किन्तु चराई कर माफ हो जाने से वह अनेक मवेशी रखने की स्थिति में हो गया। सुल्तान ने अनेक उपकरों (अब्वाबों) का उन्मूलन तो कर दिया किन्तु सम्भवतः चराई व गृह के स्थान पर उसने प्रत्येक कृषक से जज़िया लेना प्रारम्भ किया। पहले जजिया खिराज के साथ ही लिया जाता था, किन्तु अब उसे अलग से लिया जाने लगा। इस कर से स्त्रियाँ व बच्चे मुक्त थे। इसके अतिरिक्त फिरोज़शाह तुग़लक उन गाँवों से विशेषकर जहाँ कि नहरों से सिंचाई होती थी जलकर (हक़्-ए-शर्ब) जो कि पैदावार का १/१० भाग हुआ करता था, अतिरिक्त कर के रूप में लिया करता था। यह कर केवल हरियाना प्रदेश के कृषकों से ही लिया जाता था क्योंकि उसी क्षेत्र में सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लगक ने नहरों का जाल बिछा दिया था।[८१]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दिल्ली का शासन सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के वंशजों तथा सैय्यद वंश के शासकों के हाथ में रहा। सल्तनत की सीमा आन्तरिक विप्लवों तथा बाह्य आक्रमणों के कारण सिकुड़ गई। सुल्तान की शक्ति कम हो गई। प्रान्तीय शासक धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो गए तथा हिन्दू सरदार दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली हो गये। इस काल में दिल्ली के शासकों को तलवार की सहायता से स्वतन्त्र एवं

अर्ध-स्वतन्त्र शासकों व हिन्दू जमींदारों से भू-राजस्व एकत्र करना पड़ा। क्योंकि वे अत्यधिक शक्तिशाली हो गए थे।

सैय्यद वंश के पतन के उपरान्त १४५१ ई० में सुल्तान वहलोल लोदी ने लोदी वंश की स्थापना की। पूर्व काल की भाँति सुल्तान वहलोल लोदी ने अक्ता प्रणाली को जारी रक्खा। अक्तादार पुरानी परम्परा के अनुसार कुल पैदावार को ध्यान में रखकर भू-राजस्व वसूल करते रहे। उस काल में भू-राजस्व की दर पैदावार का १/४ ही रही। यह स्थिति सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासनकाल तक रही। सुल्तान इब्राहीम लोदी ने तत्कालीन पद्धति में केवल इतना परिवर्तन ही किया कि उसने आदेश दिया कि अमीर व सेनानायक कृषकों से केवल अनाज के रूप में भू-राजस्व वसूल करें और उनसे किसी भी प्रकार से नकद न लें। इस प्रकार से जागीरों से असीमित मात्रा में अनाज प्राप्त होने लगा। किन्तु अमीरों व सेनानायकों को अपने व्यय के लिए धन चाहिये था। अतएव आवश्यकतावश वे अनाज को किसी दाम पर किसी भी व्यक्ति को वेच दिया करता थे। ईश्वर ने ऐसा किया कि अनाज एक वहलोली में १० मन के हिसाव से बिकने लगा किन्तु सोना-चाँदी अप्राप्य हो गये।[८२] इस काल में संसार में चाँदी की कमी थी जिसके कारण वस्तुओं का मूल्य निरन्तर गिरता ही गया। कृषकों को अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ता था क्योंकि उन्हें नकद प्राप्त करने के लिए अत्यधिक मात्रा में अनाज वेचना पड़ता था। चाँदी की कमी के कारण ही सुल्तान इब्राहीम लोदी ने सभी अमीरों व अक्तादारों को आदेश कि वे अनाज के रूप में ही कर व भू-राजस्व वसूल करें। यह स्थिति शेरशाह (१५४०-१५४५) तक वनी रही। जव नये संसार से चाँदी भारत में अधिक माला में आने लगी तो एक बार पुनः मूल्यों में वृद्धि हुई।

सुल्तान इब्राहीम लोदी के शासनकाल में लोदी साम्राज्य के पूर्वी उत्तर प्रदेश व विहार में भू-राजस्व में कुछ नवीन प्रयोग फरीद ने अपने पिता मियाँ हसन की जागीर में किए। उसने न्यायप्रिय शासन के द्वारा समृद्धि लाने का प्रयास किया। उसने देखा कि उस समय कुछ भूमि कृषकों व शेष भूमि ग्रामीण समाज के अधिकारयुक्त व्यक्तियों, **खूत, मुकद्दम, चौधरियों व जमींदारों** के हाथ में है। उसने कृषकों को समृद्धि का भू-राजस्व स्रोत माना और अन्य वर्ग को शोषणकर्त्ता एवं कृषकों के हितों के विरुद्ध। उसने सर्वप्रथम कृषकों को यह विकल्प दिया कि किस पद्धति के अनुसार उनका भू-राजस्व का आंकन किया जाय। इस विषय में कृषकों में एकमत न था, क्योंकि कुछ भूमि की नाप के अनुसार तथा अन्य बटाई प्रथा के अनुसार भू-राजस्व का आंकन करवाना चाहते थे। फरीद ने यह वात उन्हीं पर छोड़ दी तत्पश्चात् उसने **खूत, मुकद्दम, चौधरियों, मुखिया** तथा **जमीदारों** से कृषकों की रक्षा करने की दृष्टि से उन्हें सतर्क कर दिया कि वे कृषकों को सताना बन्द कर दें। ग्रामीण समाज का यह अधिकारयुक्त वर्ग कृषकों के भूमि की नपाई, पैदावार के मूल्य का आंकन तथा लगान वसूल करने का

शुल्क वसूल किया करता था। उसने इस वर्ग के लोगों को अपनी नीति बताई और उनसे स्पष्ट रूप में कह दिया कि वे केवल अधिकृत शुल्क ही वसूल करके प्रत्येक फसल पर ठीक समय पर भू-राजस्व वसूल करें तथा यद्यपि वे बोये हुए खेत के आधार पर भी राजस्व का आंकन करें और वे पैदावार की मात्रा को भी ध्यान में रखें। उसने उन्हें आदेश दिया कि एक बार राजस्व निर्धारित हो जाने के बाद उसे वे पूर्णरूप से कठोरतापूर्वक वसूल करें। उसने प्रत्येक कृषक के साथ पृथक-पृथक लिखित समझौता भी किया। प्रशासन की ओर से कृषक को भूमि के लिए पट्टा दिया जाता था कि अमुक भूमि उसके पास कितने समय तक रहेगी और इसके बदले में कबूलियत द्वारा भू-राजस्व के भुगतान के सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेता था। इस प्रकार से फरीद ने खवासपुर-टाँडा व सहसाराम में अपने पिता की जागीरों में अक्तादार व कृषकों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करके और ग्रामीण समाज के अधिकारयुक्त व्यक्तियों को उनके उत्तरदायित्व का बोध करा के कृषकों के हितों की रक्षा की। उसने विद्रोही जमीदारों को अपनी सैनिक शक्ति से दबा दिया और उन्हें भी भू-राजस्व का भुगतान करने पर बाध्य किया। संक्षेप में फरीद के नवीन प्रयोगों का निचोड़ कर इस प्रकार से था। उसने भूमि की माप के कार्य को आगे बढ़ाया और बटाई की तुलना में भूमि की माप द्वारा भू-राजस्व के आँकन को प्राथमिकता दी। उसने कृषकों के शोषण को रोकने का प्रयास किया और खूत, मुकद्दम, चौधरियों को अनाधिकृत अधिकारों से वंचित कर दिया। उसकी राजस्व की नीति का मुख्य उद्देश्य प्रशासन को अधिक से अधिक भू-राजस्व दिलाने का प्रयास करना था।

राज्य की जमा

इल्तुतमिश को भू-राजस्व तथा अन्य करों के रूप में अपनी अक्ताओं व विलायतों से कितना मिलता था या साम्राज्य की कुल जमा कितनी थी, यह तथ्य समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं दिये गये हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अनुभवहीन, दुर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारियों के अन्तर्गत एक ओर तो अक्तादारों के विद्रोह के कारण सल्तनत की सीमाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहा तो दूसरी ओर राज्य की आय या कुल जमा भी कम होती रही। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज़ के शासनकाल में जब अवध में इल्तुतमिश के एक अन्य पुत्र मलिक ग्यासुद्दीन मुहम्मद शाह ने विद्रोह कर लखनौती से दिल्ली आने वाला राजकोष छीन लिया और अवध के अनेक शहरों व गाँवों को लूट लिया तो राज्य की आय का एक बड़ा भाग व समृद्धशाली प्रदेश कुछ समय के लिए उसके हाथों से निकल गया। इसी प्रकार जब बदायूँ के अक्तादार मलिक इज़्ज़ुद्दीन सालारी, मुल्तान के अक्तादार मलिक इज़्ज़ुद्दीन कबीर खान अय्याज़, हाँसी के अक्तादार मलिक सैफुद्दीन कूर्ची तथा लाहौर के अक्तादार मलिक अलाउद्दीन जानी ने विद्रोह किया तो सुल्तान के समृद्धशाली प्रदेश ही नहीं वरन् उन प्रदेशों की भू-राजस्व तथा करों के रूप में प्राप्त धन भी राज्य को

न मिल सका। रणथम्भौर व उत्तरी-पूर्वी राजपूताना के सभी प्रदेश चौहानों के हाथों में तथा ग्वालियर परिहारों के हाथ में आ जाने के कारण भी सल्तनत को आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। उसके अतिरिक्त मेवातियों के चौहानों के साथ मिल कर दिल्ली तक छापा मारने से भी आय के स्रोत कम हो गये। रज़िया ने केवल अमीरों व मलिकों के विद्रोह का ही दमन किया और उसने लगभग तीन वर्ष ६ मास ६ दिन के शासन-काल में राज्य के लिए आय के स्रोत पुनः खोल दिये। यह कहना बहुत ही कठिन है कि उसके शासनकाल में राज्य की कुल जमा कितनी थी। क्योंकि अक्तादार की आय का कोई लेखा-जोखा कहीं नहीं मिलता है। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान मुइज़ुद्दीन बहरामशाह के शासनकाल में तैरबहादुर नामक मंगोल ने लाहौर पर आक्रमण कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जिससे दिल्ली सल्तनत के हाथ से लाहौर जैसा समृद्धशाली प्रदेश कुछ समय तक के लिए निकल गया। तैरबहादुर के लौट जाने के बाद ही लाहौर पुनः सल्तनत के अधिकार में आया। इसी प्रकार कबीर खान अय्याज जो कि मुल्तान में था ने दिल्ली सल्तनत से सम्बन्ध तोड़ दिये (१२४१-४२)। उसकी मृत्यु के बाद सिंध का प्रान्त उसके उत्तराधिकारी ताजुद्दीन आबूबक्र के हाथ में रहा। मुल्तान में अय्याजी वंश का शासन कुछ समय तक रहने से सिंध का राजस्व दिल्ली को नहीं मिला। सुल्तान अलाउद्दीन मसूद के शासनकाल के चार वर्षों में सिंध व बंगाल लगभग दिल्ली सल्तनत से पृथक रहे। १० जून १२४६ को उसका शासनकाल समाप्त हुआ और सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद गद्दी पर बैठा। उसने अपने भाई जलालुद्दीन मसूद शाह को सम्बल व बदायूँ की अक़्ता दी। किन्तु कटेहर में हिन्दू राज्यों के भय से वह भाग आया। इसका तात्पर्य यह है कि कटेहर पर इस समय तक दिल्ली के सुल्तानों का प्रभुत्व पूर्णतः स्थापित न हो सका था।

सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में १२५५-६८ ई० में जब कुतुलुग-खान ने विद्रोह किया तो अवध दिल्ली के हाथ से कुछ समय के लिए निकल गया। जब ताज़ुद्दीन तबर खान को अवध में नियुक्त किया गया तब जाकर स्थिति सुधरी। लेकिन १२५७-५८ ई० में किशली खान, जिसके हाथों में उच्च व मुल्तान थे, ने दिल्ली सल्तनत से अपने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिए और मंगोलों के नेता सालीन नयून से समझौता कर मंगोलों के पक्ष में हो गया। इस प्रकार उच्च मुल्तान भी सल्तनत के हाथ से निकल गये। दूसरी ओर लखनौती में युजबेक तुगरिल खाँ ने भी सल्तनत से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिये। अतएव एक बार फिर सल्तनत की सीमाएँ सिकुड़ कर रह गईं। इसी काल में मेवातियों के विद्रोह, कटेहर में हिन्दुओं के विद्रोह तथा अवध में कुतुलुग खाँ के विद्रोह के कारण अशान्ति बनी रही और दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश कटेहर व अवध से कोई भी राजस्व वसूल न हो सका होगा। जब बलबन गद्दी पर बैठा तो उसने मेवातियों, कटेहर के हिन्दुओं के विद्रोह को दबाया और बंगाल में तुग़रिल बेग के विद्रोह को दबा कर विभिन्न प्रदेशों पर प्रशासन का नियन्त्रण स्थापित किया। उसके शासनकाल के अन्त में सल्तनत की सीमाएँ सम्भवतः सिंध नदी से लेकर

बंगाल तक पश्चिम में ग्वालियर तक, मध्य भारत में कालिंजर तक थी। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद विहार व बंगाल में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई, जिससे एक बार फिर सल्तनत की सीमाएँ सिकुड़ गईं और उसका राजस्व कम हो गया। यह स्थिति बलबनी वंश के अन्त तक रही।

खिल्जी साम्राज्यवाद का उद्भव होते ही उत्तरी भारत में केवल न राजनीतिक वरन् सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास में एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी के शासनकाल में यद्यपि बिहार व बंगाल, उड़ीसा पर सल्तनत का कोई प्रभुत्व नहीं था, किन्तु पश्चिम में रणथम्भौर व मालवा तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा मध्य भारत में कालिंजर तक साम्राज्य की सीमा हो गई। यद्यपि साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से इस काल में कोई आशातीत वृद्धि नहीं हुई किन्तु भीलसा व झाँई को लूटने के पश्चात् मालवा पर अधिकार स्थापित हो जाने से दक्षिण की ओर सेना भेजने का मार्ग खुल गया। अलाउद्दीन को देवगिर से जो अपार धन प्राप्त हुआ उससे उत्तरी भारत की अर्थ-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ा। कालान्तर में जब अलाउद्दीन स्वयं गद्दी पर बैठा और उसने जब मंगोल आक्रमणों को विफल बना दिया, हिन्दू राय, रावत, चौधरियों, मुकद्दमों व खूतों को शक्तिहीन बना दिया व राजपूताना के राज्यों, रणथम्भौर, चित्तौड़ सिवना व जालौर को विजित कर राजपूतों को शक्तिहीन बना दिया। जब मलिक काफूर ने बारम्बार दक्षिण के राज्यों पर आक्रमण कर यादव, होसल तथा काकतीय वंश के शासकों को करद देने के लिए बाध्य किया व अपार धन बटोर कर दक्षिण से दिल्ली जाने लगा तो तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था पर उसका गहन प्रभाव पड़ा। एक ओर तो खिल्जी साम्राज्यवाद के विकास के कारण आन्तरिक विद्रोही तत्वों के दमन के साथ शान्ति स्थापित हुई, तो दूसरी ओर नूतन आर्थिक नीतियों के कारण अधिकाधिक भू-राजस्व तथा अन्य कर प्राप्त हुए, तीसरी ओर उत्तरी भारत के अनेक प्रदेश केवल बिहार जहाँ कि हरसिंह ने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की व बंगाल व उड़ीसा के प्रदेशों में जहाँ स्वतन्त्र राज्य की स्थापनाएँ हो चुकी थी, प्रशासन के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आ गये, जिससे कि साम्राज्य की जमा में वृद्धि हुई। किन्तु सुल्तान अलाउद्दीन के परलोक सिधारते ही इस साम्राज्य की न तो दुर्दशा हुई और न ही आर्थिक व्यवस्था डगमगाई और न ही साम्राज्य की सीमाएँ सिकुड़ीं। दक्षिण से करद मिलना यद्यपि बन्द हो गया था, राजपूताना के राय सल्तनत से बाहर निकल गये थे किन्तु फिर भी कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी ने अपनी आक्रमणात्मक नीति द्वारा देवगिर का राज्य समाप्त कर दिया और उसे सल्तनत में मिला लिया व वारंगल के शासक प्रताप रुद्रदेव से करद वसूल कर लिया व माबार तक सुल्तान की इच्छाओं का पालन होने लगा। इस प्रकार सल्तनत का प्रभाव क्षेत्र सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय की तुलना में कम हो गया। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि पंजाब के मुक्ताओं ने ग़ाज़ी मलिक का नेतृत्व स्वीकार कर सुल्तान खुसरो खां को पदच्युत करने का बीड़ा उठा लिया था।

सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने खुसरो खाँ पर विशेष कृपा की और वही आस्तीन का साँप निकला। उसने सुल्तान का वध ६ जुलाई १३२० को करा दिया। उसके बाद वह स्वयं गद्दी पर बैठ गया। उसके समय में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार न हो सका।

गाज़ी मलिक ग्यासुद्दीन तुग़लक शाह उपाधि ग्रहण करके गद्दी पर बैठा। उसके कर्मठ व्यक्तित्व के कारण आर्थिक व्यवस्था में सुधार हुआ व दक्षिण में देवगिर राज्य और उसके साथ ही साथ तिहुत व बंगाल की सीमा तक साम्राज्य की सीमाओं में विस्तार हुआ। किन्तु बंगाल व उड़ीसा पूर्णतः स्वतन्त्र ही रहे। अन्य शब्दों में ग्यासुद्दीन तुग़लक के नेतृत्व में एक बार पुनः सल्तनत ने खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसका प्रभाव-क्षेत्र पूर्व को तुलना में बढ़ा। यह क्रम उसके उत्तराधिकारी के समय में द्रुतगति से चला। फलतः यद्यपि पूर्व की ओर साम्राज्य का विस्तार न हो सका किन्तु पश्चिम व दक्षिण की ओर साम्राज्य का निरन्तर विकास होने के कारण साम्राज्य के लिए नवीन आय के लिए नवीन स्रोत उपलब्ध हुए। जिस समय वह गद्दी पर बैठा था उस समय सल्तनत के विभिन्न प्रान्तों में विद्रोह की चिनगारियाँ उपस्थित थीं। सिंध पर सल्तनत का नाममात्र का प्रभुत्व था। वहाँ अगर ने थट्टा व निचले सिंध को अपने अधिकार में कर लिया व स्वतन्त्र हो गया। गुजरात में अशान्ति थी। राजपूताना में चित्तौड़, नागौर व जालौर आदि सल्तनत के अधिकार में थे किन्तु वे राजपूत सरदारों के आक्रमणों से मुक्त न थे। बंगाल का प्रान्त समस्याओं से भरा हुआ प्रान्त था। वहाँ शिहाबुद्दीन की मृत्यु (१३२२ ई०) हुई। उसके दो पुत्रों शिहाबुद्दीन बुग़रा-खान तथा ग्यासुद्दीन बहादुर ने उसके जीवन-काल में उसके विरुद्ध विद्रोह किया। बहादुरशाह ने सुनारगाँव पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया व अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त लखनौती को अधिकृत करके अपने दो भाइयों शिहाबुद्दीन तथा नासिरुद्दीन को वहाँ से निकाल दिया। इस समय जाजनगर व त्रिहुत पर हिन्दू ज़मीदारों का शासन था, दक्षिण में तेलंगना का शासक प्रताप रुद्रदेव जो पुनः दिल्ली की अधीनस्था से मुक्त हो गया था, ने बद्रकोट के दुर्ग से शाही सैनिकों को निकाल दिया और अपना अधिकार वहाँ स्थापित कर लिया। इसी प्रकार होसल शासक वीर बल्लाल तथा माबार के पाण्ड्य शासकों ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अब तक प्रशासनिक व्यवस्था तो अस्त-व्यस्त हो चुकी थी, साथ ही राजकोष भी सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह व खुसरो खान की अत्यधिक उदारता के कारण रिक्त हो चुका था। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी द्वारा लागू की गई भू-राजस्व व्यवस्था के समाप्त होने के कारण सल्तनत की वित्तीय व्यवस्था चौपट हो चुकी थी। अतएव नये सुल्तान ग्यासुद्दीन के सम्मुख अनेक आर्थिक समस्याएँ थीं, जिसको हल करने के लिए उसे नई आर्थिक नीति अपनानी पड़ी। उसने त्रिहुत व बंगाल पर प्रभुत्व स्थापित किया तथा दक्षिण में वारंगल के काकतीय राज्य को विजित किया। इसी समय उत्तर-पश्चिम में मंगोल आक्रमण को विफल बनाया गया तथा विविध प्रदेशों में प्रशासन की समुचित

व्यवस्था करके राजस्व वसूल करने की व्यवस्था की गई। इस काल में साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ प्रशासन से जुड़े हुए आर्थिक प्रश्नों की ओर भी सुल्तान का विशेष ध्यान गया जिससे राज्य की जमा में वृद्धि हुई।

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक की अफगानपुर में आकस्मिक मृत्यु हुई। तत्पश्चात् उसका पुत्र उलुग़ खान सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की उपाधि ग्रहण करके सिंहासन पर बैठा। जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है कि खिल्जी साम्राज्यवाद जिसका प्रारम्भ सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी से हुआ था, अपने चरमोत्कर्ष पर सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के समय में पहुँचा। उसकी विजयों को ध्यान में रखते हुए उसके विशाल साम्राज्य की सीमाओं के सम्बन्ध में विचार करना नितान्त आवश्यक है, किन्तु उसी के समय को केन्द्र-बिन्दु मानकर ही सल्तनत काल की कुल जमा का सुगमतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है।

सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के समय साम्राज्य की भौगोलिक सीमाएँ क्या थीं? शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार इस देश का क्षेत्र बहुत विशाल था।[८३] मुहम्मद बिन अब्दुर रहीम ने तुह्फतुल अल्बाब में लिखा है कि यह देश बहुत ही विशाल है। मुबारक इब्न महमूद अली खम्भाता ने लिखा कि यह देश अत्यधिक विशाल है।[८४] साधारण रूप से यात्रा करने में उसकी लम्बाई ३ वर्ष में और चौड़ाई भी तीन वर्ष में समाप्त होगी। इसका अक्षांश सोमनाथ तथा सरनद्वीप के बीच में गज़नी तक है और देशान्तर अदन के सन्मुख वाली खाड़ी से लेकर एलेक्जेंडरिया की दीवार तक है, जहाँ हिन्द-महासागर अटलांटिक महासागर से मिलता है।[८५] शिहाबुद्दीन अल उमरी ने सिराजुद्दीन अबू सफा, जो कि अवध के निवासी थे व मुहम्मद तुग़लक के दरबार में रह चुके थे, से सुना कि यहाँ २४ प्रान्त हैं—(१) देहली, (२) देवगिर, (३) मुल्तान, (४) कुहराम, (५) सामाना, (६) सिविस्तान, (७) कच्छ, (८) हाँसी, (९) सिरसौती, (१०) माबार, (११) तिलंगाना, (१२) गुजरात, (१३) बदायूँ, (१४) अवध, (१५) कन्नौज, (१६) लखनौती, (१७) बिहार, (१८) कड़ा, (१९) मालवा (२०) लाहौर, (२१) कलानूर, (२२) जाजनगर, (२३) तिलंग, (२४) द्वारसमुद्र। इन प्रान्तों में घनी आबादी वाले गाँव थे। शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार कन्नौज प्रान्त में १२० लाख ग्राम, तिलंग प्रान्त में ३६ लाख ग्राम, मुल्तान में ७० सुन्दर नगर थे जो कि समुद्रतट पर बन्दरगाह थे, देवगिर प्रान्त में एक करोड़ दो लाख ग्राम थे। द्वारसमुद्र के समुद्री तटों पर १० बन्दरगाह थे।[८६] उसने आगे लिखा है कि मुल्तान प्रदेश में १२६००० ग्राम थे। हिन्दुस्तान के भूभाग व सीमान्त प्रदेशों के विषय में पूछने पर शेख मुबारक ने उसे बताया कि यहाँ लगभग १००० छोटी-बड़ी नदियाँ हैं। कुछ तो लम्बाई में नील नदी के बराबर हैं, कुछ उनमें से छोटी हैं, शेष साधारण नदियों के समान हैं। नदी के तटों पर ग्राम, नगर, घने जंगल व हरे-भरे मैदान हैं।[८७] बरनी ने मुहम्मद बिन तुग़लक के साम्राज्य

की सीमाओं का विवरण देते हुए बताता है कि उसके राज्य में (१) गुजरात (२) मालवा (३) मरहट (४) तिलंग (५) कम्पील (६) द्वारसमुद्र (७) लखनौती (८) सतगाँव (९) सुनारगाँव (१०) तिहुत के प्रान्त थे। उसने इन प्रदेशों का खिराज कुश्के (महल) हज़ार सितून में निश्चित किया। इन इकलीमों के **वज़ीर, वली** तथा **मुतसर्रिफ** अपने आय-व्यय का लेखा देहली के **दीवान-ए-वज़ारत** को भेजा करते थे। सुल्तान मुहम्मद के सिंहसनारोहण के कुछ प्रारम्भिक वर्षों में देहली, गुजरात, मालवा, देवगिर, तिलंग, कम्पीला, द्वारसमुद्र, मावार, तिरहुत, लखनौती, सतगाँव, सुनारगाँव का खिराज इस प्रकार सुव्यवस्थित हो गया था कि उपर्युक्त इक़लीमों तथा प्रान्तों का लेखा दूरी के बावजूद देहली के **दीवान-ए-वज़ारत** में इस प्रकार जाँचा जाता था जिस प्रकार दोआब के कस्बों तथा ग्रामों का लेखा। बरनी ने आगे लिखा है कि दूर के प्रदेशों तथा विलायतों के दूर होने के कारण उन्हें छोड़ा नहीं जाता था, वरन् उनसे भी खिराज वसूल किया जाता था। बरनी के विवरण में कई दोष हैं : (१) कि उसने पंजाब से खिराज वसूल किये जाने का कोई उल्लेख नहीं किया है। (२) यदि उसके कथन को कि 'दूर के प्रदेशों तथा विलयातों को छोड़ा नहीं जाता था' को मान भी लें तो (३) उसके अन्तर्गत, एक तो साम्राज्य की वास्तविक सीमा के सम्बन्ध में ज्ञात नहीं होता है, दूसरे उसके साम्राज्य में कितने बीघा कृषि भूमि या कृषि योग्य भूमि थी, तीसरे कि साम्राज्य की कुल जमा कितनी थी, की जानकारी नहीं होती। उसके अन्य कथन भी इतने ही अस्पष्ट हैं, जैसे कि जिस स्थान पर भी विजय प्राप्त होती थी वहाँ **वली, नायब, आमिल** नियुक्त किए जाते थे और सभी भूमि सुव्यवस्थिता हो जाती थी। इक़लीम तथा निकट एवं दूर के प्रदेश किसी भी राज्यकाल में तथा किसी भी सुल्तान के समय इस प्रकार मे सुव्यवस्थित न हुए थे। खिराज, उपहार तथा भेंट के रूप में जितना धन उन वर्षों में देहली को प्राप्त हुआ था, उतना खिराज किसी भी राज्यकाल में जिनकी सीमाएँ एक-दूसरे से लगी हुई थीं, प्राप्त नहीं होता था। कोई भी विद्रोही मुकद्दम, विरोधी, खूत तथा खिराज न अदा करने वाला ग्राम शेष न रह गया था। इक़लीमों तथा प्रदेशों का शेष कर तथा वर्तमान खिराज दोआब के कस्बों तथा ग्रामों के समान कारकूनों तथा मुत्सर्रिफों से बड़ी कठोरतापूर्वक वसूल कर लिया जाता था।[८८] यह लिखते समय भी वह साम्राज्य की कुल जमा का उल्लेख नहीं करता है। सत्य तो यह है कि राज्य काल में निरन्तर विद्रोह होने के कारण साम्राज्य की कुल जमा के सम्बन्ध में किसी को कुछ मालूम ही नहीं था। जैसे ही किसी प्रदेश में विद्रोह प्रारम्भ होता लोग किसी विद्रोही अमीर के नेतृत्व में एकत्र हो जाते व राजस्व प्रशासन को न देकर उसे देना प्रारम्भ कर देते या विद्रोही अमीर स्वयं राजस्व अपने पास रख लिया करता था।

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में ही बंगाल, विहार के कुछ भाग, उड़ीसा, सिंध का कुछ प्रदेश, दक्षिण व सुदूर दक्षिण सल्तनत की परिधि से निकल

गये। जब फिरोज़शाह तुग़लक गद्दी पर बैठा तो उसे केवल सीमित साम्राज्य ही विरासत में प्राप्त हुआ। अफीफ के अनुसार इस साम्राज्य की कुल जमा ६ करोड़ पचहत्तर लाख टन्का थी और उसके शासनकाल में ४० वर्षों तक यह वही रही। एक अन्य स्थान पर अफीफ ने लिखा है कि केवल दोआब से ही सुल्तान को ८० लाख तन्का मिलता था।[८६] उसे राज्यों से एक लाख अस्सी हजार तन्का राजस्व मिलता था। और सम्पूर्ण राज्य की जमा ६ करोड़ व ८५ लाख तन्का थी। फिरोज़शाह तुग़लक का शासनकाल यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि आर्थिक दृष्टि से, क्योंकि इस काल में सभी आर्थिक समस्याओं का निदान व्यापक ढंग से किया गया। उसके शासनकाल का पूवार्ध समृद्धि व सम्पन्नता का काल था, किन्तु उत्तरार्ध में सामान्य विरोधी शक्तियों के एकाएक उत्कर्ष के कारण साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। सल्तनत की सीमाएँ और उसके आर्थिक स्रोत प्रादेशिक शक्तियों के कारण सिकुड़ गये व उन्हीं के मध्य विभाजित हो गये। जब सल्तनत की सीमा ही दिल्ली से लेकर पालम गाँव तक हो गई तो उसका आर्थिक आधार ही क्या हो सकता था ? किसी भी काल में साम्राज्य के उत्कर्ष व पतन के साथ आर्थिक व्यवस्था के उत्थान व पतन का बोध होता है। यही बात तुग़लक काल के लिए भी चरितार्थ होती है। उत्तरोत्तर फिरोज़-शाह तुग़लक काल में राजकुमारों के मध्य गृहयुद्ध; इटावा, मेवात तथा अन्य स्थानों में हिन्दू जमींदारों के विद्रोह, तदुपरान्त अमीर तैमूर के आक्रमण व उसकी लूटपाट ने सम्पूर्ण पंजाब व दोआब की आर्थिक व्यवस्था बर्बाद कर दी। इस नाटक का अन्त दुखान्त था क्योंकि सम्पूर्ण उत्तरी भारत स्वतन्त्र राज्यों के मध्य विभाजित हो गया। इस प्रकार से दिल्ली सल्तनत की कुल जमा कभी भी एक समान नहीं रही।

———

१४

कुटीर उद्योग

दिल्ली सल्तनत की स्थापना होते ही उत्तरी भारत में कृषि एवं शहरी क्रांति प्रारम्भ हुई। कृषि प्रधान देश में कृषि अर्थव्यवस्था का विकास इतनी तीव्रता से इससे पूर्व नहीं हुआ जितना कि १३वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक हुआ। इन तीन शताब्दियों में ग्रामीण समाज के अन्दर के ढाँचे में यद्यपि गहन परिवर्तन नहीं हुए किन्तु समाज के विविध वर्गों के अधिकारों की परिभाषा बदलते ही, आन्तरिक एवं बाह्य दबाव में, ग्रामीण समाज की अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक संगठन में जो विकास हुआ वह नवीन दिशा में था। अभी तक शासकों के कोषों में तथा हिन्दू मन्दिरों में सदियों तक धन छिपा रहने के कारण उत्तरी भारत का आर्थिक विकास रुका हुआ था। मुसलमान विजेताओं ने मुहम्मद गौरी के समय से लेकर अगले १०० वर्षों में यह धन मन्दिरों व राजाओं के कोष से निकाल कर उसका सभी वर्गों द्वारा उपयोग होने दिया। धन के परिचालन के कारण सुल्तान, अमीर, अधिकारी, सैनिक सभी वर्ग विलासपूर्ण एवं सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु अनेक नवीन उद्योगों ने जन्म लिया। व्यापार और उद्योग में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप पूर्व की तुलना में १४वीं, १५वीं शताब्दी में बाज़ार में धन के परिचालन में वृद्धि हुई। कृषकों ने कृषि उत्पादन अथवा विविध खाद्यान्नों, तिलहन, जूट, मलबरी के पौधों तथा कपास की खेती में, जैसा कि इससे पूर्व कृषि उत्पादन सम्बन्धी अध्याय में बताया जा चुका है, अपना योगदान दिया। किन्तु साथ ही साथ इस काल में कृषि गृह उद्योगों या कुटीर व लघु उद्योगों से जुड़ी रही। गृह उद्योग से तात्पर्य कृषकों के परिवार में ही कच्चे माल से वस्तुओं की तैयारी करने से है। यही गृह उद्योग इस काल में आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गये तथा अगली शताब्दियों में उससे पूर्णतः जुड़े रहे। इस काल में कृषकों के पास कच्चा माल था, उनके परिवार में श्रम था और आर्थिक क्रिया के लिये समुचित साधन व परिस्थितियाँ उपलब्ध थीं। ऐसी स्थिति में कृषि पर आधारित उद्योगों का उद्भव एवं विकास प्राकृतिक एवं स्वाभाविक प्रक्रिया मात्र थी। इस समय उद्योग व्यवस्था के रूप में न थे। यही कारण है कि कृषि एवं गृह उद्योग चोली दामन की तरह एक-दूसरे से सम्बद्ध रहे और ऊपर से देखने में एक ही दिखाई पड़ते रहे। कृषि का गृह उद्योगों से जुड़ा रहना व प्रारम्भिक अवस्था

में केवल परिवार के उपयोग के लिये ही कच्चे माल को वस्तु में परिवर्तित करना ही पूर्व मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था की विशेषता थी। कृषि एवं गैर-कृषि पर आधारित सभी उद्योग देश के विभिन्न भागों में फैले हुए थे। देश भर में अनेक उत्पादन केन्द्र थे।

पूर्व मध्यकाल में कृषि उत्पादन व गैर-कृषि उत्पादन पर आधारित उद्योग व कुटीर उद्योग थे। चूंकि कृषि ही ८० प्रतिशत जनता की जीविका का साधन थी व उनका प्रमुख व्यवसाय था, अतएव ग्रामों में कृषि पर आधारित अनेक प्रकार के उद्योगों का विकसित होना वहुत ही स्वाभाविक था। यह उद्योग बड़े पैमाने पर न होकर छोटे पैमाने पर ही थे। इन उद्योगों में एक ही परिवार के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी तक लगे रहते थे। कारीगरों के औजार व उत्पादन के सामान बहुत ही पुराने थे। कार्य का ढंग परम्परागत था। एक ही उद्योग में कई पीढ़ियों तक लगे रहने के कारण उनकी अभूतपूर्व कार्यकुशलता एवं योग्यता तथा कारीगरी में विशेष पटुता के कारण जो भी वस्तु का निर्माण वे करते थे वह कलात्मक दृष्टि से वहुत ही उत्तम होती थी। ग्रामीण जनता में उनका सामाजिक स्तर सामान्य होने के कारण या निम्न होने के कारण उन्हें एक निर्धारित सीमा के आगे प्रगति करने का अवसर नहीं मिल पाता था। उन्हें राज्य की ओर से या किसी वर्ग विशेष की ओर से कभी संरक्षण नहीं मिलता था और न ही उनकी शोषण से रक्षा की जाती थी। वास्तव में उनका सदैव शोषण होता रहा। उनकी चीख-पुकार पर कोई ध्यान नहीं देता था। मुसलमान शिल्पकारों के आगमन पर यह आशा बँधी कि उनकी सामाजिक असमानताएँ दूर हो जावेंगी और उनका सामाजिक स्तर ऊपर उठेगा, किन्तु मुसलमान शिल्पकार स्वयं ही जाति वर्ग-भेद के शिकार हो गये। १५२६ ई० में जब बाबर आया तो उसने विभिन्न व्यवसायों को जातियों व परिवारों में सीमित देखा और उसे यह देखकर यह आश्चर्य हुआ कि यह व्यवसाय एक ही परिवार में पीढ़ियों तक चलते रहते हैं। व्यवसाय का वंशानुगत होना यहाँ की विशेषता थी। उससे न तो श्रम और न पूँजी की समस्याएँ उत्पन्न होती थीं और न ही उत्पादन की किस्म में गिरावट आने पाती थी। क्योंकि प्रत्येक उद्योग में एक ही परिवार के लोग श्रम व पूँजी का उत्तरदायित्व सम्भालते थे, वस्तु को तैयार करते थे और स्वयं उसे वेचकर लाभ उपार्जित करते थे।

कृषि उत्पादन पर आधारित उद्योगों में सबसे प्रमुख उद्योग गुड़, खाँडसार या शक्कर उद्योग, मदिरा बनाने का उद्योग, इत्र उद्योग, सूत कातने का उद्योग, वस्त्र उद्योग, तेल की पिराई का उद्योग, धान कुटाई का उद्योग, डलिया व चटाई बनाने का उद्योग आदि थे जो कि गाँव के अतिरिक्त उत्पादन पर आधारित थे।[1]

हिन्दुस्तान के लगभग सभी भागों में गन्ने की खेती होती थी। गन्ने से ही चीनी बनाई जाती थी। गन्ने की फसल तैयार होने पर उसे काट लिया जाता था। फिर चरखी में उसकी पिराई करके उसका रस निकाल लिया जाता था। उस रस को बड़े-बड़े

कड़ाहों में डालकर तब तक उबलने देते थे जब तक कि वह गाढ़ा होकर गुड़ न बन जाय। गुड़ की भेली या टिकिया बनाकर फिर उसे तब तक कूटते थे जब तक कि उससे शक्कर या खाण्ड के दाने न बन जायँ। कभी-कभी खाण्ड को रसायनिक विधियों से साफ करके उसे शुद्ध सफेद शक्कर में परिवर्तित भी कर दिया जाता था। इस प्रकार शक्कर बनाने की विधि देश के विभिन्न भागों में सर्वत्र प्रचलित थी। यहाँ बड़े पैमाने पर शक्कर बनाई जाती थी। बंगाल में शक्कर का उत्पादन इतना अधिक था कि स्थानीय उपभोग में आने वाली चीनी के अतिरिक्त जो कुछ भी चीनी बच रहती थी उसे आयात कर दिया जाता था। यह शक्कर चमड़े के थैलों में भरकर बाहर भेजी जाती थी। बंगाल में गन्ने से शक्कर बनाने के अलावा विभिन्नफलों के रसों से विशेषकर ताड़ के फलों से भी शक्कर बनायी जाती थी। इसी प्रकार उत्तरी भारत के अन्य भागों में भी शक्कर के उद्योग गन्ना उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में थे। थक्कर फेरू ने गणितसार कौमुदी में लिखा है कि दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश में शक्कर बनाने का समृद्धशाली उद्योग था। एक कृषक ८ खरी गन्ने से ५० मन रस निकाल लेता था। इस ५० मन रस से वह १० मन गुड़ या ८$\frac{3}{4}$ मन शक्कर या ३$\frac{1}{3}$ मन सफेद शक्कर या ५ मन राब बना लेता था।

इस काल में इत्र व सुगन्धित जलों की समाज में बड़ी माँग थी। शासक व अभिजात वर्ग इत्रों व सुगन्धित जलों का बड़ा शौकीन था और इसीलिए उन उद्योगों का विकास हुआ। यह उद्योग उन स्थानों में स्थापित हुए जहाँ कि फूलों के बाग थे या फूलों की खेती व्यापक पैमाने पर हुआ करती थी। इत्र का प्रयोग प्रतिदिन होता था। सुगन्धित जलों को सभाओं में विशेष अवसरों पर छिड़कते थे जिससे कि वातावरण में सुगन्ध आ जाती थी। बंगाल में इत्र व गुलाब-जल बेचने वाले व्यापारियों का समुदाय जिसे कि गन्ध वनिक कहते थे उत्पन्न हो गया। इत्र व सुगन्धित जलों का उत्पादन कन्नौन व जौनपुर तथा गाजीपुर में भी हुआ करता था। यहाँ के उद्योग प्राचीन काल से चले आ रहे थे।

मदिरा व नशीली वस्तुओं का उत्पादन यहाँ प्राचीन काल से होता चला आया। यहाँ शक्कर, जौ, चावल तथा महुआ से शराब बनाई जाती थी। इस काल में ताड़ के फलों से ताड़ी निकाली जाने लगी तथा नरियल के पानी से भी शराब बनाई जाने लगी। शराब की अनेक स्थानीय किस्में थीं। गंगा जमुना दोआब के कल्लाल शराब बनाने के लिए प्रसिद्ध थे। अन्य प्रदेशों में अमुक जातियाँ ही शराब बनाया करती थी।[2]

इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योग में तेल की पिराई का उद्योग लगभग सभी गाँवों में था, जहाँ तिलहन की पैदावार अधिक मात्रा में होती थी। कोल्हू से तेल पेरने की प्रथा भी पुरानी थी और सर्वत्र विद्यमान थी। तेल पेरने का काम केवल तेली ही किया करते थे। थक्कर फेरू के अनुसार १४वीं शताब्दी में (१३४७ ई०) तेल का उद्योग विकसित उद्योगों में था। उसके अनुसार १ मन सरसों, तिल या करदा से उसे

क्रमशः १, २, ५ विसी तेल मिल जाता था। अलबरुनी के अनुसार १ विसी १/४ प्रस्थ के बराबर होता था। इस प्रकार से तिल से १/४, सरसों से २/४, करदा से ५/४ प्रस्था तेल मिलता था।

वस्त्र उद्योग

इस काल में कपास के पेड़ों में से कपास निकालना और उसमें से विनौले निकाल कर रुई को तैयार करना, रुई से सूत कातना भी ग्रामीण जनता का उद्योग था। प्रो० इरफान हवीव के अनुसार सूत कातने के चरखों के प्रयोग भारतवर्ष में १४वीं शताब्दी में हुआ किन्तु इस कथन में लेशमात्र सत्यता नहीं है। इससे पूर्व की शताब्दियों से सम्बन्धित ग्रन्थों तथा शिलालेखों में सूत की चरखे द्वारा कताई के अनेक साक्ष्य उपस्थित हैं। सूत कातने के बाद गाँव ही में लगी हुई खड्डियों में कपड़े की बुनाई होती थी। जब कपड़ा वन कर तैयार हो जाता था तो उसे प्रति टुकड़े या उसके भार के हिसाब से वाजार में बेचा जाता था। इस काल में वस्त्र उद्योग लगभग उन सभी गाँवों में या प्रदेशों में फैला हुआ था जहाँ कि कपास की खेती होती थी या निकटवर्ती स्थानों से कपास या सूत आसानी से उपलब्ध होता था।

वास्तव में भारतवर्ष वस्त्र उद्योग के लिये वड़ा प्रसिद्ध था। ज्योतिश्वर ने अपने ग्रन्थ **वर्णरत्नाकर** (१३-१४ शताब्दी) में २० प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है, इसके अतिरिक्त उसने २० प्रकार के देशी वस्त्रों, १३ प्रकार के निर्मूवन वस्त्र, सादे कपड़ों तथा १४ प्रकार के सर्वोत्तम कपड़ों का उल्लेख किया है। प्रो० इरफान हवीव के अनुसार रुई धुनने की कमान एक वाह्य वस्तु थी। भारत में १३वीं शताब्दी से पूर्व उसके प्रयोग का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। किन्तु दक्षिण भारत में अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि धुनिया की कमान २ सदी ई० में तथा ६ठवीं सदी ई० के पूर्व यहाँ थी। **अगनानुम** तथा **नर्रानई** में धुनियाँ की कमान का प्रयोग काव्य में उपमा के रूप में किया गया। १२वीं शताब्दी की **पिन्दानुजुक्ति** की टीका में जैन लेखक मलयागिर ने जुलाहे के लिए धागा तैयार करने की विधि के सन्दर्भ में विभिन्न प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि स्त्रियाँ पिंजांना से कपास को धुन कर उसे नरम वनाती थी। इसी काल में संस्कृत के शब्दकोष **अभिदान चिन्तामणि** में भी पिंजांना का उल्लेख है। किन्तु इरफान हवीव के मतानुसार कमान का चलन यहाँ १४वीं शताब्दी में रुई धुनने के लिए प्रारम्भ हुआ। एसामी ने पहली वार उसका उल्लेख किया है। १२वीं शताब्दी में चरखी का प्रयोग जैन सन्त भवन्दी मुनीवर ने किया है जिससे ज्ञात होता है कि कपास को रुई में परिणित कर उसे चरखी से कातने की क्रिया यहाँ के लोगों को ज्ञात थी। अपने ग्रन्थ नन्नुल, जो कि व्याकरण पर था, में मुनीवर ने काव्य-रचना की तुलना कदीर (तकली) से कताई करने से की है। प्रो० हवीव का अनुमान कि चरखे से सूत की कताई चीन से भारत में मुहम्मद गौरी द्वारा उत्तरी भारत की विजय के पश्चात् आई

सही नहीं है। शिमोगा जिला में स्थित शिकारपुर तालुका के अजम्बूर नामक गाँव से प्राप्त शिलालेख (११८४ ई०) में सीधे (Vertical) करघे का उल्लेख है। इस शिलालेख में छत से रस्सी द्वारा बाँधे गए करघे का उल्लेख है। प्रो० हबीब के अनुसार ईरानी सीधे करघा, जो कि भारत के लिए अनजान वस्तु थी, का प्रयोग दरियाँ बुनने में किया जाता था। उनके अनुसार पहली बार आन्ध्र में बुलूर नामक स्थान पर १६७८ में स्ट्रीशम मास्टर ने इस प्रकार का करघा देखा था, परन्तु शिलालेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सीधा करघा यहाँ १२वीं शताब्दी में था।

इसी प्रकार बेड़े (Horizontal) करघे के बारे में भी अनेक साक्ष्य प्राप्त हैं। इरफान हबीब के अनुसार बेड़ा करघा भी ईरान से भारत आया। किन्तु दक्षिण भारत के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का करघा यहाँ ११वीं शताब्दी में था। अच्छतारी का सन्दर्भ १००१ ई० में उत्तरी आरकट जिले में छेयार तालुका के तिरुवोत्तर गाँव के एक शिलालेख में मिलता है। अच्छ्दू शब्द का अर्थ छापा या साँचा है। किन्तु जब उसे 'तारी' के साथ जोड़ दिया जाता है तो उसका अर्थ करघा हो जाता है। इस प्रकार से बेड़े करघे का भी प्रयोग यहाँ प्रचलित था। इस प्रकार से दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व वस्त्र उद्योग भारत के सबसे बड़े उद्योगों में था। इस उद्योग में सूती, ऊनी व रेशमी वस्त्रों का उत्पादन सम्मिलित था। इस देश के विभिन्न भागों में कपास की उत्तम पैदावार हुआ करती थी। मार्कोपोलो[3] तथा वस्साफ ने गुजरात में कपास की खेती के लिए उत्तम मिट्टी का तथा अत्यधिक कपास के उत्पादन का विवरण दिया है। चीनी राजदूत चाँग हों के साथ द्विभाषिए के रूप में सम्बद्ध महुआ ने १४०६ में बंगाल का भ्रमण किया और उसने वहाँ ५-६ प्रकार के सूती वस्त्र बनते हुए देखे।[४]

ऊन पहाड़ी प्रदेशों से सुलभतः उपलब्ध होता था हालांकि मैदानी क्षेत्रों में भी भेड़ों का पालन किया जाता था। बहुत ही उत्तम किस्म का ऊन या फर अत्यधिक मात्रा में विदेशों से आयात किया जाता था। उनसे बनाए गये वस्त्रों का प्रयोग केवल अभिजात वर्ग ही किया करता था।

बंगाल में रेशम के कीड़ों का पालन होता था, लेकिन फिर भी रेशम का विदेशों से आयात हुआ करता था। रेशम के वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित कुछ अन्य उद्योग, जैसे कि कढ़ाई उद्योग, ज़री के काम का उद्योग, छपाई व रंगाई के उद्योग, बंगाल के अतिरिक्त हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में फैले हुए थे। भारतीय वस्त्र बहुत ही उत्तम किस्म के होते थे और उनका उत्पादन इतना अधिक था कि वह आन्तरिक बाजारों की माँग को पूर्ण कर दिया करता था। बंगाल व गुजरात से सूती तथा अन्य प्रकार के कपड़ों का निर्यात विदेशों को होता था। कपड़ों की उत्तम किस्मों व बहुमूल्य कपड़ों का उत्पादन एक सीमित वर्ग की माँग को ध्यान में रख कर ही किया जाता था, क्योंकि उनका प्रयोग केवल धनी व समृद्धशाली व्यक्ति ही कर सकते थे। गरीब

लोग अपने ही गाँव में बने हुए मोटे कपड़ों को पहना करते थे। वे कभी-कभी विशेष त्योहार पर या विवाह के अवसरों पर ही बहुमूल्य वस्त्र खरीदा करते थे।

अभिजात व धनी वर्ग के लोग रेशमी, उत्तम मलमल, ज़री के काम के कपड़े तथा विभिन्न प्रकार के ऊन व बढ़िया मुलायम वालों से बने हुए वस्त्र ही पहना करते थे। शीत ऋतु में जबकि वे बढ़िया मुलायम वालों व उत्तम किस्म के ऊन के वस्त्रों का प्रयोग करते थे, गरीब लोग रुई भरे हुए वस्त्र तथा साधारण कम्बल का प्रयोग करके ही जाड़ा काट लिया करते थे। इस काल में उत्तम किस्म के वस्त्रों के उत्पादन ने बड़ी प्रगति की और यहाँ बढ़िया से बढ़िया कपड़ा बनने लगा। अलाउद्दीन खिल्जी के राज्यकाल में कपड़ों के भाव निर्धारित किए जाने के सम्बन्ध में बरनी ने कुछ रेशमी व सूती कपड़ों के नाम इस प्रकार दिए हैं—खज देहली, खज़ कौल, मश्रूमशेरी उत्तम, बुरद उत्तम, दबाले लाल (धारीदार कपड़ा) कुरद साधारण, अस्तरलाल नागौरी, अस्तर साधारण, शीरीन वफत उत्तम, शीरींन वफ्त औसत, शीरींन वफ्त, साधारण सिलहती, उत्तम सिलहती, औसत सिलहती, साधारण मलमल (किपसि) बारीक, मलमल, साधारण चादर।[५] उत्तम प्रकार के कपड़ों में तस्वीह, तबरेज़ी, सुनहरे काम के कपड़े, देहली की खज़, कमख्वाब, शुशतरी, हरीरी, चीनी, भीरम, देवगिरी के नाम दिए गए हैं।[६] दक्षिण में देवगिर तथा महादेवनगरी वस्त्र उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे और उन्हीं शहरों के नाम पर उन वस्त्रों के नाम भी रक्खे गए। उनकी किस्म बहुत ही अच्छी थी व वे देखने में भी बहुत ही खूबसूरत लगते थे। अन्य प्रकार के वस्त्रों की किस्मों में बैरमिया, सलाहिया, शीरीन, कत्तान-ए-रूमी, किवाद आदि वस्त्रों के नाम भी मिलते हैं। कपड़ों की यह किस्में विभिन्न शहरों में तैयार की जाती थीं। उत्तरी भारत में अन्य शहरों के अतिरिक्त दिल्ली में भी विभिन्न प्रकार का कपड़ा मिलता था, परन्तु यह निश्चित ढंग से नहीं कहा जा सकता है कि क्या विभिन्न प्रकार के कपड़े यहाँ के कारखानों में बनते थे या वे बाहर से लाकर यहाँ बेचे जाते थे। अवध में गरीबों व सन्तों के पहनने के लिए पत नामक मोटा कपड़ा बनता था, जो कि व्यापारी दिल्ली लाकर बेचते थे। दिल्ली में तथा कोल में रेशम का कपड़ा और इसके अतिरिक्त रेशम व सूत मिला हुआ कपड़ा बुना जाता था। अमीर खुसरो ने खज़ाइनुल फ़ुतूह में लिखा है कि दिल्ली में दारुल-अदल में प्रत्येक प्रकार का कपड़ा, किरपास, हरीर, शीत तथा ग्रीष्म में पहनने के लिए बिहार से गुले बकावली, शीर गलीम, जुज, देवगिरी, महादेव नगरी सभी बिकते थे।[७] इतना तो निश्चित है कि यहाँ विभिन्न प्रकार के कपड़ों का भण्डार रहत था। यहाँ उत्तम किस्म की मलमल का दाम १०० तन्के तक था।[८] इसके अतिरिक्त यहाँ मलमल, रेशम तथा ज़री के वस्त्रों का भण्डार अन्य शहरों की तुलना में अधिक रहता था। थक्कर फेरू के अनुसार दिल्ली व दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों में वस्त्र उद्योग समृद्धशाली था। यहाँ विभिन्न प्रकार के वस्त्र जैसे कि जुरला, अटाला,

करवस्का बुने जाते थे। विभिन्न रंगों की साड़ियाँ भी यहाँ उपलब्ध थीं। पाँच रंगों वाले कपड़ों के टुकड़े बारह हाथ लम्बे तथा दो रंग के कपड़े आठ हाथ लम्बे तथा ५ हाथ चौड़े यहाँ बिकते थे। फेरू के अनुसार कपड़ों की सिलाई में १०० हाथ कपड़े में १½ हाथ कपड़ा कटाई में बेकार हो जाता था। इसी प्रकार धुलाई के समय वह १, २ या तीन हाथ सिकुड़ जाता था। उसके अनुसार ऊनी कपड़े, विशेषत: कम्बल भी यहाँ बनते थे। उसने ८ × ५ हाथ के तथा ६ × ३ हाथ के कम्बलों का उल्लेख किया है।

ज्योतिश्वर (१३-१४ शताब्दी) ने १७ प्रकार के वस्त्र-गृह या कपड़ों की कनातों का विवरण दिया है। इसी प्रकार वर्थमा (१५०३-१५०८) तथा बारबोसा (१५१४ ई०) ने बंगाल में बनाये जाने वाले कपड़ों का उल्लेख किया है।[९]

समस्त भारतवर्ष में बंगाल व गुजरात में सबसे अधिक किस्मों के कपड़ों का उत्पादन व निर्यात होता था। यहाँ बन्दरगाह थे। इन दोनों प्रदेशों का सम्बन्ध विदेशों से होने के कारण वस्त्र उद्योग के विकास में सुविधा प्राप्त हुई। बंगाल में सर्वोत्तम किस्म का कपड़ा बनता था। न केवल अमीर खुसरो वरन् महुआँ, वर्थमा और बारबोसा ने यहाँ के वस्त्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महुआँ ने बंगाल में भ्रमण करते समय मलमल की ५-६ उत्तम किस्में, ज़री के काम की टोपियाँ और रेशम के रूमाल देखे। वर्थमा और बारबोसा उससे सहमत हैं किन्तु वर्थमा के अनुसार संसार में कहीं भी इतना अधिक सूती कपड़ा नहीं बनाया जाता था जितना कि बंगाल में। उसने बैरमिया, नमूना, लिज्जती, कैन्तर, दौजर, सिनावफ नामक किस्म के उत्तम कपड़े वहाँ देखे। बारबोसा के अनुसार बंगाल में सिरबन्द नामक शश बनता था जिसे योरुपियन लोग अपनी स्त्रियों के सिर पर बाँधने के लिए तथा ईरानी और अरब व्यापारी पगड़ियों के लिए अत्यधिक पसन्द करते थे। अरब व्यापारियों को बंगाल में बना हुआ सिनावफ नामक कपड़ा कमीज़ों के लिए बहुत ही पसन्द था। इसके अतिरिक्त घरेलू बाजार व बंगाल के लोगों की आवश्यकताओं के लिए वहाँ रेशम व सूती पगड़ियाँ व धोतियाँ बनती थीं और उनका बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

इसी प्रकार गुजरात भी सूती कपड़ों के उद्योग के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था। खम्भात का रेशमी वस्त्र बहुत ही प्रसिद्ध था। उसकी गणना बहुमूल्य वस्त्रों में होती थी। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने उसका मूल्य नियन्त्रित कर दिया और उसका प्रयोग केवल अमीरों के लिए निश्चित कर दिया। बारबोसा के अनुसार खम्भात में सभी छपे हुए कपड़े विभिन्न प्रकार के सूती तथा मोटे कपड़े तथा सस्ते किस्मों की मखमल, रेशमी मलमल आदि बनती थी। गुजरात के अन्य भागों में भी कपड़े की अन्य किस्मों का उत्पादन होता था। गुजरात में रेशम का कपड़ा बहुत ही अच्छा बनता था। वहाँ का पटोला सुप्रसिद्ध था। पटोला वस्त्र इतने सुप्रसिद्ध थे कि बरनी ने उसका उल्लेख अला-उद्दीन खिल्जी द्वारा देवगिर से प्राप्त लूट में किया है।[१०] गुजरात रेशम व सोने के तारों से कढ़ाई के लिए भी सुप्रसिद्ध था।

वस्त्र उद्योगों के अतिरिक्त ऐसे बहुत से छोटे-मोटे उद्योग थे जहाँ कि दरियाँ, गिलाफ, चादरें, कालीन, प्रार्थना करने की दरियाँ तथा अन्य वस्तुएँ बनती थीं। दौरते बारबोसा, जिसने सुल्तान महमूद शाह बगेड़ा के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में गुजरात का भ्रमण किया, ने वहाँ बनने वाले कपड़ों की अनेक किस्मों का उल्लेख किया है। उसने सूती कपड़ों में उत्तम, मोटे तथा छपे हुए कपड़ों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। यहाँ रेशम के कपड़े भी विभिन्न प्रकार के बनते थे। उसके अनुसार रेशमी मखमल तथा टफेटा के उत्पादन के बावजूद यहाँ का रंगीन मखमल ऊँची किस्म का नहीं था। उसने यह भी लिखा है कि खम्भात में सूती कपड़े की बनी हुई रजाइयाँ व परिधान भी बनते थे।[११]

ज्योतिश्वर ने **वर्णरत्नाकर** में मसेहरी तथा मोजों का उल्लेख किया है। अतएव इस काल में उनका भी उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। बलबन ने अपने अमीरों से मोज़ा पहनने के लिए कहा था। तुर्क अफगान काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक ग्रन्थों में मोज़े के सन्दर्भ मिलते हैं। विद्यापति ने भी **कीर्तिलता** में उसका उल्लेख किया है। उसने जौनपुर के बाजार में मौज़ला मोज़ा बिकते हुए देखा।[१२] इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस काल में मोजा बनाने का भी उद्योग विकसित हुआ होगा।

काश्मीर में १३वीं शताब्दी से पूर्व ही शाल बनाने के लिए उद्योग स्थापित हो चुके थे। मुहम्मद तुग़लक ने उपहार में काश्मीरी शालें चीन के सम्राट के लिए भेजी थीं।[१३]

उत्तरी भारत में तेरहवीं शताब्दी में तुर्की हिन्दी सत्ता स्थापित होने से पूर्व, दक्षिणी भारत में हिन्दू शासकों के अन्तर्गत वस्त्र उद्योग का अत्यधिक विकास हो चुका था। वहाँ सीधे व बेड़े करघों का प्रयोग हो रहा था। कपड़ों की रंगाई व उन पर छपाई का कार्य भी वहाँ होता था। प्रो० इरफान हबीब के अनुसार नवीं शताब्दी से पूर्व कपड़े पर छपाई का कार्य भारत में प्रारम्भ नहीं हुआ, किन्तु ८वीं शताब्दी से पूर्व दक्षिण में भारत में छपाई का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। **मनोसोल्लास** में इसका सन्दर्भ है। इसमें लिखा है कि वस्त्र को रंगों में धोकर फिर उस पर यन्त्र से छपाई की जाती थी। यहाँ यन्त्र से तात्पर्य लकड़ी पर बने हुए छापे से है। यहाँ बन्धना की तकनीक भी प्रचलित थी जिसके अनुसार कपड़े में गाँठें बाँध कर उसे विभिन्न रंगों में रंगा जाता था। इस प्रकार से दक्षिण भारत में अनेक प्रकार के वस्त्र उद्योग थे।

दक्षिण में चिंगुलपुट जिले से प्राप्त एक शिलालेख (१४८५ ई०) से कैकोला जुलाहों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। १४वीं से १६वीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत में व्यवसायिक जुलाहों के अनेक समुदाय थे, इससे मालूम होता है कि वहाँ भी कपड़ा बुनने का व्यवसाय कृषि से पृथक हो गया था। जुलाहों की बस्तियाँ मन्दिरों के पास थीं। यह जुलाहे मन्दिरों के लिए ही नहीं वरन् अन्य लोगों के लिए ही कपड़ा बुनते थे।

वस्त्र उद्योग में एक अनूठे ढंग का श्रम संगठन मिलता है। श्रमिकों में धुनियाँ अपनी सेवाएँ अर्पित करता था। सूत की कताई साधारण स्त्रियाँ व दासियाँ घरों में किया करती थीं। जुलाहे घरों में खड्डी लगाकर बुनाई का कार्य करते थे। वे बाज़ार में सूत खरीद लिया करते थे। जहाँ तक सोने व चाँदी के तारों से ज़री के काम या कढ़ाई का प्रश्न था यह बहुमूल्य काम शाही कारखानों में ही होता था। दिल्ली से मुहम्मद तुग़लक के कारखानों में ४००० रेशम के कारीगर विभिन्न प्रकार की खिलअते व वस्त्र तैय्यार करने तथा विभिन्न प्रकार के कपड़े बुनने के लिये थे और वे उन पर कढ़ाई करते थे। फ़िरोज़शाह तुग़लक के कारखानों में प्रति शीतऋतु में ६,००००० तन्के के मूल्य के कपड़े आदेशानुसार तैयार किए जाते थे। उसके फर्राश-खाने में प्रतिवर्ष २,००००० तन्के के मूल्य के कालीन बना करते थे।[14]

इस काल में वस्त्र उद्योग के विकास के साथ-साथ वस्त्रों की छपाई व रंगाई के उद्योगों का भी विकास बड़ी तेजी से हुआ। यहाँ नील की खेती पहले से ही होती थी और उसका प्रयोग अब कपड़ों की रंगाई के लिए किया जाने लगा। उसी से विभिन्न प्रकार के रंग छपाई के लिए तैयार किए जाने लगे। इस काल में रंगीन वस्त्रों को पहनने का शौक था। अतएव धारीदार वस्त्र, रंगी हुई साड़ियाँ, छपी हुई साड़ियाँ व कपड़े बड़ी मात्रा में तैयार किए जाने लगे। इसी प्रकार से चादरें व ओढ़ने के लिए रजाइयाँ भी छपी हुई व रंगीन बनाई जाने लगी।

जिन गाँवों या प्रदेशों में सन या जूट उत्पन्न होता था वहाँ रस्सी बनाने के उद्योग विद्यमान थे। बंगाल व दक्षिण के समुद्री तटीय प्रदेशों में या तो पटसन या फिर नारियल की जटा से रस्सियाँ बनाई जाती थीं। इसी प्रकार से इन्हीं गाँवों में डलियाँ बनाने का भी कार्य होता था।

धातु उद्योग

इस देश में धातु उद्योग बहुत ही प्राचीन था। यहाँ के लोग धातुओं को पिघलाने, उन्हें ढाल कर तरह-तरह की मूर्तियाँ, बर्तन, हथियार बनाने में पहले से ही प्रवीण थे। इस देश के विभिन्न भागों में लोहे, ताँबे व कोयले की खानें थीं। यद्यपि इन खानों में खदान का कार्य अभी बड़े पैमाने पर प्रारम्भ न हुआ किन्तु थोड़े भाग में जो कुछ उपलब्ध होता था उसका विभिन्न उद्योगों में प्रयोग होता रहा। यहाँ की ढाल, तलवारें, तीर, भाले, नित-दिन प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ जैसे कि हाथ धोने के बर्तन, प्याले, चाकू, कैंची, विदेशों में अब तक ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। सल्तनत काल में धातु उद्योग को प्रोत्साहन मिला। प्रशासन की प्रकृति सैनिक होने के कारण सुल्तानों का ध्यान अच्छी नस्ल के घोड़ों व अश्वारोहियों पर लगा रहा। उन्हें गोले की बौछार करने के लिए छोटी-छोटी तोपें चाहिए थी। अतएव घोड़े के पैरों की नाल, अश्वारोहियों के लिए ढाल व कवच, अस्त्र, शस्त्र व अन्य सैन्य साधनों की आवश्यकता हुई। ऐसी स्थिति में लोहे की खपत बढ़ी। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अहमदाबाद

शहर की स्थापना १४११ में हुई। अस्त्र उत्पादन का यह एक महान् केन्द्र था। गुजरात का सुल्तान महमूद शाह वगेड़ा जब गिरनार पर आक्रमण करने के लिए १४६७ में रवाना हुआ तो उसके शस्त्रगार का रक्षक महमूदाबाद के बने हुए ३८०० चाँदी के हृथ्थे, जिनका वजन ५ सेर से कम न था, १७०० कटारे और खपवे, जिनके हृथ्थे शुद्ध सोने के तथा जिनका वजन २½ से ३ सेर तक का था, भी ले गया।[१५] लोहे का प्रयोग भवन-निर्माण में भी होने लगा। इसी प्रकार से ताँबे, सोने व चाँदी की खपत भी बढ़ी। अभिजात वर्ग में सोने व चाँदी के आभूषणों की माँग बढ़ाने के साथ-साथ स्वर्णकारों का भी व्यवसाय बढ़ा। यहाँ बढ़िया जड़ाऊ का काम होने लगा। बारबोसा के अनुसार खम्भात में अनेक कुशल स्वर्णकार थे। यह स्वर्णकार धातु से बहुत ही सुन्दर चँदवे तैयार किया करते थे।[१६] १४वीं शताब्दी में दिल्ली के निवासी तथा सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के अधिकारी थक्कर फेरू के अनुसार इस काल में सोने के आभूषण बहुत ही लोकप्रिय थे। सर्वोत्तम स्वर्ण को महाकनक कहते थे। उसकी शुद्धता के कारण उसे बारहवन्ती की श्रेणी में रक्खा गया। स काल में विभिन्न तौल के आभूषण बनाए जाते थे। इसके अतिरिक्त जैसे ही सिक्कों का प्रचलन हुआ और देश के विभिन्न भागों में टकसालें स्थापित हुईं वैसे ही तांबे व चाँदी की खपत और भी बढ़ गई। अभिजात वर्ग ने चाँदी के वस्त्रों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया जिससे विभिन्न प्रकार के सुन्दर नक्काशी किए हुए जड़ाऊ आभूषण व वर्तन, पेटियाँ आदि सहस्त्रों प्रकार की वस्तुएँ बनने लगीं। अफीफ के अनुसार दिल्ली में कोई ऐसा परिवार न था जिसके पास अत्यधिक आभूषण न हो। जिस प्रकार अफीफ ने जनता की विपन्नता का विवरण किया है उससे ज्ञात होता है कि सोने व चाँदी के आभूषण बनाने के उद्योग में अब तक अत्यधिक प्रगति हो चुकी थी।[१७] संक्षेप में धातु उद्योग को इस काल में बड़ा प्रोत्साहन मिला और उसमें बहुत ही तीव्र गति से प्रगति हुई। फख्रुमुद्दब्बिर के अनुसार भारतीय तलवारें सर्वश्रेष्ठ थीं। यहाँ की दमिश्की तलवार बहुत ही मँहगी थी। यहाँ अन्य प्रकार की तलवार हल्के लोहे को चाँदी व तांबे के साथ मिलाकर बनाते थे। एक और अन्य प्रकार की तलवार कच्छ में कुरीज में बनाई जाती थी। दक्षिण में पीतल तथा मिश्रित धातु के उद्योगों के कारण यहाँ विदेशों से तांबा व राँगा आयात होने लगा। इस काल की सर्वोत्तम मुद्रा व्यवस्था धातु उद्योग में लोगों की निपुणता का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

पत्थर व ईंट उद्योग

धातु उद्योग से भी बड़ा उद्योग पत्थर व ईंटों का उद्योग था। प्राचीन काल से ही इन दोनों उद्योगों का समय के साथ निरन्तर विकास होता रहा। भवनों, स्तूपों, विहारों, मन्दिरों आदि का निर्माण करना भारतीयों की प्रकृति थी और दोनों का प्रयोग वे विविध कार्यों में करते रहे। किन्तु मुसलमानों के आगमन के पश्चात् भारतीय शिल्पकारों के लिए उन्नति के द्वार खुल गये। मुसलमान शासकों व अमीरों की रुचि

दुर्गों, विशाल महलों, मस्जिदों, मकबरों, कुण्डों, बावलियों, बारादरियों को बनवाने में थी। परिणामस्वरूप उन्होंने भारतीय शिल्पकारों जिनकी इस देश में कमी न थी, की कारीगरी का पूरा-पूरा उपयोग किया। अमीर खुसरो के अनुसार यहाँ के शिल्पकारों की भाँति संसार के किसी देश में शिल्पकार न थे। उन्हें सुल्तानों व अमीरों का प्रश्रय प्राप्त था। शिल्पकार वर्ग में बड़ी गतिशीलता थी। उन्हें जहाँ भी निर्माण कार्य मिलता था वे वहाँ चले जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी ने ७०,००० मजदूरों व शिल्पकारों को राजकीय इमारतों को बनाने के लिए रक्खा। कुशल कारीगरों की संख्या में कमी न होने के कारण भी फिरोजशाह तुगलक ४००० दासों को विभिन्न शिल्प कलाओं को सीखने में लगा दिया। बाबर ने १५२६-३० में भारतीय कारीगरों व शिल्पकारों की बड़ी प्रशंसा की है। उसने ६८० पत्थर काटने वालों को आगरा में इमारतें बनाने में लगाया तथा अन्य १४८१ व्यक्तियों को अन्य स्थानों में इसी काल में जब चूने तथा गारे का प्रयोग करने की पद्धति का विकास हुआ तब पत्थर व ईंट के उद्योगों ने और भी प्रगति की। थक्कर फेरू ने निर्माण उद्योग का विस्तृत विवरण **गणितसार कौमुदी** में दिया है। उसके अनुसार ८ प्रकार की इमारतें, गोयता, पवास, वत्ता, तैपरवा, टका, सुनैना, पुलाल्धा, कूप और भावी बनाये जाते थे। इनमें से कुछ सीधी दीवार वाले, कुछ खम्भे वाले, कुछ गोलाकार, कुछ त्रिकोण आकार वाले होते थे। उसने सीढ़ियाँ, पुलों, कुओं, तालाबों का इन इमारतों में उल्लेख किया है। प्रत्येक इमारत में लगने वाले पत्थरों व ईंटों को गिनने की विधि भी उसने बताई है।

इस काल में लघु उद्योगों में हाथी दाँत का काम, कृत्रिम आभूषण बनाने का उद्योग तथा मूँगे के काम के उद्योग भी थे। मूँगे का काम बंगाल व गुजरात में होता था। बारबोसा ने यहाँ अद्भुत वस्तुकलाओं में हाथी के दाँत में पच्चीकारी तथा दस्तकारी का उल्लेख किया है। मोहरें भी बनती थीं। सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासन काल में मियाँ ताहा संसार की सभी कलाओं का ज्ञाता था। सुल्तान उसकी बड़ी प्रशंसा किया करता था। उसने हाथी दाँत से कागज का एक पन्ना बनाया। उसने सुल्तान के लिए एक ताज भी बनाया। उसने नील कमल की भाँति एक कर्णफूल, जिसे कि हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ कान में पहनती थीं बनाया। उसके भीतर भौंरे रहते थे। जब स्त्री सिर हिलाती थी तो कर्णफूल में से भौंरे निकल कर उस स्त्री की आँखों के सामने मण्डराने लगते थे। जब स्त्री सिर हिलाना बन्द कर देती थी तो भौंरे पुनः उसी कर्णफूल में बन्द हो जाते थे।[१८] गुजरात में मूँगे बहुत ही उत्तम किस्म के होते थे। उनका निर्यात भी होता था। हाथी दाँत का काम बहुत ही कम स्थानों में होता था। हाथी दाँत के कारीगर चूड़ियाँ, कड़े, तलवार की मूंठ, शतरंज के मुहरें, विभिन्न रंगों के पलंग आदि तैयार करने में प्रवीण थे।[१९] इन वस्तुओं का व्यापार न केवल भारतवर्ष के अन्दर ही होता था वरन् उन्हें निर्यात भी किया जाता था। इस काल में झूठे मोती बनाना भी लोकप्रिय उद्योग था। गुजरात में झूठे मोती बनाये जाते थे। इसी प्रकार से दस्तकारी में

खिलौनों में चिड़िया, पशु, आदि बनाना भी एक कला थी, जिसका विकास इस काल में हुआ। लकड़ी की वस्तुएँ बनाने के उद्योग व काष्ठकला का भी विकास हुआ।

कागज उद्योग

सबसे पहले कागज़ बनाने का अविष्कार चीन में हुआ। उसके बाद यह उद्योग मुसलमान देशों में पहुँचा और वहाँ से यह उद्योग हिन्दुस्तान आया। सल्तनतकालीन प्रशासन कागज़ी प्रशासन था और इसलिए जैसे-जैसे प्रशासन का विस्तार हुआ कागज़ की माँग बढ़ी। शाही फरमान, विभिन्न विभागों का हिसाब-किताब, भू-राजस्व का हिसाब-किताब, प्रशासनिक आदेशों आदि के लिए नित-दिन कागज़ की आवश्यकता पड़ने लगी, अतएव कागज़ बड़ी मात्रा में यहाँ बनना प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त विदेशों से आने वाली पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने के व्यवसाय में भी कागज़ की खपत बढ़ी। शिक्षा के विकास के साथ-साथ नई रचनाओं के लिए भी कागज़ की आवश्यकता का बढ़ना स्वाभाविक ही था। अतएव ऐसी स्थिति में कागज़ का उद्योग बढ़ा। दिल्ली तथा बड़े शहरों के बाज़ारों में किताबों की दुकानें दिखाई देने लगीं। यहाँ तक की दूकानदार विभिन्न वस्तुओं को कागज़ में बाँध कर देने लगे। कवि कंकन चन्दी से ज्ञात होता है कि १६वीं शताब्दी तक बंगाल में कागज़ उद्योग का विकास हो चुका था। पेयार्ड ने लिखा है कि गोवा के पुर्तगाली खम्भात व चीन तथा योरूप से कागज़ का आयात करते थे। महुँआ के अनुसार बंगाल में पेड़ की छाल से चमकदार चिकना कागज़ बनाया जाता था।[२०]

चर्म उद्योग

इस काल में चर्म उद्योग का भी विकास हुआ। चर्मकारों का एक विशेष समुदाय था। इस काल में चमड़े की वस्तुओं की माँग प्राचीन काल की अपेक्षा बहुत बढ़ी। पूर्व मध्यकालीन भारत में सिंचाई के लिए पानी निकालने के लिए चमड़े की मोट, घोड़ों के लिए रास व ज़ीनें, तलवार रखने के लिए म्यानें, क़ुरान व किताबों की जिल्दों, जूतों-जूतियों आदि की आवश्यकता समय के साथ बढ़ी। बंगाल में चमड़े की थैलियों में शक्कर भरकर दूर-दूर तक भेजी जाती थी। इस प्रकार की अनेक वस्तुओं की आवश्यकता समाज के विभिन्न वर्गों को होती थी। अतएव चमड़े के उद्योग का का विकास हुआ। कच्चे व पकाये गये चमड़े से इन वस्तुओं का निर्माण होने लगा। गुजरात में लाल व नीले चमड़े की चटाई पर पशु-पक्षियों के चित्रों की कढ़ाई सोने-चाँदी के तारों से होती थी। यही नहीं पका हुआ चमड़ा अरब भेजा जाता था।

उपरोक्त विवरण से विभिन्न कुटीर उद्योगों का आभास मिलता है। यह सभी कुटीर उद्योग विकास के प्रथम चरण पर थे। नगरी क्रान्ति ने उद्योगों के विकास में सहायता की, क्योंकि शहरी जीवन में अनेक नई-नई वस्तुओं की आवश्यकता सुविधाजनक जीवन के लिए होती थी। उपरोक्त सभी उद्योग गाँवों व शहरों में फैले हुए थे।

कारखाने

इस प्रकार के कुटीर उद्योगों के साथ-साथ इस काल में राजकीय व व्यक्तिगत

अमीरों के कारखाने भी होते ही थे, जहाँ कि सुल्तान व उसके परिवार के सदस्यों व राज्य के विभिन्न विभागों के काम आने वाली वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। शाही कारखानों को राज्य व व्यापारियों से वित्तीय सहायता मिलती थी। दिल्ली के लगभग सभी सुल्तानों के बड़े-बड़े कारखाने थे जहाँ कि विविध वस्तुओं का उत्पादन होता था, जहाँ हज़ारों की संख्या में कारीगर कार्य किया करते थे। प्रत्येक वर्ष सुल्तान अपने अमीरों को खिलअतें, छत्र, पताकाएँ, ज़ीन सहित घोड़े, सोने व चाँदी की ज़री से कढ़ी हुई ज़ीने व झूलें उपहार में प्रदान करते थे। इन शाही वस्तुओं का उत्पादन शाही कारखानों में ही होता था।[21] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने भी पूर्व सुल्तानों की भाँति अपनी व अपने परिवार या राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न प्रकार के कारखानों की स्थापना की। शिहाबुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि इनमें से एक कारखाना रेशमी वस्त्रों व कढ़ाई करने का था जिसमें ४००० कारीगर कार्य करते थे। यहाँ खिलअतें व उपहार में देने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्र तैयार किये जाते थे। सुल्तान प्रतिवर्ष २ लाख पूरे वस्त्र वितरित करता था अर्थात् १,००००० शीत ऋतु में तथा १,००००० शरद ऋतु में। शीत ऋतु के परिधान सिकन्दरिया से आयात किये हुए कपड़े के बनाए जाते थे। ग्रीष्मकालीन परिधान सूती कपड़े के बनाये जाते थे, जो दिल्ली या उसके समीपवर्ती प्रदेशों में बनाये जाते थे या चीन तथा ईराक से आयात किये जाते थे। शाही परिधान खानकाहों में वितरित किये जाते थे। इन्हीं कारखानों में ४००० जरदोज़ी का कार्य करने वाले कारीगर अन्तःपुर के लिए किमख्वाब के वस्त्र तथा सुल्तान के लिए परिधान तैय्यार करते थे। इनमें से कुछ खिलअतें सुल्तान राज्य के पदाधिकारियों तथा उनकी पत्नियों को भी प्रदान करता था।[22] यह कारखाने सुल्तान के प्रयोग में आने वाली सभी वस्तुओं जैसे कि टोपियों और जूतों, पर्दों, जीन, कढ़ाईदार वस्तुओं, टेपस्ट्री, दरी, कमरबन्द, शश इत्यादि का उत्पादन करते थे।[23]

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने अपने शासनकाल में इन कारखानों की व्यवस्था की। उसके समय ३६ कारखाने थे। वह विभिन्न कारखानों में सामग्री एकत्र करने का प्रयास किया करता था। ताकि प्रत्येक कारखाने को नाना प्रकार की उत्तम वस्तुओं तथा सामग्री उपलब्ध कराई जा सकें। धीरे-धीरे प्रत्येक कारखाने में अत्यधिक बहुमूल्य सामान एकत्र हो गया। उसके समय दो प्रकार के कारखाने थे—(१) रतीवी (२) ग़ैर रतीवी—रतीवी कारखानों में पीलखाना (गजशाला) पायगाह (अश्वशाला) मतबख़ (रसोई), शराबखाना, शमाखाना (रोशनी का प्रबन्ध करने वाला विभाग) शुतुरखाना (ऊँटों का अस्तबल) सगखाना (कुत्तों को रखने का स्थान) आबदार खाना (जल के प्रबन्ध का स्थान) आदि थे। रतीबी कारखाने पर अपार धन व्यय होता था। उनके लिए वार्षिक धन निर्धारित था। उसके लिए एक लाख ६० लाख टन्का प्रति माह व्यय होता था। वहाँ के कर्मचारियों पर तथा अन्य लोगों के वेतन के अतिरिक्त एक लाख साठ हजार चाँदी के तन्के मासिक खर्च होता था। रतीवी कारखाने में पैगाह

सबसे महत्वपूर्ण था। यह पैगाह अनेक स्थानों पर थे। सबसे बड़ा पैगाह शाहखान मुल्तानपुर, किब्ला, दरबार के समीप (पैगान-ए-महल-ए-खास) शकरखाना-ए-खास में था। कुछ विशेष दासों के हाथों में भी एक अन्य पैगाह था। कारखाना नफर (ऊँट अस्तबल) में अनेक ऊँट थे। ऊँट के अस्तबलों के रख-रखाव के लिए दोआब में अनेक गाँव की आय निर्धारित थी। प्रत्येक वर्ष ऊँटों की संख्या में वृद्धि होती रहती थी क्योंकि विभिन्न अक्ताओं के मुक्ती अन्य उपहारों के साथ ऊँट सुल्तान को भेंट में दिया करते थे।

ग़ैर रतीबी कारखाने में **जामादारखाना, अलमखाना** (पताका विभाग) फर्राशखाना (फर्श इत्यादि विभाग) रिकाबखाना (घोड़े की जीन आदि तथा भोजन से सम्बन्धित विभाग) आदि थे। उनमें प्रत्येक वर्ष नये सामान तैयार किये जाते थे। जामादारखाने में प्रत्येक वर्ष शीतऋतु में छः लाख टन्के के मूल्य के शीतऋतु तथा ग्रीष्मऋतु के परिधान तैयार किये जाते थे। आलमखाने पर प्रत्येक वर्ष ८० हजार तन्के खर्च होता था। इसमें व्यय में कार्य करने वालों का वेतन सम्मिलित नहीं होता था। फर्राशखाने में दो लाख तन्के के मूल्य के फर्श बनाये जाते थे। ग़ैर रतीबी कारखाने पर व्यय होने वाली राशि निर्धारित नहीं होती थी।

यह कारखाने बड़े-बड़े खानों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आधीन होते थे। **जामादारखाना** मलिक माली तथा मलिक इस्माइल के आधीन था। **पीलखाना** मलिक शाहीन सुल्तानी, **शिकारखाना** मलिक खिज्र बहराम, **अलमखाना** व **पायगाहे खास** व **रिकाब खाना** मलिक मुहम्मद हाजी, जर्रादखाना (अस्त्र-शस्त्र विभाग) व **सिलहखाना** (अस्त्र-शस्त्र का भण्डार) मलिक मुबारक कबीर के आधीन था। **तश्तदारखाना** मलिक बिलालखान व **जवाहरखाना** ख्वाजए जहाँ सरवर सुल्तानी के हाथों में था। सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक स्वयं इन कारखाने के अधिकारियों तथा **मुत्सर्रिफों** को नियुक्त करता था। जामादारखाने का मुत्सर्रिफ मलिक कमालउद्दीन तूरती खान था। उस समय **अलमखाने, रिकाबखाने** तथा **पीलखाने** के मुत्सर्रिफ का पद अफीफ के पिता तथा चाचा को प्राप्त था। सुल्तान के आदेश की सूचना सर्वप्रथम ख्वाजा अबुल हसन को फर्मान द्वारा दे दी जाती थी। ख्वाजा अबुल हसन कारखाने के **मुत्सर्रिफों** को आदेश देता था कि वे अमुक वस्तुएँ तैयार करवाएँ। कारखानों के हिसाब-किताब की जाँच दीवाने मजमुए में हुआ करती थी। कारखाने के **मुतसर्रिफ दीवान-ए-वजारत** को भी अपना हिसाब-किताब पेश करते थे। प्रत्येक कारखाने मे अगणित निम्न श्रेणी के कर्मचारी हुआ करते थे।[२५]

विविध कुटीर उद्योगों का जो विवरण ऊपर दिया हुआ है उससे कई बातें सामने आती हैं। इस काल में शासक तथा व्यापारी वर्ग ने उनके विकास व उत्पादन में रुचि तो ली किन्तु उन उद्योगों को संरक्षण प्रदान नहीं किया। किसी भी शासक व अमीर ने अपना धन उद्योग में नहीं लगाया। इसलिए कुटीर उद्योगों के मालिकों को अनेक कठिनाइयों व समस्याओं का समय-समय पर सामना करना पड़ा। अधिक पूँजी

उनके हाथों में न होने के कारण वे अत्यधिक उत्पादन नहीं कर सके और न ही अपने उद्योग को कभी बढ़ा सके। दूसरे ऐसे बहुत ही कम उद्योग थे जिनमें व्यवसायिक गतिशीलता हो। साधारणत: एक ही जाति के लोग अपने पुश्तैनी व्यवसाय में लगे रहते थे और उन्होंने दूसरे व्यवसायों में प्रवेश करने की न चेष्टा की और न ही उत्पादन के साधनों में परिवर्तन करने का प्रयास किया और न ही उत्पादन की नवीन तकनीक ही अपनाई।

श्रम की प्रकृति एवं उसकी समस्याएँ

पूर्व मध्यकालीन भारत में श्रम की कोई समस्या न थी कारण यह कि यहाँ श्रमिक अधिक संख्या में विभिन्न कार्यों के लिए उपलब्ध थे। दिल्ली के सुल्तान व अमीर अभियानों द्वारा तथा विभिन्न प्रदेशों पर छापे मारकर दास प्राप्त कर लिया करते थे और इन दासों को विभिन्न कार्यों में या तो स्वयं लगा लेते थे या उन्हें विभिन्न व्यवसायों में प्रवेश करने का अवसर प्रदान कर देते थे। शहरों में विभिन्न उद्योगों में लगे हुए औद्योगिक श्रमिकों और गाँव में कुटीर उद्योगों में लगे हुए श्रमिकों में कोई विशेष अन्तर न था। क्योंकि दोनों ही अपने-अपने व्यवसायों में कुशलता प्राप्त कर लेते थे या कुशलता रखते थे। दोनों को ही प्रशासन की ओर से कोई संरक्षण नहीं मिलता था। अन्तर केवल इतना ही था कि शहरों में शाही कारखाने में कार्य करने वाले कारीगरों को अच्छा वेतन व राज्य की ओर से संरक्षण मिलता था जबकि ग्रामीण कारीगरों को नहीं। दोनों ही समाज के विशेष वर्ग के लिए ही सामान तैयार करते थे। किन्तु यहाँ भी अन्तर केवल रहता था कि शाही कारखानों में सुल्तान व उसके परिवार के सदस्य के लिए वस्तुएँ तैयार होती थी या अमीरों के कारखानों में उनके लिए वस्तुएँ तैयार की जाती थी, किन्तु ग्रामीण कारीगर गाँव के लोगों व निकटवर्ती कस्बों या शहरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वस्तुओं का उत्पादन किया करते थे। शहर ग्रामीण सम्बन्धों को देखते हुए यह कहना भ्रमात्मक होगा कि कारीगर समस्त समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन नहीं करते थे। प्राचीन काल में भी और अब भी शहर की जनता गाँव के उत्पादन पर ही निर्भर रहती थी। चाहे वह कृषि उत्पादन हो अन्यथा गैर-कृषि उत्पादन। इस काल में गाँवों में श्रम की बाहुल्यता के कारण ही कुटीर उद्योग जीवित रह सके। खेतों को जोतने, बोने, उनकी निराई व सिंचाई; फसल की कटाई और मड़ाई के बाद जो भी समय कृषकों को मिलता था उसमें वे अन्य कार्य कर लिया करते थे। जिनका सम्बन्ध किसी उद्योग से न था और जो भूमिहीन थे वे निकटवर्ती शहरों में जाकर रोजी-रोटी कमा कर अपने गाँव को वापस लौट आया करते थे।

इस काल में चाहे राजधानी हो या अन्य शहर, सभी स्थानों में कुशल व सामान्य श्रमिकों की आवश्यकता बराबर रही। दिल्ली के सुल्तान, अमीर, गणमान्य

व्यक्ति अपने लिए रहने के लिए बड़े-बड़े दुर्ग, सुन्दर महल, हवेलियाँ या मकान बनवाते थे। इस कार्य के लिए उन्हें छोटे मजदूर से लेकर कुशल कारीगरों की निरन्तर आवश्यकता पड़ती रही। उन्हें श्रमिक बराबर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होते रहे। मस्जिद, मदरसों, खानकाहें, दायरे व दरगाहें तथा मकबरे मुस्लिम समाज की आवश्यकताएँ थी। धार्मिक तथा सेक्युलर इमारतों को बनवाने में सहस्त्रों मजदूर व कारीगर राजधानी दिल्ली, तदुपरान्त आगरे, प्रान्तीय राजधानियों तथा नये व पुराने शहरों में लगे रहे। यहाँ दूर-दूर से कारीगर, शिल्पकार तथा मजदूर आते रहे क्योंकि उनके आवागमन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। श्रमिक शिल्पकार वर्ग का नगरीकरण में क्या महत्व था इसकी चर्चा अन्यत्र को जावेगी।

कुशल कारीगरों में व्यवसायिक निपुणता इतनी अधिक थी कि वे सुन्दर से सुन्दर वस्तुओं का निर्माण अपने औजारों से व सीमित साधनों से कर लिया करते थे। बारीक से बारीक काम में वे अभ्यस्त, अनुभवी, निपुण और अत्यन्त कुशल थे। अपनी कुशलता को वे अपने साथ संरक्षित रखते थे और अपनी कला को वह अन्य किसी वर्ग के व्यक्ति या जाति व समुदाय के पास नहीं पहुँचने देते थे। उनकी कला वंशानुगत थी। पीढ़ी दर पीढ़ी तक उनकी कला उनके परिवारों में रही। यही कारण था कि उन्हीं के साथ उनकी कला भी समाप्त होती रही। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ विविध प्रकार के असंख्य कारीगर हैं। प्रत्येक कार्य के लिए कारीगरों की एक निर्धारित जाति है जहाँ कि पिता से लेकर पुत्र तक व्यवसाय चलता रहता है।"[२६] यही कारण था कि यहाँ के कारीगर प्रत्येक व्यवसाय में कुशल थे किन्तु विभिन्न उद्योगों के कारण यहाँ हजारों की संख्या में शिल्पकार थे, जैसे कि सुनार, लोहार, टीन का काम करने वाले, बढ़ई, पत्थर काटने वाले, नक्काशी करने वाले आदि। किन्तु ऐसा केवल अपवाद था। ऐसे बहुत से व्यवसाय थे जहाँ कि अमुक व्यवसाय की कला-कौशल एक ही परिवार में कई पीढ़ियों तक सीमित रही क्योंकि परिवार के सदस्यों का यह कहना था कि पुत्र को पिता का और पुत्री को माँ का व्यवसाय अपनाना चाहिये। विभिन्न कुटीर उद्योगों में वस्तु की माँग के साथ-साथ श्रम की कुशलता का भी विकास निरन्तर हुआ। प्रत्येक उद्योग में श्रम की कुशलता में वृद्धि होने से नई-नई जातियों की उत्पत्ति भी हुई। पूर्वी भारत में गुड़ बनाने वालों को मोदक तथा ताड़ का गुड़ बनाने वालों को सियूली कहते थे। आगे चलकर जब गन्ने के रस से शुद्ध चीनी बनने लगी तो उसके बनाने वालों की पृथक जाति स्थापित हो गई।

सल्तनत काल में सबसे अधिक लाभ श्रमिक वर्ग को चाहे वे कुशल शिल्पकार हो या कलाकार, सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के राज्य काल में ही पहुँचा। फिरोजशाह तुग़लक का शासनकाल नवीन नगरों के निर्माण व भवन-निर्माण तथा नहरों, जलाशय, तालाबों के निर्माण अथवा लोकपयोगी कार्यों के लिए प्रसिद्ध था। इन सभी कार्यों के

लिए श्रमिकों की प्रचुर संख्या में उपलब्ध होना नितांत आवश्यक था। बिना उसके उसकी कोई भी योजना पूर्ण हो ही नहीं सकती थी। उसके शासनकाल में इन योजनाओं के लिए श्रमिक प्राप्त करने के कई स्रोत थे। उस समय स्थानीय योजनाओं के लिए अर्थात् नहर, कुओं, जलाशय आदि के निर्माण के लिए कृषक उपलब्ध थे, जिनकी सहायता से तथा जिनके उपयोग के लिए ऐसी योजनाएँ पूरी की गई। श्रम का दूसरा स्रोत भूमिहीन किसान थे, जो कि अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए श्रम की खोज में रहते थे। इसके अतिरिक्त इस काल में दास विविध कार्यों के लिए मौजूद थे। अन्तर्प्रादेशिक गतिविधि में पहले की भाँति कोई कमी नहीं हुई। अफीफ ने लिखा है कि फिरोजाबाद शहर के निर्माण के समय व उसके बाद मजदूर मजदूरी पर किसी न किसी कार्य करने में तल्लीन रहते थे और वे निकट व दूर से आते रहते थे।[२७] अफीफ ने यह भी लिखा है कि प्रत्येक वर्ष राज्य में नये नगर बसाये जाने के कारण मजदूरी करने वालों को प्रत्येक वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा अच्छी मजदूरी प्राप्त होती थी।[२८]

फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में श्रम की कोई समस्या न थी। अनाज का भाव इतना सस्ता था कि मजदूर बड़ी आसानी से मिल जाते थे। जिस प्रकार हजारों व्यक्तियों की सहायता से उसने तेवरा ग्राम तथा मेरठ कस्बे से अशोक की लाटें दिल्ली मँगवाई, उससे पता चलता है कि श्रमिक बहुत अधिक संख्या में उपलब्ध थे। दूसरे इस काल में श्रमिकों के उपलब्ध होने के कारण ही इतनी इमारतों, भवनों, दुर्गों, नहरों आदि का बनना व शहरों की स्थापना होना सम्भव हो सका। इतनी लोकोपयोगी योजनाओं को लागू करने पर भी उसके शासनकाल में बेरोज़गारी की समस्या थी। फिरोजशाह ने आदेश दिया कि शहर में यदि कोई योग्य व्यक्ति बेरोज़गार हो तो उसे सिंहासन के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। इस पर दिल्ली के कोतवाल ने प्रत्येक मुहल्लेदार को बुलाकर उनसे पूछ-ताछ की कि उनके मुहल्ले में कोई बेरोज़गार तो नहीं हैं। उसने उनसे कहा कि यदि कोई हो तो वे उसकी सूचना उसे दें ताकि वह सुल्तान द्वारा उन्हें किसी कार्य में लगवा दे। इस प्रकार से सुल्तान बेरोज़गारों को विभिन्न व्यवसायों में लगाने लगा। यदि कोई अहल-ए-कलम से सम्बन्धित होता था तो उसे कारखाने में दाखिल करा दिया जाता था। यदि कोई महत्वपूर्ण कारकून हो तो वह वजीर खान-ए-जहाँ को सौंप दिया जाता था। यदि कोई प्रार्थना करता था कि उसे अमुक अमीर को सौंप दिया जाय तो सुल्तान वैसा ही करता था। यदि कोई किसी अक्तादार के अन्तर्गत कार्य करना चाहता था तो उसे उसके पास भेज दिया जाता था। इस प्रकार से बहुत कम लोग बेरोज़गार रह गये। जहाँ कहीं भी इन बेरोज़गारों को सौंपा जाता वहाँ, उनकी जीविका का उत्तम प्रबन्ध हो जाता था।[२९]

बेगार प्रथा

इस समय बेगार प्रथा भी थी। उच्च में जब कारकूनों को किसी कार्य को

आवश्यकता होती थी तो वे लोगों से बेगार कराते थे और उन्हें गालियाँ देते थे।[30] परन्तु बरनी ने लिखा है कि फिरोजशाह ने बिना पारिश्रमिक के किसी व्यक्ति से मजदूरी का काम लिए जाने की अनुमति न दी।[31] उन दिनों दिल्ली में जो भी व्यापारी अपना माल लेकर आता था दीवान विभाग के अधिकारी उनके चौपायों को जबरदस्ती पकड़ लिया करते थे और उन चौपायों पर पुरानी दिल्ली से पुरानी ईंटें लदवा कर फिरोजाबाद लाया करते थे।[32] इससे भी मालूम होता है कि उस समय बेगार प्रथा थी।

१५

व्यापार एवं विनिमय

व्यापारिक समुदाय तथा सुल्तानों की उसके प्रति नीतियाँ

सल्तनत काल में व्यापारियों के कई वर्ग थे, जो कि विभिन्न वस्तुओं का व्यापार किया करते थे। बरनी ने उनके विशेष कार्यों को देखते हुए व्यापारिक समुदाय के विभिन्न व्यापारियों के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया है जैसे कि **सौदागरान, तुज्जार, बुर्जुगनान, कारवानियान**[१] और **बक्कालान,**[२] **मुलतानियान**[3] (बड़े व्यापारी जो कि ऋण देते थे) **दल्लालान,**[४] **किसाहदारान,**[५] **मिहतारान,**[६] **सर्राफरान**[७]। बरनी ने **फतवा-ए-जहाँदारी** में दो प्रकार के **कारवानियों** का उल्लेख किया है, **सौदागरान-ए-कारवानी** तथा **सौदागरान-ए-बाजारी**।[८] इसके अतिरिक्त **ज़रग़ारान,**[९] **शाहना,**[१०] **मुहतकिरान,**[११] **बाजारियान**[१२] शब्दों का भी प्रयोग उनके लिए किया है। बक्काल शब्द का अर्थ केवल अनाज के व्यापारी ही नहीं वरन् सम्पूर्ण वैश्य व्यापारियों के सन्दर्भ में है।[१३] इसी प्रकार से **शाहान** का अर्थ केवल ऋणदाता ही नहीं वरन् उसका तात्पर्य धनी व्यापारियों तथा व्यापारी समुदाय के गणमान्य व्यक्तियों से है।[१४] बरनी ने **बाजारियान** शब्द का प्रयोग सभी दूकानदारों व खुदरा व्यापारियों के लिए किया है। इस काल में कारवानी और बंजारे, सौदागरान-ए-बाजारी के अतिरिक्त बहुत महत्वपूर्ण व्यापारी थे जो कि अनाज का व्यापार किया करते थे। अनाज का व्यापार हिन्दुओं के ही हाथों में था। बरनी के अनुसार उनकी लाभ कमाने की आदत थी और उसे बड़ी शिकायत थी कि **कारवानी** ने **सौदागरान-ए-बाजारी** के साथ मिलकर अनाज के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। जब कभी मंगोल आक्रमण होते थे तो यह व्यापारी उसका लाभ उठा लेते थे। उदाहरणार्थ, जब १२९९ में कुतुलुग ख्वाजा तथा १३०३ ई० में तारग़ी ने आक्रमण किया तो दिल्ली में अनाज आना बिल्कुल बन्द हो गया जिसके कारण अनाज के भाव बढ़ गये। इस काल में जब कभी किसी दुर्ग की घेराबन्दी होती थी तो भी शहर या निकटवर्ती प्रदेश में अनाज के भाव बढ़ जाते थे या फिर अकाल के समय उन्हें लाभ कमाने का अवसर मिल जाता था। उदाहरणार्थ, जब सुल्तान फ़िरोज़शाद तुग़लक ने जाम व बबीना के विद्रोह के बाद सिंध पर आक्रमण किया तो अनाज के न मिलने पर वहाँ अनाज का भाव बढ़ गया। इसी प्रकार से जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी के शासनकाल में अकाल पड़ा तो आवश्यक वस्तुओं के

भाव बढ़ गये और अनेक लोग भूख से परलोक सिधार गये। दूसरा अकाल १३०९ ई० में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय पड़ा। एसामी के अनुसार सुल्तान ने अनाज के गोदाम खोल दिये, जो कि प्रातः से सन्ध्या तक लोगों की सहायता करते थे। अनाज के यह गोदाम पुराने दाम पर अनाज बेचते थे। सुल्तान ने व्यापारियों विशेष कर जमाखोरों व चोरबाज़ारों को उत्पीड़ित करके उन्हें बाध्य किया कि वे बुरी आदतें छोड़ दें।[१५] अकाल के बाद जब उपयुक्त वर्षा हो जाती थी और अनाज तथा फलों की पैदावार भी अच्छी हो भी जाती थी तो भी धनी व्यापारी तथा जमाखोर अपनी आदत से बाज़ नहीं आते थे और अत्यधिक लाभ उपार्जित कर लिया करते थे।[१६]

दलाल

सल्तनतकालीन व्यापारी समुदाय में दलालों का भी विशेष स्थान था। वे क्रेता एवं विक्रेता के मध्य लेन-देन करने की भूमिका निभाते थे और दोनों से कमीशन लिया करते थे। ज़ियाउद्दीन बरनी ने सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की मूल्य नियन्त्रण नीति के सन्दर्भ में उनका उल्लेख किया है। वे बाज़ार के मालिक या हाकिम थे और उन्हीं के कारण वस्तुओं के मूल्य में अधिक वृद्धि हुआ करती थी। बरनी ने **फ़तवा-ए-जहाँदारी** में लिखा है कि यदि सुल्तान चाहे तो उनकी मदद से वह जमाखोरी तथा मूल्यों में वृद्धि को रोक सकता था।[१७] ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय तक दिल्ली में दलालों का संघटन बन गया था और उन्होंने बाज़ार में अपनी धाक जमा रखी थी, जिसके कारण सुल्तान को मूल्य नियन्त्रण करने में जब असुविधा हुई तो उसने उनमें से कुछ को दण्ड दिया, अन्य को दिल्ली से बाहर निष्कासित कर दिया तथा शेष से मूल्य निर्धारण में सहायता प्राप्त की।[१८] बरनी ने दलालों द्वारा लिये जाने वाले कमीशन के प्रतिशत का उल्लेख नहीं किया है। यदि वे कमीशन लेते थे तो उनकी जीविका का अन्य स्रोत क्या था? दिल्ली के दलालों को इस काल में अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ा। उनका व्यवसाय अलाउद्दीन खिल्जी के कठोर नियमों के कारण चौपट हो गया। किन्तु दिल्ली के बाहर उनकी स्थिति यथावत ज्यों की त्यों बनी रही। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली में पुनः उन्होंने धाक जमा ली। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के समय उनका उत्कर्ष हुआ। उन्होंने राज्य से अनेक प्रकार की छूट उपलब्ध कर ली। सुल्तान ने उनसे लिया जाने वाला कर **दलाल-ए-बाज़ारहा** माफ़ कर दिया। इस कर से मुक्त हो जाने पर उन्होंने वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर उससे अपनी आय में वृद्धि करना बन्द कर दिया होगा। इसके अतिरिक्त **फ़िक्र-ए-फिरोजशाही** के अनुसार उन्हें अन्य प्रकार की छूट भी मिल गई। यदि कोई भी दलाल वस्तु के विक्रय के लिए बात-चीत करता था और उसके बावजूद माल नहीं बिक पाता था तो जो कमीशन उसने माल बिकवाने के लिए लिया था उस कमीशन को उसे वापस नहीं करना पड़ता था। इस प्रकार से १४वीं शताब्दी में राज्य ने दलालों के लिए नियम बना कर उनके आर्थिक हितों की रक्षा की।

बंजारे

इसी व्यापारी समुदाय में बंजारे भी शामिल थे, जो कि न केवल सेना के साथ ही चलते थे वरन् विभिन्न प्रदेशों से माल लाकर शहरों को पहुँचाया करते थे। कभी-कभी यह बंजारे अमीरों व सुल्तानों के शिविरों में अभियान के समय सामान भी पहुँचाते रहते थे। उदाहरणार्थ, जिस समय यह बंजारे बंगाल में तुग़रिल बेग की सेना को माल बेच कर वापस लौट रहे थे बलबन के सैनिकों ने उन्हें देख लिया और पकड़ लिया। मलिक शेरअन्दाज ने तुग़रिल का पता लगाने के लिए उन्हें आदेश दिया कि उनमें से दो बंजारों को मार दिया जाय। इससे अन्य बंजारे भयभीत हो गये और उन्होंने उन्हें तुग़रिल के शिविर का पता ही नहीं बता दिया वरन् दो बंजारे बलबन की सेना के साथ-साथ कुछ समय तक रुके रहे।[१६] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के काल में राज्य की ओर से बंजारों की इस आशय से नियुक्ति की गई कि खलिहानों में जाकर किसानों से अनाज खरीद कर दिल्ली की मण्डियों व अनाज भण्डारों में अनाज पहुँचा दे।[२०] इन बंजारों के पास ४०,००० मन तक ढोने वाली बैलगाड़ियाँ होती थी या बोझा ढोने वाले बैल होते थे। उनका यह व्यवसाय था कि वे एक स्थान से अनाज ढोकर दूसरे प्रदेशों में पहुँचाए। वे कभी एक स्थान पर नहीं रहते थे। बैलों के अतिरिक्त उनके पास खच्चर तथा बोझा ढोने वाले अन्य जानवर भी होते थे। उन्हें विभिन्न प्रदेशों व भागों की पर्याप्त जानकारी थी और इसलिए वे व्यापार करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम थे।

समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि अपनी निजी आय की वृद्धि हेतु दिल्ली के कुछ सुल्तान भी व्यापार किया करते थे। वे विदेशों को अपने प्रतिनिधियों को घोड़े, दास-दासियाँ तथा विविध प्रकार की वस्तुएँ क्रय करने के लिए भेजा करते थे। सुल्तान इल्तुतमिश दासों का व्यापार किया करता था। उसने एक व्यापारी को समरकन्द, बुखारा और तिरमिज़ इस आशय से भेजा और वह व्यापारी १०० दास लेकर वापस लौटा।[२१] सुल्तान का दूसरा व्यापारी प्रतिनिधि आबूदक्र हब्शी था, जो कि संसार के विभिन्न देशों से उसके लिए दास लेकर आया।[२२] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने विविध वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करके उनके मूल्य पूर्व की तुलना में अधिक निर्धारित करके अपनी व्यक्तिगत आय में वृद्धि करने की चेष्टा की। उसने अपना धन व्यापारियों को दिया ताकि वे विविध वस्तुएँ खरीद कर दिल्ली में लाएँ और उसके द्वारा निर्धारित मूल्यों पर ही बेंचे। किसी भी व्यापारी को निर्धारित मूल्य से अधिक या कम मूल्य पर सामान बेचने की आज्ञा न थी। इस व्यापार से अलाउद्दीन खिल्जी को इतना लाभ हुआ कि राजकोष सोने के टंकों से भर गया। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक निजी व्यापार किया करता था। उसने शिहाबुद्दीन नामक व्यापारी को राजकोष से एक लाख टंके दिलवाये और उसे आदेश दिये कि वह गुजरात से जितना भारतीय माल खरीद सके वह खरीद कर ओरमज़ में उस माल को बेच दे। शिहाबुद्दीन

सम्भवतः इस माल को खरीद कर स्वदेश ओरमज़ पहुँचा किन्तु वहाँ उसे इस व्यापार में लाभ न हुआ। अतः जो पूँजी सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने व्यापार में लगाई थी वह डूब गई।[२३]

इन्शा-ए-महरू से ज्ञात होता है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक आईन-उल-मुल्क की सहायता से दासों का व्यापार किया करता था। आईन-उल-मुल्क ने मलिक फखरुद्दीन तथा कमरुद्दीन को जो पत्र लिखे[२४] उनसे स्पष्ट है कि सुल्तान फिरोज़-शाह तुगलक ने २०००० तन्के आईन उल मुल्क के पास वस्त्र खरीदने के लिये भेजे थे। इस काल में हजारों की संख्या में विभिन्न कारखानों में दास लगाये गये। निःसन्देह राज्य की आवश्यकता से कहीं अधिक अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। यह अतिरिक्त उत्पादन भण्डार में संचित रखने के बजाय सुल्तान फिरोज़शाह तुगलक उसे बाज़ार में बिक्री हेतु अवश्य भेजता होगा जिससे कि उसकी आमदनी होती होगी। अन्यथा विभिन्न मदों पर इतना अधिक धन व्यय करना अमीरों को पूर्व की तुलना में अधिक वेतन व नकद उपहार देना, वृत्तियाँ इत्यादि प्रदान करना उसके लिए सम्भव न होता। मुद्रा का सबसे अधिक संचालन भी इसी समय रहा। जिससे ज्ञात होता है कि राज्य की सहायता से फिरोज़शाह तुग़लक ने व्यक्तिगत व्यापार को बढ़ाया होगा।

व्यापारियों द्वारा जमाखोरी

इस काल में व्यापारी कई कारणों से जमाखोरी किया करते थे। प्रो० हबीब के अनुसार जमाखोरी के दो कारण थे, मार्गों का असुरक्षित होना, मौसम की अनिश्चितता तथा ढुलाई का अत्यधिक मूल्य, दूसरे कारवानियों तथा बाज़ारियों द्वारा मिलकर वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करना।[२५] बरनी के विचार मे राज्य को चाहिए कि वह इस प्रकार के व्यापारियों द्वारा स्थापित किये गये एकाधिकार को समाप्त कर उत्पादन तथा ढुलाई के खर्च को ध्यान में रखकर उचित मूल्य लागू करें, ताकि अनाज के व्यापारियों के लिए लाभ की अधिक गुंजाइश रहे।[२६] सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के प्रशासन में सर्वसाधारण के उपभोग वाली सभी आवश्यक वस्तुओं पर एकाधिकार समाप्त करने का प्रयास किया गया। सुल्तान ने कारवानियों को बाध्य किया कि वे अपने परिवारों, सम्पत्ति व मवेशियों के साथ जमुना के किनारे स्थित गाँवों में आकर बस जाँय।[२७] इन कारवानियों के लिए अनिवार्य था कि वे अपने नाम शाहना-ए-मण्डी के यहाँ पंजीकृत कराएँ और जब तक कि वह उन पर उनकी स्त्रियों व बच्चों पर शहने न नियुक्त कर दे और जब तक कि अन्य बंजारे उनकी जमानत न ले लें तब तक उनको व्यापार न करने दिया जाय। सुल्तान ने जमाखोरी को रोकने तथा दिल्ली के बाजारों में व सरकारी अनाज के गोदामों में निरन्तर अनाज़ पहुँचाने के लिए कई महत्वपूर्ण पग उठाये। बरनी के अनुसार अनाज के भाव को सस्ता करने के लिये सुल्तान अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम जमाखोरी की मनाही कर दी। उसने इस सम्बन्ध में इतनी सख्ती की कि व्यापारी, गाँव वाले, बंजारे आदि एक मन

गल्ला भी अपने पास जमा करके नहीं रख सकते थे। यदि कोई चोरबाजारी करने के लिये अनाज एकत्रित करता था तो अनाज सरकार की ओर से जब्त कर लिया जाता था।[२८] दोआब के कारकूनों तथा नायबों से यह लिखवा लिया जाता था कि कोई भी व्यक्ति अपने गाँव में चोरबाज़ारी के उद्देश्य से अनाज एकत्र नहीं करेगा और यदि यह पता चल जाता था कि किसी ने जमाखोरी की है तो नायबों तथा मुत्सरिफों को बन्दी बना लिया जाता था और उनसे पूछताछ की जाती थी और जमाखोरी करने वालों को दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार से प्रशासन ने व्यापारियों द्वारा जमाखोरी व चोरबाज़ारी बन्द कर दी। दूसरे सुल्तान ने कृषकों को आदेश दिये कि वे उत्पादन का शेष अनाज निर्धारित मूल्यों पर कारवानियों को ही बेचें। उसने राजकीय अधिकारियों से यह गारन्टी ले ली कि वे देखें कि कृषक अपने खेत ही में उत्पादन का अधिशेष कारवानियों को ही बेचें।[२९] बंजारों व व्यापारियों की कार्यवाहियों को उपयोगी बनाने के लिये सुल्तान ने छोटी से छोटी वस्तु के मूल्य निर्धारित कर दिये। उसने शाहनाए मण्डी की नियुक्ति इस आशय से की कि वह यह देखे कि बाज़ार मूल्य नियन्त्रण सम्बन्धी नियमों का पालन किया जा रहा है या नहीं, यदि नहीं तो उन्हें कठोरतापूर्वक लागू करें। जो भी कोई व्यापारी शाही नियमों का पालन नहीं करता था उसे दण्ड दिया जाता था तथा जो भी दूकानदार कम तौलता था या धोखा देता था उसे उत्पीड़ित किया जाता था। इस प्रकार से सुल्तान ने चोरबाज़ारी व जमाखोरी के साथ-साथ एकाधिकार बिल्कुल समाप्त कर दिया।

इसी प्रकार से सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने अन्य व्यापारियों के लिये भी अधिनियम बनाये। उसने कपड़े के व्यापार को भी नियन्त्रित किया। उसने सर्वप्रथम सराए-अदल बनवाई। तदुपरान्त उसने आदेश दिया कि जो भी कपड़ा देश-विदेश या दिल्ली के आस-पास से लाया जाय वह सर्वप्रथम सराए-अदल के अतिरिक्त किसी घर या बाज़ार में न ले जाया जाय। उसे सराए-अदल में लाया जाय व सरकारी भाव में बेचा जाय। यदि कोई व्यापारी किसी के घर या बाजार में कपड़ा लाता और सरकारी भाव से एक जीतल अधिक दाम पर बेचता तो वह कपड़ा जब्त कर लिया जाता था। सरकारी अधिनियम के अन्तर्गत १ तन्के से १०० तन्के तक और १००० तन्के से १०,००० तन्के के मूल्य के कपड़े सराए-अदल के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जाने दिया जाता था।[३०] सुल्तान ने कपड़ों की विभिन्न किस्मों के मूल्य भी निर्धारित किये।[३१] शहर व उसके आस-पास के कपड़े के व्यापारियों के नाम चाहे वे हिन्दू या मुसलमान हो, दीवान-ए-रियासत के रजिस्ट्रों में पंजीकृत कर लिये जाते थे। कपड़े के व्यापारियों से यह लिखकर ले लिया जाता था कि जिस प्रकार से वे इससे पूर्व वस्त्र शहर में लाते थे उसी प्रकार से उतनी ही मात्रा में प्रत्येक वर्ष सराए-अदल में पहुँचाते रहेंगे और सरकारी भाव से बेचते रहेंगे। बरनी ने लिखा है कि कपड़े के व्यापारियों ने नियमानुसार इतना कपड़ा सराय-अदल में पहुँचाना प्रारम्भ किया कि वहाँ उसकी उतनी बिक्री न होती थी और वह कपड़ा पड़ा रहता था।

सुल्तान अलाउद्दीन ने कपड़े के व्यापारियों को खजाने से अग्रिम धन भी देना शुरू किया ताकि वे राज्य के विभिन्न प्रदेशों से सामान ला सके और सरकारी भाव पर सराए-अदल में बेच सकें। कपड़े के इन मुल्तानी व्यापारियों को २० लाख तन्के तक अग्रिम धन दिया गया और उन्हें ही सराय अदल का अधिकारी वना दिया। वरनी के अनुसार इस समय जब व्यापारियों ने सराय अदल से सस्ते मूल्य पर कपड़े लेना और उसे दूसरों के हाथ में दूसरे स्थान पर सराए अदल की अपेक्षा चौगुने पँचगुने दाम पर बेचना या बहुमूल्य वस्त्रों को सराय अदल में सस्ते दाम पर खरीद कर शहर के बाहर उसको ऊँचे मूल्यों में वेचना और उसकी चोरबाज़ारी प्रारम्भ की तो इसको रोकने के लिये सुल्तान ने अमीरों व रईसों के लिये परमिट प्रणाली लागू की जिसके अन्तर्गत उन्हें बहुमूल्य कपड़ों के खरीदने के लिए आज्ञा-पत्र प्राप्त करना पड़ता था। उसने आदेश दिया कि उत्तम प्रकार के कपड़े जिनका सर्वसाधारण से कोई भी सम्वन्ध नहीं होता, वे उस समय तक सराए-अदल में न वेचें जाँय जब तक कि अमीर स्वयं उनको खरीदने के लिये प्रार्थना न करें और आज्ञा-पत्र न प्राप्त करें। सुल्तान रईसों, अमीरों, मन्त्रियों तथा प्रतिष्ठित गणमान्य व्यक्तियों को बहुत ही छान-वीन के वाद बहुमूल्य वस्त्र खरीदने की अनुमति प्रदान करता था।[३२]

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने घोड़ों, दासों व चौपायों का मूल्य सस्ता करने के लिये कई स्थायी नियम वनाये। उसने उनका वर्गीकरण किया तथा उनका मूल्य निर्धारित किया। दूसरे, उसने कीसहदार तथा शहर के व्यापारियों के लिये उनके खरीदने के विषय में मनाही कर दी। तीसरे, उसने दलाली, सौदागरों और की-सहदारों (ऋणदाताओं) को उनके परम्परागत अधिकारों से वंचित कर दिया और चौथे, सुल्तान ने स्वयं अपनी देखरेख में उन पर नियम लागू करवाए।

घोड़ों का मूल्य तथा घोड़ों के व्यापार में व्यापारियों की भूमिका

घोड़ों के वर्गीकरण व उनके मूल्य निश्चित किये जाने में नियम इस प्रकार से थे। जो घोड़े सेना के लिये दीवान में पेश किये जाते थे, उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया और उनका मूल्य निर्धारित करके मूल्यों की सूची दलालों को दी गई। प्रथम श्रेणी के घोड़ों का मूल्य १०० तन्के से १२० तन्के तक, द्वितीय श्रेणी के घोड़ों का मूल्य ८० अन्के से ९० तन्के तक, तृतीय श्रेणी के घोड़ों का मूल्य ६५ तन्के से ७० तन्के तक रक्खा गया। टट्टुओं का मूल्य १० तन्के से २५ तन्के तक निश्चित किया गया। सुल्तान ने नियम वनाया कि कोई व्यापारी और धनी न तो स्वयं घोड़े खरीद सकता था और न किसी अन्य के द्वारा खरीद कर ले सकते थे। इस प्रकार घोड़ों के अनेक व्यापारी जो कि वर्षों से घोड़ों का व्यापार करते आ रहे थे और घोड़ों को क्रय-विक्रय से लाभ उठा रहे थे तथा जो कि वाज़ार के बड़े-बड़े दलालों से मिले हुए थे, को अब बहुत ही क्षति उठानी पड़ी और वे सब कष्ट में पड़ गये। उन्हें बड़े-बड़े दलालों के साथ दूर-दूर के किलों में भेज दिया गया। सुल्तान ने

बड़े-बड़े दलालों, जो कि बाज़ार के हाकिमों के बराबर होते थे तथा जो बड़े निर्भीक होते थे और खरीदने व बेचने वालों से घूस लिया करते थे, के प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाया और उनके सभी विशिष्ट अधिकार छीनकर उसने उन्हें अपंग बना दिया। इसके अतिरिक्त घोड़ों के व्यापार से सम्बन्धित नियमों को लागू करने के लिए सुल्तान स्वयं उनके नस्ल तथा मूल्य की पूछताछ करता रहता था। वह चालीस दिन में एक-दो बार बड़े-बड़े दलालों से तीनों श्रेणी के घोड़ों के बारे में पूछताछ करता रहता था। यदि वह देखता कि घोड़े के मूल्य में तथा उसके द्वारा निर्धारित किये गये मूल्य में कोई अन्तर है तो वह अधिकारियों को इतने कठोर दण्ड दिया करता था कि अन्य शिक्षा ग्रहण कर सकें। इस प्रकार से बड़े-बड़े दलालों में घोड़ों का मूल्य अपनी ओर से निश्चित करना बन्द कर दिया। जो नियम सुल्तान ने घोड़ों के मूल्यों को नियन्त्रित करने के लिये बनाये थे वे ही नियम उसने चौपायों के बारे में भी बना दिए।[33]

उसने चौपायों के मूल्य भी निर्धारित किये। उन्हें सस्ता करने के लिये उसने उसी प्रकार के नियम बनाये जो कि उसने घोड़ों के सम्बन्ध में बनाये थे। उसने चौपायों के मूल्य इस प्रकार से निर्धारित किये। बरनी के अनुसार जो चौपाए इससे पूर्व ३०, ४० तन्कों में मिलते थे वे ४ तन्कों या ५ तन्कों में प्राप्त होने लगे। जुफ़्ती (जोड़े) चौपाए ३ तन्कों में मिलने लगे। जिन गायों का मांस खाया जा सकता था उनका मूल्य १½ तन्के तक था। दूध देने वाली गाय का मूल्य ३-४ तन्के था। दूध देने वाली भैंस का मूल्य १० तन्के से १२ तन्के तक था और उन भैंसों का मूल्य जिनका केवल मांस खाया जाता था ५ तन्के से ६ तन्के तक था। मोटी ताज़ी भेड़ का मूल्य १० जीतल से १२-१४ जीतल तक था।[34]

उसी प्रकार से सुल्तान ने साधारण काम-काज करने वाली दासियों का भाव ५ तन्के से १२ तन्के के बीच निर्धारित किया। रूपवान दासी का भाव २० से ३० और ४० तन्के तक निश्चित किया गया। दास का भाव १०० से २०० तन्के तक बहुत कम निश्चित होता था। यदि कोई ऐसा दास आ जाता था जिसका मूल्य इस समय हज़ार दो हज़ार तन्के होता तो उसे गुप्तचरों के भय के कारण कोई खरीद नहीं सकता था। रूपवान दासों का मूल्य २० से ३० तन्के तक था। साधारण काम करने वाले दासों का भाव १० से १५ तन्के अनुभवहीन गुलाम बच्चों का मूल्य ७ तन्के से ८ तन्के तक था।[35]

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने बाजारों में गुप्तचर नियुक्त कर दिये थे जिनके भय से व्यापारी और दूकानदार मनमानी ढंग नहीं से क्रय-विक्रय नहीं कर सकते थे। वे सदैव सावधान व भयभीत रहते थे। न तो वे प्रशासन की आज्ञाओं का और न ही नियमों का उल्लंघन करते थे क्योंकि वे जानते थे कि उल्लंघन करने पर उन्हें कठोर दण्ड मिलेगा। इस प्रकार सुल्तान अलाउद्दीन ने अपनी नवीन आर्थिक नीति के द्वारा एक ओर तो बाजार में प्रत्येक वस्तु के मूल्यों को निधारित करके मूल्यों को बढ़ने

दिया, तो दूसरी ओर उसने मुनाफाखोरों, चोरबाज़ारियों, जमाखोरों, दलालों व व्यापारियों पर तरह-तरह के अंकुश व प्रतिवन्ध लगाकर राजकीय नियमों द्वारा उनका कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया। वास्तव में बाज़ार में चीजों का मूल्य नियमित करने व उपभोक्ता वर्ग के लिये उनकी पूर्ति को वनाये रखने के लिये इस काल में यह वड़ा ही व्यापक तथा अत्यन्त सफल प्रयोग था।

पूर्व मध्यकाल में अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त जो कि घरेलू कार्य में आती थी, दो महत्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार समय की आवश्यकता को देखते हुए नियन्त्रित करना आवश्यक हो गया। इस युग में घोड़े ही यातायात के साधन थे और सम्पूर्ण सेना को उनकी आवश्यकता पड़ती थी। राज्य की सैनिक व राजनीतिक शक्ति अश्वारोहियों पर ही निर्भर करती थी। अतएव न केवल सुल्तान वरन्, अमीर, अक्तादार, वलियों, मलिकों, खानों आदि सभी के उत्तम घोड़ों की आवश्यकता पड़ती थी। अलाउद्दीन खिल्जी से पूर्व घोड़े के व्यापारियों तथा दलालों ने आपस में मिलकर घोड़ों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। इसकी पुष्टि वरनी ने की है। यद्यपि प्रारम्भ में वाजार नियन्त्रण करते समय अलाउद्दीन ने घोड़ों के व्यापारियों व दलालों के एकाधिकार को समाप्त करने का प्रयास किया किन्तु उसे वाद में मालूम हुआ कि उनके विना कार्य चल ही नहीं सकता है अतएव उसने उनकी सेवाएँ लेना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार एक बार फिर घोड़े के व्यापारियों व दलालों की स्थिति पूर्व जैसी हो गई। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के बाद उसके वाजार सम्वन्धी नियम भी समाप्त हो गये और व्यापारियों ने पुरानी परम्पराओं को पुनः अपनाना प्रारम्भ कर दिया। वरनी ने उस समय की स्थिति का निरूपण करते हुए लिखा है कि आवश्यकता की वस्तुएँ पुनः महँगी हो गईं और अनाज के भाव बढ़ गये, वस्त्रों के दाम व्यापारियों की इच्छानुसार निर्धारित होने लगे। मुल्तानी अपनी पहली जैसी आदतों का पालन करने लगे और सौदागर व कारवानी अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने लगे। दूकानदारों का दिमाग़ खराव हो गया और उनके घरों में ढोलक व ढफ वजने लगे। वाजारी अलाउद्दीन की मृत्यु पर खुशी प्रकट करने लगे। एक वार उन्होंने फिर वेइमानी व धोखेवाजी के द्वार खोल दिये।[३६] यद्यपि वरनी ने सुल्तान कुतुवुद्दीन मुवारकशाह खिल्जी के शासनकाल में वस्तुओं के मूल्य का उल्लेख नहीं किया है किन्तु मुहम्मद विन तुग़लक के शासनकाल में चीजों के दाम काफी वढ़ गये थे। उसका एकमात्र कारण यह था कि अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु के पश्चात् किसी भी सुल्तान ने मूल्यों को नियन्त्रित करने की नीति नहीं अपनाई और वाज़ार को व्यापारियों व दलालों के हाथों में छोड़ दिया। इस प्रकार सुल्तानों की ओर से आर्थिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति के कारण दुष्परिणाम ही हुए।

निःसन्देह अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु से सर्वप्रथम उन घोड़ों के व्यापारियों व दलालों को लाभ हुआ जो कि घोड़ों की नस्ल व उनके मूल्य से पूर्णतः परिचित थे

और अपने व्यवसाय को अच्छी तरह से समझते थे। अगले शासनकाल में जब मूल्य नियन्त्रण से सम्बन्धित सभी नियम शिथिल पड़ गये तो घोड़ों के व्यापारियों ने अपनी पूर्ण स्थिति पुनः हासिल कर ली। इसमें कुछ सीमा तक कुछ दरबारी परम्पराओं ने भी उनका साथ दिया। अफीफ के अनुसार अभिजात वर्ग, विदेशियों तथा अन्य लोगों के लिए यह रीति बन गई थी कि जब भी वे सुल्तान के दर्शन करने के लिए आवें तो भेंट में दास व घोड़े अवश्य लेकर आवें। चूंकि इस काल में घोड़ों व दासों को ही उपयुक्त भेंट समझा जाता था। उदाहरणार्थ, जब इब्नबतूता दरबार में आया तो उसने ३० घोड़े व अनेक दास सुल्तान मुहम्मद तुग़लक को उपहार में प्रदान किये।[३७] शिहाबुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि जब अली बिन मन्सूर अल उक़ैबी, जो कि बहरैन के अरबी के अमीरों में से था तथा घोड़ों का व्यापारी था, सुल्तान मुहम्मद तुग़लक से भेंट करने गया तो वह अपने साथ उसके लिए घोड़े लेकर गया।[३८] इसी प्रकार से इन्शा-ए-महरू के अनुसार मुल्तान के मुक्ता आइन-उल-मुल्क महरू ने सुल्तान फिरोज़-शाह तुग़लक को कुछ घोड़े उपहार में भेजे। इस प्रकार से लोगों को घोड़े खरीदना पड़ता था और घोड़े बेचने वाले व्यापारियों व दलालों को लाभ कमाने का अवसर मिल जाता था।

दासों के विदेशी व्यापारी

पूर्व मध्यकालीन भारत में दासों का व्यापार बहुत ही लाभदायक था। दिल्ली के सुल्तानों ने अनेक दासों के व्यापारियों को प्रश्रय दिया, उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान की और उन्हें दासों के व्यापार के लिए प्रोत्साहन दिया। मुहम्मद ग़ौरी ने अनेक दासों को विभिन्न समय में विभिन्न स्थानों पर खरीदा था। ऐबक इल्तुतमिश ने भी ऐसा ही किया। सुल्तान इल्तुतमिश ने तुर्कान-ए-चहलगानी के दासों को विभिन्न स्थानों में व विभिन्न समय में विभिन्न व्यापारियों से खरीदा था। मिनहाज उस सिराज ने २५ शम्सी अमीरों के जीवन-चरित का विवरण देते हुए दासों के अनेक व्यापारियों का उल्लेख किया है, उदाहरणार्थ, ख्वाजा अली बस्तावादी,[३९] जमालुद्दीन खोबकर[४०] इख्तियारुद्दीन चुस्त काबा,[४१] असाउद्दीन मनकली,[४२] फखरुद्दीन स्फाहानी,[४३] अमीर ऐबक सुननामी,[४४] ख्वाजा जमालुद्दीन करीमान,[४५] इख्तियारुद्दीन आवुबक्र हब्शी[४६] ख्वाजा मुनीम शम्सुद्दीन आज़मी[४७], ख्वाज़ा जमालउद्दीन बसरी,[४८] मलिक बहाउद्दीन सुल्तानी मुइज्जी के उत्तराधिकारी,[४९] इख्तियार उद्दीन चुश्त कावा के उत्तराधिकारी,[५०] नसीरुद्दीन हुसैन अमीर शिकार के पुत्र[५१] तथा ख्वाजा जमालउद्दीन चुश्त कावा।[५२]

ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली के सुल्तानों की अधिक रुचि दासों, घोड़ों के व्यापार तथा हाथियों में थी। चूंकि राज्य की सैनिक शक्ति केवल अश्वारोहियों पर आधारित थी, वे सदैव अच्छे घोड़ों को अधिक संख्या में और सभी स्थानों से प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। वे न केवल साधारण व्यापारियों से घोड़े खरीदा करते थे

तथा राज्य के प्रतिनिधि व्यापारियों द्वारा प्राप्त करते थे तथा अन्य साधनों से भी उपलब्ध किया करते थे। हाथी का व्यापार उनका विशेष अधिकार था और केवल उन्हीं को उन्हें खरीदने का अधिकार था। युद्ध से लूट में जो वस्तुएँ प्राप्त होती थीं, उनमें से हाथी, घोड़े व दास सुल्तान के लिए सुरक्षित रहते थे। अफीफ के अनुसार सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में व्यापारी अफ्रीका के तटों से हाथी खम्भात के बन्दरगाह में लाते थे। सुल्तान हाथी के व्यापारियों को प्रोत्साहन किया करता था। उसने गुजरात के गर्वनर मलिक शम्सुद्दीन आबुरिजा को आदेश दिये कि वह हाथी खरीदने पर तत्काल उसके मूल्य का भुगतान करे और हाथियों को लाते समय जो भी व्यापारियों को नुकसान हो वह उन्हें उसका मुवावजा दे। इस काल में लंका के हाथियों को उनकी विशेषताओं के कारण बहुत ही पसन्द किया जाता था।

व्यापारियों से वसूल किये जाने वाले कर तथा शुल्क

पूर्व सल्तनतकालीन उत्तरी भारत में व्यापारियों पर विभिन्न प्रकार के कर वसूल किये जाते थे या नहीं, इस सम्बन्ध में कहना कठिन है। सल्तनत काल में फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में फुतूहात-ए-फिरोजशाही के अनुसार व्यापारियों से ३६ कर लिये जाते थे। उनमें से ८ कर किसी न किसी प्रकार से व्यापारियों से वसूल किये जाते थे। इनमें से ८ कर तो प्रत्यक्ष ढंग से व्यापारियों से वसूल किये जाते थे तथा अन्य दूकानदारों व बाज़ारियों से वसूल किये जाते थे। इस काल में व्यापारियों से निम्नलिखित कर वसूल किये जाते थे: (१) दालालाल-ए-बाजारहा—दलालों पर कर अथवा बाजार में दलाली पर कर (२) जज्जारी कस्साबी—होदी वाला के अनुसार यह कर कसाइयों से हर गाय या भैंस को मारने पर ११ जीतल के हिसाब से लिया जाता था। (३) चुंगी-ए-गल्लाह—अनाज पर चुंगी। दूकानदारों को राज्य के निम्नलिखित कर देने पड़ते थे (१) नण्डवी बर्ग—साग-सब्जी पर कर या बाजार से कर (२) गुलफरोशी—फूल बेचने वालों पर कर (३) जरीबाह-ए-ताम्बूल—पान बेचने वालों पर कर (४) माही फरोशी—मछली बेचने वालों पर कर (५) नाखुद-ए-बिरियान—भुने हुए अनाज या भुने हुए चने पर कर (६) तहबाज़ारी—सार्वजनिक भूमि का प्रयोग करने के लिए दूकानदारों पर कर (७) खुसरावत—यह कर साग-सब्जी व फलों के बेचने वालों से लिया जाता था। अफीफ के अनुसार चार अन्य कर भी व्यापारियों से वसूल किये जाते थे—(१) जज्ज़ारी (२) बनगानह (३) मुस्तग़िल (४) दूरी। जज्जारी के बारे में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। बनगानह के बारे मे अफीफ ने स्वयं लिखा है कि सभी वस्तुओं जिनका परीक्षण किया जाता था और जिन पर जक़ात सराय अदल में वसूल किया जाता था खजाने में लाई जाती थी। वहाँ उन्हें फिर से तौला जाता था और उन पर १ तन्के मूल्य पर एक दांग कर वसूल किया जाता था। बनगानह नामक कर बड़ी कठोरतापूर्वक वसूल किया जाता था। मुस्तग़िल नामक कर दिल्ली में मकानों व दुकानों पर किराये की भाँति था, जिससे

राज्य को प्रतिवर्ष १०,००० तन्का आय होती थी। सबसे अधिक दूरी नामक कर से व्यापारी घृणा करते थे। अफीफ ने इस कर के बारे में लिखा है, कि "इन दिनों सभी खास व आम व्यापारी अनाज, नमक, मिश्री, चीनी तथा अन्य सामग्री बड़े प्रयत्न से चौपायों पर लाद कर शहर देहली में लाते थे। दीवान के आदमी उन चौपायों को जबरदस्ती पकड़ लेते थे और उन्हें पुरानी देहली में ले जाते थे। पुरानी देहली में गत बादशाहों द्वारा बनवाये गये सात कोट थे। वे सब पुराने हो गये थे। वहाँ गिरी पड़ी पुरानी ईटें बहुत ही संख्या में थी। दीवान के कर्मचारी व्यापारियों तथा उनके चौपायों को वहाँ ले जाते थे और उनसे एक बार ईंटे लदवा कर शहर फिरोज़ाबाद में पहुँचवाते थे। उस अत्याचार के कारण व्यापारी शहर देहली में आने से बचते थे। देहली में नमक व अनाज का दाम बढ़ने लगा। सुल्तान के समक्ष सब बातें विस्तार से कही गई।'[५३] इस प्रकार दूरी एक तरह का बेगार था, जो कि नई राजधानी फिरोज़ाबाद को स्थापित करने के लिए व्यापारियों से लिया गया। चूंकि यह सभी कर शरा के विरुद्ध थे, फिरोजशाह तुग़लक ने उन्हें शीघ्र ही समाप्त कर दिया।

पूर्व मध्यकाल में व्यापारियों के मध्य एक वर्ग ऐसा भी था जो कि कलालों से मदिरा लेकर शहर में बेचते थे। यह वर्ग सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के पूर्व प्रशासन को अधिक कर दिया करता था। किन्तु अलाउद्दीन खिल्जी ने जब मदिरा निषेध सम्बन्धी नियम कठोरता-पूर्वक लागू कर दिए तो उन्हें नुकसान उठाना पड़ा। बरनी ने लिखा है कि मदिरा बेचने वाले व्यापारियों तथा बगनी गारान को शहर दिल्ली के बाहर निकाल दिया गया और जिसके कारण हजारों करों से राजकोष वंचित हो गया।[५६] लेकिन इन्हीं व्यापारियों की स्थिति सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद अच्छी हो गई। फिरोजशाह तुग़लक के समय व्यापारियों पर कोई भी प्रतिबन्ध न था। वे जो चाहते थे खरीद व बेच सकते थे, जिसके कारण वे धनी और समृद्धशाली हो गए। वे कोई भी कर नहीं देते थे और न ही राज्य को बेगार की सेवा या शिकार के लिए किसी प्रकार की सेवा देते थे। प्रत्येक दिन वे अपने घरों में सौ दो सौ तन्के ले जाते थे और उसमें से एक भी तन्का उनके घर से कर के भुगतान के लिए बाहर नहीं जाता था।[५५] बरनी ने अन्यत्र लिखा है कि दूकानदारों, व्यापारियों, काफिले वालों, साहों (साहूकारों), सर्राफों, ऋणदाताओं, चोरबाज़ारी करने वालों की धन सम्पत्ति, माल नकद लाखों को पार करके करोड़ों तक पहुँच गया।'[६]

इब्नबतूता ने, दो अन्य करों का जो कि व्यापारियों से वसूल किए जाते थे, का उल्लेख किया है। उसने मुल्तान में आने पर देखा कि प्रत्येक व्यापारी से उसके माल का १/४ भाग तथा बिक्री के लिए लाए गये प्रत्येक घोड़े पर ७ दीनार कर के रूप में वसूल किया जाता था। किन्तु उसने यह भी लिखा है कि उसके भारतवर्ष आने के दो वर्ष बाद सुल्तान ने इन करों को बन्द कर दिया और उसने आदेश दिया कि ज़कात व उश्र के अतिरिक्त व्यापारियों से कुछ भी न वसूल किया जाय। वह

ज़कात व उश्र, अब्बासी खलीफा अबुल अब्बास के प्रति निष्ठा व्यक्त करने के लिए ही वसूल किया जाता था।[५७]

फुतूहात-ए-फिरोज़शाही और **सीरत-ए-फिरोजशाही** में उल्लिखित सभी कर जो कि पहले लिए जाते थे वे सभी कर फिरोज़शाह तुग़लक ने समाप्त कर दिए।[५८] इसी प्रकार से मुहम्मद तुग़लक ने गैर शरियत करों का उन्मूलन कर दिया था फिर भी वे उसके उत्तराधिकारी फ़िरोज़शाह तुग़लक के काल में वसूल किए जाते रहे। आईन-उल-मुल्तानी इस बात पर आश्चर्य प्रकट करता है कि उन्मूलन किए गए गैर शराई कर पुनः लागू कर दिए गए थे। कुछ भी हो व्यापारियों से लिए जाने वाले करों को राजकोष को भरने के लिए जब कठोरतापूर्वक वसूल किए जाते थे तो उससे उनको हानि पहुँचती थी व उसका प्रभाव व्यापार व विनिमय पर पड़ता था। किन्तु जब वे ही कर हटा लिए जाते थे तो व्यापारियों के विभिन्न वर्गों को राहत मिलती थी और वे समृद्धिशाली बन जाते थे। वास्तव में इस काल में जब भी उनपर कर लगाये गये तब करों के भार से वे परेशान नहीं हुए वरन् प्रशासन के कठोर वर्ताव से वे दुखी होते रहे और ऐसे करों का भुगतान करने से वे दूर भागते रहे। सुल्तानों द्वारा व्यापारिक वर्ग पर विभिन्न प्रकार के करों को लगाने की नीति में कोई दोष नहीं था। यदि कोई दोष इस व्यवस्था में था तो वह था कठोरतापूर्वक व जवरदस्ती उन करों को वसूल करना। चूंकि आज की भाँति कोई व्यापारी उस समय प्रत्यक्ष करों को देने के लिए तैयार न होता था इसलिए अक्सर व्यापारियों व प्रशासन में सम्वन्ध खराव ही रहते थे।

व्यापारी वर्ग के प्रति प्रशासन की नीति का एक और महत्वपूर्ण पहलू भी था कि इस काल में प्रशासन व्यापारियों का व्यापार के लिए अग्रिम धन या ऋण देने लगा और उनसे ऋण व धन लेने लगा। वरनी के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने २० लाख तन्के की बड़ी धनराशि उधार में मालदार मुल्तानियों को दी।[५९] ताकि वे देश के विभिन्न भागों से विभिन्न वस्तुएँ लाकर दिल्ली के बाजार को सप्लाई कर सके। अफीफ ने वरनी के इस कथन की पुष्टि करते हुए लिखा है कि खिल्जी सुल्तान ने असीमित धन सौदागरों को आवश्यक वस्तुएँ नियमित ढंग से सप्लाई करने के लिए दिया था।[६०] इब्नवतूता ने भी अपने विवरण में इसकी पुष्टि की है। उसने लिखा है कि जब मांस का भाव बढ़ गया तो उसने न केवल उस पर लिए जाने वाले करों को माफ कर दिया वरन् उसने तुज्जारों (व्यापारियों) को धन इस आशय से दिया कि वे गाय और भेड़ खरीद कर वेचे और उसने उन्हें आदेश दिया कि वे जो भी धन मवेशियों को बेच कर प्राप्त करें वह वैतुल माल में जमा करें। इस प्रकार से राज्य की यह नीति वन गई कि जब कभी किसी आवश्यक वस्तु की माँग बढ़ जाय और उसकी पूर्ति बाजार में साधारण साधनों से न हो रही हो तो तत्काल राजकोष से व्यापारियों को धन ऋण के रूप में दिया जाय और उस वस्तु की पूर्ति

तत्काल दिल्ली के बाजार में करवाई जाय। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने कपड़े के व्यापारियों को भी ऋण देकर विभिन्न प्रकार के वस्त्र देवगिर से मँगवाए।[६१] इब्न-बतूता के अनुसार मुहम्मद तुग़लक व्यापार को प्रोत्साहन दिया करता था। इस काल में जब उत्पादन के विभिन्न साधनों का धीरे-धीरे विकास हो रहा था और यातायात के साधन भी न्यूनतम थे, यह राज्य व व्यापारियों के हित में था कि वे सुगमतापूर्वक सभी व्यापारिक क्रियाओं में सहभागी रहे। राज्य की ओर से ऋण मिल जाने से व्यापारी वर्ग में न केवल सक्रियता आ गई थी वरन् उसमें लाभ उपार्जित करने की भावना चौगुनी हो गई थी। व्यापारी यह जानते थे कि अपनी सीमित पूँजी को वे व्यापार में लगा कर इतना लाभ नहीं कमा पाएँगे जितनी की राज्य से प्राप्त ब्याज रहित ऋण से प्राप्त करने पर। यद्यपि बरनी, जिसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी और ज्ञान बड़ा ही सूक्ष्म था इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखता है किन्तु अफीफ ने स्पष्ट रूप से यह लिखा हैं कि जब यह व्यापारी राज्य से प्राप्त ऋण से व्यापार करते थे तो वे बहुत ही अधिक लाभ उपार्जित करते थे।[६२]

व्यापारियों द्वारा अभिजात वर्ग को ऋण देना

दूसरी ओर इस काल में समृद्धशाली व धनी व्यापारी राज्य व अभिजात वर्ग को भी ऋण दिया करते थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की थट्टा में मृत्यु होने के बाद जब फिरोज़ तुग़लक गद्दी पर बैठा और वहाँ से उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया तो मार्ग में उसने सिरसौती के सर्राफों तथा बक्कालों से हजारों तन्के खिदमती (उपहार) में प्राप्त किये। फिरोजशाह ने इस धन को उपहार न माना और ऋण घोषित कर उसने मलिक इमाम उल बशीर को आदेश दिया कि दिल्ली पहुँचने पर वह इस ऋण का भुगतान ऋणदाताओं को कर दे।[६३] सम्भवत: यही एक ऐसा उदाहरण है जब कि सुल्तान ने व्यापारियों से धन उधार लिया। वरन् सम्पूर्ण सल्तनत काल में ऐसा अन्य कोई उदाहरण सुल्तानों के बारे में नहीं मिलता है।

दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में या यों कहिए कि बलबन के राज्यकाल तक राज्य को संगठित करने के लिए केवल सैनिक कार्यवाहियाँ ही की जाती रही। फलत: उत्तरी भारत का कोई भी प्रदेश जो कि सुल्तान के हाथों में था, सुरक्षित न था और न ही वहाँ कोई स्थायी व्यवस्था ही रही। जो प्रदेश अक्ताओं में अमीरों को प्रदान किए गए उनमें भी पुराने शासक वर्ग व नवीन राजकीय अधिकारियों के मध्य संघर्ष दीर्घकाल तक चलता रहा। अतएव जो आय नवीन शासक वर्ग अथवा अमीर या अक्तादरों को प्राप्त होनी चाहिए थी वह कभी भी पूरी नहीं प्राप्त होती थी। इस आय के लिए भी अक्तादारों को संघर्ष करना पड़ता था और कभी-कभी इस दौरान उनका वहाँ से स्थानान्तरण भी हो जाता था जिसके कारण नए अक्तादार के वहाँ पहुँचने तक पुराना शासक वर्ग उस अक्ता की आय को हड़प लिया करता था। कहने का तात्पर्य यह

कि धन के अभाव में अक्ताएँ अमीरों का पूर्णरूप से भरण-पोषण करने में असमर्थ रहती थी, विशेष कर उस स्थिति में जबकि अधिकांश अमीर शान-शौकत का जीवन व्यतीत करने में एक दूसरे से होड़ लेने में लगे हुए थे। ऐसी परिस्थिति में इन अमीरों या अक्तादारों की मदद दिल्ली के मुल्तानी व साह (साहूकारों) जिनके पास अत्यधिक धन था, किया करते थे। वरनी ने लिखा है कि "दिल्ली के मुल्तानी व साह ने अत्यधिक धन एकत्र कर लिया है और यह सब दिल्ली के प्रदेश के अमीरों (मलिक व उमरा) के कारण है क्योंकि वे उनसे ऋण लिया करते हैं। यह अमीर इस ऋण का भुगतान अक्ताओं से प्राप्त लगान से उपहारों के साथ कर दिया करते हैं। जब कभी कोई मलिक या खान दरवारियों व अतिथियों को दावत पर बुलाता था, तो उसके परिवार (कारकून) तत्काल मुल्तानियों और साहूकारों के घरों की ओर भागते थे और उनसे व्याज पर ऋण लेकर उन्हें रसीद देकर मलिकों के लिए मजलिस का प्रवन्ध करते थे।[६४] वरनी के इस कथन से स्पष्ट है कि अमीर मुख्यतः मुल्तानियों व साहूकारों के द्वारा दिए गये ऋण पर आश्रित रहते थे और यही मुल्तानी व साह इस काल में ऋणदाता थे। ऋण देने से पूर्व यह ऋणदाता अमीरों से आश्वासन को रूप से यह लिखा लिया करते थे कि वे अमुक समय पर इस ऋण का भुगतान कर देंगे। जब कोई अमीर ऋण का भुगतान नहीं कर पाता था तो इस प्रमाण-पत्र का प्रयोग मुल्तानी व साह अदालत द्वारा वसूल करने के लिए किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अमीर दो तरह से ऋण का भुगतान किया करते थे। या तो वे अपनी अक्ताओं से जो कि सभी अमीरों को प्राप्त थी, प्राप्त लगान से ऋण का भुगतान कर दिया करते थे या मुल्तानी व साह ऋणदाताओं को उनकी द्वारा हर समय पर दी गई सेवा के उपलक्ष में वहुमूल्य उपहार देकर कर दिया करते थे या ऋण व्याज सहित दिया करते थे। किसी भी समकालीन इतिहासकार ने यह नहीं बताया है कि यह साहूकार व्याज की किस दर पर ऋण दिया करते थे या ऋण के एवज में उन्हें कितना उपहार मिलता था। अमीर खुसरो ने **कुल्लियात खुसरो** में एक तन्के पर १ जीतल प्रतिमाह व्याज की दर उल्लिखित की है अर्थात् २०% प्रति वर्ष।[६५] किन्तु **ऐज़ाज-ए-खुसरवी** में उसने १०% व्याज की दर दी है। इस प्रकार से अमीरों को अधिक व्याज व उपहार ऋण के एवज़ में देना पड़ता था।

व्याज पर ऋण देने की प्रथा वहुत ही पुरानी थी। यह प्रथा वरावर चलती रही। ऋणदाता और ऋण लेने वाले के मध्य तमस्सुख अथवा ऋण पत्र लिखे जाते थे। सरकार व्याज की दर ही नहीं निर्धारित करती थी वरन् ऋण का भुगतान न करने की स्थिति में ऋण लेने वालों के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाहियाँ करने के लिए नियम भी निर्धारित करती थी। इब्नवतूता जव भारतवर्ष में आया तो उसने अनेक अवसरों पर साहूकारों से ऋण लिया और जव वह इस ऋण का भुगतान नहीं कर पाया तो उसकी ओर से मुहम्मद तुग़लक ने ऋण का भुगतान किया। उसने लिखा है कि सिन्ध और हिन्द में व्यापारी एक हजार दीनार प्रत्येक विदेशी आगन्तुक को,

जो कि सुल्तान से भेंट करने की इच्छा रखता था, उधार दे दिया करते थे। वे ही उन सभी वस्तुओं को जिनकी सुल्तान को उपहार देने में आवश्यकता होती थी, का प्रवन्ध कर दिया करते थे या उसकी निजी आवश्यकताओं की वस्तुओं जैसे कि ऊँट आदि सवारी के जानवर तथा अन्य वस्तुओं का भी प्रवन्ध कर दिया करते थे। वे न केवल उनकी आर्थिक सहायता ही करते थे वरन् उनकी व्यक्तिगत सहायता करते थे और उनके साथ परिवार के रूप में रहते थे। जव यह विदेशी नव-आगन्तुक सुल्तान के सम्मुख उपस्थित होते थे तो वह उन्हें वहुमूल्य उपहारों से सम्मानित करता था, जिससे कि वे ऋण का भुगतान ही नहीं कर देते थे वरन साहूकारों के अन्य अधिकारों की पूर्ति भी कर किया करते थे। इस प्रकार से व्यापारियों को व्यापार में अत्यधिक वृद्धि ही नहीं होती थी वरन् वे अत्यधिक लाभ उपार्जित किया करते थे।[६७] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में व्यापारियों का यही तौर-तरीका था। इब्नवतूता को इन व्यापारियों के साथ उसे जो कुछ कटु अनुभव हुए उनका भी उसने रोचक विवरण दिया है। उसने कई व्यापारियों से धन उधार लिया और उसे खर्च कर दिया। जव यह व्यापारी स्वदेश वापस जाने लगे तो उन्होंने उससे ऋण का भुगतान करने को कहा। जव वह ऋण का भुगतान न कर सका तो यह मामला सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के ध्यान में लाया गया। सुल्तान ने आदेश दिया कि इमादउद्दीन सिमनानी और खुदावन्द ज़ादा ग्यासुद्दीन हज़ार सितून में वैठे और मामले को तय करें। इस प्रकार से जव व्यापारी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने ऋण सम्वन्धी काग़ज उन्हें दिखाए। उन्होंने इन काग़जों की जाँच की और उन्हें असली पाया। तत्पश्चात् सुल्तान ने राजकोष से इस ऋण को भुगतान करने का आदेश दे दिया।[६८] इब्नवतूता ने यह भी लिखा है कि गज़नी में जव वह मुहम्मद-उद-दूरी नामक ईरानी व्यापारी से मिला था तो उसने उधार में उससे ३० घोड़े वोझा ढोने के लिए खरीदे। उसके बाद वह व्यापारी, खुरासान चला गया। जव वह वहाँ से भारतवर्ष लौटा तो उसने इब्नवतूता से ऋण वसूल कर लिया। इस प्रकार से उसने इब्नवतूता से अधिक लाभ उपार्जित किया और वह एक महान् व्यापारी वन गया।[६९] इस प्रकार के विवरणों से ज्ञात होता है कि ऋण देने का व्यवसाय सर्वत्र विद्यमान था। वड़े-वड़े व्यापारी न केवल उस देश में वरन् विदेशों में ऋण दिया करते थे।

भारतवर्ष में ऋण देने वालों में मुल्तानी, महाजन, साहू, वक्काल, सर्राफ और जरग़र मुख्य थे। इस काल में उनके व्यवसाय में उतार-चढ़ाव भी होता रहा। मंगोल आक्रमणों, युद्धों, प्राकृतिक प्रकोपों तथा असामान्य स्थितियों में उन्हें व्याज की दर पर ऋण देने का अवसर मिलता था और वे असामान्य परिस्थितियों में अधिक धन कमा लिया करते थे। कभी-कभी वे अभिजात वर्ग की मजवूरी का भी लाभ उठा लेते थे। दुराचारी, अपव्ययी, झूठी शान-शौकत प्रदर्शित करने वाले अमीर उनकी उदारता पर ही निर्भर रह कर उनके ऋणी वने रहते थे। ऋण देने वाले ऐसे वर्गों के मध्य वहुत ही लोकप्रिय थे। वे अत्यधिक दरों पर व्याज दिया करते थे।

अमीर खुसरो की कृतियों से ज्ञात होता है कि वे बड़े ऋणों पर १० प्रतिशत तथा छोटे ऋणों पर २०% की दर से व्याज लिया करते थे।[१०] लेकिन जब इसी अभिजात वर्ग के सदस्यों को षडयंत्रों द्वारा समाप्त करने की चेष्टा की जाती थी तो ऋणदाताओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। किन्तु ऐसा बहुत कम होता था। इस काल में ऐसा कभी भी समय न आया जब कि हिन्दू ऋणदाताओं ने अपने व्यवसाय में लाभ न उठाया हो। ऋणदाता कुसीदिक ऋणों तथा चक्रवृद्धि व्याज देकर कृषकों का भी शोषण करते थे। ग़रीब कृषक न तो व्याज ही दे पाते थे और न ही मूल धन का ही भुगतान कर पाते थे। जिससे उनकी दरिद्रता बढ़ती ही जाती थी।

व्यापारियों को प्रशासन में उचित स्थान दिया जाना

पूर्व मध्यकाल में जिस नवीन आर्थिक नीति का दिल्ली के सुल्तानों ने सूत्रपात किया उसका एक और भी महत्वपूर्ण पहलू है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने व्यापारियों, जो कि इस देश की भौगोलिक दशा, आय के साधनों, व्यापार एवं विनिमय की प्रकृति से भली-भाँति परिचित थे और जिनके पास असीमित धन था तथा जिनका जातीय एकता के कारण तत्कालीन समाज में महत्वपूर्ण स्थान था, को विश्वास में लेना प्रारम्भ किया। सुल्तान इस वर्ग की महत्ता को भली-भाँति समझते थे और इसी कारण उन्होंने उन्हें प्रारम्भ में प्रश्रय प्रदान किया और बाद में राजकीय सेवा में लेना शुरू किया। इल्तुतमिश अपने सौदागरों को समरकन्द, बुखारा और तिरमीज़ दास खरीदने के लिए भेजा करता था। आबुवक्र हब्शी उसका राजकीय प्रतिनिधि था, जो कि विभिन्न देशों से दास खरीद कर उसके लिए लाया करता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मंगोलों के मन्त्री ख्वाजा रशीदउद्दीन फज़ल-उल्लाह को चार गाँव प्रदान किये व मुत्सद्दियों को हुक्म दिया कि वे इन गाँवों से वार्षिक इदरार (उपकर) व भू-राजस्व वसूल करके गुजरात के अमुक व्यापारियों को दे दिया करे ताकि वे यह धन बसरा में मंगोलों के उस मन्त्री के प्रतिनिधियों को दे सके। यही नहीं सुल्तान ने कुछ अन्य व्यापारियों को यह उत्तरदायित्व सौंपा कि वे उससे उपहार लेकर उक्त ख्वाजा के प्रतिनिधियों को दें और वे लोग वे उपहार बसरा के बन्दर-गाह पर उन्हें सौंप दें। अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली में सराय अदल में मुल्तानियों को नियुक्ति अधिकारियों के रूप में करके नवीन परम्परा स्थापित की। अफीफ के अनुसार सुल्तान उन्हें धन दिया करता था। जब वे इस धन से वस्तुएँ खरीदकर उन्हें बाजार में बेच लेते थे तो उपलब्ध लाभ में से सुल्तान उन्हें उनका कमीशन (मवाजिब) दे देता था। अफीफ के एक अन्य कथन से भी मालूम होता है कि सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक ने अपने कारखानों के लिए माल खरीदने के लिए कुछ व्यापारियों को स्थायी रूप से अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया था।[७१] इब्नबतूता के अनुसार सैय्यद अबुल-हसन-अल इबादी-अल-ईराकी राज्य की ओर से धन लेकर खुरासान व ईराक से शस्त्र व अन्य

सामान खरीद कर लाता था और व्यापार करता था। सल्तनत काल में पहली बार व्यापारी वर्ग में से हामिद मुल्तानी को उच्च पद प्रदान किया गया। अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में सुल्तान अलाउद्दीन ने जब हामिद मुल्तानी को काज़ी-उल-कुज़्ज़ात और सद्र-उस-सुदूर के पद पर नियुक्त किया तो मिस्र से हदीस साहित्य का प्रचार करने के लिए आये हुए मौलाना शम्सुद्दीन तुर्क ने उसकी बड़ी भर्त्सना की और यह कहा कि न्याय सम्बन्धी व धर्म सम्बन्धी कार्य जो कि बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य हैं, उन्हें उसे प्रदान नहीं करने चाहिए थे।[७२] अन्यत्र बरनी हामिद मुल्तानी मालिक तुजार को मुल्तानी बच्चा कहता है और यह बताता है कि वह सुल्तान अलाउद्दीन के घर का नौकर, पर्दादार और राज्य-भवन की कुन्जी रखने वाला व्यक्ति था।[७३] इस प्रकार व्यापारियों को प्रशासन में पद देने की जो परम्परा सुल्तान अलाउद्दीन के समय से प्रारम्भ हुई उसने अपना व्यापक रूप सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के समय में ले लिया। मुहम्मद तुग़लक ने अज़ीज खिम्भार (शराब बेचने वाला) को गुजरात का नायब वज़ीर और मालवा व उसके समीपवर्ती प्रदेशों का मुक्ता नियुक्त कर दिया।[७४] इसी प्रकार से मलिक-उत-तुज्जार शिहाबुद्दीन कज़रूनी को सुल्तान ने अक्ता में खम्भात प्रदान कर दिया और उसे वज़ीर नियुक्त करने का वायदा किया।[७५] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने तुर्किस्तान के सुप्रसिद्ध सौदागर ताजुद्दीन इब्न-उल-कौलामी को, जो कि व्यापारी समुदाय का एक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि था, खम्भात शहर की विलायत में नियुक्त कर दिया। उसने वहाँ पहुँच कर अपने जहाजों को मालाबार, लंका तथा अन्य देशों से सुल्तान के लिए उपहार लाने के लिए भेजा। जब यह जहाज सुल्तान के लिए उपहार लेकर वापस लौटा तो ताजुद्दीन इब्न उल कौलामी की आर्थिक स्थिति और भी अच्छी हो गई।[७६] उसने नज्मुद्दीन गीलानी को भी खम्भात शहर में नियुक्त किया। वह भी एक व्यापारी था। इस प्रकार से इन व्यापारियों को नियुक्त करने से सुल्तान को विदेशी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने लगी। इन व्यापारियों के द्वारा उसने खम्भात शहर व उसके बन्दरगाह की भी व्यवस्था करवाई। यद्यपि ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी, मुहम्मद बिन तुग़लक और फिरोज़शाह तुग़लक इन व्यापारियों के माध्यम से निजी व्यापार करते रहे होंगे। यही नहीं जब तुग़लक काल में व्यापारियों के भू-राजस्व उगाहने के लिए ठेके दिये जाने लगे तो वहाँ भी सुल्तान का यही उद्देश्य रहा होगा कि वह इजारादारों या ठेकेदारों के माध्यम से धन कमाये। मुहम्मद तुग़लक ने शिहाब सुल्तानी नामक बक्काल को तीन साल के लिए बीदर के प्रान्त से भू-राजस्व वसूल करने का ठेका दे दिया और उससे तय किया कि वह प्रति वर्ष १ करोड़ तन्का उसे दिया करेगा।[७७] किन्तु शिहाब सुल्तानी निर्धारित धन का १/३ या १/४ भाग भी सुल्तान के पास नहीं भेज सका।

मुहम्मद तुग़लक ने अपने शासनकाल में व्यापारियों को भी प्रशासन से संलग्न कर उन्हें समुद्रीतट के नगरों का प्रशासन, सम्भवतः इस आशय से सौंपा कि विदेशों से हिन्दुस्तान का व्यापार बढ़ेगा। इन व्यापारी प्रशासनिकों द्वारा आयात व निर्यात दोनों

के ही मार्ग खुल गए। उसने मलिक उल तुज्जार शिहाबुद्दीन कजरुनी को इसी आशय से दरबार में बुलाया। जब शिहाबुद्दीन सुल्तान के लिए सराचा अर्थात् डेरा जो रेशम का बना हुआ था तथा जिसमें सुनहरे फूल लगे हुए थे को लेकर खच्चरों के साथ दरबार की ओर रवाना हुआ तो ख्वाजा-ए-जहाँ को यह मालूम हुआ कि सुल्तान उसे ही वज़ीर बनाना चाहता है, अतः द्वेष के कारण उसने उसे मरवा डालने के लिए प्रबन्ध किया। शिहाबुद्दीन पर मार्ग में हमला किया गया। वह बच निकला, किन्तु उसका सामान व सम्पत्ति लुटेरों ने छीन ली। सुल्तान को जब इस घटना के बारे में ज्ञात हुआ तो उसने आदेश दिया कि नहरवाला प्रदेश के कर में से उसे ३०,००० दीनार दे दिये जायें और वह स्वदेश लौट जाय। शिहाबुद्दीन किसी प्रकार दरबार में पहुँचा, जहाँ सुल्तान ने उसे ६००० तन्के दिये और आदेश दिये कि राजकोष में से उसे १ लाख सोने के तन्के और दिये जायें ताकि स्वदेश लौटने से पूर्व वह हिन्दुस्तानी सामान मोल ले सके। सुल्तान के आदेशानुसार उसके लिए तीन जहाज़ तैयार कराये गये, उसके समस्त सामान की व्यवस्था की गई, जहाज के कर्मचारियों को वेतन दिया गया और जब शिहाबुद्दीन ओरमज़ पहुँचा तो उसने वहाँ एक महल बनवाया और अपना धन खर्च कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान उसके माध्यम से हिन्दुस्तानी वस्तुओं का निर्यात करना चाहता था ताकि देश के व्यापार में वृद्धि हो। किन्तु शिहाबुद्दीन ने सुल्तान से प्राप्त धन नष्ट कर दिया।[७८]

इस प्रकार का अन्य समृद्धशाली व्यापारी ताजुद्दीन इब्न कौलामी था। वह सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के पास तुर्कों के देश (मध्य एशिया) से बहुमूल्य वस्तुएँ लेकर आया करता था। इन वस्तुओं में दास, ऊँट, हथियार, अस्त्र आदि होते थे। सुल्तान उससे बहुत ही प्रसन्न रहता था। उसने उसे १२ लाख तन्के प्रदान किये और खम्भात का वली नियुक्त किया। उस नगर में कौलमी ने पहुँच कर मालाबार, सैलान टापू (लंका) तथा अन्य स्थानों पर जहाज भेजना प्रारम्भ कर दिया। उसका व्यापार बहुत ही बढ़ा और वह धनी हो गया। बाद में खिराज के भुगतान के मामले को लेकर उसका वज़ीर मुक़बिल से झगड़ा हो गया और उसका व्यापार नष्ट हो गया।[७९]

इस काल में साहूकारों ने भी बहुत धन कमाया। सुल्तान बलबन के शासनकाल से या उससे पूर्व एक नई प्रथा यह चल पड़ी थी कि उक्तादारों को जब अक्ताएँ मिलती थी तो वे अक्ताओं से सम्बन्धित कागज साहूकारों को दे दिया करते थे, जो उनसे कुछ कमीशन लेकर उन्हें धन दे दिया करते थे। इस प्रकार उन्हें अपनी अक्ताओं में जाना नहीं पड़ता था और घर बैठे ही उन्हें बराबर धन मिलता रहता था। अन्य शब्दों में अक्तादार अपनी इक्ताओं को साहूकारों के हाथों बेच दिया करते थे और उनसे धन प्राप्त कर लिया करते थे। साहूकार अक्ताओं में जाकर चौगुना धन वसूल कर लिया करते थे। इस प्रकार के व्यवसाय से अनेक साहूकार मालामाल हो गये।

तुग़लक काल में व्यापारी वर्ग का स्वरूप बहुत ही व्यापक हो गया। बरनी की

पैनी बुद्धि इस तथ्य पर पड़ी और उसने अपने विचार इन शब्दों में रक्खे, "जब जमाखोरी में और ऊँचे मूल्यों के सामान बेचने में अत्यधिक लाभ दिखाई नहीं देता है और लोग अपने स्वभाव से अपना व्यवसाय छोड़ देते हैं तब कृषक व्यापार में अधिक लाभ देखकर व्यापार को व्यवसाय को ग्रहण कर लेते हैं; जमाखोर अपने धन के प्रभाव के कारण उच्च पदों की ओर हाथ बढ़ाते लगते हैं, दूकानदार अधिकारी बनना चाहते हैं; कुलीन वर्ग के लोग व्यापारी बनना चाहते हैं, कारखानियाँ अमीर व सेना के अधिकारी बनने की इच्छा करने लगते हैं।[८०] समाज में इस प्रकार की उथल-पुथल केवल आर्थिक परिवर्तनों का ही परिणाम थी। समाज के प्रत्येक वर्ग का ध्यान इन आर्थिक परिवर्तनों की ओर था। दिल्ली के सुल्तान यह भली-भाँति जानते थे कि उनकी आय का एक बड़ा भारी स्रोत, जनता की आर्थिक दशा तथा उसकी समृद्धि बहुत कुछ व्यापारी समुदाय के ऊपर ही निर्भर करती है अतएव उन्होंने उन्हें प्रश्रय देना प्रारम्भ किया। व्यापारी समुदाय यह समझता था कि जब तक कि उसे प्रशासन की ओर से संरक्षण व प्रश्रय नहीं मिलेगा वे अपना व्यापार करने में असमर्थ रहेंगे। अन्य शब्दों में शासन, शासक वर्ग व व्यापारी समुदाय तथा सर्वसाधारण के हित एक दूसरे से सम्बद्ध थे। दिल्ली के सुल्तानों की यह नीति थी कि जहाँ तक सम्भव हो सके व्यापारी समुदाय को प्रश्रय व संरक्षण दिया जाय। यद्यपि बलबन ने दिल्ली के एक धनी व्यक्ति से मिलने से मना कर दिया। किन्तु उसने अपने पुत्र मुहम्मद को परामर्श दिया कि वह व्यापारियों को समृद्ध व सन्तुष्ट रखे।[८१] कैकुबाद ने जब किलोखड़ी में राजधानी बनाई तो वहाँ उसने अनेक व्यापारियों को बसाया। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी इन व्यापारियों को पुराने शहर से किलोखड़ी लाया और उसने उन्हें वहाँ बसाया।[८२] सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने दौलताबाद में व्यापारियों के लिए पृथक मुहल्लों में व्यवस्था की।[८३] इसी प्रकार का दृष्टिकोण अभिजात वर्ग का भी व्यापारी समुदाय के प्रति रहा। ब्याना के अधिकारी बहाउद्दीन तुग़रिल ने जब थानगिर में नया शहर स्थापित किया तो उसने व्यापारियों को वहाँ बसाने में मदद की।[८४] इन्शा-ए-महरू में अनेक पत्र है जिनसे यह ज्ञात होता है कि मुल्तान के मुक्ती आईन-उल-मुल्क ने व्यापारियों के हितों की सुरक्षा की और उन्हें अधिकारियों के अत्याचार से बचाया।

व्यापारिओं की सुरक्षा

व्यापार व विनिमय के विकास के लिए शान्ति, सुव्यवस्था, यातायात के सुलभ साधन, अच्छी सड़कें, सड़कों पर सुरक्षा आदि की बड़ी आवश्यकता होती है। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही साथ जैसे ही वहाँ शहरी तथा ग्रामीण क्रान्तियाँ प्रारम्भ हुई और अर्थ-व्यवस्था करवटें बदलने लगी तो दिल्ली के सुल्तानों का ध्यान सड़कों व उनकी सुरक्षा की ओर भी गया। बलबन, अलाउद्दीन खिल्जी व मुहम्मद बिन तुग़लक ने व्यापारी मार्गों की सुरक्षा की व्यवस्था की। बलबन के राज्य काल के सम्बन्ध में

लिखते हुए बरनी ने लिखा है कि दोआब को विजित करने के पश्चात् हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों के उपद्रवकारियों से मुक्त करने के लिए वह दो बार दिल्ली से बाहर गया। वह कम्पिल व पटियाली में ५-६ महीने तक रहा और उसने विद्रोहियों को मौत के घाट उतार कर हिन्दुस्तान के मार्ग साफ कर दिये। बनजारे व व्यापारी पुनः आने जाने लगे उसने मार्गों की सुरक्षा के हेतु कम्पिल, पटियाली व भोजपुर में अफ़गानों को रख दिया व मार्गों पर थाने बनवा दिये ताकि वे सुरक्षित रहे।[८५] इसी प्रकार अलाउद्दीन खिल्जी के समय भी, राज्य के प्रदेशों के मार्ग इस प्रकार सुरक्षित हो गये थे कि खूत व मुकद्दम व्यापारियों की रक्षा के लिए मार्ग पर खड़े रहते थे। व्यापारी व यात्री माल, नकदी तथा अन्य सामग्री लिए हुए जंगलों व मैदानों में पड़े रहते थे।[८६] गयासुद्दीन तुग़लक के समय गज़नी में व्यापारी इतने सुरक्षित थे कि कोई उनके कारवान वालों के पास फटक भी नहीं सकता था।[८७] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में जब कि देश की आन्तरिक दशा बहुत ही खराब थी, राज्य की ओर से संरक्षण प्राप्त होने के कारण व्यापारियों के विभिन्न वर्गों ने बड़ी उन्नति की और समृद्धि उपलब्ध की थी।[८८] इब्नबतूता ने व्यापारियों की समृद्धि की, विशेषकर गुजरात तथा खम्भात के व्यापारियों की चर्चा करते हुए लिखा है कि उन्होंने सुन्दर हवेलियाँ बनवा ली और वे शान-शौकत से अपना जीवन व्यतीत करते थे।[८९] संक्षेप में पूर्व मध्यकाल में व्यापारी समुदाय की दशा बहुत ही अच्छी थी और उसने अपने व्यवसाय में बड़ी उन्नति कर ली थी।

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में दूकानदारों तथा काफिलेवालों, साहूकारों, सर्राफों, ऋणदाताओं तथा जमा-खोरी व चोरबाजारी करने वालों की धन-सम्पत्ति तथा नकद लाखों को पार करके करोड़ों तक पहुँच गई। बरनी ने लिखा है कि बाजार वालों को जिस प्रकार सम्पन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करना, घर बनवाना तथा सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करना फिरोज़शाह के राज्यकाल में प्राप्त हो सका, वह उन्हें किसी राज्य में प्राप्त न हुआ। व्यापारी ही सभी वस्तुओं के अधिकारी थे। जिस प्रकार उनकी इच्छा होती थी वे उसी प्रकार उन्हें बेचते थे। वे प्रशासन को कोई कर नहीं देते थे। वे न तो किसी से झगड़ा करते थे और न कुछ मिलावट ही करते थे। उनके घरों से प्रतिदिन सौ-सौ दो-दो सौ तन्के आते थे किन्तु उनमें से एक भी तन्का वे कर के रूप में नहीं देते थे।[९०] इसका एकमात्र कारण यह था कि सिंहासन पर बैठने के बाद जब वह थट्टा से दिल्ली की ओर रवाना हुआ तो सिरसौती के निकट सिरसौती के सर्राफों तक बक्कालों ने कई लाख तन्के उसे भेंट में देकर उसकी वित्तीय कठिनाइयाँ दूर की थी। उनकी कृतज्ञता के बारे में सुल्तान कभी भी नहीं भूल सका और सदैव उनके प्रति उसने सद्भाव की भावना रक्खी।[९१]

अफीफ ने फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल के व्यापारियों के बारे में लिखा है कि प्रत्येक वर्ष उन्हें पिछले वर्ष से अधिक लाभ होता था।[९२] व्यापारी वर्ग शान से

तीन-तीन चार-चार वर्ष व्यापार हेतु दूर-दूर के प्रसिद्ध राज्यों की यात्रा किया करते थे और वहाँ से माल लाते थे।[६३] किन्तु यदा-कदा समकालीन ग्रन्थों में ऐसे भी सन्दर्भ मिलते हैं जहाँ कि राजकीय कर्मचारियों ने उनके साथ निन्दनीय कटु व्यवहार भी किया। उदाहरणार्थ, अलाउद्दीन के शासनकाल में नुसरत खाँ जलेसरी ने गुजरात अभियान के समय खम्भात के व्यापारियों से धन छीना, मलिक काफूर को उसके मालिक से छीन लिया।[६४] कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी के शासनकाल में खुसरो खाँ ने दक्षिण अभियान पर जाते समय एक समृद्धशाली व्यापारी ख्वाजा तकी की सम्पत्ति छीन ली और उसे मार डाला।[६५] अफीफ ने दानगाना नामक अब्वाब के वसूल किये जाने के सम्बन्ध में एक रोचक कहानी का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि एक व्यापारी तीन मन रूई लाया। खजाना-ए-दानगाना के अधिकारी उसे अपने दफ्तर में ले गये और उन्होंने कई दिनों तक उसे वहीं रक्खा। न वे उससे तीन दाँग लेते थे और न छोड़ते थे। वह व्यापारो कुछ दिनों तक उसी दशा में रहा। तत्पश्चात् उसकी रूई में आग लगा दी गई और वह जल गई। इसके बाद वह चला गया। अफीफ के अनुसार दौरी तथा दागाना के कारण व्यापारियों पर बड़ा अत्याचार हुआ करता था और इस लिए फिरोजशाह तुग़लक के काल में उन्होंने दिल्ली में आना ही बन्द कर दिया।[६६] आइन उल मुल्क मुल्तानी ने मुल्तान में व्यापारियों पर अत्याचार होते हुए देखा और उसे रोकने की चेष्टा की। अफीफ ने लिखा है कि यहाँ बड़ी प्राचीन प्रथा यह थी कि व्यापारी लोगों में सुल्तान के साथ केवल वही जा सकता था जिसे शहर का रईस आज्ञा दे। व्यापारी सेना के साथ जाने के लिए उसकी खुशामद करते थे और उसे उपहार भेंट करते थे।[६७] किन्तु इन थोड़े से सन्दर्भों को लेकर यह नहीं समझना चाहिए कि हर समय व्यापारियों पर सरकारी अधिकारो अत्याचार किया करते थे या उन्हें अनावश्यक सताते रहते थे। वास्तव में व्यापारी समुदाय का प्रत्येक वर्ग कर देने में आनाकानी करता था। वे जमाखोरी, चोर-बाजारी, वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न करने, वस्तुओं का अकारण मूल्य बढ़ाने या कृत्रिम सिक्के ढालने या क्रेता व विक्रेता से कमीशन लेने या राजाज्ञाओं का उल्लंघन करने में कभी भी पीछे नहीं रहते थे और इसी कारण कभी-कभी उन्हें दण्ड देना आवश्यक हो जाता था। अलाउद्दीन खिल्जी के समय जब दूकानदार माल कम तौलते हुए पाये गये तो उनके शरीर से उतना ही माँस काट कर उन्हें दण्ड दिया जाता था ताकि अन्य दूकानदार भय से ऐसा न कर सकें। किन्तु अलाउद्दीन खिल्जी के नियम अल्पकाल के लिए ही थे। उसकी मृत्यु के बाद दूकानदारों ने अपना पुराना धन्धा फिर से प्रारम्भ कर दिया। समकालीन विचारधारा जमाखोरी के विरुद्ध थी और उसे धार्मिक दृष्टि से बुरा माना जाता था किन्तु फिर भी व्यापारी जमाखोरी करते थे।

इस काल में व्यापारियों की अपने व्यापार के सम्बन्ध में एक आचार संहिता हुआ करती थी। मूल्य पर विक्रेता का अधिकार होता था और वही उसको निश्चित किया करता था। इन्शाए-महरू में आइन-उल-मुल्क महरू ने मौलाना शम्सुद्दीन

मुतवक्किल को लिखे गए पत्र में इस प्रश्न को उठाया कि क्या मनुष्यों व पशुओं की जीविका से सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओं का व्यापारियों द्वारा माल इकट्ठा करना और उन्हें ऊँचे दाम पर बेचना या प्रशासन द्वारा वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करना, दोनों बातें वैध या अवैध हैं। इस विषय में पत्र का विषय बहुत ही रोचक है क्योंकि दोनों ही पहलुओं पर विचार किया गया है। शरा के नियमों के अन्तर्गत किसी वस्तु को रोक लेना या उसका भण्डार भर लेना दोनों ही अवैध उस समय है जब तक कि उनसे लोगों को हानि पहुँचने लगे। यदि उससे कोई हानि किसी को न पहुँचे तो वही कार्य वैध होगा। इस पत्र में यह बताया गया है कि मुल्तान के व्यापारी व व्यवसाय वाले चीजों को भण्डार में भर लेते हैं। यद्यपि उन्हें शरा के आदेश समझाये जाते हैं किन्तु लोभ व लालच के कारण उन पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता। वे शरा के दण्ड की चिन्ता नहीं करते। इससे मुसलमानों को ही नहीं वरन् सभी को नुकसान पहुँचता था। उदाहरणार्थ, यह व्यापारी घी व कपड़ा सिरसौती से लेकर आते थे। वे घी को ७ जीतल प्रति सेर के हिसाब से मोल लेते थे और उस मूल्य को धीरे-धीरे अदा करते थे। उसे वे कुछ समय तक सुरक्षित रखते थे। जब घी बाजार में नहीं मिलता था तो वे १ जीतल या १० जीतल प्रति सेर के हिसाब से उसे बेच दिया करते थे। सुल्तान फिरोजशाह ने जमाखोरी को रोकने के लिए बेतुलमाल से घी तत्काल खरीदना प्ररम्भ किया और मूल्य नकद देना प्रारम्भ किया। जिससे विक्रेता सन्तुष्ट रहने लगे। यदि क्रय करने वाला तथा विक्रेता दोनों सन्तुष्ट हो जाए तो शरा इस प्रकार के व्यापार की स्वीकृति देता है। आईन-उल-मुल्क के विचार में मँहगे मूल्य पर माल बेचने की अनुमति नहीं देनी चाहिए और जमाखोरों का अन्त करा देना चाहिये ताकि सर्वसाधारण, इमामों, शक्तिहीनों तथा सैनिकों को लाभ पहुँचे। आईन-उल-मुल्क मूल्य निश्चित करने के पक्ष में न था। इसी पत्र में आईन-उल-मुल्क ने वस्त्र, मिश्री तथा ईंधन के उदाहरण भी दिए हैं। इसके अनुसार जमाखोरी करने वाले सस्ते समय में वस्त्र मोल लेते थे और सुरक्षित कर लेते थे। वे ५० में मोल लेते थे और १०० में बेचते थे। आईन-उल-मुल्क ने स्वयं वस्त्र खरीद करके उसी मूल्य पर बेचना प्रारम्भ किया और इस प्रकार उसकी जमाखोरी बन्द हो गई। उसने यह भी लिखा है कि कुछ व्यापारी देहली व लाहौर में मिश्री लाकर उसे महंगा बेचने के विचार से छिपा लिया करते थे। इसी प्रकार से जो ईंधन गाड़ियों में आता था उसे वे ८ जीतल प्रति मन के हिसाब से बेचते थे। किन्तु आईन-उल-मुल्क ने नौकाओं व किसानों को भेजकर लकड़ी मँगवानी प्रारम्भ की और उसे उचित मूल्य पर बिकवाना शुरू किया, जिससे व्यापारी जमाखोरी नहीं कर सके। संक्षेप में इस काल में व्यापारी अधिक लाभ कमाने के विचार से अधिक मूल्य पर अपनी वस्तुओं को बेचने का प्रयास किया करते थे।[६८]

प्राचीन काल की परम्पराओं के अनुसार भारत में व्यापार करने का अधिकार केवल वैश्यों को ही था। उत्तरी भारत में पहले गुजराती व मारवाड़ी

व्यापारी ही व्यापार किया करते थे दक्षिण में शेट्ठियों का मुख्य व्यवसाय व्यापार करना था। राजस्थान में व्यापार बनजारों के हाथ में प्राचीन काल से लेकर १८वीं शताब्दी के अन्त तक रहा। कभी-कभी उनके साथ ४०,००० वैलगाड़ियों का काफिला चलता था। १२वी शताब्दी में मुसलमानों का भारत में वसना व मुसलमान व्यापारियों का विदेशों से हिन्दुस्तान आकर माल खरीदना व वेचना इस देश के लिए एक नवीन वात थी। इसी काल में तुर्क-अफगान आक्रमणों के कारण जव राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल हुई तो किसी भी व्यवसाय पर एक जाति का एकाधिकार न रहा। प्राचीन व्यापारी समुदाय में अनेक भारतीय एवं विदेशी तत्वों ने प्रवेश किया, जिससे किसी प्रकार का व्यवसाय करने चाहे वह थोक व्यापार हो अथवा खुदरा व्यापार किसी परिवार, समुदाय व जाति की वपौती नहीं रही। यह कहना वहुत ही गलत होगा कि वड़े पैमाने पर व्यापार कुछ विशेप वर्गों तथा विशेष समुदाय के हाथों में था। इस सम्वन्ध में कोई भी साक्ष्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। हाँ इतना अवश्य था कि समस्त व्यापार कुशल व्यापारियों के ही हाथों में था। चिरकाल से चली आई हुई परम्पराएँ सदैव उनका मार्ग-निर्देशन करती रहीं। वास्तव में उनकी कोई भी नैतिक संहिता नहीं थी। कभी-कभी प्रशासन उनके लिए कुछ नियम वना दिया करता था जिनका पालन करना उनके लिए अनिवार्य होता था।

इस काल में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय से सभी नगरों व शहरों का मुख्य व्यापार हिन्दुस्तानी व्यापारियों के ही हाथों में रहा।[९९] वे वहुत ही धनी व समृद्धिशाली हो गये थे। अफीफ के अनुसार वे इतने विपन्न हो गये थे कि अपनी पुत्रियों को दहेज देना उनके समक्ष कोई भी समस्या न थी और वे उनका विवाह कम उम्र में ही कर दिया करते थे।[१००] वास्तव में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय से लेकर सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल तक भारतीय व्यापारी वर्ग का समुचित रूप से विकास हुआ।

व्यापार तथा विनिमय

प्राचीन भारत की भाँति पूर्व मध्यकाल में कृपि उत्पादन इतनी अधिक मात्रा में ग्रामों में तथा गैर कृपि उत्पादन शहरों में होता रहा कि स्थानीय जनता के उपयोग करने के वाद भी वाजार में वेचने के लिए अत्यधिक मात्रा में कुछ न कुछ सामान वच ही जाता था। यह अतिरिक्त उत्पादन गाँवों से कस्वों तथा शहरों के वाजारों में पहुँच जाता था जहाँ से वह देश भर में विभिन्न व्यापारिक समुदायों द्वारा वितरित होता रहता था। औद्योगिक उत्पादन की वस्तुओं का निर्माण व उत्पादन केवल उपयुक्त वाजारों के लिए और विशेष वर्गों व समुदायों के लोगों के लिए ही किया जाता था। इस देश में निर्मित होने वाली या उत्पादित होने वाली वस्तुओं की खपत न केवल इसी देश में ही थी वरन् विदेशों में भी वहुत-सी वस्तुओं की माँग होती रहती थी। इसी प्रकार से विदेशी वस्तुओं की भी माँग इस देश के विभिन्न वर्गों में थीं,

जिसके कारण उन वस्तुओं का आयात करना पड़ता था। इस समस्त व्यापारिक प्रक्रिया के कई पहलू हैं किन्तु उनमें से दो महत्वपूर्ण पहलू आन्तरिक एवं अन्तर्प्रादेशिक व्यापार तथा वाह्य व्यापार है। यह दोनों पहलू इस काल के लिए कोई नवीन पहलू नहीं थे क्योंकि सदियों से प्राचीन काल व राजपूत काल में इसी प्रकार एवं प्रकृति की व्यापारिक क्रियाएँ इस देश में होती रहीं। हमारे देश के व्यापारिक सम्वन्ध चिरकाल से दक्षिण पश्चिमी, योरोप, मध्य एशिया, सुदूर पूर्वी देशों, दक्षिण पूर्वी एशिया आदि के देशों से रहे हैं। देश की भौगोलिक दशा ने व्यापार व विनिमय की सुविधाएँ यहाँ के लोगों को प्राकृतिक वरदान स्वरूप दी। दक्षिण में पश्चिमी समुद्री तट पर सिन्ध से लेकर कालीकट तक अनेक वन्दरगाह थे और आज भी हैं। इसी प्रकार से पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी से लेकर सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक अनेक वन्दरगाह पहले भी थे और आज भी हैं। इन्हीं बन्दरगाहों पर एक ओर तो पश्चिमी देशों से, दूसरी ओर पूर्वी एशिया के देशों से सामान आता रहा और उन देशों, को भारतवर्ष से सामान भेजा जाता रहा। इस प्रकार भारतवर्ष किसी युग में संसार के मध्य देशों से पृथक् नहीं रहा और पश्चिमी व पूर्वी देशों से उसके व्यापारिक व आर्थिक सम्वन्ध सहस्त्र वर्षों से बने रहे। उत्तरी भारत में तुर्की सत्ता की स्थापना के उपरान्त और तत्पश्चात् हिन्दू-मुस्लिम सत्ता में उसके परिणित होने तथा दक्षिण की ओर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिल्जी, ग्यासुद्दीन तुग़लक व मुहम्मद तुग़लक के राज्यकालों में साम्राज्य के विस्तार होने के बाद तथा १३३७ ई० के पश्चात् दक्षिण भारत में वहमनी व विजय नगर साम्राज्यों की स्थापना व वहाँ विदेशी मुसलमानों के वढ़ते हुए राजनीतिक प्रभाव के परिणामस्वरूप आन्तरिक व वाह्य व्यापार में वहुत ही वड़ा अन्तर आ गया। उस अन्तर की झलक न केवल हमें उत्तरी भारत में वरन् दक्षिण भारत के आन्तरिक एवं वाह्य व्यापार में भी मिलती है। इस काल में एक ओर आन्तरिक व वाह्य व्यापार की माला में वृद्धि हुई तो दूसरी ओर १४वीं शताब्दी के अन्त में अरव सागर में अरवों की प्रभुसत्ता समाप्त हुई और पुर्तगालियों ने दक्षिण के पश्चिमी तट पर स्थित अनेक बन्दरगाहों पर आधिपत्य स्थापित कर व्यापार अपने हाथों में ले लिया। यह इस काल की महान विशेषता थी।

यातायात के साधन

किसी भी देश में व्यापार व विनिमय के विकास के लिए राजनैतिक स्थिरता के अतिरिक्त पर्याप्त माला में वस्तुओं का उपलब्ध होना, प्राकृतिक साधनों का निरन्तर प्रयोग किया जाना, व्यापारी समुदाय का संगठित होना तथा विविधा वस्तुओं की माँग व पूर्ति का होना, वस्तुओं के लिए देश भर में वाजारों का होना तथा यातायात के पर्याप्त साधनों का उपस्थित होना वहुत ही आवश्यक होता है। विना इन उपकरणों के न तो औद्योगिक प्रगति और न ही व्यापार विनिमय सम्भव होता है। सौभाग्य से

यह सभी उपकरण यहाँ उपस्थित थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष में सड़कों का जाल पहले से ही बिछा हुआ था। दिल्ली के सुल्तानों को विरासत में हिन्दू शासकों से पुरानी सड़कें प्राप्त हुई थी। उन्होंने स्वयं भी नई सड़कें बनाने और मार्गों को सुरक्षित बनाने का प्रयास किया। उन्होंने जंगलों को कटवाकर नई सड़कें बनवाई और मार्गों को सुरक्षित किया। उन्होंने सड़कें बनवाने और उसके किनारे-किनारे छायादार वृक्ष लगवाने का कार्य जारी रखा। अलबरूनी (६७२-१०५०) ने लिखा है कि उत्तरी भारत में प्रादेशिक व्यापार के विकास के लिए सड़कों का होना नितान्त आवश्यक है। उसने कन्नौज से उत्तर पश्चिम में जाती हुई दो सड़कें देखी। उनमें से एक मार्ग शोरशहराहा और धमत्ता होते हुए कश्मीर जाती थी और राजगिरी में समाप्त होती थी। दूसरी सड़क पानीपत, झेलम तथा काबुल होते हुए गजनी तक जाती थी। इसके अतिरिक्त तीसरी सड़क कन्नौज से अन्हिलवाड़ा और बज्मा होती हुई सोमनाथ तक जाती थी। बज्मा से एक अन्य सड़क मुल्तान तक जाती थी जो कि लोहरानी (आधुनिक कराची के निकट स्थित) तक जाती थी। अलबरूनी ने उत्तर-पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी प्रदेशों के मार्गों का भी उल्लेख किया है। आगे चलकर गजनवियों ने गज़नी व पंजाब के मध्य सड़कों का विस्तार किया। उसमें से सबसे महत्वपूर्ण सड़क कुर्रम, तोची तथा गोमल के दर्रों से होकर जाती थी। सुलेमान की पहाड़ियों से होकर एक मार्ग मुल्तान उच्च ऊपरी सिन्ध तक जाता था। इससे पूर्वी ईरान तथा गज़नी के व्यापारी गुजरात तक पहुँचते रहे। अलबरूनी के भारत में आने के दो शताब्दियों बाद तक निरन्तर नये-नये मार्गों का विकास होता रहा। यह मार्ग समस्त उत्तरी भारत के प्रमुख नगरों को एक-दूसरे से जोड़ने में सफल रहे। दिल्ली के सुल्तानों ने प्रशासन की आवश्यकताओं को देखते हुए सड़कों द्वारा ग्रामों व कस्बों व शहरों को जोड़ दिया। हिन्दुओं के विद्रोह, मंगोलों के आक्रमणों, भू-राजस्व वसूल करने की कठिनाइयों ने सुल्तानों को सड़कें बनाने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार उत्तरी भारत में व सीमान्त प्रदेशों में सड़कों का जाल बिछने लगा। यदि दिल्ली व आगरा को इसका केन्द्र-बिन्दु मान लें तो हम देखते हैं कि वहाँ से आने-जाने वाली सड़कें उत्तर-पश्चिम में काबुल, गजनी, कन्धार और उसके भी आगे पश्चिम एशिया व मध्य एशिया तक, पश्चिम में थट्टा व मुल्तान तक, पूर्व में बंगाल व उड़ीसा तक, और दक्षिण व सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैली हुई थी। यह सड़कें गाँवों व कस्बों से होती हुई शहरों से मिलती थी और इनका प्रयोग समाज के अन्य वर्गों के अतिरिक्त कारवानी, बंजारे, व्यापारी, सौदागर, मुल्तानी सभी किया करते थे।

इस काल में देश के मुख्य भागों में सराएँ भी बनवाई गई। इब्नबतूता ने १३४१ ई० में मुख्य मार्गों पर छायादार वृक्ष, सराएँ व कुएँ देखे।[१०१] फिरोजशाह तुग़लक ने (१३५१-८८) ने अपने शासनकाल में १००० सराएँ बनवाई, १५० पुल बनवाये तथा चितूर पहुँचने के लिए गम्भीर नदी पर पुल बनवाया।[१०२] थल यातायात में सरायों व पुलों का अधिक महत्व था। यातायात के साधन इतने कम और धीमे थे कि दूर की

यात्रा कष्टदायक होती थी। मार्गों की असुरक्षा के कारण व्यापारियों तथा सामान्य यात्रियों की सुविधा के लिए सराएँ बनवाई गई। १४७० ई० में रूसी यात्री निकीटीन ने लिखा था इस देश में विदेशी व्यापारियों के लिए सरायों में ठहरने की परम्परा थी।

जल यातायात

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी कि जल यातायात के भी साधन यहाँ उपलब्ध थे। सम्पूर्ण भारत में छोटी-बड़ी नदियों का जाल बिछा हुआ था। उत्तरी भारत में सिंध नदी, गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्र और उनकी अनेक शाखाएँ दक्षिण में गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा नर्मदा व ताप्ती और उनकी शाखाओं ने जल यातायात की सुविधा प्रदान की। जल यातायात सस्ता व सुगम था। उसका प्रयोग सैनिक अभियानों के समय तथा व्यापार के लिए बराबर होता रहा। बलबन जब तुगरिल बेग का विद्रोह दबाने के लिए बंगाल की ओर बढ़ा तो उसने आदेश दिया कि गंगा-जमुना के किनारे नौकाएँ एकत्र की जायँ। उसने सरयू नदी नौकाओं द्वारा पार की और उसके बाद वह तुग़रिल बेग के विरुद्ध बढ़ा।[१०३] शिहाबुद्दीन उल उमरी के अनुसार लखनौती में २०,००० छोटी परन्तु तीव्र गति वाली नौकाएँ थी।[१०४] कुछ नौकाएँ जहाजों के बराबर थी। सुल्तान फ़िरोज़शाह तुग़लक ने १३७२ ई० में जब थट्टा पर आक्रमण किया तो उसने ५०० नौकाएँ एकत्र कर सिंध नदी पार की। उसने बंगाल के विरुद्ध अभियानों में भी नौकाओं का प्रयोग किया। जल मार्गों पर छोटी-छोटी नौकाओं का प्रयोग न केवल आने-जाने के लिए वरन् सामान ढोने के लिए किया जाता था।[१०५] जिस नौका पर सुल्तान क़ैकुबाद अपने पिता बुग़रा खाँ से भेंट करने गया वह नौका साल की लकड़ी की बनी हुई थी और उसे दस वर्ष में बनाया गया था।[१०५] इब्नबतूता ने अहौरा (बड़ी नौका) तथा छोटी नौकाओं को यातायात का साधन के रूप में देखा।[१०७] अफीफ के अनुसार सलोरा तथा मेरठ से जिन नावों में लाटें फिरोजाबाद लाई गई वे नावें बहुत बड़ी-बड़ी थीं। कुछ नौकाओं में ५००० मन अनाज ले जाया जाता था और कुछ में १००० मन। जो छोटी नौकाएँ होती थी उनमें २००० मन अनाज आता था।[१०८]

इस काल में यातायात के साधनों में तीव्र गति से चलने वाले अरबी व इराकी घोड़े, बोझा ढोने वाले खच्चर, ऊँट व बैलगाड़ियाँ थीं। शुक्रनीति जिसकी रचना १०वीं शताब्दी में तथा १४वीं शताब्दी के मध्य हुई थी, के अनुसार तीव्रगति से चलने वाले भैंसे का मूल्य ६० पाला था। निकोलो कोन्टी नामक वेनेशियन यात्री ने १४२० में लिखा कि भारतवासी भैंसों का प्रयोग बोझा ढोने के लिए करते थे। मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल की चर्चा करते हुए शिहाबुद्दीन अल उमरी ने लिखा है कि ऊँट केवल सुल्तानों, खानों, अमीरों, बजीरों तथा अन्य अधिकारियों के लिए होते थे।[१०९] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँटों का प्रयोग सवारी करने व बोझा ढोने दोनों के लिए होता था। यातायात के मुख्य साधन घोड़े थे। समाज के सभी वर्ग घोड़े की सवारी किया

करते थे और अपना सामान भी उन्हीं पर ले जाया करते थे। व्यापारियों के लिए घोड़ों के अतिरिक्त बैलगाड़ियाँ व खच्चर अति आवश्यक थे और सामान लाने व उसे ले जाने के लिए वे उन्हीं का प्रयोग किया करते थे। इब्नबतूता के अनुसार भारतीय अपना माल बैलों पर ढोते थे और यात्रा में उस पर सवारी भी करते थे।[११०] उसके अनुसार गधे पर सवारी करना यहाँ बुरा माना जाता था। शिहाबुद्दीन ने भी यही लिखा है कि लोगों के मतानुसार खच्चरों तथा गधों पर सवारी करना उनके लिए अत्यन्त अपमानजनक तथा लज्जास्पद समझा जाता था। कोई भी अमीर व मलिक खच्चर पर सवार होना उचित नहीं समझता था। प्रत्येक व्यक्ति घोड़े की सवारी करता था। धनी व्यक्तियों का सामान घोड़े पर लाद कर ले जाया जाता था और साधारण लोग बैलों पर लाद कर सामान ले जाते थे।[१११] अफीफ ने तारीख-ए-फ़िरोज़शाही में लिखा है कि दिल्ली व फिरोज़ाबाद के मध्य केवल ५ कोस की दूरी थी। दिल्ली से बहुत से लोग फिरोज़ाबाद तक आते जाते थे। यह मार्ग खचाखच भरा रहता था। आने जाने वाले लोगों के लिए प्रातः से ही लोग किराये पर चलाये जाने वाले गरदून चौपाये (सतूर) तथा घोड़े ले आते थे और दिल्ली व फिरोज़ाबाद में उनकी प्रतीक्षा किया करते थे। जो कोई दिल्ली से फिरोज़ाबाद या फिरोज़ाबाद से दिल्ली जाना चाहता था वह इन्हीं सवारियों का प्रयोग करता था। उनका किराया बहुत ही कम था। अनेक कहार डोले या पालकी लिए हुए भी खड़े रहते थे, जिन्हें आवश्यकता होती थी वे डोले पर सवार होकर ५ कोस की यात्रा पूरी कर लिया करते थे। एक आदमी के लिए गरदून का किराया ६ जीतल और घोड़े का किराया १२ जीतल था तथा डोले का किराया १/२ तन्का था।[११२] १५वीं शताब्दी में इक्का व ताँगा का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु लम्बी यात्रा के लिए घोड़े ही सर्वसाधारण के लिए यातायात के साधन थे। एक प्यादे की सेवाएँ ५ तन्का प्रति माह पर उपलब्ध की जा सकती थी। एक व्यक्ति दिल्ली से आगरा तक डोली में यात्रा कर सकता था। सामान ढोने के कार्य में अनेक लोग लगे हुए थे। डोले का प्रयोग सुल्तान के घराने की स्त्रियाँ भी करती थी। डोला पालकी के समान होता था। उसको उठाने के लिए २ आदमी आगे व २ आदमी पीछे होते थे। उन डोलों के साथ अन्य व्यक्ति भी चलते थे, जो कि अन्य ४ व्यक्तियों के थक जाने पर उसे उठाकर चलते रहते थे। जिन लोगों के पास दास होते थे वे उनके डोले उठाते थे। यदि किसी के पास दास न होते थे तो डोला उठाने के लिए किराये पर लोग मिल जाते थे। स्त्रियों के डोले पर रेशम के पर्दे पड़े रहते थे।[११३] कभी-कभी पुरुष भी डोलों का प्रयोग किया करते थे। इसके अतिरिक्त इस काल में लोग पालकियों में भी यात्रा करते थे।[११४] फ़ुतूहात-ए-फिरोज़शाही में फिरोज़शाह ने लिखा है कि नगरों में स्त्रियाँ शुभ अवसरों पर टोली बनाकर पालकी, गरदून, डोले, घोड़े व चौपायों पर सवार होकर बड़ी संख्या में नगर से बाहर मज़ारों पर जाती थी।[११५]

इस काल में यात्रा करने में अनेक कठिनाइयाँ सभी को उठानी पड़ती थी। व्यापारियों तथा जनता के लिए यात्रा के समय जान-माल की सुरक्षा की समस्या

निरन्तर रहती थी। गंगा में घड़ियाल थे जो कि कभी-कभी नावों को डुबा दिया करते थे या नाव में से यात्रियों को उठा लिया करते थे। जल मार्गों में लुटेरे रहते थे। वे यात्रियों को रोक कर उनकी सम्पत्ति छीन लिया करते थे। अधिकांश सड़कें दुर्गम एवं बीहड़ जंगलों से होकर जाती थी। इन जंगलों में भी यात्री लूट लिए जाते थे। एक बार गुजरात जाते समय शेख निज़ामुद्दीन औलिया को मार्ग में डकैतों ने लूट लिया। बड़ी मुश्किल से वे अपने प्राण बचा सके। अमीर खुसरो ने माल से लदे हुए काफिलों को चोरों व डकैतों से लूटे जाने का उल्लेख किया है। इब्नबतूता व उसके साथियों पर भी एक बार लुटेरों ने आक्रमण किया। जाटों द्वारा राहज़नी करने के सम्बन्ध में अनेक संदर्भ है। तैमूर ने लिखा है कि राहजनी व लूटने में उनकी तुलना अन्य किसी जाति से नहीं की जा सकती है। वे सड़कों पर यात्रियों को लूट लिया करते थे। इस प्रकार सभी मार्ग बड़े असुरक्षित थे। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में चोरों व ठगों का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार से इस काल में उचित सुविधाओं के अभाव में यात्रा में यात्रियों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व सभी लोगों को अपनी सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना पड़ता था।

कोई भी यात्री रात्रि में यात्रा नहीं करता था। वह रात्रि या तो सराय में या खानकाहों में या मठों में व्यतीत करते थे, जो कि मुख्य मार्गो में होते थे। इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली से दौलताबाद मार्ग पर प्रत्येक पड़ाव पर यात्रियों के लिये खानकाहें थी। प्रत्येक खानकाह में यात्रियों को हर प्रकार की सुविधाएँ मिलती थी। सुल्तान मुहम्मद तुगलक की माँ मखदूम-ए-जहाँ ने अनेक खानकाहें निर्मित करवाई जहाँ कि यात्रियों के लिये भोजन की व्यवस्था रहती थी। अफीफ के अनुसार फिरोज तुग़लक ने अनेक खानकाहें व सरायें बनवायी। फिरोजाबाद व दिल्ली में १२१ खानकाहें थी, जिनमें यात्रियों तथा अतिथियों को ३ दिन तक ठहरने की अनुमति थी। सूफी सन्तों की खानकाहों में भी यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था रहती थी। मुहम्मद तुग़लक ने बिहार के मुक्ती ज़ैन उल-दीन मखदुल मुल्क के नाम फर्मान जारी किया कि वह एक खानकाह बनवाए, जिसके रख-रखाव के लिए उसने उसे राजगीर की जागीर प्रदान की। फिरोज भी खानकाहों को उदारतापूर्वक दान दिया करता था। मुतहर के अनुसार यात्री, सन्त इत्यादि को सुल्तान की ओर से सुविधाएँ दी जाती थी।

जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि हुई या नए-नए शहरों की स्थापना हुई वैसे-वैसे प्रमुख उत्पादन केन्द्र गाँव के स्तर से लेकर शहर तक मार्गों द्वारा जोड़े जाने लगे। सल्तनत के लगभग ३०० वर्षों में दूरस्थ प्रदेश भी दिल्ली से जुड़ गये। यद्यपि सड़कें तथा यातायात के साधन अच्छे व सन्तोषजनक नहीं थे किन्तु वे व्यापार के लिये ठीक ही थे। जो भी कृषि उत्पादन होता था वह खेतों व खलिहानों से शहर तक बैलगाड़ियों में पहुँचाया जाता था।

इस काल में मुद्रा प्रणाली के विकास के साथ-साथ धीरे-धीरे वस्तु विनिमय

की प्रणाली समाप्त हो गई। सभी व्यापार मुद्रा में होने लगा। इसके अतिरिक्त हुण्डियों के माध्यम से भी व्यापार हुआ करता था। अन्तर्प्रादेशिक व अन्तर्देशीय व्यापार में भुगतान करने का बहुत ही सुविधाजनक साधन हुण्डी होती थी। यह एक प्रकार का लिखित आदेश या आश्वासन-पत्र होता था जिसके द्वारा क्रेता विक्रेता को अमुक समय व अमुक स्थान पर माल के मूल्य का भुगतान करता था। इस भाँति विक्रेता क्रेता से धन वसूल कर लिया करता था। चूँकि इस काल में मार्ग सुरक्षित न थे और लम्बी यात्रा में मुद्रा के साथ लेकर चलना सम्भव न था अतएव किसी प्रकार का जोखिम उठाने के बजाय हुण्डी का प्रयोग करना ही श्रेयष्कर समझा गया। इससे दोनों क्रेता व विक्रेता को सुविधा होती थी। सर्राफ व साह, दूकानदारों व व्यापारियों की ओर से माल के मूल्य का भुगतान व ऋण का भुगतान करने का उत्तरदायित्व ले लिया करते थे। बड़े-बड़े व्यापार उधार पर ही चलते थे और उनका भुगतान उपयुक्त समय पर हो जाता था। इस काल में मुद्रा का प्रचलन बढ़ा। गाँव में किसान लगान का भुगतान नकदी में करने लगा और धीरे-धीरे वह सभी वस्तुएँ मुद्रा देकर ही क्रय करने लगा और मुद्रा में ही बेचने लगा। बड़े-बड़े शहर भी व्यापार व मुद्रा पर ही निर्भर रहने लगे। इस समय बड़े-बड़े शहरों में दिल्ली, दौलताबाद, लाहौर, मुल्तान, खम्भात, अनिहलवाड़ा (पाटन), कड़ा, लखनौती आदि थे जहाँ कि आबादी घनी थी और जो कि न केवल उत्पादन, व्यापार-विनिमय आदि के केन्द्र थे वरन् साथ ही साथ प्रशासनिक केन्द्र भी थे। इनमें से कोई भी शहर बिना समीपवर्ती प्रदेशों के कृषि उत्पादन व अपने उत्पादन व्यापार के बिना नहीं जीवित रह सकता था। शहर के लिये व्यापारी क्रियाओं का होना अत्यन्त आवश्यक था।

बाजार एवं मण्डियाँ

पूर्व मध्यकाल में इस देश के सभी शहरों में बाजार या मण्डियाँ थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि विविध वस्तुओं के लिये पृथक-पृथक बाज़ार या मण्डियाँ हुआ करती थीं, जो कि शहर के बीच या किसी सुविधाजनक स्थान पर होती थी। शहरों की मण्डियों में वस्त्रों, पशु-पक्षी, खाद्यानों, घोड़ों, दास-दासियों की पृथक-पृथक मण्डियाँ होतीं थी। इन मण्डियों में थोक या खुदरे भाव से माल को खरीदा जा सकता था। बरनी ने दिल्ली की मण्डियों का उल्लेख किया है। शहरों की मण्डियों के अतिरिक्त इस काल में विभिन्न कस्बों में मण्डियाँ होती थीं जहाँ कि समीपवर्ती गाँवों से विभिन्न वस्तुएँ आती रहती थीं। कस्बों की मण्डियों से शहर के थोक व खुदरे व्यापारी शहरों को सामान ले जाते थे और उन्हें वहाँ बेचते रहते थे। गाँवों में सप्ताह में एक बार तथा त्योहारों व विशेष धार्मिक पर्वों पर हाट लगा करती थी जहाँ कि आस-पास के तथा दूर के गाँवों के लोग चीजों को खरीदते-बेचते थे। शहर तथा कस्बों की मण्डियों के माध्यम से आन्तरिक व बाह्य व्यापार होता था।

इस काल में दासों का क्रय-विक्रय दिल्ली, बरन, बदायूं तथा मण्डौर में होता

था।[११६] इल्तुतमिश ने अपने लिये दास इन्हीं उपरोक्त स्थानों से खरीदे। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय दोआब के ग़रीब किसान अपनी स्त्रियों व बच्चों को दास के रूप में बेच दिया करते थे।[११७] इब्नबतूता ने सिंध में दास खरीदे। गुजरात व बंगाल में भी दासों के बाज़ार थे।[११८] दक्षिण के देवगिरि तथा बीदर दासों के क्रय-विक्रय के प्रमुख केन्द्र थे।[११९] मिनहज के अनुसार लखनौती के पशुओं के बाजार में प्रतिदिन ११ हजार घोड़े बिकते थे।[१२०] दिल्ली में जामा मस्जिद के निकट बजाजों का बाजार था।[१२१] बरनी ने लखनौती के बड़े बाजार,[१२२] दिल्ली की मण्डी,[१२३] अनाज की मण्डी,[१२४] सराय अदल (कपड़े की मण्डी),[१२५] पशुओं की मण्डी व दुकानों का उल्लेख किया है। अमीर खुसरो ने खजाइनुल फ़ुतूह में दिल्ली में दारूल अदल (कपड़े का बाजार) की स्थापना किये जाने का उल्लेख किया है।[१२६] इब्नबतूता ने भक्कर के उत्तम बाज़ारों,[१२७] हौज-ए-खास के पास स्थित विशाल बाजार,[१२८] भवरी के सुन्दर बाज़ारों,[१२९] चन्देरी के बाजारों,[१३०] दौलताबाद के बाजारों[१३१] का उल्लेख किया है। इसी प्रकार रिज़ाकुल्लाह मुश्ताक़ी ने चारसू के बाज़ार,[१३२] विद्यापति ने कीर्तिलता में जौनपुर के बाज़ार[१३३] का उल्लेख किया है।

आन्तरिक व्यापार

सल्तनत काल के इतिहासकारों की रुचि केवल राजनीतिक विषयों में थी। बरनी तथा अफीफ को छोड़कर अन्य इतिहासकारों ने अन्य विषयों पर बहुत ही कम दृष्टिपात किया है। अन्य विषयों में, विशेषकर व्यापार तथा विनिमय की उन्हें या तो जानकारी न थी या यह विषय उनकी अध्ययन की सीमा के बाहर था। इस विषय में विदेशी पर्यटकों के विवरण से बहुत कुछ जानकारी उपलब्ध होती है। इस काल में प्रत्येक शहर व गाँव एक-दूसरे के आर्थिक साधनों पर निर्भर थे। शहर के लोगों के लिए अनाज तथा कच्चा माल गाँवों से ही आता था। वस्तु-विनिमय के समाप्त होने व मुद्रा के प्रचलन के बाद, जब किसान को नकदी में लगान व अन्य करों का भुगतान करने के लिए प्रशासन ने बाध्य किया तो अपना अनाज अथवा उत्पादन की अन्य वस्तुएँ मुद्रा प्राप्त करने के हेतु बेचनी पड़ी। बरनी ने बताया है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के अन्तर्गत किस प्रकार दोआब के किसानों को बाध्य किया गया कि वे अपने खेतों में ही अपना अनाज कारवानियों के हाथ में बेंचे ताकि वे उसे दिल्ली ले जा सके।[१३४] इस प्रकार दोआब से अनाज दिल्ली ले जाया जाता था। इब्नबतूता के अनुसार मुहम्मद तुग़लक के समय ३०,००० मन अनाज ३००० बैलों पर अमरोहा से दिल्ली पहुँचाया गया।[१३५] इसी प्रकार अन्य शहरों को भी निकटवर्ती प्रदेशों से अनाज प्राप्त होता था। दिल्ली को कोल व मेरठ से शराब,[१३६] मालवा में स्थित धार से पान,[१३७] अवध से साधारण कपड़े[१३८] देवगिर से मलमल,[१३९] धारीदार कपड़ा लखनौती से प्राप्त होता था। मुल्तान में दिल्ली और लाहौर से चीनी और सिरसौती से घी आता था।[१४०]

घोड़ों का अन्तर्प्रदेशीय व्यापार का उल्लेख भी इस काल के ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता हैं। बलबन के समय में सिवालिक प्रदेश, सुनाम, सामाना, भटिण्डा तथा भटनेर जो कि इस समय खोखरों व भण्डराहों के अधिकार में थे, वहाँ से उत्तम हिन्दुस्तानी घोड़े उसके लिए दिल्ली लाए जाते थे।[१४१] इसी प्रकार से उसे बंगाल से हाथी प्राप्त होते थे।[१४२] फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में आईन उल मुल्क ने सैय्यद नासिरुल हक़ के नाम पत्र में लिखा कि उसने काज़ो जहीरुद्दीन तथा उमरुद्दीन को घोड़ों को खरीदने के लिए मुल्तान से लाहौर भेजा है। वह इन घोड़ों को सावधानी से देख कर उनके मूल्य का विवरण भेजा करता था।[१४३] १९०८ में गढ़कटंका तथा मदन महल के मध्य गड़ा हुआ एक खजाना मिला जिसमें दिल्ली, काश्मीर, गुजरात, मालवा, बहमनी राज्य तथा जौनपुर के १३११ से १५५३ ई० तक के सिक्के थे। इससे ज्ञात होता है कि देश भर में आन्तरिक एवं अन्तर्प्रादेशिक व्यापार की मात्रा अत्यधिक थी।[१४४]

आयात

इस काल में आयात की प्रमुख वस्तुओं में उच्च वर्ग की विलासिता के प्रसाधनों के अतिरिक्त घोड़े, दास व खच्चर इत्यादि थे। हिंदुस्तान का अभिजातवर्ग शान-शौकत से जीवन व्यतीत करता था और इसलिए उसे बहुमूल्य वस्तुओं की आवश्यकता होती थी। इन वस्तुओं में रेशम के वस्त्र, मखमल, कढ़े हुए पर्दे, सजावट करने की वस्तुएँ आदि हुआ करती थी। उनका विदेशों से आयात होता था। मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में रेशम तथा ज़री के काम के वस्त्र अलेक्जेण्डरिया, ईराक़ व चीन से आयात किये जाते थे। शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार इस काल में सूती वस्त्र सिकन्दरिया से आयात होते थे।[१४५] उसी लेखक के अनुसार यहाँ ऊनी कपड़ा भी बाहर से मँगाया जाता था, जो कि यहाँ बहुत ही ऊँचे मूल्य पर बिकता था। इसके अतिरिक्त तातारी कबाएँ तकलावत (एक प्रकार का वस्त्र), ख्वारिज़्म की इस्लामी कबाएँ जो कि शरीर के मध्य बाँधी जाती थी, वे भी विदेशों से आयात की जाती थी।[१४६] मुल्तान आयात का सुप्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ विदेशों से रेशम आता था।

आयात की दूसरी वस्तुएँ घोड़े और दास-दासियाँ थे। मुल्तान में घोड़ों का बाज़ार इतना बड़ा था कि विदेशों से यहाँ घोड़े लाये जाते थे और बेचे जाते थे। घोड़ों व दासों को खुरासानी व्यापारियों ने प्रशासन से आग्रह किया कि उनसे मुल्तान में ली जाने वाली चुंगी दिल्ली में ही ली जाय, जहाँ कि वे अपना माल बेचना चाहते थे। घोड़ों व दासों के लिए दिल्ली शहर दूसरा बड़ा बाजार था,[१४७] जहाँ कि घोड़ों व दासों क आयात हुआ करता था। घोड़ों का तीसरा बड़ा बाजार बंगाल था। बंगाल में तिब्बत से घोड़े आयात किये जाते थे। वहाँ १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में १३ हज़ार घो प्रतिदिन बिकते थे। वहाँ कामरूप के मार्ग से यह घोड़े लखनौती लाए जाते थे और बेचे जाते थे।[१४८] यह घोड़े, यमन, किस, ओरमज़, अदन, इराक औ

ईरान से लाये जाते थे। उत्तरी भारत में घोड़ों का अन्तिम बड़ा बाज़ार गुजरात था। यहाँ ओरमज़ से घोड़े आयात किये जाते थे। यहाँ व्यापारी देश के अन्य भागों से आकर ईराकी घोड़े खरीदते थे।[१४६]

निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के बदले में भारतीय बाजारों को विभिन्न प्रकार की अद्भुत वस्तुएँ, बहुमूल्य वस्त्र और निम्न श्रेणी की धातुएँ पीतल के उद्योग के लिए आवश्यक होती थी। १४वीं शताब्दी में इस्लामी देशों से अनेक प्रकार के बहुमूल्य कपड़े दिल्ली के सुल्तानों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयात किये जाते थे।[१५०] १५वीं शताब्दी में बहमनी राज्य का वज़ीर महमूद गाँवा फैन्सी कपड़ा उपहार में प्राप्त किया करता था। पूर्वी एशिया से भी व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण चीन का रेशमी कपड़ा यहाँ बहुत ही पसन्द किया जाता था। दिल्ली के सुल्तानों की रसोई घरों में चीनी मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग होता था। पन्द्रहवी शताब्दी के क़ैरो जन्ज़िया के यहूदी व्यापारियों के रिकार्डस से ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में निवास करने वाले कुछ यहूदियों के लिए फिलिस्तीन से कपड़े व वस्त्र, चाँदी के जेवर तथा बर्तन, पीतल, शीशा, घरेलू काम की चीजें, कागज तथा अन्य वस्तुएँ अधिक मात्रा में विदेशों से आयात की जाती थी। इन्हीं रिकार्ड्स से यह भी मालूम होता है कि भारतीय माल को प्राप्त करने के लिए वहाँ से सोना, चाँदी विशेषकर मिस्र का सोना तथा भारतीय मिश्रधातु के उद्योग के लिए कच्चा सामान आयात किया जाता था।

पूर्वी एशियाई देशों में चीन से भारत में चीनी रेशम के कपड़े व रेशम आता था। चूंकि चीनी किमख्वाब बहुत ही बहुमूल्य होते थे अतएव भारत में चीनी रेशम से उन्हें बुनकर तैयार किया जाता था। इसके अतिरिक्त वहाँ से दवाएँ व मसाले भी आते थे। इण्डोनेशिया भारतवर्ष को मसाले तथा कच्चा माल भेजा करता था। मेकास्कर के चन्दन की लकड़ी का फर्नीचर का प्रयोग दिल्ली के सुल्तान किया करते थे।[१५१] कम्बोडिया और मलाया की अगर लकड़ी तथा सुमात्रा की लोहबान का प्रयोग दिल्ली के दरबार में होता था।[१५२]

इस काल में भारतवर्ष में घोड़ों का आयात जल व थल मार्गों से होता था। फारस में घोड़े पाले जाते थे और उसके बाद उन्हें कैस व हारेमज़ भेज दिया जाता था, ताकि वे वहाँ से समुद्री मार्ग से भारतीय बन्दरगाहों तक पहुँच सकें। वहाँ घोड़ों के अनेक खरीददार थे। भारतवर्ष में फारस के सभी द्वीपों, कटीफ, लहसा, बहरैन, ओरमज़ तथा कुलहातु से घोड़े आते थे। इलखानी दरबारी इतिहासकार वस्साफ ने फारस तथा दक्षिण भारत के पाण्ड्य राज्य के मध्य घोड़ों के व्यापार के समझौते के [बा]रे में लिखा है। पांड्य राज्य को घोड़ों की बड़ी आवश्यकता होती थी। वस्साफ के [अन]ुसार मलिक-उल-इस्लाम जलालुद्दीन ने अपने तथा ईरान के सौदागरों की ओर से [पाण्ड]्य शासक सुन्दर से बातचीत की और उसे फारस की खाड़ी में स्थित किश से १४००० घोड़े मावार भेजे। वस्साफ के अनुसार चूंकि मावार में वर्ष भर घोड़ों की आवश्यकता

होती थी अतएव इस्लामी देशों से वहाँ बराबर घोड़े भेजे जाते रहे। वस्साफ के ही अनुसार अताबेग आबुबक्र १०००० घोड़े प्रतिवर्ष माबार, खम्भात तथा पश्चिमी तट के अन्य बन्दरगाहों को भेजा करता था। फारस की खाड़ी के दक्षिण ओर हृदमरवत के तट पर स्थित अनेक बन्दरगाह भारतवर्ष को घोड़े भेजा करते थे। यहाँ के व्यापारी उन्हें अरब महाद्वीप से एकत्र कर लिया करते थे। दिल्ली सल्तनत में सीरियाई घोड़ों का अनेक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि भारत सीरियाई घोड़ों का भी आयात किया करता था। शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार भारत यमन तथा ईराक से घोड़े आयात किया करता था और उन्हें ऊँचे मूल्यों पर खरीदा करता था। उसने बहारैन के एक बड़े व्यापारी, जो कि वहाँ का अमीर भी था, के बारे में लिखा कि अली बिन मन्सूर-उल-उकेली दिल्ली के सुल्तान को घोड़े भेजा करता था। वह यह भी लिखता है कि यहाँ के लोग अच्छे घोड़ों के लिए ऊँचा दाम देने के लिए तैयार रहते थे।[१५३] मारको पोलो के अनुसार अरब के मुख्य बन्दरगाह कुलहाट (मुस्काट से पास) जोहर, अल शहीर तथा अदन, बहुत ही अच्छे भारवाही घोड़े जिनका अधिक मूल्य होता था, भारतवर्ष को भेजा करते थे।

अफ्रीका के समुद्री तट से भारत के पश्चिमी समुद्री तट के व्यापारिक सम्बन्ध बहुत ही पुराने थे। वहाँ से भारत हब्शी दासों का आयात किया करता था। १२वीं शताब्दी में मुहम्मद ग़ौरी के हब्शी दास ने लाहौर में मस्जिद बनवाई। इल्तुतमिश के शासनकाल में दिल्ली में अनेक हब्शी दास उपस्थित थे। उसकी मृत्यु के बाद इन हब्शी दासों के नेता जलालुद्दीन याकूत ने उन्नति की और वह रज़िया सुल्तान का **अमीर-ए-हाजिब** बन गया। किन्तु उसके पतन के बाद हब्शी दासों का भविष्य अंधकारमय हो गया। उन्हें केवल हरम की रक्षा का कार्य सौंपा जाने लगा। १४वीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक के शाम्स दमग़ानी को गुजरात का प्रशासन इस शर्त पर सौंपा कि वह प्रतिवर्ष वहाँ से उसे ४०० हब्शी दास भेजता रहेगा।[१५४] उसी शताब्दी के प्रारम्भ में विदेशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं की सूची में अमीर खुसरो ने हब्शी व ज़ंगी दासों का उल्लेख करते हुए दोनों में अन्तर प्रकट किया है। हब्शी दास तथा जंगी दास जन्जीबार तथा पूर्वी अफ्रीका से हिन्दुस्तान भेजे जाते थे। १५वीं शताब्दी में बंगाल, दक्षिण व गुजरात के स्वतन्त्र राज्यों में प्रशासन व सेना, दोनों में ही आयात किए हब्शी अधिक संख्या में थे।

व्यापारिक सन्तुलन

जल-थल मार्गों से भारत का व्यापार इस काल में इतनी अधिक मात्रा में विदेशों के साथ होता था कि व्यापारिक सन्तुलन उसी के पक्ष में बराबर रहा। भारतीय राज्यों के बन्दरगाह अन्य प्रदेशों की तुलना में अत्यधिक समृद्धशाली रहे। उन्हें व्यापार से बराबर लाभ होता रहा। मोरलैण्ड ने यह ठीक ही लिखा है कि यद्यपि

इस काल में दिल्ली लगभग एक सौ वर्ष तक समुद्री तट से कटा रहा किंतु फिर भी उसे गुजरात, बंगाल तथा दक्षिण के वन्दरगाहों से ही वहुमूल्य धातुएँ प्राप्त होती रहीं। किंतु उसका यह कहना कि मार्ग असुरक्षित थे, सही नहीं है। क्योंकि भारत में अर्न्तप्रादेशिक व्यापार में वरावर वृद्धि होती रही और विदेशों से भी उसका व्यापार बरावर बना रहा। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थल मार्ग द्वारा भारत का विदेशों से अत्यधिक व्यापार था। वावर ने लिखा है कि हिन्दुस्तान व खुरासान मार्ग के मध्य कावुल व कन्धार में दो बड़े बाजार थे। कन्धार में प्रतिवर्ष कपड़े के १५,००० से २०,००० टुकड़े कारवाँ लाते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ दास, सफेद वस्त्र, मिश्री, चीनी, औषधियाँ व मसाले विक्री हेतु भारत से लाये जाते थे। यहाँ ऐसे अनेक व्यापारी थे जो कि ३००-४००% लाभ से भी सन्तुष्ट नहीं रहते थे। कावुल, जो कि भारत का महान् भण्डार था, में खुरासान, रूस, ईराक व चीन की अनेक वस्तुएँ मिलती थीं।[१५५] यहिया के अनुसार दिल्ली में अनेक खुरासानी व्यापारी रहते थे। इस समृद्धशाली शहर में उनकी भव्य हवेलियाँ थी।[१५६] निःसन्देह इस काल में भारतीय माल के बाजार विदेशों में थे और भारतीय व्यापारी वाह्य व्यापार से अत्यधिक लाभ उपार्जित किया करते थे। इस वाह्य व्यापार से भारतीय व्यापारी अत्यधिक विदेशी मुद्रा, सोने व चाँदी में प्राप्त किया करते थे, जिसके कारण भारत में अत्यधिक सोना-चाँदी एकत्र होता रहा। भारत को विजित करने के उपरान्त वावर यहाँ की सम्पदा, विशेषकर असीमित मात्रा में सोने-चाँदी के भण्डार से वहुत प्रभावित हुआ। स्वदेश में भी उसने इतनी मात्रा में कभी इस प्रकार की वहुमूल्य धातुएँ नहीं देखी थी।

यह वड़ी आश्चर्यजनक बात है कि हिन्दुस्तान में इस काल में सोने व चाँदी की खानों से खदान वहुत ही सीमित रहते हुए भी तथा विदेशी विजेताओं, जैसे कि सुल्तान महमूद गज़नी तथा तैमूर के द्वारा वहाँ से असीमित धन बटोर कर ले जाने पर भी यहाँ कभी सोने व चाँदी की कमी नहीं हुई। के० एस० लाल ने इस तथ्य की विवेचना करते हुए लिखा है कि जो आक्रमणकारी यहाँ से धन लूट कर ले जाते थे उसे व्यापार के द्वारा भारतीय व्यापारी पुनः स्वदेश वापस ले आते थे।[१५७] इस प्रकार से १५वीं शताब्दी के अन्त तक व्यापार एवं विनिमय की दृष्टि से भारतवर्ष अत्यन्त समृद्धशाली रहा।

निर्यात

पूर्व मध्यकाल में निर्यात व्यापार भी जल व थल मार्गों से हुआ करता था। यह हम पहले ही बता चुके है कि भारतवर्ष के संसार के अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध वहुत ही प्राचीन थे। पूर्व मध्यकाल में इस्लाम के अभ्युदय एवं लाल सागर, भूमध्यसागर और अरव सागर पर अरवों के प्रभुत्व के कारण भारत के व्यापारिक सम्बन्ध योरोप से प्रत्यक्ष रूप से समाप्त हो गये किन्तु फिर भी भारतीय माल पाश्चात्य देशों में पूर्ववतः पहुँचता रहा। अरव के सौदागर भारतीय माल को लालसागर के तटों

पर ले जाते थे और वहाँ से वह माल अलेक्जेण्डरिया और वहाँ से भूमध्य-सागर के देशों और उससे भी आगे पहुँचता था। भारतीय माल पूर्वी अफ्रीका के समुद्री तट, मलाया के द्वीपों, पूर्वी एशिया में चीन और प्रशान्त महासागर के देशों को अरब सौदागरों के माध्यम से पहुँचता था। गुजरात से लेकर कालीकट तक के सभी बन्दरगाह जो कि पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित थे व बंगाल से लेकर कन्याकुमारी तक के पूर्वी समुद्रीतट के सभी बन्दरगाहों से यह सामान पश्चिमी व पूर्वी देशों को जाया करता था। इन बन्दरगाहों से अरब सौदागरों व भारतीय व्यापारियों के जहाज माल लेकर आते-जाते रहते थे।

भारतीय बन्दरगाह पश्चिमी एशियाई देशों, मिश्र, अरब, ईरान तथा अन्य देशों से आने वाले माल के लिए वितरण केन्द्र थे। जहाँ से पूर्व एशिया को वे माल भेजकर अत्यधिक धन कमाते थे। इस समय भारतीय माल की विदेशों में बड़ी खपत थी। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के निकास द्वार सिंध में देवल, गुजरात में खम्भात, भड़ौच, वहमनी राज्य में थाना, चौल, दभोल, विजय नगर राज्य में मंगलूर, मालावार में कालीकट, क्यूलोन तथा केप कोमोरिन थे।[१५८] इस काल में विभिन्न वस्तुओं के निर्यात व्यापार के लिए देवुल एक महान व्यापारिक केन्द्र था। पश्चिमी तट पर कालीकट तथा क्योलोन में न केवल जहाज वनते थे वरन् वहाँ उनकी मरम्मत भी होती थी। महुआँ के अनुसार पूर्वी तट पर विदेशों से व्यापार करने के लिए जहाज वनते थे।[१५६] निकोलो कोन्टी के अनुसार इस काल में योरोप में वने हुए जहाजों की तुलना में भारत में बने हुए जहाजों को प्राथमिकता दी जाती थी। वरथमा ने भी १६वीं शताव्दी में इस तथ्य की पुष्टि की है।[१६०]

थल मार्ग से भारतवर्ष मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान, मुल्तान, क्वेटा मार्ग, खैवर के दर्रे तथा काश्मीर के मार्गों से जुड़ा हुआ था। इन्हीं मार्गों से विदेशी व भारतीय व्यापारी वुखारा, ईराक होते हुए दमिश्क तक पहुँचते थे और वहाँ से माल लेकर भारतवर्ष आते-जाते थे। भौगोलिक रुकावटें किसी भी प्रकार से वाह्य व्यापार में वाधक नहीं थी। १६वीं शताव्दी के प्रारम्भ तक जल मार्ग अरब सौदागरों के लिए विल्कुल सुरक्षित रहा। पुर्तगालियों के उत्कर्ष व भारतवर्ष के पश्चिमी समुद्री तट पर उनके आगमन व अरबों को अरब सागर से बाहर निकालने के वाद अरब सागर उन्हीं के हाथों में आ गया किन्तु इस परिवर्तन से भारतवर्ष के वाह्य व्यापार पर कोई अन्तर नहीं आया अपितु उसकी मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। दूसरी ओर १३वीं शताव्दी व १४वीं शताव्दी के प्रारम्भ में मंगोलों के आक्रमण के कारण उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के थल मार्ग असुरक्षित रहे किन्तु फिर भी पश्चिम एशिया, मध्य एशिया तथा अफगानिस्तान से इन्हीं मार्गों से व्यापार होता रहा। मंगोल साम्राज्य के पतन के वाद स्थिति में कुछ सुधार हुआ और थलमार्ग द्वारा पुनः वाह्य व्यापार की मात्रा में वृद्धि हुई।

चीन में तारिम घाटी और अफगानिस्तान के दर्रों से होता हुआ जो पुराना रेशम मार्ग भारतवर्ष के पश्चिमी बन्दरगाहों तक जाता था, वह मार्ग रोमन संसार से व्यापार के लिए मुख्य व्यापार मार्ग था। उसके बन्द हो जाने से ७वीं शताब्दी के लगभग चीन व फारस की खाड़ी में स्थित देशों के मध्य समुद्र के द्वारा सम्बन्ध स्थापित हुए। यह व्यापारिक सम्बन्ध सर्वप्रथम ईरानियों के जहाजों की सहायता से हुआ। वे जहाज चीन से सामान फारस की खाड़ी में ले जाने लगे और वहाँ से चीन। बाद में अरबों ने इस व्यापार में प्रवेश किया और ८वीं शताब्दी के बाद अनेक अरबवासी कैन्टन के चीनी बन्दगाह में आकर निवास करने लगे। ११वीं शताब्दी में मिश्र में फातमी वंश के समय लालसागर मार्ग जो कि रोमन काल से बहुत महत्वपूर्ण था, इस्लामी देशों व भूमध्यसागर के देशों के माल के वितरण के प्रमुख केन्द्र बन गये। लेकिन इस समुद्री व्यापार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू सुदूरपूर्व व्यापार था। यह व्यापार चीनी बन्दरगाहों में बसे हुए विदेशियों के हाथों में प्रधानतः था। धीरे-धीरे उन अरब व्यापारियों ने अपनी यात्रा के दौरान भारतीय बन्दरगाहों से भी सम्पर्क स्थापित किया। वे इन बन्दरगाहों में, विशेषकर पश्चिमी तट पर स्थित बन्दरगाहों में रुकने लगे। कालान्तर में पश्चिम एशियाई लोगों ने अरबों के अतिरिक्त, यहूदी, ईसाई तथा पारसी भी पश्चिम व दक्षिण भारत के बन्दरगाहों में आकर बस गये। इस प्रकार से पूर्व मध्यकालीन भारत में चीन के बन्दरगाहों व भारमवर्ष के बन्दरगाहों के मध्य समुद्री व्यापार तो बढ़ा ही, साथ ही साथ फारस की खाड़ी के देशों के साथ भी इसी प्रकार का व्यापार बढ़ा। अन्य शब्दों में १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में समुद्री व्यापार का विभाजन पूर्वी व पश्चिमी खण्डों में हो गया। समुद्री व्यापार हवाओं व मौसम के ऊपर निर्भर करता था। नाविकों को झंझावतों, तूफानों तथा अनपयुक्त मौसम से सतर्क रहना पड़ता था। वे अपने माल की रक्षा के लिए कोई भी जोखिम नहीं उठाना चाहते थे और यह चाहते थे कि उनके जहाज अपनी यात्रा सफलतापूर्वक पूरी कर लें।

१३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में समुद्री व्यापार दो प्रकार के जहाजों द्वारा होता था, जिन्हें धाऊ तथा जंक कहते थे। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकार की भी बड़ी-बड़ी नौकायें थीं जिनका निर्माण यहाँ होता था। इन जहाजों में युद्ध में लड़ने वाले ७० घोड़े, १०० सैनिक तथा यात्री ले जाये जा सकते थे। कुछ ऐसे भी जहाज थे जिनमें कि अत्यधिक सामान ले जाया जा सकता था। यह जहाज न केवल गुजरात वरन् सम्पूर्ण पश्चिमी तट, मालाबार तट या कोरोमण्डल तट पर बनते थे। जहाज बनाने का उद्योग यहाँ बहुत ही प्राचीन था। बंगाल में भी जहाजों को बनाने की परम्परा थी। इस सम्बन्ध में कई साक्ष्य उपलब्ध हैं। इब्नबतूता ने बंगाल की सल्तनत के लिए चिटगांव तथा भौंड़ में विरोधी पक्षों के मध्य जलपोतों में युद्ध का विवरण दिया है। बंगाल में बने हुए छोटे जहाज चीन सामान लेकर जाते थे। संक्षेप में १३वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक भारतवर्ष समुद्री व्यापार के लिए पूर्णतः सक्षम था। उसकी

समुद्री व्यापार की पुरानी परम्परा बनी रही। क्योंकि इस समय थल मार्ग असुरक्षित थे।

इस काल में अरब सागर के जहाज माल को लाते हुए मालाबार तथा कोरोमण्डल तट के बन्दरगाहों, क्यूलोन, कालीकट, कोचीन, कपाल, नेगापाटन और सम्भवतः मोतूपिले जाते थे। इन बन्दरगाहों में यात्री व माल उतार दिया जाता था और भारतीय जहाजों में माल पूर्व एशियाई देशों को ले जाया जाता था। इसी प्रकार से पूर्वी एशिया से भारतवर्ष माल आता था। मुहम्मद तुग़लक के लिए चीन के शासक ने १०० दास, १०० दासियाँ, ५०० टुकड़े ज़री के काम के वस्त्र के, ५ मन कस्तूरी, ५ मन आभूषणों से टके हुए वस्त्र, ५ सोने के तारों से कढ़े हुए तरकश तथा ५ तलवारें भेजी। उसके एवज में मुहम्मद तुग़लक ने चीन के शासक को जीन सहित १०० उत्तम घोड़े, १०० भारतीय दास, जो कि गायक व नर्तक थे, ५ किस्म के कपड़ों के १०० टुकड़े, उत्तम किस्म के ऊन के बने हुए वस्त्रों के ५०० टुकड़े और मलमल के १०० टुकड़े भेजे। अन्य वस्तुओं में शामियाने और उसके साथ उसे सजाने का सामान, सोने व चाँदी के बर्तन, खिलअतें और टोपियाँ १० तरकश, १० तलवारें, १५ शाही अनुचर भेजे।[१६१] महुआँ जो कि एक चीनी मुसलमान था तथा १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल के मुसलमान व्यापारियों तथा अमीरों के सम्पर्क में था, ने भी लिखा है कि धनी व्यक्ति यहाँ जहाज बनाते थे और व्यापार करने के लिए विदेश जाते थे। ऐसे धनी व्यक्तियों की संख्या बहुत थी। उसने बंगाल के सुल्तान द्वारा समुद्री व्यापार में भाग लेने का उल्लेख भी किया है। सुल्तान अपने आदमियों को विदेशों से स्थानीय वस्तुएँ, मोती और बहुमूल्य रत्न खरीदने के लिए भेजा करता था।

इसी प्रकार से गुजरात के बन्दरगाहों से फारस की खाड़ी के देशों को माल जाता था। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने बसरा के कुछ व्यापारियों द्वारा फारस के इलखानिद शासक रशीदउद्दीन के लिए उसके वजीर के पास उपहार भेजे। उनके द्वारा भेजी गई वस्तुओं की सूची में अनेक वस्तुएँ ऐसी थी जिनका उत्पादन या तो गुजरात के बन्दरगाहों में ही हुआ था या वह सामान वहाँ आया था। इस सूची में बहुमूल्य रत्न, सुगन्धित इत्र, अद्भुत पक्षियों, जानवरों, मसालों, दवाओं आदि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उसमें चीनी तथा चाय का भी उल्लेख है। उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त साज-सामान की वस्तुओं में तकिये, रजाइयाँ, चमड़े की बनी हुई चटाइयाँ, सुगन्धित तेल, सोने के ३० बर्तन, जिसमें से एक बंगाल का बना हुआ था, ५०० चीनी मिट्टी के बने हुए बर्तन व अचार के ३० मर्तबान, ३००० नारियल को मिलाकर ४ विभिन्न प्रकार के फल भी थे। इसी सूची में लकड़ी व हड्डी के बने हुए सामान, टीक, आबनूस, लाल चन्दन की लकड़ी के टुकड़ों, हाथी दांत, बड़ी मछली के दाँत तथा समान्दर नामक चिड़िया की चोंच का भी उल्लेख है। इसमें से अन्तिम दो वस्तुएँ दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की थी।

१५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुजरात में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। नवीन स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के साथ ही गुजरात को आर्थिक समृद्धि प्राप्त हुई। उसका विदेशों से व्यापार बढ़ा। अब्दुर रज्जाक, निकोलो कौन्टी, अफान्सी निकोटीन तथा अन्य विदेशी पर्यटकों ने न केवल गुजरात की समृद्धि का विवरण दिया है वरन् उसकी सम्पदा तथा पूर्वी लालसागर, फारस की खाड़ी दक्षिण पूर्व एशिया के साथ उसके व्यापार की भी चर्चा की है। वर्थेमा (१५०३-८) के अनुसार बंगाल और खम्भात के रेशमी वस्त्र और सूती कपड़े फारस, तातारी, सीरिया, अरब व अफ्रीका को निर्यात किए जाते थे।[११२] बारबोसा ने लिखा है कि सिरबन्द नामक शश, जिसका उत्पादन बंगाल में अत्यधिक होता था, योरूपीय स्त्रियाँ अपने सिर में बाँधने तथा अरब व ईरानी व्यापारी पगड़ी के लिए बहुत पसन्द करते थे।[११३]

१५वीं शताब्दी में चीन में सूती कपड़ों और कपास की बड़ी माँग थी। इब्न-बतूता के अनुसार चीन में सूती कपड़े बहुत ही महँगे और अप्राप्य थे। चीन पहुँचने वाले सूती कपड़े व कपास मुख्यतः गुजरात, कोरोमण्डल तथा बंगाल से ही जाते थे क्योंकि प्राचीन काल से इन प्रदेशों में उन वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादन होता था। १३वीं शताब्दी में चीनी यात्री चाऊ-जु-काऊ ने मालाबार, गुजरात, मालवा तथा कोरोमण्डल के सूती कपड़ों का उल्लेख किया है। मारकोपोलो और बारबोसा के अनुसार चीन में काली मिर्च की बड़ी माँग थी। नई प्रकार की वस्तुएँ, विलासिता के साधन तथा खिलौनों की भी चीन में बड़ी माँग थी। ईरानी सौदागर दक्षिण भारत से वहाँ हीरे ले जाते थे। ट्युटी कोरीन तथा लंका के बीच में मनार-फिशरी के मोतियों तथा कोरोमण्डल व अफ्रीका तट के मूँगों की भी चीन में बड़ी माँग थी।

इसी प्रकार से भारतवर्ष तथा इण्डोनेशिया के मध्य समुद्री व्यापार होता था, किन्तु भारत से इण्डोनेशिया को निर्यात की जाने की वस्तुओं की कोई विशेष सूची प्राप्त नहीं होती। १५वीं शताब्दी में बंगाल से कपड़े इण्डोनेशिया के बाजारों के लिए भेजे जाते थे। गुजरात के अनेक मुसलमान व्यापारी इण्डोनेशिया में जाकर बस गये थे। उनके व गुजरात के व्यापारियों के मध्य सम्बन्ध थे। गुजरात उन्हें कब्रों पर लगाये जाने वाले पत्थर भेजा करता था। यह पत्थर गुजराती शिल्पकारों की अद्भुत कला के प्रमाण थे।

अरब महाद्वीप में रहने वाले लोग तथा मध्य अफ्रीका के लोग भारतीय वस्तुओं पर बहुत निर्भर करते थे। भारतवर्ष से बहुत-सा माल न केवल इन्हीं देशों को वरन् उससे भी आगे पुराने व नये ओरमज़ को भी जाता था। जहाँ से यह सामान ईरान, पाश्चात्य देशों, रूस तथा मध्य एशिया में वितरित होता था। इस काल में इस्लामी संसार के देशों में कैरों में सबसे अधिक आबादी थी। फारस की खाड़ी के मुहानों पर स्थित ओरमज़ व्यापार व विनिमय का महान केन्द्र था। १५वीं शताब्दी में ओरमज़ में भारतीय व्यापारियों के अतिरिक्त अन्य विदेशी व्यापारी बसे हुए थे। १२वीं शताब्दी में भारत से व्यापार करने वाले यहूदी व्यापारियों के रिकार्ड्स में गोटीन (Goetien)

ने जिन वस्तुओं का यहाँ से निर्यात होता था उन वस्तुओं में मसाले, रँगने व वारनिश करने की वस्तुएँ, जड़ी, बूटियाँ, सुगन्धियाँ, लोहा, स्टील, पीतल तथा काँसे के वर्तन आदि का उल्लेख किया है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त भारतवर्ष से टीक की लकड़ी, जिसका प्रयोग फारस की खाड़ी तथा अरब सागर के देशों में जहाज बनाने के लिए, खम्भे या बीम या हल में लगाने के लिए होता था, भेजी जाती थी। पश्चिमी समुद्री तट से चावल व गेहूँ फारस की खाड़ी के देशों तथा दक्षिण अरब को भेजा जाता था। इब्नबतूता के अनुसार गुजरात, कोरोमण्डल तथा बंगाल दक्षिण अरब व ओमन के लोगों के लिए सूती कपड़े निर्यात किया करते थे और वे अनाज के लिए भी उन पर निर्भर थे। संक्षेप में भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में मोती, इत्र, सुगन्धित तेल, हाथी दाँत, सुगन्धित लकड़ियाँ, कपूर, लौंग, चन्दन, जायफल, कपड़ा, जूट, नारियल, सूती कपड़े, ज़री के काम के कपड़े, कढ़े हुए वस्त्र, काली मिर्च व अन्य मसाले, खाद्यान्न इत्यादि वस्तुएँ थीं।[१६४]

वस्तुओं के मूल्य

वलवन के समकालीन मीर खुर्द ने लिखा है कि उस समय **नान-ए-मैदा** या मैदा से बनी हुई रोटी दो सेर प्रति जीतल मिलती थी।[१६५] सुल्तात जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी के शासन में सीदी मौला के वध के उपरान्त वर्षा वन्द हो गई और दिल्ली में अकाल पड़ गया। अनाज का भाव १ जीतल प्रति सेर तक पहुँच गया। अर्थात् गल्ले का भाव ४० जीतल प्रति मन हो गया। इस प्रकार से असाधारण समय में गल्ले का मूल्य साधारण भाव से पाँच गुना बढ़ गया। किन्तु फिर भी उसका मूल्य परिवर्ती काल की तुलना में बहुत ही कम था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने बाजार नियन्त्रण प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं के भाव निर्धारित किये। गेहूँ ७½ जीतल प्रतिमन, जौ ४ जीतल प्रति मन, चना ५ जीतल प्रति मन, धान ५ जीतल प्रति मन, उर्द ५ जीतल प्रति मन, मोंठ ३ जीतल प्रतिमन।[१६६] यदि इल्वारी काल का मन खिल्जी तथा तुग़लक काल के मन के समान माना जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि वलबन के समय मैदा की वनी हुई रोटी २० जीतल प्रतिमन मिलती रही होगी। इसमें मैदा का मूल्य और उसके रोटी वनाने का खर्च दोनों ही सम्मिलित था। इस समय मैदा का भाव गेहूँ से अधिक रहा होगा। किन्तु इस आधार पर गेहूँ का भाव मालूम करना कठिन है। मीरखुर्द ने तरबूज का भाव देते हुए लिखा है कि वह वलवन के समय में २ जीतल प्रति मन के भाव से वहुत ही सस्ता था।

वरनी ने इस वात पर वल देते हुए लिखा है कि जब तक सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी जीवित रहा तव तक चाहे पैदावार हुई हो या वर्षा कम हुई हो, गल्ले का भाव १ दाँग भी वढ़ने नहीं पाया। वाजार में निर्धारित मूल्य इस समय तक आश्चर्य-जनक वात समझी जाती थी। यह सत्य है कि सुल्तान अलाउद्दीन ने वस्तुओं के मूल्य कम किये किन्तु हमें यह भी स्वीकार करना चाहिये कि उसके पूर्ववर्ती शासकों के काल

में भी अकाल के कारण समय-समय पर मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो जाती थी। अलाउद्दीन ने अकाल के समय के मूल्यों को कम कर उस स्तर पर ला दिया जो कि अच्छी फसल होने के समय साधारणतया हुआ करते थे। **खैरुल मजालिस** से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि गाँवों से अत्यधिक गल्ला आने के कारण उसका मूल्य ७ जीतल प्रति मन तक हो गया। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने अपने शासनकाल में अन्य वस्तुओं के भी मूल्य निर्धारित किये जिसके कारण उनके मूल्य ही कम हो गये। अन्य वस्तुओं के मूल्य वस्तु के उत्पादन की कुल कीमत के आधार पर, जिसमें कि व्यापारियों का लाभ तथा उसके वहन का मूल्य भी सम्मिलित होता था, पर निर्धारित किये गये।

उसके शासनकाल में अनाज का भाव यही रहा। उसने कपड़ों को सस्ता करने के लिए उनके मूल्य भी निर्धारित कर दिये। कुछ रेशमी कपड़ों का मूल्य इस प्रकार से हैं—ख़ज देहली १६ तन्का, खज कौला ६ तन्का, शरूशेरी उत्तम ३ तन्का, बुरद उत्तम (लालधारी वाला कपड़ा) ६ जीतल, बुरद साधारण ३½ जीतल, अस्तर लाल नागौरी २४ जीतल, अस्तर साधारण १२ जीतल, शीरीन बफ्त उत्तम ५ तन्का, शीरीन बफ्त औसत ३ तन्का, शीरीन बफ्त साधारण २ तन्का, सिलाहती उत्तम ६ तन्का, सिलाहती औसत ४ तन्का, सिलहती साधारण २ तन्का, किपीस (मलमल) बारीक २० गज १ तन्का, किपोस साधारण ४० गज १ तन्का तथा चादर १० जीतल। इसी भाँति मिश्री का भाव २½ जीतल प्रति सेर, शकरतरी १½ जीतल प्रति सेर, लाल शक्कर १½ जीतल में ३ सेर, रोग़ने सतूर (घी) १ जीतल में १½ सेर, सरसों का तेल १ जीतल में ३ सेर, नमक ५ जीतल प्रति मन था।[१६६]

उसके शासनकाल से पूर्व ऊँट एक दाँग का मिलने लगा था। किन्तु उसने घोड़ों व चौपायों के मूल्य भी निर्धारित कर दिये। जो घोड़े सेना के लिए **दीवान** में प्रस्तुत किये जाते थे उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया—प्रथम श्रेणी के घोड़ों का मूल्य १०० तन्के से १२० तन्के तक, दूसरी श्रेणी के घोड़ों का मूल्य ८० तन्के तक, तीसरे श्रेणी के घोड़ों का मूल्य ६५ तन्के से ७० तन्के तक था। जो घोड़े दीवान में नहीं पेश किये जाते थे उन्हें टट्टू कहते थे और उनका मूल्य १० तन्का से २५ तन्का तक निर्धारित किया गया। जो चौपाये पहले ३०, ४० तन्कों में मिलते थे वे अब ४ तन्कों में मिलने लगे। जुफ्ती (जोड़े) चौपाये तीन तन्के में मिलते थे। जिन गधों का मांस खाया था उनका मूल्य १½ तन्के से २ तन्के तक था। दूध देने वाली गाय का मूल्य ३-४ तन्के तक था। दूध देने वाली भैंस का मूल्य १० तन्के से १२ तन्के तक और उन भैंसों का मूल्य जिनका केवल मांस खाया जाता था का मूल्य ५ तन्के से ६ तन्के तक था। मोटी ताजी भेड़ का मूल्य १० जीतल से १२-१४ जीतल तक था। इसी प्रकार से उसने साधारण कनीज (काम करने वाली दासियाँ) का भाव ५ तन्के से १२ तन्के के बीच निर्धारित किया। किनारी कनीज (रूपवान दासी) का मूल्य २० से ३० तन्के और ४० तक निश्चित किया गया। दास का भाव १०० से २०० तन्के तक निश्चित किया

गया। साधारण काम करने वाले दासों का मूल्य १० से १५ तन्के तक था तथा अनुभवहीन गुलाम बच्चों का मूल्य ७ से ८ तन्के तक था। सल्तनत के इतिहास में पहली बार विभिन्न वस्तुओं के मूल्य निर्धारित किये गये। सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने बड़े परिश्रम से टोपी, मोजे, कंघी, सुई, गन्ने, सब्जी, रोटियाँ, मछली, पान, सुपाड़ी, फूल, साग-पात आदि के भी भाव निर्धारित किये।[१६७]

जिन वस्तुओं के मूल्य बरनी ने दिये हैं वे थक्कर फेरू द्वारा **गणितसार कौमुदी** में दिये गये हुए मूल्यों से मिलते-जुलते हैं। उदाहरण के लिए—

चावल	१.८	दाम	प्रति सेर
मूदगा	१/११	”	”
घी	१	”	”
पीपल	५.४	”	”
अदरख	३/२	”	”
हरीतकी	१	”	”
बहेड़ा	१/३	”	”
आमला	१/६	”	”
मिर्च	८$\frac{१}{३}$	”	”

उसके अनुसार ७ × ३ हाथ के पंचरगी कपड़े का मूल्य ५० दाम था। दोसिया कपड़ा ११/७ दाम प्रति हाथ के हिसाब से बिकता था। अशरफ के अनुसार मोटे किस्म का कम्बल ६ जीतल तथा उत्तम किस्म का कम्बल ३६ जीतल का मिलता था, किन्तु फेरू के अनुसार ६ × ३ हाथ का कम्बल ४$\frac{१}{२}$ दाँग में मिलता था। इसी प्रकार से फेरू ने मोटे किस्म के कम्बल के मूल्य भी दिये हैं।

खैर उल मजलिस में हामिद कलन्दर ने लिखा है कि शेख निजामुद्दीन औलिया के समय में २०-२०, ३०-३० दरवेश उसके सम्मुख उपस्थित हुआ करते थे और वह उन्हें तीन दिन तक अपना अतिथि रखता था। इस पर शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली जो उसके गुरु थे, को उन दिनों की याद आ गई और उन्होंने उसे बताया कि उस काल में धन की अधिकता थी और वस्तुओं के मूल्य कम थे। गेहूँ ७$\frac{१}{२}$ जीतल, शकर आधी धीरम, शकरतरी १ जीतल था या उससे कम मूल्य में भी मिलती थी। यदि कोई दावत व गोष्ठी करना चाहता था तो दो तन्के और ४ तन्के में इतना अधिक भोजन तैयार हो जाता था कि वह भोजन अनेक लोगों के लिए पर्याप्त सिद्ध होता था।[१६८] हामिद कलन्दर के अनुसार शेख निजामुद्दीन औलिया के जीवन काल में १ तन्का या उससे कुछ अधिक धन में दावत का आयोजन हो जाता था। एक अन्य मजलिस में शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली ने हमीद कलन्दर को बताया कि सुल्तान अलाउद्दीन के समय वस्तुओं

का मूल्य इतना सस्ता था कोई ऐसा फकीर न था कि जिसके पास लबादा न हो। साधारण ऊन का वस्त्र एक तन्के में, वर्द (धारीदार कपड़ा) दो तन्के २० जीतल में, ३० जीतल में मकीना सूती वस्त्र, २ जीतल में अस्तर तथा रूई का बना हुआ वस्त्र मिल जाता था। किन्तु फिरोज़शाह तुग़लक के काल में एक लबादा भी १ तन्के में कोई नहीं सीता था।[१६९] सुल्तान बलबन व कैकुबाद के शासनकाल में दिल्ली में रमजान कलन्दर, मलिक यार परीन, शेख बहाउद्दीन समरकन्दी आदि के लंगरों का होना प्रमाणित करता है कि इस काल में वस्तुओं के मूल्य बहुत ही कम थे।

इस प्रकार बरनी और शेख नसीरुद्दीन ने अनाज व कपड़ों के मूल्य दिये हैं। दोनों के द्वारा दिये गये मूल्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात उसकी मूल्य नियन्त्रण प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गई। उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के समय विभिन्न वस्तुओं के मूल्य एक बार फिर बढ़ें। सुल्तान अलाउद्दीन ने जो भाव निर्धारित किये थे, वे बेकार हो गये। खुसरो खान के शासनकाल में वस्तुओं के मूल्यों में फिर वृद्धि हुई।[१७०] किन्तु बरनी यह नहीं बताता है कि यह वृद्धि कितने प्रतिशत हुई। कालान्तर में सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक के शासनकाल में प्रशासनिक सुधारों तथा कृषि-सम्बन्धी सुधारों के कारण एक बार पुनः वस्तुओं के मूल्यों में गिरावट आई। यदि सुल्तान कुछ समय तक और जीवित रहता तो गल्ले तथा अन्य वस्तुओं के मूल्यों में और भी कमी हो जाती।[१७१]

मुहम्मद बिन तुग़लक के काल में वस्तुओं के मूल्य विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों में उपलब्ध हैं। शिहाबुद्दीन अल उमरी को खुजन्दी ने बताया कि जब वह दिल्ली के आस-पास कहीं था तो उसने तीन मित्रों के साथ १ जीतल में रोटी, माँस व मक्खन खाया। कुल मिलाकर यह भोजन चार फुलूस का था।[१७२] सम्भवतः यह मूल्य सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में रहे होंगे। किन्तु धीरे-धीरे समय के साथ-साथ विविध वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हुई। इस काल में विविध वस्तुओं का औसत मूल्य शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार इस प्रकार से था—

वस्तु	वज़न (प्रतिमन)	मूल्य जीतल में
गेहूँ	"	१२
जौ	"	८
औसत प्रकार का चावल	"	१४
गाय का मांस तथा बकरे का मांस	६ सेर	२
भेड़ का मांस	४ सेर	२
एक हँस	—	१६
चार मुर्गियाँ	—	८

वस्तु	वजन	मूल्य जीतल में
शक्कर	५ सेर	८
कन्दूर	४ सेर	८
अच्छी भेड़	—	६४
गाय	—	१२८
भैंस	—	१२८

शिहाबुद्दीन अल उमरी ने सुप्रसिद्ध शेख मुबारक से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक (१३२४-५१) के शासनकाल में वस्तुओं के भाव मालूम किये। उसने लिखा है कि गेहूँ का भाव १२ जीतल (१½ हश्त ग़नी) प्रति मन था। इस प्रकार अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल की तुलना में गेहूँ के दाम में १००% वृद्धि हुई। इसी प्रकार से चावल के भाव भी बढ़ गए। बरनी के अनुसार धान का भाव ५ जीतल प्रति मन अलाउद्दीन के समय था; मसालिक उल अबसार के अनुसार चावल का भाव १४ जीतल (१¾ हश्तग़नी) प्रति मन था। बंगाल में अनाज के भाव बहुत ही कम थे। इब्नबतूता ने सिक्कों तथा तौलने के बाट के जो नाम दिये हैं उनसे भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि उसका चाँदी का दीनार हश्तग़नी था, उसका धीरम जीतल था और उसका देहली का रतील सेर था, तो उसके द्वारा दिये गये कुछ भाव को भारतीय सिक्कों व तौलने के बाँट में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है।

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में वस्तुओं के दाम अधिक थे। उसके शासनकाल में विविध वस्तुओं के प्रचलित मूल्यों की तुलना यदि खिल्जी काल से की जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुग़लक शासक के अन्तर्गत खाद्यान्नों के मूल्यों में वृद्धि हुई और पशुओं के मूल्य कम हुए। दोनों ही कालों में शक्कर के भाव लगभग सामान्य थे। हालाँकि खिल्जी काल की तुलना में भेड़ व बक़री के मूल्य इस काल में पाँच गुना अधिक थे। औसतन मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में भाव अधिक रहे। क्योंकि इस काल में परिस्थितियाँ असाधारण रही। दोआब में अकाल तथा साम्राज्य के सभी भागों में विद्रोह का प्रभाव मूल्यों पर पड़ना स्वाभाविक ही था। कड़ा तथा अवध के प्रदेशों से अनाज आ जाने के कारण दिल्ली में कुछ समय के लिए खाद्यानों का मूल्य गिरा किन्तु खाद्यानों के अभाव के कारण, जैसा कि इब्नबतूता ने लिखा है कि दिल्ली में गेहूँ का मूल्य ६ दीनार प्रति मन हो गया था। सुल्तान के अभियान पर जाने के समय खाद्यानों का मूल्य ६० धीरम या उससे कुछ अधिक हो ग़या। इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली की तुलना में बंगाल में वस्तुएँ सस्ती थी। इब्नबतूता ने बंगाल में बहुत ही सस्ती वस्तुएँ देखी। उसने यहा एक चाँदी के दीनार में २५ रतल (एक मन) चावल बिकते हुए देखा। उसने वहाँ लोगों से यह कहते हुए सुना कि इस वर्ष वहाँ बड़ी मँहगाई है। बंगाल के निवासी मुहम्मद मसूदी सूफी सन्त थे। वे अपनी पत्नी, अपने लिए तथा एक सेवक के लिए पूरे वर्ष के वास्ते ८ दिरहम

(दीनार) में भोजन सामग्री खरीद लिया करते थे। उन दिनों ८ दिरहम में ८० देहली के रतल के बरावर धान मिलता था। कूटने के उपरान्त उसमें से पचास रतल चावल निकलते थे। इस प्रकार से इब्नबतूता के अनुसार जब बंगाल में १ हश्तग़नी में २५ सेर चावल या १ मन चावल लगभग १३ जीतल में मिलता था तो बहुत मँहगा समझा जाता था। साधारणतः १ हश्तगनी में २ मन धान तथा १$\frac{1}{3}$ मन चावल बंगाल में मिलता था। बंगाल में चावल ५$\frac{1}{2}$ जीतल प्रतिमन मिलता था। जबकि दिल्ली में वही चावल १४ जीतल प्रतिमन मिलता था। बंगाल में इस प्रकार चावल सस्ता था। वहाँ दूध देने वाली भैंस तीन चाँदी के दीनार में मिलती थी। वहाँ एक दिरहम की ८ अच्छी तथा मोटी मुर्गियाँ मिलती थी और कबूतर के बच्चे एक दिरहम के १५ बिकते थे। मोटी भेड़ दो दिरहम की तथा एक रतल (एक मन) शकर ४ दिरहम में मिलती थी। एक रतल गुलाबजल ८ दिरहम में, ३० गज़ बारीक सूती कपड़ा २ दीनार (चाँदी के तन्के) में मिलता था। एक रूपवती कनीज (दासी) सोने के एक दीनार में मिल जाती थी व एक तरुण दास २ सोने के दीनार में मिल जाता था।[८७]

सुलतान फिरोज़शाह तुग़लक (१३५१-८८) के शासनकाल के समय में वस्तुओं के मूल्य कई ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलते हैं। उसने मूल्य नियन्त्रण करने का कोई प्रयास न किया और इस लिए व्यापारी बहुत ही प्रसन्न थे। शेख नसीरुद्दीन ने १३५४ में अलाउद्दीन खिल्जी के समय की याद करते हुए कहा कि उस समय वस्तुओं के मूल्य कम थे और इस समय भाव बहुत बढ़ गए हैं, जिससे जीवनयापन करने के लिए अत्यधिक खर्च करना पड़ता है। फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल के प्रारम्भ में मुल्तान से अनाज का अभाव था, इसलिए वहाँ ज्वार ८० जीतल प्रति मन बिकी। किन्तु आइन-उल-मुल्क के अनुसार १३५२ से १३६० के मध्य अनाज बहुत ही सस्ता हो गया और अनाज का अभाव भी समाप्त हो गया। ज्वार ८ जीतल प्रतिमन के भाव से बिकने लगा लेकिन अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल की तुलना में ज्वार का भाव अब भी अधिक था। अफीफ ने अनाज के मूल्यों के भाव में गिरावट प्रदर्शित किया है। उसके अनुसार फिरोज़शाह तुग़लक के समय अनाज का भाव सस्ता था। उसके अनुसार न केवल दिल्ली में वरन् साम्राज्य के सभी भागों में वस्तुओं के मूल्य सस्ते थे। सुल्तान फिरोजशाह के कल्याणकारी राज्य में ४० वर्षों तक कोई भी अकाल न पड़ा और इतना अधिक उत्पादन हुआ कि लोग अलाउद्दीन खिल्जी के समय को भी भूल गये। ध्यान रहे कि जब कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय में वस्तुओं के कम भाव उसके अथक प्रयासों के कारण थे, सुल्तान फिरोजशाह के काल में ईश्वर की महान् अनुकम्पा के कारण अथवा सुल्तान के प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों के कारण वस्तुओं के भाव कम रहे। अफीफ के अनुसार फिरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में खाद्यान्नों के मूल्य इस प्रकार से थे :

वस्तु	वज़न	मूल्य (जीतल में)
गेहूँ	प्रतिमन	८ जीतल
जौ	"	४ "
चना	"	४ "
दलिया	"	४ "
घी	प्रति सेर	२½ "
शक्कर	"	३½ "
घोड़ों के लिए दलिया	१० सेर	१ "

किन्तु असाधारण परिस्थितियों में वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो जाती थी। उदाहरणतया थट्टा पर प्रथम वार आक्रमण करते समय सुल्तान की सेना में खाद्यान्न का भाव बढ़ कर २-३ टंका प्रति मन हो गया। जब सुल्तान सिंध से गुजरात की ओर पीछे हटा तो खाद्यान्नों का मूल्य बढ़कर १-२ टन्का प्रति सेर हो गया। थट्टा पर दुवारा चढ़ाई के समय खाद्यान्नों का मूल्य ८ से १० जीतल प्रति पाँच सेर के हिसाब से हो गया। उसी समय थट्टा के लोग खाद्यान्नों को २ टन्का प्रति सेर के भाव से खरीद रहे थे। नई फसल के बाद ही जब खाद्यान्न सेना शिविर में पहुँचने लगे तो उनका भाव गिरने लगा। इसी काल में आईन-उल-मुल्क महरू के अनुसार मुल्तान प्रदेश में पिछले वर्षों की तुलना में खाद्यान्नों का मूल्य १/१० कम हो गया। जो अनाज पहले ८० जीतल प्रति मन के हिसाब से विकता था वह ८ जीतल प्रति मन के हिसाब से मिलने लगा।[१७४]

कपड़ों में सफेदीना (बहुमूल्य कपड़ा) व नरमीना (सस्ता कपड़ा) दोनों ही सस्ते थे। मिष्ठान का भाव कुछ कम था। क्योंकि सभी वस्तुएँ सस्ती थीं। अतएव मिठाई का मूल्य सस्ता होना स्वाभाविक था। अफीफ के अनुसार यह मूल्य सुल्तान फिरोज़ के शासनकाल के राज्यकाल के अन्त तक बने रहे। इसका तात्पर्य यह है कि उसकी मृत्यु के बाद मूल्य पुनः बढ़ने लगे और जिस समय उसने अपना ग्रन्थ लिखा उस समय तक मूल्य अत्यधिक बढ़ गया था। आइन-उल-मुल्क ने मलिकुल मशायख रज़ीउद्दीन के नाम पत्र में लिखा कि "जहाँ तक व्यापार व व्यवसाय से तात्पर्य है मुझे भली-भाँति इस बात की स्मृति है कि सुल्तान अलाउद्दीन के राज्यकाल से लेकर इस समय तक कभी इतनी समृद्धि न थी। दिन में दो जीतल अथवा तीन जीतल का लाभ होता था। जुलाहा दो जीतल में चादर बुनता था। आजकल तीन जीतल में बुनता है। दरजी ४ जीतल में सिलता था। आजकल ३ जीतल में सन्तुष्ट नहीं। आजकल अनाज भूतकाल से सस्ता है। वे लोग अत्यधिक मजदूरी लेने से, जो वे अकाल के समय लेते थे, बाज नहीं आते। दरजी कोई न्याय नहीं करता व चादर बुनने वाला अपनी इच्छानुसार बुनता है।"[१७५] आइन-उल-मुल्क, जो कि मुल्तान में था, ने मौलाना

शिहाबुद्दीन को पत्र में लिखा कि इस वर्ष सामग्रियों का मूल्य पिछले वर्षों की अपेक्षा १/१० हो गया है। जो अनाज पहले ८० जीतल प्रति मन के हिसाब से विकता था इस वर्ष ८ जीतल प्रति मन हो गया है।[१७६]

इन्शा-ए-महरू के एक पत्र से मालूम होता है कि मुल्तान में एक दास का मूल्य २००० तन्का था। फिरोज़शाह तुग़लक के काल में आइन-उल-मुल्क ने जो पत्र मलिक उल उमरा पुल वहाउद्दीन को लिखा उसमें उसने वताया कि उसे १०० दासों का मूल्य २००० तन्का प्राप्त हुआ है।[१७७] इसी प्रकार मलिक फखरुद्दीन के नाम पत्र में भी उसने लिखा कि उसे २०,००० तन्के दास क्रय करने के लिये प्राप्त हुए हैं।[१७८] इसी प्रकार उसके एक परवाने में लिखा है कि वह गुजरात में गर्वनर से १ टन्के मूल्य के ५० घोड़े खरीदने का प्रवन्ध करेगा।[१७९]

वस्तुओं के मूल्य कई वातों पर निर्भर करते थे जैसे कि उत्पादन, अकाल, यातायात की सुविधा, व्यापारियों की रक्षा, सामान्य स्थिति, माल का अधिक मात्रा में वाज़ार में उपलब्ध होना तथा उसकी माँग आदि। जब कभी अकाल या दुर्भिक्ष पड़ता था तो वस्तुओं के मूल्य अपने आप ही वढ़ जाया करते थे। मुहम्मद विन तुग़लक के काल में जब हिन्द व सिन्ध में अकाल पड़ा तो अनाज का मूल्य इतना वढ़ गया कि १ मन गेहूँ ६ दीनार में मिलने लगा। सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक जव जाजनगर पर आक्रमण करने के लिये पहुँचा और उसके अधिकार में जाजनगर आ गया तो उसकी सेना के हाथों में पशु व दास इतनी संख्या में आ गये कि कोई उनकी ओर ध्यान भी नहीं देता था। उस समय दासों का मूल्य २ जीतल हो गया और मवेशियों का कोई मोल भी नहीं लेता था। भेड़ों की गणना करना मुश्किल था।[१८०] जब उसने थट्टा पर आक्रमण किया तो वहाँ उस सम फसल खेत में ही खड़ी हुई थी अतएव वहाँ अनाज का मूल्य ८ जीतल तथा १० जीतल में ५ सेर था। जव नया अनाज आ गया तो वह सस्ता हो गया।[१८१] उस समय मनगा ५ तन्के में एक मन तथा ज़रत ४ तन्के में सवा मन हो गया।[१८२] किन्तु उसके आक्रमण के कारण पुनः अनाज का भाव वढ़ने लगा और अकाल के कारण उसका मूल्य एक तन्के तथा दो तन्के प्रति सेर पहुँच गया।[१८३] इस प्रकार राजनीतिक अशान्ति व अकाल के कारण अक्सर वस्तुओं के मूल्य में उतार-चढ़ाव अच्छी फसलों, राजनीतिक अशान्ति व अकाल के कारण ही हुआ। उसकी मृत्यु के वाद, तैमूर का आक्रमण १३९८ ई० में हुआ जिससे उत्तरी भारत का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया और वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो गई।

अब्दुल्लाह ने तारीख-ए-दाउदी में लिखा है कि वहलोल लोदी के समय वस्तुएँ सस्ती थीं। इतनी सस्ती वस्तुएँ किसी भी राज्यकाल में न थी! यदि सुल्तान अलाउद्दीन के शासनकाल में वस्तुएँ सस्ती हुई भी तो केवल हत्या व कठोर दण्ड के कारण। सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासनकाल में दैवी कारणों से मूल्य कम रहे। परन्तु

सुल्तान इब्राहीम लोदी के शासनकाल में एक वहलोली में १० मन अनाज, ५ सेर घी १० गज कपड़ा मिलता था। इस अल्प मूल्य का कारण पर्याप्त वर्षा थी जिससे कृषि की उन्नति हुई और प्रत्येक विलायत की सम्पन्नता १० गुना बढ़ गई। सुल्तान इब्राहीम लोदी ने आदेश दिया था कि सभी अमीर व मलिक अनाज या जो कुछ भी भूमि में उत्पन्न हो उसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु कर के रूप में न ले और किसानों से नकद धन न प्राप्त करें। इस प्रकार जागीरों से अपार अनाज प्राप्त होता था।[१८४]

अनाज के मूल्यों में उतार-चढ़ाव का प्रभाव अन्य वस्तुओं के मूल्यों पर तो पड़ता था किन्तु उसके साथ-साथ मजदूरी पर भी उसका गहन प्रभाव पड़ता था। अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के कारण तथा अनाज के सस्ता होने से मजदूरी कम हो गई। आइन-उल-मुल्क महरू ने अलाउद्दीन खिल्जी के दिनों की याद करते हुए लिखा कि एक शिल्पकार की मजदूरी २ या ३ जीतल प्रतिदिन थी। एक जुलाहा एक चादर २ जीतल में बुन देता था। एक दर्जी एक वस्त्र ४ (नासिरुद्दीन के अनुसार ४ या ६ जीतल) जीतल में सिल दिया करता था। आइन-उल-मुल्क महरू के कथन की पुष्टि बरनी के कथन से होती है। आइन-उल-मुल्क ने लिखा है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय से लेकर इस समय तक कभी भी इतनी समृद्धि नहीं रही। शिल्पकार को केवल २ या ३ जीतल का लाभ होता था। अलाउद्दीन के समय जुलाहे २ जीतल में चादर बुनता था और अव ३ जीतल लेता है। दर्जी ४ जीतल में वस्त्र सीता था और अव ३ जीतल से भी सन्तुष्ट नहीं। मजदूर जो अकाल के समय में अधिक मजदूरी लेते थे अव भी ही उतनी मजदूरी लेते हैं, जव कि अनाज का मूल्य सस्ता है। दर्जी कम नहीं लेते और न ही चादर बुनने वाला जुलाहा ही कम लेता है।[८५] वरनी यह लिखता है कि ६ जीतल में ७ से ८ आदमी रोटी व माँस खा लिया करते थे। उसने लिखा है कि अलाउद्दीन के समय एक चाकर या नौकर को १० या १२ जीतल तन्के वार्षिक मिलते थे। अर्थात् २ जीतल प्रतिदिन। लेकिन उसी ने यह भी लिखा है कि साधारण लोगों को कम मूल्य से लाभ नहीं हुआ क्योंकि उन्हें कम मजदूरी मिलने लगी। उस समय यह कहावत थी कि एक ऊँट एक दाँग (तांवे के सिक्के) में मिलता था किन्तु अव किसके पास दाँग है?[१८६] वरनी और शेख नसीरुद्दीन के अनुसार १३५० ई० के लगभग मजदूरी बहुत ही वढ़ गई थी। दर्जी की सिलाई १२ गुना वढ़ गई। शेख नासिरुद्दीन के अनुसार एक लवादा जो पहले ४-६ जीतल में सिला जाता था अव १ तन्का (४८ जीतल) में सिलने लगा।[१८७] वरनी के अनुसार सिलाई का मूल्य २ जीतल से १/२ तन्का (२४ जीतल) तक वढ़ गया। इसी प्रकार से आइन-उल-मुल्क महरू भी इस वात की शिकायत करता है कि फिरोजशाह तुग़लक के समय मुल्तान व उच्च में भी मजदूरों की मजदूरी वढ़ गई है। उसके अनुसार अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल की तुलना में दर्जी व जुलाहें ७½ और १५ जीतल अधिक लेने लगे हैं। ऐसा केवल उच्च व मुल्तान में अनाज के अभाव के काल में ही था। ऐसी वात नहीं थी। जव अनाज का मूल्य गिर

गया तब भी मजदूरी ज्यों की त्यों रही। वास्तव में कभी-कभी अनाज के मूल्य के घटने से मजदूरी की दर घटती नहीं थी। ऐसा तो कई कारणों से होता था। श्रमिकों अथवा कुशल कारीगरों का अभाव था और काम की अधिकता थी। कुछ भी हो अनाज के मूल्यों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्बन्ध मजदूरी तथा विभिन्न वस्तुओं के मूल्य से अवश्य था। थक्कर फेरू के अनुसार एक मजदूर की प्रतिदिन की मजदूरी १५-२४ दाँग थी। ४८ तन्के वज़न के कपड़े की सिलाई का मूल्य ५ दाम था और कपड़े का मूल्य १० तन्का था। सौ गज़ किनारी सिलने का मूल्य १६ दाँग था। इससे मालूम होता था कि सुल्तान अलाउद्दीन के शासनकाल में मजदूरी सस्ती थी।

आजकल की मुद्रा में पूर्व मध्यकालीन भारत में व्याप्त विविध वस्तुओं का सही मूल्य मालूम करना नितान्त कठिन है, क्योंकि न तो हमें उस समय के प्रचलित सिक्कों के मूल्य तथा उनकी क्रय शक्ति के सम्बन्ध में सही-सही जानकारी है और न ही यह मालूम है कि वास्तव में इस समय एक मन कितने सेर का होता था। मुद्रा का मूल्य उसकी क्रय शक्ति तथा मन के भार निरन्तर परिवर्तित होते रहते थे। आज-कल की मुद्रा के मूल्य तथा मन के भार में उस समय की तुलना में बड़ा अन्तर है। अतएव विभिन्न शासकों के समय में विविध वस्तुओं के मूल्यों की तुलना से कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। फिर भी विभिन्न शासकों के समय में विविध वस्तुओं के मूल्य आगे परिशिष्ट में दिए गए हैं।

इस काल मे व्यापारी ऐह्तेकार (जमाखोरी) किया करते थे। शरा के अनुसार मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन की जमाखोरी करना वर्जित था। इसके अतिरिक्त सोने व चाँदी या कपड़े की जमाखोरी करना भी बुरा माना जाता था। क्योंकि जमाखोरी से सर्वसाधारण को नुकसान होता था। आइन-उल मुल्क ने मौलाना शम्सुद्दीन मुतवक्किल के नाम पत्र में लिखा कि मुल्तान के व्यापारी और व्यवसाय करने वाले शरियत के नियमों के विरुद्ध जमाखोरी में लगे रहते हैं। यह जमाखोर सिरसौती से घी ७ जीतल प्रति सेर के हिसाब से लाते थे और उसका मूल्य धीरे-धीरे अदा करते थे। वे इस घी को कुछ समय तक अपने पास सुरक्षित रखते थे और जब घी न मिलने के कारण संकट उत्पन्न होता था तो वह उस घी को ८ या १० जीतल प्रति सेर के हिसाब से बेच दिया करते थे। इसी प्रकार से जमाखोर हाट से सस्ते समय में वस्त्र मोल लेते थे और उन्हें सुरक्षित रख लेते थे। वे ५० में खरीदते थे और १०० में बेचते थे। जमाखोर देहली व लाहौर से मिश्री लाकर छुपा कर रख लेते थे और उसका मूल्य चढ़ने पर बेचते थे। ख्वाजा अली कमाल दिलवानी ७ वर्ष तक मिश्री अपने पास मुल्तान में रक्खे रहा। मिश्री का मूल्य गिरने पर भी वह जमाखोरी से बाज़ नहीं आया। आइन-उल-मुल्क स्वयं ईंधन की जमाखोरी किया करता था। वह मुल्तान के महालों से किसानों से नौकाओं में लकड़ी मँगा कर उन्हें अधिक दामों पर बेचा करता था और उससे अधिक लाभ कमा लेता था।[१८८]

मूल्यों का नियन्त्रण

अलाउद्दीन खिल्जी प्रथम शासक था जिसने कि विविध वस्तुओं के मूल्यों के नियन्त्रण की ओर ध्यान दिया। काज़ी हामिद मुल्तानी की बातों के आधार पर शैख नसीरुद्दीन चिराग़ ने खैर उल मजलिस में लिखा है कि एक दिन काजी ने सुल्तान अलाउद्दीन के महल में प्रवेश किया। उसने सुल्तान को सिंहासन पर बैठे हुए, नंगे सिर, नंगे पैर और नीचे की ओर आँखें किये हुए कुछ विचारों में मग्न देखा। काज़ी हामिद उसके समीप गया किन्तु सुल्तान ने उसे नहीं देखा। वह वहाँ से वापस चल आया और उसने क़राबेग को सूचना दी। उसके बाद वे दोनों सुल्तान के पास पहुँचे। क़राबेग ने सुल्तान के बातचीत करना शुरू किया। बाद में क़राबेग ने सुल्तान से पूछा कि वे किस विचार में मग्न थे। सुल्तान ने कहा कि वह यह सोच रहा था कि किस भाँति उसका कार्य जनता तक पहुँचे। यदि वह सम्पत्ति वितरित कर देता है तो वह सबके लिए पर्याप्त न होगी। यदि वह सभी गाँवों व प्रान्तों को विजित करता है तो भी वह पर्याप्त न होगी। किन्तु यदि वह वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित कर खाद्यान्न के मूल्य घटा देता है तो सभी को लाभ पहुँच सकता है। परन्तु खाद्यान्न के मूल्य किस प्रकार घटाये जाए? उसने क़राबेग को बताया कि प्रान्तों के नायबों को आदेश देना कि वे खाद्यान्न दिल्ली भेजे। कुछ लोग १०,०००, कुछ ३०,००० मन बोझा ढोने वाले जानवरों पर लाद कर खाद्यान्न भेजेंगे और इस प्रकार उसके द्वारा निर्धारित मूल्यों पर खाद्यान्न बिकेगा।

वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित करने के हेतु सुल्तान ने योजनानुसार कार्य प्रारम्भ किया। (१) उसने दिल्ली में **सराय अदल** नामक मुख्य बाज़ार की स्थापना की। (२) उसने सभी वस्तुओं की पृथक-पृथक सूचियों बनवाकर मूल्य निर्धारित किए। (३) उसने खाद्यान्नों को दिल्ली तक पहुँचाने के लिए प्रशासन की ओर से कारवानियों को नियुक्त किया। (४) उसने मुल्तानी व्यापारियों को विभिन्न प्रदेशों से कपड़ा लाने के लिए २० लाख टण्का तक अग्रिम धन के रूप में दिया। (५) उसने मूल्य नियन्त्रण के लिए एक पृथक विभाग जिसका नाम **रियासत-ए-वजारत-ए-ममालिक वा इहतिसाब** की स्थापना कर वहाँ एक रईस की नियुक्ति की जिसका प्रमुख कर्त्तव्य बेशर्म व्यापारियों को दण्ड देना था और अन्य को सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर वस्तुएँ बेचने के लिए बाध्य करना था। (६) उसने तौल कम कर बेचने वाले व्यापारियों या निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य पर वस्तु बेचने वाले व्यापारियों के विरुद्ध कठोर दण्ड की व्यवस्था की। उसने पत्थर के बाँट के स्थान पर लोहे के बाँट के प्रयोग करने पर बल दिया। (७) बरनी के अनुसार वह प्रत्येक दिन अनाज मण्डी से अनाज के मूल्य मालूम करता था। (८) दिल्ली में अनाज की आपूर्ति को बराबर बनाये रखने के लिए उसने कृषकों से कुल उत्पादन का १/२ भाग खिराज के रूप में, भूमि की नपाई का शुल्क (मसाहत) और उसके ऊपर सरकार द्वारा आकलित अनाज की दर (वफा) के लिए शुल्क के

अतिरिक्त दूध देने वाले पशुओं पर चराई तथा प्रत्येक प्रकार के घर पर गृह कर लेना प्रारम्भ किया। उसने दोआब के कस्बों, जो कि खालसा में थे, से खिराज के रूप में केवल अनाज तथा नव शहर (झाइन) व उसके कस्बों में से करों में से आधे कर अनाज में वसूल करने के लिए आदेश दिये जिससे दिल्ली के अनाज भण्डार भरे रहते थे। (९) उसने दीवान-ए-आला या वित्तीय विभाग को आदेश दिये कि वह विलायतों के अधिकारियों (शाहानों) तथा मुतसर्रिफों (भू-राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों) से लिखित आश्वासन ले कि वे अपनी विलायतों में कृषकों को बाध्य करेंगे कि वे खिराज का भुगतान करके अपने खेतों के किनारे अतिरिक्त अनाज को कारवानियों के हाथों अनाज को सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर बेचेंगे। इस नियम के कारण कृषक अपने घरों को अनाज नहीं ले जा पाते थे तथा कारवानी अनाज उनसे खरीद करके उसे दिल्ली पहुँचाते रहते थे। इस प्रकार से अनाज का मूल्य बराबर इस काल में नियन्त्रित रहा। बरनी ने फतवाए-जहाँदारी में वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित करने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसके विचार में बिना वस्तुओं के मूल्य निर्धारित हुए सेना स्थापित नहीं की जा सकती है। वस्तुओं के कम मूल्य सेना स्थापित करने के लिए आवश्यक है। उसी प्रकार जीवनयापन के साधनों के कम मूल्यों के बिना समृद्धि, भव्यता तथा लोगों में स्थायित्व सम्भव नहीं है। यदि जीवनयापन के साधन मँहगे होंगे तो सर्वसाधारण बर्बाद हो जावेगा। वे घरबार छोड़कर भाग जावेंगे और ऐसे स्थान पर चले जावेंगे जहाँ जीवनयापन के साधन सस्ते हों। अतएव बरनी के अनुसार शासकों के लिए यह अनिवार्य है कि वे सैनिकों को व सर्वसाधारण के उपयोग की वस्तुओं का मूल्य कम करें। बरनी ने उन उपायों का भी उल्लेख किया है जिनके द्वारा मूल्य कम किए जा सकते हैं। अन्त में उसने मूल्य नियन्त्रण करने व जमाखोरी को बन्द करने से लाभ का भी विवरण देते हुए लिखा है कि उससे समाज के सभी वर्गों को ही लाभ नहीं पहुँचता है वरन् राज्य भी लाभान्वित होता है।[१–६]

परिशिष्ट

अनाज	जलालुद्दीन फिरोज़-शाह खिल्जी	अलाउद्दीन खिल्जी	मुहम्मद तुग़लक	फिरोजशाह तुग़लक	सिकन्दर लोदी
गेहूँ	१ जीतल प्रति सेर	७$\frac{1}{2}$ जीतल प्रति मन	१२ जीतल प्रति मन	८ जीतल/१० जीतल	एक बहलोली में १० मन
जौ		४ जीतल प्रति मन		४ जीतल प्रति मन	
धान		५ जीतल प्रति मन	१४ जीतल प्रति मन	इब्नबतूता के अनुसार बंगाल में चाँदी के १ दीनार का २५ रतल (१ मन) चावल था (अर्थात् १३ जीतल प्रति मन) उसी के अनुसार वहाँ हश्तगनी ने २ मन धान तथा १$\frac{1}{4}$ चावल मिलता था। इस प्रकार ५$\frac{1}{2}$ जीतल में १ मन चावल मिलता था।	
उर्द		५ जीतल प्रति मन		४ जीतल प्रति मन	
चना		५ जीतल प्रति मन			
मोठ		३ जीतल प्रति मन			
मिश्री		२$\frac{1}{2}$ जीतल प्रति सेर			
शक्कर तरी		१$\frac{1}{2}$ जीतल प्रति सेर			
शक्कर		१$\frac{1}{2}$ जीतल प्रति सेर			

अनाज	जलालुद्दीन फिरोज-शाह खिल्जी	अलाउद्दीन खिल्जी	मुहम्मद तुग़लक	फिरोजशाह तुग़लक	सिकन्दर लोदी
रोगन सतूर (घी)		१ जीतल १½ सेर			१ बहलोली में ५ सेर
सरसों तेल		१ जीतल ३ सेर			
नमक		५ जीतल प्रति मन			
मनगा				५ तन्का का एक मन	
ज़रत				४ तन्का प्रति मन	
कपड़ा					
खज देहली		१६ तन्का			
खजवौला		६ तन्का			
मशरू शेरी उत्तम		३ तन्का			
बुरद उत्तम		६ जीतल			
बुरद साधारण		३½ जीतल			
अस्तर लाल नागौरी		२४ जीतल			
अस्तर साधारण		१२ जीतल			
शीरी वफ्त उत्तम		५ तन्का			
शीरी वफ्त औसत		३ तन्का			

	जलालुद्दीन फिरोज-शाह खिल्जी	अलाउद्दीन खिल्जी	मुहम्मद तुग़लक	फिरोजशाह तुग़लक	सिकन्दर लोदी
शीरी वफ्त साधारण		२ तन्का			
सिलहटी उत्तम		६ तन्का			
सिलहटी औसत		४ तन्का			
सिलहटी साधारण		२ तन्का			
किपिस (मलमल बारीक)		१ तन्का २० गज			
किपिस साधारण		१ तन्का ४० गज			
चादर		१० जीतल			
ऊन का साधारण लबादा		२ तन्का २० जीतल			
मकीना		३० जीतल			
सूती वस्त्र		१२ जीतल			१ बहलोली का १० गज
घोड़ों तथा अन्य जानवरों का मूल्य					
ऊँट		१ दाँग			
घोड़ा (प्रथम श्रेणी)		१००-१२० तन्का			
घोड़ा (द्वितीय श्रेणी)		८०-९० तन्का			

	जलालुद्दीन फिरोज़-शाह खिल्जी	अलाउद्दीन खिल्जी	मुहम्मद तुग़लक	फिरोज तुग़लक	सिकन्दर लोदी
घोड़ा (तृतीय श्रेणी)		६५-७० तन्का			
टट्टू		१०-२५ तन्का			
चौपाए		४-५ तन्का			
जुफ्ती (जोड़ें) चौपाए		३ तन्का			
गाय (माँस के लिए)		१½ तन्का २ तन्का			
दूध देने वाली भैंस		१०-१२ तन्का			
भैंस (माँस के लिए)		५-६ तन्का			
मोटी ताजी भेड़		१०-१२/१४ जीतल	२ दिरहम		
दास-दासियों का मूल्य					
काम-काज करने वाली दासी		५-१२ तन्का			
रूपवान दासी		२०-३०/४० तन्का	१ सोने की दीनार		
दास		१००-२०० तन्का			२००० तन्का
रूपवान दास		२०-३० तन्का	१/२ सोने की दीनार		
साधारण दास		१०-१५ तन्का			

	जलालुद्दीन फिरोज-शाह खिल्जी	अलाउद्दीन खिल्जी	फिरोज तुग़लक	मुहम्मद तुग़लक	सिकन्दर लोदी
अनुभवहीन दास बच्चे	७-८ तन्का				
मजदूरी					
शिल्पकार		२-३ जीतल प्रतिदिन			
जुलाहा		२ जीतल में एक चादर बुन लेता था।	१ तन्का प्रति लबादा		१ जीतल = १/६४ रुपया १०६ जीतल = १ बहलोली
दरजी		४-६ जीतल एक वस्त्र			१ तन्का = ६४ जीतल
सेवक (चाकर)		१०-१२ तन्के प्रति वर्ष अर्थात् २ जीतल प्रति-दिन			६४ जीतल = १ रुपया

१६

शहरीकरण एवं शहरों की व्यवस्था

शहरों की संरचना के तत्व

शहर की स्थापना के लिए कई बातों की आवश्यकता होती है। इस काल में शहर की स्थापना करते समय इस बात का ध्यान दिया जाता था कि जिस स्थान पर शहर स्थापित किया जाय वहाँ ऐसी नदी हो जिसमें नौकाएँ चल सकें। शहर के समीप किसी न किसी नदी का होना आवश्यक था। सर्वप्रथम, इससे शहर की रक्षा होती थी, दूसरे शहर को पानी मिलता था, तीसरे नदी का पानी गर्म हवाओं को ठण्डा करता था, चौथे उससे माल भेजने और शहर के लिए माल लाने में सुविधा होती थी। पहले की भाँति इस काल में भी मुख्यत: नये शहरों की स्थापना नदी के किनारे ही हुई। इसके अतिरिक्त इसका भी ध्यान रक्खा जाता था कि जहाँ शहर की स्थापना हो वह स्थान जल, थल भागों द्वारा अन्य शहरों, कस्बों व ग्रामों से अवश्य जुड़ा हो, क्योंकि कोई भी शहर आत्म-निर्भर नहीं होता था और दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं की अधिकाधिक वस्तुएँ शहर के बाहर से ही मँगानी पड़ती थी। अनेक वस्तुओं के लिए अन्य शहरों, कस्बों व गाँवों पर निर्भर रहना पड़ता था। पाँचवें, एक समृद्धशाली शहर के लिए उर्वर व धनी स्थान आवश्यक था। उसके आस-पास का प्रदेश भी विशाल तथा धनी होना आवश्यक था। उस क्षेत्र में इतना कृषि उत्पादन अवश्य हो जिससे की शहर की जनता को कठिनाई न उठानी पड़े। छठवें, शहर में तथा उसके निकट शहर की जनता के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए तालाब, जलाशय, झील, कुओं, बावलियों इत्यादि का होना भी नितान्त आवश्यक था। सातवें, शहर में खाद्यान्न की उपयुक्त व्यवस्था का होना भी अत्यन्त आवश्यक था। उसके अभाव में शहर अपने स्वरूप को बनाए नहीं रख सकता था। आठवें, शहर के जीवन के लिए व्यापक ढंग के व्यापारिक लेन-देन के लिए यह आवश्यक था कि वे मुख्य मार्गों पर स्थित हों और उसे वे सभी साधन उपलब्ध हो जिससे कि शहर का निरन्तर विकास ही न हो वरन् उसका पोषण होता रहे। नवें, शहर की आबादी इस प्रकार की हो कि वह शिल्पकारों, कलाकारों, मजदूरों, समाज के अन्य वर्गों जैसे व्यापारियों, सर्राफों इत्यादि को अपने से सम्बद्ध रख सके और उन्हें जीवन-यापन के सभी साधन प्रदान कर सके। शहर में किसी न किसी उद्योग का होना

आवश्यक था। इन सभी स्थितियों को ध्यान में रखकर ही शहरों की स्थापना होती थी या कस्बे का केन्द्र शहर का रूप ग्रहण कर लिया करता था।

शहर नियोजन के सम्बन्ध में प्राचीन सिद्धान्त

भारतीय वास्तुकारों ने शहर के नियोजन के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे। उन्हीं के अनुसार प्राचीन काल में शहरों की स्थापना हुई। व्यास ने महाभारत में लिखा है कि राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए उसका एक दीवार या पहाड़ी से घिरा रहना आवश्यक है।[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है कि एक शहर की परिधि चौकोर होनी चाहिये ताकि सम्पूर्ण शहर ६ सड़कों द्वारा मुहल्लों में विभाजित किया जा सके। उनमें से तीन सड़कें उत्तर से दक्षिण तथा तीन पूर्व से पश्चिम की ओर हो। इस योजना के अनुसार मुख्य मन्दिर शहर के मध्य में हो तथा विभिन्न मुहल्लों में लोगों के निवास-स्थान पृथक-पृथक हों।[2] शहर कहाँ स्थापित हो, इस सम्बन्ध में अपराजित प्रेक्ष्य में यह सुझाव दिया गया है कि शहर दो नदियों के संगम या नदी के किनारे हो, जंगल या पहाड़ी के समीप हो या ऊँचे स्थान पर हो। अन्य विचारकों ने सुझाव दिया कि शहर वहीं स्थापित किया जाय जहाँ कि मिट्टी बलुई व पथरीली न हो। इस प्रकार से इन्हीं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर प्राचीन शहरों की स्थापना हुई। शहर के नियोजन के सिद्धान्तों पर मण्डन, जो कि महाराणा कुम्भा का सुप्रसिद्ध वास्तुकार था, ने राजवल्लभ में प्रतिपादन किया। वास्तुकला पर राजवल्लभ महान् ग्रन्थ है। मण्डन ने सुझाव दिया कि शासक को महल का निर्माण या तो शहर के केन्द्र में अथवा किसी उच्च स्थान पर बनवाना चाहिए। उसके अनुसार एक आदर्श महल में पुरुष व महिलाओं के लिए कक्ष सभागृह हो, नृत्य गृह, कोषागार, भण्डार, रसोई घर, भोजन गृह, अस्त्रशाला इत्यादि सुनिश्चित स्थान पर होना आवश्यक है। कोषागार, वस्त्रशाला तथा मंदिर महल के बाँए ओर, अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए कक्ष, लकड़ी भण्डार, पानी की टंकी, अस्त्र-शस्त्र महल के दाहिनी ओर होनी चाहिए। इसी प्रकार उसने युद्ध सभा, नृत्यगृह, पूजागृह, शासक व उसके सम्बन्धियों के लिए निवास-स्थान शहर के मध्य निर्मित किए जाने का सुझाव दिया। उसके विचार में सम्पूर्ण महल के लिए एक नियोजित दुर्ग, जिसके चारों ओर गोलार्द्ध मीनारें तथा बुर्ज होना चाहिये। उसके अनुसार इस दुर्ग की आधार से ऊपर तथा खड़े हुए भव्य दुर्ग की छवि इस भाँति होनी चाहिए कि जिससे दुर्ग की सुदृढ़ता एवं उसकी भव्यता प्रदर्शित हो। शासक व उसके सम्बन्धियों के आवास-स्थान के उपरान्त मण्डन ने बाजार तथा मुहल्लों के नियोजन की ओर विशेष ध्यान दिया। उसके विचार में शहर के मुख्य मार्ग पर बजाजों, अस्त्र-शस्त्र विक्रेताओं, आभूषण विक्रेताओं, तमोलियों, फूल व मालाएँ बेचने वालों की दूकानें होनी चाहिए। मार्ग इस प्रकार से हो कि वे सम्पूर्ण शहर को चार वर्गों में विभाजित कर दे। उसने सुझाव दिया कि विभिन्न वर्गों एवं समुदायों के लोगों को शहर के विभिन्न मुहल्लों में निवास-स्थान बनाने दिया जाय।

उसने शहर का पूर्वी भाग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को तथा दक्षिणी भाग शूद्रों के लिए निर्धारित किया। वैश्यों को शहर के मध्य में बसने का उसने सुझाव दिया। उसने रंगरेजों तथा धोबियों के लिए शहर के उत्तर-पश्चिम, आतिशवाजी बनाने वालों के लिए दक्षिण-पूर्व में, अछूतों, वेश्याओं तथा तुर्कों के लिए दक्षिण-पश्चिम में निवास करने के लिए स्थान निर्धारित किए। इस प्रकार की व्यवस्था का सुझाव उसने कार्य-कुशलता एवं वर्ण-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए दिया। उसने यह भी लिखा है कि ब्राह्मण व शिव तथा चामुण्ड के मन्दिर शहर के दक्षिण में हों। बड़े शहर में बावलियाँ, पवड़ें, जलाशय, ६ तालाब हों, बावलियों में ४ प्रवेश-द्वार हों, ४ नक्काशी किए हुए बरान्दे हों तथा एक छज्जा केन्द्र में हो। मण्डन ने उद्यान को शहर का एक भाग माना है और उसने सुझाव दिया है कि शहर के समीप ऐसा उद्यान होना चाहिये जिसमें फल, फूल, लताओं के पेड़ हों, जिससे कि उद्यान सुन्दर लगे। उसमें बैठने के लिए चौकियाँ हों तथा मण्डप हो, झरने तथा तालाब भी हों। इस प्रकार मण्डन ने शहर नियोजन के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

शहर नियोजन

उत्तरी भारत में दिल्ली सल्तनत की जब १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्थापना हुई तो उस समय तीर्थ-स्थानों वाले प्राचीन शहर, राजधानियाँ तथा अनेक अन्य ऐसे शहर थे जो कि प्रशासनिक व व्यापारिक केन्द्र थे। इस प्रकार से शहरों की तीन श्रेणियाँ थीं। सल्तनत काल में तीर्थ-स्थान वाले प्राचीन शहरों के स्वरूप में किसी भी प्रकार का विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। अन्य दो प्रकार की श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाले शहरों में मुसलमानों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बिना पुराने शहर के स्वरूप को बिगाड़ते हुए अपनी सुविधानुसार कुछ मूलभूत परिवर्तन अवश्य किए। यहाँ बसने वाले मुसलमानों के सम्मुख मुसलमान संसार के भव्य शहरों की छवि थी। शहर के नियोजन के सम्बन्ध में मुसलमान वास्तुकारों के शहर नियोजन सिद्धान्त को तथा प्राचीन भारतीय वास्तुकला एवं शहर नियोजन सिद्धान्त थे। इब्न खल्दून के मुकद्दमें में शहर नियोजन के सिद्धान्तों का विवरण बहुत अंश तक भारतीय शहर नियोजन सिद्धान्त के अनुरूप है। ऐसा ज्ञात होता है मुसलमान हिन्दू वास्तुकारों ने शहर नियोजन के हिन्दू-मुसलमान सिद्धान्तों का समन्वीकरण किया।

प्राचीन शहरों में परिवर्तन

सल्तनत की राजधानी के अतिरिक्त इस काल में अनेक शहर ऐसे थे, जो कि प्राचीनकाल से चले आ रहे थे। प्रयाग, काशी, मथुरा, हरिद्वार, बदायूँ, सम्भल, कन्नौज तथा अन्य प्राचीन शहरों में जहाँ कि मुसलमान बसे वहाँ उन्होंने अपने लिए मस्जिदें, मकबरे, कब्रिस्तान बना लिए। इन प्राचीन शहरों में दो प्रकार के शहर थे, प्रथम वे जो कि चाहारदीवारी युक्त थे तथा वे जो कि चाहारदीवारी के बिना थे।

इन शहरों के नियोजन में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। परन्तु तीसरी श्रेणी के शहरों जिनकी स्थापना मुसलमानों ने की उनमें कई समान बातें देखने को मिलती हैं। जैसे कि शहरों का मुख्य मार्गों या नदियों के किनारे ऊँचे स्थान पर बसाया जाना, उन शहरों में मस्जिद, मदरसों, हम्माम, बाजारों तथा अन्य सार्वजनिक भवनों का निर्मित होना, उद्यान, व्यवसाय या जाति पर आधारित मुहल्ले, शहर का चाहारदीवारी से घिरा होना, चाहारदीवारी में प्रवेश व निकास-द्वारों का होना तथा उस शहर में या तो किसी उद्योग का होना या निकटवर्ती क्षेत्रों से वहाँ विभिन्न वस्तुओं का वितरण के लिए पहुँचना इत्यादि। पूर्व मध्यकालीन भारत में शहरों की सुरक्षा उनके चारों ओर दीवार बनाकर की जाती थी ताकि बाह्य या आन्तरिक आक्रमण के समय वे सुरक्षित रह सकें। इन शहरों में सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था होती थी। उनमें विभिन्न सरकारी कार्यालय, कारखाने, बावर्ची खाने, कर्मचारियों के रहने के लिए निवास-स्थान, पानी की उपयुक्त व्यवस्था, खाद्यान्नों के भण्डार, बाजार, मस्जिद, मकबरे, मदरसे, खानकाहे, दायरे या दरगाहें होती थीं। इन शहरों में जो कि प्रशासनिक केन्द्र होते थे, वहाँ दुर्ग होता था। इस दुर्ग में सरकारी अधिकारी व अमीर नहीं रहते थे। वे दुर्ग के समीप अपनी हवेलियों व महलों को बनवा लेते थे।

शहरी क्रान्ति

इस काल में शहरों का उद्‌भव आर्थिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक कारणों से हुआ और जो नवीन शहर स्थापित भी किये गये वे भी इन्हीं कारणों से स्थापित किये गये। वास्तव में दिल्ली सल्तनत की स्थापना भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। तुर्क आक्रमणकारियों के भारत में आगमन से अनेक परिवर्तन हुए। डी० डी० कोसाम्बी के अनुसार उनके आने से भारतीय सामन्तवाद में जो तत्व पहले से थे वे और प्रभावशाली हो गये।[४] प्रो० लल्लन जी गोपाल के अनुसार उनके आगमन से यहाँ दरिद्रता बढ़ी।[५] प्रो० के० एस० लाल के विचार में दिल्ली के सुल्तानों ने लोगों का वध व नरसंहार करवा के १/३ जनसंख्या घटा दी।[६] प्रो० मुहम्मद हबीब के अनुसार दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त यहाँ अनेक प्रकार के आर्थिक परिवर्तन हुए। उनके विचार में नवीन प्रशासन में यहाँ की सामाजिक प्रवृत्तियों को स्वतन्त्र कर दिया और ऐसी आर्थिक व्यवस्था की संरचना की जो कि पूर्व की व्यवस्था से अत्यधिक उत्तम थी।[७] उनके अनुसार इस काल में शहरों की संख्या में वृद्धि हुई, उनका विस्तार हुआ, ग्रामीण सम्बन्धों में परिवर्तन हुए और इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप नये शासक वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ। नवीन शासक वर्ग शिल्पकारों व वास्तुकारों की जाति में रुचि नहीं रखता था। उसे केवल उनके उत्पादन और कला-कौशल में रुचि थी। इससे पूर्व शिल्पकार व वास्तुकार जाति के बन्धनों में जकड़े हुए थे, जिसके कारण अति व्यवसायिक गतिशीलता सम्भव न थी और उसमें अनेक रुकावटें थी। दिल्ली के सुल्तानों व शासक वर्ग ने इन वर्गों को

जाति-पाँति के बन्धनों से मुक्त कर दिया, जिसके कारण शहरी अर्थव्यवस्था को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई। सर्वप्रथम शहरों की संख्या में वृद्धि हुई तथा पुराने शहरों का विस्तार हुआ। दूसरे, कुटीर उद्योगों में वृद्धि हुई, तीसरे, व्यापार में उन्नति हुई, चौथे, जनसंख्या में वृद्धि हुई और पाँचवें, कृषि में अत्यधिक वृद्धि हुई। नवीन अर्थव्यवस्था से यह सभी बातें जुड़ी हुई थीं। इस काल में इस्लामी संसार के विभिन्न भागों से लोगों के प्रवसन के कारण भारत में जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। इस प्रवसित जनसंख्या का फैलाव मुख्यतः पुराने शहरों में हुआ, जहाँ वे स्थायी रूप से बस गये और वहाँ उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार नये व्यवसाय अपना लिए। नये-नये व्यवसायों के लिए सुल्तानों, अमीरों तथा मध्यवर्ग को जब अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने विविध ढंग से यहाँ लोगों को दास बनाना प्रारम्भ किया जिससे विभिन्न व्यवसायों में श्रम की आपूर्ति होती रही। फलतः विभिन्न उद्योगों का शहरों में विकास हुआ। इस औद्योगिक विकास के साथ उत्पादक वर्ग व व्यापारियों के विभिन्न समुदायों का उत्थान हुआ। शहर की जनसंख्या में नवीन तत्वों ने प्रवेश किया, जिससे जनसंख्या की प्रवृत्ति बदल गई और प्रत्येक शहर का विस्तार उसके उद्योगों व व्यवसायों के कारण होने लगा। नई तकनीक व व्यवसायिक कुशलता के कारण उद्योगों और व्यवसायों की प्रगति हुई। कालान्तर में असंख्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कारण बड़े-बड़े प्रशासनिक केन्द्र छोटे दिखाई देने लगे और उनका विस्तार करना स्वाभाविक हो गया। बड़े-बड़े शहरों की जनसंख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो गई कि या तो एक ही शहर में नये शहर बसाने पड़े या नवीन शहरों की स्थापना करनी पड़ी।

मध्यकालीन भारत में शहरों का उद्भव एवं विकास सूफी सन्तों की खानकाहों, दायरों व दरगाहों के कारण भी हुआ। उत्तरी भारत का कोई ऐसा शहर नहीं था जहाँ कि इन सन्तों की खानकाहें, दायरे या दरगाहें न हों। इब्नबतूता ने सिविस्तान में शेख उसमान मरन्दी के मकबरे पर,[८] भक्कर के नहर के किनारे,[९] अजोधन में शेख फरीदउद्दीन,[१०] दिल्ली में शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी,[११] अमरोहा,[१२] ब्रजपुरा[१३] इत्यादि स्थानों में खानकाहें देखी। बरनी ने सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के शासनकाल के सम्बन्ध में लिखा है कि दिल्ली में सीदी मौला ने अपनी खानकाह बनवायी, जहाँ वह हजारों व्यक्तियों को मुफ्त में भोजन कराता था। जो भी व्यक्ति उसकी खानकाह में पहुँचता था उसे भोजन कराया जाता था। इस खानकाह में हजारों मन मैदा, ५०० जानवरों का मांस, २००-३०० मन शक्कर, १००-२०० मन मिश्री प्रतिदिन खरीदी जाती थी और खानकाह के सामने बराबर भीड़ जमा रहती थी।[१४] निःसन्देह इन खानकाहों के कारण विभिन्न व्यवसायों के लोग व्यवसायों में लगे रहे और व्यापारियों को बाजार मिले। यही स्थिति दायरों व दरगाहों की थी जहाँ कि आगन्तुकों तथा दार्शनिकों की बराबर भीड़ जमा रहती थी।

शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार दिल्ली में ही केवल २००० खानकाहें थीं।[१५] बरनी ने दिल्ली में शेख निजामुद्दीन औलिया की खानकाह[१६] शेख जलालुद्दीन की खानकाह,[१७] शेख फरीदउद्दीन तथा शेख बहाउद्दीन की खानकाहों का उल्लेख किया है।[१८] निजामुद्दीन अहमद के अनुसार फिरोजशाह तुग़लक ने २० खानकाहों की स्थापना की।[१९] आइन-उल-मुल्क ने नेहरवाला में सैय्यद मुहम्मद तथा कोदिया की खानकाहों का उल्लेख किया है।[२०] इसी भाँति अनेक शहरों में दायरे तथा दरगाहें थीं, जिनके कारण शहरों में चहल-पहल रहती थी।

दिल्ली

१३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू राजधानियों का क्या स्वरूप था? इस सम्बन्ध में साक्ष्य उपलब्ध है। उनसे अनेक नियोजन की अधिक जानकारी नहीं मिलती है। तुर्की सत्ता की स्थापना से पूर्व इन्द्रपत या इन्द्रप्रस्थ पृथ्वीराज चौहान या रायपिथौरा की राजधानी थी। तराइन के द्वितीय युद्ध में विजयी होने पर मुहम्मद ग़ौरी ने भारत में विजित प्रदेशों की देख-रेख के लिए कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया। कालान्तर में कुतुबुद्दीन ऐबक ने अन्तिम चौहान शासक को इन्द्रप्रस्थ से भगाकर उसे अधिकार में ले लिया। इस समय दिल्ली के दक्षिणी भाग में अनेक खण्डहरों के मध्य एक छोटा-सा दुर्ग जिसे क़िला-ए-रायपिथौरा कहते थे, बना हुआ था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसी दुर्ग के चारों ओर का क्षेत्र सल्तनत की राजधानी के लिए चुना। यहाँ उसने कुतुबमीनार बनवाई, उसके पास कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद बनवाई और इस मस्जिद के उत्तर में पास ही एक नया दुर्ग 'हिसार-ए-नौ' बनवाया।[२१] इस सम्पूर्ण क्षेत्र को उसने एक चहारदीवारी से घेर दिया और इस प्रकार यह क्षेत्र लालकोट कहलाने लगा। उसने मस्जिद के समीप मुहम्मद गौरी के नाम पर मदरसा-ए-मुइज्जी की स्थापना की। तदुपरान्त यह क्षेत्र हज़रत-ए-देहली या देहली शहर कहा जाने लगा। नव स्थापित तुर्की साम्राज्य की यह राजधानी बन गई। शहर के रूप में उसका क्या स्वरूप था, उसका विवरण यद्यपि किसी भी समकालीन इतिहासकार ने नहीं दिया किन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों की मुख्य आवश्यकताओं, मस्जिद, बड़े-बड़े नये प्रासाद एवं महल तथा स्थायी बाजार तथा कब्रिस्तान की ओर विशेष ध्यान रक्खा गया होगा। १२२९ ई० की घटनाओं के सन्दर्भ में मिनहाज उस सिराज यह लिखता है कि सोमवार २२ रबी उल अव्वल ६२६ हि०/१८ फरवरी १२२९ को खलीफा के दरबार मे राजदूतों के आगमन पर दिल्ली शहर को सजाया गया,[२२] से ज्ञात होता है कि इन २३ वर्षों में इन्द्रप्रस्थ की भूमि पर एक विशाल शहर की स्थापना हो चुकी थी और शहर के मध्य में एक विशाल दुर्ग बन चुका था, जिसमें शासक के परिवार के रहने की समुचित व्यवस्था थी। इस नवीन शहर में सड़कें इतनी चौड़ी बनाई गई थीं कि सुल्तान हाथी पर आसानी से अपने

परिचरों के साथ निकल सकता था। इस शहर में एक विशाल मस्जिद, मुइज्जी मदरसा पहले से ही थी। मदरसे के बाहरी द्वार के समीप विविध वस्तुओं की दुकानें, कपड़े का बाजार (बाजार-ए-बज्जान) स्थापित किया गया। लगभग इसी समय शहर में अमीरों ने अपने निवास स्थान भी बनाये होंगे, जिसके कारण शहर में चहल-पहल बढ़ गई। ऐसा प्रतीत होता है कि देहली शहर में पानी की कमी के कारण उसका समुचित ढंग से विकास नहीं हो पाया। इस समय शहर से यमुना ६ मील दूर थी। इस क्षेत्र के पहाड़ी होने के कारण यहाँ कुएँ भी नहीं खुदवाये जा सकते थे। पानी की समस्या को दूर करने के लिए सुल्तान इल्तुतमिश ने हौज़-ए-सुल्तानी या हौज-ए-शम्सी नामक बड़ा तालाब बनवाया जिससे कि दिल्ली के निवासी पानी प्राप्त कर लिया करते थे।[२३]

किलोखड़ी

सुल्तान इल्तुतमिश के शासनकाल (१२१०-१२३६) के मध्य दिल्ली की जनसंख्या में इतनी वृद्धि हो गयी कि हौज-ए-शम्सी भी उसके लिए छोटा पड़ गया। धीरे-धीरे लोगों ने जमुना की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। बलबन के समय जमुना के किनारे ग्यासपुर नामक बस्ती बन गई। यह बस्ती कुतुबमीनार से ७ मील दूर थी। ऐसा प्रतीत होता है कि बलबन के शासनकाल में दिल्ली शहर के चारों ओर दीवार खड़ी की गई और पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में द्वार बनाए गए। इस शहर का मुख्य द्वार बदायूं द्वार था। बल्बन के पौत्र सुल्तान मुइज्जुद्दीन कैकुबाद ने दिल्ली शहर में निवास करना छोड़ दिया और जमुना के किनारे किलोखड़ी में एक अद्वितीय महल तथा उपवन का निर्माण करवाया। यह शहर ग्यासपुर से १/२ मील से कम दूरी पर था। दिल्ली के पुराने शहर की तुलना में किलोखड़ी में अनेक सुविधाएँ थीं, क्योंकि यः स्थान जमुना के किनारे था, अतएव दिल्ली की बढ़ती हुई आबादी को यहाँ से जल सुलभतः मिल सकता था तथा आस-पास का क्षेत्र इस प्रकार था जो कि नवीन शहर की स्थापना की दृष्टि से उपयुक्त था। बरनी ने लिखा है कि सुल्तान कैकुबाद के समस्त मलिक, अमीर, विश्वासपात्र, प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा कलाकारों ने राजभवन के निकट अपने घर बनवा लिए। थोड़े ही प्रयास से किलोखड़ी पूर्णतः आबाद हो गया।[२४] इस शहर को चारों ओर से दीवार से घेर दिया गया और उसमें १२-१३ द्वार बना दिये गये। द्वारों का इतनी बड़ी संख्या में होना शहर के विस्तार व उसकी जनसंख्या इंगित करता है। किलोखड़ी शहर में स्थित राजभवन में अन्तःपुर की भी व्यवस्था थी। उसके अतिरिक्त बरनी की तारीख-ए-फिरोजशाही से ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक मधुशालाएँ एवं मस्जिदें भी थीं तथा समृद्धिशाली व्यक्तियों के घरों में अटारियाँ भी बनी हुई थीं। इस शहर के अवशेष इतनी जल्दी लुप्त हो गये कि नियोजन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

किलोखड़ी की जनता

शहर की वनावट में जो तत्व होने चाहिये वही सब तत्व हजरत-ए-देहली तथा किलोखड़ी में उपस्थित थे। यहाँ विदेशों से आए हुए सेनानायक, प्रशासक, कवि, साहित्यकार, दार्शनिक, इतिहासकार, ज्योतिषी, वैद्य, उलमा, सूफी संत, व्यापारी तथा अन्य विभिन्न व्यवसायों वाले हजारों व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त यहाँ संगीतज्ञ, गायक व नर्तकियाँ, भाँड़, विदूषक, वहुरूपिया, स्वर्णकार, चित्रकार इत्यादि के अतिरिक्त शासक वर्ग के अधिकारी भी थे। अन्य शब्दों में, शहर की परिभाषा के अनुसार यहाँ तलवार व कलम धारण करने वाले लोग, धार्मिक वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग के लोग थे, जिनके विभिन्न व्यवसाथ, आर्थिक हित और असमानताएँ होते हुए भी पारस्परिक निर्भरता थी। दिल्ली शहर की जनता की यह प्रकृति सदैव ज्यों की त्यों वनी रही तथा वह समीपवर्ती प्रदेश के अतिरिक्त उत्पादन पर वरावर निर्भर रहा। अन्ततोगत्वा राजधानी के रूप में वह प्रशासन का केन्द्र तो वना ही रहा, किन्तु विभिन्न वर्गों एवं समुदायों के वहाँ रहने तथा उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण वह एक व्यापारिक केन्द्र भी वन गया।

अलाई काल की नयी राजधानी

इल्वारी काल के समाप्त होते ही किलोखड़ी को नया रूप दिया गया। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी किलोखड़ी के राजभवन में सिंहासनारूढ़ हुआ। वरनी ने लिखा है कि जव सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी गद्दी पर वैठा तो उस समय दिल्ली में अनेक गणमान्य व्यक्ति, सद्र, आलिम और विभिन्न सम्प्रदायों व समुदायों के लोग थे। सुल्तान के सिंहासनारोहण के उपरान्त वे दिल्ली से किलोखड़ी उसका अभिवादन करने के लिए प्रत्येक दिन आते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि किलोखड़ी राजधानी वनाने के उपरान्त भी पुरानी दिल्ली आवाद रही।[२५] नये सुल्तान ने दिवंगत सुल्तान मुइज़ुद्दीन कैकुवाद का राजभवन पूर्ण करवाया, उसे वेल-वूटों से सजवाया, जमुना के तट पर उपवन लगवाया और अपने मलिकों व अमीरों को आदेश दिये कि वे भी किलोखड़ी में निवास करना प्रारम्भ करें और अपने लिये घर वनवा लें। किलोखड़ी का नाम शहर-ए-नव रखा गया। वहाँ एक विशाल वाजार की स्थापना की गई और शहर के चारों ओर पत्थर की ऊँची चहारदीवारी सुरक्षा की दृष्टि को ध्यान में रखकर वनवाई। उसने शहर के विभिन्न मुहल्लों में मलिकों व अमीरों तथा शहर वासियों को नियुक्त किया। वरनी ने लिखा है कि शहरवासियों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों को यद्यपि वहाँ अपने घरों को वनवाने में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा किन्तु फिर भी राजभवन के चारों ओर घर व वाजार वन गए। मण्डन के वस्तुशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार शासक का राजभवन शहर के मध्य होना चाहिये और उसके आस-पास अधिकारियों, धार्मिक व्यक्तियों तथा सर्वसाधारण के निवास-स्थान होना चाहिए। इस प्रकार हिन्दू शिल्पकार के सिद्धान्त को ध्यान में

रखकर "शहर ए-नव" का निर्माण हुआ। यहाँ एक दुर्ग भी बनवाया गया। यह शहर इन्द्रपत गाँव तक फैला हुआ था। उसमें ग्यासपुर, इन्द्रपत व वाकुला, जहाँ कि मुगलों ने अपनी बस्तियाँ बना ली थी, भी सम्मलित थे। मुग़लों या मंगोलों की बस्तियाँ मुग़लपुरा के नाम से प्रसिद्ध थी। इस शहर-ए-नव के वस जाने से भी दिल्ली के पुराने शहर पर कोई भी प्रभाव न पड़ा। वहाँ के दो राजभवन, कुश्क-ए-लाल व कुश्क-ए- सब्ज पूर्वतः बने रहे। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी की मृत्यु के उपरान्त उसकी विधवा पत्नी कुश्क-ए-सब्ज में ही निवास करने लगी। अलाउद्दीन खिल्जी ने जब जमुना पार करके पुरानी दिल्ली में प्रवेश किया तो वह कुश्क-ए-लाल में ही सिंहासन पर बैठा। इस समय तक दिल्ली में अनेक मुहल्लों, बाजारों तथा सरायों की स्थापना हो चुकी थी। जलाली काल में कुतुबमीनार के पथरीले व पहाड़ी क्षेत्र को लोगों ने छोड़ कर जमुना के किनारे निवास-स्थान बनाकर रहना पसन्द किया। अतएव शहर का विकास नदी के किनारे-किनारे ही होता रहा। सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के शासनकाल के उपरान्त यकायक परिस्थिति बदल गई। केन्द्र के नेतृत्व में अलाई एवं चागताई कबायली जातियाँ एक हो गई और उन्होंने भारतवर्ष को अपने आक्रमण का लक्ष्य बना लिया। मंगोलों के भयावह आक्रमण कुतुलुग ख्वाजा तथा तारगी के अन्तर्गत हुए।[२६]

सीरी

मंगोल तारगी के आक्रमण का भय समाप्त होते ही सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने पुरानी दिल्ली शहर के चारों ओर चहारदीवारी का निर्माण करवाया।[२७] सीरी के मैदान में एक महल निर्मित करवाया गया और अलाउद्दीन ने सीरी में अपनी राजधानी स्थापित की। उसने सीरी में भवन, मस्जिदें व दुर्ग बनवाया। इन इमारतों का निर्माण करने के लिए उसके पास ७०,००० शिल्पकार थे। इस नवीन शहर का नाम अलाउद्दीन ने दारुल-खलीफा रखा। उसने यह शहर पूर्ण रूप से आबाद किया। यह नवीन शहर सीरी दिल्ली के पुराने शहर के समीप उत्तर-पूर्व में समतल मैदान में बसाया गया था। प्रारम्भ में इस शहर को मश्कराबाद कहा जाता था और यह स्थान कुतुब व दिल्ली के किलोखड़ी के मध्य था। इस शहर को बसाते समय अलाउद्दीन का ध्यान बराबर कुतुब दिल्ली की ओर ही लगा रहा। क्योंकि इसी काल में उसने जामा मस्जिद की मरम्मत कराके उसे विशाल मस्जिद बना दिया था। दूसरे इल्तुतमिश के समय से अब तक दिल्ली की आबादी इतनी बढ़ गई थी कि जलालुद्दीन खिल्जी द्वारा स्थापित शहर-ए-नव भी उसके लिए छोटा पड़ गया था। सीरी के निर्माण के उपरान्त वह एक विशाल व्यापारिक केन्द्र बन गया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने आदेश दिया कि सीरी शहर की चहारदीवारी के अन्दर बदायूँ दरवाजे के पास व कुश्क-ए-सब्ज की ओर खुले मैदान में कपड़े का बाजार स्थापित किया जाय। इसी भाँति अनाज का बाजार माण्डवी दरवाजे के समीप बनाया

गया। सीरी के निवासियों को पानी देने के लिए अलाउद्दीन ने हौज-ए-शम्सी को पुनः खुदवाया। उसमें से कीचड़ व मिट्टी निकलवाई और उसके मध्य उसने वहाँ एक चबूतरा बनवाया। उसने कुतुब से दो मील उत्तर की ओर हौज-ए-अलाई या हौज-ए-खास बनवाया। इस प्रकार से सीरी शहर कुतुब-ए-दिल्ली का विकसित भाग था।

यह कहना कठिन है कि सीरी शहर का नियोजन किस प्रकार का था। अनुमान यह है कि यह शहर भी भारतीय वास्तु-शिल्प में शहर नियोजन के सिद्धान्तों के अनुरूप बसाया गया होगा। राजभवन में हज़ार सुतून नामक महल का उल्लेख मिलता है जो कि अन्तःपुर से लगा हुआ था। शेष शहर की संरचना की कोई अन्य जानकारी नहीं मिलती है। अमीर खुसरो ने नुहसिपहर में लिखा है कि दिल्ली के समान कोई नगर नहीं, दिल्ली की तुलना खिता, खुरासान, तिरमीज, तबरेज़, बुखारा, ख्वारिज्म भी नहीं कर सकते।[२८] बरनी ने राजधानी परिवर्तन के सम्बन्ध में लिखा है कि दिल्ली १६० या १७० वर्षों में इस प्रकार आबाद हुई कि वह एक बहुत बड़ा शहर बन गई और वह बगदाद व मिस्र के समान हो गई थी।[२९]

तुग़लकाबाद

दिल्ली की आबादी को देखते हुए सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक को एक नये शहर की स्थापना करनी पड़ी। यह नवीन शहर कुतुब-ए-दिल्ली से दो किलोमीटर दूर था। उसने किले के नमूने पर एक शहर तुग़लकाबाद की स्थापना की। यह शहर ४ मील के घेरे में था और उसके चारों ओर उसकी मोटी चहरदीवारी में जगह-जगह बुर्ज बने थे तथा उसमें ५२ द्वार थे। इसी शहर के अन्दर एक दुर्ग था, जिसमें शाही परिवार के सदस्यों के निवास-स्थान, शाही महल, जनाना सभागृह तथा अनेक कक्ष थे। शहर की चाहरदीवारी के अन्दर शहर के नियोजन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है। सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक के उत्तराधिकारी सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने अपने पिता द्वारा बनाये गये एक तालाब के पास अदिलाबाद का दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग तुग़लकाबाद से एक सेतु द्वारा जुड़ा था। वास्तव में सुल्तान ग्यासुद्दीन तुग़लक ने तुग़लकाबाद को अपने तथा अपने अनुचरों व सैनिकों के लिए बनाया था। उसकी कभी भी यह इच्छा नहीं थी कि पुरानी देहली के स्थान पर वह एक नवीन प्रशासनिक केन्द्र या राजधानी की स्थापना करें। इस प्रकार पुरानी दिल्ली बढ़ती ही गई।

जहाँपनाह

मुहम्मद तुग़लक ने कुतुब दिल्ली तथा सीरी के शहरों को एक चाहरदीवारी से घेर देने की योजना बनाई और जब दीवार बन कर तैयार हो गई तो दिल्ली में चौथे शहर को 'जहाँपनाह' का नाम दिया गया। जहाँपनाह की मुख्य विशेषता उसकी चौड़ी मोटी चाहरदीवारी व झील के ऊपर सतपुला थे। इस शहर की संचरना के सम्बन्ध में

भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। इब्नबतूता के अनुसार इस शहर की चाहारदीवारी ११ गज मोटी थी, उसमें कोठरियों व घर बने हुए थे जिसमें द्वारपाल रहते थे तथा जिनमें अनाज व सैन्य सामान रखने के लिए भण्डार बने हुए थे।[३१] इस चाहारदीवारी में बदायूं दरवाजा सबसे बड़ा था। माण्डवी दरवाज़े में अनाज के बाजार थे। इन दरवाजों के अतिरिक्त उनमें गुलदरवाजा, शाह दरवाजा, पालम दरवाजा, कमाल दरवाजा, गज़नी दरवाज़ा, बाजालसा दरवाजा थे। ईदगाह शहर के अन्दर था। इसी भाँति कब्रिस्तान शहर के बाहर था। इब्नबतूता के अनुसार इस नगर में २८ द्वार थे। इस नवीन शहर **जहाँपनाह** के लिए हौज़-ए-खास से जो कि हौज़-ए-शम्सी से बड़ा था, पानी आता था, इस हौज के किनारे पर ४० गुम्बद थे और उनके चारों ओर गायकों के घर थे। इस कारण वह मुहल्ला तारावाद (संगीत-नगर) कहलाता था। उस मुहल्ले में एक बड़ा बाज़ार, जामा मस्जिद, अन्य मस्जिदें तथा गाने-बजाने वाली स्त्रियों के मुहल्ले थे।[३१] शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार यह शहर ४० मील के क्षेत्र में फैला हुआ था। उसमें २१ नगर थे। उसके तीन ओर सीधी पंक्तियों में उद्यान थे जोकि १२ मील तक फैले हुए थे। पश्चिम में पहाड़ियाँ थीं। इस शहर में १००० मदरसे, ७० चिकित्सालय, २००० खानकाहें तथा सराएँ, विशाल भव्य बाजार, अगणित स्नानागार तथा जामा मस्जिद थे। **जहाँपनाह** में केवल सुल्तान के महल व भवन थे जिनमें उसकी स्त्रियाँ, कनीज़ें, ख्वाजासरा, नौकर व दास निवास करते थे। वहाँ कोई भी अमीर या खान नहीं रहता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश जनता दिल्ली में ही रहती थी। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार सुल्तान के पास २०,००० तुर्क दास, १०००० ख्वाजासरा, १००० सरजानदार, १००० बसमफदार, २०००० रक्षक थे। इस प्रकार से कुल मिलाकर इन व्यक्तियों की संख्या ५२,००० थी। निःसन्देह सुल्तान के अस्तबल, कारखाने तथा इन व्यक्तियों के निवास-स्थान जहाँपनाह में ही रहे होंगे तथा शेष जनता पुरानी दिल्ली में ही निवास करती रही होंगी।[३२]

मुसलमान देशों में जिस प्रकार मुसलमानों ने शहरों का नियोजन किया वैसा ही नियोजन उन्होंने मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में **जहाँपनाह** की स्थापना करते समय किया। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी ने लिखा है कि उसने शेख मुबारक से सुना था कि जब वह हिन्दुस्तान से वापस आया तो उस समय तक दिल्ली की इमारतें पूरी नहीं हुई थीं चूंकि वहाँ ऊँची-ऊँची इमारतें बन रही थीं। दिल्ली का क्षेत्र दूर तक फैला हुआ था। सुल्तान ने जहाँपनाह के इस भाँति विभाजित किया समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों के लिए वहाँ निवास-स्थान बनाये जा सके। उसने सैनिकों, वज़ीरों, सचिवों, न्यायाधीशों, विद्वानों, शेख व फकीरों, व्यापारियों, शिल्पकारों के लिए पृथक-पृथक मुहल्लों की स्थापना की तथा प्रत्येक मुहल्ले में प्रत्येक वर्ग की आवश्यकताओं के अनुसार मस्ज़िदें, मीनारों, बाज़ार, हम्माम, बावर्ची खानों की व्यवस्था की। ताकि एक मुहल्ले के निवासी क्रय-विक्रय या वस्तुओं के आदान-प्रदान करने के लिए अन्य मुहल्लों पर

निर्भर न रहें। इस प्रकार प्रत्येक मुहल्ले को आत्मनिर्भर बनाने की चेष्टा की गई। प्रत्येक मुहल्ला दूसरे मुहल्ले से पृथक रहा और वह किसी भी वस्तु के लिए अन्य मुहल्ले पर निर्भर न था।[३३]

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल में जब दिल्ली के अधिकांश लोगों को दौलताबाद जाना पड़ा, तो बरनी के अनुसार दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों से अनेक लोग जहाँपनाह आये और वे उन लोगों के निवास-स्थानों में रहने लगे। कालान्तर में दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण दिल्ली की आबादी कम हो गई। अनेक लोग सुल्तान के साथ स्वर्गद्वारी में रहने लगे। इसके अतिरिक्त १३४० ई० में विद्रोहों के कारण भी दिल्ली की आबादी कम हो गई। सुल्तान फिरोज़शाह तुगलक ने स्वयं लिखा है कि लोगों के उस पार बाँध बनाने के कारण हौज़-ए-शर्म्सी में गिरने वाले नालों का पानी गिरना बन्द हो गया, हौज़ अलाई भी सूख गया और शहर के लोग वहाँ खेती करने लगे। उन्होंने वहाँ कुयें खोदकर उसका पानी बेचना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति में उसने उस हौज़ को पुनः खुदवाया और उसके बाद वर्ष भर वह तालाब जल से भरा रहने लगा।[३४]

फिरोज़ाबाद

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने अपने लिए नई राजधानी बनाने के लिए दिल्ली आस-पास के प्रदेश को देखने के लिए बड़ा परिश्रम किया। अन्त में उसने जमुना नदी पर स्थित काबीन गाँव को इस कार्य हेतु चुना। काबीन की भूमि पर शीघ्र ही राज-प्रासाद का निर्माण प्रारम्भ हो गया। दरबार के सभी खानों तथा मलिकों ने वहाँ पर अपने निवास-स्थान बनाये। इस प्रकार दिल्ली नगर से पाँच कोस पर एक नया शहर बसाया गया। इस नवीन शहर का नाम फिरोज़ाबाद रक्खा गया जिसमें कस्बा इन्द्रपत, सराय शेख मलिक यार पर्रा, सराय शेख आबुबक्र तूसी, काबी ग्राम, कतिहवाड़ा, लहरावत अन्धावली, सराय मलका, सुल्ताना रज़िया के मकबरे की भूमि, बहारी, महरौला, सुल्तानपुर आदि सम्मिलित किये गये। शीघ्र ही इस नये शहर में अनेक मस्जिदें, बड़े-बड़े बाजार बन गये।[३५] ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक के समय तक दिल्ली की आबादी इतनी बढ़ गई थी कि उसे शहर कोटला फ़िरोज़शाह में नया शहर बसाना पड़ा।

कवि मुतहर ने लिखा है कि फिरोज़ाबाद उत्तम नगर था। स्वर्ण की नहरें तथा बगदाद की इमारतें हैं।[३६] प्रत्येक दिशा में भवन तथा उद्यान हैं। बरनी ने १३५८ में **तारीख-ए-फिरोजशाही** की रचना करते समय भविष्यवाणी की थी कि यह शहर जब बन कर तैयार होगा तो बड़ा शहर बनेगा।[३७] अफीफ के अनुसार यह शहर कुतुब दिल्ली से ५ करोह की दूरी पर जमुना के किनारे था।[३८] यह शहर १८ गाँवों को घेर कर बसाया गया था, तथा जिसके मध्य काविन नामक मुख्य गाँव था। एक ओर तो यह शहर रज़िया के मकबरे, जो कि बाद के शाहजहनाबाद में तुर्कमान गेट के समीप

मुहल्ला कुलबुली खान में था, तक तो दूसरी ओर उत्तर की ओर दिल्ली की पुरानी सब्जी मण्डी तक फैला हुआ था। अफीफ के अनुसार यह शहर पाँच करोह तक फैला हुआ था।

आबादी के निरन्तर बढ़ने के कारण सुल्तान सिकन्दर लोदी को यह शहर छोड़ना पड़ा और आगरा में अपनी राजधानी बनानी पड़ी।

दिल्ली शहर का अवस्थापन कई प्रकार से महत्वपूर्ण था। सर्वप्रथम यह शहर जमुना नदी के किनारे था। नदी बड़ी-बड़ी नौकाओं के लिए उपयुक्त थी जिनमें २००० से ७००० मन अनाज यहाँ लाया जा सकता था या यहाँ से ले जाया जा सकता था। दूसरे, दिल्ली उत्तरी भारत व दक्षिण के महत्वपूर्ण शहरों से जुड़ा हुआ था।

किसी शहर के जीवित रहने के लिए कई बातों की आवश्यकता होती थी। सर्वप्रथम शहर पूर्णतः सुरक्षित हो, दूसरे उसके पृष्ठ प्रदेश समृद्धशाली एवं उत्पादनशील हों, तीसरे शहर में भी उद्योग हो, चौथे शहर व्यापार विनिमय तथा वितरण का केन्द्र हो तथा जहाँ कि दूसरे स्थानों से प्राप्त वस्तुयें मिल सकें। दिल्ली शहर में यह सभी बातें देखने को मिलती हैं। दिल्ली के सुल्तान शहर को सुरक्षित बनाने का निरन्तर प्रयास करते रहे और उन्होंने उसकी सुरक्षा के हेतु उसे चौड़ी चाहरदीवारी से घेरा। इस शहर के पृष्ठ प्रदेश पश्चिम में पंजाब व पूर्व में दोआब की उर्वर भूमि थी, जहाँ से उसे खाने-पीने की विविध वस्तुयें बराबर मिलती रहती थीं। व्यापारी इन वस्तुओं को निकटवर्ती प्रदेशों से लाकर दिल्ली को सप्लाई करते थे। दिल्ली के अनाज के बाजारों में सदैव अनाज भरा रहता था। मुहम्मद तुग़लक के समय जब दुर्भिक्ष पड़ा तो उसने इन्हीं गोदामों से दिल्ली की जनता को छः मास के लिए अनाज दिलवाये। यहाँ तबरेजी, नागौरी, देवगिरि वस्त्र तबरेज, नागौर तथा देवगिरि से आता था।[३९] अमीर खुसरो ने खजाइनुल फ़ुतूह में लिखा है कि दिल्ली में राज्य के विभिन्न प्रदेशों से कपड़ा आता था। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में पहनने के लिए बिहार से गुले वकली, शीर, गुलीम, जुज, खुज, देवगिरि, महादेव नगरी नामक कपड़े बिकते थे।[४०] शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार दिल्ली में रूस तथा सिकन्दरिया का बना हुआ वस्त्र मिलता था, किन्तु उन्हें कोई धारण नहीं करता था। वहाँ ऊनी कपड़ा बाहर से मँगाया जाता था। यहाँ तातारी कबायें तथा ख्वारिज्मी कबायें मिलती थीं।[४१] कवि मुतहर कड़ा ने अपने दीवान में लिखा है कि फिरोज़शाही मदरसे के ईराक़ी एक अरबी अध्यापक शाम के लबादे व मिस्र की पगड़ियाँ बाँधते थे।[४२] दिल्ली के निकटवर्ती गाँवों से कल्लाल मदिरा लाकर दिल्ली में बेचते थे। इसी प्रकार से अलाई राज्यकाल में वहाँ विदेशों से दास-दासियाँ, घोड़े बिकने के लिए आते थे। शिहाबुद्दीन-अल-उमरी के अनुसार यहाँ तुर्की, रूमी तथा अन्य देशों की दासियाँ अत्यधिक संख्या में मिलती थीं।

दिल्ली शहर में अनेक उद्योग धन्धे एवं व्यवसाय थे। वहाँ अत्यधिक संख्या में

सैनिक तथा सैनिक अधिकारी निवास करते थे। क्योंकि मलिकों, अमीरों तथा सिपहसालारों की संख्या ज्ञात नहीं है इसलिए उनके अन्तर्गत अश्वारोहियों की संख्या ठीक प्रकार से बताई नहीं जा सकती है। मुहम्मद तुग़लक के कारखानों में ४००० रेशम का कार्य करने वाले, ४००० ज़रदोजी का कार्य करने वाले, १२००० चिकित्सक, १०,००० बाज़ पालने वाले, ३००० हकौवें, ५०० दरबारी, १२०० संगीतज्ञ, १००० गवैये, १००० कवि, २०० फकीर इत्यादि थे। मोटे तौर पर मुहम्मद तुग़लक के समय दिल्ली की जनसंख्या लगभग ८३,५८१०० के ऊपर ही रही होगी। अन्य समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि दिल्ली की आबादी घनी थी।[३३]

पानी की व्यवस्था

दिल्ली शहर में पानी की समुचित व्यवस्था की गई। शहर की जनसंख्या देखते हुए वहाँ पानी का प्रबन्ध होना आवश्यक था। अधिकांश निवासियों को जमुना से पानी मिलता था। सुल्तान इल्तुतमिश ने हौज-ए-शम्सी बनवाया। अलाउद्दीन खिल्ली ने हौज-ए-अलाई या हौज-ए-खास बनवाया। शिहाबुद्दीन अल उमरी के अनुसार वहाँ अनेक कुएँ थे जो कि सात हाथ से अधिक गहरे नहीं थे। कुओं में रहठ लगी हुई थी। शहर के निवासी पीने के लिए पानी कुण्ड या जलाशयों में जमा कर लिया करते थे।[४४] सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने फ़ुतुहात-ए-फिरोज़शाही में लिखा है कि लोगों ने हौज-ए-शम्सी के ऊपर बाँध बना लिया था जिसके कारण शहर के लोगों को पानी मिलना कठिन हो गया था। उसने उस हौज़ से पानी आने की व्यवस्था की। इसी प्रकार से हौज-ए-अलाई, जिसमें मिट्टी भर जाने के कारण जल सूख गया था, उसने उसे पुनः खुदवाया, जिससे वहाँ साल भर पानी भरा रहने लगा।[४५]

दिल्ली शहर का विकास कई कारण से हुआ। सर्वप्रथम वह सल्तनत की राजधानी थी, जिसके कारण उसका विकास निरन्तर होता रहा। दूसरे, वह प्रशासन का केन्द्र था, जिसके कारण यहाँ सैनिक व दीवानी प्रशासन से सम्बद्ध हजारों अधिकारी एवं कर्मचारियों का जनसमूह एकत्र रहता था और दूरस्थ एवं निकटवर्ती देशों से लोग आते-जाते रहते थे। तीसरे, शनैः-शनैः यह उद्योग व व्यापार का केन्द्र भी बन गया। शाही कारखानों के अतिरिक्त यहाँ अन्य उद्योगों का विकास हुआ अतएव कुशल कारीगरों, शिल्पकारों एवं श्रमिकों का विशाल जनसमूह स्थायी रूप से रहने लगा। इसके अतिरिक्त यह शहर व्यापारिक केन्द्र के रूप में भी विकसित हुआ। अफीफ ने उन सभी करों का उल्लेख किया है जो कि व्यापारियों व दूकानदारों से वसूल किये जाते थे। इन करों की प्रकृति से दिल्ली के व्यापारिक केन्द्र होने की पुष्टि होती है।

दिल्ली शहर की गरिमा और उसकी समृद्धि सिकन्दर लोदी के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों तक बनी रही। तदुपरान्त जब सुल्तान सिकन्दर लोदी ने आगरा

शहर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया तो दिल्ली का राजनीतिक एवं आर्थिक अस्तित्व कुछ समय तक क्षीण हो गया।

लाहौर

ग़जनवी साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर पहले लाहौर एक गाँव था जहाँ कि सर्वप्रथम एक छावनी स्थापित हुई और इस प्रकार वह एक छोटा शहर बन गया। अल लुवाव के अनुसार लाहौर एक विशाल तथा समृद्धशाली शहर था। सल्तनत काल में लाहौर एक पश्चिमी सीमा पर एक प्रमुख शहर माना जाने लगा। यहाँ एक दुर्ग बनवाया गया। बलबन ने सेना की सुरक्षा की दृष्टि से वहाँ के दुर्ग की पुनः मरम्मत करवाई। उसने वहाँ व्यापारियों को लाकर बसाया तथा अन्य लोगों को बसने के लिए कहा।[४६] उत्तर-पश्चिम की ओर से मंगोलों के निरन्तर आक्रमण के भय के कारण लाहौर का सामरिक महत्व बढ़ गया। तैमूर के आक्रमण के उपरान्त १४वीं शताब्दी में लाहौर शहर के निवासियों ने दीर्घकाल तक शान्ति का अनुभव किया। १५२०-२४ के मध्य बाबर ने उसे अधिकृत करने का प्रयास किया और उसे अन्त में अधिकृत कर लिया।

पंजाब में आबुहर एक छोटा, घनी आबादी, वृक्षों तथा नदियों वाला शहर था।[४७] इसी भाँति अजोधन भी था। वहाँ शेख फरीद की खानकाह थी।[४८] सिरसौती, जहाँ अधिक चावल पैदा होता था, भी एक बड़ा शहर था।[४९] वहाँ का चावल दिल्ली भेजा जाता था। सिरसौती दिल्ली मार्ग पर हाँसी शहर था। इब्नबतूता के अनुसार यह एक घनी आबादी वाला सही ढंग से बसा हुआ शहर था।[५०]

सिंध में देवल नेहरून, थट्टा, मन्सूरा, सेनेहवान, मुल्तान, अरोर, मेकरान, बुधा, अन्दबेल इत्यादि अनेक सुप्रसिद्ध शहर थे। इब्न सईद के अनुसार सिन्ध में स्थित देवल में सुप्रसिद्ध बन्दरगाह था, जहाँ से अनेक वस्तुओं का निर्यात होता था और जहाँ बसरा से खजूर आयात होता था।[५१] अल लूबाब के अनुसार मन्सूरा भी एक प्रसिद्ध शहर था। सिन्ध के सुन्दर शहरों में भक्कर भी था। वहाँ सिन्ध नदी की एक सहायक नदी बहती थी। नदी के किनारे किशलू खान ने एक खानकाह बनवाई।[५२] सिंध का दूसरा महत्वपूर्ण शहर उच्च था जो कि सिंध नदी के तट पर बसा हुआ था। वहाँ अनेक उत्तम इमारतें तथा बाजार थे।[५३]

आगरा

इसी प्रकार प्रारम्भ में जहाँ आगरा शहर की स्थापना सिकन्दर लोदी ने की वहाँ एक गाँव था।[५४] इस गाँव में एक कोट बना हुआ था। सिकन्दर लोदी ने यहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। थोड़े ही समय में आगरा भारतवर्ष का एक भव्य शहर बन गया। मुहम्मद कबीर के अनुसार यमुना नदी के किनारे बड़ी ऊबड़-खावड़ भूमि थी। सिकन्दर लोदी वहाँ पहुँचा और उसने यह स्थान नगर बसाने के लिये चुना। उसने उस स्थान के राजा से पूछा कि नदी के उस ओर खुली हुई भूमि है या

इस ओर। राजा ने अपनी भाषा में कहा कि उस ओर आकरी भूमि हैं अर्थात् अधिक भूमि है। इस प्रकार से सुल्तान ने यमुना के पश्चिम में आकरा नामक नगर वसाया और यमुना के पूर्व में सिकन्दरा नामक ग्राम वसाया।[५५] निजामुद्दीन अहमद के अनुसार ६ जुलाई १५०५ ई० को वहाँ वड़ा भारी भूकम्प आया, जिसके कारण अनेक भव्य भवन गिर गये और अनेक लोग मर गये।[५६] ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान सिकन्दर लोदी की राजधानी होने के कारण वहाँ भवनों का निर्माण हुआ। जिसके वाद आगरा शहर दिल्ली के सुल्तानों की वरावर राजधानी रहा।

जौनपुर

सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने १३६१ ई० में अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुग़लक उपनाम जूनाखान के नाम से जौनपुर शहर वसाया। उसने वहाँ एक दुर्ग वनवाया। जौनपुर गोमती नदी के तट पर वसा हुआ है फिरोज़शाह तुग़लक ने नये शहर की नींव गोमती नदी के उत्तरी तट पर रक्खी। यहाँ करमवीर के खण्डहर के समीप गारे का प्राचीन दुर्ग था। इस दुर्ग का आकार मिट्टी के वड़े टीले के समान था। फिरोज़शाह ने इसी टीले पर दुर्ग वनवाया। थोड़े समय में दुर्ग के निर्माण के साथ-साथ वहाँ एक शहर भी वस गया। नगर को आवाद करने के लिए दिल्ली तथा दौलतावाद से उच्चकोटि के कलाकार वुलाये गये, विद्वानों तथा सूफी सन्तों को वसाया गया और उनसे कहा गया कि वे अपने-अपने नाम पर मुहल्लों की स्थापना करें। इस प्रकार से फिरोज़शाह के काल में जौनपुर शहर इतना प्रसिद्ध हो गया कि उसकी सीमाएँ चार मील तक फैल गई। शर्की राज्य की स्थापना के उपरान्त जौनपुर शहर के विकास में गतिशीलता आई। इब्राहीम शाह शर्की ने शहर में नक्कारखाने और चौकियाँ स्थापित की। अमीर तैमूर के आक्रमण के कारण वहुत से अमीरों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, विद्वानों तथा कलाकारों ने जौनपुर में शरण ली। इब्राहीम शाह शर्की ने उनका सम्मान किया, उन्हें जागीरें, पद तथा पेंशने दी। दिल्ली से शेखों, शैयदों व आमिलों का आगमन यहाँ इतनी संख्या में हुआ कि जौनपुर द्वितीय दिल्ली वन गया और लोग उसे शीराज़-ए-हिन्द कहने लगे। नौ सौ चौरासी विद्वानों की पालकियाँ जुमा एवं ईद तथा वकरीद की नमाज पर शहर में निकलती थी।प्रशासनिक व्यवस्था के विकास के साथ-साथ यहाँ प्रशासक वर्ग का भी संगठन हुआ, जो कि शहर की शोभा वन गया। इस काल में ईराक अरव, ईरान, मुवारुन्नहर, तुर्किस्तान, वुखारा, कश्मीर एवं लाहौर के लोग भी आए और यहाँ वस गए। इब्राहीम शाह शर्की के शासनकाल में जौनपुर शहर की जनसंख्या का आभास इससे मिलता है कि उसके पास एक लाख सवार, ५०,००० पैदल, २००० तोपची थे। शेष जनसंख्या का अनुमान इसी आधार पर लगाया जा सकया है। उसने जौनपुर शहर में अनेक उद्यान लगवाए, भवन, दीवानखाने, हौज, पुल, मस्छिदें तथा सराएँ वनवाई।

जौनपुर शहर का विकास कई कारणों से हुआ। यह शहर पश्चिम से पूर्व को

और जाने वाले मुख्य मार्ग पर बसा हुआ था, जो कि सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इस शहर का पृष्ठ प्रदेश उर्वर, उपजाऊ और आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली था।

मुल्ला दाऊद ने चांदांयन में अवध के शहर गोवर का वर्णन किया है। इस स्थान के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि वहाँ के निवासी महर जाति के थे। वहाँ कूप, वापी आम्राराम अत्यधिक थे। वहाँ नारियल तथा गूवा (एक प्रकार की सुपाड़ी) काडिम (अनार) द्राक्ष (अंगूर) नारंगी, कटहल, ताड़, जामुन, कैथा, बाँस, खजूर, वट, पीपल, इमली के अनेक वृक्ष थे। वहाँ तड़ाग, पुष्कर, कुण्ड खुदे थे। उनके पास मठ और देवालय थे जहाँ कि तपस्वी रहते थे। एक ऐसा सरोवर था जहाँ कि दो लाख कुमारियाँ जल भरने जाती थीं। सरोवर से जल भरने की ही अनुमति थी उसमें कोई भी व्यक्ति स्नान नहीं कर सकता था। वहाँ एक परकोटा भी था जिसकी ऊँचाई ३० × ३½ = १०५ हाथ के लगभग थी और जिसकी चौड़ाई २० हाथ थी। इस नगर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ग्वाल, खण्डेलवाल, अग्रवाल, तिवारी, पचंवान, धाकड़, जोशी, खफाई, बनजारे, श्रावक, पंवार, सुनार, रावत और चौहान रहते थे। वहाँ की गलियाँ सँकरी थीं, जिनमें चलना-फिरना मुश्किल था। वहाँ के बाजार में सभी प्रकार के प्रसून, पान, फूल, सुपारी, जायफल, लौंग, छुवारा, दौना, मरवा, कुन्द, निवारी के गुथे हुए हार खण्ड, चिरौंजी, दाख (मुनक्का), सोना, अच्छा कपड़ा आदि बड़ी मात्रा में मिलता था।[५८]

उत्तर प्रदेश के प्रमुख शहरों में कन्नौज विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व कन्नौज हिन्दू शासकों की राजधानी थी। यह एक प्राचीन शहर था। अल मुहल्लवी के अनुसार कन्नौज शहर भारतवर्ष का कैरो (Cairo) था। यह एक विशाल शहर था। वहाँ बहुमूल्य रत्नों के ३०० बाज़ार थे तथा सोने की अनेक खानें थी। नुजाहत-अल मुश्ताक के रचयिता के अनुसार यह एक अत्यन्त सुन्दर शहर था। यहाँ एक विशाल दुर्ग भी था।[५९]

इस प्रदेश के अन्य शहरों में बदायूँ, सम्भल, कोल, चन्दवार, कड़ा, अमरोहा इत्यादि थे। कोल आम के पेड़ों के लिए सुप्रसिद्ध था। इब्नबतूता के अनुसार अमरोहा एक छोटा व सुन्दर शहर था।[६०] इब्नबतूता ने कड़ा, मानिकपुर, कोल, जलाली तथा कन्नौज का भी उल्लेख किया है।[६१]

मध्यप्रदेश व मालवा के कुछ शहरों का उल्लेख समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। ग्वालियर के सम्बन्ध में इब्नबतूता ने लिखा है कि वहाँ का दुर्ग एक पहाड़ी पर स्थित था। उसके अन्दर पानी का हौज़ था। दुर्ग की दीवार से मिले हुए २० कुएँ थे। दुर्ग तक जाने के लिए एक चौड़ा मार्ग था। दुर्ग के नीचे एक सुन्दर नगर बसा हुआ था। नगर की सभी इमारतें, भवन, मस्जिदें सफेद पत्थर की बनी हुई थी।[६२] सागर का शहर केले, आम तथा गन्ने के लिए सुप्रसिद्ध था।[६३] मरह शहर में मकई इतनी अधिक पैदा होती थी कि उसे दिल्ली और अन्य शहरों को भेजा

जाता था।[६४] व्याना बड़ा भारी शहर था जहाँ कि सुन्दर इमारतें तथा गलियाँ थीं।[६५] मवरो एक छोटा शहर था जहाँ कि एक सुन्दर बाजार था।[६६] मालवा में धार व उज्जैन सुप्रसिद्ध शहर थे। उज्जैन की आवादी घनी थी।[६७]

तारीख-ए-मुहम्मदी के रचयिता मुहम्मद विहमंद खानी के अनुसार १३८९-९० में सुल्तान नासिरुद्दीन ने कालपी का नाम मुहम्मदाबाद रक्खा और वहाँ मस्जिदों, महलों, भवनों का निर्माण करवाया।[६८] वहाँ धीरे-धीरे दिल्ली से अनेक आलिम व अमीर पहुँचे और वहीं वे स्थायी रूप से बस गये। कालपी के स्वतन्त्र राज्य को राजधानी होने के कारण महमूदाबाद का शहर के रूप में विकास हुआ।

गुजरात

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व गुजरात में अनेक सुप्रसिद्ध शहर जैसे कि नेहरवाला, खम्भात, थाना, सिन्दापुर इत्यादि थे। इब्न सईद के अनुसार नेहरवाला, खम्भात से वड़ा था और उसकी आवादी उद्यानों तथा नदी के मध्य थी। अबुल फिदा के अनुसार वह भारतवर्ष का एक विशाल प्रान्त था।[६९] खम्भात में ईंटों तथा संगमरमर की इमारतें थीं तथा कुछ उद्यान थे।[७०] थाना गुजरात के पूर्व में स्थित था। वहाँ क़ना, शक्कर तथा बाँस की पैदावर होती थी, जिन्हें निर्यात किया जाता था।

फरवरी-मार्च १४१२ ई० में सुल्तान अहमद शाह ने साबरमती नदी के तट पर अहमदाबाद का विशाल भव्य नगर बसाया। उसमें उसने दो किलों, एक जामा मस्जिद तथा अनेक बाज़ारों का निर्माण करवाया। किले के बाहर ३६० पुरे जिनमें से प्रत्येक पुरे में बाजार, मस्जिद तथा दीवार-बन्द या चाहारदीवारियाँ थी, बसाये।[७१] उसके बाद उसने उसी नदी के तट पर अहमद नगर नामक शहर का निर्माण करवाया।[७२] सुल्तान महमूद शाह ने मुस्तफाबाद नामक शहर की स्थापना की।[७३] उसने अहमदाबाद से १२ कोस पर दक्षिण-पूर्व की ओर बातक (माही) नदी के तट पर महमूदाबाद नगर की स्थापना की।[७४] १४८४ ई० में उसने चम्पानेर की जलवायु से प्रसन्न होकर वहाँ अपनी राजधानी बनाई। धीरे-धीरे चम्पानेर बहुत बड़ा नगर बन गया। उस नगर का नाम मुहमदाबाद रक्खा गया। उसने वहाँ एक भव्य मस्जिद, एक कोट, जहाँपनाह का निर्माण कराया। वहाँ अमीरों, वजीरों, व्यापारियों तथा वक्कालों ने भी अपने-अपने लिए भव्य भवनों का निर्माण करा लिया। सुल्तान महमूद ने वहाँ अनेक उद्यान भी लगवाये।[७५] सुल्तान मुजफ्फरखान गुजराती ने बड़ौदा के समीप दौलताबाद नगर बसाया।[७६]

बंगाल के प्रमुख शहरों में लखनौती व सुनारगाँव थे। मिनहाज ने लिखा है कि मुहम्मद बख्तियार ने बंगाल में नदिया का विनाश कर लखनौती को अपनी राजधानी बनाया। उसने व उसके अमीरों ने वहाँ मस्जिदें व खानकाहें बनवाई।[७७] लखनौती के समीप एक बड़ा भारी नगर करमपट्टम था। नगर के चारों ओर दीवार तराशे हुए पत्थरों से बनाई गई थी। वहाँ एक बड़ा भारी बाज़ार भी था, जहाँ कि

प्रति दिन १½ हजार घोड़े बिकते थे।[७८] मलिक हुसामुद्दीन खिल्जी ने बसानकोट में दुर्ग बनवाया, वहाँ लोगों को बसाया, मदरसों व मस्जिदें बनवाई और आमिलों, सूफियों व सैय्यदों के लिए पेन्शन व भत्ते निर्धारित किए।[७९]

शहर की व्यवस्था

प्रत्येक शहर में एक कोतवाल होता था। उसका मुख्य कार्य शहर के प्रशासन की देख-भाल करना था। शांति एवं सुरक्षा की व्यवस्था करना, कानूनों को लागू करना, उपद्रवियों तथा बदमाशों से शहर के लोगों की रक्षा करना, अभियोगियों को दण्ड देना, जेल की देखभाल करना इत्यादि था। वह शहर के एक अमुक स्थान से अपना कार्य करता था तथा अपने अन्तर्गत सेवारत कर्मचारियों को शहर भर के विभिन्न मुहल्लों में नियुक्त करके उनके द्वारा शान्ति बनाये रखता था। इन कर्मचारियों को मुहल्लादार कहते थे। कभी-कभी वह दुर्ग की रक्षा या शहर के द्वारों की रक्षा भी किया करता था। वह पहरेदारों की देख-रेख भी किया करता था। वह मुहल्लादारों को बुलाकर शहर के निवासियों की दशा के सम्बन्ध में भी पूछ-ताछ किया करता था तथा बेरोज़गार लोगों के लिए व्यवसाय की व्यवस्था भी किया करता था।[८०] शिहाबुद्दीन अल-उमरी के अनुसार हिन्दुस्तान में १२०० नगर थे।[८१]

शहरी जीवन

मध्यकालीन शहरों का जीवन अत्यन्त रोचक एवं रंगीन था। समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों व विदेशी पर्यटकों के द्वारा दिये गये विवरणों में शहरी जीवन की झलक यथेष्ट रूप से मिलती है। प्रत्येक शहर में विभिन्न देशों, प्रदेशों, जातियों, उपजातियों, समुदायों, व्यवसायों के तथा वर्गों के लोग निवास करते थे। बड़े-बड़े शहरों में जन-जीवन की व्यस्तता एवं गतिशीलता थी। जन-जीवन में दो पहलू, सांसारिक या लौकिक तथा धार्मिक थे। अन्य शहरों की तुलना में राजधानी के निवासियों का जीवन अनूठा था। सुल्तान व उसके परिवार के सदस्यों, अमीरों, अधिकारियों, राज्य के कर्मचारियों एवं सेवकों, सैनिकों इत्यादि की निरन्तर उपस्थिति से वहाँ चहल-पहल बनी रहती थी। १८ फरवरी १२२९ ई० को खलीफा के राजदूत जब दिल्ली पहुँचे तो सम्पूर्ण शहर को सजाया गया। सुल्तान के सिंहासनारोहण एवं राजदूतों के आगमन जैसे विशेष अवसरों पर कई दिनों तक समारोह मनाये जाते थे।[८२] इसके विपरीत सुल्तान की मृत्यु[८३] व राजनीतिक षडयन्त्रों या विद्रोह, शहर की जनता पर वज्रपात करते थे। यदि सुल्तान उदार हुआ तो अमीर, गायक, कवि, कलाकार, विद्वान, धर्मनिष्ठ एवं गणमान्य व्यक्ति उसकी कृपा से मालामाल हो जाते थे। सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज गायकों, विदूषकों, नपुंसकों को इनाम व खिलअतें बाँटा करता था। वह नशे में हाथी की पीठ पर बैठकर शहर के बाज़ार में सोना लुटाया करता था। वह सोने के टंके फेंकता था और लोग उन्हें उठाते थे।[८४] जब सुल्तान की सवारी बड़े ठाट-बाट से शहर के बीच से निकलती थी तो रमणीय दृश्य

देखने को मिलता था।[८५] विजयी सुल्तान जब कभी अभियान से वापस लौटता तो शहर की जनता उसका हर्षोल्लास से स्वागत करती थी।[८६] बलबन के शासनकाल के ६० वर्षों में दिल्ली की जनता भयभीत रही और उसने संयम से जीवन व्यतीत किया। किन्तु सुल्तान कैकुबाद के गद्दी पर बैठते ही शहर का वातावरण बदल गया। सुल्तान की भोग-विलास की प्रवृत्ति का प्रभाव जनता पर पड़ा। एक बार पुनः मनोरंजन करने वाले गायकों, नर्तकियों, विदूषकों, चुटकुले कहने वाले लोगों का बाज़ार गर्म हो गया। प्रत्येक गली में रमणियाँ एवं सुन्दरियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। गली-गली में सुमधुर स्वर वाले तथा ग़जल गायक उत्पन्न हो गये। दिल्ली के हर मुहल्ले में गाने-बजाने की ध्वनि सुनाई देने लगी।[८७] वहाँ मदिरा का मूल्य दस गुना बढ़ गया। लोग भोग-विलास में मस्त रहने लगे। बरनी ने लिखा है कि मुइज़ुद्दीन कैकुबाद के शासनकाल के तीन वर्षों में किसी को ऐश व इश्रत और भोग-विलास में ग्रस्त रहने के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य न था। भोग-विलास की महफिलें सजाई जाती थीं। लोग मदिरापान करते, संगीत सुनाते और गाते, इश्कबाजी करते, रमणियों से मिलते-जुलते, शतरंज और चौसर खेलते और चुटकुलेबाज़ी करते थे।[८८]

सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में राजधानी परिवर्तन के कारण दिल्ली की रौनक नष्ट हो गई। बरनी ने लिखा है कि पूर्व रौनक की भाँति अब उसका हजारवाँ भाग भी शेष न रह गया।[८९] देहली में घोर अकाल पड़ा हुआ था। आदमी आदमी को खाये जाते थे। वहाँ अनाज का मून्य बढ़ता गया और लोग बहुत बड़ी संख्या में नष्ट होने लगे।[९०] अन्य शहरों की भाँति दिल्ली शहर के निवासियों के जीवन का दूसरा पहलू आध्यात्मिक था। सामान्य जीवन पर धर्म का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपनी कुछ समय पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान में व्यतीत किया करते थे। इस काल में हिन्दुओं को अपने धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बरनी ने तारीख-ए-फिरोजशाही में इस तथ्य को अहमद चप व सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के मध्य संवाद में स्वीकार किया है। उसने लिखा है "हिन्दू जो खुदा व मुस्तफा के शत्रु हैं बड़े ठाट-बाट से तथा शान से मेरे महल के नीचे होकर जमुना तट पर जाते हैं, मूर्ति पूजा करते हैं और शिर्क तथा कुफ़्र के आदेशों का हमारे सामने प्रचार करते हैं।" बरनी परोक्ष रूप से हिन्दुओं की इस तथ्य को स्वीकार करता है कि जलाली काल में हिन्दू बड़े ठाट-बाट से धन-धान्य से सम्पन्न होकर जीवन व्यतीत करते हैं। भोग-विलास में ग्रस्त रहते हैं। खुल्लम-खुल्ला मूर्ति की पूजा करते थे। ढोल पीट-पीट कर कुफ्र तथा शिर्क के आदेशों का प्रचार करते थे।[९१] अफीफ ने हिन्दुओं की आर्थिक स्वतन्त्रता को स्वीकार किया है। उससे लिखा है कि पुरानी दिल्ली में एक ब्राह्मण खुल्लम-खुल्ला मूर्ति की पूजा किया करता था। शहर के सभी हिन्दू-मुसलमान उसके घर में मूर्ति पूजा के लिए जाते थे।[९२]

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त दिल्ली शहर में मुसलमानों की जन-संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। मुसलमानों के निजी जीवन में भी धर्म का अत्यधिक महत्व था। उनका जीवन धर्म से ओतप्रोत था। निःसन्देह ऐसी स्थिति में धार्मिक वर्ग जिसमें शेख, मशाहिक, उल्मा, विभिन्न सम्प्रदायों के सूफी सन्त इत्यादि सभी सम्मिलित थे, की भूमिका भी रोचक हो गयी। दिल्ली शहर में अनेक मस्जिदों तथा खानकाहों की स्थापना समय के साथ-साथ होने लगी। जो कि वहाँ के निवासियों के आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करने लगी। मध्यकाल में मुसलमान समाज में उल्मा बहुत ही प्रभावशाली वर्ग था। वे कुरान हदीस तथा अन्य धार्मिक एवं अन्य ग्रन्थों की विद्वता के कारण बड़े सम्मान व आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। उन्हें शरियत का भी ज्ञान प्राप्त होता था। अतएव उनसे यह आशा की जाती थी कि वे उसी से अनुसार मुसलमानों के आचरण को ढालेंगे और उन्हें उसी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करेंगे। इस काल में दिल्ली में अनेक सुप्रसिद्ध उल्मा हुए। जिनमें से अनेक ने मस्जिदों में या घास-फूस की झोपड़ी के नीचे बैठकर विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे तथा लोगों को धार्मिक उपदेश दिया करते थे। इन उल्माओं में से कुछ उल्माओं के नाम इस प्रकार से हैं—(१) मौलाना अलाउद्दीन उसूली, (२) मौलाना कमालउद्दीन जाहिद, (३) मौलाना बुरहान उद्दीन नसाफी, (४) ख्वाजा शमसुल मुल्क, (५) मौलाना शरफुद्दीन वलवलजी, (६) मौलाना सिराजुद्दीन सन्जरी, (७) मौलाना बुरहानुद्दीन मनख, (८) मौलाना बुरहानुद्दीन वज्ज, (९) मौलाना नूर तर्क, (१०) मौलाना निजामुद्दीन अबुल मुव्वैअद, (११) शेख शिहाबुद्दीन, (१२) खातिब इत्यादि।[९३] उल्माओं के अतिरिक्त दिल्ली में अनेक काज़ी थे जो कि धार्मिक उपदेश नियमित रूप से दिया करते थे। सोमवार को काज़ी कमालुद्दीन उपदेश दिया करते थे और मुसलमानों से कहते थे कि वे मुसलमानों की भाँति व्यवहार करें। यदि अपने अतिथियों का आतिथ्य सत्कार करने के हेतु उन्हें अपना घर भी वेचना पड़े तो वे वेच दें।[९४] काज़ी मिनहज उस सिराज ने दिल्ली में काज़ी के पद पर रहते हुए "सभा" आध्यात्मिक संगीत को वैधानिकता प्रदान कर दी। जिसके परिणामस्वरूप सूफी सन्तों के खानकाहों में सभा का आयोजन नित्य-प्रति होने लगा। ऐसे अवसरों पर वहाँ बड़ी संख्या में लोग उपस्थित होते थे। दिल्ली के जन-जीवन से खानकाहों में होने वाली "सभा"-सूफी सन्तों के नित्य-प्रति उपदेश, काज़ियों की तजकीरें व मुजक्किरों के भाषण महत्वपूर्ण स्थान रखने लगे। मौलाना हुसाम दरवेश के भाषण ओजस्वी, मार्मिक, सारगर्भित एवं चित्त को प्रसन्न करने वाले होते थे। शेख हमीद-उद्दीन सूफी ने कहा था कि दिल्ली में हुसाम से उत्तम कोई भी भाषण देने वाला उस समय नहीं था।[९५] इस काल में दिल्ली चिश्ती एवं सोहरावर्दी सिलसिले के सूफी सन्तों का महान् केन्द्र थे। चिश्ती संतों में, शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी,[९६] शेख बद्रुद्दीन गजनवी,[९७] शेख नजीउद्दीन मुतवक्किल,[९८] मौलाना बद्रउद्दीन इसहाक,[९९] शेख निजामुद्दीन औलिया[१००] इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके

खानकाहों में समाज के विभिन्न लोगों, अमीरों, व्यापारियों, विद्यार्थियों, साधारण व्यक्तियों इत्यादि की भीड़ लगी रहती थी। लोग तरह-तरह की समस्याएँ लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होते थे और वे अपनी दुआ, चमत्कार, आदर्शमयी जीवन से उनकी कठिनाइयों एवं कष्टों को दूर कर दिया करते थे।[१०१] चिश्ती सन्तों के अतिरिक्त दिल्ली हैदरी सम्प्रदाय का भी सुविख्यात केन्द्र था। सैयद आवुबक्र हैदरी तूसी कलन्दरी शेख निजामुद्दीन औलिया का समकालीन था। उसकी खानकाह जमुना नदी के किनारे था जहाँ कि अनेक सूफी सन्त तथा विद्वान उसका उपदेश सुनने के लिये जाते थे। बलबन के समय सीदी मौला दिल्ली पहुँचा। कैकुबाद के शासनकाल में उसने वहाँ अपना खानकाह स्थापित किया जिससे आकर्षित होकर अनेक लोग वहाँ पहुँचने लगे। खर्च करने तथा खिलाने-पिलाने में उसके बराबर कोई न था। उसकी खानकाह में बराबर भीड़ रहती थी। वहाँ हजारों मन मैदा, ५०० जानवरों का माँस, २००-३०० मन शक्कर, १००-२०० मन मिश्री प्रतिदिन भोजन में खर्च होती थी।[१०२] इस्लाम से सम्बन्धित अन्य समुदायों के सन्त भी दिल्ली में आते-जाते रहते थे। इस प्रकार दिल्ली का धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण गर्म बना रहता था। मौलाना हामिद कलन्दर ने खैरुलमजालिस में लिखा है कि दिल्ली व उसके आस-पास अनेक लंगर थे, जैसे कि रमजान कलन्दर का लंगर तथा मलिक यार पर्रा का लंगर, जहाँ कि लोगों को मुफ्त भोजन मिलता था। किन्तु कलान्तर में यह सभी लंगर नष्ट हो गये।[१०३]

दिल्ली शहर का जनजीवन सदैव एक समान नहीं रहा। उसमें बराबर उतार-चढ़ाव होता रहता। सीदी मौला की हत्या के उपरान्त दिल्ली में वर्षा नहीं हुई और वहाँ अकाल पड़ गया।[१०४] बरनी ने लिखा है कि भूख से विकल होकर जमुना में २०-२० या ३०-३० आदमी एकत्र होकर डूबकर आत्महत्या करने लगे।[१०५] मुहम्मद तुग़लक के समय तथा कथित राजधानी परिवर्तन के कारण दिल्ली वासियों को अनेक कष्ट उठाने पड़े। बरनी ने लिखा है कि दिल्ली जो कि पिछले १६०-१७० वर्षों में आवाद हुई थी तथा जो कि एक बहुत बड़ा नगर बन गई थी तथा बगदाद एवं मिस्र के समान हो गई थी उसके ४-५ कोस तक सभी कस्बे नष्ट हो गए।[१०६] एसामी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने शहर को नष्ट करने की योजना बनाई। उसने आदेश दिए कि मराठा प्रदेश की ओर लोग प्रस्थान करें, अन्यथा उनकी सम्पत्ति नष्ट कर दी जावेगी, उन्हें मौत के घाट उतार दिया जावेगा। अतः लोगों को रोते-पीटते अपने घर छोड़ने पड़े।[१०७] दिसम्बर १३९८ में अमीर तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया, कई हज़ार सैनिकों ने दिल्ली में प्रवेश किया और उन्होंने सीरी, जहाँपनाह तथा प्राचीन दिल्ली को लूटना प्रारम्भ किया। तैमूर के सैनिक कई दिन तक शहर को लूटते रहे। लूट के कारण दिल्ली में हाहाकार मचा रहा।[१०८] तैमूर के वापस चले जाने के उपरान्त दिल्ली व उसके आस-पास के समस्त प्रदेश में महामारी व अकाल का प्रकोप हुआ। इस कारण अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हुई।[१०९] सुल्तान

सिकन्दर लोदी ने लोदी साम्राज्य की राजधानी आगरा में स्थापित की, जिससे दिल्ली की गरिमा व महत्व कम हो गया। उसकी आबादी का अधिकांश भाग आगरा में जाकर रहने लगा।

मध्यकाल में जिन कारणों से शहर की स्थापना होती थी उन्हीं कारणों के अभाव से उसका पतन भी होता था। शहर के असुरक्षित रहने, पानी के अभाव, जनसंख्या की वृद्धि के कारण शहर पर दबाव, कुटीर उद्योगों के नष्ट होने, शहर के प्रशासनिक अस्तित्व के लोप होने या निकटवर्ती क्षेत्रों के उजाड़ होने तथा अन्य कई कारणों से शहर का पतन होता था। ऐसी स्थिति में शहर की जनसंख्या कम हो जाती थी और शहर नाममात्र के लिए ही शहर रह जाता था। शहर का महत्व तभी तक रहता था जब तक उसके रख-रखाव के लिए सभी साधन सुलभतः मिलते रहते थे और उसकी गतिविधियाँ चलती रहती थी। इस काल में नवीन शहरों के साथ यही हुआ। पुराने शहरों में परिवर्तन हुए और वे ज्यों के त्यों समय के झंझावात के सन्मुख बने रहे। कुछ शहर ऐसे भी थे जिनका आर्थिक अस्तित्व यकायक कम हो जाने से पतन हुआ। संक्षेप में मध्यकाल में शहरों में अनेक परिवर्तन हुए और शहरीकरण या नगरीकरण की प्रक्रिया में गतिशीलता उत्पन्न हुई।

१७

मुद्रा प्रणाली

एडवर्ड थामस के अनुसार दिल्ली सल्तनत की स्थापना के तत्काल उपरान्त तुर्की शासकों ने अपनी नई मुद्रा प्रणाली चालू नहीं की अपितु अनेक वर्षों तक पुराने सिक्के ही चलते रहे। इन सिक्कों में मुहम्मद ग़ौरी के सोने के मिश्रित धातु तथा ताँबे के सिक्के, महमूद के मिश्रित धातु के सिक्के, यल्दौज के मिश्रित धातु के तथा ताँबे के सिक्के प्रचलित थे। इनके अतिरिक्त पूर्व काल के देशी नरेशों के भी सिक्के प्रचलन में थे। वास्तव में ११९३ ई० से लेकर १५२६ ई० तक सिक्कों की बनावट, आकृति, उनके भार, उन पर अंकित धार्मिक अनुश्रुति इत्यादि में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। मुहम्मद ग़ौरी ने सोने के जो सिक्के निकाले उनकी विशेषता यह थी कि उनका भार ६४ ग्रेन से ६६.५ ग्रेन तक था, उनकी आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की थीं तथा उन पर अंकित अनुश्रुतियाँ भी भिन्न थीं। इन सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति तथा देवनागरी भाषा में श्री मुहम्मद बिन साम अंकित था। इन सिक्कों पर टकसाल का नाम अथवा जहाँ से वे निकले, का नाम नहीं अंकित है। मिश्रित धातु के सिक्कों में जिन ११ सिक्कों का नेल्सन राइट ने उल्लेख किया है वे सिक्के ४३ ग्रेन से लेकर ५८ ग्रेन तक के हैं। इन सिक्कों की विशेषता यह है कि उनमें एक ओर अनुश्रुति के रूप में अलसुल्तान अल आज़म मुहम्मद बिन साम या अलसुल्तान अल आज़म मुजफ्फर दुनिया व दीन या मुहम्मद साम और दूसरी ओर माला लिए हुए अश्वारोही की छवि, चौहान अश्वारोही की आकृति तथा उसके ऊपर श्री हमीर शब्द या अबुल मुजफ्फर मुहम्मद बिन साम अंकित है। ताँबे के सिक्के ३७.५ से लेकर ४८ ग्रेन तक के हैं और उनके एक तरफ या तो मुजफ्फर अलदुनिया या खड़ा हुआ साँड़, दाईं ओर या मुहम्मद बिन साम तथा दूसरी ओर अलदीन या अदल या सुल्तान अंकित हैं। मुहम्मद ग़ौरी की मुद्रा प्रणाली की विशेषता यह है कि उन पर हमें देवनागरी लिपि का प्रयोग, देवी लक्ष्मी की आकृति, उसकी पदवी अंकित मिलती है। इसके अतिरिक्त उसने तीन धातुओं के सिक्के जारी किये। इन सिक्कों की आकृति भी भारतीय नरेशों के सिक्कों से अत्यधिक भिन्न थी। इन सिक्कों में न तिथि और न ही टकसाल का नाम अंकित है। जिससे यह पता नहीं चल पाता है कि यह सिक्के किस वर्ष किस स्थान से निकाले गये। इसी प्रकार से उसके उत्तराधिकारी महमूद ने मिश्रित धातु के ५१ ग्रेन तथा ५८ ग्रेन के

जो सिक्के निकाले उनमें एक ओर अल सुल्तान आज़म महमूद विन मुहम्मद विन साम तथा दूसरी ओर अश्वारोही की आकृति व श्री हमीर अंकित है।

कुतुबुद्दीन ऐबक के नाम का अभी तक किसी भी धातु का कोई भी सिक्का प्राप्त नहीं हुआ है। जिससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि तराइन के द्वितीय युद्ध से लेकर १२१० ई० तक उत्तरी भारत में मुहम्मद ग़ौरी तथा देशी नरेशों के सिक्कों का ही प्रचलन रहा होगा। मुहम्मद ग़ौरी के सिक्के देहलीवाल कहलाते थे। अतः सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में देहलीवाल ही साम्राज्य में मुद्रा के रूप में प्रचलित रहे। इल्तुतमिश ने ग़जनी व गौर से सम्बन्ध-विच्छेद करके सल्तनत को स्वतन्त्र करने के लिए अपने नाम के सोने-चाँदी तथा ताँबे के सिक्के निकलवाये। उसके १२११, १२१७, १२१८ ई० के सोने के सिक्के मिलते हैं। चूंकि चाँदी के सिक्कों की तुलना में सोने के सिक्के का कोई मानक भार निर्धारित न था अतः उसका प्रचलन लोकप्रिय न हुआ। उसने सोने के सिक्के जो कि सोने के टंके कहलाते थे, पर कलमा तथा खलीफाओं के नाम अंकित करवाये और इस प्रकार उनके प्रति अपनी धार्मिक निष्ठा का परिचय दिया। उसने चाँदी का टंका भी निकलवाया जो कि भारतीय मुद्रा प्रणाली के विकास का परिचायक है। उसके चाँदी के टंका का भार ४६ ग्रेन से लेकर १६८ ग्रेन तक था। यह सिक्के ६३० हि० से ६३३ हि० के मध्य निकाले गये। इनमें से केवल एक सिक्के पर ही टकसाल का नाम बिलाद हिन्द मिलता है। चाँदी के इस सिक्के की विशेषता यह है कि इस पर अरबी में अनुश्रुति कलमा और सुल्तान की उपाधियाँ अंकित हैं। इस सिक्के के एक ओर गोलाई में अल सुल्तान अल आज़म शमसुद्दीन व दुनिया व दीन अबुल मुजफ्फर अलतमश अलकुतुबी नासिर उल मोमनीन या अल इल्लाह ला इल्लाह महमूद रसूस अल्लाह अल नासिरुद्दीन अल्लाह अमीर उल मोमनीन, या फी अहद अल इमाम अल मुस्तसीर अमीर उल मोमनीन इत्यादि और दूसरी ओर अल सुल्तान ए आज़म, शम्स अल दुनियाँ व दीन अबुमुजफ्फर इल्तुतमिश अल सुल्तानी नासिर अमीर उल मोमनीन, फी अहद अल इमाम अल मुतसीर अमीर उल मोमनीन, अल सुल्तान आज़म शास अल दुनियाँ व दीन अबुमुजफ्फर अलतमश अल सुल्तान नासिर अमीर उल मोमनीन इत्यादि अंकित है। उसके चाँदी की सिक्कों से भी उसकी धार्मिक व खलीफा के प्रति निष्ठा का आभास मिलता है। उसका चाँदी का टंका ३२ पुरानी स्त्री व पुराने देहलीवाल के बराबर था। इन चाँदी के टंकों में १ तोला या १० रत्ती के बराबर चाँदी थी। इल्तुतमिश के चाँदी के टंके में नागरी लिपि का प्रयोग नहीं मिलता है।

इल्तुतमिश ने मिश्रित धातु के सिक्के भी चालू किये। यह सिक्के ४७ ग्रेन से लेकर ५६ ग्रेन वजन तक थे। इन सिक्कों पर एक ओर अल सुल्तान इल्तुतमिश, गोलाई में तथा किनारे देहली की या सुरताणा श्री समसदिण या अलसुल्तान आज़म इल्तुतमिश अलसुल्तान या अलदुनिया व दीन अबुमुजफ्फर अलतमश अलसुल्तान

या देहली अल सुल्तान अल आज़म शम्सुद्दीन अल दुनिया व दीन इत्यादि अंकित था तथा दूसरी ओर किसी-किसी सिक्के पर श्री सुल्तान लितिमिस, श्री हमीर आदि देवनागरी लिपि में अंकित होने के साथ गोलाई में चौहान अश्वारोही की आकृति भी अंकित थी।[1]

इसके अतिरिक्त इल्तुतमिश ने अपने शासनकाल से पूर्व के सभी मिश्रित धातु के प्रचलित सिक्कों के स्थान पर छोटे मूल्य के ताँबे के सिक्के जिन्हें जीतल कहते थे, भी निकलवाये। यह सिक्के २२ ग्रेन से लेकर ३३.५ ग्रेन तक थे। नेल्सन राइट के अनुसार इन सिक्कों के एक ओर इल्तुतमिश या अदल या शम्स तथा दूसरी ओर सुल्तान, शम्स या श्री समसदीण देवनागरी लिपि में अंकित मिलता है। नेल्सन राइट की सूची में ताँबे के सिक्के ढालने वाली टकसालों का नाम नहीं मिलता है अतएव यह कहना कठिन है कि यह सिक्के कहाँ से निकाले गये। इल्तुतमिश का यह जीतल देहलीवाल से भार में कम हुआ करता था। मिश्रित धातु तथा ताँबे के सिक्कों पर देवनागरी लिपि तथा भारतीय अलंकरण का प्रयोग उन सिक्कों की विशेषता है। ताँबे के ६ सिक्कों पर इल्तुतमिश का नाम है किन्तु नेल्सन राइट ने ताँबे के १० ऐसे सिक्कों का उल्लेख किया है जिन पर हजरत देहली, देहली, सुल्तान अंकित है। किन्तु उन सिक्कों पर सुल्तान इल्तुलमिश का नाम व तिथि नहीं है तथा उनका वजन १०.८ ग्रेन से लेकर ६७.५ ग्रेन तक है। इन सिक्कों की आकृति अन्य ताँबे के सिक्कों से भिन्न है। इन पर अदल सुल्तान अल आज़म अदलसुल्तान इत्यादि तथा दूसरी ओर ज़रब व हजरत देहली, जरब अल सुल्तान, अदल सुल्तान, देहली, हज़रत देहली या अल सुल्तान अंकित है।[2]

इल्तुतमिश ने ८ ग्रेन का अदल नामक सिक्का भी निकलवाया। नेल्सन राइट के अनुसार इस सिक्के का चाँदी व सोने के सिक्कों के साथ कोई भी सम्बन्ध न था। उसका मूल्य धातु के मूल्य पर ही निर्भर करता था। जिस प्रकार इल्तुतमिश के चाँदी के टंके विभिन्न मूल्यों के मिलते हैं उसी प्रकार से उसके अदल भी विभिन्न मूल्यों के मिलते हैं। अर्थात् ४०, ३६, २४, १८, १२ मूल्य के अदल उनका वजन ८६.४, ५७.६, २८.८, १४.४ ग्रेन तक था। वे एक टंके का क्रमशः १/२, १/३, १/६ तथा १/१२ भाग थे।

सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोजशाह (१२३६) का एक चाँदी का सिक्का, जिसका वज़न १६८.९३ ग्रेन है, का उल्लेख नेल्सन राइट ने किया है। यह सिक्का वज़न में इल्तुतमिश के चाँदी के सिक्के से भारी है किन्तु उस पर उसी प्रकार कलमा तथा उपाधियों के साथ रुकुनुद्दीन का नाम अंकित है। इल्तुतमिश के चाँदी के अधिकांश सिक्कों में टकसाल का नाम नहीं है, किन्तु तिथियाँ हैं। इसके बिलकुल विपरीत रुकुनुद्दीन फिरोज़ के चाँदी के सिक्कों में तिथि तो है परन्तु टकसाल का नाम नहीं है। रुकुनुद्दीन फिरोज़ ने मिश्रित धातु का भी सिक्का निकलवाया जो कि इल्तुत-

मिश के मिश्रित धातु के सिक्के की ही भांति है। उसमें एक ओर साँड अंकित है और देवनागरी लिपि में सुरितां श्री रुकण दीण तथा दूसरी ओर चौहान अश्वारोही की आकृति के साथ गोलार्ध में ही हमीर अंकित हैं।

रज़िया ने अपने शासनकाल में तीनों धातुओं, चाँदी मिश्रित धातु तथा तांबे के सिक्के लागू किये। उसने ६३५ हि० में चाँदी का सिक्का जारी किया जो कि १५८ ग्रेन का था। उसमें एक ओर फी अहद अल इमाम अल मुस्तसीर अमीर उल मोमनीन तथा किनारे ज़रब हिन्द··· शहूर शनह सम्श सलशीन सतभियह तथा दूसरी ओर अलसुल्तान अल आज़म जलालिया अल दुनिया व दीन मलकिए अलतमश इब्न अल सुल्तान नसीर उल अमीर उल मोमनीन अंकित है।[3] उसके मिश्रित धातु के सिक्के ५१ ग्रेन से लेकर ५३.५ ग्रेन तक थे, जिनमें एक ओर तो उसकी उपाधि तथा दूसरी ओर चौहान अश्वारोही की आकृति के अन्दर श्री हमीर देवनागरी लिपि में अंकित है। इसी प्रकार से उसके ताँबे के सिक्के ४३ से ४७.३ ग्रेन वज़न के हैं और उसमें एक ओर खड़ा हुआ साड़ तथा देवनागरी में श्री सामन्त तथा दूसरी ओर रज़िया शब्द अंकित है। रज़िया के चाँदी के सिक्के में तो तिथि अंकित है किन्तु अन्य सिक्कों में न तो तिथि दी हुई है और न ही टकसाल का नाम दिया गया है।

सुल्तान बहराम शाह (१२३८-१२४१) ने अपने शासनकाल में केवल मिश्रित धातु के ही सिक्के निकलवाये। यह सिक्के दिल्ली की टकसाल के हैं और उन पर कोई तिथि नहीं अंकित है। मिश्रित धातु के यह सिक्के ५०.८ ग्रेन से लेकर ५८'५ ग्रेन तक के हैं और उन पर एक ओर या तो केवल अल सुल्तान आज़म अल दुनिया व दीन या साँड़ की आकृति के साथ देवनागरी में सुलतां श्री मुअज़ या अबुमुजफ्फर बहरामशाह अलसुल्तान तथा दूसरी ओर चौहान अश्वारोही की आकृति के साथ बिन सुल्तान अंकित है।

अलाउद्दीन मसूदशाह (१२४१-४५) ने अपने शासनकाल में चाँदी और मिश्रित धातु के ही सिक्के निकलवाये। उसके चाँदी के सिक्के १४२ ग्रेन से लेकर १७० ग्रेन तक के हैं। उनमें से एक सिक्का ६४० हि० का है, शेष सिक्कों पर न तो टकसाल का नाम है और न ही तिथि दी हुई है। चाँदी के सिक्कों पर एक ओर तो अनुश्रुति तथा दूसरी ओर सुल्तान की पदवी व नाम अंकित है। उसके मिश्रित धातु के सिक्कों की विशेषता यह है कि उनमें कुछ सिक्कों में अनुश्रुति तथा शेष सिक्कों में एक ओर साँड़ की आकृति के साथ या तो देवनागरी लिपि में सुरताणि श्री अलावदिण या अलादिण अंकित है तथा दूसरी ओर चौहान अश्वारोही की आकृति के साथ श्री हमीर या फारसी में मसूदशाह अंकित है। मिश्रित धातु के सिक्के ५० ग्रेन से लेकर ५८ ग्रेन तक के वज़न के हैं।[4]

सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद ने (१२४६-१२६६) ने अपने शासनकाल में सोने, चाँदी मिश्रित धातु व ताँबे के सिक्के निकलवाये। उसका सोने का सिक्का १६८.५

ग्रेन का है। सिक्के के एक ओर अनुश्रुति है तथा दूसरी ओर सुल्तान का नाम व पदवी अंकित है। चाँदी के सिक्कों का भार १४० ग्रेन से १७० ग्रेन तक था। यह सिक्के देहली लखनौती की टकसालों से ही निकाले गये। केवल दो सिक्कों पर तिथि ६५५ हि० तथा ६६१ हि० अंकित है, शेष पर कोई तिथि नहीं अंकित है। सिक्के के एक ओर अनुश्रुति के साथ व हजरत देहली तथा दूसरी ओर सुल्तान का नाम व उपाधि अंकित है। मिश्रित धातु के सिक्कों पर न तो तिथि है और न टकसाल का नाम है। उन पर केवल अल सुल्तान आज़म नासिर उद दुनिया व दीन तथा दूसरी ओर चौहान अश्वारोही की आकृति के साथ देवनागरी लिपि में श्री हमीर अंकित है। इन सिक्कों का भार १८.७ ग्रेन से लेकर ५५ ग्रेन तक है। उसके ताँबे के सिक्के १२.५ से लेकर १३ ग्रेन तक के हैं और उन पर कोई तिथि नहीं अंकित है। सिक्के के एक ओर नासिर अदल तथा दूसरी ओर हज़रत देहली अंकित है जिससे मालूम होता है कि यह सिक्के दिल्ली की टकसाल से ही निकाले गये।

बलबन (१२६६-१२८७) ने १६८ ग्रेन भार का सोने का सिक्का ६७३ हि० में दिल्ली से ज़ारी किया। उसके चाँदी के सिक्के का वज़न १६४ ग्रेन से १६८.७ ग्रेन तक था। इन सिक्कों के एक ओर अनुश्रुति दूसरी ओर उपाधियों के साथ उसका नाम अंकित है। यह सिक्के दिल्ली या लखनौती की टकसाल के बने हैं। मिश्रित धातु के सिक्कों का वज़न ५३.५ ग्रेन से लेकर ५६ ग्रेन तक था। उनमें एक ओर अनुश्रुति तथा दूसरी ओर फ़ारसी में बलबन तथा देवनागरी लिपि में श्री सुल्तान ग्यासुद्दीन अंकित है। इसी प्रकार ताँबे के सिक्के का वज़न ३१ ग्रेन से ७१.५ ग्रेन तक था और उन पर अलसुल्तान अलआज़म या अदल ग्यास और दूसरी ओर ग्यास अल दुनिया व दीन तथा व हजरत देहली अंकित है।

बलबन के उत्तराधिकारी मुइज़ुद्दीन कैकुबाद (१२८७-१२९०) ने १६६ ग्रेन भार का सोने का सिक्का निकाला, जो कि पूर्व शासकों द्वारा जारी किये गये सोने के सिक्कों के वज़न से कम था। उसने १६५ ग्रेन का चाँदी, ५४ ग्रेन के मिश्रित धातु व २३ ग्रेन से लेकर ६६.५ ग्रेन वज़न के ताँबे के सिक्के निकलवाये। अपने पितामह बलबन की भाँति उसने भी मिश्रित धातु के सिक्कों पर एक ओर अनुश्रुति तथा दूसरी ओर फारसी में कैकुबाद व देवनागरी में श्री मुलतां मुजुदी अंकित करवाया। क़ेवल मिश्रित धातु में सिक्कों को छोड़कर अन्य सभी सिक्के दिल्ली से ही जारी किये गये थे।

उपरोक्त विवरण के आधार पर मुद्रा सम्बन्धी विकास के कुछ तथ्य उभर कर सामने आते हैं। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक वर्षों में देहलीवाल, जो कि चाँदी व ताँबे की मिश्रित धातु का बना होता था, का ही प्रचलन रहा। बाद में जैसा कि मिनहज उस सिराज के ग्रन्थ से मालूम होता है कि देहलीवाल का स्थान इल्तुतमिश के जीतल ने ले लिया। नेलसन राइट के अनुसार यह जीतल टंके का २४वाँ भाग

होता था। कैकुबाद ने ८ ग्रेन का एक जीतल निकाला जो कि टंके का १/१६ भाग होता था। सल्तनत की स्थापना से लेकर अगले ६० वर्षों तक हिन्दू मुद्रा प्रणाली की छाप सुल्तानों द्वारा निकाले गये सिक्कों पर निरन्तर बनी रही। उन सिक्कों में सांड़ व चौहान अश्वारोही की आकृति के अतिरिक्त देवनागरी लिपि में सुल्तान का नाम होना पुरानी परम्परा के अनुसार था। इस काल में अन्य धातुओं की तुलना में सोने के सिक्कों का प्रचलन कम था। चाँदी, मिश्रित धातु व ताँबे के सिक्कों का प्रचलन कहीं अधिक मालुम होता है। टकसालों की संख्या भी बड़ी सीमित ही रही क्योंकि अधिकांश सिक्के दिल्ली से ही निकलते थे। इल्तुतमिश का ताँबे का केवल एक सिक्का मुल्तान तथा सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के तीन चाँदी के सिक्के लखनौती के टकसाल के हैं। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के काल में लखनौती, जहाँ से अधिक से अधिक चाँदी वाह्य देशों से आती थी, का सल्तनत के अन्तर्गत होने के कारण ही, चाँदी के अधिक सिक्के लखनौती की टकसाल से निकाले गये।

सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी (१२९०-९५) के अन्तर्गत १६७ ग्रेन से लेकर १७० ग्रेन वज़न के सोने के निकाले गये। उनका वज़न कैकुवाद के सोने के सिक्कों से १ ग्रेन से ३ ग्रेन तक अधिक था। इन सिक्कों के एक ओर अनुश्रुति तथा दूसरी ओर पदवी के साथ सुल्तान का नाम अंकित था। यही वात उसके चाँदी के सिक्कों में देखने को मिलती है। उसके चाँदी के सिक्कों का भार १८५ ग्रेन से लेकर १६९ ग्रेन तक था जो पिछले शासनकाल से कहीं अधिक था। उनकी संख्या भी पिछले शासनकाल की तुलना में अधिक थी। जलालुद्दीन फिरोज़शाह ने मिश्रित धातु के सिक्कों में मुइजुद्दीन कैकुबाद की भाँति एक ओर तो अनुश्रुति दूसरी ओर शाह फिरोज़ तथा देवनागरी में श्री सुलतां जलालुद्दीन अंकित करवाया, जो कि पुरानी परम्परा का अनुकरण कहा जा सकता है। उसके ताँबे के सिक्कों का वज़न ३२.५ ग्रेन से लेकर ६८.५ ग्रेन तक था और उन पर एक ओर अल सुल्तान आज़म तथा दूसरी ओर जलालु दुनियाँ व अलदीन अंकित है या अदलशाह फिरोज़ तथा हज़रत देहली अंकित है। उसके सभी सिक्के देहली की टकसाल से ही निकले।[५] जलालुद्दीन फिरोज़शाह खिल्जी के उत्तराधिकारी रुकुनुद्दीन इब्राहीम शाह (१२९५) का मिश्रित धातु का केवल एक ही सिक्का उपलब्ध हुआ है, जो कि ४६.५ से ५० ग्रेन वज़न का है। निःसन्देह इसका वज़न पूर्वकाल के मिश्रित धातु के सिक्के से कम है।

पूर्व शासकों की तुलना में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी (१२९५-१३१५) के सोने के सिक्कों की संख्या अधिक है। इन सिक्कों का भार १६७ ग्रेन से लेकर १७० ग्रेन तक है। यह सिक्के दिल्ली व देवगिरि दोनों ही स्थानों स निकाले गए। इन सिक्कों पर अंकित अनुश्रुति भी पूर्व के सिक्कों से भिन्न है, क्योंकि इसमें एक ओर अलमुल्तान आला आज़म अलाउद्दीन व दीन अबु मुजफ्फर मुहम्मदशाह अलसुल्तान तथा दूसरी ओर सिकन्दर अल सानी यामिन अल खिलाफत नासिर अमीर उल मोम-

नीन के साथ टकसाल का नाम व तिथि भी दी हुई है। इसी प्रकार से उसके चाँदी के सिक्कों की भी बड़ी संख्या है। उसके चाँदी के सिक्के १६४ ग्रेन से १७१.५ ग्रेन वज़न तक है। यह सिक्के मुख्यतः दिल्ली व देवगिरि से ही निकाले गये। इन सिक्कों की विशेषता यह है कि उन पर टकसाल का नाम तथा तिथि अंकित है। पिछले शासनकाल की तुलना में उनका भार भी अधिक था। इन सिक्कों पर सिकन्दर अल सानी शब्द का प्रयोग सुल्तान की दिग्विजय का प्रमाण कहा जा सकता है। चाँदी के सिक्कों की भाँति इस सुल्तान के मिश्रित धातु के सिक्कों की भी संख्या अत्यधिक है। यह सिक्के ५५ ग्रेन से ५६ ग्रेन तक के हैं, अतएव पूर्व शासकों के मिश्रित धातु के सिक्कों की भी संख्या अधिक है। यह सिक्के ५५ ग्रेन से ५६ ग्रेन तक के हैं, अतएव पूर्व शासकों के मिश्रित धातु के सिक्कों की तुलना में उनका वज़न अधिक है। यद्यपि इन सिक्कों में टकसाल का नाम अंकित नहीं है किन्तु उन पर तिथि अंकित है। कुछ सिक्कों में भी सुल्तां अलावदी देवनागरी में अंकित है जो कि पुरानी परम्परा के प्रचलन का परिचायक है। उसने ताँबे के सिक्के भी जारी किए। इन सिक्कों का वज़न २४.६ ग्रेन से ७० ग्रेन तक है, तथा इन पर एक ओर अल सुल्तान अल आज़म या अदल मुहम्मद शाह तथा दूसरी ओर अलाउद्दुनिया व दीन या हज़रत देहली अंकित है। यह सिक्के भी दिल्ली की टकसाल से ही निकाले गए। इस प्रकार से पूर्व काल की तुलना में ताँबे के सिक्कों का भी वज़न अधिक था। इस काल में विभिन्न धातुओं के सिक्कों के वज़न में वृद्धि तथा उनकी संख्या में वृद्धि का कई कारण था। सर्वप्रथम अलाउद्दीन को दक्षिण के राज्यों से अधिक से अधिक सोना-चाँदी प्राप्त हुआ। फिरिश्ता के अनुसार उसे देवगिरि के शासक रामचन्द्रदेव से सिंहासनारोहण से पूर्व ७.७ मैट्रिक टन सोना तथा १२.८ मैट्रिक टन चाँदी प्राप्त हुआ था। बरनी के अनुसार मलिक काफ़ूर को पाण्ड्य राज्य से ९६,००० मन सोना जो कि २४१ मैट्रिक टन के लगभग था, प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप इस काल में सोने व चाँदी के अधिक सिक्के निकले और पूर्व काल की तुलना में चाँदी के सिक्कों में अन्य धातु की मिलावट कम होने से उनकी चमक अधिक थी। अलाउद्दीन के समय सोने के सिक्के इतने अधिक निकाले गए कि वे मुख्यतः राजकोष में ही रखे रहे। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में जब अमीर तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया तब उसे यह सिक्के अत्यधिक मात्रा में प्राप्त हुए। दूसरे, इस काल में मुद्रा के प्रयोग में भी पूर्व कालों की तुलना में अत्यधिक वृद्धि हुई। अलाउद्दीन की मूल्य नियन्त्रण प्रणाली में वस्तुओं के मूल्य टंका व जीतल में दिये जाने से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।

दक्षिण भारत से निरन्तर सोना व चाँदी प्राप्त होने के कारण ही सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिल्जी के सोने के सिक्के का वज़न १६६ ग्रेन ही रहा। अपने शासनकाल के चार वर्षों (१३१६-१३२०) में उसने दिल्ली से उसी वज़न का सिक्के निकलवाये। पूर्व शासनकाल की तुलना में उसके सोने के सिक्के कम हैं। चाँदी के सिक्कों का वज़न १६५ ग्रेन व १७० ग्रेन के मध्य ही रहा। इन सिक्कों की

विशेषता यह है कि उनमें दिल्ली का उल्लेख हजरत देहली, दारुल मुल्क, हजरत दारुल खिलाफत, दारुल इस्लाम के रूप में है तथा उन पर तिथि अंकित हैं। इन सिक्कों के एक ओर अल सुल्तान अल आजम कुतुबुद्दुनिया व दीन आबु मुजफ्फर मुबारकशाह अल सुल्तान बिन सुल्तान और दूसरी ओर सिकन्दर अल जमाँ यामिनुल खलीफा नासिर अमीरुल मोमनीन अंकित है तथा दूसरी ओर किनारे तिथि दी हुई है। उसी प्रकार से उसके मिश्रित धातु के सिक्कों का वजन ५० ग्रेन से लेकर ८३ ग्रेन तक था। इन सिक्कों की तुलना में ताँबे के सिक्कों की संख्या कम रही। उनका वजन ३३.२ ग्रेन से लेकर ५५.२ ग्रेन के मध्य ही रहा।

सुल्तान नसीरुद्दीन खुसरोशाह ने (१३२० ई०) में १७० ग्रेन का सोने का सिक्का निकलवाया, जो कि कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के सोने के सिक्के से वज़न में भारी था। किन्तु उसके चाँदी के सिक्कों का भार १४५.५ ग्रेन ही रह गया, जो कि पूर्व शासक के चाँदी के सिक्कों के वज़न से हल्का था। यही दशा उसके मिश्रित धातु के सिक्कों, जिसका वजन ५७ ग्रेन था, की थी।

सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक (१३२०-३५) के शासनकाल में सोने के सिक्के के वज़न में वृद्धि हुई। उसका वज़न १७०.१ ग्रेन हो गया। इस वजन के बढ़ने का एक-मात्र कारण दक्षिण के हिन्दू राज्यों से अधिक मात्रा में सोना प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार से चाँदी के सिक्के के भार में भी वृद्धि हुई। उसने चाँदी के सिक्के १६६.५ ग्रेन से लेकर १७१ ग्रेन तक थे। यह सिक्के देवगिरि की टकसाल से भी निकाले गये। चाँदी के सिक्कों की तुलना में मिश्रित धातु के सिक्कों की संख्या अधिक थी। यह सिक्के ५६ ग्रेन से लेकर ६०.५ ग्रेन वज़न तक के थे। इन सिक्कों की विशेषता यह है कि उनके एक ओर अलसुल्तान उल ग़ाजी ग्यासुदुनिया व दीन तथा दूसरी ओर अबुमुजफ्फर तुग़लकशाह अल सुल्तान व तिथि अंकित हैं। इन सिक्कों पर टकसाल का नाम नहीं है। किन्तु मिश्रित धातु के सिक्कों पर देवनागरी लिपि में सुल्तान के नाम अंकित किये जाने की जो परिपाटी जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी के शासनकाल के उपरान्त रुक गई थी वह पुनः चालू कर दी गई। ग्यासुद्दीन तुग़लक का नाम श्री सुल्तान गयासुद्दीन केवल एक सिक्के पर अंकित मिलता है। इस काल में ताँबे के सिक्के कम संख्या में ढाले गए। नेल्सन राइट ने केवल दो ताँबे के सिक्कों जिनका भार ४५ ग्रेन व ५.४ ग्रेन था, का उल्लेख किया है।

मुद्रा प्रणाली के विकास की दृष्टि से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक का शासनकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उसके व्यक्तित्व की झलक उसके सिक्कों पर देखने को मिलती है। अभी तक जो सिक्के शासकों ने निकलवाये वे नीरस थे। उनकी अनुश्रुतियाँ एक ही तरह की थीं। किन्तु मुहम्मद तुग़लक ने अपने सिक्कों पर नवीन आख्यान व पदवियाँ अंकित करवाईं। फारसी भाषा का प्रयोग करते हुए उसने कुछ नवीन पदवियों का आविष्कार किया और उन्हें सिक्कों पर अंकित करवाया। इससे पूर्ववर्ती शासकों

ने सिक्कों पर सुल्तानशाह अल आज़म, सिकन्दर इत्यादि, उपाधियों का ही प्रयोग किया था, किन्तु उसने अल आजम तथा सिकन्दर का प्रयोग न करके केवल सुल्तान व शाह की उपाधि का प्रयोग सिक्कों पर करवाया। उसने अपने सिक्कों पर अनेक नवीन उपाधियाँ जैसे कि न्यायप्रिय सुल्तान, ईश्वर की अनुकम्पा की आशा रखने वाला दास, ईश्वर की सहायता की कामना करने वाला, ईश्वर की अनुकम्पा एवं आशीर्वाद की आशा रखने वाला, ईश्वर के मार्ग पर युद्ध करने वाला, आशावादी दास इत्यादि का प्रयोग किया है। सर्वप्रथम उसने ७२५ हि० में अपने नाम का दिल्ली से १६८ ग्रेन का सोने का सिक्का निकलवाया, जिसमें कि एक ओर कलमा (ला अल्लाह अलां अल्लाह मुहम्मद रसूल अल्लाह) तथा दूसरी ओर आवुबक्र अल मुजाहिद फी रवी अल्लाह मुहम्मद बिन तुग़लक शाह अंकित करवाया। इससे पूर्व के शासकों के सोने के सिक्के पर कलमा देखने को नहीं मिलता है। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद तथा वलवन, कैकुवाद, जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह के सोने के सिक्के पर भी अहद अल इमाम अल मुस्तसिम अमीर उल मोमनीन या अलाउद्दीन खिल्जी, कुतुवुद्दीन मुबारक़शाह, खुसरो खान के सोने के सिक्के पर अल सुल्तान अल आजम अला उद दुनिया व दीन अबुल मुजफ्फर ही अंकित मिलता है।[६] अन्य शासकों की भाँति उसके सोने के सिक्के विभिन्न वज़न के थे। उनका वज़न ८८.४ ग्रेन से लेकर १९८ ग्रेन तक था। १३२५-२६ ई० में जो सोने के सिक्के दिल्ली व दौलतावाद से निकाले गये उनका वजन १६८, १६९ तथा १७३ ग्रेन था, किन्तु ७२६ ई० के उपरान्त उनका वज़न बराबर बढ़ता गया और यह वज़न १७३ ग्रेन से बढ़ते-बढ़ते १९९.५ ग्रेन तक पहुँच गया।[७] उसने ७४२, ७४३, ७४४ हि० अर्थात् १३४१, १३४२, १३४३ ई० में १६८ ग्रेन, वज़न के सोने के सिक्के निकलवाये जिन पर उसने खलीफा अल मुस्तकफी का नामांकित करवाया। इसी प्रकार से उसके तीन अन्य सोने के सिक्के, जो कि क्रमशः १६८, १६९, १७० ग्रेन के थे, ऐसे हैं जिन पर खलीफा अल हाकिम द्वितीय का नाम मिलता है। इन सिक्कों पर न तो टकसाल का नाम है और न ही तिथि अंकित है। सोने के सभी सिक्के विभिन्न शहरों की टकसालों, जैसे कि देहली, दौलतावाद, सुल्तानपुर इत्यादि से निकाले गये। पूर्व शासकों की तुलना में उसके इन सिक्कों की संख्या भी अधिक मालूम पड़ती है। बंगाल पर सल्तनत का प्रभुत्व न रहने पर जब वहाँ से प्रचुर मात्रा में चाँदी मिलना बन्द हो गया तो १३३०-३२ के बाद मुहम्मद तुग़लक को पुनः सोने के पुराने टंके जारी रखने पड़े किन्तु अब उनका वज़न केवल १६८, १६९, १७१ ग्रेन ही रह गया।

एडवर्ड थामस के अनुसार अपनी राजधानी दौलतावाद में स्थापित करने के उपरान्त मुहम्मद तुग़लक ने जिस्फी नामक ८८ ग्रेन का सोने का सिक्का निकलवाया।[८] मेंहदी हसन के अनुसार उसने १३३३-३४ में सोने के टंके का वज़न घटा दिया और १६९ ग्रेन का सोने का टंका चालू करवाया। १३४३ में खलीफा का मानपत्र प्राप्त करने के उपरान्त उसने सोने के टंके का वज़न १७० ग्रेन से करके

१६३.५ ग्रेन कर दिया।[8] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य वजन के सोने के टंके भी प्रचलित रहे।

मुहम्मद तुग़लक ने चाँदी के सिक्के भी ढलवाये। इन चाँदी के सिक्कों का वजन १४१.५ से १७०.३ ग्रेन था। १४१.५ ग्रेन के चाँदी के सिक्के, जिसका नाम अदली था, निकालने का मुख्य उद्देश्य पूर्व काल के १७५ ग्रेन के चाँदी के टंकों को प्रचलन से हटाना था, क्योंकि इस काल में संसार में सभी देशों में चाँदी का अभाव था। अदली के अतिरिक्त उसने ५१ से ५६ ग्रेन वज़न के अन्य चाँदी के सिक्के, जैसे कि ५० कनी, ४० कनी, १६ कनी, १२ कनी, ८ कनी, ६ कनी, १ कनी नामक सिक्के भी जारी किये। मुहम्मद तुग़लक ने मिश्रित धातु के भी सिक्के निकलवाये। मिश्रित धातु के सिक्के का वज़न ५३ ग्रेन से लेकर १४३ ग्रेन तक था। उसने अपने नाम का मिश्रित धातु का विशेष सिक्का निकलवाया उसका वज़न १३४.७ ग्रेन, खलीफा अल मुस्तकफी के नाम के सिक्के का वज़न १४३ ग्रेन तथा खलीफा अल हकीम द्वितीय के नाम के सिक्के का वज़न १३८-१३९ ग्रेन था। शेष सिक्कों का वज़न ४० ग्रेन से ऊपर ही था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में मुद्रा की माँग में अत्यधिक वृद्धि हुई जिसके कारण मुहम्मद तुग़लक को ताँबे व पीतल के सांकेतिक सिक्के निकलवाने पड़े। इन सिक्कों को निकलवाने पर सुल्तान को सन्देह हुआ कि कहीं आम जनता इन सिक्कों को स्वीकार न करे अतएव उसने उन पर कुरान की अनुश्रुतियाँ या उक्तियाँ जैसे कि ईश्वर, पैगम्बर तथा अपने शासक की आज्ञा का पालन करो, यदि कोई सुल्तान न हुआ तो जनता का एक वर्ग दूसरे वर्ग को हड़प लेगा, इत्यादि अंकित करवाई। इन सिक्कों पर सिक्के का मूल्य अंकित था। वास्तव में मुहम्मद तुग़लक के ताँबे के सिक्के दो प्रकार के थे—(१) ताँबे के मूल सिक्के (२) सांकेतिक सिक्के। ताँबे के मूल सिक्के का वज़न ४८ ग्रेन से लेकर १२५ ग्रेन तक था। इनमें से ५२ ग्रेन व १२५ ग्रेन के सिक्कों पर खलीफाओं के नाम अंकित करवाए गये। शेष वज़न के सिक्कों पर उसका नाम अंकित मिलता है। ताँबे के सांकेतिक सिक्के का वजन ४ ग्रेन से लेकर १४७ ग्रेन तक था। सांकेतिक मुद्रा को लागू करने के उपरान्त जब व्यापार एवं विनिमय अस्त-व्यस्त होने लगा तो उसने यह सिक्के प्रचलन से हटा लिए।[10] मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में साम्राज्य की सीमा के विस्तार के साथ-साथ कुछ नई टकसालों के नाम भी मिलते हैं, जैसे कि सुल्तानपुर, सतगाँव, लखनौती, धार, तुग़लकपुर उर्फ त्रिहुत इत्यादि। टकसालों की संख्या में वृद्धि भी मुद्रा के प्रसार की प्रक्रिया को इंगित करती है।

सुल्तान फ़िरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में मुद्रा में कुछ विशेष सुधार हुए। उसने मुहम्मद बिन तुग़लक की मुद्रा व्यवस्था को पुर्नगठित किया। अभी तक टंका ही मुद्रा प्रणाली की इकाई थी। चाँदी व सोने के टंके निकाले जाते रहे और उनमें १:१०

का अनुपात बराबर बना रहा। उसने अपने शासनकाल के प्रथम सात वर्षों में सोने के टंकों पर मिश्र के खलीफा, खलीफा अबुल अब्बास अहमद, खलीफा इमाम अमीर उल मोमनीन अबुल फतह, खलीफा मोतजद विल्लाह तथा खफीफ इमाम अबु अब्दुल्लाह के नाम अंकित करवाए। उसके सोने के टंके का वज़न १६८ ग्रेन से लेकर १७३ ग्रेन तक था। उसके समय दो प्रकार के चाँदी के सिक्के प्रचलित थे—१४० ग्रेन तथा १७५ ग्रेन वाले जीतल। इन सिक्कों के अतिरिक्त चाँदी के छोटे सिक्के जैसे कि चिहल-ओ-हश्त कनी (४८ कनी) विश्त ओ पंजकनी (२५ कनी) विश्त ओ चार कनी (२४ कनी) द्वाज़दा कनी (१२ कनी) शशकनी (६ कनी) दो कनी यक कनी, नाम के सिक्के भी प्रचलित किये गए चिह्ल ओ इश्त कनी (४८ कनी) पुराने टंका ३/४ भाग, त्रिश्त ओ पंजकनी (२५ कनी) अदल का आधा, विश्त-ओ-चहार कनी (२४ कनी) पुराने टंका का ३/४ भाग, द्वाज़दा कनी (१२ कनी) पुराने टंका का ३/१६वाँ भाग, दह कनी (१० कनी) अदल का १/५ भाग होता था।[1] "हश्त कनी, दो कनी तथा यक कनी के सिक्के मुहम्मद बिन तुग़लक के शासनकाल में भी प्रचलित थे। किन्तु फिरोजशाह तुग़लक ने दो छोटे सिक्के" आधा जीतल तथा 'भीख' जीतल का चौथाई भाग नामक सिक्के निकालकर दिन-प्रतिदिन के लेन-देन में साधारण लोगों की सहायता की।[2] छोटे सिक्के, चाँदी व ताँबे की मिश्रित धातु के होते थे, जिनमें ताँबे का अनुपात चाँदी की तुलना में अधिक रहता था।

बरनी ने अपने ग्रन्थ तारीख-ए-फिरोजशाही में दिल्ली में प्रचलित सिक्कों में दाँग और धीरम का जगह-जगह उल्लेख किया है। शिहाबुद्दीन अल उमरी ने भी दाँग जिसे फिल्स कहते थे, का उल्लेख किया है। यह फिल्स या द्विवचन में फुलूस ४० रत्ती भार का शुद्ध ताँबे का सिक्का होता था। इस काल में चाँदी का एक टंका = ४८ जीतल = १९२ दाँग = ४८० धीरम होता था। उत्तरी भारत में त्रिधातु के सिक्के का प्रचलन बंगाल में उपलब्ध सोने व चाँदी के ऊपर निर्भर करता था। बंगाल में कुछ सोने व चाँदी के सिक्के ढाले जाते थे। इसके अतिरिक्त भारत में अधिकतर सोना पश्चिमी संसार तथा चीन आता था जिसके कारण उसका अभाव कभी नहीं रहा। १३वीं शताब्दी के अन्त तथा १४वीं शताब्दी में जब दिल्ली के सुल्तानों ने दक्षिण पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया तो वहाँ से भी उन्हें सोना मिलना शुरू हुआ। इसलिए सोने के सिक्कों का वज़न व मात्रा में वृद्धि हुई। चाँदी की अत्यधिक उपलब्धि जब भी हुई तो शुद्ध चाँदी के सिक्कों का जारी किया जाना सम्भव हुआ। चाँदी के सिक्कों में राँगा न मिलाये जाने के कारण वे अत्यधिक चमकीले व आकर्षक दिखाई पड़ते थे। अलाउद्दीन के समय निकाले गये सोने के सिक्कों की मात्रा इतनी अधिक थी कि मुहम्मद तुग़लक ने दोनों हाथों से उन्हें लोगों को दान या उपहार में देकर उनकी मात्रा कम कर दी। किन्तु फिर भी सोने के टंकों की १४वीं शताब्दी के अन्त तक कोई कमी नहीं रही।

सैय्यद शासकों के जो सिक्के प्राप्त हुए हैं तथा जिनका उल्लेख नेल्सन राइट ने केटेलाग ऑव इण्डियन क्वाएन्स इन इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता में किया है। उनमें से मुवारकशाह (१४२१-१४३३) के सिक्के मुख्यतः ताँवे के थे जिनका भार ६७ ग्रेन से लेकर १६७.५ ग्रेन तक था। यह सिक्के केवल दिल्ली की टकसाल से निकाले गये। दिल्ली का नाम इन सिक्कों में हज़रत-ए-देहली तथा दारुल मुल्क देहली भी अंकित है। इन सिक्कों के एक ओर शाह मुवारक सुल्तान जरिबत, सुल्तान हज़रत-ए-देहली या मुवारकशाह सुल्तान अंकित है तथा दूसरी ओर अमीरुल मोमनीन नायव अमीर अंकित है।[१३] द्वितीय सैय्यद सुल्तान मुहम्मद ने सोने, मिश्रित धातु तथा ताँवे के सिक्के जारी किये। यह सिक्के देहली की टकसाल से ही निकाले गये। इन सिक्कों पर हज़रत देहली तथा दारुल-मुल्क देहली अंकित है। सोने के सिक्के का भार १७.८ ग्रेन था, जिसमें कि एक ओर फी ज़मन अल इमाम अमीरूल मोमनीन, अमीर खल्द खलीफह तथा दूसरी ओर अलसुल्तान आज़म अबुल मुहम्मदशाह बिन फरीदशाह बिन हज़रत अंकित था। इसी भाँति मुहम्मद शाह ने मिश्रित धातु के सिक्के भी दिल्ली ही से निकाले। इन सिक्कों पर भी हज़रत देहली अंकित था। इन सिक्कों का भार १२६.५ से १३८.५ ग्रेन तक था तथा उनके एक ओर सुल्तान मुहम्मद शाह फरीद शाह, खिज्र शाह व हज़रत देहली तथा दूसरी ओर अल खलीफा अमीरूल मोमनीन खल्द खलीफा अंकित था। उसके ताँवे के सिक्कों का भार ७०.५ ग्रेन से लेकर ८४ ग्रेन तक था, जिनमें कि एक ओर मुहम्मद शाह सुल्तान तथा दूसरी ओर दारुल मुल्क देहली अंकित था। सैय्यद वंश के अन्तिम शासक आलम शाह (१४४५-१४५१) के मिश्रित धातु तथा ताँवे के सिक्कों का ही उल्लेख मिलता है। मिश्रित धातु सिक्के का भार १२८.२ ग्रेन तथा ताँवे के सिक्के का भार ६८.७ ग्रेन से लेकर १३६ ग्रेन तक था। सिक्के पर एक ओर अल खलीफाह अमीरुल मोमनीन खल्द खलीफाह तथा दूसरी ओर सुल्तान आलम शाह विन मुहम्मदशाह अंकित था। उसके ताँवे के सिक्कों का भार ६८.७ ग्रेन से लेकर १३६ ग्रेन तक था और उन पर एक ओर आलमशाह या आलमशाह सुल्तान तथा दूसरी ओर अमीरुल मोमनीन नायव अमीर या दारुल मुल्क देहली अंकित था।[१४]

सुल्तान वहलोल लोदी (१४५१-१४८८) ने जीतल के स्थान पर वहलोली नामक सिक्का चालू किया। वहलोली टंका का १/४ होता था। वहलोल लोदी के काल के मिलने वाले सिक्कों में दो प्रकार के सिक्कों, मिश्रित धातु तथा ताँवे के सिक्कों का उल्लेख नेल्सन राइट ने किया है। मिश्रित धातु के सिक्के ५६ ग्रेन से लेकर १४७.५ ग्रेन तक के हैं। इन सिक्कों पर एक ओर फी ज़मन अमीर उल मोमनीन खल्द खिलाफत या अल खलीफा अमीर उल मोमनीन खल्द खिलाफत तथा दूसरी ओर अल मुतवक्किल अली अलरहम वहलोलशाह सुल्तान व हज़रत देहली अंकित है। इन सिक्कों पर टकसाल का नाम हज़रत देहली ही दिया हुआ है। उसने देहली से ताँवे के सिक्के भी जारी किये। इन सिक्कों का भार ६०.५ ग्रेन से लेकर १५० ग्रेन तक है। इन

सिक्कों पर एक ओर बहलोलशाह सुल्तान, दूसरी ओर अमीर उल मोमनीन नायब अमीर अंकित है। बहलोल लोदी ने ताँबे के सिक्के देहली व जौनपुर के ही जारी किये। दिल्ली से जारी किये गये सिक्कों में टकसाल का नाम हज़रत देहली या दारुल मुल्क देहली तथा जौनपुर की टकसाल का नाम शहर जौनपुर मिलता है। ताँबे के अधिकांश सिक्के देहली से ही जारी किये गये।

अपने पिता की भाँति सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१७) ने भी मिश्रित धातु व ताँबे के सिक्के जारी किये। उसके द्वारा मिश्रित धातु के जारी किये सिक्कों का भार १७ ग्रेन से लेकर १४४ ग्रन तक था। सिक्कों पर अंकित शब्दों में पूर्व की तुलना में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। उसके सिक्कों पर एक ओर फी ज़मीन अमीर उल मोमनीन खिल्दत खिलीफह तथा दूसरी ओर अलमुतवक्किल अलहरमन सिकन्दर शाह बहलोल शाह सुल्तान अंकित है। मिश्रित धातु के इन सिक्कों पर कहीं भी टकसाल नाम अंकित नहीं मिलता है। नेल्सन राइट ने जिन २६-२७ सिक्कों का विवरण दिया है, उसमें टकसाल का नाम नहीं है।[१५] सिकन्दर लोदी ने ताँबे का टंका भी चलाया। चाँदी क एका टंका सिकन्दर लोदी के २० ताँबे के टंके के बराबर था।[१६]

नेल्सन राइट के अनुसार सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६) ने केवल मिश्रित धातु के सिक्के ही जारी किये। मिश्रित धातु के सिक्कों का भार ३८.५ ग्रेन से लेकर ८८.५ ग्रेन तक है तथा उनके एक ओर फी ज़मन अमीर उल मोमनीन खिल्दत खलीफाह तथा दूसरी ओर अलमुतवक्किल अली अलरहमन इब्राहिमशाह सिकन्दरशाह सुल्तान अंकित है। सुल्तान सिकन्दर लोदी की भाँति इब्राहीम लोदी के सिक्कों पर भी टकसाल का नाम अंकित नहीं मिलता है।

१२१० से लेकर १५२६ ई० तक के काल के उपलब्ध सिक्कों की संख्या विभिन्न सुल्तानों के शासनकाल के हिसाब से इस प्रकार है :—

शासक	सोने के सिक्के	चाँदी के सिक्के	मिश्रित धातु के सिक्के	ताँबे के सिक्के
इल्तुतमिश*	×	८	३०	६
रुकुनुद्दीन फिरोज़शाह	×	१	२	×

* नेल्सन राइट ने १० ऐसे ताँबे के सिक्कों का विवरण दिया है जो कि सम्भवतः इल्तुतमिश के हैं, जिनका आकार चौकोर, गोल तथा षट्भुजाकार है। यह सिक्के हज़रत देहली तथा मुल्तान की टकसालों से जारी किये गये। इन पर सुल्तान इल्तुतमिश का नाम नहीं दिया है किन्तु सिक्कों के एक ओर अदल सुल्तान आज़म, अदल सुल्तान और अदल तथा दूसरी ओर ज़रब हज़रत देहली, ज़रब अलसुल्तान, अदल अल मुल्तान अंकित है। देखिए—नेल्सन राइट कैटेलॉग ऑव क्वाएन्स, पृ० २५।

शासक	सोने के सिक्के	चाँदी के सिक्के	मिश्रित धातु के सिक्के	तांबे के सिक्के
रज़िया	×	१	६	६
मुइज़ुद्दीन बहराम	×	×	११	×
अलाउद्दीन मसूदशाह	×	६	११	×
नासिरुद्दीन महमूद	१	७	५	२
बलबन	२	७	२	३
कैकुबाद	१	२	२	४
जलालुद्दीन फिरोज़शाह	५	६	२	६
रुक्नुद्दीन इब्राहीम शाह	×	×	२	×
अलाउद्दीन खिलजी	१०	१८	२०	३
शिहाबुद्दीन उमर	×	×	१	×
कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	१	६	१८	२
नासिरुद्दीन खुसरो	१	१	२	×
ग्यासुद्दीन तुग़लक	४	४	१६	३
मुहम्मद तुग़लक	२१	१८	३५	४२
फिरोज़शाह	७	×	३८	१०
फिरोज़शाह व फतहखान	१	×	६	×
फिरोज़शाह व जाफरखान	१	×	२	२
तुग़लकशाह	×	×	३	२
आबूबक्रशाह	१	×	३	४
मुहम्मदशाह	१	१	६	७
महमूदशाह	३	१	×	११
नुसरतशाह	×	×	×	४
मुबारकशाह	×	×	×	८
मुहम्मद	१	×	२	५
आलमशाह	×	×	१	३
बहलोल लोदी	×	×	१८	१६
सिकन्दर लोदी	×	×	२७	×
इब्राहीम लोदी	×	×	५	×

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी, मुहम्मद तुग़लक तथा फिरोज़शाह तुग़लक के शासनकाल में सबसे अधिक सिक्के निकाले गये। चाँदी के अभाव के कारण सबसे अधिक सोने व मिश्रित धातु व तांबे के सिक्के मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में निकाले गये। मिश्रित धातु के सिक्कों की संख्या में वृद्धि होना मुद्रा के प्रसार का प्रमाण है।

टकसालें

दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भ में जो सिक्के निकाले गये उन पर टकसालों का नाम नहीं अंकित होता था। सुल्तान इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम १२१९ में अपने चाँदी के टंके पर टकसाल का नाम अंकित करवाया। उसके चाँदी के टंकों पर गौड़ या नागौर दिल्ली, लखनौती, मुल्तान का नाम मिलता है, जिससे मालूम होता है कि वहाँ उसकी टकसालें थी। रज़िया के द्वारा ज़ारी किये टंके पर भी लखनौती का नाम मिलता है। बलबन ने अनेक नई टकसालों की स्थापना की। उसके ताँबे के सिक्के खित्ता सुल्तानपुर की टकसाल में ढाले जाते थे। उसके चाँदी के टंके में खिता अलवर अंकित हैं जिससे मालूम होता है कि अलवर में भी शाही टकसाल थी।[17] ग्यासुद्दीन तुग़लक के शासनकाल में केवल दिल्ली की टकसाल से ही सिक्के निकाले गये। सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसकी टकसालें दौलताबाद, आगरा, तुग़लकपुर उर्फ तिहुत, लखनौती, दारुल इस्लाम धार, सोनार गाँव तथा सतगाँव में थी। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी उसकी टकसालें थी।[18] निम्नलिखित तालिका से प्रत्येक शासक के समय टकसालों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है—

शासक	टकसालों की संख्या
इल्तुतमिश	१ देहली
मुइज़ुद्दीन बहरामशाह	१ देहली
नासिरुद्दीन महमूदशाह	२ देहली, लखनौती
बलबन	२ देहली, लखनौती
कैकुबाद	१ देहली
जलालुद्दीन फिरोजशाह खिल्जी	१ देहली
अलाउद्दीन खिल्जी	२ देहली, देवगिरि
कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	१ देहली
नासिरुद्दीन खुसरो	१ देहली
ग्यासुद्दीन तुगलक	२ देहली, देवगिरि
मुहम्मद तुग़लक	८ (दौलताबाद शहर, देहली, सुल्तानपुर देवगिरि, सतगाँव, लखनौती, धार, तुगलकपुर)
फिरोज़शाह	१ देहली
बहलोल लोदी	२ देहली, जौनपुर
सिकन्दर लोदी	१ आगरा
इब्राहीम लोदी	१ आगरा

मुख्यतः दिल्ली की शाही टकसाल से ही सिक्के निकाले जाते थे। किन्तु साम्राज्य के विस्तार को देखते हुए मुहम्मद तुगलक ने साम्राज्य के अन्य भागों में भी टकसालें स्थापित कीं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

अध्याय १

१. मिनहाज (१२१) पृ० ४४९ ।
२. मिनहाज (१२१) पृ० ४५१ ।
३. मिनहाज (१२१) पृ० ४५१ ।
४. मिनहाज (१२१) पृ० ४५२ ।
५. मिनहाज (१२१) पृ० ४५२ ।
६. मिनहाज (१२१) पृ० ४५२ ।
७. मिनहाज (१२१) पृ० ४५३ ।
८. मिनहाज (१२१) पृ० ४५३ ।
९. मिनहाज (१२१) पृ० ४५४ ।
१०. मिनहाज (१२१) पृ० ४५६ ।
११. मिनहाज (१२१) पृ० ४५६ ।
१२. मिनहाज (१२१) पृ० ४५७-५८ ।
१३. मिनहाज (१२१) पृ० ४५९-६० ।
१४. मिनहाज (१२१) पृ० ४६४-६८ ।
१५. मिनहाज (१२१) पृ० ४६८ ।
१६. मिनहाज (१२१) पृ० ४६९ ।
१७. मिनहाज (१२१) पृ० ४६९ ।
१८. मिनहाज (१२१) पृ० ४६९ ।
१९. मिनहाज (१२१) पृ० ४७० ।
२०. मिनहाज (१२१) पृ० ४७० ।
२१. मिनहाज (१२१) पृ० ४७० ।
२२. मिनहाज (१२१) पृ० ५१६ ।
२३. मिनहाज (१२१) पृ० ४७० ।
२४. मिनहाज (१२१) पृ० ४७० ।
२५. मिनहाज (१२१) पृ० ५१८-२० ।
२६. मिनहाज (१२१) पृ० ४८४-८६ ।
२७. मिनहाज (१२१) पृ० ४९१ ।
२८. मिनहाज (१२१) पृ० ५००-५०२ ।
२९. मिनहाज (१२१) पृ० ५७२-७३, ५७४-७५ ।
३०. मिनहाज (१२१) पृ० ५३०-३१, ५३२ ।

६३. वरनी (२२३) पृ० १८१, रिज़वी (२००) पृ० ५, के० एस० लाल (८२) पृ० २२-२३।
६४. वरनी (२२३) पृ० २०८-२०६, रिज़वी (२००) पृ० २१-२४, के०एस० लाल (८२) पृ० २७-३३।
६५. वरनी (२२३) पृ० २१३-२१४, रिज़वी, (२००) पृ० २४-२५, के०एस० लाल (८२) पृ० ३८।
६६. वरनी (२२३) पृ० २२०-२१, रिज़वी, (२००) पृ० २८।
६७. वरनी (२२३) पृ० २२१-३६, रिज़वी (२००) पृ० ३०-३८, के०एस० लाल (८२) पृ० ६८।
६८. वरनी (२२३) पृ० २४८, रिज़वी, (२००) पृ० ४५-४६।
६९. वरनी (२२३) पृ० २५१-५३, रिज़वी (२००) पृ० ४७-४८।
७०. वरनी (२२३) पृ० २८३, रिज़वी (२००) पृ० ६५, अमीर खुसरो (३) पृ० ५३-५४, रिजवी (२००) पृ० १५८-६०।
७१. वरनी (२२३) पृ० ३००, रिज़वी, (२००) पृ० ७६, अमीर खुसरो (३) पृ० ६४-६८, रिज़वी (२००) पृ० १६०-६१।
७२. अमीर खुसरो (३) पृ० ५८-६४, रिज़वी (२००) पृ० १६०, हबीब, खजाइनुल-फुतूह (अनु०) पृ० ४४-४६, के०एस० लाल (८२) पृ० ७३२-३३।
७३. अमीर खुसरो (३) पृ० ७४-७८, रिज़वी (२००) पृ० १६१, के०एस० लाल (८२) पृ० १३४-३५।
७४. के०एस० लाल (८२) पृ० १३५-३६।
७५. वरनी (२२३) पृ० ३२५-३३४, रिज़वी (२००) पृ० ८१-८६, के०एस० लाल (८२) पृ० १८०-२२१।
७६. अमीर खुसरो (३) पृ० ७०-७३, ७८-१८२, रिज़वी (२००) पृ० १६१-७०, के०एस० लाल (८२) पृ० १८०-२२१।
७७. के०एस० लाल (८२) पृ० २२०-२१।
७८. वरनी (२२३) पृ० ३८६, के० एस० लाल (८२) पृ० ३२७।
७९. वरनी (२२३) पृ० ३८७, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२८।
८०. वरनी (२२३) पृ० ३८८-८०, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२८-३०, एसामी, (१०१) पृ० ५५८, रिज़वी (२५०) पृ० २८४।
८१. वरनी (२२४) पृ० ३८८-८८, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२८, एसामी (१०१) पृ० ५६०-५६२।
८२. वरनी (२२३) पृ० ३१८, के०एस० लाल (८२) पृ० ३३७-३८, एसामी (१०१) पृ० ५६६-६८, रिज़वी (२००) पृ० २०८-२१०।
८३. वरनी (२२३) पृ० ३८८, के०एस० लाल (८२) पृ० ३३८-४८, एसामी (१०१) पृ० ५७२।

३१. मिनहाज (१२१) पृ० ५०५-५०६ ।
३२. मिनहाज (१२१) पृ० ६०४ एसामी (१००) पृ० २१६-२२४ ।
३३. मिनहाज (१२१) पृ० ५४३-५४४, ५०६-६११, ६१४ ।
३४. मिनहाज (१२१) पृ० ६१४ ।
३५. मिनहाज (१२१) पृ० ५७५-५७६, ५८०-५८१ ।
३६. मिनहाज (१२१) पृ० ५८७-८८ ।
३७. मिनहाज (१२१) पृ० ५६०-५६३ ।
३८. मिनहाज (१२१) पृ० ५६४-६५
३६. मिनहाज (१२१) पृ० ६१७-६१८, एसामी (१००) पृ० २४०-४१ ।
४०. मिनहाज (१२१) पृ० ६१८, एसामी (१००) पृ० २४१ ।
४१. मिनहाज (१२१) पृ० ६१६ ।
४२. मिनहाज (१२१) पृ० ६२२-६२३, एसामी (१००) पृ० २४२, ।
४३. मिनहाज (१२१) पृ० ६२३ ।
४४. मिनहाज (१२१) पृ० ६२७-२८ ।
४५. मिनहाज (१२१) पृ० ६३०-६३२, एसामी (१००) पृ० २४७ ।
४६. मिनहाज (१२१) पृ० ६३३ ।
४७. मिनहाज (१२१) पृ० ६३३-३६ ।
४८. मिनहाज (१२१) पृ० ६३७-४८ ।
४६. मिनहाज (१२१) पृ० ६४६-६० ।
५०. मिनहाज (१२१) पृ० ६६३ ।
५१. मिनहाज (१२१) पृ० ६६६-६७१, एसामी (१००) पृ० २६०, हबीब तथा निज़ामी (१२६) पृ० २७५ ।
५२. मिनहाज (१२१) पृ० ६७८-७६ रिज़वी (१६६) पृ० ।
५३. मिनहाज (१२१) पृ० ६७६-८३ ।
५४. मिनहाज (१२१) पृ० ६८४-६८५ ।
५५. मिनहाज (१२१) पृ० ६६०-६२ ।
५६. मिनहाज (१२१) पृ० ७०० ।
५७. मिनहाज (१२१) पृ० ७०५-७०६ ।
५८. मिनहाज (१२१) पृ० ७११ (१२२) पृ० ७३७-३८ ।
५६. मिनहाज (१२१) पृ० ७११-१२, हबीब तथा निज़ामी, (१२६) पृ० २७२-७३ ।
६०. एसामी (१००) पृ० २८६-६०, हबीब तथा निज़ामी, (१२६) पृ० २७५ ।
६१. बरनी (२२३) रिज़वी (१६६) पृ० २०८, हबीब तथा निज़ामी (१२६) पृ० ३००, एसामी (१०१) पृ० ३२१-३२२ ।
६२. बरनी (२२३) पृ० १७५, रिज़वी (२००) पृ० २, के०एस० लाल (६२) पृ० २७४, १८ ।

६३. वरनी (२२३) पृ० १८१, रिज़वी (२००) पृ० ५, के० एस० लाल (८२) पृ० २२-२३।

६४. वरनी (२२३) पृ० २०८-२०९, रिज़वी (२००) पृ० २१-२४, के०एस० लाल (८२) पृ० २७-३३।

६५. वरनी (२२३) पृ० २१३-२१४, रिज़वी, (२००) पृ० २४-२५, के०एस० लाल (८२) पृ० ३८।

६६. वरनी (२२३) पृ० २२०-२१, रिज़वी, (२००) पृ० २९।

६७. वरनी (२२३) पृ० २२१-३६, रिज़वी (२००) पृ० ३०-३८, के०एस० लाल (८२) पृ० ६९।

६८. वरनी (२२३) पृ० २४९, रिज़वी, (२००) पृ० ४५-४६।

६९. वरनी (२२३) पृ० २५१-५३, रिज़वी (२००) पृ० ४७-४८।

७०. वरनी (२२३) पृ० २८३, रिजवी (२००) पृ० ६५, अमीर खुसरो (३) पृ० ५३-५४, रिजवी (२००) पृ० १५९-६०।

७१. वरनी (२२३) पृ० ३००, रिज़वी, (२००) पृ० ७६, अमीर खुसरो (३) पृ० ६४-६९, रिजवी (२००) पृ० १६०-६१।

७२. अमीर खुसरो (३) पृ० ५९-६४, रिज़वी (२००) पृ० १६०, हवीव, खजाइनुल-फुतूह (अनु०) पृ० ४४-४६, के०एस० लाल (८२) पृ० ७३२-३३।

७३. अमीर खुसरो (३) पृ० ७४-७८, रिज़वी (२००) पृ० १६१, के०एस० लाल (८२) पृ० १३४-३५।

७४. के०एस० लाल (८२) पृ० १३५-३६।

७५. वरनी (२२३) पृ० ३२५-३३४, रिज़वी (२००) पृ० ८१-८६, के०एस० लाल (८२) पृ० १८०-२२१।

७६. अमीर खुसरो (३) पृ० ७०-७३, ७८-१८२, रिज़वी (२००) पृ० १६१-७०, के०एस० लाल (८२) पृ० १८०-२२१।

७७. के०एस० लाल (८२) पृ० २२०-२१।

७८. वरनी (२२३) पृ० ३९६, के० एस० लाल (८२) पृ० ३२७।

७९. वरनी (२२३) पृ० ३९७, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२८।

८०. वरनी (२२३) पृ० ३८९-९०, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२८-३०, एसामी, (१०१) पृ० ५५९, रिज़वी (२५०) पृ० २८४।

८१. वरनी (२२४) पृ० ३९८-९९, के०एस० लाल (८२) पृ० ३२९, एसामी (१०१) पृ० ५६०-५६२।

८२. वरनी (२२३) पृ० ३१९, के०एस० लाल (८२) पृ० ३३७-३८, एसामी (१०१) पृ० ५६६-६९, रिज़वी (२००) पृ० २०९-२१०।

८३. वरनी (२२३) पृ० ३९९, के०एस० लाल (८२) पृ० ३३९-४८, एसामी (१०१) पृ० ५७२।

८४. बरनी (२२३) पृ० ३८८, के०एस० लाल (८२) पृ० ३३४-३३८।

८५. बरनी (२२३) पृ० ४४६-४४८, रिज़वी (२००) पृ० २०, २२, २३, एसामी (१०१) पृ० ५८७, याहिया (२२१) पृ० ८३।

८६. बरनी (२२३) पृ० ४५०, रिज़वी (२००) पृ० २३, आग़ा मेंहदी हसन (१७) पृ० ५५-६२, २४३, एसामी (१०१) पृ० ६०६, ६११, यहिया (२२१) पृ० ८६।

८७. बरनी (२२३) पृ० ४५०, रिज़वी (२०१) पृ० २३-२४, एसामी (१०१) पृ० ६११-६१८, ६१८-२१, यहिया (२२१) पृ० ८६-८७, गुलाम हुसैन सलीम (५०) पृ० ८०-८२।

८८. आगा मेंहदी हसन (१७) पृ० ६४-६६, यहिया (२२१) पृ० ८७, गुलाम हुसैन सलीम (५०) पृ० ८०-८२।

८९. बरनी (२२३) पृ० ४५२, रिज़वी (२०१) पृ० २४-२५, आग़ा मेंहदी हसन (१७) पृ० ६६-६७, यहिया (२२१) पृ० ८७।

९०. एसामी (२०२) हबीब तथा निज़ामी (१२८) पृ० ४८७-५००।

९१. एसामी (१०१) उद्धरित, हबीब तथा निज़ामी (१२८) पृ० ५०३।

९२. बरनी (२२३) पृ० ४८२-८४, हबीब तथा निज़ामी (१२८) पृ० ५३२।

९३. इन विद्रोहों के लिये देखिये, बरनी (२२३), इब्नबतूता (५८) आग़ा मेंहदी हसन (१७) (१८) हबीब तथा निज़ामी (१२८) यहिया (२२१) रिज़वी (२०१) इत्यादि।

९४. बरनी (२२३) पृ० ५८५-८६, रिज़वी (२८७) पृ० ३८-४६, अफीफ (१८८) पृ० १०४-१२४, रिज़वी, (२०२) पृ० ६८-७२, जे० एम० बनर्जी (८१) पृ० २८-२६, ३६-४०, ४०-४२, ४३-४४, आर० सी० जौहरी (१६५) ४४-८०, आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ३८८, यहिया (२२१) पृ० १२८-२८, १३२-३३, १३४-१३६, १३७-३८, मुहम्मद बिहमन्द खानी (१२०) पृ० ४-६, ८-८।

९५. यहिया (२२१) पृ० १४४-१४५, रिज़वी (२०२) पृ० २०५, मुहम्मद बिहम्मद खानी (१२०) पृ० १८, आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४४३।

९६. मुहम्मद बिहमन्द खानी (१२०) पृ० १८-२०-२४, आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४४३-४४, रिज़वी (२०२) पृ० २०६।

९७. यहिया (२२१) पृ० १४८-५२, मुहम्मद बिहमन्द खानी (१२०) पृ० २८, आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४४६-४४७, रिज़वी (२०२) पृ० २००।

९८. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४४८-५०, यहिया (२२१) पृ० १५३-१६०, रिज़वी (२०२) पृ० २१४-२१५, मुहम्मद बिहमन्द खानी (१२०) पृ० ३०।

९९. यहिया (२२१) पृ० १५६-५७, रिज़वी (२०२) पृ० २१६, आगा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५०, मु० बिहमन्द खानी (१२०) पृ० ३३-३४।

१००. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५१, यहिया (२२१) पृ० १५२, रिज़वी (२०२) पृ० २१३।
१०१. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५२, यहिया (२२१) पृ० १६२, रिज़वी (२०२) पृ० २१४।
१०२. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५२, यहिया (२२१) पृ० १६२, रिज़वी (२०२) पृ० २१४।
१०३. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५२, यहिया (२२१) पृ० १६२ रिज़वी (२२०) पृ० २१४, मु० विहमन्द खानी (१२०) पृ० ४६।
१०४. आगा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५३, यहिया (२२१) पृ० १६३-१६४, रिज़वी (२०२) पृ० २१५।
१०५. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५६-५७, यहिया (२२१) पृ० १६४-६५, रिज़वी (२०२) पृ० २१५, मु० विहमन्द खानी (१२०) पृ० ३७।
१०६. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५७।
१०७. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५७-५८, यहिया (२२१) पृ० १६८, रिज़वी (२०२) पृ० २१७।
१०८. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५९, यहिया (२२१) पृ० १६८।
१०९. आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४५९।
११०. तैमूर के आक्रमण के लिये देखिये, यहिका (२२१) पृ० १७१-७३, आग़ा मेंहदी हसन (१८) पृ० ४६०-६७, के०एस० लाल (९३) पृ० १४-४० रिज़वी (२०२) पृ० २१८-२०।
१११. यहिया (२२१) पृ० १८५, रिज़वी (२२३) पृ० ९-१३, के० एस० लाल (९३) पृ० ५९।
११२. यहिया (२२१) पृ० १८९, रिज़वी (२०३) पृ० १३, के० एस० लाल पृ० ६०।
११३. यहिया (२२१) पृ० १९०, रिज़वी (२०३) पृ० २२, के० एस० लाल (९३) पृ० ७३-७५।
११४. यहिया (२२१) पृ० १९८-९९, रिज़वी (२०३) पृ० २२, के०एस० लाल (९३) पृ० ७७-७९।
११५. यहिया (२२१) पृ० १९९-२५१, रिज़वी (२०३) पृ० २२-५४, के० एस० लाल (९३) पृ० ८४-१२२।
११६. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० २९८, रिज़वी (२०३) पृ० ३०१, अब्दुल्लाह (२९) पृ० १०-१२, रिज़वी (२०३) पृ० २४४-४६, के० एस० लाल (९३) पृ० १३१-१५६, अब्दुल हलीम (२७) पृ० २०-३०, ए० बी० पाण्डे (३०) पृ० ५९-१३०।

११७. ए० बी० पाण्डे (३०), अब्दुल हलीम (२७), के० एस० लाल (२०३)।
११८. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१४-३३४, रिज़वी (२०३) पृ० २१०-२६। अब्दुल्लाह (२८) पृ० ३५-१०४, रिज़वी (२०३) पृ० २५८-३०४, के० एस० लाल (८३) पृ० १६२-१८४, ए० बी० पाण्डे (३०) पृ० १३०-६०, अब्दुल हलीम (२७) पृ० ५०-११०।
११९. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३४१-५२, रिज़वी (२०३) पृ० २३८-३९, के० एस० लाल० (८३) १८४-२२६, अब्दुल हलीम (२७) पृ० १३२-२१०, ए० बी० पाण्डे (३०) पृ० १६१-२१४।

अध्याय २

१. अल बिलादूरी (१३) पृ० २१५-११६, के० एस० लाल० (८१) पृ० १००।
२. ताराचन्द (२०८) पृ० ३१-३३।
३. ताराचन्द (२०८) पृ० ३२।
४. इब्न हौकल (इलियट एण्ड डाउसन, भाग २) पृ० ३४, के० एस० लाल (८१) पृ० १००।
५. ताराचन्द (२०८) पृ० ३७-४०।
६. इब्न असीर (इलियट एन्ड डाउन्सन, भाग २,) पृ० २५१, के० एस० लाल (८३) पृ० १०३।
७. इण्डियन एक्टीक्वेरी ४, १८७५, पृ० ३६६, के० यस० लाल० (८३) पृ० १०३।
८. इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, २२, १८५१, पृ० २४०, उद्धरित के० एस० लाल (८३) पृ० १०४।
९. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० १२६, प्रसीडिंग आफ इण्डियन हिस्ट्री कान्ग्रेस, पटना, पृ० १२३, के० यस० लाल (८३) पृ० १०४।
१०. ताराचन्द (२०८) पृ० ४५।
११. हबीब तथा निज़ामी (१२८) पृ० १३८-३८।
१२. सचाउ (४४) पृ० १००।
१३. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ७८-८०।
१४. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ८०।
१५. बी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २१, ८६।
१६. बी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २२।
१७. बी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २२।
१८. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ७७।
१९. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ८३।
२०. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ८५।
२१. बी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ८५-८६।

२२. सचाउ (४४) पृ० १३२, वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ८७ ।
२३. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २० ।
२४. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २० ।
२५. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २० ।
२६. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० १६ ।
२७. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ६१ ।
२८. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ६२ ।
२६. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० २३ ।
३०. वी० यन० यस० यादव (३७, पृ० २४ ।
३१. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ३४ ।
३२. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ३५ ।
३३. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ३५ ।
३४. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ३६-३७ ।
३५. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ६५ ।
३६. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ६५ ।
३७. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० ६६-६७ ।
३८. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ३८ ।
३६. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ५१-५३ ।
४०. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० १०० ।
४१. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० १००-१०१ ।
४२. वी० पी० मौजुमदार (३१) पृ० १०३-१०५ ।
४३. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ५२ ।
४४. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ५२-५३ ।
४५. वी० यन० यस० यादव (३७) पृ० ५३ ।

अध्याय ३

१. बरनी (२२३) पृ० ३४, रिजवी (१६६) पृ० १४८ ।
२. बरनी (२२३) पृ० ३७, रिज़वी (१६६) पृ० १५० ।
३. बरनी (२२३) पृ० ३६, रिज़वी (१६६) पृ० १४७ ।
४. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० ४६ ।
५. अफीफ (१८८), इलियट एण्ड डाउन्सन ३, पृ० २७७ ।
६. के० यम० अशरफ (८६) पृ० १६ ।
७. बरनी (२२३) पृ० ४३-४४, रिज़वी (१६६) पृ० १५३-५५ ।
८. मिनहाज (१२१) पृ० ६२४, रिज़वी (१६६) पृ० २२ ।

६. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० ६६ (टि० ६)।
१०. मिनहाज (१२१) पृ० ६११, रिज़वी (१६६) पृ० ४५।
११. बरनी (२२३) पृ० २४, रिज़वी (१६६) पृ० १४०।
१२. बरनी (२२३) पृ० १२६, रिज़वी (१६६) पृ० २१२।
१३. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० ६६। (टि० ४)
१४. के० यस० लाल (६३) पृ० ६०।
१५. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) ६६ (टि० ६)
१६. एच० नेल्सन राइट (२२७) भाग २।
१७. एसामी (१०१) पृ० ५६३, रिज़वी (२०१) पृ० ८३।
१८. एच० नेल्सन राइट (२७७) पृ० १७२-७३।
१९. एसामी (१०२), रिज़वी (१६६) पृ० ६१।
२०. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३०१।
२१. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१४।
२२. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३४२।
२३. बरनी (२२३) पृ० ६२, रिज़वी (१६६) पृ० १८६, अमीर खुसरो (८) पृ० २०३-२१०, रिज़वी (१६६) पृ० २६५।
२४. मिनहाज (१२१) पृ० ६३०।
२५. बरनी (२२३) पृ० ३४४, रिज़वी, (१००) पृ०।
२६. यहिया (२२१) पृ० १३४।
२७. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) (अनु० सिद्दीकी) पृ० ४३-४४, रिजवी (२०१) पृ० ३१६।
२८. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) अनु० सिद्दीकी, पृ० ४३-४४, रिजवी (२०१) पृ० ३१६।
२९. बरनी (२२३) पृ० १८२, रिजवी (१६६) पृ० १८२, के० एम० अशरफ, (८६) पृ० ४३।
३०. अफीफ (१८८) पृ० ३०, ४२६, रिजवी (२०१) पृ० ५३, १६४, के० एम० अशरफ (८६) पृ० ४३।
३१. मिनहाज (१२१) पृ० ६१६, रिजवी (१६६) पृ० २७, शम्सीकाल के अन्य अवसरों पर दरबार के आयोजन से सम्बन्धित विवरणों के लिए देखिये, मिनहाज (१२१) पृ० ६८८। (१२२) पृ० ८५५, ८५६, रिजवी (१६६) पृ० ४६, ६५ हसन निज़ामी, इलियट एण्ड डाउसन, ३, रिजवी (१६६) पृ० २७६।
३२. मिनहाज (१२२) पृ० ८५५, रिज़वी (१६६) पृ० ६५-६६।
३३. मिनहाज(१२२) पृ० ८५६, रिज़वी (१६६) पृ० ६६-६७।
३४. बरनी (२२३) पृ० ३१-३३, रिज़वी (१६६) पृ० १४६-४७।

३५. विस्तृत विवरण के लिये देखिये बरनी (२२३) पृ० २२३-२४३, अमीर खुसरो (८) पृ० १४२-१८२, रिज़वी (१८८) पृ० २८३-८५

३६. विस्तृत विवरण के लिये देखिये बरनी (२२३) पृ० १८३, २६१, रिज़वी (२००) पृ० ७, ५३, अलाउद्दीन खिल्जी द्वारा चौतरा-ए-सुभानी पर आयोजित दरबार के सम्बन्ध में देखिये बरनी (२२३) पृ० ३२०, रिज़वी (२००) पृ० ८८, मलिक काफ़ूर के वारंगल अभियान से वापस आने पर १३१०-१३११ में उसके स्थापन के लिये अलाउद्दीन खिल्जी द्वारा चौतरा-ए-नासिरी पर दरबार का आयोजनकरता—बरनी (२२३) पृ० ३३०, रिज़वी (२००) पृ० ८३।

३७. इब्नबतूता (५८) पृ० ५८-५८, रिज़वी (२०१) पृ० १८८।

३८. इब्नबतूता (५८) पृ० ७८-७८, रिज़वी (२०१) पृ० २००।

३९. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ५४, रिज़वी, (२०१) पृ० ३२८।

४०. अफीफ (१८८) पृ० २८०, रिज़वी (२०२) पृ० ११७, जामिनी मोहन बनर्जी (८१) पृ० ८१।

४१. अफीफ (१८८) पृ० २८२, रिज़वी (२०२) पृ० ११८।

४२. अफीफ (१८८) पृ० २८०-८७, रिज़वी (२०२) पृ० ११७-१२०।

४३. अमीर खुसरो (८) पृ० ६७-८७, रिज़वी (१८८) पृ० २८८।

४४. अफीफ (१८८) पृ० १७५-२५०, रिज़वी (२०२) पृ० ८८-८८, १०७।

४५. दरबार के अन्य नियमों के विस्तृत विवरणों के लिये देखिये इब्नबतूता (५८), रिज़वी (२०१) पृ० १८४-८६।

४६. अब्दुल्लाद (२८) पृ० ३५।

४७. बरनी (२२३) पृ० १८८-८८, रिज़वी (२००) पृ० १५-१६।

४८. बरनी (२२३) पृ० १८८-८८, रिज़वी (२००) पृ० १६-१७।

४९. बरनी (२२३) पृ० २६२, रिज़वी (२००) पृ० ५३।

५०. बरनी (२२४) पृ० २८८-८०, रिज़वी (२००) पृ० ६८-७०।

५१. बरनी (२२३) पृ० २००, रिज़वी (२००) पृ० १६-१७।

५२. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ४२, रिज़वी (२०१), पृ० ३२८।

५३. इब्नबतूता (५८) पृ० ६३, रिज़वी (२०१) पृ० १८८।

५४. अफीफ (१८८) पृ० ३६८-६८, रिज़वी (२०१) पृ० १४५-४६।

५५. बरनी (२२३) पृ० ३०, रिज़वी (१८८) पृ० १४४।

५६. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ४४, रिज़वी (२०१) पृ० ३२०।

५७. मिनहाज (१२१) पृ० ७०१, रिज़वी (१८८) पृ० ५१।

५८. मिनहाज (१२१) पृ० ६२३, रिज़वी (१८८) पृ० २८, बरनी (२२३) पृ० १४२, रिज़वी (१८८) पृ० २२३, इब्नबतूता (५८) पृ० ३६, रिज़वी (१८८) पृ० ३१२।

५९. मिनहाज (१२२) पृ० ७२८-७२८ ७५०, रिज़वी (१८८) पृ० ५८, ६६, ८०, २०६।

६०. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ४४ ।
६१. मिनहाज (१२२) पृ० ७४६ ।
६२. मिनहाज (१२२) पृ० ७३६, रिज़वी (१६६) ६१ ।
६३. मिनहाज (१२२) पृ० ७५२, रिज़वी (१६६) पृ० ६४, ६७ ।
६४. मिनहाज (१२२) पृ० ७३६, ७६१, ७६७ ।
६५. मिनहाज (१२२) पृ० ७५४, ७६६, रिज़वी (१६६) पृ० ६८, ७०
६६. मिनहाज (१२२) पृ० ७८२, रिज़वी (१६६) पृ० ६७ ।
६७. मिनहाज (१२२) पृ० ७३६, ७४६, ७७६, रिज़वी (१६६) ६१, ६५, ६६ ।
६८. मिनहाज (१२२) पृ० ७४५, रिज़वी (१६६) पृ० ६४ ।
६९. मिनहाज (१२२) पृ० ७३६, ७५६, रिज़वी (१६६) पृ० ५६, ७०, ८० ।
७०. बरनी (१२३) पृ० ३०, रिज़वी (१६६) पृ० १४५ ।
७१. मिनहाज (१२२) पृ० ७२५ ।
७२. मिनहाज (१२२) पृ० ७४८, रिज़वी (१६६) पृ० ६६ ।
७३. मिनहाज (१२२) पृ० ६८ ।
७४. मिनहाज (१२२) पृ० ८०२, रिज़वी (१६६) पृ० ७३, ८० ।
७५. मिनहाज (१२२) पृ० ७४८ ७७६, रिजवी (१६६) पृ० ७४ ।
७६. शिहाबुद्दीन अलउमरी (१८७) रिजवी, (२०२) पृ० ३१७-१८, अशरफ (८६) पृ० ३७ ।
७७. इल्तुतमिश के समय तबरहिन्द खालसा में था, मिनहाज (१२२) पृ० ७२३ । रिजवी (१६६) पृ० ५६ । सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के समय दोआब को खालसा में लिया गया था । मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में देश का बहुत बड़ा भाग खालसा में सम्मिलित कर लिया गया था । फिरोजशाह तुगलक के समय खालसा को पुन: लोगों के मध्य बाँट दिया गया । (अफीफ (१२८) पृ० ५५८, रिजवी (२०२) पृ० २२) । सैय्यद शासक सुल्तान अलाउद्दीन के समय में १४५६ ई० के लगभग दोआब खालसा में ले लिया गया (अहमद यादगार (२४) पृ० १०, रिजवी (२०३) पृ० ३११ । लोदी सुल्तानों के समय सरकार बदायूँ के कुछ परगनों (मुश्ताकी, पन्ना २६ (अ) सरकार लखनऊ में सण्डीला के कुछ परगने (इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (६६) पृ० १५०) विलायत जौनपुर के अनेक परगने (अब्बास खान सरवानी, पन्ना ३० (अ) तथा कैथल के कुछ परगने खालसा में थे (मुश्ताकी, पृ० ५५, रिजवी (२०३) पृ० १३४ ।
७८. कुरैशी (६२) पृ० २२५-२७ ।
७९. बरनी (२२३) पृ० ६६ ।
८०. मिनहाज (१२२) पृ० ५४६, रिजवी (१६६) पृ० ६४ ।
८१. अमीर खुसरो (८), रिजवी (१६६) पृ० २८८ ।
८२. इब्नबतूता (५६) पृ० ४, ५६-६०, रिजवी (२०१) पृ० १५८, १८६ ।

८३. इब्नबतूता (५८) पृ० ५८-६०, १२५, १३८-३८, रिजवी (२०१) पृ० १८६, १८७, २३८, २४८-४८ ।

८४. अफीफ (१८८) पृ० २६८-६८, रिजवी (२०२) पृ० ११२ ।

८५. बरनी (२२३) पृ० ५८६, रिजवी (२०२) पृ० ४५ ।

८६. अफीफ (१८८) पृ० ४२७, रिजवी (२०२) पृ० १६४ ।

८७. निजामुद्दीन अहमद (१५१) रिजवी (२०३) पृ० २०८ ।

८८. निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३११, रिजवी (२०३) पृ० २०८ ।

८९. निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१३, रिजवी (२०३) पृ० २१० ।

९०. निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१३, रिजवी (२०३) पृ० २१० ।

९१. निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१३, रिजवी (२०३) पृ० २१०, २१८ ।

९२. मिनहाज (१२१) पृ० ६१० ।

९३. मिनहाज (१२१) पृ० ६१४ ।

९४. इब्नबतूता (५८) पृ० १५०, रिजवी (२०१) पृ० २५७ ।

९५. मिनहाज (१२२) पृ० ८२५, ८६४ ।

९६. बरनी (२२३) पृ० ९०, रिजवी (२०१) पृ० १८८ ।

९७. बरनी (२२३) पृ० २१३, रिजवी (२००) पृ० ७४, बरनी (२२३) पृ० २५०, रिजवी (१००) पृ० ४६, ४७ ।

९८. बरनी (२२३) पृ० २५१, रिजवी (२००) पृ० ४७ । गुजरात विजय से धन प्राप्त करने से सम्बन्धित सन्दर्भ, बरनी (२२३) पृ० २५२, रिजवी (२००) पृ० ४८ । दक्षिण से धन प्राप्त करने के सम्बन्ध में सन्दर्भ, बरनी (२२३) पृ० ३३०, रिजवी (२००) पृ० ९३ । द्वारसमुद्र के अभियान से धन प्राप्त करने से सम्बन्धित सन्दर्भ, बरनी (२२३) पृ० ३३३, रिजवी (२००) पृ० १६, अन्य सन्दर्भ, अमीर खुसरो (३) पृ० १०९-११०, रिजवी (२००) पृ० १६४-१६५, १६९, एसामी (१००)पृ० २३४, २३५, २९५-९७, रिजवी (२००) पृ० १९७, २८३ ।

९९. मिनहाज (१२१) पृ० ५२८, रिजवी (१९९) पृ० ४ ।

१००. मिनहाज (१२१) पृ० ६०३, रिजवी (१९१) पृ० ४४ ।

१०१. मिनहाज (१२१) पृ० ६३०, रिजवी (१९९) पृ० ३३ ।

१०२. मिनहाज (१२१) पृ० ६४९, रिजवी (१९९) पृ० ३३ ।

१०३. बरनी (२२३) पृ० १२७-६३, रिजवी (१९९) पृ० २१३-३६ ।

१०४. बरनी (२२३) पृ० १०४, रिजवी (१९९) पृ० २३ ।

१०५. इब्नबतूता (५९) पृ० ६०, रिजवी (२०१) पृ० १९० ।

१०६. इब्नबतूता (५९) पृ० ७०, रिजवी (२०१) पृ० १९३ ।

१०७. इब्नबतूता (५९) पृ० ७०, रिजवी (२०१) पृ० १९७ ।

१०८. इब्नबतूता (५९) पृ० ७०, रिजवी (२०१) पृ० १९४ ।

१०६. इब्नबतूता (५६) पृ० ७६, रिजवी (२०१) पृ० १६५।
११०. इब्नबतूता (५६) पृ० ७१, रिजवी (२०१) पृ० १६५।
१११. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ४७, रिजवी (२०१) पृ० ३२२।
११२. मिनहाज (१२१) पृ० ५६८, बरनी (२२३) पृ० ४५-४३५, ५३८-३६, ५६५ ६६, इब्नबतूता (५६) पृ० ३३, शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ३६, अफीफ (१८८) पृ० ३६, ६०, १७६, ३८४, खैर-उल-मजालिस, पृ० १५४-५५, रिजवी, (२०१) पृ० १८८, १८६, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, ११८, १६६, २३५-२३६, ३६, २४०, २४२, २४८-४६, २५१ इत्यादि।
११३. बरनी (२२३) पृ० २१२, २८०-४८१, खैर-उल-मज़लिस, पृ० २४०-४१, इब्न-बतूत (५६)।
११४. बरनी (२२३) पृ० ११७, ४८, २८३-८४, ४८२-८३, इब्नबतूता (५६) पृ० १४२-४३, यहिया (२२१) पृ० १५, अफ़ीफ (१८८) पृ० ११६, ३३२-३३३।
११५. बरनी (२२३) पृ० ६२-६३, अफ़ीफ (१८८) पृ० ४३५-३६, खैर-उल-मज़लिस पृ० ८२-८८।
११६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २४।
११७. अफ़ीफ (१८४) पृ० ३५३-५७ रिज़वी (२०१) पृ० १४२-४३।
११८. इब्नबतूता (५६) पृ० ७, ११, २० इत्यादि, निज़ामी (८७)।
११६. अफ़ीफ (१८८) पृ० ३३०, रिज़वी (२०२) पृ० १३४।
१२०. बरनी (२२३) पृ० ५३६।
१२१. बरनी (२२३) पृ० ५४३।
१२२. बरनी (२२३) पृ० ५४३।
१२३. इब्नबतूता (५६) पृ० १४१, रिज़वी (२०१) पृ० २५०-५१।
१२४. बरनी (२२६) पृ० ५५६-६०, अफ़ीफ़ (१८८) पृ० १८१।
१२५. अफीफ (१८८) पृ० ३३७-६४०, ३६२, ४०८, ४४६, ४५०, ४६०, बरनी (२२३) पृ० ४५, ४६, ४७, ६७, ११८, १३१, १७४, १६८-२००, २०१-२०२, २४१, २५०, ३३८-६०, ४६६-६७, ५०४।
१२६. बरनी (२२३) पृ० ४०, ४७, २४४, ३६३, ३८३, ३६५, ४३८-३६, ४६१, ५३७, ५४३, ५५५-६० . अफ़ीफ (१८८) पृ० ४१, १२१, १२२, वब्नवतूता (५६) पृ० १४१-४२, रिज़वी (२०१) पृ० ५७।
१२७. बरनी (२२३) पृ० ४६१, रिज़वी (२०१) पृ० ५७।
१२८. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १६, रिजवी (२०२) पृ० ३३५।
१२६. फिरोज़शाह तुगलक (४८) पृ० १६, रिजवी (२०२) पृ० ३३५।
१३०. बरनी (२२०) पृ० ५६०।
१३१. बरनी (२२३) पृ० ४६-४७, १०७, १०६ २६५, ३८२-८३, ४८०, यहिया (२२१) पृ० ४१, खैर-उल-मजलिस पृ० १४७-५०।

१३२. बरनी (२२३) पृ० ३२, ४६, ४७, ६७, ११३, १६८, १८५-१८८-८८, २०१-२०४, ३६०-६१ ३६४, ३६५ फवायद-उल-फौद पृ० २३१, अफ़ीफ (१८८) पृ० ३६४ शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३३ ।
१३३. बरनी (२२३) पृ० ३६३ ।
१३४. बरनी (२२३) पृ० ३६३ ।
१३५. बरनी (२२३) पृ० १७०, २०४, ३६२, ३६३, अफीफ (१८८) पृ० ३५३, ३५५ ।
१३६. बरनी (२२३) पृ० ४५–५०, ६०, ८२, १०८, १४१, १८१, १८८–८८, ३२३-२४, ३२८, ३४१-४२, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २८-३०, अफीफ (१८८) पृ० ३३७–३८ ।
१३७. अफ़ीफ (१८७) पृ० ३३७–३८ ।
१३८. बरनी (२२३) पृ० ३४०–३४१ ।
१३९. बरनी (२२३) पृ० ३४१, ५६२, रिज़वी (२००) पृ० १०० शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० १८–१८, अफ़ीफ (१८८) पृ० ६५, १२५–२६, १३५–३७, १४८, १७७–७८, ३२८-३१, यहिया (२२१) पृ० ६–१७, १०१, १३४, फुतूहात–ए–फिरोजशाही (४८) पृ० १५, १६, १७, रिज़वी (२०२) पृ० ३३५-३६ ।
१४०. बरनी (२२३) पृ० ५६६, ६७, ५६८, ५७० अफीफ (१८८) पृ० १२८, २८५–८६, रिज़वी (२०२) पृ० ७४, अशरफ (८६) पृ० ११८ ।
१४१. बरनी (२२३) पृ० ४६१, रिज़वी, (२०१) पृ० ३२
१४२. बरनी (२२३) पृ० ४६१, रिज़वी (२०१) पृ० ३२ ।
१४३. बरनी (२२३) पृ० ४६१-६२, रिजवी (२०१) पृ० ३२–३३ ।
१४४. सुल्तान फिरोज़शाह तुग़लक ने फिरोज़ाबाद, अफीफ (१८३) पृ० १३३–३४, रिजवी (२०२) पृ० ३३, रिज़वी (२०२) पृ० १३४, बाँध बनवाने (सीरी-बाँध (बरनी, (२२३) पृ० ५६५), फतेहखान बाँध, मुर्तजा बाँध, यहियापुर बाँध, शुक्र खान बाँध, एलोरा बाँध, सुपदना बाँध, वज़ीर बाँध (अफीफ (१८८) पृ० ३३०, रिज़वी (२०२) पृ० १३४) नहरों के खुदवाने (बरनी (२२३) पृ० ५६७–६८) अफीफ (१८८) पृ० २७–२८, रिजवी (२०२) पृ० ७४) कुश्कों को बनवाने (कुश्क–ए–फिरोजाबाद, कुश्क–ए–नजूम, कुश्क–ए–महेन्दवारी, कुश्क–ए–हिसार फिरोजा, कुश्क–ए–फतेहाबाद, कुश्क–ए–जौनपुर, कुश्क–ए–शिकार इत्यादि) तथा मकबरों की मरम्मत करवाने में मदद किया (अफीफ (१८८) पृ० ३३२, रिजवी (२०२) पृ० १३५ ।
१४५. इब्नबतूता (५८) पृ० १५१ रिजवी (२०१) पृ० २५० ।
१४६. इब्नबतूता (५८) पृ० ६८, १०१, फिरोज़शाह तुग़लक के लिये देखिये, अफीफ (१८८) पृ० २२१, रिज़वी (२०२) पृ० ८८ ।
१४७. मिनहाज (१२१) पृ० ५२८, रिज़वी (१८८) पृ० ८ ।

१४८. मिनहाज (१२१) पृ० ६३२, रिज़वी (१६६) पृ० ३३।
१४९. बरनी (२२३) पृ० १५५।
१५०. बरनी (२२३) पृ० १२९, १५४, १५८, १५९, १६०, १६१।
१५१. बरनी (२२३) पृ० १६०।
१५२. बरनी (२२३) पृ० १६३।
१५३. अमीर ख़ुसरो (८) पृ० ५४-५७, रिज़वी (१९९) पृ० २८८।
१५४. अमीर खुसरो (८) पृ० १५९-१६३, रिज़वी (१९९) पृ० २९९।
१५५. बरनी (२२३) पृ० ३६८, रिज़वी (२००) पृ० ११७।
१५६. बरनी (२२३) पृ० ३२५, रिज़वी (२००) पृ० ९७।
१५७. बरनी (२२३) पृ० ३८१, रिज़वी (२००) पृ० १२५, १३७, १३८।
१५८. बरनी (२२३) पृ० ४०३, रिज़वी (२००) पृ० १३७।
१५९. इब्नबतूता (५९) पृ० ११९।
१६०. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ४४।
१६१. अफीफ (१८८) पृ० १४६-४७, रिज़वी (२०२) पृ० ८०।
१६२. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी, पृ० ९, रिजवी (२०३) पृ० ९७।
१६३. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ४९-५२, रिज़वी (२०३) पृ० १३२-१६४।
१६४. अब्दुल्लाह (२९) पृ० ५८-९, रिज़वी (२०३) पृ० २७६, रिजकुल्लाह मुश्ताकी पृ० २०, रिज़वी (२०३) पृ० १०७, निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३१७, ३२२, ३३१, रिज़वी (२०३) पृ० २१३, २१७, २२४, अहमद यादगार (२४) पृ० ४२, रिज़वी (२०३) पृ० ३२८।
१६५. अब्दुल्लाह (२९) पृ० ३९, रिज़वी (२०३) पृ० २९२।
१६६. अहमद यादगार (२४) पृ० ४८, रिज़वी (२०३) पृ० ३२२।
१६७. मुहम्मद कबीर, अफसाना-ए-शाहान (१४७) पृ० २५-३७, रिज़वी (२०३) पृ० ३७२।
१६९. इब्नबतूता (५९) पृ० ६०-६३, रिज़वी (२०१) पृ० १८७-८९।
१७०. अफीफ (१८८) पृ० ३६४।
१७१. अफीफ (१८८) पृ० ३६६-६७।
१७२. बरनी (२२३) पृ० २७२-७३, रिज़वी (२००) पृ० ५९-६०।
१७४. बरनी (२२३) पृ० ४०३, रिज़वी (२००) पृ० १३७।
१७५. इब्नबतूता (५९), रिजवी (२०१) पृ० २४०-४७।
१७६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) रिजवी (२०१) पृ० ३१९-२०१।
१७७. अफीफ (१८८) पृ० ३१०, रिज़वी (२०२) पृ० १२९।
१७८. अफीफ़ (१८८) पृ० १६९-७०, रिज़वी (२०२) पृ० ८६-८७।
१७९. अफीफ (१८८) पृ० ३१६-२१, रिज़वी (२०२) पृ० १२९-१३३।
१८०. अफीफ (१५८) पृ० ३२८, रिज़वी (२०२) पृ० १३४।

१८१. बरनी (२२३) पृ० ६००, रिज़वी (२०२) पृ० ४७-४८।
१८२. मुहम्मद कबीर (१४७) कहानी १४, रिज़वी (२०४) पृ० ३१७।
१८३. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३२२, रिज़वी (२०३) पृ० २१७।
१८४. अमीर खुसरो (४) रिज़वी (२००) पृ० १७३-७४।
१८५. इब्नबतूता (५८) पृ० ७८-७६, रिज़वी (२०१) पृ० २०१-२०२।
१८६. बरनी (२२३) पृ० ५६६, रिज़वी (२०१) पृ० ६८।
१८७. इब्नबतूता (५८) पृ० ११८, रिज़वी (२०१) पृ० २३४।
१८८. मिनहाज (१२१) पृ० ६२८, रिज़वी (१६६) पृ० ३१।
१८९. मिनहाज (१२१) पृ० ६३०, रिज़वी (१६६) पृ० ३१।
१९०. मिनहाज (१२१) पृ० ६३१, रिज़वी (१६६) पृ० ३१-३२।
१९१. मिनहाज (१२१) पृ० ६३१, रिज़वी (१६६) पृ० ३२।
१९२. मिनहाज (१२१) पृ० ६६५, रिज़वी (१६६) पृ० ४२।
१९३. मिनहाज (१२१) पृ० ६८३-८४, रिज़वी (१६६) पृ० ४८।
१९४. बरनी (२२३) पृ० २१३, रिज़वी (२००) पृ० २४।
१९५. बरनी (२२३) पृ० रिज़वी (२००) पृ० १५२।
१९६. बरनी (२२३) पृ० २४२, रिज़वी (२००) पृ० ४२।
१९७. बरनी (२२३) पृ० ३८१, रिज़वी (२००) पृ० १२५।
१९८. बरनी (२२३) पृ० ४१०, रिज़वी (२००) पृ० १४१।
१९९. बरनी (२२३) पृ० ४२८, रिज़वी (२००) पृ० २६६।
२००. बरनी (२२३) पृ० ४२८, रिज़वी (२०१) पृ० ६।
२०१. अफीफ (१८८) पृ० ४२, रिज़वी (२०२) पृ० ५५।
२०२. बरनी (२२३) पृ० ५७७-७८, रिज़वी (२०३) पृ० ३४।
२०३. यहिया (२२१) पृ० १८६-२००, रिज़वी (२०३) पृ० २२।
२०४. यहिया (२२१) पृ० २५०, रिज़वी (२०३) पृ० ५४।
२०५. मिनहाज (१२१) पृ० ६२८, रिज़वी (१६६) पृ० ३१।
२०६. मिनहाज (१२१) पृ० ६३१, रिज़वी (१६६) पृ० ३२।
२०७. मिनहाज (१२१) पृ० ६८३, रिज़वी (१६६) पृ० ४८।
२०८. मिनहाज (१२१) पृ० ७०१, रिज़वी (१६६) पृ० ५१-५२।
२०९. बरनी (२२३) पृ० ६५।
२१०. बरनी (२२३) पृ० ६६, रिज़वी (१६६) पृ० १७०।
२११. बरनी (२२३) पृ० ८०, रिज़वी (१६६) पृ० १८०।
२१२. बरनी (२२३) पृ० ११०, रिज़वी (१६६) पृ० २०१।
२१३. बरनी (२२३) पृ० १८७, रिज़वी (२००) पृ० ६।

२१४. बरनी (२२४) पृ० ६७, रिज़वी (१६६) पृ० १७०–१७१।
२१५. बरनी (२२३) पृ० ६८, रिज़वी (१६६) पृ० १७१-१७२।
२१६. बरनी (२२३) पृ० ८१, रिज़वी (६६) पृ० १८०।
२१७. बरनी (२२३) पृ० १२८, रिज़वी (१६६) पृ० २१३।
२१८. बरनी (२२३) पृ० १७७, रिज़वी (२००) पृ० ३।
२१९. बरनी (२२३) पृ० १२८, रिज़वी (१६६) पृ० २१३।
२२०. अमीर खुसरो (४) पृ० २२८-२२६, रिज़वी (२००) पृ० १७४।
२२१. मिनहाज (१२१) पृ० ६३३, रिज़वी (१६६) पृ० ३२।
२२२. मिनहाज (१२१) पृ० ६३३, रिज़वी (१६६) पृ० ३२।
२२३. मिनहाज (१२१) पृ० ६६०, रिज़वी (१६६) पृ० ४१।
२२४. एसामी (१००) पृ० १६०-६३, रिज़वी (१६६) पृ० ३०३-३०४।
२२५. बरनी (२२३) पृ० १२३, रिज़वी (१६६) पृ० २१६।
२२६. बरनी (२२३) पृ० २४६, रिज़वी (२००) पृ० ४६।
२२७. बरनी (२२३) पृ० ३७६, रिज़वी (२००) पृ० १२७।
२२८. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० १३१।
२२९. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० १३२।
२३०. अमीर खुसरो (४) पृ० २७५-८५, रिज़वी (२००) पृ० १७५-७६।
२३१. तुगलकनामा (७) पृ० २१-२६, रिज़वी (२००) पृ० १८३।
२३२. निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३३०, रिज़वी (२०३) पृ० २२३।

अध्याय ४

१. मिनहाज (१२१) पृ० ४५६।
२. मिनहाज (१२१) पृ० ४५६।
३. मिनहाज (१२१) पृ० ४५३।
४. मिनहाज (१२१) पृ० ४५८।
५. मिनहाज (१२१) पृ० ५३०-३१।
६. मिनहाज (१२१) पृ० ५१७।
७. मिनहाज (१२१) पृ० ४२७।
८. मिनहाज (१२१) पृ० ४१६।
९. मिनहाज (१२१) पृ० ४१६।
१०. मिनहाज (१२१) पृ० ५३१-३२।
११. मिनहाज (१२१) पृ० ६५२।
१२. मिनहाज (१२१) पृ० ६५२।
१३. मिनहाज (१२१) पृ० ५०२।
१४. मिनहाज (१२१) पृ० १८६-६१।

१५. मिनहाज (१२१) पृ० ५७५ ।
१६. मिनहाज (१२१) पृ० ६३५ ।
१७. एस० बी० पी० निगम (१६३) पृ० १०६ ।
१८. वरनी (२२३) पृ० १३७ ।
१६. रशीद (१६४) पृ० ७ ।
२०. एस० बी० पी० निगम (१६३) पृ० ११४-१५ ।
२१. एस० बी० पी० निगम (१६३) पृ० ११५ ।
२२. एस० बी० पी० निगम (१६३) पृ० ११५ ।
२३. रशीद (१६४) पृ० ११ ।
२४. वरनी (२२३) पृ० ४५, मु० हवीव (१२५) पृ० १४८, रशीद (१६४) पृ० १४ ।
२५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३७, पृ० २१ ।
२६. मिनहाज (१२१) पृ० ७२३, रिज़वी (१६६) पृ० ५६, रशीद (१६४) पृ० ३० ।
२७. मिनहाज (१२१) पृ० ७३१, रिजवी (१६६) पृ० ५६, रशीद (१६४) पृ० १४ ।
२८. मिनहाज (१२१) पृ० ७३६, रिज़वी (१६६) पृ० ६१, रशीद (१६४) पृ० १४-१५ ।
२६. मिनहाज (१२१) ।
३०. मिनहाज (१२१) पृ० ७४२, रिज़वी (१६६) पृ० ६३-६४ ।
३१. मिनहाज (१२१) पृ० ७४४, रिज़वी (१६६) पृ० ६५ ।
३२. मिनहाज (१२१) पृ० ७४६, रिज़वी (१६६) पृ० ६६ ।
३३. मिनहाज (१२१) पृ० ७४८, रिज़वी (१६६) पृ० ६५ ।
३४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३८-३६ ।
३५. अब्दुल्लाह (२६) पृ० ४३, रिज़वी (२०३) पृ० २६५ ।
३६. देखिये समकालीन ऐतिहासिक ग्रंथ ।
३७. निज़ाम-उल-मुल्क (१४६) पृ० १५३ ।
३८. देखिये समकालीन ऐतिहासिक ग्रंथ ।
३६. वरनी (२२३) पृ० ३२०, रिज़वी (२००) पृ० ६१ ।
४०. वरनी (२२३) पृ० ३२६, रिज़वी (२००) पृ० ६१ ।
४१. वरनी (२२३) पृ० ३२, अमीर खुसरो (७) पृ० १७, रिज़वी (२००) ।
४२. वरनी (२२३) पृ० ४६१ ।
४३. वरनी (२२३) पृ० ४५१ ।
४४. इब्नबतूता (५६) पृ० ११४, रिज़वी (२०१) पृ० २३० ।
४५. इब्नबतूता (५६) पृ० १२६, १३२, रिज़वी (२०१) पृ० २४२-२४३ ।

४६. बरनी (२२३) पृ० ५७८, रिज़वी (२०२) पृ० ३४ ।
४७. अफीफ पृ० ३६१, रिज़वी (२०२) पृ० १५३ ।
४८. यहिया (२२१) पृ० १२८, रिजवी (२०४) पृ० १६८ ।
४९. देखिये समकालीन ऐतिहासिक ग्रंथ ।
५०. एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १६६ ।
५१. मिनहाज (१२१) पृ० ६५०, रिजवी (१९९) पृ० ३८ ।
५२. मिनहाज (१२१) पृ० ६६२, रिजवी (१९९) पृ० ३०३ ।
५३. एसामी (१००) पृ० १५८-५९, रिज़वी (१९९) पृ० ३०३ ।
५४. एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० ९१ ।
५५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), रिज़वी (२०१) पृ० ३२० ।
५६. एसामी (१००) पृ० ४२१-२२, एस० बी० पी० निगम पृ० १६८ ।
५७. इब्नबतूता (५९) पृ० १४, रिज़वी (२०१) पृ० १६५ ।
५८. अफ़ीफ (१८८) पृ० ३९८, रिज़वी (२०२) पृ० १५४-५५ ।
५९. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी, रिज़वी (२०३) पृ० १४६ ।
६०. बरनी (२२३) पृ० ६२, रिज़वी (२०२) पृ० १६७ ।
६१. इब्नबतूता (५९) पृ० १३२-३३, रिज़वी (२०१) पृ० २४४ ।
६२. बरनी (२२३) पृ० ५०३, रिज़वी (२०१) पृ० ६७ ।
६३. इब्नबतूता (५९) पृ० ६७-६८, रिज़वी (२०१) पृ० १९१-९२ ।
६४. इब्नबतूता (५९) पृ० १३२,१३३,१३४,१३५, रिजवी (२०१) पृ० २४५-४६, २४९, २५०, २५१ ।
६५. मिनहाज (१२२) पृ० ७२३, रिज़वी (१९९) पृ० ५८, एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १६० ।
६६. बरनी (२२३) पृ० ३०, रिज़वी (१९९) पृ० १४४, एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १६० ।
६७. बरनी (२२३) पृ० १९७, रिज़वी (१९९) पृ० ७५ ।
७८. बरनी (२२३) पृ० २१०, रिज़वी (२००) पृ० २३ ।
६९. बरनी (२२३) पृ० २१०, एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १६०, रिज़वी (२००) पृ० २३ ।
७०. बरनी (२२३) पृ० १९७, रिज़वी (२७०) पृ० १५ ।
७१. बरनी (२२३) पृ० २३९, रिजवी (२००) पृ० ३९, एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १४६ ।
७२. बरनी (२२३) पृ० २१०, रिज़वी (२००) पृ० २३ ।
७३. बरनी (२२३) पृ० २५२-५३, एस०बी०पी० निगम (११३) पृ० १६२, रिज़वी (२००) पृ० ४७-४८ ।
७४. बरनी (२२३) पृ० ३८२-८५, रिजवी (२००) पृ० १२५-२७ ।
७५. बरनी (२२३) पृ० ४३१, रिज़वी (२०१) पृ० ९, एस० बी० पी० निगम (१९३) पृ० १६३ ।

७६. बरनी (२२३) पृ० ४३५, रिज़वी (२०१) पृ० १२।
७७. एसामी (१००) पृ० ३८८, ३८६, ३६०, रिजवी (२०१) पृ० ८३।
७८. इब्नबतूता (५६) पृ० १२६, एस० वी० पी० निगम (१६३) पृ० १६३।
७६. बरनी (२२३) पृ० ४६१-६२, रिज़वी (२०१) पृ० ३२।
८०. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २३, सिद्दीकी (१८७-अ) पृ० ३८।
८१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २५, रिज़वी (२०१) पृ० ३१८।
८२. इब्नबतूता (५६) पृ० १२६, रिज़वी (२०१) पृ० २४२।
८३. इब्नबतूता (५६) पृ० १०, १४३, रिज़वी (२०१) पृ० १६३, २५३।
८४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३१।
८५. इब्नबतूता (५६) पृ० १४१, एस० पी० वी० निगम (१६३) पृ० १६३ (टि० (सं० ६५)
८६. बरनी (२२३) पृ० ४६६, रिज़वी (२०१) पृ० ६१, इब्नबतूता (५६), पृ० १२६ रिज़वी (२०१) पृ० १६७।
८७. बरनी (२२३) पृ० ५५५, रिज़वी (२०१) पृ० २०।
८८. बरनी (२२३) पृ० ५३१, रिज़वी (२०१) पृ० ५।
८६. अफीफ़ (१८८) पृ० २६६, रिज़वी (२०२) पृ० १२३।
६०. अफ़ीफ (१८८) पृ० ४००, रिज़वी (२०२) पृ० १५५।
६१. रिज़वी (२०३) पृ० १६ (टि० सं० १२,१३)।
६२. इब्नबतूता ने मुल्तान के अमीर कुतुब-उल-मुल्क को एक दास, एक घोड़ा, किशमिश व बादाम उपहार में भेंट किये—इब्नबतूता (५६) पृ० १३, रिज़वी (२०१)पृ० १६४।
६३. मिनहाज (१२१) पृ० ५५०-५५१, रिज़वी (१६६) पृ० ११-१२, १४।
६४. मिनहाज (१२१) पृ० ५७६-८०, रिज़वी (१६६) पृ० १८-१६।
६५. मिनहाज (१२१) पृ० ५८०-८५, रिज़वी (१६६) पृ० १६-२०।
६६. मिनहाज (१२१) पृ० ५८४, रिज़वी (१६६) पृ० २०।
६७. मिनहाज (१२१) पृ० ६०३, रिज़वी (१६६) पृ० २४।
६८. मिनहाज (१२२) पृ० ७२६, रिज़वी (१६६) पृ० ५८।
६६. बरनी (२२३) पृ० ११३, रिज़वी (१६६) पृ० २०२-२०३।
१०० बरनी (२२३) पृ० ११४-११६, रिज़वी (१६६) पृ० २०३-२०५।
१०१. बरनी (२२३) पृ० १६६, रिज़वी (१६६) पृ० २४०।
१०२. मिनहाज (१२१) पृ० ५४५, रिज़वी (१६६) पृ० १०।
१०३. मिनहाज (१२२) पृ० ७४२, रिजवी (१६६) पृ० ६३।
१०४. मिनहाज (१२२) पृ० ७५५, रिज़वी (१६६) पृ० ६६।
१०५. मिनहाज (१२२) पृ० ८५४, रिजवी (१६६) पृ० ६५-६६।

१०६. वरनी (२२३) पृ० ४६, रिज़वी (१९९) पृ० १५६।
१०७. वरनी (२२३) पृ० १८०, रिज़वी (२००) पृ० ११-१२।
१०८. वरनी (२२३) पृ० २४३-२४४, २७०, रिज़वी (२००) पृ० ४२, ४३, ५८।
१०९. बरनी (२२३) पृ० २७१, रिज़वी (२००) पृ० ५९।
११०. बरनी (२२३) पृ० ४८५।
१११. बरनी (२२३) पृ० ४८८।
११२. इब्नबतूता (५९) पृ० ८।
११३. इब्नबतूता (५९) पृ० ११।
११४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ४०-४१।
११५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ४१।
११६. शिहाबुद्दीन-उल-उमरी (१८७) पृ० ४१।
११७. बरनी (२२३) पृ० ५५४, रिज़वी (२०२) पृ० १९।
११८. अफीक (१८८) पृ० ४२, रिज़वी (२०२) पृ० १६४।
११९. अफीफ (१८८) पृ० ४००, रिज़वी (२०२) पृ० १५५।
१२०. अफीफ (१८८) पृ० २९७, रिज़वी (२०२) पृ० १२३।
१२१. अफीफ (१८८) पृ० ४४५, रिज़वी (२०२) पृ० १६९-१७०।
१२२. अब्बास खान सरवानी, (२२) पृ० ८४, निगम, सूरवंश का इतिहास (१९२) पृ० १६४।
१२३. अब्बास खान सरवानी (२२) पृ० ९७, ए० बी० पी० निगम (१९२) पृ० १६९।
१२४. पेशकश के सन्दर्भ के लिये देखिये, मिनहाज (१२१) पृ० ७१३, रिज़वी, (१९९) पृ० ९४, अमीर खुसरो (८) पृ० ८२-८३, रिज़वी (१९९) २८८, इब्नबतूता (५९) पृ० ५९, ६०, ७३, अफीफ (१८८) पृ० २७८-६९, ४२७, बरनी (२२३) पृ० ३९६, निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३११, ३१३, ३२७, रिज़वी (२०१) पृ० १८६, १८७, २३९, २४० (२०२) पृ० ११२, १६९, (२०३) पृ० २०१, २१०, २१८।
१२५. इब्नबतूता (५९) पृ० १४२, रिज़वी (२०१) पृ० २५१-२५२।
१२६. रिज़वी (१९९) पृ० २०७, ११५-११६, १६९।
१२७. बरनी (२२३) पृ० २०२-२०४, ४८२-४८३, अफीफ (१८८) पृ० ३९६, ४४८-४९, खैर-उल-मजलिस पृ० २४०-२४१, इब्नबतूता (५९) पृ० १३३, १३४, १३५।
१२८. बरनी (२२३) पृ० ६६, ७३, ११५-११८, १६९, २०२-२०४, ४८२-८३, अफीफ (१८८) पृ० ३९६-४४८, ४४९।
१२९. बरनी (२२३) पृ० ११६, १९९-२००, खैर-उल-मजलिस पृ० १८५।
१३०. बरनी (२२३) पृ० ११७-११८।

१३१. बरनी (२२३) पृ० ११७, रिज़वी (१९९) पृ० २०५।
१३२. मिनहाज (१२१) पृ० ५८३-८४।
१३३. बरनी (२२३) पृ० ३६३।
१३४. अफीफ (१८८) पृ० २२२, ४०१-४०२, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २९-३०, बरनी पृ० १६९, १५८-८९, ३४०-४१।
१३५. मिनहाज (१२१) पृ० ५८३।
१३६. मिनहाज (१२१) पृ० ५६०, बरनी (२२३) पृ० १३०, रिज़वी (१९९) पृ० २१५।
१३७. इब्नबतूता (५९) पृ० १४१।
१३८. बरनी (२२३) पृ० १७६, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० १८-१९, अफीफ (१८८) पृ० १३५।
१३९. बरनी (२२३) पृ० १२०।
१४०. बरनी (२२३) पृ० ११३, ११५, ११८, ११९, २०२, २०३, २०४।
१४१. मिनहाज (१२१) पृ० ५५४।
१४२. बरनी (२२३) पृ० २०२, रिज़वी (२००) पृ० १८।
१४३. बरनी पृ० १६९।
१४४. बरनी (२२३) पृ० ११३।
१४५. बरनी (२२३) पृ० ११५।
१४६. बरनी (२२३) पृ० ११७।
१४७. बरनी (२२३) पृ० ११८।
१४८. बरनी (२२३) पृ० २०३।
१४९. बरनी (२२३) पृ० २०४।
१५०. मिनहाज (१२१) पृ० ५८४।
१५१. बरनी (२२३) पृ० २८३-८४, रिज़वी (२००) पृ० ६६।
१५२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) सिद्दिकी (१८७-अ) पृ० ४६।
१५३. अफीफ (१८८) पृ० ४४४, रिज़वी (२०२) पृ० १६९-१७०।
१५४. मिनहाज (१२१) पृ० ५००, ५३०।
१५५. मिनहाज (१२२) पृ० ६५०, रिजवी (१९९) पृ० ६७।
१५६. मिनहाज (१२२) पृ० ७४४, रिजवी (१९९) पृ० ६४।
१५७. मिनहाज (१२१) पृ० ६८५, रिज़वी (१९९) पृ० ५१।
१५८. इब्नबतूता (५९) पृ० ७८, रिज़वी (२८१) पृ० २००-२०४।
१५९. अफीफ (१८८) पृ० ३७, रिज़्वी (२०२) पृ० ५४।
१६०. अहमद यादगार (२४) पृ० १७, रिजवी (२०३) पृ० ३१५।
१६१. मिनहाज (१२१) पृ० ५४५, रिज़वी (१९९) पृ० ११।
१६२. मिनहाज (१२१) पृ० ५५०-५५१, रिज़वी (१९९) पृ० ११-१७।

१६३. मिनहाज (१२२) पृ० ७२४, रिज़वी, (१८८) पृ० ५६-५७ ।
१६४. मिनहाज (१२२) पृ० ७४४, रिज़वी (१८८) पृ० ६४-६५ ।
१६५. मिनहाज (१२२) पृ० ७५६, रिज़वी (१८८) पृ० ६८ ।
१६६. बरनी (२२३) पृ० ४६, रिज़वी (१८८) पृ० १५६ ।
१६७. बरनी (२२३) पृ० ११३, रिज़वी (१८८) पृ० २०२-२०३ ।
१६८. बरनी (२२३) पृ० ११५, रिज़वी (१८८) पृ० २०३-२०५ ।
१६९. बरनी (२२३) पृ० ११६-११७, रिज़वी (१८८) पृ० २०४-२०५ ।
१७०. बरनी (२२३) पृ० ११७-११८, रिज़वी (१८८) पृ० २०५-२०६ ।
१७१. बरनी (२२३) पृ० ११९, रिज़वी (१८८) पृ० २०६-२०७ ।
१७२. बरनी (२२३) पृ० १२०, रिज़वी, (१२८) पृ० २०७ ।
१७३. बरनी (२२३) पृ० १६९, रिज़वी (१८८) पृ० २४० ।
१७४. बरनी (२२३) पृ० १६९, रिज़वी (१८८) पृ० २४० ।
१७५. बरनी (२२३) पृ० १९० ।
१७६. बरनी (२२३) पृ० २०२ ।
१७७. बरनी (२२३) पृ० २०३ ।
१७८. बरनी (२२३) पृ० २०३ ।
१७९. बरनी (२२३) पृ० २०४ ।
१८०. बरनी (२२३) पृ० ४८७ ।
१८१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६ ।
१८२. इब्नबतूता (३९) पृ० ९, रिज़वी (२०१) पृ० १६२-६३ ।
१८३. अफीफ (१८८) पृ० २८८-८९, रिज़वी (२०२) पृ० १२०-१२१ ।
१८४. अफीफ (१८८) पृ० ४००, रिज़वी (२०२) पृ० १५५ ।
१८५. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ९, रिज़वी (२०३) पृ० ९७ ।
१८६. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ९, रिज़वी (२०३) पृ० ९७ ।
१८७. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० १३, रिज़वी (२०३) पृ० १००-१०१ ।
१८८. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० २७, रिज़वी (२०३) पृ० ११४ ।
१८९. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० २७, रिज़वी (२०३) पृ० १०५ ।
१९०. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ५०, रिज़वी (२०३) पृ० १३३ ।
१९१. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ५१, रिज़वी (२०३) पृ० १३३ ।
१९२. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ५४-५५, रिज़वी (२०३) पृ० १३६-३७ ।
१९३. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ५७-५८, रिज़वी (२०३) पृ० १३९-४० ।
१९४. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६०-६१, रिज़वी (२०३) पृ० १४२ ।
१९५. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६३-६४, रिज़वी (२०३) पृ० १४४-१४५ ।
१९६. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६६, रिज़वी (२०३) पृ० १४६-४७ ।
१९७. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६६, रिज़वी (२०३) पृ० १७७ ।

१९८. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६६, रिज़वी (२०३) १४७।
१९९. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६७-६८, रिज़वी (२०३) पृ० १४८-४९।
२००. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ६९-७०, रिज़वी (२०३) पृ० १४९-५०।
२०१. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ७१-७२, रिज़वी (२०३) पृ० १५१-१५२।
२०२. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ७४-७५, रिज़वी (२०३) १५३-५५।
२०३. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ७८, रिज़वी (२०३) पृ० १५७।
२०४. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० ७८, रिज़वी (२०६) पृ० १५७।
२०५. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० १३७-३८, रिज़वी (२०३) पृ० १७५-७८।
२०६. अहमद यादगार (२४) पृ० ५९, रिज़वी (२०३) पृ० ३३७।
२०७. अहमद यादगार (२४) पृ० १०९, रिज़वी (२०३) पृ० ३३५।
२०८. अहमद यादगार (२४) पृ० ११०, रिज़वी (२०३) पृ० ३५४।
२०९. मिनहाज (१२१) पृ० ५८०।
२१०. मिनहाज (१२१) पृ० ५४३-५४४, ६०८, ६०९, ७११-१४।
२११. उदाहरणार्थ, मुहम्मद बख्तियार खिल्जी का वध ,उसके अमीर अलीमर्दान खिल्जी ने किया (मिनहाज (१२१) पृ० ५७२-३)। खिल्जी अमीरों की पारस्परिक वैमनस्यता के कारण मुहम्मद शेरान मारा गया (मिनहाज (१२१) पृ० ५७६)। उसी भाँति अलीमर्दान का अन्त हुआ (मिनहाज (१२१) पृ० ५८०)। रुकुनुद्दीन फिरोज के शासनकाल में तुर्की अमीरों ने अनेक ताजिक अमीरों का मन्सूरपुर व तराइन में वध कर दिया (मिनहाज (१२१) पृ० ६३५)। रजिया के समय मलिक सैफुद्दीन कूची और उसका भाई फखरुद्दीन, मलिक अलाउद्दीन जानी, व निज़ाम-उल-मुल्क का पतन रजिया का विरोध करने के कारण हुआ (मिनहाज (१२१) पृ० ६४०-४१)। जमालुद्दीन याकूत को तुर्की अमीरों ने मरवा दिया (मिनहाज (१२१) पृ० ६४५)। मुइज्जुद्दीन बहरामशाह के शासनकाल में इख्तियारुद्दीन एतगीन का वध हुआ (मिनहाज (१२१) पृ० ६४८-६५१)। सुल्तान अलाउद्दीन मसूद के शासनकाल में वज़ीर मुहाज़ुद्दीन का वध तुर्की अमीरों ने कर दिया (मिनहाज (१२१) पृ० ६६२-६३)।
२१२. मिनहाज (१२१) पृ० ६६९।
२१३. इल्तुतमिश के समय मुइजी व कुतुबी अमीरों के विरोध के लिये (मिनहाज (१२१) पृ० ६०६) सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोज़शाह के शासनकाल में मलिक रुकुनुद्दीन फिरोज का विद्रोह (मिनहाज (१२१) पृ० ६३३) मलिक इज्जुद्दीन सालारी का विद्रोह (मिनहाज (१२१) पृ० ६३३), मलिक इज़ुद्दीन कबीरखान अय्याज़, मलिक सैफुद्दीन कूची, मलिक अलाउद्दीन जानी के विद्रोह (मिनहाज (१२१) पृ० ६३३-६३४) रजिया के समय मलिक इज़ुद्दीन कबीरखान अय्याज़, मलिक इख्तियारउद्दीन अल्तूनिया के विद्रोह (मिनहाज (१२१) पृ० ६४४-४५) सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के समय कुतुलुग खान का विद्रोह (मिनहाज (१२१)

पृ० ७०३-७१०) एमाउद्दीन रेहान का विद्रोह (मिनहाज (१२२) पृ० ८३५-३६)।

२१४. बरनी (२२३) पृ० ६५-८४, रिज़वी (१९९) पृ० १६९, १८३।

२१५. बरनी (२२३) पृ० १७७, रिज़वी (२००) पृ० ३।

२१६. बरनी (२३३) पृ० २३९, रिज़वी (२००) पृ० ३९।

२१७. बरनी (२२३) पृ० २४४, रिज़वी (२००) पृ० ४३।

२१८. बरनी (२२३) पृ० २५१, रिज़वी (२००) पृ० ४७।

२१९. बरनी (२२३) पृ० २६०, रिज़वी (२००) पृ० ५२।

२२०. बरनी (२२३) पृ० २७२, रिज़वी (२००) पृ० २७२।

२२१. बरनी (२२३) पृ० २७२–७३, रिज़वी (२००) पृ० ५९-६१।

२२२. बरनी (२२३) पृ० २७७, रिज़वी (२००) पृ० ६२।

२२३. बरनी (२२३) पृ० २८२, रिज़वी (२००) पृ० ६५।

२२४. बरनी (२२३) पृ० ३३३, रिज़वी (२००) पृ० ९६।

२२५. बरनी (२२३) पृ० ४२७, रिज़वी (२०१) पृ० ५।

२२६. बरनी (२२३) पृ० ४६२, रिज़वी (२०१) पृ० ३३।

२२७. बरनी (२२३) पृ० ५०५, रिज़वी (२०१) पृ० ६८।

अध्याय ५

१. बरनी (२२३) पृ० १११, रिज़वी (१९९)।
मलफ़ूजात-ए-तैमूरी (इलियट एण्ड डाउसन) ३ पृ० ४२३, ४२९, रशीद (१६४) पृ० ३०, पृ० १८।

२. मिनहाज (१२१) पृ० ५९८-९९, रिज़वी (१९९) पृ० २२।

३. बरनी (२२३) पृ० ४७, रिज़वी (१९९) पृ० १५७।

४. बरनी (२२३) पृ० ३५१, रिज़वी (१९९) पृ० १०६।

५. इब्नबतूता (५९) पृ० ४०, रशीद (१६४) पृ० १९।

६. रशीद (१६४) पृ० १९।

७. मलफ़ूजात-ए-तैमूरी (इलियट एण्ड डाउसन) भाग ३, पृ० ४३४, रशीद (१६४) पृ० १९।

८. रशीद (१६४)।

९. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० २४-२५, रिज़वी (२०३) पृ० १११, अशरफ (८६) पृ० ७२, रशीद (१६४) पृ० २०।

१०. अफीफ (१८८) पृ० १८०, रिज़वी (२०१) पृ० ८९-९०, रशीद (१६४) पृ० २०।

११. रशीद (१६४) पृ० २१।

१२. निज़ामी (८७) पृ० १०५।

१३. निज़ामी (८७) पृ० १०५, रशीद (१६४) ५०-३०, पृ० २१।

१४. निज़ामी (८७), पृ० १५१।

१५. निज़ामी (८७) पृ० १५४-१५५ ।
१६. निज़ामी (८७) पृ० १५६ ।
१७. वरनी (२२३), रिज़वी (१९९) पृ०, निज़ामी (८७) पृ० १५६ ।
१८. निज़ामी (२२३) पृ० १५७ ।
१९. मिनहाज (२२३)२ पृ० ७१३, निज़ामी (८७) पृ० १५९ ।
२०. वरनी (२२३) पृ० ४१-४५, रिज़वी (१९९) पृ० १६०-६१ ।
२१. निज़ामी (८७) पृ० १६२ ।
२२. शिहाबुद्दीन अल-उमरी (१८७) सिद्दिकी पृ० ५० ।
२३. रशीद (१६४) पृ० २४ ।
२४. निज़ामी (८७) पृ० १८२-१८५, जाँन-ए-सुभान (२२९) पृ० १९४-२०९ ।
२५. निज़ामी (८७) पृ० १८५-१८६ ।
२६. निज़ामी (८७) पृ० १८५ ।
२७. निज़ामी (८७) पृ० १८८-१९० ।
२८. निज़ामी (८७) पृ० १९० ।
२९. निज़ामी (८७) पृ० १९० ।
३०. निज़ामी (८७) पृ० १९०-१९१ ।
३१. निज़ामी (८७) पृ० १९२ ।
३२. निज़ामी (८७) पृ० १८४-१८५ ।
३३. निज़ामी (८७) पृ० १८६-८७ ।
३४. निज़ामी (८७) पृ० १८८-८९ ।
३५. निज़ामी (८७) पृ० १९०-२०० ।
३६. निज़ामी (८७) पृ० २०० ।
३७. निज़ामी (८७) पृ० २००-२०१ ।
३८. निज़ामी (८७) पृ० २०१ ।
३९. निज़ामी (८७) पृ० २०१ ।
४०. निज़ामी (८७) पृ० २०२-२०३ ।
४१. निज़ामी (८७) पृ० २०३ ।
४२. निज़ामी (८७) पृ० २०४ ।
४३. निज़ामी (८७) पृ० २०४ ।
४४. निज़ामी (८७) पृ० २२१ ।
४५. निज़ामी (८७) पृ० २२१-२३ ।
४६. निज़ामी (८७) पृ० २२५ ।
४७. निज़ामी (८७) पृ० २२४-२५ ।
४८. निज़ामी (८७) पृ० २२६ ।
४९. निज़ामी (८७) पृ० २१०-२११ ।

५०. निज़ामी (८७) पृ० २१२।
५१. निज़ामी (८७) पृ० २२६।
५२. निज़ामी (८७) पृ० २२६-२७।
५३. निज़ामी (८७) पृ० २२७।
५४. निज़ामी (८७) पृ० २२७।

अध्याय ६

१. फरिश्ता (८२) पृ० ४, के० एस० लाल (६१) पृ० ६८।
२. ताराचन्द्र (२८१) पृ० ३१-३२।
३. चाचानाभा (३०) पृ० ३७१, पृ० २०७, के० एस० लाल (८२) पृ० ६८।
४. अल-विलादूरी (१३) पृ० १२०, के० एस० लाल (६१) पृ० ६८।
५. अल-विलादूरी (१३) पृ० १२२-२४, के० एस० लाल (६१) पृ० ६८-६६।
६. अल-विलादूरी (१३) पृ० १२२-२४।
७. चाचनामा (अनु०) पृ० १६३-६४, २०५-२०७-२०८, अल विलादूरी (१३) पृ० १२४-२५, के० एस० लाल (६१) पृ० ६६।
८. अल-उदरसी (१३) पृ० १२६, अल-इदरसी (अनु०) पृ० ३६, के० एस० लाल (७१) पृ० ६६।
९. अल-विलादूरी इ० अ० १, पृ० ११५-११६, ४१५, के० एस० लाल (६१) पृ० १००।
१०. इब्न हकौल (अनु०) ३७०, २, पृ० ३४, ३५४।
११. इब्न हकौल (अनु०) ३७०, २, पृ० ३४, ३८४।
१२. के० एस० लाल (६१) पृ० १००।
१३. के० एस० लाल (६१) पृ० १००।
१४. के० एस० लाल (६१) पृ० १०२।
१५. के० एस० लाल (६१) पृ० १०२।
१६. उतवी, तारीख-ए-यामिनी, इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० २७, ३०, ३३, ४०, ४२, ४३ ४५, ४६, उतवी, किताब-ए-यामिनी (अंग्रेजी) अनु० जेम्स रैनोल्ड, (लन्दन १८५८) पृ० ४५१-५२, ४५५, ४०६०, ४६२-६३।
१७. फरिश्ता, ६, पृ० ३४, किताब-ए-यामिनी पृ० ४५१-५२, ४५५, ४६०, ४६२-६३, ५०, २, पृ० २७, ३०, ३३, ४०, ४२, ४३, ४५, ४६ पृ० ४३४-३८, के० एस० लाल (६१) पृ० १०२। सुल्तान ने सभी दुर्गों को विध्वंस किया, इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। वही, पृ० १०२।
१८. उतवी, उद्धरित, के० एस० लाल (६१) पृ० १०२।
१९. के० एस० लाल (६१) १०३।
२०. के० एस० लाल (६१) पृ० १०३, बनारस के सम्बन्ध में इब्न असीर ने लिखा है

कि महमूद बिन सुबुक्तगीन के समय से वहाँ मुसलमान थे, इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० २५ ।

२१. इण्डियन एन्टीक्वेरी ४;१८७५, पृ० ३६६, उद्धरित, के०एस० लाल (८१) पृ० १०३ ।

२२. इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली २२, १९५१, पृ० २४०, उद्धरित के० एस० लाल (८१) पृ० १०४ ।

२३. इन प्रदेशों में मुसलमानों की जनसंख्या के सम्बन्ध में अन्य सन्दर्भों के लिए देखिये, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, छठा अधिवेशन, पटना पृ० १२३, बी० वी० मजुमदार (३१) पृ० १२६, कल्हण, राजतरंगिणी (अनु०) एम० ए० स्टी० ७, पृ० ५२८-२९, एस० सी० मिश्रा (१९०) पृ० ५७, डॉ० ताराचन्द (२८१) पृ० ३४-३३, के० एस० लाल (८१) पृ० १०४ ।

२४. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ० ४०, उद्धरित, के० एस० लाल (८१) पृ० १०६ ।

२५. हसन निज़ामी, ताजुल मासीर, इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० २१६, उद्धरित के० एस० लाल (८१) पृ० १०४ ।

२६. हसन निज़ामी, इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० १२० ।

२७. फरिश्ता (८२) पृ० ६२ ।

२८. हसन-निजामी, इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० ३३१, फरिश्ता (८२) पृ० ५३, हबीब उल्लाह (१) पृ० ६८, ३३४ ।

२९. फरिश्ता (८२), पृ० ५९-६० ।

३०. के० एस० लाल (८१) पृ० १०७ ।

३१. के० एस० लाल (८१) पृ० १०७ ।

३२. के० एस० लाल (८१) पृ० १०८ ।

३३. मिनहाज (१२१) पृ० २३८-२४७, २४९, २५०, २५८, २६२, २७६, २८१ ।

३४. फखरुदब्बिर, तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाह, स० डेनिसन एस० (लन्दन, १९२७) पृ० ३३, उद्धरित, के० एस० लाल (८१) १०९ ।

३५. फरिश्ता (८२) पृ० ८४, ८६, उद्धरित के० एस० लाल (८१) ११० ।

३६. मिनहाज (१२१) पृ० १५७-६० ।

३७. मिनहाज (१२१) पृ० ५३४ ।

३८. फरिश्ता, उद्धरित के० एस० लाल (८१) पृ० ११० ।

३९. फरिश्ता उद्धरित के० एस० लाल (८१) पृ०, निज़ामी (८७)

४०. फरिश्ता (अनु०) उद्धरित, के० एस० लाल (८१)

४१. के० एस० लाल (८१) पृ० ११० ।

४२. मिनहाज (१२१) पृ० ६०९ ।

४३. फरिश्ता (अनु०) २११-२१२, के० एस० लाल (८१) पृ० ११०, मिनहाज (१२१) पृ० ५९८, हबीब उल्लाह (१) पृ० २७२ ।

४४. एसामी (१०१) पृ० २२७।
४५. फरिश्ता (८२) पृ० २५०-५१, के० ए० लाल (६६) पृ० ११८।
४६. बरनी (२२३) पृ० ५७-५७, हबीब ७, निज़ामी (१२६) पृ०
४७. फरिश्ता (८२) १, पृ० २२६।
४८. फरिश्ता (८२) १, पृ० ३०२-३०३।
४९. बरनी (२२) पृ० २१८, रिज़वी (१९९) पृ० ५१, एसामी, उद्धरित के०एस० लाल (९१) पृ० १११।
५०. इब्नबतूता (५९) पृ० ६७।
५१. अब्दुल्लाह (२९) पृ० ६०-६३।
५२. अब्बास-खान-सरवानी (२२) पृ० ५-६।
५३. इब्नअसीर, उद्धरित के० एस० लाल (९१) ११४।
५४. फख्र-ए- मुदब्बिर, पृ० २०, के० एस० लाल (९१) पृ० ११४।
५५. मिनहाज (१२१) पृ० ६२०।
५६. मिनहाज (१२१), इलियट एण्ड डाउसन, २, पृ० ३४८।
५७. के० एस० लाल (९१) पृ० ११४।
५८. के० एस० लाल (९१) पृ० ११४।
५९. बरनी (२२३) पृ० ५९, रिज़वी (१९९) पृ० १६५, के० एस० लाल (९१) पृ० ११४।
६०. अफीफ (१८८) २७२, रिज़वी (२०२) पृ० ११४, के० एस० लाल (९१) पृ० ११४-११५।
६१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) उद्धरित, के० एस० लाल (९१) पृ० ११५।
६२. इब्नबतूता (५९) पृ० ६३, रिज़वी २८१) पृ० १८९।
६३. इब्नबतूता (५९) पृ० १२३।
६४. अफीफ (१८८) पृ० ४३६, रिज़वी (२०२) पृ० १६६।
६५. अफीफ (१८८) २७०, रिज़वी (२०२) पृ० ११३।
६६. अफीफ (१८८) ४००, रिज़वी (३००) पृ० १५५।
६७. इब्नबतूता (५९) ४६, के० एस० लाल (९२) पृ० ८०।
६८. अफीफ (१८८) २६८-६९, रिज़वी (२०२) पृ० ११२-१३, ईश्वरी प्रसाद (६०) पृ० ३३१, के० एस० लाल (९१) पृ० ११७।
६९. फुतूहात-ए-फिरोजशाही (४८) पृ० २०, इलियट एण्ड डाउसन, ३, पृ० ३८६, रिज़वी (२०२) पृ० ३३७।
७०. के० एस० लाल (९३) पृ० ११८-१९।
७१. के० एस० लाल (९१) पृ० १२६।
७२. के० ए० लाल (९१) पृ० १३०-३१।

७३. फरिश्ता (८२) उद्धरित, के० एस० लाल (८१) पृ० १३१-३२ ।
७४. अब्दुल करीम (१४) पृ० १४३-४४, के० एस० लाल (८१) पृ० १३२, ३३१ ।
७५. एस० सी० मिश्र (१८०) पृ० १७३, २०५; के०एस० लाल (८१) पृ० १३४-३५ ।
७६. यू० एन० डे (२३०) पृ० ६७, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ० ३५६, के० एस० लाल (८१) पृ० १३५-३६ ।
७७. फरिश्ता (८२) २, पृ० ।
७८. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ३, पृ० ३८१ ।
७९. सीवेल, रावर्ट (२३१) पृ० ५७-५८ ।
८०. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्ड्या ३, पृ० ३८१ ।
८१. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३ पृ० ३८७-८८ ।
८२. विस्तृत विवरण के लिये देखिये, एच० के० शेरवानी (२३२) पृ० २३३ ।
८३. के० एस० लाल (८१) पृ० १३८-३९ ।
८४. के० एस० लाल (८१) पृ० १४३ ।
८५. मिनहाज (१२१) पृ० ६५८, रिज़वी (१९९) पृ० ४७ ।
८६. मिनहाज (१२२) पृ० ८२१-२२, रिज़वी (१९९) पृ० ८७ ।
८७. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), सिद्दीकी पृ० ४० ।
८८. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), सिद्दीकी पृ० ४१ ।
८९. वरनी (२२३) पृ० ४४, रिज़वी (२००) पृ० ४३ ।
९०. वरनी (२२३) पृ० ३०३, रिज़वी (२००) पृ० ७८, के० एस० लाल (८२) पृ० २५६-२६०, एस० वी० पी० निगम (१९३) पृ० १६२, कुरैजी (९२) पृ० २३४-३५ ।
९१. एसामी (१०१), पृ० ४९६, रिज़वी (२००) पृ० २०५, एस० वी० पी० निगम (१९३) पृ० १६२ ।
९२. वरनी (१२३) पृ० ३८२, रिज़वी (२००) पृ० १२५ ।
९३. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३८ ।
९४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ४७ ।
९५. वी० एन० एस० (३७) पृ० ७३ ।
९६. प्रो० लल्लन जी गोपाल (११७) अध्याय ३ ।
९७. प्रो० लल्लन जी गोपाल (११७) पृ० ७२ ।
९८. प्रो० लल्लन जी गोपाल (११७) पृ० ७६-७९ ।
९९. हसन निज़ामी, इलियट एण्ड डाउसन २, पृ० २३०-३१, मिनहाज (१२१) पृ० ५१६, एसामी (१०१) पृ० ८७-८९, फरिश्ता (८२) पृ० १०७, यहिया (२२१) पृ० १२, हवीव उल्लाह (१) पृ० ६६ ।
१००. मिनहाज (१२१) पृ० ४४८, यहिया (२२१) पृ० २०, हवीब उल्लाह (१) पृ० १०२ ।

१०१. बरनी (२२३) पृ२ २५१-५२, (८२) पृ० ३२७, के० एस० लाल (८२) पृ० ८३-८६।
१०२. बरनी (२२३) पृ० ३२६, रिज़वी (२००) पृ० ८१, इरफान हबीब (२३३) पृ० ८०।
१०३. मिनहाज (१२२) पृ० ११-१२, हबीब उल्लाह (१) पृ० १०२-३।
१०४. मिनहाज (१२२) पृ० १७, २५, ४६, ४७ (१२१) पृ० ४८०, ४८३, ४८६, यहिया (२२१) पृ० ३६।
१०५. मिनहाज (१२१) पृ० ४७८-८३, (१२२) पृ० ५२, ५६-५८, ६०-६१, बरनी (१२३) पृ० ५७-६०, रिज़वी (१९९) पृ० १६५-६६।
१०६. बरनी (२२३) पृ० ५७, रिज़वी (१९९) पृ० १६३-६४।
१०७. बरनी (२२३) पृ० ५९-५८, रिज़वी (१९९) पृ० १६३-५।
१०८. फवायद-उल-फौद, उद्धरित, इरफान हबीब (२३३) पृ० ९०।
१०९. खैर उल-मजलिस (सं० निजामी) पृ० २३६-३८।
११०. इब्नबतूता (३९) पृ० १२३।
१११. एसामी (१००) पृ० २८८-८९।
११२. इब्नबतूता (५९) पृ० १६२-६३।
११३. अफीफ (१८८) पृ० २६७, रिज़वी (२०२) पृ० ११२।
११४. अफीफ (१८८) पृ० २६७-६८, रिज़वी (२०२) पृ० ११२।
११५. मिनहाज (१२२) पृ० ७-४८।
११६. मिनहाज (१२१) पृ० ४२१, ४४१-४३, बरनी (२२३) पृ० ३३-३४, ३८४-८५।
११७. अफीफ (१८८) पृ० ३३९-४०, रिज़वी (२०२) पृ० १५५।
११८. इब्नबतूता (५९) पृ० ३६।
११९. मिनहाज (१२२) पृ० ७६६-७९६, रिज़वी (१९९) पृ० ७३, ७९।
१२०. अफीफ (१८८) पृ० २७१-२७२, रिज़वी (२०२) पृ० ११३-११४।
१२१. इब्नबतूता (५९) पृ० १२५।
१२२. इब्नबतूता (५९) पृ० ११६।
१२३. मिनहाज (१२१) पृ० ४४७, रिज़वी (१९९) पृ० ६८।
१२४. बरनी (२२३) पृ० ४९३, रिज़वी (२०२) पृ० ५९।
१२५. मिनहाज (१२२) पृ० ४८३, रिज़वी (१९९) पृ० ८३।
१२६. बरनी (२२३) पृ० ४६१-६२, रिज़वी (२०१) पृ० ३२।
१२७. बरनी (२२३) पृ० २४६-४७।
१२८. मिनहाज (१२१) पृ० ४९५, (१२२) पृ० ४५, बरनी (२२३) पृ० ४१, अफीफ (१८८) पृ० २९७, ३०३, ४४५।
१२९. बरनी (२२३) पृ० ८९-९१।

१३०. बरनी (२२३) पृ० १६१, यहिया पृ० ४०-४२ ।
१३१. बरनी (२२३) पृ० २४० ।
१३२. अफीफ (१८८) पृ० ४४५ ।
१३३. मुहम्मद यासीन मजहर सिद्दीकी (१३३) ।
१३४. बरनी (२२३) पृ० ३१४, रिज़वी (२००) पृ० ८४-८५, के० एस० लाल (६२) पृ० २८५ ।
१३५. अमीर हसन सीजी, फवायद अल-फौद (स० ललीफ मलिक), उद्धरित, इरफान हबीब (२११) पृ० ६१ ।
१३६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ५१ ।
१३७. इन्शा-ए-महरू, पत्र संख्या ५८, रिज़वी (२०२) पृ० ३६ ।
१३८. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी, (१८७), रिज़वी (२०१) पृ० ३१६, सिद्दीकी (३३०) पृ० ३८ ।
१३९. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), रिज़वी (२०१) पृ० ३२५ ।
१४०. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) रिज़वी (२०१) पृ० ३२६ ।
१४१. अफीफ (१८८) पृ० २६८-२७३, रिज़वी (२०२) पृ० ११२-११४ ।

अध्याय ७

१. हचिन्सन १, पृ० २६८ ।
२. हचिन्सन १, पृ० २०८ ।
३. हचिन्सन २, पृ० ५६७ ।
४. हचिन्सन २, पृ० ७२५ ।
५. हचिन्सन २, पृ० ७२५ ।
६. हचिन्सन २, पृ० ७७४ ।
७. हचिन्सन १, पृ० १११, १३४-३५, १९९-२०० ।
८. हचिन्सन १, पृ० २१०-२१२ ।
९. पुष्पा प्रसाद, इटावा फोर्ट इन्सक्रिप्शन्स, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, वाल्टैर, १९७९ ।
१०. पुष्पा प्रसाद, पृ० ३० ।
११. यहिया (२२१) पृ० १७५ ।
१२. यहिया (२२१) पृ० १७५ ।
१३. यहिया (२२१) पृ १७७ ।
१४. इपीग्रेफिका इण्डिका १, पृ० ३२७, हबीब उल्लाह (१) पृ० ८० ।
१५. मिनहाज (१२१), पृ० ६२३ ।
१६. मिनहाज (१२१) पृ० ६२२ ।

१७. मिनहाज (१२१) पृ० ६२८-२६।
१८. मिनहाज (१२१) पृ० ६८०-८६।
१९. मिनहाज (१२१) पृ० ६९१।
२०. मिनहाज (१२२) पृ० ८१७, रिज़वी (१९९) पृ० ८५।
२१. मिनहाज (१२२) पृ० ८१८, रिज़वी (१९९) पृ० ८७।
२२. मिनहाज (१२२) पृ० ८२५, रिज़वी (१९९) पृ० ८७।
२३. मिनहाज (१२२), रिजवी (१९९) पृ० ९१।
२४. मिनहाज (१२२) पृ० ८३९, रिज़वी (१९९) पृ० ९१।
२५. बरनी (२२३) पृ० ५८, रिज़वी (१९९) पृ० १६५।
२६. बरनी (२२३) पृ० १०६, रिज़वी (२००) पृ० १९८।
२७. बरनी (२२३) पृ० २८८, रिज़वी (२००)
२८. बरनी (२२३) पृ० ३२६, रिज़वी (२००) पृ० ९१।
२९. बरनी (२२३) पृ० ३८३, रिज़वी (२००) पृ० १२७।
३०. बरनी (२२३) पृ० ४१०, रिज़वी (२००) पृ० १४१।
३१. बरनी (२२३) पृ० ५०५, रिज़वी (२०१) पृ० ६८।
३२. बरनी (२२३) पृ० ५०५, रिज़वी (२०१) पृ० ६८।
३३. बरनी (२२३) पृ० ५८८, रिज़वी (२०२) पृ० ४०।
३४. बरनी (२२३) पृ० ४८८, रिज़वी (२०२) पृ० ४०।
३५. यहिया (२२१) पृ० १२८।
३६. यहिया (२२१) पृ० १२९, रिज़वी (२०२) पृ० २०१।
३७. यहिया (२२१) पृ० १६९, रिज़वी (२०३) पृ० ५।
३८. यहिया (२२१) पृ० १७१, रिज़वी (२०३) पृ० ६।
३९. यहिया (२२१) पृ० १७२, रिज़वी (२०३) पृ० ७।
४०. यहिया (२२१) पृ० १७४, रिज़वी (२०३) पृ० ८, (२०१) पृ० २१०, २१३।
४१. यहिया (२२१) पृ० १९५, रिज़वी (२०३) पृ० २३।
४२. यहिया (२२१) पृ० १९७, रिज़वी (२०३) पृ० २४।
४३. यहिया (२२१) पृ० २३८, रिज़वी (२०३) पृ० ५१।
४४. यहिया (२२१) पृ० २३८, रिज़वी (२०३) पृ० ५१।
४५. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३२४, रिज़वी (२०३) पृ० २१८-१९।
४६. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३३३, रिज़वी (२०३) पृ० २२५।
४७. बरनी (२२३) पृ० २६३, रिज़वी (२००) पृ० ११४।
४८. ज्योतिषियों के सम्बन्ध में अन्य संदर्भ के लिये—मिनहाज (१२१) पृ० ५५५, निजामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३२७, रिज़वी (२०३) पृ० २२१।
४९. एम० सी० जोशी, सम नागरी इंसक्रिपशन्स आन दि कुतुबमीनार, मिडिवेल इण्डिया मिसीलेनी, अलीगढ़, १९७२, पृ० ४०, पुष्पा प्रसाद, क्रेफ्टसमैन इन

देहली, सुल्तेनत् ए स्टडी ऑफ इपिग्रेफिक इविडिन्स, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, अधिवेशन, १६८२।

५०. फख्र-ए-मुद्दब्बिर, तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाह, उद्धरित, यासीन मजहर सिद्दीकी, हिन्दूज इन एडिमिनिस्ट्रेटिव अपरेटस ऑफ देहली सुल्तनत इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, भुनेश्वर, १६७७।

५१. इपीग्रोफका इण्डिका, XI।, पृ० ४४।

५२. एसामी (१००) पृ० १३६।

५३. बरनी (२२३) पृ० ८६, रिज़वी, एसामी (१००) पृ० २७६।

५४. बरनी (२२३) पृ० १८२, रिज़वी।

५५. देवलरानी व खिज्रखान (अलीगढ़, १६१७) पृ० ४२-४५, उद्धरित एस० सी० मिश्र (१६०) पृ० ६५।

५६. एसामी (१००) पृ० ४६१।

५७. बरनी (२२३) पृ० ३२०-२१, एसामी (१०१) पृ० ४८०-८१, देवलरानी व खिज्रखान पृ० ६१।

५८. अमीर-खुसरो (७), तुग़लकनामा पृ० १२८।

५६. एसामी (१०१) पृ० ६६३।

६०. हवीब (१२५) (फतवाए-जहाँदारी-अनुवाद) पृ० ४६-४७।

६१. मिनहाज (१२२) पृ० ७४४-४६।

६२. एसामी (१००) पृ० ३११।

६३. बरनी (२२३) पृ० ४२४, रिज़वी (२००) पृ० २।

६४. बरनी (२२३) पृ० ४२४, रिज़वी (२०१) पृ० २।

६५. अफीफ (१८८) पृ० ३४७-४८, रिज़वी (२०२)।

६६. कयुमुद्दीन अहमद, कारपस ऑव अरेबिक एण्ड पर्शियन इंसक्रिपसंस ऑफ बिहार, पटना १६७३, पृ० ६१।

६७. बरनी (२२३) पृ० ३०४, रिज़वी (२०२) पृ० २०७।

६८. बरनी (२२३) पृ० ३०४, रिज़वी (२००) पृ० १६।

६६. इब्नबतूता (५६) पृ० ४, रशीद (१६४) पृ० २५।

७०. अफीफ (१८८) पृ० ६१, रिजवी (२०२) पृ० ५६।

७१. इब्नबतूता (५६) पृ० १३५, रशीद (१६४) पृ० २५।

७२. अफीफ (१८८) पृ० २६७-६८, रिज़वी (२०२) पृ०।

७३. मिनहाज (१२१) पृ० ५५७, रिज़वी (१६६) पृ० १४।

७४. मिनहाज (१२१) पृ० ५५७, रिज़वी (१६६) पृ० ४७।

७५. अमीर-खुसरो (८) रिज़वी (१६६) पृ० २८८।

७६. बरनी (२२३) पृ० २७०, रिजवी (२००) पृ० ५८।

७७. बरनी (२२३) पृ० २७०, रिज़वी (२००) पृ० ५८।

७८. परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० ५२ ।
७९. परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० ९३-९४ ।
८०. ग्रन्थ साहब, राग गौड़, उद्धरित, परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० १६९ ।
८१. कबीर ग्रन्थावली, काव्य संग्रह, पृ० ५९, उद्धरित, परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० १७० ।
८२. परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० २१९ ।
८३. परशुराम चतुर्वेदी (१५८) पृ० २४१ ।

अध्याय ८

१. मिनहाज (१२१) पृ० ६१९, रिज़वी (१९९) पृ० २७ ।
२. इब्नबतूता (५९) पृ० १४३ ।
३. अफीफ (१८८) पृ० ३६५-६६ रिज़वी (२०२) पृ० १४५ ।
४. इब्नबतूता (५९) पृ० ६०-६२ ।
५. अफीफ (१८८) पृ० ३६१-६२, रिज़वी (२०२) पृ० १४३-४४ ।
६. अमीर खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी पृ० ३२९-३१, बरनी (२२९) पृ० ११३-१४ । अमीर खुसरो (८), किरान-उस-सादैन पृ० ७३-८२, १००, अफीफ (१८८) पृ० २६०, रिज़वी (२०२) पृ० १४३, रशीद (१६४) पृ० १२४ ।
७. हसन-निज़ामी (अनु०) इलियट एण्ड डाउसन भाग २, मिनहाज/(१२१) पृ० ५२८, रिज़वी (१९९) पृ० ८ ।
८. अहमद यादगार (२४) पृ० ४२, रिज़वी (२०३) पृ० ३०७, ३२८ ।
९. बरनी (२२३) पृ० ३०, रिज़वी (१९९) पृ० १४५ ।
१०. अफीफ (१८८) पृ० ५४, रिज़वी (२०२) पृ० १४५-४६ ।
११. बरनी (२२३) पृ० ३६७, रिज़वी (१९९) पृ० १६२ ।
१२. बरनी (२२३) पृ० ११३-१४, रिज़वी (१९९) पृ० २०२-२०३ ।
१३. अमीर खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० १०१-१०२ ।
१४. बरनी (२२३) पृ० ६०८, रिज़वी (२०२) पृ० ४७-४८ ।
१५. अफीफ (१८८) पृ० ३१६-२६, ३२८-२९, रिज़वी (२०२) पृ० १३१-३३, रशीद (१६४) पृ० १०२-१०३ ।
१६. हसन-निज़ामी (अनु०) इलियट एण्ड डाउसन भाग २, पृ० ।
१७. अमीर खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी भाग २, पृ० २९१-९४, भाग ४, पृ० ३०४ उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ५०, १०३ ।
१८. बरनी (२२३) पृ० १६३, रिज़वी (१९९) पृ० २३६ ।
१९. अमीर-खुसरो, नुह़सिपेहर पृ० १६८-१६९, रिज़वी (२००) पृ० १७९ ।
२०. अब्दुल्लाह (२९) पृ० ५८, रिजाकुल्लाह-मुश्ताकी पृ० २०, रिज़वी (२०३) ।
२१. रशीद (१६४) पृ० १०४ ।

२२. रशीद (१६४) पृ० १०४-१०५ ।
२३. इब्नबतूता (५६) पृ० २८
२४. बरनी (२२३) पृ० १५८, रिज़वी (१६६) पृ० २३३-३४ ।
२५. अमीर-खुसरो, नुहसिपेहर १६०-१६१, रिज़वी (२००) पृ० १८१ ।
२६. अमीर-खुसरो, देवल रानी व खिज्र खाँ, पृ० १५३-६, रिज़वी (२००) पृ० १७३ ।
२७. मिनहाज (१२१) पृ० ६१२, रिज़वी (१६६) पृ० २७ ।
२८. बरनी (१२१) पृ० ४६४-६५, रिज़वी (२०१) पृ० ५६-६१ ।
२६. इब्नबतूता (५६) पृ० २४३-४४, रशीद (१६४) पृ० १०६ ।
३०. बरनी (२२३) पृ० २७४, रिज़वी (२०२) पृ० ११५ ।
३१. बरनी (२२३) पृ० १६४, रिज़वी (१६६) पृ० २३७ ।
३२. बरनी (२२३) पृ० ४५२, रिज़वी (२०१) पृ० २५ ।
३३. अफीफ (१८८) पृ० १२३, रिज़वी (२०१) पृ० ७२-७३ ।
३४. अफीफ (१८८) पृ० १७५, रिज़वी (२०१) पृ० ८८ ।
३५. अफीफ (१८८) पृ० २५०, रिज़वी (२०१) पृ० १०७ ।
३६. बरनी (१८८) पृ० २४७, रिज़वी (२००) पृ० ४४ ।
३७. बरनी (२२३) पृ० ३८२, रिज़वी (२००) पृ० १२५ ।
३८. बरनी (२२३) पृ० ४५७, रिज़वी (२०१) पृ० २६ ।
३६. अफीफ (१८८) पृ० ८४, रिज़वी (२०२) पृ० ६३ ।
४०. अमीर-खुसरो, देवलरानी व खिज्र खान, पृ० १४७-१५३, रिज़वी (२००) पृ० १७३ ।
४१. इब्नबतूता (५६) पृ० ७८-८२, रिज़वी (२०१) पृ० २०१-२०२ ।
४२. अमीर-खुसरो, नुहसिपेहर पृ० १६८-६, रिज़वी (२००) पृ० १७६ ।
४३. हसन-निज़ामी, ताजुलमआसीर, इलियट एण्ड डाउसन भाग ५, रशीद (१६४) पृ० ११६-११७ ।
४४. यहिया (२२१) (अनु०) पृ० ३६, रशीद (१६४) पृ० ३०, ११७ ।
४५. बरनी (२२३) पृ० ११३, रिज़वी (१६६) पृ० २०३ ।
४६. बरनी (२२३) पृ० १२६, रिज़वी (१६६) पृ० २१४ ।
४७. बरनी (२२३) पृ० १६३, रिज़वी (२००) पृ० २३६ ।
४८. बरनी (२२३) पृ० १६८-२००, रिज़वी (२००) पृ० १५, १६, १७ ।
४६. अमीर-खुसरो (६) पृ० ३६-३७, उद्धरित, रिज़वी (२००) पृ० १५४ ।
५०. बरनी (२२३) पृ० ३६४-६५७, रिजवी (२००) पृ० ११४-११५ ।
५१. अमीर-खुसरो (४) पृ० १५४-५८, रिज़वी (२००) पृ० १७३-१७४ ।
५२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २६ ।
५३. इब्नबतूता (५६) पृ० ६३ ।

५४. अफीफ (१८८) पृ० ३६३-६८, रिज़वी (२००) पृ० १४४-४६।
५५. इब्नबतूता (५६) पृ० ६-१०।

अध्याय ६

१. इब्नबतूता (५६) पृ० ६, रिज़वी (१६६) पृ० १६०।
२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ५६, बरनी (२२३) पृ० ५६६, इलियट एण्ड डाउसन ३, पृ० ५८३।
३. अलकशन्दी पृ० ४८-४६, उद्धरित के० एस० लाल (१६३) पृ० २७३।
४. के० एस० लाल० (६३) पृ० २७३।
५. अहमद यादगार (२४) पृ० ५८, फुतूहात-ए-फिरोजशाही पृ० १७४, २७३।
६. बरनी (२२३) पृ० १३६-१६, सियार-उल औलिया पृ० १७३-७६, फुतूहात-ए-फिरोजशाही (४८) पृ० ७५, इब्नबतूता (अनु०) पृ० ३८।
७. फुतूहात-ए-फिरोजशाही (४८) पृ० ४१, सियार-उल-औलिया पृ०२२६, इब्नबतूता (५६) पृ० ४६।
८. त्रिभुल भट्ट (२१०) बृहोराजतंरगिणी।
९. रशीद (१६४) पृ० ३०, ४६, अमीर-खुसरो, एजाज खुसरवी (६३) पृ० २२५।
१०. अलकशन्दी, उद्धरित, के० एस० लाल (६३) पृ० २२५।
११. त्रिभुन्न भट्ट (२१०) बृहोराजतरंगिणी।
१२. रशीद (१६४) पृ० ३०, ४६।
१३. चन्द्रवरदायी (३५) पृथ्वीराजरासो।
१४. मुल्लादाउद (१३१) चन्दायन।
१५. नरायणदेव (१५०) मानस मंगल।
१६. विजय गुप्त (२१५) मानस मंगल।
१७. लावन्य स्वामी (११६) विमल प्रवन्ध।
१८. इब्नबतूता (५६) पृ० १८८, रिज़वी (२०१) पृ० २७६।
१९. इब्नबतूता (५६) पृ० १६, रिज़वी (२०१) पृ० १६८।
२०. मुतहर, दीवान-ए-मुतहर (अनु०) रिज़वी (२०२) पृ० ४०७।
२१. अमीर-खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी भाग १, पृ० १७३, भाग ४, पृ० ६३-६४, उद्धरित रशीद (१६४) ५-अ पृ० ४१, ओमप्रकाश, फूड हैबिट्स आफ इण्डियन्स इन द फिफ्टीन्थ सेन्चुरी, प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९६८ पृ० २७६।
२२. इब्नबतूता (५६) पृ० १६, रिज़वी (२०१) पृ० १६७-६८।
२३. वावर (२२५) पृ० १८४-८३।
२४. विद्यापति, कीर्तिलता (२१३) पृ० १।
२५. इब्नबतूता (५६) पृ० ६, रिज़वी (२०१) पृ० १६०।

२६. इब्नबतूता (५९) पृ० १५।
२७. जायसी (१३०) दत्त पृ०।
२८. नारायणदेव (१५०) मानसमंगल पृ०।
२९. विजयगुप्त (२१५) मानसमंगल पृ०।
३०. इब्नबतूता (५९) पृ० १८१, रिजवी (२०१) पृ० २७९।
३१. मुतह्हर, दीवान-ए-मुतह्हर कड़ा, रिज़वी (२०१) पृ० ४०६-४०७।
३२. वरनी (२२३) पृ० २४७, रिज़वी (१९९) पृ०।
३३. अमीरखुर्द, सियार-उल-औलिया, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ५०।
३४. अमीर-खुसरो. एजाज-ए-खुसरवी १, पृ० २७, भाग २, पृ० २५४, उद्धरित रशीद (१६४) पृ० ३०, ५२, इब्नबतूता (५९) पृ० २४४।
३५. अमीर-खुसरो (८) पृ० ३२।
३६. इब्नबतूता (५९) पृ० २८।
३७. इब्नबतूता (५९) पृ० २८।
३८. शरबत के सन्दर्भ के लिए देखिए—इब्नबतूता (५९) पृ० १६, ४९, ६५, ६६, ११९, १२१, १३९, १४२।
३९. इब्नबतूता (५१) पृ० ४।
४०. मुतह्हर, दीवान, रिज़वी (२०२) पृ० ४०६-४०७।
४१. वरनी (२२३) पृ० ४६, रिज़वी (१९९) पृ० १५६।
४२. त्रिभुल भट्ट (२१०) वृहोराजतंरगिणी।
४३. ओमप्रकाश, फूडहैबिट्स आफ इण्डियन, प्रो० इ० डि० का० १९७८, पृ० २७६।
४४. इब्नबतूता (५९) पृ० ६४-६५।
४५. इब्नबतूता (५९) पृ० ६४, रिज़वी (२०१) पृ० १९०-९१।
४६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) सिद्दीकी पृ० ४२।
४७. इब्नबतूता (५९) पृ० १४-१५, रिज़वी (२०१) पृ० ६६-६७।
४८. बरनी (२२३) पृ० ११६. रिज़वी (१९९) पृ० २०५।
४९. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ५६, रिज़वी (२०२) पृ० ३२९।
५०. बाबर (२२५) पृ० २४२।
५१. हसन निज़ामी, तम्जुल आसीर, इलियट एण्ड डाउसन भाग २, पृ० उद्धरित. रशीद (१६४) पृ० ५२।
५२. वरनी (२२३) पृ० ३११।
५३. अमीर खुसरो, एजाज-ए-खुसरवी भाग १, पृ० १८, भाग २ पृ० ३८, २४५ भाग ४, पृ० ८५-८६, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ५३।
५४. अफ़ीफ (१८८) पृ०, रिज़वी (२०२) पृ० ११५।
५५. वरनी (२२३) पृ० २७३, रिज़वी (२००) पृ० ६०।
५६. के० एस० लाल (९३) पृ० २७१।

५७. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), रिज़वी (२०१) पृ० ६३२-३३३।
५८. अफीफ (१८८) पृ० २८०, रिज़वी (२०२) पृ० ११७।
५९. अफीफ (१८८) पृ० ४३४, रिज़वी (२०२) पृ० १६६।
६०. बरनी (२२३) पृ० ९३।
६१. रशीद (१६४) पृ० ५५।
६२. जे० ए० आर० एस०, पृ० ८९।
६३. बाबर (२२५) पृ० ५१९।
६४. अब्दुर्र रज्जाक।
६५. मार्कोपोलो।
६६. बारबोसा (३८) पृ० ५३।
६७. अमीर-खुसरो (३) पृ० १३५।
६८. अमीर-खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी भाग १, पृ० १७७, भाग ५ पृ० ६८, ७२, ७३, उद्धरित, रशीद (१६०) पृ० ५४।
६९. मुल्ला दाउद (१३०), रशीद (१६४) पृ० ५४।
७०. मुल्ला दाउद (१२०) पृ० ८३।
७१. रशीद (१६४) पृ० ५४।
७२. अमीर खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी, भाग ३, पृ० ३३, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ५५-५६।
७३. मुल्ला दाउद (१३०) पृ० ५२।
७४. मुल्ला दाऊद (१३०) पृ० ८५।
७५. अहमद यादगार (२४) पृ० ६०-६१, रशीद (१६४) पृ० ५७।
७६. इब्नबतूता (५९) पृ० ५७, रिज़वी (२०१) पृ० १८४-८५।
७७. अमीर-खुसरो (३) पृ० ३०-३१, रिज़वी (२००) पृ० ५३।
७८. बाबर (२२५) पृ० ६०८-९।
७९. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६, रिज़वी (२०१) पृ० ३१३, रशीद (१६४) पृ० ५७, मु० ज़की पृ० ८।
८०. बरनी (२२३) पृ० ३२, रिज़वी (१९९) पृ० १४६।
८१. अफीफ (१८८) पृ० ३७४, रिज़वी (२०२) पृ० १४७-४८।
८२. इब्नबतूता (५९) पृ० ११९-२०, रिज़वी (२०१) पृ० २३६।
८३. नारायणदास (१५२) पृ० ५, (९९) (१५५)।
८४. मुल्ला दाउद (१३०) पृ० ३२, ३४-३५, ३६।
८५. नारायणदास (१५२) पृ० १६ १५९-६०।
८६. इब्नबतूता (३९) पृ० १२१।
८७. अब्दुल्ला (२९) पृ० ११, रिज़वी (२०३), २४५।
८८. हसन निज़ामी, ताजुल मआसीर, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ५०।

८९. बरनी (२२३) पृ० ११०, रिज़वी (१९९) पृ० ।
९०. एसामी (१०१) पृ० ३१० ।
९१. यहिया (२२१) पृ० ४९ ।
९२. बरनी (२२३) पृ० १२२-२३ ।
९३. अमीर खुर्द, सियार-उल-औलिया ०पृ ३०४, रशीद (१६४) पृ० ८० ।
९४. इब्नबतूता (५९) पृ० ४३, रशीद (१६४) पृ० ८० ।
९५. इब्नबतूता (५९) पृ० ४, ५, ५७, ६०, ६२, ६३, बरनी (२२३) पृ० १०८ अफीफ (१८८) पृ० १६०, १६८, २६७, २९०-९१ ।
९६. बरनी (२२३) पृ० ५४१, रिज़वी (२०२) पृ० ११-१२ ।
९७. अफीफ (१८८) पृ० ४३३, रिज़वी (२०२) पृ० १६५ ।
९८. हसन सीजी, फवायद-उल-फौद, पृ० ७३, अमीर खुर्द, सियार-उल-औलिया पृ० १६६, उद्धरित रशीद (१६४) पृ० ८२ ।
९९. अफीफ (१८८) पृ० २२५, रिजवी (२०२) पृ० २ ।
१००. नारायण दास (१५२) पृ० १८ १६७-६८ ।
१०१. रशीद (१६४) पृ० ८३ ।
१०२. रशीद (१६४) पृ० ८४ ।
१०३. इब्नबतूता (५९) पृ० १६५ ।
१०४. रशीद (१६४) पृ० ८४ ।
१०५. रशीद (१६४) पृ० ८४ ।
१०६. रशीद (१६४) पृ० ८५ ।
१०७. अमीर हसन सीज़ी, फवायद-उल-फौद, पृ० २५४, रशीद (१६४) पृ० ८५ ।
१०८. अमीर हसन सीजी, फवायद-उल-फौद, पृ० ५९, उद्धरित, रशीद (१६४) पृ० ८६ ।
१०९. इब्नबतूता (८९) पृ० ४३ ।
११०. फिरोजशाह तुग़लक (४८) पृ० १०, रिज़वी (२०२) पृ० ३३२ ।
१११. रशीद (१६४) पृ० ८७ ।
११२. बरनी, फतवाय-ए-जहाँदारी, पृ० ४, रशीद (१६४) पृ० ८८ ।
११३. बरनी (२२३) पृ० १५८-५९, रिज़वी (१९९) पृ० २३३-३४ ।
११४. बरनी (२२३) पृ० ३९२, रिजवी (२००) पृ० १३१ ।
११५. बरनी (२२३) पृ० ३९६, रिज़वी (२००) पृ० १२३ ।
११६. बरनी (२२३) पृ० ४०३, रिज़वी (२००) पृ० १३७ ।
११७. बरनी (२२३) पृ० ३८४, रिज़वी (२००) पृ० १२७ ।
११८. आइन-उल-मुल्क (इन्शा-ए-महरू) पत्र सं० ७, रिज़वी (२०२) पृ० ३७८ ।
११९. फिरोजशाह तुगलक, फुतूहात-ए-फिरोजशाही पृ० ७, जे० ए० आर० एस० १, VII १९४१, पृ० ७१, होदीवाला, स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ०

३४२, रशीद (१६४) पृ० ८०, जे० एम० बनर्जी (८११) पृ० १८६, आर० सी० जौहरी (१६५) पृ० १४४, रिजवी (२०२) पृ०३३०-३३१।

१२०. मुहम्मद हबीब (१२५) पृ० १३८।

१२१. अमीर ख़ुसरो, रिज़वी (२००) पृ० १५६।

१२२. विद्यापति, कीर्तिलता, पृ० १४-१६, रशीद (१६४) पृ० ८१।

१२३. बरनी (२२३) पृ० ४०, रिज़वी (१८८) पृ० १५२।

१२४. बरनी (२२३) पृ० ४०, रिज़वी, (१८८) पृ० १५२।

१२५. बरनी (२२३) पृ० ४०, रिज़वी (१८८) पृ० १५२।

१२६. बरनी (२२३), रिज़वी (१८८) पृ० १८३।

१२७. बरनी (२२३) पृ० ११६, रिज़वी (१८८) पृ० २०४।

१२८. बरनी (२२३) पृ० ६०, रिज़वी, (१८८) पृ० ६६।

१२९. बरनी (२२३) पृ० २८२, रिज़वी (२००) पृ० ७२।

१३०. अफीफ (१८८) पृ० ३४५-४६, रिज़वी (२००) पृ० १४०-४१।

१३१. अफीफ (१८८) पृ० ४७१, रिज़वी (२०२) २, पृ० १७८।

१३२. अफीफ (१८८) पृ० ४७८, रिज़वी, (२०२) २, पृ० १८१।

१३३. अफीफ (१८८) पृ० ४३८-४०, रिज़वी (२०२) पृ०।

१३४. मुहम्मद हबीब (१२५) पृ० ३६।

१३५. इब्नबतूता (५८) पृ० २१-२३।

अध्याय १०

१. मनुस्मृति, अध्याय ३, (५५)।

२. मनुस्मृति, अध्याय ३, (५६)।

३. मनुस्मृति, अध्याय ३, (५८)।

४. मनुस्मृति, अध्याय ३, (५९)।

५. मनुस्मृति, अध्याय ३, (६०)।

६. अल्टेकर, (३४-अ) बी० एन० एस० यादव (३७) ३०।

७. गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा, ५१ (A) पृ० ६५।

८. के० एस० लाल० (८३) पृ० २६८।

९. अमीर खुसरो, हश्त बहिशत पृ० २८-३०।

१०. विद्यापति (२१), जायसी (१३०)।

११. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १०, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३३२।

१२. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३३६, रिज़वी (२०३) पृ० २२७-२२८, के० एस० लाल (८३) पृ० २६८।

१३. नारायण दास (१५२) पद्य ७८।

१४. मुल्ला दाउद (१३१) पृ० ३३-३४ (प० ३५-३६)।

१५. अमीर खुसरो, देवलरानी व खिज्र खाँ, पृ० ८३, रिज़्वी (२००) पृ० १७३।
१६. अफीफ, पृ० १८०, १८२, रिज़्वी (२०२), पृ०।
१७. नारायणदास (१५२) प० १५६।
१८. नारायणदास (१५२) प० १६०, १६१, १६२।
१९. नारायणदास (१५२) प० १६०, १६१, ६६२।
२०. नारायणदास (१५२) प० १६५।
२१. मुल्ला दाउद, (३१) प० ४२।
२२. दौरते वारवोसा (३८) भाग १, पृ० ११६-११७।
२३. वरनी ३६८, रिज़्वी (२००) पृ० १७७, अमीर खुसरो, देवलरानी व खिज्र खाँ, पृ० १४७-४८। रिज़्वी (२०२)पृ० १७३-७४, इब्नवतूता (५८) पृ० ७८-८०, रिज़्वी (२०१) १, पृ० २००-२०२।
२४. अफीफ (१८८) पृ० ४३६, रिज़्वी (२०२) पृ० १६६।
२५. अफीफ (१८८) पृ० ३४८-५१, रिज़्वी (२०२) २, पृ० १४२।
२६. खलीक़ अहमद निज़ामी (८१) पृ० २१४।
२७. दौरते वारवोसा (३८) पृ० ११६।
२८. निकोलोकोन्टी, ट्रैवेल्स आफ निकोलोकोन्टी, मेगर, इण्डियाइन फिफ्टीन्थ सेन्चुरी हेकलूट सोसायटी, लन्दन, १८५, ७, पृ० २३।
२९. कुतुवन, मृगावती।
३०. मुल्ला दाउद (१३१) पृ० २८ (पद्य ३१)।
३१. मिनहाज (१२१) १, पृ० ६८५, रिज़्वी (१८८) पृ० ५१।
३२. मलिक कवीर (१४७) कहानी स० २८, उद्धरित, रिज़्वी (२०३) पृ० ३७५।
३३. अलवरुनी (४४) २, पृ० १५५।
३४. अमीर खुसरो, नुहसिपेहर, उद्धरित, रिज़्वी (२००) पृ० १८१।
३५. इब्नवतूता (५८) पृ० २१, २२, रिज़्वी (२०१) पृ० १७१-७२, के० एस० लाल (८३) पृ० २६८।
३६. अमीर खुसरो, खज़ाइनुल फुतूह, पृ० ५३, रिज़्वी (२००) पृ० १५८।
३७. इब्नवतूता (५८) पृ० ८६।
३८. इब्नवतूता (५८) पृ० ८६, रिज़्वी तु० का० भा १, पृ० २१६।
३९. इलियट एण्ड डाउसन, ३, पृ० ४२९, के० एस० लाल (८३) पृ० २६८।
४०. फिरोजशाह तुग़लक, फ़ुतूहात-ए-फिरोज़शाही, पृ० १०, रिज़्वी (२०२) पृ० २।
४१. खलीक़ अहमद निज़ामी (८७) पृ० १८६।

अध्याय ११

१. युसुफ़ हुसैन (२१८) पृ० ६८।
२. हसन निज़ामी, ताजुल मआसीर, इलियट एण्ड डाउसन, ३।

३. मिनहाज (१२१) पृ० ५६०, (१८८) पृ० १४।
४. मिनहाज (१२१) १, पृ० ७४४, रिज़वी (१६०) पृ० ३५।
५. बरनी (२२३) पृ० ४६, रिज़वी (१८८) पृ० १५६।
६. बरनी (२२३) पृ० ६७, रिज़वी (१८८) पृ० १७०-७१।
७. बरनी (२२३) पृ० १८७, रिज़वी (२००) पृ० १५।
८. बरनी (२२३) पृ० २०२, रिज़वी (२००) पृ० १७-१८।
९. बरनी (२२३) पृ० ३५५-६६, रिज़वी (२००) पृ० १०९-१६।
१०. बरनी (२२३) पृ० ५५९-६०, रिज़वी तु० (२०२) पृ० २२-२३।
११. बरनी (२२३) पृ० ५००, रिज़वी (२०२) पृ० २३।
१२. मुतहर, दीवान-ए-मुतहर कड़ा, रिज़वी (२०२) पृ० ४०६-४०७, खलीक अहमद निज़ामी (९०-अ) पृ० ९०, जे० एम० बनर्जी (८१) पृ० १४०-४१, आर० सी० जौहरी (१६५) पृ० १५३-५५।
१३. बरनी (२२३) पृ० ५६३-६४, रिज़वी (२०२) २, पृ० २५-२६।
१४. बरनी (२२३) पृ० ५६३-६६, रिज़वी (२०२) २, पृ० २६, युसुफ हुसैन (२१९) पृ० ७२-७३।
१५. अलकलशन्दी, सुबह-उल-अशा, उद्धरित, युसुफ हुसैन (२१९) पृ० ७३।
१६. बरनी (२२३) पृ० ३६२, रिज़वी (२००) पृ० ११३।
१७. बरनी (२२३) पृ० ३६२, रिज़वी (२००) अ० पृ० ११३।
१८. बरनी (२२३) पृ० ३६२, रिज़वी (२००) अ० पृ० ११३।
१९. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० ११३।
२०. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० ११३-११४।
२१. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० ११४।
२२. बरनी (२२३) पृ० ३६३, रिज़वी (२००) पृ० ११४।
२३. सीरत-ए-फिरोज़शाही (इ० वि० पाण्डुलिपि) पृ० ३१९-२१ उद्धरित (८१) पृ० १८३।
२४. के० पी० साहू (१०६) पृ० १३०।
२५. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी, रिज़वी (२०३) १, पृ० १४४।
२६. के० पी० साहू (१०६) पृ० १३२।
२७. अफीफ (१८८) पृ० २७०, रिज़वी (२०२) २, पृ० ११३।
२८. अखबार-उल-अखियार, उद्धीरत, युसुफ हुसैन (२१९) पृ० ७४, के० एस० लाल (९३) पृ० २४४।
२९. युसुफ हुसैन, इण्डियन कल्चर, भाग ३०, १९५६, पृ० ११०, के० एस० लाल (९३) पृ० २४५।
३०. अब्दुल कादिर बदाउनी (अनु०) १, पृ० ४२७, के० एस० लाल (९३) पृ० २४५।

३१. अब्बास खाँ सरवानी (२२) पृ० १४, अहमद यादगार (२४) पृ० १७३, निगम (१६२) पृ० ३०३, नियामत उल्लाह, तारीख-ए-खान जहानी पृ० २६३, निगम (१६२) पृ० ३३३ ।
३२. एच० के० सरवानी, महमूद गाँवा, पृ० १८५ ।
३३. के० पी० साहू (१०६) पृ० १३२ ।
३४. इब्नबतूता (३६) पृ० ३५ ।
३५. अमीर खुसरो, तुग़लकनामा पृ० २२-२३, रिज़वी (२००) पृ० १८५ ।
३६. कुतुबन, मृगावती, पृ० १०१-१०२ ।
३७. मंझन, मधुमालती पृ० ४७ ।

अध्याय १२

१. अफीफ (१८८) पृ० ६५, रिजवी (२०२) पृ० ६४ ।
२. मिनहाज (१२१) १, पृ० ५८६ ।
३. इपिग्रेफिका इण्डो मुस्लिमका, १६११-१२, पृ० १-३ ।
४. शेख जैनुद्दीन, तवक़ाते बाबरी (अनु०) पृ० ३२ ।
५. इब्नबतूता (५६) पृ० २८ ।
६. फिरोजशाह तुग़लक (४८) पृ० १५ ।
७. अमीर खुसरो, खजाइनुल फुतूह पृ० ३१-३४, रिजवी (२००)पृ० १५६, इब्नबतूता (५६) पृ० २८ ।
८. एसामी (१०१-व) २, पृ०, रिज़वी (२०१) १, पृ० ८६ ।
९. बरनी (२२३) पृ० ४४२, रिजवी (२००) १, पृ० १७ ।
१०. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ) ।
११. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ) ।
१२. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ) ।
१३. बरनी (२२३) पृ० ४८३, रिज़वी (२०१) पृ० ५१ ।
१४. इब्नबतूता (५६) पृ० १७१-१७२ ।
१५. सीरत-ए-फिरोज़शाही ।
१६. सीरत-ए-फिरोज़शाही पृ० ११४, जौहरी (१६५) पृ० १७४ ।
१७. यहिया (२२१) पृ० १३१, रिजवी (२०२) पृ० १६६ ।
१८. यहिया (२२१) पृ० १६१, रिजवी (२०२) पृ० १६६ ।
१९. इब्नबतूता (५६) पृ० ४५ ।
२०. बाबर (२२५) पृ० ३८१ ।
२१. फरिश्ता (अ० ३० ब्रिगस) भाग १, पृ० ४६५ ।
२२. अफीफ (१८८) पृ० २३०, रिज़वी (२०२) पृ० १३४ ।
२३. सिकन्दर मंझू गुजराती, मीरत-ए-सिकन्दरी पृ० ६१, रिज़वी (२०४) पृ० २६० ।

२४. बाबर (२२५) पृ० ५८२, ५८६, ५८७।
२५. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ)।
२६. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ) १९८२।
२७. अमीर खुसरो, तुग़लकनामा (अ-३०), रिज़वी (२०१) १, पृ० १८७।
२८. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (९२-अ) १९८२।
२९. इब्नबतूता (५९) पृ० ८९।
३०. बरनी (२२३) पृ० ५६७-८, रिज़वी (२०२) २, पृ० २७-२८, यहिया (२२१) पृ० १३६-१३७, अफीफ (१८८) पृ० १२७, रिज़वी (२०२) २, पृ० ७४, जे० एम० बनर्जी (८१) पृ० ११८-१२०, आर० सी० जौहरी (१६५) पृ० १०४-६, इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (७२-अ) १९८२।
३१. यहिया (२२१) पृ० १३७, जे० एम० बनर्जी (८१) पृ० ११९।
३२. अफीफ (१८८) पृ० १३१, रिज़वी (२०२) २, पृ० ७६।
३३. बरनी (२२३) पृ० ५६७, रिज़वी (२०२) पृ० २७-२८।
३४. अफीफ (१८८) पृ० १२८, रिज़वी (२०२) पृ० ७४-७५।
३५. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १५।
३६. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १९।
३७. बरनी (२२३) पृ० ५६७-६८, रिज़वी (२०२) पृ० २७-२८।
३८. बरनी (२२३) पृ० ५७०, रिज़वी (२०२) २, पृ० २९।
३९. अफीफ (१८८) पृ० ९२, रिज़वी (२०२) २, पृ० ६३।
४०. अफीफ (१८८) पृ० ९४, रिज़वी (२०२) पृ० ६३।
४१. अफीफ (१८८) पृ० ९९, रिज़वी (२०२) पृ० ६५।
४२. अफीफ (१८८) पृ० १२८, रिज़वी (२०२) पृ० ७४।
४३. अफीफ (१८८) पृ० १३४, रिज़वी (२०२) पृ० ७६।
४४. अफीफ (१८८) पृ० २९५-९६, रिज़वी (२०२) पृ० १२२-२३।
४५. आइन-उल-मुल्क, प० १६, रिज़वी (२०२) पृ० १८३।
४६. आइन-उल-मुल्क, प० १३, रिज़वी (२०२) पृ० ३९२-९३।
४७. आइन-उल-मुल्क, प० ४३, रिज़वी (२०२) पृ० ३९५।
४८. मुतहर, दीवान-ए-मुतहर कड़ा, रिज़वी (२०२) पृ० ४०४।
४९. बाबर (२२५) ४८०, रिज़वी मु० का० भा० (बाबर) पृ० १७०-१७१।
५०. इब्नबतूता (५९) पृ० २३।
५१. इब्नबतूता (५९) पृ० ४०।
५२. इब्नबतूता (५९) पृ० १६१।
५३. इब्नबतूता (५९) पृ० १६७।
५४. इब्नबतूता (५९) पृ० १७०।
५५. इब्नबतूता (५९) पृ० १७२।

५६. तपनराय व इरफान हवीव, (२११) १, पृ० ५० ।
५७. इब्नवतूता (५६) पृ० १८३ ।
५८. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३४ ।
५६. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३४, रिज़वी (२०१) पृ० ३११-१२ ।
६०. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३४, रिज़वी (२०१) पृ० ३१२ ।
६१. शिहावुद्दीन-अल-उमरी, (१८७) ज़की ४५, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३०७ ।
६२. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७) ज़की ४४-४५, रिज़वी (२०१) पृ० ३०८, इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (१८७-अ) ।
६३. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (८७-व), ज़की पृ० ६, रिजवी (२०२) ३०८ ।
६४. वरनी (२२३) पृ० ५६६-७०, रिज़वी (२०२) २, पृ० २८-२६ ।
६५. वरनी (२२३) पृ० ५६६-७०, रिज़वी (२०२) पृ० २८-२६ ।
६६. अफीफ (२२३) पृ० २६५-६६, रिज़वी (२०२) पृ० १२२-२३ ।
६७. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७-अ) पृ० ३४ मु० ज़की (१८७-व) पृ० १८ ।
६८. अफीफ (२२३) पृ० १२५, रिज़वी (२०२) पृ० ७३ ।
६६. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७-अ) पृ० ५६, (२०२) पृ० ३३१-३२ ।
७०. वरनी (२२३) पृ० ५६८-६६, रिज़वी (२०२) पृ० २८-२६ ।
७१. तपनराय व इरफान हवीव (२११) १, पृ० ५३ ।
७२. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७-अ) पृ० २७ ।
७३. शिहावुद्दीन-अल-उमरी (१८७-अ) पृ० २६ ।
७४. वरनी (२२३) पृ० २१२, रिजवी (२००) पृ० २४ ।
७५. वरनी (२२३) पृ० ४७३, रिज़वी (२०१) पृ० ४१-४२ ।
७६. वरनी (२२३) पृ० ४७३, ४८०, ४८२, ४८४, ४८५, रिज़वी (२०१) १, पृ० ४१, ४२, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३ ।
७७. इब्नवतूता (५६) पृ० ८४-८५, (२०१) ।
७८. इब्नवतूता (५६) पृ० ११७, रिज़वी (२०१) पृ० २३२ ।
७६. इब्नवतूता (५६) पृ० ११७, २३२ ।
८०. अफीफ (१८८) पृ० २१३, रिजवी (२०२) पृ० १२२ ।
८१. यहिया (२२१) पृ० १७३, रिजवी (२०३) १, पृ० ३ ।
८२. वरनी (२२८) पृ० ४६८ ।
८३. सीरत-ए-फिरोज़शाही पृ० ६२ (अ) ।
८४. मिनहाज, (अ-३०) भाग ।
८५. इन्शा-ए-महरू, प० ६२-६३ ।
८६. अफीफ (१८८) पृ० २६५ ।
८७. अफीफ (१८८) पृ० २६५ ।
८८. अफीफ (१८८) पृ० १२८, वरनी (२२३) पृ० ५५४।

८६. इब्नबतूता (५८) पृ० ८७, १४७।

अध्याय १३

१. आइन-उल-मुल्क पृ० ६१-६३, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३८८।
२. बरनी (२२३) पृ० २८१, रिज़वी (२००) पृ० ७०।
३. बरनी (२२३) पृ० २८७, रिज़वी (२००) पृ० ६८।
४. बरनी (२२३) पृ० २८८, रिज़वी (२००) पृ० ६६।
५. तपनराय व इरफान हबीब (२११) पृ० ५५।
६. बरनी (२२३) पृ० ५५४, रिज़वी (२०२) पृ० १६।
७. अफीफ (१८८) पृ० ६६-१००, रिज़वी (२०२) २, पृ० ६५।
८. बरनी (१८८) पृ० ५२, रिज़वी (१६६) पृ० १६१।
९. अफीफ (१८८) पृ० ३७, रिज़वी (२०१) पृ० ५४।
१०. इब्नबतूता (५८) पृ० १२३, रिज़वी (२०१) पृ० २३८।
११. अब्बास खान सरवानी (२२) पृ० १८-१६, तपनराय व इरफान हबीब (२११), १, पृ० ५६।
१२. इरफान हबीब, दि पीजेन्ट इन इण्डियन हिस्ट्री, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १६८२, पृ० २।
१३. कैथलीन गल्फ, इण्डियन पीजेन्ट अपरागिंग्स, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, बम्बई स्पेशल नम्बर, अगस्त (१६७४) ए० आर० देसाई, पीजेन्ट स्ट्रगल इन इण्डिया, दिल्ली, १६८३, पृ० ८५।
१४. मोरलैंड (२१६) पृ० १७।
१५. इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज, पृ० ५०४।
१६. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० २४६।
१७. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० २४६।
१८. बरनी (२२३) पृ० ८३-८४, रिज़वी (१६६) पृ० १६८-६६।
१९. बरनी (२२३) पृ० २८३, रिज़वी (२००) पृ० ६६, के० एस० लाल (६२) पृ० २४२-४३।
२०. बरनी (२२३) पृ० ३०५-३०६, रिज़वी (२००) पृ० ७६।
२१. मिनहाज-उस-सिराज (१२१) भाग १, उद्धरित एस० ए० लतीफ, इक्ता सिस्टम, अण्डर दि अर्ली सुल्तान आफ़ देहली, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, अलीगढ़ १६७५।
२२. निज़ाम-उल-मुल्क तूसी, सियासतनामा, (अनु०) सजेफर (पेरिस, १८६१) पृ० २८। उद्धरित, एस० ए० लतीफ, इक्ता सिस्टम अंडर दि अर्ली सुल्तान्स ऑफ देहली, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, अलीगढ़, पृ० १६७५।
२३. मिनहाज (१२१) उद्धरित एस० ए० लतीफ, इक्ता सिस्टम अन्डर दि अर्ली सुल्तान्स ऑफ देहली, अलीगढ़ १६७५।

२४. मिनहाज-उस-सिराज (१२१) १, पृ० ५१५ ।
२५. वरनी (२२३) पृ० ६३-६४, रिज़वी (१६६) पृ० १६७-६६ ।
२६. वरनी (२२३) पृ० १६३-६४, रिज़वी (१६६) पृ० २३७ ।
२७. वरनी (२२३) पृ० २८८-८६, ५५६, रिज़वी (२००) पृ० ६८-६६, (२०२), २, पृ० २१ ।
२८. अफीफ (१८८) पृ० ४७८, रिज़वी (२०२) पृ० १७६ ।
२६. वरनी (२२३) पृ० ४२६, ४३१, रिज़वी (२०१) १, पृ० ८-६ ।
३०. इब्नवतूता (५६) १४४-४६, रिज़वी (२०१) पृ० २५३ ।
३१. अफीफ (१८८) पृ० ६४, २६६, रिज़वी (२०२) ६३, १२३ ।
३२. वरनी (२२३) पृ० ५५६-५७, रिज़वी (२०२) २, पृ० २०-२१ ।
३३. अफीफ (१८८) पृ० २६७, रिज़वी (२०२) पृ० १२३ ।
३४. अफीफ (१८८) पृ० २६६-६७, रिज़वी (२०२) पृ० १२३ ।
३५. अफीफ (१८८) पृ० ६६, रिज़वी (२०२) पृ० ६४ ।
३६. तपनराय व इरफान हवीव (२११) १, पृ० ७५ ।
३७. एसामी (१०१) पृ० ५६४-५, वरनी (२२३) पृ० ५३८-३६, रिज़वी (२०२) पृ० ६-१२ ।
३८. तपनराय व इरफान हवीव (२११) १, पृ० ७६ ।
३६. अफीफ (१८८) ६४, रिज़वी (२०२) पृ० ६३ ।
४०. वरनी (२२३) पृ० १००, रिज़वी (१६६) पृ० १६४ ।
४१. मोरलैंड (२१६) पृ० ३१ ।
४२. मोरलैंड (२१६) पृ० ३१ ।
४३. तपनराय व इरफान हवीव (२११) पृ० ६१, यू० एन० डे (२१२) पृ० ६७ ।
४४. वरनी (२२३) पृ० ३२३, रिज़वी (२००) पृ० १० ।
४५. तपनराय व इरफान हवीव (२११) १, पृ० ६२ ।
४६. वरनी (२२३) पृ० २८८, रिज़वी (२००) पृ० ६८ ।
४७. मोरलैंड (२१६) पृ० ।
४८. आर० पी० त्रिपाठी (१७३) पृ० २६५, यू० एन० डे (२१२) पृ० ६४-६५ ।
४६. वरनी (२२३) पृ० २८८-८६, रिज़वी (२००) पृ० ६६ ।
५०. वरनी (२२३) पृ० २८८, रिज़वी (२००) पृ० ६८-६६ ।
५१. मोरलैंड (२१६) पृ० ३४-३५, वरनी (२२३) पृ० २६२, रिज़वी (२००) पृ० ७१ ।
५२. अफीफ (१८८) पृ० ३७-३८, रिज़वी (२०२) पृ० ५१, तपनराय व इरफान हवीव (२११) पृ० ६२ ।
५३. वरनी (२२३) पृ० ४३०, रिज़वी (२०१) १, पृ० ६, मोरलैंड (२१६) पृ० ४१ ।

५४. बरनी (२२३) पृ० ४२८, रिज़वी (२०१) पृ० ७।
५५. बरनी (२२३) पृ० ४३१, रिज़वी (२०१) पृ० ८।
५६. बरनी (२२३) पृ० ४३०, रिज़वी (२०१) पृ० ८।
५७. बरनी (२२३) पृ० ४८६-८।
५८. बरनी (२२३) पृ० ४२०, रिज़वी (२०१) पृ० ३७-३८।
५९. बरनी (२२३) पृ० ४८७, रिज़वी (२०१) पृ० ५४-५५, मोरलैन्ड (२१६) पृ० ४६-४७।
६०. बरनी (२२३) पृ० ४५८, रिज़वी (२०१) पृ० ५५।
६१. बरनी (२२३) पृ० १०८, १३०, ३०, ८४, १३८, ३८५, ५६५, ४७५, रिज़वी (१९९) पृ० २००, २१५, १४४, १८३, १२० (२००) पृ० १२७, रिज़वी पृ० ४१ (टि २०१)।
६२. बरनी (२२३) पृ० ४७३, रिज़वी (२०१), १, पृ० ४०-४१।
६३. यहिया (२२१) पृ० ११६-१७, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३४२-४३, तपनराय व इरफान हबीब (२१६) १, पृ० ६३।
६४. तपनराय व इरफान हबीब (२११) पृ० ६३-६४।
६५. बरनी (२२३) पृ० ४७३, रिज़वी (२०१) १, पृ० ४१।
६६. बरनी (२२३) पृ० ४७९-८०, रिज़वी (२०१) पृ० ४८।
६७. बरनी (२२३) पृ० ४८०, रिज़वी (२०१) १, पृ० ४९।
६८. इब्नबतूता (५९) पृ० १५५-५७।
६९. बरनी (२२३) पृ० ४७२, रिज़वी (२०१) १, पृ० ४१-४२, तपनराय व इरफान हबीब (२११) १, पृ० ६४।
७०. बरनी (२२३) पृ० ४८२, तपनराय व इरफान हबीब (२११) १, पृ० ६५।
७१. बरनी (२२३) पृ० ४९८-९९, मोरलैन्ड (२१६) पृ० ५०।
७२. अफीफ (१८८) पृ० ९१-९२, रिज़वी (२०२) पृ० ६३।
७३. बरनी (२२३) पृ० ५७५, रिज़वी (२०२) पृ० ३२।
७४. अफीफ (१८८) पृ० २६८-६९, रिज़वी (२०२) पृ० ११२, मोरलैन्ड (२१६) पृ० ५४-५५।
७५. बरनी (२२३) पृ० ५७५, रिज़वी (२०२) पृ० ३२।
७६. अफीफ (१८८) पृ० २९५, रिज़वी (२०२) पृ० १२२।
७७. अफीफ (१८८) पृ० ३२१, रिज़वी (२०२) पृ० १३१।
७८. अफीफ (१८८) पृ० ४५४-५५, रिज़वी (२०२) पृ० १७३।
७९. बरनी (२२३) पृ० ५७५, रिज़वी (२०२) पृ० ३१।
८०. अफीफ (१८८) पृ० ९९, रिज़वी (२०२) पृ० ६५।
८१. अफीफ १८८पृ० १२९-३०, रिज़वी (२०२), २, पृ० ७५।
८२. अब्दुल्लाह (२९) पृ० १०५, रिज़वी (२०३) पृ० ३०५।

८३. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० १, रिज़वी (२०१) पृ० ३०६।
८४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० १, रिज़वी (२०१) पृ० ३०७।
८५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरा (१८७) पृ० २८-२९, रिज़वी (२०१) पृ० ३०८।
८६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३०, रिज़वी (२०) १ पृ० ३०९-१०।
८७. शिहाबुद्दीन-उल-उमरी (१८७) पृ० ३१, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३११।
८८. बरनी (२२३) पृ० ४६९, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३८।
८९. अफीफ (१८८) पृ० २९६, रिज़वी (२०१) पृ० १२३।

अध्याय १४

१. एस० एम० जाफर (२०५-अ) पृ० २१२।
२. बरनी (२२३) पृ० २८४, २८५, रिज़वी (२००) पृ० ६६-६७।
३. मार्कोपोलो, २, पृ० ३२८।
४. जे० ए० आर० एस-१८९५, पृ० ५३१-३२।
५. बरनी (२२३) पृ० ३१०, रिज़वी (२००) पृ० ८२।
६. बरनी (२२३) पृ० ३११, बरनी (२००) पृ० ८३।
७. रिज़वी (२२३) (२००) पृ० १५६।
८. इब्नबतूता (५९) पृ० ९०-९१, अशरफ (८६) पृ० ९७।
९. वी० पी० मौजुमदार, न्यू फार्म्स आफ स्पेशलाइज़ेशन इन इण्डस्ट्रीज इन ईस्टर्न इण्डिया इन टर्की अफगान पीरियड प्रो० इ० डि० कांग्रेस, १९६९, पृ० २२७।
१०. बरनी (२२३) पृ० २२५, रिज़वी (२००) अ० पृ० ३१-३२।
११. बारबोसा, १, पृ० १४१-४२।
१२. विद्यापति, कीर्तिलता, पृ० २७।
१३. इब्नबतूता (५९) पृ० १५१।
१४. अफीफ (१८८) पृ० ३३७, रिज़वी (२०२) पृ० १३६-३७।
१५. सिकन्दर मन्झू गुजराती, मीरात-ए-सिकन्दरी (अ० ३०) पृ० १८४, सुरेन्द्र गोपाल (२०६-अ) पृ० १८६-८७।
१६. बारबोसा, १, पृ० १४२।
१७. अफीफ (१८८) पृ० १००, रिज़वी (२०२) पृ० ९५।
१८. अब्दुल्लाह (९९) पृ० ५६, रिज़वी (२०३) १, पृ० २७।
१९. बारबोसा, १, पृ० १४२।
२०. जे० ए० आर० एस०, १८९५, पृ० ५३२, वी० पी० मौजुमदार, न्यू फार्म्स आफ स्पेशलाइज़ेशन इन इन्डस्ट्रीज आफ ईस्टर्न इण्डिया इन टर्की अफ़गान पीरियड प्रो० इ० हि० कांग्रेस, १९६९, पृ० २२८।

२१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३८।
२२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३८।
२३. एस० एम० जाफर (२०५ अ) पृ० २१३।
२४. अफीफ (१८८) पृ० ३३७-३८, रिज़वी (२०२) पृ० १३६-३७।
२५. अफीफ (१८८) पृ० ३३८-४०, रिज़वी (२०२) पृ० १३८, आर० सी० जौहरी
रायल कारखानाज़ आफ तुग़लक सुल्तान प्रो० इ० डि० का० १८६७, पृ० १८२
८६, जे० एम० बनर्जी (८१) पृ० ८४-८५, आर० सी० जौहरी (१६५) पृ०
१२१-२५।
२६. बाबर (२२५) पृ० ५१८-२०।
२७. अफीफ (१८८) पृ० १३६, रिज़वी (२०२) पृ० २७७।
२८. अफीफ (१८८) पृ० १८०, रिज़वी (२०२) पृ० २८८।
२९. अफीफ (१८८) पृ० ३३४-३५, रिज़वी (२०२) पृ० १३६।
३०. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, न० १८, रिजवी (२०२) पृ० २८४।
३१. बरनी (२२३) पृ० ५३४, रिज़वी (२०२) २, पृ० १८।
३२. अफीफ (१८८) पृ० ३७६, रिज़वी (२०२) २, पृ० १४८।

अध्याय १५

१. बरनी (२२३) पृ० ५७, २५५, ३०४-३०७, ३२४, ३८४-६, ३७३, ५५४।
२. बरनी (२२३) पृ० ३०७, अफीफ (१८८) पृ० ६१।
३. बरनी (२२३) पृ० १२०, १६४, २८४, ३०८, ३११।
४. बरनी (२२३) पृ० ३१२, ३१४।
५. बरनी (२२३) पृ० ३१२ ३१४।
६. बरनी (२२३) पृ० ५४६।
७. बरनी (२२३) पृ० ५४६-५५४।
८. बरनी (२२३) फतवा-ए-जहाँदारी, (अ ३०) पृ० ३७।
९. बरनी (२२३) पृ० ४७५।
१०. बरनी (२२३) पृ० १२०, २८४, ५४६, ५५४।
११. बरनी (२२३) पृ० ५५४, एसामी (१००) पृ० २११, बरनी, फतवा-ए-जहाँदारी
(२२४) पृ० ३८।
१२. बरनी (२२३) पृ० ३४, १७६, ३१०-१८, ३२८, ३४०-४१, ३८४-६।
१३. होदीवाला, स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, बम्बई, ८३८, पृ० २८७, ६७२।
१४. होदीवाला, पृ० ३०, पृ० २०६।
१५. एसामी (२००) पृ० २२१, ३१४-३१५।
१६. बरनी (२२४) फतवा-ए-जहाँदारी (अ० ३०) पृ० ३५।

१७. बरनी (२२४) फतवा-ए-जहाँदारी (अ० ३०) पृ० ४५।
१८. बरनी (२२३) पृ० १४३, १४४-१४५।
१९. बरनी (२२३) रिज़वी (१९९) पृ० १८७।
२०. बरनी (२२३) पृ० ३०५, रिज़वी (२००) पृ० ७९।
२१. इब्नबतूता (५९) ३६, यासीन मजहर सिद्दीकी, स्लेव स्क्वीजीशन इन दि देहली सल्तनत, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९८५।
२२. मिनहाज (१२१) २, पृ० ७६६, ७९६।
२३. इब्नबतूता (५९) पृ० ६८।
२४. आइन-उल-मुल्क, प० स० १०५, १०८, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३९९।
२५. बरनी (२२४) फतवा-ए-जहाँदारी (अनु०) पृ० ३७।
२६. बरनी (२२३) पृ० ३१२, रिज़वी (२००) पृ० ८३।
२७. बरनी (२२३) पृ० ३०६, रिज़वी (२००) पृ० ८०।
२८. बरनी (२२३) पृ० ३०७, रिज़वी (२००) पृ० ८०।
२९. बरनी (२२३) पृ० ३०७-३०८, रिज़वी (२००) पृ० ८०-८१।
३०. बरनी (२२३) पृ० ३१०-३११, रिज़वी (२००) पृ० ८२।
३१. बरनी (२२३) पृ० ३१०, रिज़वी (२००) अ०, पृ० ८२।
३२. बरनी (२२३) पृ० ३११, रिज़वी (२००) पृ० ८३।
३३. बरनी (२२३) पृ० ३१२-३१३, रिज़वी (२००) पृ० ८३-८४।
३४. बरनी (२२३) पृ० ३१५, रिज़वी (२००) पृ० ८५।
३५. बरनी (२२३) पृ० ३१४-१५, रिज़वी (२००) पृ० ८४-८५।
३६. बरनी (२२३) पृ० ३९५-९६, रिज़वी (२००) पृ० १३२-३३।
३७. इब्नबतूता (५९) पृ० १२५।
३८. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३८।
३९. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७२३, रिज़वी (२००) अ० पृ० ५६।
४०. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७२९, रिज़वी (१९९) अ० पृ० ५८।
४१. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७३१, रिज़वी (१९९) अ० पृ० ५९।
४२. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७४२, रिज़वी (१९९) पृ० ६३।
४३. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७४२, रिज़वी (१९९) पृ० ६४।
४४. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७४९, रिज़वी (१९९) पृ० ६६।
४५. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७४९, रिज़वी (१९९) पृ० ६८।
४६. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७६६, ७९६, भाग १ (१२१) पृ० ६१६, रिज़वी (१९९) पृ० ७३।
४७. मिनहाज (१२२) २, पृ० ७९०, रिज़वी (१९९) अ० पृ०।
४८. मिनहाज (१२२) २, पृ० ८०१; रिज़वी (१९९) अ० पृ० ८०।

४९. मिनहाज (१२२) पृ० ७३१, रिज़वी (१९९) अ० पृ० ५९ ।
५०. मिनहाज (१२२) पृ० ७३१, रिज़वी (१९९) पृ० ५९ ।
५१. मिनहाज (१२२) पृ० ७२५, रिज़वी (१९९) अ० पृ० ५७ ।
५२. मिनहाज (१२२) पृ० ७३१, रिज़वी (१९९) पृ० २३-२४ ।
५३. अफीफ (१८८) पृ० ३७६, रिज़वी (१९९) पृ० १४८ ।
५४. बरनी (२२३) पृ० २८४, रिज़वी (२००) पृ० ६६ ।
५५. बरनी (२२३) पृ० ५५४, रिज़वी (२०२) २, पृ० १९-२० ।
५६. बरनी (२२३) पृ० ५५९, रिज़वी (२०२) पृ० १९ ।
५७. इब्नबतूता (५९) पृ० ८४ ।
५८. अफीफ (१८८) पृ० ३७५-३७६, रिज़वी (२०२) २, पृ० १४७-४८ ।
५९. बरनी (२२३) पृ० ३११, रिज़वी (२००) पृ० ८३ ।
६०. अफीफ (१८८) पृ० २९४, रिज़वी (२०२) पृ० १२२ ।
६१. बरनी (२२३) पृ० ३१०, रिज़वी (२००) पृ० ८२ ।
६२. अफीफ (१८८) पृ० २९४, रिज़वी (२००) पृ० १२२ ।
६३. अफीफ (१८८) पृ० २९४, रिज़वी (२०२) पृ० ।
६४. बरनी (२२३) पृ० १२०, रिज़वी (१९९) पृ० २०७ ।
६५. अमीर खुसरो, कुल्लियात खुसरवी, पृ० ३१२ ।
६६. अमीर खुसरो, एजाज़-ए-खुसरवी, पृ० १७४, यासीन मजहर सिद्दीकी, दि मरचेन्ट्स एण्ड दि देहली सल्तनत, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९७५ ।
६७. इब्नबतूता (५९) पृ० १३२-३५ ।
६८. इब्नबतूता (५९) पृ० १३२-३५ ।
६९. इब्नबतूता (५९) पृ० ५ ।
७०. जे० ए० एस० बी०, १९३५, भाग १, पृ० २१८ ।
७१. अफीफ (१८८) पृ० २९४, रिज़वी (२०२) पृ० २२ ।
७२. बरनी (२२३) पृ० २९४, रिज़वी (२००) पृ० ७४-७५ ।
७३. बरनी (२२३) पृ० ३५२, रिज़वी (२००) पृ० १०७ ।
७४. बरनी (२२३) पृ० ५०१, रिज़वी (२०१) १, पृ० ६५-६६ ।
७५. इब्नबतूता (५९) पृ० ६७-६८ ।
७६. इब्नबतूता (५९) पृ० ६८ ।
७७. बरनी (२२३) पृ० ४८८, रिज़वी (२०१) १, पृ० ५५ ।
७८. इब्नबतूता (५९) पृ० ६८ ।
७९. इब्नबतूता (५९) पृ० ६८ ।
८०. बरनी (२२४) फतवा-ए-जहांदारी (अ० ३०) पृ० ३८ ।
८१. बरनी (२२३) पृ० ७९, रिज़वी (१९९) अ० पृ० ।

८२. बरनी (२२३) पृ० १७६, रिजवी (१९९) अ० पृ० ।
८३. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० १८-१९ ।
८४. मिनहाज (१२१) १, पृ० ४२२ ।
८५. बरनी (२२३) पृ० ५७-५८, रिजवी (२००) पृ० १६४ ।
८६. बरनी (२२३) पृ० ३२४, रिजवी (२००) पृ० ९० ।
८७. बरनी (२२३) पृ० ४४३, रिज़वी (२०१) पृ० १८ ।
८८. बरनी (२२३) पृ० ५५४, अफीफ (१८८) पृ० १८१, सीरत-ए-फिरोजशाही पृ० २२४-२२९, रिज़वी (२०२) पृ० १९-२०-९० ।
८९. इब्नबतूता (५९) पृ० १७३ ।
९०. बरनी (२२३) पृ० ५५४, रिज़वी (२०१) १, पृ० १९-२० ।
९१. अफ़ीफ (१८८) पृ० ६०, रिज़वी (२०२) पृ० ५९ ।
९२. अफीफ (१८८) पृ० १८०, रिजवी (२०२) २, पृ० ८९ ।
९३. अफीफ (१८८) पृ० १८३, रिजवी (२०२) २, पृ० ९० ।
९४. बरनी (२२३) पृ० २५१-५२, रिजवी (२००) पृ० ४७ ।
९५. बरनी (२२३) पृ० ३९९-४०, रिज़वी (२००) पृ० १३५ ।
९६. अफीफ (१८८) पृ० ३७७, रिजवी (२०२) पृ० १४९ ।
९७. अफीफ (१८८) पृ० २९०, रिज़वी (२०२) पृ० १२०-१२१ ।
९८. हसन-अस्करी, हिस्टारिकल मैटिरियल इन एज़ाज-ए-खुसरवी, मेडिवल इण्डिया मिसीलेनी (अलीगढ़) ।
९९. बरनी (२२३) पृ० ३१६-३१८, रिजवी (२००) अ० पृ० ।
१००. अफीफ (१८८) पृ० १८०-१९५, के० एस० लाल (९३) पृ० २८० ।
१०१. इब्नबतूता (५९) ।
१०२. इम्पीरियल गजेटियर, भाग १० पृ० २९८ ।
१०३. बरनी (२२३) पृ० ८६, रिज़वी (१९९) पृ० १८४ ।
१०४. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ८०, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३१० ।
१०५. बरनी (२२३) पृ० ८६, रिज़वी (१९९) अ० पृ० १८४, अमीर खुसरो, किरान-उस-सादैन, रिज़वी (१९९) पृ० १८४ ।
१०६. बरनी (२२३) पृ० ९४, २३२, रिजवी (१९९) पृ० ३५ ।
१०७. इब्नबतूता (५९) पृ० ९, रिज़वी (२०१) १, पृ० १६२ ।
१०८. बरनी (२२३) पृ० ३०९, रिजवी (२०२) पृ० १२७ ।
१०९. शिहाबुद्दीन अल उमरी (१८७) पृ० ३५ ।
११०. इब्नबतूता (५९) पृ० १४६ ।
१११. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३५, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३१३ ।
११२. अहमद यादगार (२४) पृ० २४ ।

११३. इब्नबतूता (५६) पृ० १२२, रिज़वी (२०१) १, पृ० २३७।
११४. मिनहाज (१२२) १, पृ० ६२३, रिज़वी (१६६) पृ० २८।
११५. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १०-११, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३३२-३३।
११६. मिनहाज (१२१) १, पृ० ७२३, ७२६, ७७७-८६।
११७. वरनी (२२३) पृ० ३४०, रिज़वी (२००) पृ० १००।
११८. इब्नबतूता (५६) पृ० ५, १२३, ३३५।
११६. हसन सीजी—फवायद-उल-फौद, ३३६, उद्धरित, मुहम्मद यासीन मज़हर सिद्दीकी पृ० ३० पृ० ३, निकोटीन, ट्रेवेल··· पृ० १२, इण्डिया इन दि फिफ्टीन्थ सेन्चुरी, एम० आर० एच० मेजर, दिल्ली १६७४।
१२०. मिनहाज (१२२) पृ० ५६७।
१२१. मिनहाज (१२२) पृ० ६४६।
१२१. वरनी (२२३) पृ० ६१, रिज़वी (१६६) पृ० १८६।
१२२. वरनी (२२३) पृ० ३०५, रिज़वी (१६६) पृ० ७६।
१२३. वरनी (२२३) पृ० ३०५, रिज़वी (१६६) पृ० ७६।
१२४. वरनी (२२३) पृ० ३०६, रिज़वी (२००) पृ० ८०।
१२५. वरनी (२२३) पृ० ३०६, रिज़वी (२००) अ० पृ० ८२।
१२६. अमीर खुसरो (३) खज़ाइनुलफुतूह पृ० २२-२३, रिज़वी (२००) पृ० १५६।
१२७. इब्नवतूता (५१) पृ० ११।
१२८. इब्नवतूता (५६) पृ० २८।
१२६. इब्नवतूता (५६) पृ० १६१।
१३०. इब्नबतूता (५६) पृ० १६६।
१३१. इब्नबतूता (५६) पृ० १७१।
१३२. रिज़ाकुल्लाह मुश्ताकी पृ० २७, रिज़वी (२०३) पृ० ११४।
१३३. विद्यापति (२०३) कीर्तिलता।
१३४. बरनी (२२३) पृ० ३०७, रिज़वी (२००) पृ० ८०।
१३५. इब्नबतूता (५६) पृ० १४६, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३५।
१३६. बरनी (२२३) पृ० १५७, रिज़वी (१६६) पृ० २३२।
१३७. इब्नबतूता (५६) पृ० १६७।
१३८. हमीद कलन्दर, खैरूल मजलिस, पृ० १८३।
१३६. वरनी (२२३) पृ० ३११, रिज़वी (२००) पृ० ८२-८३।
१४०. आईन-उल-मुल्क, इन्शाए महरू, पत्र ७१-७२।
१४१. वरनी (२२३) पृ० ५३, रिज़वी (१६६) पृ० १६१।
१४२. वरनी (२२३) पृ० ५४, रिज़वी (१६६) पृ० १६१-१६२।
१४३. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र संख्या ३८, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३६४।

१४४. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, जबलपुर पृ० ७४, उद्धरित के० एस० लाल (६३) पृ० २८० ।
१४५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६, रिज़बी (२०१) १, पृ० ३२६ ।
१४६. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६, रिज़वी (२०१) १, पृ० ३३१ ।
१४७. बरनी (२२३) पृ० ३१३-३१४, रिज़वी (२००) पृ० ८४-८५ ।
१४८. मिनहाज (१२१) पृ० ५६७, रिजवी (१६६) पृ० १५ ।
१४९. बारबोसा १, पृ० २११, इफ्तिखार अहमद खान, दि इम्पोर्ट आफ पर्शियन हौर्सेज इन इण्डिया, १३-१७ सेन्चुरीज, प्रो० इ० डि० कांग्रेस १६८४, पृ० ३४७ ।
१५०. बरनी (२२३) पृ० ३११, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६, इलियट एण्ड डाउसन, ३०, पृ० ३८३-८५, तपनराय ब इरफान हबीब (२२१) १, पृ० १२५ ।
१५१. इब्नबतूता (५६) उद्धरित तपनराय ब इरफान हबीब (२११) १, पृ० १४३ ।
१५२. तपनराय व इरफान हबीब १, (२११) ।
१५३. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २१, २८ ।
१५४. यहिया (२२१) पृ० १३६ ।
१५५. बाबरनामा (२२५) पृ० २०२ ।
१५६. यहिया (२२१) पृ० १०७-१०८ ।
१५७. के० एस० लाल० (६३) पृ० २८३-८४ ।
१५८. जे० ए० एस० बी० २१, पृ० १६२५, पृ० ५६२, निकोटीन, पृ० १६-२०, इस्लामिक कल्चर ७, १६३३, पृ० २८६ ।
१५९. जे० आर० ए० एस० १८६५, पृ० ५३०-३१ ।
१६०. वरथमा १, पृ० १५२ ।
१६१. इब्नबतूता (५६) पृ० १५० ।
१६२. वरथमा, ट्रैवेल्स आफ वरथमा, पृ० २१२ ।
१६३. बारबोसा, दि बुक आफ दौरते बारबोसा २, पृ० १४५ ।
१६४. निकोटीन पृ० २०, बारबोसा २, पृ० ८५, इस्लामिक कल्चर ७, १६३३ पृ० २६२-६३, जे० ए० एस० बी० २१, पृ० २६१ ।
१६५. मीरखुर्द, सियार-उल-औलिया, दिल्ली १८८५, उद्धरित, के० एस० लाल पृ० ।
१६६. बरनी (२२३) पृ० ३०५, रिजवी (२००) पृ० ७६ ।
१६७. बरनी (२२३) पृ० ३०५, ३१०, ३१४, ३१५, ३१६ रिज़वी (२००) पृ० ७६, ८२, ८४, ८५, ८६ ।
१६८. हामिद कलन्दर, खैर उल मजलिस (स० के० ए० निजामी) पृ० १८५, मजलिस स० ५५ ।
१६९. हामीद कलन्दर, खैर उल मज़लिस, मज़लिस स० ७७, रिजबी (२०१) पृ० ३२१ ।

१७०. बरनी (२२३) पृ० ३८५, रिज़वी (२००) पृ० १२७।
१७१. बरनी (२२३) पृ० ४४२, रिज़वी (२०१) १, पृ० १७।
१७२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ५५-५६।
१७३. इब्नबतूता (५८) पृ० २३४-३५, रिजवी (२०१) पृ० ३०१।
१७४. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० ३१, रिज़वी (२०२) पृ० ३८२।
१७५. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० २०, रिज़वी (२०२) पृ० ३८५।
१७६. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० ३१, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३८२।
१७७. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० ५४, रिज़वी (२०२) पृ० ३८७।
१७८. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० १०८, रिज़वी (२०२) पृ० ३८८।
१७९. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, पत्र सं० ८८, रिज़वी (२०२) पृ० ३८८।
१८०. अफीफ (१८८) पृ० १६५, रिजवी (२०२) २, पृ० ८५।
१८१. अफीफ (१८८) पृ० २२३, रिज़वी (२०२) २, पृ० १०१।
१८२. अफीफ (१८८) पृ० २२३, रिज़वी (२०२) पृ० १०२।
१८३. अफीफ (१८८) पृ० २३८, रिज़वी (२०२) पृ० १०४।
१८४. अब्दुल्लाह (२८) पृ० १०४-१०५, रिज़वी (२०४) पृ० ३०५।
१८५. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, रिज़वी (२०२) पृ० ३८५।
१८६. बरनी (२२३) पृ० ३१२, रिज़वी (१००) आ० पृ०।
१८७. हामिद कलन्दर, खैरउल मजलिस, पृ० १८५, २४०-२४०।
१८८. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू, रिज़वी (२०२) पृ० २८१-८२।
१८९. बरनी (२२४) फतवा-ए-जहांदारी (अ –) पृ० ३४-३८।

अध्याय १६

१. व्यास।
२. कौटिल्य : नारायणदास बन्दोपाध्याय, बानी प्रेस, कलकत्ता।
३. मण्डन, राजवल्लभ
४. डी० डी० कोशाम्बी, एन इन्ट्रोडक्सन आफ द स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री अध्याय १०।
५. लल्लन जी गोपाल (११७) पृ० ५२-५७—२६१।
६. के० ए० लाल (८२)
७. मुहम्मद हबीब, पोलिटिक्स एण्ड सोसायटी ड्यूरिंग दि अर्ली मेडिकल पीरियड, स० के० ए० निज़ामी भाग १, पृ० ६१।
८. इब्नबतूता (५८) पृ० ७।
९. इब्नबतूता (५८) पृ० ११।
१०. इब्नबतूता (५८) पृ० २०

११. इब्नबतूता (५६) पृ० २६ ।
१२. इब्नबतूता (५६) पृ० १४५ ।
१३. इब्नबतूता (५६) पृ० १५८ ।
१४. बरनी (२२३) पृ० २०८, रिज़वी, (२००) पृ० २२ ।
१५. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), रिज़वी (२०१) १, पृ० ३१४ ।
१६. बरनी (२२३) पृ० ५३१, रिज़वी (२०२) २, पृ० ५ ।
१७. बरनी (२२३) पृ० ५३६, रिज़वी (२०२), २, पृ० १० ।
१८. बरनी (२२३) पृ० ५६०, रिज़वी (२०२) २, पृ० २३ ।
१९. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० २४१ ।
२०. आइन-उल-मुल्क, इन्शा-ए-महरू प० ४, ५, रिज़वी (२०२) २, पृ० ३७६ ।
२१. मिनहाज (१२१) १, पृ० ४६१ ।
२२. मिनहाज (१२१) १, पृ० ६१६ ।
२३. मिनहाज (१२१) पृ० ४६६ ।
२४. बरनी (२२३) पृ० रिज़वी (१९९) पृ० २१५ ।
२५. बरनी (२२३) पृ० १७५-८६, रिज़वी (२००) अ० पृ० २ ।
२६. बरनी (२३३) पृ० २५४-६१, ३००, एसामी (१००) पृ० २५६-७०-०८५-८६ ।
२७. बरनी (२२३) पृ० ३०२, रिज़वी (२००) पृ० ७७ ।
२८. अमीर खुसरो, नुह-सिपहर, (२००) अ० पृ० १७८ ।
२९. बरनी (२२३) पृ० ४७४, रिज़वी (२०१), १, पृ० ४३ ।
३०. इब्नबतूता (५९) पृ० २६, रिज़वी (२०१) १, पृ० १७४ ।
३१. इब्नबतूता (५६) पृ० २८, रिज़वी (२०१) पृ० १७६-१७७ ।
३२. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३५-३६, रिज़वी (२०१) १, पृ० ।
३३. मुहम्मद ज़की (१३७) पृ०१३ ।
३४. फिरोज़शाह तुग़लक (४८) पृ० १५, रिज़वी (२०२) पृ० ३३५ ।
३६. अफीफ (१८८) पृ० १३५-३६, रिज़वी (२०२) पृ० ७७, मुहम्मद दिहमन्द खानी (१२०) पृ० १०-११, रिज़वी (२०२) २, पृ० २२३-२४ ।
३६. मुतहर, दीवान-ए- मुतहर, रिज़वी (२०२) पृ० ४०८ ।
३८. अफीफ (१८८) पृ० १३४-३५, रिज़वी (२०२) पृ० ७७ ।
३९. बरनी (२२३) पृ० ३१, रिज़वी (२००) पृ० ८३ ।
४०. अमीर खुसरो (३) पृ० २३-२४, रिज़वी (२०२) पृ० १५६ ।
४१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ६० ।
४२. रिज़वी (२०२) २, पृ०६ ।
४३. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० २६ ।

४४. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ३६ ।
४५. फिरोजशाह तुग़लक (४८) पृ० १५-१८ रिजवी (२०२) २, पृ० ३३५ ।
४६. यहिया (२२१) पृ० ३८ ।
४७. इब्नबतूता (५८) पृ० १६ ।
४८. इब्नबतूता (५८) पृ० २० ।
४९. इब्नबतूता (५८) पृ० २३ ।
५०. इब्नबतूता (५८) पृ० २३ ।
५१. मुहम्मद ज़की (१३७) पृ० ६३ ।
५२. इब्नबतूता (५८) पृ० ११ ।
५३. इब्नबतूता (५८) पृ० ११ ।
५४. अब्दुल्लाह (२८) पृ० ३८-४०, रिज़वी (२२३) १, पृ० २६३ ।
५५. रिज़वी (२०३) १, पृ० ३७६ ।
५६. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ३२६, रिज़वी (२०३) पृ० २२० ।
५७. विद्यापति, कीर्तिलता,
५८. मुल्ला दाऊद (१३१) चंदायन (प० स० २७) ।
५९. मुहम्मद ज़की (१३७) पृ० ७८ ।
६०. इब्नबतूता (५८) पृ० १४५-४६ ।
६१. इब्नबतूता (५८) पृ० ४०, ५३, १५३, १५८ ।
६२. इब्नबतूता (५८) पृ० ४५, १६३ ।
६३. इब्नबतूता (५८) पृ० १७२ ।
६४. इब्नबतूता (५८) पृ० १६१ ।
६५. इब्नबतूता (५८) १ पृ० ५२ ।
६६. इब्नबतूता (५८) पृ० १६१ ।
६७. इब्नबतूता (५८) पृ० १६८ ।
६८. मुहम्मद खानी (१२०) (अ० ३०) पृ० ५४, रिज़वी (२०४), २, पृ० २८ ।
६९. मुहम्मद ज़की (१३७) पृ० ७१ ।
७०. मुहम्मद ज़की (१३७) पृ० ७२ ।
७१. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ८८, रिज़वी (२०४) २, पृ० १८५, सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५-ब) पृ० २४, रिज़वी (२०४) २, पृ० २६३-६४-६५ ।
७२. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० ११३, रिज़वी, (२०४) २, पृ० १८६, सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५ ब) पृ० ४१, रिज़वी (२०४) २, पृ० २७६ ।
७३. निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० १४७, रिज़वी (२०४) २, २१७, सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५-ब) पृ० ८७, रिज़वी (२०४) २, पृ० ३१५ ।
७४. सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५-ब) पृ० १०४, रिज़वी (२०४) २, पृ० ३२१ ।

७५. सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५-ब) पृ० १०७-११०, रिज़वी ३२३ पृ० ३२३-२५।

७६. सिकन्दर मन्झू गुजराती (२०५-ब) रिज़वी (२०४) पृ० ३४७।

७७. मिनहाज (१२१) पृ० ५५८, रिज़वी (१८८) पृ० १४।

७८. मिनहाज (१२१) १, पृ० ५६७, रिज़वी (१८८) अ० पृ० १५।

७९. मिनहाज (१२१) पृ० ५८२, रिज़वी (१८८) अ० पृ० १८।

८०. कोतवाल के सन्दर्भ : देवकोट का कोतवाल वावा इस्फहानी, मिनहाज (१२१), रिजवी, (१८८) पृ० १७, ग्वालियर का कोतवाल सिपहसालार रशीदउद्दीन, मिनहाज (३२१) (अ० ३) पृ० ५७४, रिज़वी (१८८) पृ० २८, दिल्ली का कोतवाल मलिक-उल-उमरा फख़्रउद्दीन, वरनी (२२३) पृ० १३१, रिज़वी (१८८) पृ० २१५, दिल्ली का कोतवाल शिहाबुद्दीन एसामी, फ़ुतूह उस सलातीन (१०१), रिज़वी (२००) पृ० १२१, मुल्तान का कोतवाल मलिक मुहम्मद अलहरवी, इब्नबतूता (५८) पृ० १४, अन्य सन्दर्भ, इब्नबतूता (५१) पृ० ४३, ४८, विरजतन कोतवाल, वरनी (२२३) पृ० २१०, रिज़वी (२००) पृ० २३, मावार का कोतवाल सैय्यद जलाल, एसामी, रिज़वी (२०१) पृ० १०५, मुहम्मद यासीन मज़हर सिद्दीकी, दि आफिस आफ कोतवाल अण्डर दि सुल्तान्स आफ देहली, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, मुजफ्फरपुर १८७२, पृ० १८८।

८१. शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७), रिज़वी (२०१) १, पृ० ३१०, रिज़वी (१८८) पृ० २३७।

८२. शहर के विशेष समारोहों के सम्बन्ध में सन्दर्भ : मिनहाज (१२१) १, रिज़वी (१८८) पृ० ८५-८६, वरनी (२२३) पृ० १६४, रिज़वी (१८८) पृ० २३७ वरनी (२२२) पृ० ४८२-८३, रिज़वी (२०१) १, पृ० ५८-८, एसामी, (१००) पृ० ४४४-४५, रिज़वी (२०१), १, पृ० ८८, वद्रेचाच, करामदे वद्र-ए-चाच, रिज़वी (२०१) पृ० १४२-४३।

८३. वरनी (२२३) पृ० १२३, रिज़वी (१८८) पृ० २०८-०१०।

८४. वरनी (२२३) पृ० ३०, रिज़वी (१८८) अ० पृ० १४४।

८५. वरनी (२२३) पृ० ३०, रिज़वी, (१८८) पृ० १४४, इब्नबतूता (५८), रिज़वी (२०१) पृ० २४०, शिहाबुद्दीन-अल-उमरी (१८७) पृ० ४३-६, रिज़वी (२०१) पृ० ३२०।

८६. वरनी (२२३) पृ० ४५०-४५१-४५२, ४५६, रिज़वी (२०१) १, पृ० २३, २४, २५, २८, ३०. अफीफ (१८८) पृ० १२३, १७५, रिज़वी (२०२) २, पृ० ७२, ७३, ८८, ८९।

८७. वरनी (२२३) पृ० १२८-३१, रिज़वी (१८८) पृ० २१४।

८८. वरनी (२२३) पृ० १६७, रिज़वी (१८८) पृ० २३८।

८९. बरनी (२२३) पृ० ४८२, रिज़वी (२०१) पृ० ५०।
९०. बरनी (२२३) पृ० ४८४-८५, रिज़वी (२०१) पृ० ५२-५३।
९१. बरनी (२२३) पृ० २१७, रिज़वी (२००) पृ० २६-२७।
९२. अफीफ (१८८) पृ० ३८०, रिज़वी (२०२) २, पृ० १४९-५०।
९३. निज़ामी (८७) पृ० १५०-१५८।
९४. निज़ामी (८७) पृ० १६७।
९५. निज़ामी (८७) पृ० १७०।
९६. निज़ामी (८७) पृ० १८८-८९।
९७. निज़ामी (८७) पृ० १९०-९१।
९८. निज़ामी (८७) पृ० १९४।
९९. निज़ामी (८७) पृ० १९४।
१००. निज़ामी (८७) पृ० १९५-९६।
१०१. चिश्ती खानकाहों में जीवन के लिए देखिए, निज़ामी (८७) पृ० २०५-२१९।
१०२. बरनी (२२३) पृ० २०८-२०९, रिज़वी (२००) पृ० २२, निज़ामी (८७) पृ० २८८-२८९।
१०३. हामिद कलन्दर, खैरूल मजलिस, रिज़वी (२०२) पृ० ३६९।
१०४. बरनी (२२३) पृ० २१२, रिज़वी (२००) अ० पृ० २४।
१०५. बरनी (२२३) पृ० २१२, रिज़वी (२००) अ० पृ० २४।
१०६. बरनी (२२३) पृ० ४७४, रिज़वी (२०१) १, पृ० ४३।
१०७. एसामी (१००), रिज़वी (२०१) १, पृ० ९९, इब्नबतूता (५९) (अ० ३०) पृ० ९४-९५, रिज़वी (२०१) पृ० २१४।
१०८. शरफुद्दीन अली यज़्दी, ज़फरनामा, २, रिज़वी (२०२) पृ० २५७-५९, निज़ामुद्दीन अहमद (१५१) पृ० २५५-५६, रिज़वी (२०२) पृ० ३५९।
१०९. यहिया (२२१) पृ० १६७, रिज़वी (२०३) १, पृ० १।

अध्याय १७

१. नेल्सन राइट (२२७) पृ० २२-२३।
२. नेल्सन राइट (२२७) पृ० २५।
३. नेल्सन राइट (२२७) पृ० २६।
४. नेल्सन राइट (२२७) पृ० २९-३१।
५. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ३६-३८।
६. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ३८-४३, ४७।
७. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ५०-५३।
८. एडवर्ड थामस (४५) पृ० २२७।

९. मेहदी हसन (१७) पृ० २३६ ।
१०. तपनराय व इरफान हबीब (२११) १, पृ० ८७ ।
११. एडवर्ड कामस (४५) पृ० २८०-८१, जामिनी मोहन बनर्जी (८१) पृ० १२६ ।
१२. अफीफ (१८८) पृ० ३४४-४५, जामिनी मोहन बनर्जी (८१) पृ० १२६ ।
१३. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ७५ ।
१४. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ७७ ।
१५. नेल्सन राइट (२२७) पृ० ८०-८३ ।
१६. एस० एम० जाफर, २०५-अ) पृ० २२१ ।
१७. ए० बी० एम० हबीब उल्लाह (१) पृ० २६४-७१, हबीब व निज़ामी, (१२९), ५, पृ० २७७-७८ ।
१८. आगा मेहदी हसन, (१७) ०पृ २३४ ।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

ए०बी०एम० हबीब उल्लाह—(१) फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया (लाहौर १९४५)

अजीज अहमद —(२) रेवेन्यू आर्गेनाईजेशन आफ इम्पायर आफ देहली (१२०६-१२९०) जनरल आफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी १९३९, पृ० १५-२१।

अमीर खुसरो —(३) खजाईन-उल-फुतूह (रिज़वी, खिल्जी कालीन भारत)

(४) देवलरानी (अलीगढ़ १९१७) (रिजवी, खिल्जी कालीन भारत)

(५) एजाज-ए-खुसरवी (हस्तलिपि)

(६) मिफता-उल-फुतूह (रिज़वी, खिल्जी कालीन भारत, भाग १)

(७) तुग़लक-नामा (रिज़वी, तुग़लक कालीन भारत)

(८) किरान-उस-सादैन (रिजवी, खिल्जी कालीन भारत)

अमीर हसन —(९) फवायद-उल-फ़ौद (दिल्ली १८५६)

अमीर खुर्द —(१०) सियार-उल-औलिया (दिल्ली १०३२ हिजरी)

अल-कलकशन्दी —(११) सुव्ह-उल-अशा (अनु० आटो स्पाईस, अलीगढ़)

अल मसूदी —(१२) मुरजुल-जुबाव (अनु० इलियट एण्ड डाउसन, भाग १)

अल बिलादूरी —(१३) फुतूह-उल-बुलदान (अनु० इलियट एण्ड डाउसन भाग १)

अब्दुल करीम —(१४) सोशल हिस्ट्री आफ मुस्लिम इन बंगाल (ढाका १९५९)

आईन-उल-मुल्क —(१५) इन्शा-ए-महरू (इ०वि०वि० हस्तलिपि) (रिजवी, तुग़लक कालीन भारत, भाग २)

अशोक कुमार श्रीवास्तव —(१६) इण्डिया ऐज़ डिस्क्राईब्ड बाई द अरब ट्रेवलर्स (गोरखपुर १९६७)

आगा मेंहदी हसन —(१७) राईज एण्ड फाल आफ मु० बिन तुग़लक (दिल्ली १९७२)

(१८) द तुग़लक डाइनेस्टी (कलकत्ता १९६३)

(१९) द सोशल लाइफ एण्ड इन्स्टीट्यूसन विद स्पेशल रिफरेन्स टू हिन्दूस इन द डेज आफ मु० बिन तुग़लक (प्रो० आई०एच०सी० १९४७ पृ० २९७-३०५)

(२०) आगरा विफ़ोर द मुगल्स (जे० यू० पी० एच० एस० १६४२, पृ० ८०-८७)

अनिल चन्द्र भट्टाचार्या —(२१) किंगशिप एण्ड नोविलीटी इन द १४वीं सेन्चुरी (आई०एच०क्यू० १६३६, भाग १२, पृ० ४१३)

अब्बास खाँ सरवानी —(२२) तारीख-ए-शेरशाही (अनु०वी०पी० अम्बष्ट, पटना १६७४)

ए०एच० निज़ामी —(२३) मुहम्मदावाद कालपी एण्ड इट्स हिस्टारिकल बैक-ग्राउन्ड, आई०सी० १६५३, पृ० १४६-१५५

अहमद यादगार —(२४) तरीख-ए-शाही या तारीख-ए-सलातीन अफ़ग़ाना (कलकत्ता १६३६) निगम, सूरवंश का इतिहास (दिल्ली १६७३)

असित कुमार सेन —(२५) आन स्लेवरी इन मेडिवल इण्डिया, प्रो० ई०एच० सी० १६५६, पृ० २०२-२०५

ए०जे० कैसर —(२६) दि रोल आफ ब्रोकर्स इन मेडिवल इण्डिया, आई० एच०आर० १६७४ पृ० २२०-२४६

अब्दुल हलीम —(२७) हिस्ट्री आफ लोदी सुल्तानस आफ देहली एण्ड आगरा (दिल्ली १६७४)

ए०के० भट्टाचार्या —(२८) हिन्दू एलीमेन्ट्स इन अरली मुस्लिम क्वाईनेज इन इण्डिया, जे० एन०एस० आई०, १६, १, १६५२, पृ० ११२-१२१

अब्दुल्लाह —(२६) तारीख-ए-दाउदी (अलीगढ़)

ए०बी० पाण्डेय —(३०) फर्स्ट अफगान इम्पायर (इलाहाबाद)

बी०पी० मजूमदार —(३१) सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया ११-१२ सेन्चुरी (कलकत्ता १६०७)

(३२) न्यू फार्मस आफ स्पेशलाईजेशन इन इन्डस्ट्रीज आफ इस्टर्न इण्डिया इन द टर्को-अफगान पीरियड, प्रो० एच०आई०सी० १६६६, पृ० २२६-२३२

(३३) वेसिक इन्डस्ट्रीज इन नार्दन इण्डिया आन द ईव आफ टर्को-अफगान कानक्वेस्ट, प्रो० आई० एच० सी० १६४७, पृ० २५३-५६

(३४) आयरन इन्डस्ट्री इन नार्दन इण्डिया आफ द ईव का टर्की-अफगान कान्क्वेस्ट, ई० क० १६४७, पृ० ३२-३५

चन्दबरदायी —(३५) पृथ्वीराज रासो

बिशप जान ए० सुभान —(३६) सूफीज्म-इट्स सेन्ट्स एण्ड श्राईन्स (लखनऊ १९०७)

बी०एन०एस० यादव —(३७) सोसायटी एण्ड कल्चर आफ नार्दर्न इण्डिया इन १२ सेन्चुरी (इलाहाबाद १९७३)

बख़शीश सिंह निज्जर —(३८) एजूकेशन अन्डर द सुल्तानस, प्रो० हि० कान० १९६८, पृ० १३७-१४४

दौरत-ए-ब्रारबोसा —(३९) द बुक आफ दौरत-ए-वारवोसा, दो खण्ड, हकल्यूट सोसायटी (लन्दन १९१८-१९२१)

धरमपाल —(४०) अलाउद्दीनस प्राईस कन्ट्रोल सिस्टम, ई० क० १९४४, पृ० ४५-५२

(४१) द इनफ्लूएन्स आफ स्लेवस इन द मुस्लिम एड-मिनिस्ट्रेशन आफ इण्डिया, ई० क० १९४४, पृ० ४०९-४१८

डी० पांडेय —(४२) मेडिवल इण्डियन स्लेक्स, देयर स्टेट्स एण्ड पाली-टिकल इम्पार्टेन्स १२०६-१३८८, क्यू०आर०एच० खण्ड १६, १९७६-७७, पृ० ४२-४६

धरम भानु —(४३) प्रोमोशन आफ म्युजिक वाई टर्को-अफगान रूलर्स आफ इण्डिया, इ०क० खण्ड २९, १९५५, पृ० ९-३१

डी० डी० कौसम्वी —(४३-अ) ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री

ई०सी० सचाऊ —(४४) अलवरूनीज इण्डिया, दो खण्ड (लन्दन १९१०)

एडवर्ड थामस —(४५) क्रानिकल्स आफ द पठान किंग्स आफ देहली (लन्दन १८७१)

(४६) रीएडजस्टमेन्ट आफ द क्वाइनेग इन द रेन आफ मु० विन तुग़लक, जे०ए०एस०बी०, १८६५, खण्ड ३४, पृ० २६

इलियट एण्ड डाउसन —(४७) हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टौल्ड वाई इट्स हिस्टो-रियन्स, भाग ८ (लन्दन १८६६, ७७)

फिरोजशाह तुग़लक —(४८) फुतुहात-ए-फ़िरोजशाही, अलीगढ़ १९४३

फख्र-ए-मद्दविर —(४९) तारीख-ए-फखरुद्दीन मुवारकशाही (सम्पादक डेनिसन व रौस, लन्दन १९२७)

गुलाम हुसैन सलीम —(५०) रियाज़-उस-सलातीन (अनु० अब्दुल सलाम, दिल्ली १९७५)

जी०डी० गुलाटी —(५१) न्यू मुसलमानस ड्यूरिंग १३ एण्ड १४ सेन्चुरी प्रो० ई०एच०सी० १६७८, पृ० ४०२-४०६

हमीदा खातून नकवी —(५२) इण्डियन एण्ड यूरोपियन टाउन (सन् १५००) ए कम्परेटिव स्टडी, प्रो० ई०एच०सी० १६७०, पृ० ३६२-३७०

(५३) एग्रीकल्चरल, इन्डस्ट्रियल एण्ड अरवन डाईयनमिज्म अन्डर द सुल्तानस आफ देहली (१२०६-१५५५) (दिल्ली १६८७)

(५४) प्रोग्रेस आफ अर्वनाईजेशन इन यूनाइटेड प्राविन्सेस (१५००-१८००) जे०ई ०एस० एच० ओ० भाग १०, खण्ड १, पृ० ८१-१०१

(५५) अर्बन सेन्टरस एण्ड इन्डस्ट्रीस इन अपर इण्डिया (१५५६-१८०३) (दिल्ली १६६८)

(५६) आर्वनाइजेशन एण्ड अर्वन सेन्टर्स अन्डर द ग्रेट मुग़ल्स (शिमला १६७८)

एच० के० शेरवानी —(५७) महमूद गाँवा (इलाहावाद १६४२)

(५७-अ) वहमनीज़ आफ द डकेन (हैदरावाद)

आई० जी० खान —(५८) मोड्स आफ टेक्नालाजी ट्रान्सफर विटवीन इण्डिया एण्ड सेन्ट्रल एशिया (१२००-१६५०) आई० एच० सी० १६८३

इब्नबतूता —(५६) द रेहला आफ इब्नबतूता (अनु० मेहदी हसन) (बड़ौदा १६५३)

ईश्वरी प्रसाद —(६०) ए हिस्ट्री आफ द करुनाह टर्कस इन इण्डिया (इलाहावाद १६३६)

ईश्वर टोपा —(६१) पालिटिक्स इन द प्रि मुग़ल टाईम्स (इलाहावाद १६३८)

आई० एच० कुरेशी —(६२) द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सल्तनत आफ देहली (लाहौर १६४२)

(६३) दि स्टेट डिमान्ड फार एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस अन्डर द सुल्तानस आफ देहली, प्रो० आई०एच० सी० १६४०, पृ० २४४-५०

(६४) दि सिस्टम आफ एसाईनमेन्ट अन्डर द सुल्तान्स आफ देहली जे०आई०एच० भाग १, खण्ड १, १६४१, पृ० ६३-७४

(६५) दि ओनरशिप आफ एग्रीकल्चरल लैण्ड ड्यूरिंग दि मुस्लिम रूल इन इण्डिया जे०आई०एच० भाग २१, १९४३, पृ० २२५-२२६

इक्तदार हुसैन सिद्दीकी —(६६) सम आस्पेक्टस आफ अफगान डिस्पारिस्म इन इण्डिया (अलीगढ़ १९६९)

(६७) ए फोरटीन्थ सेन्चुरी अरब एकाउन्ट आफ इण्डिया अन्डर सुल्तान मु० बिन तुग़लक (अलीगढ़)

(६८) इक्ता सिस्टम अन्डर दि लोदीज़, पी०आई०एच० सी० १९६१, पृ० १४५-१४९

(६९) राईज आफ द अफगान नोबिलिटी अन्डर लोदी सुल्तान्स (१४५१-१५२६), एम० आई० क्यू० भाग ४, १९६१

(७०) हिस्ट्री आफ शेरशाह सूरी (अलीगढ़ १९७१)

(७१) कम्पोजीशन आफ दि नोबिलिटी अन्डर द लोदी सुल्तानस, एम०आई०एम०, भाग ४, १९७७

(७२) द नोबिलिटी अन्डर दि खिल्जी सुल्तान्स, आई० सी० १९६५, पृ० ५२-८०

(७२-अ) वाटर वर्क्स एण्ड इरीगेशन सिस्टम इन इण्डिया ड्यूरिंग दि प्रि-मुगल पीरियड, इण्डियन हिस्ट्री कान्ग्रेस १९८२

इफ्तिख़ार अहमद खाँ —(७३) द इम्पोर्ट आफ परशियन हार्सेस इन इण्डिया (१३-१७ सेन्चुरी) आई०एच०सी० १९८४

(७४) कार्मस इन हार्सेस बिटवीन सेन्ट्रल एशिया एण्ड इण्डिया ड्यूरिंग मेडिवल टाईम्स, आई०एच० सी० १९८२

(७५) ट्रेड इन मेडिवल प्री० १६ सेन्चुरी गुजरात आई० एच० सी० १९८०, पृ० २७०-२८१

इरफान हबीब —(७६) इकनामिक हिस्ट्री आफ देहली सल्तनत : एन एसे इन इन्टरप्रेटेशन आई० एच० सी० १९७९

(७७) चेन्जेस ऑन टेक्नालाजी इन मेडिवल इण्डिया आई० एच० सी० १९७९

(७८) दि प्राइस रेग्यूलेशन आफ अलाउद्दीन खिल्जी इन डिफेन्स आफ ज़ियाउद्दीन बरनी आई० एच० सी० १९८३

(७६) दि फारमेशन आफ रूलिंग क्लास ड्यूरिंग द सल्तनत (१३ सेन्चुरी) आई० एच० सी० १६७७

ईश्वर प्रकाश —(८०) जनरल अपीयरेन्स एण्ड ले आउट, आफ मेडिवल इण्डियन टाउन्स, पी० आई० एच० सी० १६६१

जे० एम० बनर्जी —(८१) हिस्ट्री आफ फिरोजशाह तुग़लक (देहली १६६७)

जे० ब्रिग्स —(८२) हिस्ट्री आफ दि राईज़ आफ मुहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग ४ (फरिश्ता के तारीख-ए-फरिश्ता का अनुवाद)

जे० एन० सरकार —(८३) हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग २ (ढाका, १६४८)

(८४) हिन्दू-मुस्लिम रिलेशक्स इन बंगाल, देहली १६८५

जोगेन्द्र नाथ चौधरी —(८५) कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री इन प्री-मुगल पीरियड, आई० एच० क्यू० १६४८, पृ० १२२-१३३

के० एम० अशरफ —(८६) लाईफ एण्ड कन्डीशन आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान (दिल्ली १६५६)

के० ए० निज़ामी —(८७) सम आस्पेक्ट्स आफ रिलिजन एण्ड पलिटिक्स इन द १३ सेन्चुरी (देहली १६६१)

(८८) सम आस्पेक्टस आफ रिलिजस ट्रेन्ड इन तुगलक पीरियड, जर्नल आफ पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसायटी, १६५३, पृ० २३४-२४३

(८६) सरुर-उस-सुदूर, पी० आई० एच० सी० १६५०, पृ० १६७-१६६

(६०) स्टेट एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया (देहली १६८५)

(६०-अ) स्टडीज़ इन मेडिवल इण्डिया

के० एस० लाल —(६१) ग्रोथ आफ द मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिवल इण्डिया (देहली १६७३)

(६२) हिस्ट्री आफ दि खिलजीस (इलाहाबाद १६५०)

(६३) ट्वालाइट आफ द सल्तनत (बम्बई १६६३)

(६४) स्टडीज़ इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (देहली १६६६)

(६५) पालिटिकल कन्डीशन आफ दि हिन्दूज अन्डर द खिलजीस, पी० आई० एच० सी० १६४६, पृ० २३२-२३७

(९६) दि सैलरी आफ़ ए सोलजर इन द डेज आफ अलाउद्दीन खिल्जी (१२८०-१३१६), पी० आई० एच० सी०, पृ० १७६-१७८
(९७) तैमूर्स विज़िटेशन आफ देहली, पी० आई० एच० सी० १९६१७-८
(९८) फिस्कल एण्ड रेवेन्यू रिफार्मस आफ अलाउद्दीन खिल्जी (१२९६-१३१६) प्रो० ए० आई० ओ० कान्फ्रेंस १९४०, भाग २, पृ० ४४८-४५७
(९९) मुस्लिम स्टेट इन इण्डिया (इलाहाबाद १९५०)

ख्वाजा अब्दुल्ला मलिक इसामी —(१००) फुतूह-उस-सलातीन भाग १, अनु०, आगा मेहदी हसन (दिल्ली, १९६७)
(१०१) फुतूह-उस-सलातीन भाग २, अनु०, आगा मेहदी हसन (दिल्ली १९६७)
(१०१-ब) फुतूह-उस-सलातीन भाग ३, अनु० आगा मेहदी हसन (दिल्ली)

कृष्णास्वामी आयंगर —(१०२) साउथ इण्डिया एण्ड हर मोहम्मडन इनवेडर्स (लन्दन १९२१)

के० के० वसु —(१०३) फिरोजशाह तुगलक एज ए रुलर, आई० एच० क्यू० १९४१, पृ० ३८६-३९३
(१०४) एन एकाऊन्ट आफ फिरोजशाह तुगलक (फ्राम सिरत-ए-फिरोजशाही) जे० वी० ओ० आर० एस० २२, १९३६, पृ० ९६-१०७, २६५-२७४
(१०५) एन एकाउन्ट आफ द फर्स्ट सैय्यद किंग आफ देहली, जे० बी० ओ० आर० एस० १९२८, पृ० ३६-५३

के० पी० साहू —(१०६) सम आस्पेक्टस आफ नार्थ इण्डियन सोशल लाईफ (१०००-१५२६) (कलकत्ता १९७३)
(१०७) ए शार्ट नोट आन नारायणदास छिताई वार्ता, एस० ए० सोर्स आफ इण्डियन सोशल हिस्ट्री जे० एच० आर० (राँची जनवरी १९६८) पृ० ४४-४७
(१०८) सम लाइट आन द इन्करेजमेंट आफ नार्थ इण्डियन एडूकेशन एण्ड लरनिंग अन्डर द देहली

सुल्तान्स (१०००-१५२६) जे० एच० आर० १९६६, पृ० १९-२६

(१०९) हिन्दू-मुस्लिम कान्टेक्ट ड्यूरिग द टर्को-अफगान पीरियड, जे० एस० आर० १९७०-१९७१, पृ० ४३-४९

(११०) हन्टिग एस ए पास्ट-टाईम ड्यूरिग द टर्को-अफगान परियड, जे० एच० आर० १९७०-१९७१, पृ० ३८-४४

(१११) ग्लिम्पसेस आफ द प्रैक्टिस आफ सती-एस प्रीवेलेन्ट इन द टर्को-अफगान पीरियड, जे० एच० आर, जनवरी १९७०, पृ० ४२-४९

(११२) सम आस्पेक्टस आफ म्यूजिक एण्ड डान्सिग एण्ड ड्रमेटिक परफार्मेन्सेस ड्यूरिए द टर्को-अफगान पीरियड, जे० एच० आर०, अगस्त १९७१, पृ० ४६-५३

(११३) ए ब्रीफ एकाउन्ट आफ द कस्टम आफ पर्दा इन इण्डिया इन द टर्को-अफगान पीरियड, जे० एच० आर०, जनवरी १९७३, पृ० ७५-८०

(११४) सम लाईट आन द स्टैण्डर्ड आफ नार्थ इण्डियन हार्उसिग ड्यूरिग द टर्को-अफगान पीरियड, जे० एच० आर०, अगस्त १९७३, पृ० ६६-७३

के० सी० केहरार —(११५) इकनामिक पालिसीज़ आफ अलाउद्दीन खिल्जी, जर्नल आफ पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसायटी, अगस्त १९६३, पृ० ५५-६६

लावण्य स्वामी —(११६) विमल प्रवन्ध (स० डा० धीरज लाल धानजी भाई शाह, प्रकाशक : गुजरात साहित्य सभा, अहमदावाद, १९६५)

लल्लनजी गोपाल —(११७) दि इकोनामिक लाईफ आफ नार्दन इण्डिया (७००-१२००) (दिल्ली १९६५)

(११८) दि टेक्सटाईल इण्डस्ट्री इन अर्ली मेडिवल इण्डिया

मुहम्मद मुजीव —(११९) इण्डियन मुस्लिम (लन्दन १९६७)

मुहम्मद विहमन्द खानी —(१२०) तारीख-ए-मुहम्मदी अनु० मुहम्मद ज़की (अलीगढ़, १९७२)

मिनहाज-उस-सिराज जुरजानी —(१२१) तबक़ात-ए-नासीरी (विविलिथिका इण्डिका, कलकत्ता १८६४), अनु० मेजर एच० आर० रेवर्ती, लन्दन १८८१, भाग १

(१२२) तबक़ात-ए-नासीरी (विविलिथिका इण्डिका, कलकत्ता १८६४) अनु० मेजर एच० आर० रेवर्ती (लन्दन १८८२), भाग २

मेजर आर० एच० —(१२३) इण्डिया इन दि फिफ्टीन्थ सेन्चुरी, हेकलूट सोसायटी (लन्दन १८५१)

मुहम्मद हबीब —(१२४) सम आस्पेक्टस आफ दि फाउन्डेशन आफ दिल्ली सल्तनत, के० एम० अशरफ मेमोरियल वाल्यूम (दिल्ली १९६६)

(१२५) दि पालिटिकल थ्योरी आफ द दिल्ली सल्तनत (इलाहाबाद)

(१२६) खजाईन-उल-फुतूह (अनु० कम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिल्जी, बम्बई १९३३ एवं जे० आई० एच० १९२९, पृ० २३४-२६७, ३५७-४०२ १९३०, पृ० ४९-८०, २१८-२३४

(१२७) पालिटिक्स एण्ड सोसायटी ड्यूरिंग द अर्ली मेडिवल पीरियड (संकलन) के० ए० निजामी, भाग १, (अलीगढ़ १९७४)

(१२८) इन्ट्रोडक्शन टू द सेकेण्ड वाल्यूम आफ द इलियट एण्ड डाउसन (पुनः संस्करण १९५१, अलीगढ़)

मुहम्मद हबीब एण्ड के० ए० निज़ामी —(१२९) काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ५ (बम्बई १९७०)

मलिक मुहम्मद जायसी —(१३०) पद्मावत (साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी)

मुल्ला दाऊद —(१३१) चन्दायन (स० डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त, प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ (रत्नाकर, १९६४)

मुहम्मद यासीन मजहर —(१३२) आफिस आफ कोतवाल अन्डर द सुल्तान्स आफ दिल्ली, पी० आई० एच० सी०, १९७२, पृ० १८५-१९५

(१३३) स्लेव एक्यूज़िशन इन दिल्ली सल्तनत, आई० एच० सी०, १९८१

(१३४) हिन्दूज़ इन एडमिनिस्ट्रेटिव अप्रेटस आफ दिल्ली सल्तनत, आई० एच० सी० १९७७

(१३५) दि मर्चेन्ट्स एण्ड द दिल्ली सल्तनत (१३-१४ सेन्चुरीज) आई० एच० सी १९७५
(१३६) फन्कशन एण्ड पोजीशन आफ द काज़ीस ड्यूरिंग दि सल्तनत पीरियड इन एजाज़-ए-खुसरवी आई० एच० सी० १९७०
मुहम्मद जकी —(१३७) अरब एकाउन्ट आफ इण्डिया ड्यूरिंग द १४ सेन्चुरी (दिल्ली १९८१)
(१३८) एक्यूजिशन आफ इस्लामिक लर्निंग अन्डर द सैयद एण्ड लोदीस—मेडिवल इण्डिया मिसिलेनी भाग ४ (अलीगढ़ १९७७)
मुहम्मद सलीम —(१३९) जमात-खाना आफ शेख निज़ामुद्दीन औलिया आफ दिल्ली, प्रो० पाकिस्तान हिस्ट्री कान्फ्रेन्स १९५३, पृ० १८५-१८८
मुहम्मद अजीज़ अहमद —(१४०) सुल्तान ग्यासउद्दीन बलबन, जे० आई० एच० १९३९, पृ० ३३०-३६३
एम० अतहर अली— (१४१) कैपिटल आफ सुल्तानस आफ देहली ड्यूरिंग द १३ एण्ड १४ सेन्चूरीस, आई एच० सी० १९८०
(१४२) नोबिलिटी अन्डर मुहम्मद बिन तुगलक, पो० आई० एच० सी० १९८१, पृ० २०३-२१३
एम०अफ़ज़ाल आर० खान—(१४३) नोबिलिटी आप कटेहर अन्डर देहली सुल्तानस आई० एच० सी० १९८१
एम० सी० जोशी —(१४४) सम नागिरी इन्सक्रिपशन्स आन द कुतुब-मीनार—मेडिवल इण्डिया मिसिलिनी भाग २ अलीगढ़ १९७२
एम० एम० शरीफ —(१४५) दि सुल्तान एण्ड द उल्मा इन द टर्किश सल्तनत आफ देहली, (१२०६-१४१३), इक़बाल १९६५ पृ० ३१-६०
एम० ए० अहमद —(१४६) इम्पीरियल मजलिसेस इन अरली सल्तनत पीरियड, पी० एच० सी० १९४१, पृ० ३२२
मुहम्मद कबीर —(१४७) अफसाना-ए-शाहान अनु० एस० बी० पी० निगम—सूर्य वंश का इतिहास, दिल्ली १९७३
एन० बी० राय —(१४८) ट्रेड एग्रीकल्चर एण्ड इन्डस्ट्री इन वेस्ट बंगाल (१२००-१६०८), ऐज़ फाउन्ड इन द परशिन एण्ड अरेबिक सोर्सेस, जे० ए० एस० बी०

निज़ाम-उल-मुल्क तूसी —(१४९) सियासतनामा (अनु० सेचेकर, पेरिस, १८९१) पृ० ७-१३

विजय गुप्त —(१५०) मानस मंगल (स० बसन्त कुमार भट्टाचार्य प्रकाशक वानी निकेतन, कलकत्ता)

निज़ामुद्दीन अहमद —(१५१) तबक़ात-ए-अकबरी (बिबलोथिका इण्डिका) ३ भाग, कलकत्ता १९२७-३५, अनु० बी० डे०

नारायण दास —(१५२) छिताई वार्ता (काशी वि० सम्वत० २०१५)

आटो स्पाईज़ —(१५३) एन अरब एकाउन्ट आफ १४ सेन्चुरी (अनु० सुबह-उल-आशा, ले० अलकदल कशन्दी, अलीगढ़)

ओम प्रकाश —(१५४) सम इकोनामिक डाटा फ्राम कुमुदसार कौमुदी आफ थक्कर फेरु, पी० आई० एच० सी० १९६५, पृ० २०५-२०६

पुष्पा प्रसाद —(१५५) क्राफ्ट्समैन इन देहली सल्तनत, ए स्टडी आफ एपिग्राफिक एविडेन्स, आई० एच० सी० १९८२

(१५६) ए फोरटीन्थ सेन्चुरी इन्सक्रिप्शन आफ श्रीनेत रुलर्स इन बांसी डिस्ट्रिक्ट, आई० एच० सी० १९८३

(१५७) एग्रेरियन पोटेन्टेट्स इन कटेहर इन द १३ सेन्चुरी इन द लाईट आफ खरक कापर प्लेट इन्सक्रिप्शन, आई० एच० सी० १९७७

परशुराम चतुर्वेदी —(१५८) उत्तरी भारत की सन्त परम्परा

पी० शरण —(१५९) स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (दिल्ली १९५२)

पी० एन० ओझा —(१६०) सम लाईट आन द प्रमोशन आफ स्कालरशिप एण्ड लर्निङ्ग अन्डर द तुगलक सुल्तानस, जे० एच० आर०, जनवरी १९६८, पृ० ६४-६७

कयूमउद्दीन अहमद —(१६१) वर्नीज़ रिफरेन्स टू द हिन्दू इन तारीख-ए-फिरोजशाही, आई० सी० १९८२, पृ० २८५-३०२

आर० एन० प्रसाद सिह —(१६२) ग्लिम्प्सेज़ आफ इकोनामिक लाईफ एज डेपिक्टेड इन कबीर, पी० आई० एच० सी० १९६९, पृ० २१८

आर० एल० फ्राइकेनवर्ग —(१६३) दिल्ली थ्रू द ऐजेज़ (एसेज़ इन अरवन हिस्ट्री कल्चर एण्ड सोसायटी, दिल्ली १६८६)
रशीद —(१६४) सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया
आर० सी० जौहरी —(१६५) फिरोज तुगलक (आगरा १६६८)
(१६६) रायल कारखानाज़ आफ तुग़लक सुल्तानस, पी० आई० एच० सी० १६६५, पृ० १६२-१६६
(१६७) ए फ्यू कैनाल्स आफ मेडिवल पंजाब, पंजाव हिस्ट्री कांग्रेस, १६६५, पृ० ८२-८७
(१६८) लर्निंग एण्ड लिटरेचर ड्यूरिंग द रेन आफ फिरोजशाह तुगलक, आई० सी०, अक्तूवर १६६७, पृ० २४१-४६
आर० नाथ —(१६६) आगरा इन हिस्टारिकल ट्विलाईट फ्राम अरली-एस्ट टाइम्स टू १५५८, जे० एच० आर०, जनवरी १६७१, पृ० १४-४२
आर० वी० रैन्डर्स —(१७०) इण्डियाज़ ट्रेड विद अफ्रीका फ्राम अरलीएस्ट टाईम्स टिल द एण्ड आफ द १५ सेन्चूरी पी० आई० एच० सी० १६६७, भाग २, पृ० १८०-८४
रियाज़-उल-इस्लाम —(१७१) सोर्सेज आफ रेवेन्यू अन्डर फिरोजशाह तुगलक पी० आई० एच० सी० १६४३, पृ० २२२-२२७
(१७२) सोर्सेस आफ रेवेन्यू अन्डर फिरोजशाह तुगलक पी० आई० एच० सी०, १६४३
आर० पी० त्रिपाठी —(१७३) सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, (इलाहावाद १६३६)
आर० सी० शर्मा —(१७४) कास्ट्स इन नर्दिर्न इण्डिया ड्यूरिंग द मेडिवल पीरियड, पी० आई० एच० सी० १६७३, पृ० ३११
शेख अब्दुर रशीद —(१७५) फेमीन इन टर्को-अफगान पीरियड, पी० आई० एच० सी०, १६६४
(१७६) प्राईस कन्ट्रोल अन्डर अलाउद्दीन खिल्जी, प्री० पाकिस्तान हिस्ट्री कान्फ्रेन्स, १६५१, पृ० २०३-२१०
(१७७) इन्शा-ए-महरू, आई० सी० १६४२, पृ० २७६-६०

(१७७-अ) मर्चेन्ट्स एण्ड आर्टसिन्स इन मेडिवल इण्डियन इकोनमी (१२०८-१५२६), डॉ० एस० मुखर्जी फेलिसिटेशन वाल्यूम, वाराणसी, १९६९

(१७८) एग्रेरियन सिस्टम ऑफ तुग़लक्स—जरनल आफ अलीगढ़ हिस्टारिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग ११९४१, पृ० ८४-१०१

(१७९) लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ड्यूरिंग द सल्तनत पीरियड १९६२, पृ० १-१४

एस० ए० लतीफ —(१८०) ए साइड-लाईट आन द सोसल हिस्ट्री आफ देहली सुल्तान्स—द फारच्यून्स ऑफ ए फैमली आफ आफिशियल्स, आई० एच० सी० १९८३

(१८१) दि आफिस आफ शेख-उल-इस्लाम अन्डर द सुल्तान्स ऑफ देहली, आई० एच० सी० १९७४

(१८२) दि इक्ता सिस्टम अन्डर द अर्ली सुल्तान्स आफ देहली, आई० एच० सी०, १९७५

सुलेमान नदवी —(१८३) दि एडूकेशन आफ हिन्दूस अन्डर द मुस्लिम रूल, कराची १९६३

(१८४) कामर्शियल रिलेशन्स आफ इण्डिया विद अरेबिया, आई० सी० १९३७, पृ० ४८८-४९७

(१८५) मुस्लिम कालोनीज़ इन इण्डिया बिफोर द मुस्लिम कान्क्वेस्ट, आई० सी० १९३४, पृ० ४७७-४८४, ६००-६२०, १९३५, पृ० १४४-४६, ४२३-४४२

एस० एच० होदीवाला —(१८६) स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, बम्बई १९३९

शिहाबउद्दीन अल उमरी —(१८७) मसालिक-उल-अबसार फी ममालिक-उल-अमसार (अनु० आटो स्पाईस)

(१८७-अ) अनु० इक्तदार हुसैन सिद्दीकी 'ए फोरटीन्थ सेन्चुरी अरब एकाउन्ट आफ इण्डिया अन्डर मुहम्मद बिन तुग़लक (अलीगढ़)

शम्स-ए-सिराज अफीफ —(१८८) तारीख-ए-फिरोज़शाही (बिब इण्डिका, कलकत्ता १८९०)

स्टेनली लेनपूल —(१८९) मेडिवल इण्डिया अन्डर मोहम्मडन रूल, (१९०३)

एस० सी० मिश्रा —(१९०) मुस्लिम कम्यूनिटीज इन गुजरात (बम्बई १९६४)

(१८१) सोशल मोबिलिटी इन प्री-मुगल इण्डिया, आई० एच० आर०, जिल्द ४, भाग १, पृ० ३६-४३
एस० वी० पी० निगम —(१८२) सूर्य वंश का इतिहास (दिल्ली १८७३)
(१८३) नोबिलिटी अन्डर द सुल्तानस ऑफ देहली (दिल्ली १८६८)
(१८४) आर्गेनाईजेशन ऑफ टर्किश नोबिलिटी इन इण्डिया (१२००-१३८८) आई० सी० १८६५, पृ० २७१
शेख नासिरउद्दीन —(१८५) खैर-उल-मजलिस (स० के० ऐ० निजामी)
सैय्यद हसन अस्करी —(१८६) मैटीरियल ऑफ हिस्टारिकल इन्टरेस्ट इन एजाज-ए-खुसरवी—मेडिवल इण्डिया मिसिलैनी, भाग १, अलीगढ़ १८६८
(१८७) हिस्टारिकल मैटीरियल इन एजाज़-ए-खुसरवी, पी० आई० एच० सी० १८६४
(१८८) मेडिसिन एण्ड हास्पिटल इन मुस्लिम इण्डिया, पी० आई० एच० सी० १८५७, पृ० १७०
सैय्यद ए० ए० रिजवी —(१८८) आदि तुर्क कालीन भारत (अलीगढ़ १८६५)
(२००) खिल्जी कालीन भारत (अलीगढ़ १८५५)
(२०१) तुग़लक कालीन भारत, भाग १ (अलीगढ़)
(२०२) तुग़लक कालीन भारत भाग २, (अलीगढ़ १८५७)
(२२३) उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग १ (अलीगढ़)
(२०४) उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग २ (अलीगढ़)
(२०५) सूफीज्म इन इण्डिया, भाग १ (दिल्ली)
एस० एम० जाफर —(२०५-अ) सम कल्चरल आस्पेक्टस ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया (दिल्ली)
सिकन्दर गिन मन्झू गुजराती—(२०५-ब) मिरात-ए-सिकन्दरी (अनु० फैजुल्लाह लुतुफुल्लाह फरीदी (धामपुर १८८८)
एस० ए० शोर —(२०६) खिल्जी किंग्स—देयर क्वाईनेज एण्ड मिन्टस, जे० बी० ओ० आर० एस० २८, १८४६, पृ० ८४-१०५
सुरेन्द्र गोपाल —(२०६-अ) कामर्स एण्ड क्राफ्ट्स इन गुजरात (दिल्ली १८७५)
एस० आर० शर्मा —(२०७) फिरोजशाहज़ फिसकल रेग्यूलेशन्स, पी० आई० एच० सी० १८३८, पृ० २५७-३६२

सिंह —(२०८) सम ग्लिपसेस ऑफ सोसायटी एण्ड पालिटी एज डेपिकटेड इन उसमानस चित्रावली, पी० आई० एच० सी० १९५८, पृ० ३३६

तारा चन्द —(२०९) इन्फ्यूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर (इलाहाबाद, १९४६)

त्रिमुल भट्ट —(२१०) त्रिहोराजतरंगणी

तपन रायचौधरी —(२११) दि कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १ (दिल्ली १९८२)

यू० एन० डे —(२१२) सम आस्पेक्टस ऑफ मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (दिल्ली १९७१)

विद्यापति —(२१३) कीर्तिलता (इण्डियन प्रेस)

वी० बी० मिश्रा —(२१४) सोशल कन्डीशन आफ इण्डिया ड्यूरिंग द अरली मेडिवल पीरियड एज ग्लीम्ड फ्राम द इपीग्राफी एण्ड एकाऊन्ट आफ मुस्लिम ट्रैवलर्स, ए० बी० ओ० आर० आई० १९५६, पृ० १९०-२०७

विजय गुप्त —(२१५) मानस मंगल (स० वसन्त कुमार भट्टाचार्य, प्रकाशक वानी निकेतन, कलकत्ता)

डब्लू० एच० मोरलैण्ड —(२१६) दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया, (कैम्ब्रिज १९२९), (इलाहाबाद)

यूसुफ-हुसैन खाँ —(२१७) सोशल एण्ड इकोनामिक कन्ट्रीव्यूशन इन मेडिवल इंडिया, आई०सी० १९५६, भाग ३०, पृ० १-२३

(२१८) द एडुकेशनल सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया, आई० सी० १९५६, पृ० १०६-२५

(२१९) ग्लिम्पसेस ऑफ मेडिवल इण्डियन कल्चर (बम्बई १९६२)

युसुफ अली खाँ —(२२०) मेडिवल इण्डिया, सोशल एण्ड इकनामिक कन्डीशन (लन्दन १९३२)

याहिया सरहिन्दी —(२२१) तारीख-ए-मुवारकशाही (विब इण्डिका कलकत्ता १९३१, अनु० के० के० वासु (बड़ौदा १९३२)

ज़ैन खाँ —(२२२) तवकात-ए-बाबरी (अनु० सैय्यद हसन अस्करी (दिल्ली १९-२)

जियाउद्दीन बरनी —(२२३) तारीख - ए - फिरोज़शाही (बिब० इंडिका, कलकत्ता १८६२)

(२२४) फतवा-ए-जहाँदारी (अनु० मुहम्मद हवीब—पालिटिकल थ्योरी आफ दिल्ली सल्तनत)

ज़हीरउद्दीन मुहम्मद बाबर—(२२५) बाबरनामा (अनु० श्रीमती ब्रेवरिज, दो जिल्द, लूजाक एण्ड कम्पनी (लन्दन १९२२), (दिल्ली १९७०)

जफर हुसैन मौलवी —(२२६) सीरी ए सिटी ऑफ दिल्ली फाऊन्डेड बाई अलाउद्दीन खिल्जी—आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनूएल रिपोर्ट १९६५, पृ० १३७-४३

नेल्सन राईट —(२२७) केटैलाग ऑफ क्वाईन्स इन इण्डियन म्यूजियम
(२२८) उपरोक्त, भाग २

यू० एन० डे० —(२२९) मेडिवल मालवा (दिल्ली १९६५)

सीवैल, राबर्ट —(२३०) द फारगाटेन इम्पायर (लन्दन १९४०)